अंक : 67, भाग : 2, वर्ष : 2021-22
Vol. : 67, No. : 2, Year : 2021-22

ISSN:0554-9884
U.G.C. Care Listed Journal

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय पत्रिका

प्रज्ञा

PRAJÑĀ

सयाजी राव गायकवाड़ ग्रन्थालय (केन्द्रीय ग्रन्थालय), काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

प्रज्ञा

PRAJÑĀ

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

अंक 67, भाग 2

वर्ष 2021-22

Published
by
The Banaras Hindu University

PRAJÑĀ
(Journal of the Banaras Hindu University)
Vol. 67 No. 2, 2021-22
ISSN 0554-9884
U.G.C Care Listed Journal

© Banaras Hindu University
December, 2022

All correspondence should be addressed to
The Editor 'PRAJÑĀ'
BANARAS HINDU UNIVERSITY
VARANASI - 221 005

Printed at
B.H.U. Press
BANARAS HINDU UNIVERSITY

प्रज्ञा

मुख्य संरक्षक : प्रो. सुधीर कुमार जैन
कुलपति, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

संरक्षक मण्डल

रेक्टर, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

निदेशक, भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान (बी.एच.यू.)

निदेशक, कृषि विज्ञान संस्थान

निदेशक, प्रबन्ध शास्त्र संस्थान

प्राचार्या, महिला महाविद्यालय

प्रमुख, सामाजिक विज्ञान संकाय

प्रमुख, संगीत एवं मंच कला संकाय

निदेशक, चिकित्सा विज्ञान संस्थान

निदेशक, विज्ञान संस्थान

निदेशक, पर्यावरण एवं धारणीय विकास संस्थान

प्रमुख, संस्कृत विद्या धर्म विज्ञान संकाय

प्रमुख, दृश्य कला संकाय

प्रमुख, विधि संकाय

प्रमुख, वाणिज्य संकाय

सम्पादक मण्डल

प्रो. जय शंकर झा
अंग्रेजी विभाग, कला संकाय

प्रो. कमल नयन द्विवेदी
द्रव्यगुण विभाग, आयुर्वेद संकाय,
चिकित्सा विज्ञान संस्थान

प्रो. मिथिलेश कुमार पाण्डेय
अंग्रेजी विभाग, कला संकाय

डॉ. ज्ञान प्रकाश मिश्र
पत्रकारिता एवं जनसम्प्रेषण विभाग, कला संकाय

प्रो. सदाशिव कुमार द्विवेदी
संस्कृत विभाग, कला संकाय

प्रो. आनन्द प्रसाद मिश्र
भूगोल विभाग, विज्ञान संस्थान

प्रो. सुमन जैन
महिला महाविद्यालय

प्रो. शत्रुघ्न त्रिपाठी
ज्योतिष विभाग, संस्कृतविद्याधर्मविज्ञानसंकाय

सम्पादक
प्रमुख, कला संकाय
प्रो. विजय बहादुर सिंह

मानद सम्पादक
प्रो. श्रीनिवास पाण्डेय
इमेरिटस प्रोफेसर, हिन्दी विभाग

कुलगीत

मधुर मनोहर अतीव सुन्दर, यह सर्वविद्या की राजधानी।
यह तीन लोकों से न्यारी काशी।
सुज्ञान धर्म और सत्यराशी॥
बसी है गंङ्गा के रम्य तट पर, यह सर्वविद्या की राजधानी। मधुर०॥

नये नहीं हैं ये ईंट पत्थर।
है विश्वकर्मा का कार्य सुन्दर॥
रचे हैं विद्या के भव्य मन्दिर, यह सर्वसृष्टी की राजधानी। मधुर०॥

यहाँ की है यह पवित्र शिक्षा।
कि सत्य पहले फिर आत्म-रक्षा॥
बिके हरिश्चन्द्र थे यहीं पर, यह सत्यशिक्षा की राजधानी। मधुर०॥

वह वेद ईश्वर की सत्यबानी।
बनें जिन्हें पढ़ के ब्रह्मज्ञानी॥
थे व्यास जी ने रचे यहीं पर, यह ब्रह्म-विद्या की राजधानी। मधुर०॥

वह मुक्तिपद को दिलानेवाले।
सुधर्मपथ पर चलाने वाले॥
यहीं फले-फूले बुद्ध शंकर, यह राज-ऋषियों की राजधानी। मधुर०॥

सुरम्य धाराएँ वरुणा अस्सी।
नहाए जिनमें कबीर तुलसी॥
भला हो कविता का क्यों न आकर, यह वागविद्या की राजधानी। मधुर०॥

विविध कला अर्थशास्त्र गायन।
गणित खनिज औषधि रसायन॥
प्रतीचि-प्राची का मेल सुन्दर, यह विश्वविद्या की राजधानी। मधुर०॥

यह मालवी की है देशभक्ति।
यह उनका साहस यह उनकी शक्ति॥
प्रकट हुई है नवीन होकर, यह कर्मवीरों की राजधानी।
मधुर मनोहर अतीव सुन्दर, यह सर्वविद्या की राजधानी॥

- डॉ. शान्ति स्वरूप भटनागर

★

न त्वहं कामये राज्यं न स्वर्गं नाऽपुनर्भवम् ।
कामये दुःखतप्तानां प्राणिनामार्तिनाशनम् ।।

भारतरत्न पं० मदन मोहन मालवीय जी

संस्थापक - काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

आविर्भाव : वि.सं. 1918 पौषकृष्ण 8 (25.12.1861)
तिरोभाव : वि.सं. 2003 मार्गशीर्षकृष्ण (12.11.1946)

मानद सम्पादक की कलम से

विश्वविश्रुत काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की प्रसिद्ध शोध प्रत्रिका '**प्रज्ञा**' का प्रकाशन गत 65 वर्षों से निरन्तर हो रहा है। यह प्रतिष्ठित शोध पत्रिका काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की वैदुष्य परम्परा का सतत् निर्वहन करती आ रही है। इसमें महामना के संकल्पों के अनुरूप पाश्चात्य ज्ञान एवं भारतीय चिन्तन परम्परा से सम्बन्धित स्तरीय शोध प्रपत्र/लेख प्रकाशित होते हैं। समय-समय पर देश एवं समाज की समस्याओं एवं चुनौतियों से सम्बन्धित अनेक विशेषांक भी प्रकाशित हुए हैं, जो प्रबुद्ध पाठक वर्ग में अत्यन्त लोकप्रिय रहे हैं। महामना का संकल्प था कि यहाँ पर छात्रों के व्यक्तित्व का सर्वांगींण विकास हो ताकि वे मन, बुद्धि, आत्मा एवं शरीर से पुष्ट एवं बलवान हों। इस दृष्टि को ध्यान में रखते हुए '**प्रज्ञा**' में इन विषयों से सम्बन्धित शोध प्रपत्रों को प्रकाशन में वरीयता दी जाती है। यह पत्रिका आरम्भ से त्रैभाषिक है, जिसमें हिंदी, संस्कृत एवं अंग्रेजी भाषा में लिखे गये शोध प्रपत्र/लेख प्रकाशित होते रहे हैं। '**प्रज्ञा**' पत्रिका के अंक विश्वविद्यालय की वेबसाइट www.bhu.ac.in पर भी उपलब्ध है।

'**प्रज्ञा**' जर्नल के प्रस्तुत अंक-67, भाग-2, वर्ष 2021-22 में कुल छप्पन (56) शोध प्रपत्र/लेख प्रकाशित हैं। बत्तीस (32) लेख हिंदी भाषा में पाँच (5) लेख संस्कृत भाषा में और उन्नीस (19) लेख अंग्रेजी भाषा में लिखे गये हैं। इस अंक में संगीत शास्त्र से सम्बन्धित कई महत्वपूर्ण लेख प्रकाशित किए जा रहे हैं। हिन्दी भाषा एवं साहित्य, अंग्रेजी भाषा एवं साहित्य तथा संस्कृत भाषा एवं साहित्य के विविध पक्षों से सम्बन्धित उल्लेखनीय लेख प्रकाशित हैं। इस अंक में महिला अध्ययन, मानवीय मूल्य, विधि शास्त्र, स्वास्थ्य एवं पर्यावरण, जनजाति एवं लोक संस्कृति, योग एवं आयुर्वेद, प्रबंध शास्त्र एवं शिक्षा आदि ज्ञान के विविध क्षेत्रों से भी सम्बन्धित अनेक शोध प्रपत्र/लेख प्रकाशित किए गये हैं, जो जिज्ञासु पाठकों की ज्ञान पिपासा को तृप्त करने में सक्षम होगें, ऐसा मेरा दृढ़ विश्वास है।

'**प्रज्ञा**' जर्नल के प्रस्तुत अंक के प्रकाशन के अवसर पर मैं सर्वप्रथम इस महान विश्वविद्यालय के कुलपति आदरणीय प्रो0 सुधीर कुमार जैन जी के प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करता हूँ जिनके आशीर्वाद से हम सभी को काफी प्रोत्साहन एवं बल मिलता है। इसके बाद मैं विश्व प्रसिद्ध सर्जन कुलगुरू प्रो0 बी0 के0 शुक्ल जी को धन्यवाद देता हूँ जिनके बहुआयामी व्यक्तित्व से हम सभी अत्यन्त प्रभावित हैं। तदनन्तर इस विश्वविद्यालय के कुलसचिव प्रो0 अरूण कुमार सिंह के आत्मीय व्यवहार एवं उनके प्रोत्साहन के लिए शुक्रिया अदा करता हूँ। '**प्रज्ञा**' जर्नल के संरक्षण मण्डल एवं सम्पादक मण्डल के सम्मानित सदस्यों को उनके सकारात्मक सहयोग के लिए धन्यवाद देता हूँ। जिन विद्वान लेखकों ने अपने शोध पत्रों/लेखों से इस अंक को समृद्ध किया है उन्हें भी मैं हार्दिक बधाई देता हूँ। अन्त में 'प्रज्ञा' कार्यालय के सहयोगियों एवं बी0एच0यू0 प्रेस के प्रभारी के प्रति आभार व्यक्त करता हूँ, जिनके सक्रिय सहयोग द्वारा यह प्रकाशन कार्य सम्पन्न हुआ।

(डॉ0 श्रीनिवास पाण्डेय)
इमरिटस प्रोफेसर एवं
मानद सम्पादक 'प्रज्ञा' जर्नल
पूर्व प्रमुख, कला संकाय तथा पूर्व हिंदी विभागाध्यक्ष
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

विषय-सूची

1. ग्रामीण भारत मे महिलाओं की स्थिति एक विधिक अध्ययन 1
डॉ. सी.पी. उपाध्याय

2. भारतीय मानवीय मूल्यों का वर्तमान वैश्विक परिवेश में मूल्यांकन 9
डॉ. रमेश कुमार एवं डॉ. रंगनाथ पाठक

3. बनारस घराने के प्रतिष्ठित संगीताचार्य पं. बड़े रामदास मिश्र जी एवं उनकी शिष्य परम्परा 13
ज्योति यादव एवं प्रो. शारदा वेलंकर

4. सङ्गीतरत्नाकरवर्णित पिण्डोत्पत्ति प्रकरण का संक्षिप्त अध्ययन 19
कु0 बन्दना एवं प्रो. के0 शशि कुमार

5. नाथ परम्परा में गोरखनाथ का महत्व 25
डॉली मेघनानी एवं प्रो. सदानन्द शाही

6. विधि और मनोविज्ञान का परस्पर अन्तर्संबंध 28
प्रो. धर्मेन्द्र कुमार मिश्रा एवं डॉ. अंशु मिश्रा

7. उपशास्त्रीय संगीत (ठुमरी) : एक संक्षिप्त अध्ययन 33
डॉ. शिवि तिवारी एवं प्रो. मंगला कपूर

8. बंकिम के उपन्यासों में समाज और इतिहास 38
प्रतीक गुप्ता एवं प्रो. अनुराधा सिंह

9. स्वास्थ्य एवं पर्यावरणीय परिदृश्य पर उपभोक्तावाद का प्रभावः एक समाजशास्त्रीय अध्ययन 42
डॉ. दिनेश कुमार सिंह

10. भारतीय संस्कृत पत्रकारिता : संभावनाएँ, चुनौतियाँ एवं भविष्य 46
डॉ. अमिता एवं मोनू सिंह राजावत

11. पंडित मदन मोहन मालवीय : एक महान क्रिया समाजशास्त्री 53
डॉ. विमल कुमार लहरी

12. समाज से विलुप्त हो रही नेटुआ जनजाति की लोक संस्कृति 60
खुशबू कुमारी एवं डॉ. ज्ञानेश चन्द्र पाण्डेय

13. महिलाओं के सामाजिक-आर्थिक सशक्तीकरण में उज्जवला योजना की भूमिका 65
डॉ. रविश कुमार तिवारी एवं प्रो. शैलेश कुमार मिश्र

14. प्रेमचंद और निराला का दलित संदर्भित साहित्य 69
डॉ. राकेश कुमार राम

15. पारम्परिक भारतीय विद्वानों के अनुसार संगीत का उद्भव 73
प्रो. बिरेन्द्र नाथ मिश्र एवं डॉ. विपिन बिहारी दूबे

16. समुदाय आधारित पारिस्थितिकी पर्यटन एवं सामुदायिक विकास 76
डॉ. राजबहादुर अनुरागी एवं डॉ. संजाय कुमार

17. भरत कृत 'नाट्यशास्त्र' का अष्टाविंशतितमोध्यायः एक अध्ययन 81
शुचि उपाध्याय एवं डॉ. मधुमिता भट्टाचार्या

18. राग वर्गीकरण रागांग पद्धति के संदर्भ में 85
जागृति पाठक एवं प्रो0 बिरेन्द्र नाथ मिश्र

19. कोविड- 19 से बचने के प्राकृतिक उपाय 89
राकेश कुमार प्रजापति, डॉ. सुशील कुमार दूबे एवं
डॉ. नरेन्द्र शंकर त्रिपाठी

20. पर्वत से झरती एक कृति : कामायनी 94
डॉ. राकेश कुमार द्विवेदी

21. महान् वाग्गेयकार पं0 बलवन्तराय भट्ट 'भावरङ्ग' जी की सांगीतिक यात्रा 99
प्रीति सिंह एवं डॉ. ज्ञानेश चन्द्र पाण्डेय

22. अश्वघोष के महाकाव्यों में कृषि एवं पशुधन 104
डॉ. गटुलाल पाटीदार

23. जय प्रकाश नारायण और लोहिया के सिद्धांतों की *वर्तमान में प्रासंगिकता* 107
देवी प्रसाद एवं डॉ. मनोज कुमार वर्मा

24. वेदान्त आधारित आनन्दमय एवं उद्देश्यपूर्ण जीवन-दर्शन की शिक्षा : आधुनिक वैश्विक सामाजिक परिवेश के संदर्भ में 112
डॉ. अजय कुमार सिंह एवं डॉ. विनोद कुमार सिंह

25. सुषिर वाद्य बाँसुरी की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि 123
श्री सतीश कुमार एवं प्रो. राजेश शाह

26. पर्यावरणीय पुरातत्त्व : अभिलेखों में वर्णित जलवायु के संदर्भ में 127
रश्मि सिंह एवं सचिन कुमार तिवारी

27. हिन्दी काव्यशास्त्र को आचार्य श्रीपति का प्रदेय 142
डॉ. अनुकूलचंद राय

28. शास्त्रीय संगीत में भक्ति परक बंदिशों का महत्त्व (पंडित रामाश्रय झा रामरंगङ्ग जी की रचनाओं के सन्दर्भ में) 148
डॉ. रामशंकर

29. लोक संगीत मे सुषिर वाद्यों का महत्व 152
अजीत कुमार एवं डॉ. के0 ए0 चंचल

30. वैदिक कालीन न्याय व्यवस्था 156
डॉ. विवेक कुमार पाठक

31. छन्द रामायण में रस योजना 163
डॉ. सुमन तिवारी

32. कबीर की काव्य सर्जनात्मकता और युगबोध 168
मृत्युञ्जय तिवारी एवं प्रो0 राधेश्याम राय

33. नास्तिकदर्शनेषु प्रमाणमीमांसा 171
चक्रपाणि ओझा एवं प्रो. श्रीकृष्ण त्रिपाठी

34. संस्कृत-साहित्ये काशी 173
डॉ. पवनकुमार शास्त्री

35. शब्दशास्त्रीयपारिभाषिकशब्दविश्लेषणम् 178
डॉ. रमाकान्त पाण्डेयः

36. काव्यप्रकाशदिशा रसविमर्शः 182
नवीन पन्त एवं डॉ. मिताली देव

37. वैष्णवागमस्य स्वरूपविमर्शः 185
प्रो. शीतला प्रसाद पाण्डेयः एवं लेखनाथपौड्यालः

38. Understanding Yoga in Advaita Tradition: An Analytical and Comparative Study 189
Shalini Arora and Prof. S. P. Pandey

39. Donyi-Poloism: An Indigenous Religion of Tani Groups of Arunachal Pradesh, India 195
Kiran Kumari

40. An Equipoise in Human Life: Scanning through New-Fangled Locus in Lawrence's Psychoanalysis and Unconscious 198
Dr. Praveen Kumar Anshuman and Prof. Jai Shankar Jha

41. Microfinance to Promoting Lady Entrepreneurship in India: Problems and Remedial Measures 204
Dr. Amit Agrawal and Dr. Abhishek Kumar Singh

42. Scholars' Perception Towards Open Access Resources: A Survey 213
Dr. P. S. Rajput

43. Dr. Ambedkar's Views on Religious Education 218
Dr. Pramod Kumar and Dr. O. P. Soni

44. Wh Moreland's Study in Historiography of Medieval Indian Economy 222
Dr. Anjali Yadav

45. Deferring Solutions: A Critical Study of Mahesh Dattani's Final Solutions 226
Dr. Santosh Kumar and Virendra Kumar Singh

46. ICT Initiative to Enhance Accessibility and Reachability of Higher Education System in India 232
Dr. Awadesh Kumar

47. Role of Yagya in Reducing Air Pollution 245
Pragya Sahu and Dr. Narendra Shanker Tripathi

48. A Comparative Study of Case in Hindi and German 250
Dr. Prem Niwās Sinhā

49. Review of New Education Policy 2020 (NEP) with Special Reference to Health Education 269
Vishal Gupta and Dr. Vandana Verma

50. Standardization and Evaluation of a Novel Polyherbal Formulation for Krimirog 273
Nandini Pal, Dr. A. K. Kushwaha & Dr. B. M. Kumar

51. *On a Muggy Night in Mumbai:* Urge to Voice the Unvoiced Psyche of Gays 278
Dr. Rajneesh Pandey

52. A Review on Financial Distress Risk 285
Pooja Singh and Dr. Anindita Chakraborty

53. Is Online Digital Payments Sector in India Losing Focus: Do we Need a New Unbrella Entity for Payment System? 292
Dr. Vandana Yadav, Manoj and Dr. Amita Vijay

54. Educational Aspiration in Science Scale for Visually Impaired Students 297
Khushaboo Verma and Dr. G. C. Bhattacharya

55. Representations of Ao-Naga Womanhood in Temsula Ao's *Once Upon a Life: A Memoir* 314
Mehebub Alam and Prof. Maya Shanker Pandey

56. Derogatory Remarks Against Subordinate Judicial Officers: Judicial Trend In India 319
Akhilendra Kumar Pandey

57. **''प्रज्ञा'': नियम एवं निर्देश** 93

आवश्यक सूचना : **''प्रज्ञा''** पत्रिका के इस अंक में छपे हुए सभी लेखों/शोध-प्रपत्रों में व्यक्त विचार लेखकों के स्वयं के विचार हैं। उनसे सम्पादक, प्रकाशक अथवा विश्वविद्यालय प्रशासन का सहमत होना आवश्यक नहीं है।

ग्रामीण भारत में महिलाओं की स्थिति : एक विधिक अध्ययन

*डॉ0 सी0पी0 उपाध्याय**

देश की आधी आबादी की महत्वपूर्ण भूमिका होती है, उनकी समृद्धि देश की समृद्धि की सूचक है। महिलाओं को मुख्यधारा में शामिल किये बगैर देश में सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक न्याय अप्राप्य रहेगा। भारत में प्राचीन काल से ही महिलाओं को सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था। बाद में उनकी स्थिति में थोड़ी गिरावट हुई किंतु ब्रिटिश काल में महिलाओं की स्थिति में सुधार के लिए कुछ प्रयास किये गये। स्वतंत्रता के पश्चात् भी संविधान एवं अन्यविधियों तथा नीतियों एवं योजनाओं के माध्यम से महिला उत्थान का प्रयास किया गया। विशेषकर ग्रामीण क्षेत्र की महिलाएं अज्ञानता एवं अभाव के कारण लाभग्राही नहीं बन पाती हैं। प्रस्तुत पत्र में ग्रामीण महिलाओं के विशेष संदर्भ में निर्मित विधियों एवं योजनाओं का विश्लेषण किया गया है तथा इस संबंध में न्यायपालिका की भूमिका का परीक्षण करने का प्रयास किया गया है।

शोध कुंजी-ग्रामीण महिला, महिला सशक्तीकरण, नारीवाद, संयुक्त राष्ट्र, अभिसमय, महिला सम्मेलन, भेदभाव, लैंगिक न्याय।

प्रस्तावना

महिलाओं की सुदृढ़ एवं सम्मानजनक स्थिति एक उन्नत, समृद्ध व मजबूत समाज का द्योतक है। महिलाएं हमारे देश की आबादी का लगभग आधा हिस्सा हैं।[1] न्यायमूर्ति कृष्णा अय्यर के अनुसार महिलाओं को सम्मिलित किये बगैर सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक न्याय का वचन असंभव तथा अप्राप्य रहेगा।[2] साहित्य के अध्ययन से पता चलता है कि भारत में प्राचीन काल से ही महिलाओं को विधि आदि के द्वारा संरक्षित किये जाने का प्रयास किया जाता रहा है। वैदिक काल में महिलाओं को सम्मान, प्रतिष्ठा व स्वतंत्रता प्राप्त थी, उन्हें पुरुषों के बराबर अधिकार प्राप्त थे। अतः इस काल को महिलाओं का स्वर्णिम काल कहा जाता है। अल्तेकर के अनुसार वैदिक काल महिलाओं के लिए गौरवपूर्ण था। शिक्षा, विवाह, सम्पत्ति आदि के संबंध में उन्हें पुरुषों के समान अधिकार प्राप्त थे।[3] किन्तु तत्पश्चात् महिलाओं की स्थिति एवं दशा में निरन्तर गिरावट होती गई। मुगलों तथा यूरोपीय आक्रांताओं के समय में उनकी स्थिति काफी खराब हुई। ब्रिटिश शासनकाल में महिलाओं की स्थिति में सुधार के लिए कुछ कानून बनें, किन्तु इनकी स्थिति में अधिक सुधार नहीं हो सका। इस काल में महिलाओं की सामाजिक चेतना में थोड़ी वृद्धि हुई। स्वतंत्रता के पश्चात् भारत के संविधान में लैंगिक समानता के सिद्धान्त को सुनिश्चित करने का प्रयास किया गया। भारत में 1970 के दशक में नारीवादी आंदोलनों ने जन्म लिया तत्पश्चात् कई समूहों एवं गैर सरकारी संगठनों ने महिला सशक्तिकरण के लिए योगदान दिया। महिला सशक्तीकरण न केवल राष्ट्रीय बल्कि अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भी 21वीं सदी की सबसे बड़ी चुनौती है। ऐसा प्रतीत होता है कि महिला संबंधी समस्याओं का समाधान महिला सशक्तीकरण है। सशक्तीकरण का तात्पर्य है पुरुषों के साथ समान अवसर का लक्ष्य प्राप्त करने में महिलाओं की सहायता करना तथा महिला व पुरुष के बीच अन्तर कम करना है। 1985 ई0 में तृतीय अंतर्राष्ट्रीय महिला सम्मेलन में कहा गया है कि महिला सशक्तीकरण से तात्पर्य है ''महिलाओं की पुरुषों के बराबर विधिक, राजनैतिक, शारीरिक, मानसिक, सामाजिक एवं आर्थिक क्षेत्रों में उनके परिवार, समुदाय, समाज एवं राष्ट्र की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि में निर्णय लेने की स्वायत्तता।''[4]

राष्ट्र के सामाजिक एवं आर्थिक विकास की अवधारणा ग्रामीण महिलाओं के विकास एवं सशक्तीकरण के बिना अधूरी है। देश की लगभग 70 प्रतिशत महिलाएं गांवों में निवास करती हैं। इसलिए ग्रामीण महिलाओं का उत्थान भारतीय अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण स्थान रखती है।[5] इस कारण ग्रामीण महिला रोजगार एवं उद्यमिता को बढ़ाने के लिए ग्रामीण क्षेत्रों के विकास पर ध्यान देना आवश्यक है। महिला सशक्तीकरण के लिए किए गए प्रयास शहरी अभिजात्य वर्ग की महिलाओं के लिए लाभदायक सिद्ध हुए किंतु ग्रामीण एवं समाज के वंचित क्षेत्र की महिलाओं की दशा में अपेक्षित सुधार नहीं हुआ। भारत में विश्व की सबसे अधिक ग्रामीण महिलाओं की जनसंख्या है। 1 बिलियन जनसंख्या में 127 मिलियन महिलाए हैं जिस में से 106 मिलियन महिलाएं ग्रामीण क्षेत्रों में रहती हैं। जिनकी 96 प्रतिशत संख्या गैर संगठित क्षेत्र में कार्य करती है।[6] ग्रामीण महिलाएं सामाजिक व आर्थिक दृष्टि से ज्यादा वंचित हैं तथा उन क्षेत्रों में कार्यात्मक विधि का अभाव पाया जाता है। उनके सामने आर्थिक विकास से जुड़ी अनेक चुनौतियां हैं। इस प्रकार आधारभूत ढांचे की कमी, असंगठित तथा बिखरी हुई जनसंख्या तथा कठोर सामाजिक मानक ग्रामीण महिलाओं को संगठित होने में कठिनाई पैदा करते हैं। भारत में उच्च स्तर की लैंगिक असमानता[7] यह दर्शाता है कि महिला सशक्तीकरण के मार्ग में अनेक रूकावटें हैं, यथा रूढ़िवादी विचारधारा एवं भेदभाव। इस पृष्ठभूमि में भारत में ग्रामीण महिलाओं के राजनैतिक, सामाजिक तथा आर्थिक सशक्तीकरण पर विचार करना आवश्यक है।

ग्रामीण महिलाएं आर्थिक रूप से कमजोर होने के कारण अपने अधिकारों को लागू करवाने के लिए न्याय का शरण नहीं ले

* प्रोफेसर, विधि संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

पाती हैं। उनकी अशिक्षा उनके प्रगति में बाधक है। विशेषकर तकनीकी शिक्षा के अभाव के कारण उनका विकास अवरुद्ध हो जाता है। ग्रामीण महिलाओं का कुपोषण तथा खाद्य असुरक्षा उनके जीविकोपार्जन को प्रभावित करता है। कुपोषण और समुचित चिकित्सा के अभाव में उनकी अकाल मृत्यु भी हो जाती है। पुरुष प्रधान ग्रामीण समाज तथा पितृसत्तात्मक परिवार की वजह से महिलाओं को पुरुषों की अपेक्षा हीन दृष्टि से देखा जाता है। अशिक्षा एवं जागरूकता का अभाव होने के कारण ग्रामीण महिलाओं को सुरक्षात्मक विधियों एवं लाभकारी योजनाओं एवं कार्यक्रमों की जानकारी नहीं हो पाती है और इससे उनकी स्वायत्तता भी प्रभावित होती है।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

भारत में महिलाओं की वर्तमान स्थिति के अध्ययन हेतु प्राचीनकाल में उनकी स्थिति, अधिकार एवं समस्याओं का अध्ययन करना प्रासंगिक है। ऐतिहासिक अध्ययन की दृष्टि से इसे वैदिककाल मध्यकाल, ब्रिटिश शासन काल तथा स्वतंत्र भारत की स्थिति में विभाजित किया जा सकता है। वैदिक काल में समाज में महिलाओं को सम्मान, प्रतिष्ठा व स्वतंत्रता प्राप्त थी। वैदिक काल को स्त्री गौरव तथा उदारता का काल कहा जा सकता है। उन्हें गुरुकुल में पढ़ने का पुरुषों के समान अधिकार प्राप्त था।[8] वैदिक काल में महिलाओं को पुरुषों के समान अधिकार प्राप्त थे तथा उन्हें अर्धांगिनी कहा जाता था। उन्हें धार्मिक दायित्वों के निर्वाह का पति के समान अधिकार था।[9] स्त्री-पुरुष में भेद नहीं था तथा दोनों की सामाजिक स्थिति समान थी। इस प्रकार भारत में महिलाओं की स्थिति स्वतंत्रता, समानता एवं सहयोग पर आधारित थी।[10] किन्तु उत्तर वैदिक काल में महिलाओं की स्थिति में गिरावट देखने को मिलने लगी।[11] उनके साम्पत्तिक अधिकार घटा दिए गए। पुत्री की अपेक्षा पुत्र को ज्यादा महत्व दिया जाने लगा। जैन तथा बौद्ध धर्म में भी स्त्रियों की यही स्थिति थी।

मध्यकाल तक आते-आते स्त्रियों की दशा और दयनीय हो गई। मुस्लिम आक्रमण के कारण पर्दा प्रथा, बाल विवाह, जौहर प्रथा, तलाक आदि के कारण स्त्रियों की स्थिति दयनीय हो गई। विधवाओं की स्थिति दयनीय थी, प्रायः विधवा विवाह की अनुमति नहीं थी।[12] स्त्री दासी एवं देवदासी प्रथा भी प्रचलित थी जिन्हें उपहारस्वरूप या आराध्यदेवता की सेवा के लिए समर्पित किया जाता था। इस प्रकार मध्यकाल में महिलाओं को पुरुषों से निम्न समझा जाता था तथा सामाजिक तौर पर उन्हें पूर्ण दासता में रखा जाता था। इस प्रकार महिलाओं का स्वतंत्र विकास अवरुद्ध हो गया था।[13]

ब्रिटिश काल में भारतीय समाज में अनेक परिवर्तन हुए। किंतु महिलाओं की स्थिति में अधिक सुधार या प्रगति नहीं हुई। यद्यपि कि सामाजिक चेतना में थोड़ी वृद्धि हुई। उस समय समाज सुधारकों द्वारा महत्वपूर्ण समाज सुधार आंदोलन हुए थे। सती प्रथा, बाल विवाह, विधवा विवाह, बहु विवाह तथा महिलाओं के संपत्ति पर अधिकार आदि को लेकर सुधार आंदोलन हुए। राजा राम मोहन राय, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, महात्मा फूले, अरविन्दो, दयानंद सरस्वती, स्वामी विवेकानन्द, एनी बेसेण्ट आदि ने समाज सुधार में महत्वपूर्ण योगदान दिया।[14] ब्रिटिश शासन ने सती प्रतिषेध अधि0 1929, विधवा पुनर्विवाह अधि0 1856, कन्या हत्या प्रतिबेध अधि0 1870, शारदा अधि0 1929, हिन्दू महिलाओं का संपत्ति अधिकार अधि0 1937 आदि कानून बनाकर महिलाओं की दशा में सुधार करने का प्रयास किया।[15] स्वतंत्रता के पश्चात् भारत के संविधान निर्माताओं ने लैंगिक समानता के सिद्धान्त को भारतीय संविधान के प्रस्तावना, मूल अधिकार तथा नीति निदेशक तत्वों में शामिल किया। महिलाओं की स्थिति में सुधार के लिए अनेक कानून भी बनाए गये। इनमें कुछ महत्वपूर्ण कानून है-अनैतिक व्यापार निवारण अधि0 1956, दहेज प्रतिवेध अधि0 1961, मातृत्व लाभ अधि0 1961, समान पारिश्रमिक अधि0 1976, राष्ट्रीय महिला आयोग अधि0 1990, घरेलू हिंसा से संरक्षण अधि0 2005 आदि।

नारीवाद एवं महिला सशक्तीकरण

नारीवाद शब्द का प्रयोग नारी मुक्ति आंदोलनों के लिए किया जाता है। विभिन्न नारीवादियों के बीच लिंगभेद के कारण एवं निदान को लेकर मतभेद हो सकता है किंतु इस बात को लेकर सभी एकमत हैं कि समाज में महिलाओं की पुरुषों से निम्नतर स्थिति का आधार लिंग है। नारीवादी आंदोलन के अंतर्गत अनेक प्रकार के विचार एवं कार्यक्रम प्रस्तुत किये गये हैं जिनको 4 श्रेणियों में बांटा जा सकता है-उदारवादी, नारीवाद, समाजवादी नारीवाद, उग्रवादी नारीवाद एवं उत्तर आधुनिकतावादी नारीवाद।

उदारवादी नारीवादी बुद्धिजीवियों का ऐसा वर्ग है जो समाज की समस्याओं पर उदारतापूर्वक विचार करते हैं। ये व्यक्तिवाद पर जोर देकर नारी की स्वायत्तता को महत्वपूर्ण मानते हैं। इसके समर्थक आर्थिक-सामाजिक ढांचे को बदलने की पेशकश करते हैं जिससे समाज का ऐसा ढांचा बने जिसमें स्त्री सम्मानपूर्वक रह सके।[16] उदारवादी नारीवाद स्त्री-पुरुष की समानता के सिद्धान्त पर आधारित है। यह राजनैतिक व कानूनी सुधारों के माध्यम से समानता प्राप्त करने की कोशिश करते हैं। यह संस्थागत पूर्वाग्रहों को समाप्त कर अच्छे कानूनों के पालन पर जोर देता है।[17] इनके मुख्य मुद्दे महिला मताधिकार, गर्भपात की सुविधा, प्रजनन का अधिकार, यौन शोषण से मुक्ति, शिक्षा का अधिकार, काम के समान अवसर, समान कार्य के लिए समान वेतन, बच्चों के पालने की सुविधा, घरेलू हिंसा की समाप्ति आदि रहे हें। साथ ही ये पुरुषों और स्त्रियों के लिए बनाए गये अलग मापदण्डों के भी विरोधी थे।[18] उनका मानना था कि मानव होने के नाते स्त्रियों को वे सभी अधिकार मिलने चाहिए जो पुरुष को मिलते हैं। उन्होंने सार्वजनिक जीवन में महिलाओं के अधिकारों की जोरदार सिफारिश की किंतु सामाजिक तौर पर

विनिर्मित असमानता के मुद्दों को संबोधित नहीं किया। उनका मानना था कि सुधारवादी नीतियों के द्वारा ही बदलाव संभव है।[19]

समाजवादी/मार्क्सवादी नारीवाद के अनुसार समाज में वर्ग विभाजन महिला के शोषण का मुख्य कारण है। इनका मानना है कि पूंजीवादी व्यवस्था सामाजिक वर्गीकरण को बढ़ावा देती है और पितृसत्ता पूंजीवाद द्वारा न केवल समर्थन पाती है बल्कि मजबूत भी होती है।[20] अतः लिंगभेद को दूर करने के लिए पूंजीवादी व्यवस्था का उन्मूलन आवश्यक है। इसमें व्यक्तिगत संपत्ति को सार्वजनिक संपत्ति में बदलकर उत्पादन व वितरण प्रणाली पर सर्वहारा का नियंत्रण स्थापित किया जाना चाहिए। इस प्रकार वर्ग विहीन समाज की स्थापना द्वारा लिंगभेद को समाप्त किया जा सकता है। मार्क्स के सहयोगी फ्रेडरिक एंगेल्स ने कहा कि प्रारंभिक समाज में जबकि परिवार की संस्था नहीं थी बंधनमुक्त स्वच्छंद यौन संबंध होते थे। समाज के विकास के साथ यौन सबंध पर प्रतिबंध बढ़ गये। उसके बाद विवाह एवं परिवार नामक संस्था का उदय हुआ। विवाह एवं परिवार ने निजी संपत्ति के उत्तराधिकार की समस्या का समाधान निकाला। पूंजीवाद ने पुरुषों द्वारा संपत्ति पर अधिकार करने की स्थिति पैदा की जो दुनियाभर की महिलाओं की ऐतिहासिक पराजय है।[21] इन्होंने लिंगविषमता का समाधान साम्यवाद में खोजा। सर्वहारा की तानाशाही के संक्रमण काल के बाद मानवीय इतिहास की सर्वोत्तम अवस्था आएगी जिसे साम्यवाद कहते हैं। इसमें निजी संपत्ति की धारणा नहीं रहेगी, घरेलू कार्यों का सामाजिकरण हो जाएगा और महिलाओं की श्रमशक्ति समाज के लिए उपयोगी होगी।

उग्रवादी नारीवाद के अनुसार महिलाओं की यौनिकता एवं उनकी प्रजनन क्षमता दोनों महिलाओं की शक्ति एवं उनके उत्पीड़न की जड़ में होते हैं।[22] इनके अनुसार लिंगभेद का मुख्य कारण पितृसत्तात्मक व्यवस्था है। स्त्री-पुरुष के बीच विभेदीकरण का कोई जीव वैज्ञानिक आधार नहीं है। पुरुष वर्चस्व वाले समाज में स्त्री पर नियंत्रण रखने के लिए कठोर यौन संबंधी नियम और कानून होते हैं। पितृसत्ता के अंतर्गत मातृत्व जबरन कराया गया श्रम है। पुरुष ही इस बात को निर्धारित करता है कि संतान पैदा किया जाये या नहीं, उनका पालनपोषण कैसे हो। इन सब पर पुरुष का नियंत्रण रहा है।[23] पितृसत्ता का फायदा पुरुषों को मिलता है अतः पितृसत्तात्मक व्यवस्था को समूल उखाड़ फेंकना चाहिए।[24]

उत्तर आधुनिकतावाद, आधुनिकतावाद के बाद आया तथा उसकी आलोचना के रूप में जाना जाता है। यह आधुनिकतावाद के बुद्धिवाद, व्यक्तिवाद तथा सार्वभौमिकतावाद जैसे मूलभूत सिद्धान्तों की आलोचना करते हुए अस्वीकार करता है। यह सत्य, संस्कृति, बुद्धि यथार्थ की विभिन्नता को स्वीकार करता है तथा प्रत्येक वर्ग, जाति, लिंग, संस्कृति को समान रूप से प्रतिनिधित्व की मांग करता है।[25]

आधुनिक नारीवादियों ने शारीरिक एवं जैवीय समानता के आधार पर समस्त संसार की स्त्रियों के लिए सार्वभौमिक नियमों को प्रतिपादित किया। उत्तर आधुनिकतावाद ऐसा नहीं मानता कि शारीरिक बनावट एक जैसा होने के कारण उनका सांस्कृतिक एवं राजनैतिक हित भी एक जैसा हो। बल्कि उनका विभाजन वर्ग, जाति, राष्ट्रीयता और सांस्कृतिक प्रचलनों के आधार पर होना चाहिए। इन्होंने मात्र शरीर केंद्रित ही नहीं वरन् समाज व संस्कृति केन्द्रित अध्ययन की बात स्वीकारी है।[26] इसकी आलोचना करते हुए कहा गया है कि यह एक प्रकार का नवीन अधिनायकवाद अथवा पूंजीवाद है जिसका स्वरूप आर्थिक न होकर सांस्कृतिक है।[27]

भारत में नारीवादी दृष्टिकोण पर पाश्चात्य देशों के नारीवादी विचारधारा का प्रभाव रहा है। भारत में पितृसत्ता अत्यधिक जटिल ताने-बाने के साथ उपस्थित है। अतः पाश्चात्य नारीवाद के मुद्दे भारत जैसे देश के लिए महत्त्वपूर्ण नहीं थे।[28] भारत में नारीवाद पर विचार करते समय भारत के विभिन्नता को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है। वर्तमान भारतीय नारीवाद नारी के साथ ही उन सभी दलित एवं शोषित तबकों की बात करता है जो हाशिए पर थे। यह मानता है कि स्वयं नारीवादी आंदोलन के अंतर्गत कई धाराएं एक साथ काम कर सकती हैं, भले ही उनके रास्ते अलग हैं पर गन्तव्य एक ही है।[29]

महिला सशक्तीकण : अंतर्राष्ट्रीय परिदृश्य

महिलाओं के समानता के लक्ष्य को प्राप्त करने में वैश्वीकरण ने नई चुनौतियां पैदा की हैं। ग्रामीण विकास से जुड़े मुख्य पहलू में कृषि का वाणिज्यीकरण, कृषि उद्योग का विस्तार, खाद्य एवं कृषि उत्पादों के लिए अंतर्राष्ट्रीय व्यापार का उदारीकरण, श्रमिकों का प्रवजन, संसाधनों एवं सेवाओं का बढ़ता निजीकरण, सूचना एवं संचार तकनीक का व्यापक प्रयोग शामिल है। अपर्याप्त आय, शिक्षा की कमी, लैंगिक असमानता जनित अपोषण एवं कुपोषण महिलाओं की दयनीय स्थिति को दर्शाते हैं।[30] ध्रुवीकरण की एक प्रवृत्ति है पंजीकरण प्रक्रिया द्वारा संपत्ति का निजीकरण करना। इस प्रक्रिया में महिलाओं के भौमिक अधिकार को समुदाय के सदस्यों द्वारा इन्कार कर दिया जाता है।[31] इस प्रकार उनकी ऋण सुविधा भी सीमित मात्रा में प्राप्त है।[32] निजीकरण की प्रवृत्ति से न केवल भौमिक अधिकार प्रभावित होते हैं बल्कि सार्वजनिक वस्तुओं जैसे जल, जंगल तक पहुंच भी प्रभावित होता है।[33] कृषि उद्यम एवं औद्योगीकरण ने स्वनियोजन तथा ग्रामीण उद्योगों की स्थापना द्वारा महिलाओं की नकद आय में वृद्धि की तथा निर्णय में उनकी भागीदारी बढ़ी। ध्रुवीकरण में महिला श्रम पर निर्भरता की वजह से शिक्षा के क्षेत्र में पिछड़ जाती हैं। किन्तु विकेन्द्रीकरण द्वारा हुए राजनैतिक बदलाव ने नया क्षेत्र प्रदान किया। श्रम चलायमानता वृद्धि होने से घरेलू संरचना में परिवर्तन होता है और परिवार में महिलाओं की स्थिति मजबूत होती है। सूचना एवं संचार तकनीक तक पहुंच तथा इसके प्रभावशाली प्रयोग द्वारा महिलाओं की नेतृत्व क्षमता तथा सामुदायिक एवं आर्थिक विकास में सहभागिता को सुधारा जा सकता है।[34]

महिलाओं के संरक्षण के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ के द्वारा भी समय-समय पर प्रावधान किया गया है। संयुक्त राष्ट्र चार्टर की उद्देशिका में कहा गया है कि-''हम संयुक्त राष्ट्र के लोग.... पुरुषों व महिलाओं के समान अधिकारों में निष्ठा व्यक्त करते हैं....।[35] चार्टर में यह प्रावधान किया गया है कि संयुक्त राष्ट्र अपने सभी अंगों में पुरुषों व महिलाओं में समानता के आधार पर भाग ले सकेंगे और संगठन इस पर कोई प्रतिबंध नहीं लगाएगा।[36] इसके अतिरिक्त संयुक्त राष्ट्र ने महिलाओं की प्रस्थिति पर एक आयोग का गठन किया। इसके आर्थिक एवं सामाजिक परिषद का कार्यकारी आयोग कहा जाता है। मानवीय अधिकारों के संयुक्त राष्ट्र कमीशन की भांति, महिलाओं की प्रस्थिति पर कमीशन स्वयं अपने प्रस्ताव पारित करता है तथा आर्थिक एवं सामाजिक परिषद द्वारा स्वीकार किये जाने हेतु प्रारूप प्रस्ताव एवं घोषणाओं की संस्तुति करता है। प्रत्येक सत्र के पश्चात् आयोग परिषद को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करता है।[37] यह आयोग महिलाओं के विकास से जुड़ी अंतर्राष्ट्रीय एवं राष्ट्रीय संस्थाओं के बीच समन्वय स्थापित करता है।

मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा के समस्त अधीकार महिला एवं पुरुष दोनों को समान रूप से प्राप्त हैं।[38] महिला एवं पुरुष दोनों को पूर्ण एवं स्वतंत्र सम्मति से विवाह करने और परिवार स्थापित करने का अधिकार है। प्रत्येक व्यक्ति समान कार्य के लिए बिना किसी भेदभाव के समान वेतन पाने का अधिकारी है।[39] इसके लिए महासभा ने महिलाओं के राजनीतिक अधीकार अभिसयम, 1952 पारित किया। इस अभिसमय के अनुसार महिलाएं सभी चुनाव में मतदान करने, चुने जाने, लोकपद धारण करने तथा सभी लोककार्य करने में बिना किसी भेदभाव के पुरुषों के समान अधिकारी होंगी।''[40] महिलाओं को पुरुषों के समान राष्ट्रीयता प्रदान करने के उद्देश्य से महिला राष्ट्रीयता अभिसमय पारित किया गया। इसमें महिलाओं के राष्ट्रीयता अर्जित करने एवं खो जाने संबंधी प्रावधानों तथा पति के राष्ट्रीयता परिवर्तन पर पुरुषों के समान अधिकार प्राप्त करने का प्रावधान है।[41] सिविल एवं राजनैतिक अधिकारों की प्रसंविदा के राज्य पक्षकार यह संकल्प लेते है कि प्रसंविदा में उल्लिखित सभी अधिकारों के उपयोग का समस्त पुरुषों एवं स्त्रियों को समान अधिकार होगा। कानून की नजर में सभी महिला एवं पुरुष बराबर हैं और उन्हें बिना किसी भेदभाव के कानूनी संरक्षण प्रदान किया जाएगा।[42] आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक अधिकारों की अंतर्राष्ट्रीय प्रसंविदा के अनुसार सभी राज्य पक्षकार सुनिश्चित करने का वचन देते हैं कि प्रसंविदा में दिये गये सभी सामाजिक, आर्थिक, और सांस्कृति अधिकार का उपयोग महिला एवं पुरुष समान रूप से कर सकेंगे।[43]

संयुक्त राष्ट्र महासभा ने 18 दिसम्बर 1979 को 'महिलाओं के विरुद्ध सभी प्रकार के भेद भाव की समाप्ति पर अभिसमय स्वीकार किया गया। इसे सेडॉ (सी0ई0डी0ए0डब्ल्यू0) के नाम से भी जाना जाता है। इस अभिसमय को महिला अधिकारों की दिशा में मील का पत्थर माना जाता है।[44] पक्षकार राज्यों से अपेक्षा की गई है कि महिलाओं के विरुद्ध सभी प्रकार के भेदभाव की निंदा करेंगे और यदि कोई भेदभाव है तो अविलम्ब उसे समाप्त करने का कदम उठायेंगे। सेडॉ के अनु0 14 में विशेषकर ग्रामीण महिलाओं के अधिकारों का वर्णन किया गया है और ग्रामीण क्षेत्र की महिलाओं के प्रति भेदभाव समाप्त कर उन्हें पुरुषों के समान स्थान दिलाने के लिए विशिष्ट उपाय अपनाने की बात कई गई है। राज्य पक्षकार ग्रामीण महिलाओं की विशेष समस्याओं पर तथा अपने परिवार की आर्थिक रक्षा एवं गैर आर्थिक क्षेत्र में उनके कार्य पर विचार करेंगे। सेडॉ को महिलाओं हेतु अधिकार पत्र के रूप में स्वीकार किया गया है, किंतु विश्व की कम ही महिलाओं को उनको प्रदत्त अधिकार के विषय में पता है।

महिलाओं के विरुद्ध हिंसा पुरुषों एवं महिलाओं के मध्य ऐतिहासिक असमान शक्ति संबंधों का प्रतीक है जिनके कारण पुरुष द्वारा महिला के ऊपर प्रभुत्व जताया जाता है। महिलाओं के विरुद्ध हिंसा उन्मूलन के लिये अंतर्राष्ट्रीय समुदाय की सामूहिक वचनबद्धता के तहत् 'महिलाओं के विरुद्ध हिंसा उन्मूलन पर घोषणा 1993 पारित किया गया।[45] इस घोषणा के द्वारा राज्यों को महिलाओं के विरुद्ध हिंसा की भर्त्सना करनी चाहिए और सभी उचित उपायों द्वारा महिलाओं के विरुद्ध हिंसा उन्मूलन की नीति अपनानी चाहिए। इसके अतिरिक्त महासभा ने 8 अक्टूबर 1991 को महिलाओं के विरुद्ध सभी रूपों में भेदभाव की समाप्ति के लिए अभिसमय पर ऐच्दिक नवाचार को अंगीकार किया जिससे लैंगिक भेदभाव, यौन शोषण एवं अन्य दुरुपयोग से पीड़ित महिलाओं को सुरक्षा प्रदान की जा सके।[46] संयुक्त राष्ट्र महासभा ने लैंगिक समानता और महिला सशक्तीकरण के लिए एक संयुक्तराष्ट्र महिला निकाय का गठन जुलाई 2010 में किया। इससे संयुक्त राष्ट्र के सदस्य राज्यों ने लैंगिक समानता और महिला सशक्तीकरण के अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए ऐतिहासिक कदम उठाया है।

महिलाओं की भारतीय विधिक व्यवस्था में प्रास्थिति

संविधान निर्माताओं ने महिलाओं को न केवल समानता का दर्जा दिया वरन् उनके सुरक्षा एवं उत्थान के लिए विधानमण्डल द्वारा नए-नए कानून भी बनाए गए। संविधान की उद्देशिका से स्पष्ट है कि भारत का संविधान भारत में समतामूलक समाज की स्थापना के लिए वचनबद्ध है। उद्देशिका में प्रयुक्त वाक्यांश हम भारत के लोग स्त्री एवं पुरुष दोनों को शामिल करता है। पुनः राज्य भारत क्षेत्र में किसी व्यक्ति के विधि के समक्ष समता से या विधियों के समान संरक्षण से वंचित नहीं करेगा।[47] इसको और स्पष्ट करते हुये कहा गया है कि लिंग के आधार पर राष्ट्र किसी भी नागरिक के विरुद्ध भेदभाव नहीं करेगा।[48] संविधान द्वारा पुरुष एवं महिला दोनों को शोषण के विरुद्ध सुरक्षा प्रदान करते हुए महिलाओं को दुर्व्यापार, बेगार तथा बलात् श्रम को प्रतिषिद्ध किया गया है।[49] नीतिनिदेशक तत्वों द्वारा महिलाओं को समुचित सामाजिक एवं

आर्थिक न्याय दिलाने के लिए जीवन निर्वाह के साधन जुटाने तथा समान कार्य के लिए समान वेतन देने का निर्देश दिया गया है।[50] राज्य का यह भी दायित्व होगा कि वह काम की मानवोचित दशाओं को सुनिश्चित करने तथा प्रसूति सहायता के लिए उपबंध करेगा।[51] संविधान में नागरिकों को मूल कर्तव्य के रूप में प्रावधान है कि सभी नागरिकों का कर्तव्य है कि ऐसी प्रथाओं का त्याग करें जो स्त्रियों के सम्मान के विरुद्ध हो। महिलाओं के राजनैतिक सशक्तीकरण हेतु तथा नीति निर्माण में उनकी सहभागिता सुनिश्चित करने के लिए पंचायतों एवं नगरपालिकाओं में 1/3 सीटें महिलाओं के लिए आरक्षित किए जाने का प्रावधान है।[52]

संवैधानिक सुरक्षा के अतिरिक्त अन्य विधायनों द्वारा भी महिलाओं के हितों को संरक्षित करने का प्रयास किया गया है। घरेलू हिंसा से सुरक्षा दिलाने के लिए अधिनियम पास किया गया।[53] यदि किसी महिला को शारीरिक या मानसिक क्षति पहुंचाई जाती है या उसका शारीरिक, लैंगिक, मौखिक और भावनात्मक दुरुपयोग किया जाता है तो उसे पुलिस अधिकारी या मजिस्ट्रेट के यहां शिकायत करके उपचार पाने का अधिकार होगा। दहेज समाज की एक भयावह समस्या है जिसके कारण महिलाओं एवं लड़कियों को भार समझा जाता है। दहेज की समस्या के निदान के लिए भी कानून बनाया गया।[54] यदि गर्भवती महिला स्वेच्छा से गर्भ का समापन करवाना चाहती है क्योंकि उसके जीवन को खतरा है या उसे शारीरिक या मानसिक क्षति की संभावना है तो उसे चिकित्सकीय परामर्श से गर्भ समापन करने का अधिकार है।[55]

बाल विवाह का सीधा असर महिलाओं के शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य पर पड़ता है। अतः बाल विवाह रोकने के लिए बाल विवाह अवरोध अधि0 1929 पारित किया गया।[56] महिलाओं को वस्तु मानकर उसके बाजारीकरण को रोकने के लिए कानून बनाया गया। इसका उद्देश्य विज्ञापन, प्रकाशन, लेखन, चित्रकारिता, रेखांकन या किसी अन्य रीति से महिलाओं के अशिष्ट प्रस्तुति को प्रतिबंधित तथा दण्डित किया जाना है।[57] इसी प्रकार नारियों के क्रय-विक्रय को समाप्त करने के लिए तथा अनैतिक व्यापार संबंधी कार्यों को रोकने के लिए अधिनियम बनाया गया।[58] महिला एवं पुरुष के बीच भेदभाव कम करने के लिए तथा समान कार्य के लिए समान वेतन सुनिश्चित करने के लिए समान पारिश्रमिक अधिनियम पास किया गया।[59]

महिलाओं की स्थिति को सुदृढ़ करने के लिए वैयक्तिक विधियों में भी अनेक प्रावधान किये गये हैं। वैध विवाह की आवश्यकताओं तथा विवाह विच्छेद के आधारों का विस्तृत वर्णन हिन्दू विवाह अधि0 1955 में मिलता है। महिलाओं को पुरुषों के बराबर उत्तराधिकार में संपत्ति प्राप्त करने का अधिकार दिया गया है। वह पुरुषों की तरह सहदायिक बन सकती हैं।[60] महिलाओं को पुरुषों के बराबर दत्तक लेने एवं देने के संबंध में अधिकार दिया गया है। साथ ही उसे पति से भरण-पोषण प्राप्त करने का भी अधिकार दिया गया है।[61] हिन्दुओं की तरह मुस्लिम महिलाओं को भी तलाक एवं भरणपोषण संबंधी अधिकार प्रदान करने हेतु विधि बनाई गई साथ ही तीन बार तलाक बोलकर तलाक लेने की प्रथा को भी दण्डनीय बनाया गया है।[62]

महिला उत्थान में न्यापालिका की भूमिका

न्यायपालिका लोकतंत्र का तीसरा स्तम्भ है। यह भारतीय संविधान का संरक्षक है। न्यापालिका ने अपने निर्णयों द्वारा सरकार को महिला सशक्तीकरण की दिशा में विधि, नीति, कार्यक्रम एवं योजनाएं बनाने के लिए बाध्य कर दिया। न्यायपालिका के प्रयासों से महिलाएं रूढ़िवादी पितृसत्तात्मक समाज के बंधनों से धीरे-धीरे मुक्त हो रहे हैं। महिलाएं सामाजिक भेदभाव, हिंसा, बलात्कार, दहेज उत्पीड़न, कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न, तलाक, भरण-पोषण और अनैतिक व्यापार आदि के विरुद्ध न्याय प्राप्त करने के लिए न्यायपालिका की शरण में आती हैं। भारतीय न्यायपालिका महिलाओं की समस्याओं को लेकर अत्यंत संवेदनशील हैं। बदलते परिवेश में न्यायपालिका ने अपने विधिक एवं संवैधानिक दायित्वों का निर्वहन तथा महिलाओं के हित संवर्धन के दायित्व निर्वहन में विशेष रुचि दर्शायी है।

1985 में शाहबानों[63] के मामले में दिया गया सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय महिला सशक्तीकरण की दिशा में सर्वोच्च न्यायालय का महत्वपूर्ण कदम था। न्यायालय ने धारित किया कि दं0प्र0सं0 की धारा 125 में प्राप्त भरण-पोषण का अधिकार एक परिनियमित अधिकार है और वैयक्तिक विधि से विरोध की स्थिति में उस पर अभिभावी होगा। पुनः शबाना बानो ब0 इमरान खान[64] के मामलों में उच्चतम न्यायालय ने शाहबानों, डेनियल लतीफी और इकबाल बानों के मामलों में दिये गये सिद्धांत को दुहराते हुए धारित किया कि मुस्लिम महिला अपने पति से तब तक भरणपोषण का दावा करने की हकदार होगी जब तक वह पुनर्विवाह नहीं करती है।

कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न को रोकने के लिए अपने क्षेत्राधिकार से बाहर जाकर 'न्यायिक सक्रियता' का परिचय देते हुए उच्चतम न्यायालय ने विशाखा[65] के मामले में मार्गदर्शक सिद्धान्त प्रतिपादित किया। उच्चतम न्यायालय द्वारा दिये गये मार्गदर्शक निर्देशों पर संसद ने 2013 में कानून बनाया।[66] एपारल एक्सपोर्ट प्रमोशन काउन्सिल बनाम ए0के0 चोपड़ा[67] के मामले में न्यायालय ने कहा कि कार्यस्थल पर यौन शोषण की प्रत्येक घटना से महिला कर्मचारी के अनु0 21 और 14 में प्रदत्त मूल अधिकारों का उल्लंघन होता है और उसे रोकने का पूरा प्रयास किया जाना चाहिए।

समान कार्य के लिए समान वेतन के सिद्धान्त को न केवल नियमित कर्मचारियों बल्कि दैनिक मजदूरी पर कार्य करने वाले श्रमिकों पर भी लागू करते हुए सर्वोच्च न्यायालय ने धीरेन्द्र चमोली ब0 उत्तर प्रदेश राज्य के वाद में धारित किया कि दैनिक मजदूर भी

समान कार्य करते हैं अतः उनका वेतन समान होगा अन्यथा अनु0 14 का अतिक्रमण माना जाएगा। लिंग पर आधारित भेदभाव को समाप्त करते हुए सुप्रीम कोर्ट ने उत्तराखण्ड महिला कल्याण परिषद ब0 उ0प्र0 राज्य[68] के वाद में कहा कि हमारी संवैधानिक व्यवस्था में महिला एवं पुरुष अध्यापकों के बीच भेदभाव के लिए कोई स्थान नहीं है और महिलाओं को पुरुषों के समान वेतन एवं पदोन्नति का समान अवसर प्रदान करने का आदेश जारी किया।

महिलाओं के साथ बलात्कार की घटनाएं प्रायः घटित होती हैं। ऐसी घटनाओं को रोकने के लिए उच्चतम न्यायालय ने कठोर दिशा-निर्देश जारी किए हैं। बलात्कार के मामले में न्यायालय ने कहा कि पीड़िता को सहअपराधी नहीं माना जा सकता है और उसके द्वारा दिया गया बयान ही पर्याप्त है।[69] पंजाब शासन ब0 गुरमीत सिंह एवं अन्य[70] के वाद में उच्चतम न्यायालय ने कहा कि बलात्कार के मामले में न्यायालय को अधिक संवेदनशीलता बरतनी चाहिए। पीड़िता का कथन महत्त्वपूर्ण है और छोटे-मोटे अंतर्विरोधों एवं त्रुटियों को नजर अन्दाज करना चाहिए। इससे भी एक कदम आगे जाकर न्यायालय ने रंजीत हजारिका ब0 असम सरकार[71] के मामले में निर्णय दिया कि गुप्तांग पर घाव का निशान न होना या कौमार्यभंग न होने के आधार आरोपी को दोषमुक्त नहीं किया जा सकता है क्योंकि इस आधार पर पीड़िता के साक्ष्य को झुठलाया नहीं जा सकता है। दिल्ली घरेलू कामकाजी महिला फोरम ब0 भारत संघ[72] के वाद में उच्चतम न्यायालय ने यौन अपराध के प्रति गंभीर चिंता व्यक्त करते हुए ऐसे मामलों के शीघ्र परीक्षण तथा उनको प्रतिकर एवं पुनर्वास हेतु विस्तृत मार्गदर्शक सिद्धान्त प्रतिपादित किया जिससे प्रतिकरात्मक विधिशास्त्र का जन्म हुआ। इसी कड़ी में न्यायालय ने चेयरमैन रेलवे बोर्ड ब0 चन्द्रिमा दास[73] के मामले में अनु0 21 द्वारा प्रदत्त मूल अधिकार का उल्लंघन मानते हुए पीड़िता को 10 लाख रु0 प्रतिकर देने का आदेश दिया। निर्भया बलात्कार के पश्चात् जस्टिस वर्मा ने बलात्कार एवं यौन हिंसा के अपराधों पर अंकुश लगाने के लिए कठोर विधि बनाने के सिफारिश की है।

लैंगिक न्याय एवं समानता के संदर्भ में न्यायपालिका ने महिलाओं के अधिकारों की रक्षा करके समाज सुधारक की भूमिका अदा की है। महिलाओं की स्थिति सुधारने के लिए न्यायपालिका के योगदान को न्यायिक निर्णयों के माध्यम से समझा जा सकता है। गौरव जैन ब0 भारत संघ के वाद में न्यायालय ने कहा कि महिलाओं का सामाजिक आर्थिक सशक्तीकरण राज्य का संवैधानिक कर्तव्य है। रनधीर सिंह ब0यूनियन ऑफ इंडिया[74] के वाद में समान कार्य के लिए समान वेतन का नियम महिला एवं पुरुष दोनों के लिए लागू किया गया। स्टेट ऑफ महाराष्ट्र ब0 मधुकर नारायन[75] के वाद में न्यायालय ने अनु0 21 का संदर्भ देते हुए कहा कि बुरे चरित्र की महिला को भी निजता का अधिकार है।

इसी प्रकार सी0ई0एच0ए0टी0 ब0 भारत संघ[76] के वाद में न्यायालय ने कन्या भ्रूण हत्या रोकने के लिए केंद्र व राज्य सरकारों को सख्त दिशा-निर्देश दिया।

निष्कर्ष

उपरोक्त परिचर्चा से स्पष्ट है कि देश के सामाजिक-आर्थिक विकास के लिए ग्रामीण महिलाओं का राजनैतिक एवं आर्थिक सशक्तीकरण आवश्यक है। महिलाओं का सशक्तीकरण जीवन के सभी क्षेत्रों में सतत् विकास, पारदर्शी एवं उत्तरदायी सरकार एवं प्रशासन के लिए आवश्यक है। भारत में प्राचीन काल से ही महिलाओं को विधि द्वारा संरक्षित करने का प्रयास किया जाता रहा है। वर्तमान में भारत में नारीवादी अवधारणा यह है कि समाज की विभिन्नता पर आधारित ग्रामीण नारीवादी दृष्टिकोण अपनाने की आवश्यकता है। महिला सशक्तीकरण के लिए संयुक्त राष्ट्र ने लैंगिक समानता के सिद्धान्त को समाहित किया है। परंतु ग्रामीण महिलाओं के सशक्तीकरण के लिए अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर अभिसमय की आवश्यकता है तथा उसका प्रभावी क्रियान्वयन सुनिश्चित करने के लिए अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर जागरूकता पैदा करने की आवश्यकता है। भारत में ग्रामीण महिलाओं के संरक्षण के लिए कोई कानून नहीं बनाया गया है। जो भी कानून बने हैं उनका लाभ शहरी एवं संभ्रान्त महिलाओं को ही प्राप्त हो रहा है। जागरूकता एवं संसाधनों के अभाव में महिलाएं न्याय भी नहीं प्राप्त कर पाती हैं। अतः ग्रामीण महिलाओं के लिए सरल व सस्ता न्याय उपलब्धता सुनिश्चित किया जाना चाहिए। भारतीय न्यायपालिका ने इस दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है, लैंगिक न्याय के मुद्दे पर सकारात्मक दृष्टिकोण अपनाते हुए महिला सशक्तीकरण को बढ़ावा दिया है। आज भी महिलाओं की 70 प्रतिशत जनसंख्या गाँवों में रहती है जिसकी सामाजिक व आर्थिक स्थिति कमजोर है। अतः महिला कल्याण से जुड़े कानूनों को ग्रामीण परिवेश पर आधारित किये जाने की आवश्यकता है। सारांशतः कहा जा सकता है कि महिला सशक्तीकरण 21वीं सदी का सबसे गंभीर विषय है। महिलाएं देश की अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। निसंदेह सरकार ने महिलाओं के लिए कई योजनाएं एवं नीतियां बनाई हैं, किंतु उनका कठोर कार्यान्वयन भी अति आवश्यक है। इसके लिए उपयुक्त परिवेश हेतु जागरूकता आवश्यक है यह दायित्व राज्य, विधानमंडल एवं न्यायपालिका सभी का है। इस विषय में न्यायमूर्ति कृष्णा अय्यर का कथन उल्लेखनीय है कि महिलाओं को विकास की मुख्यधारा में शामिलकर, सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक न्याय के लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. भारत की जनगणना 2011, भारत में कुल महिलाओं की जनसंख्या 48.53 प्रतिशत है।
2. विश्व एवं महिला न्याय, मुरलीधर चन्द्रकांत भंडारे (संपा0) (हर-आनन्द पब्लिकेशन्स प्रा0लि0, नई दिल्ली, 2007), पृ0 150

3. ए0एस0 अल्तेकर, हिन्दू सभ्यता में महिलाओं की स्थिति (मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स, दिल्ली, 2009, पृ0 576 पर।
4. कमलेश कुमार गुप्ता, महिला सशक्तीकरण (बुक इन्क्लेव, जयपुर, 2005), पृ0 1
5. भारत की जनगणना 2011 के अनुसार ग्रामीण महिलाओं की जनसंख्या 69.8 प्रतिशत तथा शहरी महिलाओं की संख्या 30.2 प्रतिशत है।
6. सोनिया मुदूर, ए रिपोर्ट ऑन द फोर्थ वर्ल्ड कांग्रेस ऑफ रूरल वीमेन एण्ड प्री कांग्रेस स्टडी दूर, रूरल वीमेन्स नेटवर्क, एन0एस0डब्ल्यू, डी0पी0आई0 2007, पृ0 10
7. 2011 की जनगणना के अनुसार लैंगिक भेदभाव के मामले में 149 देशों में 129वां स्थान प्राप्त था।
8. अथर्ववेद 11/5/18
9. ऋग्वेद 8/31/3
10. ए.ए. मैक्डानल तथा ए0बी0 कीथ, वैदिक इन्डेक्स (2 वाल्यूम, जानमुरे, लंदन 1912)
11. पी0वी0 काणे, हिस्ट्री ऑफ धर्मशास्त्रा, वाल्यूम-V, पार्ट-I, भण्डारकर ओरिएण्टल रिसर्च इंस्टीट्यूट पूना, 1974), पृ0 576
12. लइक अहमद, मध्यकालीन भारतीय संस्कृति (शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद 2010), पृ0 188
13. नीरा देसाई, वीमेन इन माडर्न इंडिया (वोरा एण्ड के0, बाम्बे 1957), पृ0 29।
14. नारी देसाई एण्ड मैत्रेयी कृष्णाराज, वीमेन एण्ड सोसायटी इन इंडिया, (अजन्ता पब्लिकेशस न्यू डेल्टी, 1987)ए पृ0 38
15. ममता राव, ला रिलेटिंग टू वीमने एण्ड चिल्ड्रेन (ईस्टर्न बुक मं0 लखनऊ 2008), पृ0 22
16. बी0एन0 सिंह एवं जनमेजय सिंह, नारीवाद (रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर, 2012), पृ0 266
17. गोपा जोशी, भारत में स्त्री असमानता, हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दि0वि0 दिल्ली, 2011, पृ0 38
18. तदैव,
19. साधना आर्य, निवेदिता मेनन एवं जिनी लोकनीता, नारीवादी राजनीति : संघर्ष एवं मुद्दे हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दि0वि0वि0 दिल्ली, 2001, पृ0 26-27
20. लिज केनेड एवं जून लैपिडस, ''कैपिटलिस्ट पैट्रियार्की एण्ड द केस फार सोशलिस्ट फेमिनिजम बाई जिला आइंस्टीन, ''फेमिनिस्ट स्टडीज, वाल्यूम 6, नं0 3, आटम, 1980, पृ0 571
21. बंदा करात, भारतीय नारी : संघर्ष एवं मुक्ति (ग्रंथ शिल्पी (इंडिया) प्रा0लि0, 2008), पृ0 49
22. पूर्वोक्त, नोट-19, पृ0 40
23. तदैव
24. तदैव
25. जियाउद्दीन सरदार, पोस्टमाडनिज्म एण्ड द अदर : न्यू इम्पीरियलिज्म ऑफ वेस्टर्न कल्चर (लंदन, प्लूटो प्रेस, 1998), पृ0 8
26. उपासना पाण्डेय, उत्तर आधुनिकतावाद एवं गांधी (रावत पब्लिकेशन, जयपुर, 2007), पृ0 102
27. फ्रेडरिक जेम्सन, पोस्ट माडनिज्म : आर द कल्चरल लाजिक ऑफ लेट कॅपिटलिज्म (वर्सो पब्लिकेशन, लंदन, 1991)
28. पश्चिमी नारीवाद व भारतीय नारीवाद उपलब्ध है-एचटीटीपी//फेमिनिस्ट पोएम्स आर्टिकल्स, ब्लास्पाट.इन/2010/10/(11.6.2013 को एक्सेस)
29. तदैव
30. 'हाउस होल्ड फूड सेक्योरिटी, इम्प्लीमेंटेशन फार पॉलिसी एण्ड ऐक्सन फार रूरल पार्टी एलिविएशन एण्ड न्यूट्रीसन, आईएफ0एडी, 1996
31. ''ए जेंडर पर्सपेक्टिव आन लैंड राइट्स : इक्वल फूटिंग'' एफ0ए0ओ0 2005
32. ''जेन्डर इक्वेलिटी : स्ट्राइविंग फार जस्टिस इन एन अनइक्वल वर्ल्ड' यूनाइटेड नेशंस रिसर्च इंस्टीच्यूट फार सोशल डेवलपमेंट (यूनाइटेड नेशंस पब्लिकेशन सेल्स)
33. 'जेंडर एण्ड प्रापर्टी राइट्स : एन ओवरव्यू' वर्ल्ड डेवलपमेंट वाल्यूम 25, नं0 8, 1997
34. सामाजिक एवं आर्थिक परिषद् का प्रस्ताव, सं0 2003/44
35. संयुक्त राष्ट्र चार्टर की उद्देशिका
36. तदैव, अनु0 8
37. एस0के0 कपूर, मानव अधिकार (सी0एल0ए0 इलाहाबाद, 2005), पृ0 16
38. मानवाधिकारों की सार्वभौतिक घोषणा 1948, अनु0 2
39. तदैव, अनु0 23(2)
40. महिलाओं के राजनैतिक अधिकारों पर अभिसमय 1952, अनु0 1,2,3
41. विवाहित महिलाओं की राष्ट्रीयता पर अभिसमय, 1957 की उद्देशिका।
42. सिविल एवं राजनैतिक अधिकारों की प्रसंविदा 1966, अनु0 26
43. आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक अधिकारों की अंतर्राष्ट्रीय प्रसंविदा, 1966, अनु0 292)
44. कान्वेंशन ऑन एलिमिनेशन ऑफ आल टाईप्स ऑफ डिस्क्रेमिनेशन अंगेस्ट वूमेन, 1979
45. डेवॉ (डिक्लेयरेशन आन द एलिनमिनेशन ऑफ वायलेंस अगेन्स्ट वूमेन, 1993), महासभा प्रस्ताव सं0 48/104, 20 दिस0 1993
46. महिलाओं के विरुद्ध भेदभाव की समाप्ति पर समिति के लिए ऐच्छिक नवाचार, 1999, अनु0 03
47. भारत का संविधान, अनु0 14
48. तदैव, अनु0 15
49. तदैव, नु0 23
50. तदैव, अनु0 39
51. तदैव, अनु0 42
52. संविधान के 73वें संशोधन अधि0 1992 द्वारा।
53. घरेलू हिंसा से महिाओं का संरक्षण अधिनियम, 2005

54. दहेज प्रतिबेध अधि0 1961
55. गर्भ का चिकित्सकीय परिसमापन अधि0 1971
56. इसे शारदा एक्ट भी कहा जाता है।
57. महिलाओं का अशिष्ट प्रस्तुतीकरण (प्रतिबेध) अधि0 1986
58. अनैतिक व्यापार (निवारण) अधि0 1956
59. समान पारिश्रमिक अधि0 1976
60. हिन्दू उत्तराधिकार (संशोधन) अधि0 2005
61. हिन्दू दत्तक एवं भरणपोषण अधि0 1956
62. मुस्लिम महिला (विवाह संबंधी अधिकारों का संरक्षण) अधि0 2019
63. मो0 अहमद खाँ ब0 शाहबानो बेगम, ए0आई0आर0 1985, एस0सी0 945
64. (2010)2, उम0नि0प0 100
65. विशाखा एवं0 अन्य ब0 राजस्थान राज्य एवं अन्य (1997) 4 उम0नि0प0 71
66. कार्यस्थल पर लैंगिक उत्पीड़न (निवारण, प्रतिबेध एवं प्रतितोष) अधि0 2013
67. ए0आई0आर0 (199) एस0सी0 625
68. ए0आई0आर0 1992 एस0सी0 1965
69. महाराष्ट्र शासनन ब0 चन्द्रप्रकाश जैन (1990), एस0सी0सी0 550
70. (1996)2 एस0सी0सी0 384
71. (1998) 8 एस0सी0सी0 365
72. (1995)1 एस0सी0सी0 14
73. (1997)8 एस0सी0सी0 114
74. ए0आई0आर0 1982, एस0सी0 879
75. ए0आई0आर0 1991, एस0सी0 207
76. ए0आई0आर0 2001, एस0सी0 2007

●

भारतीय मानवीय मूल्यों का वर्तमान वैश्विक परिवेश में मूल्यांकन

डॉ0 रमेश कुमार एवं डॉ0 रंगनाथ पाठक***

वर्तमान वैश्विक परिवेश में प्रकृति पर जय-यात्रा की पताका फहराते हुये मानव सफलता के नित नूतन आयाम उद्घाटित कर रहा है और विकास के पथ पर अनवरत अग्रसर है। उसने दुनिया की तस्वीर बदल दी है। उसके आणविक प्रयोगों ने ज्ञान एवं अध्ययन के क्षेत्र में रहस्य माने जाने वाले तमाम मिथकों को समाप्त सा कर दिया है। विज्ञान के अभ्युदय ने जीवन-मूल्यों को बहुत दूर तक प्रभावित किया है, लेकिन चिन्ता का विषय यह है कि जिस विज्ञान एवं वैज्ञानिक सोच ने मानव के आस्था, विश्वास, भक्ति एवं प्रेम जैसे मानवीय-मूल्यों को ध्वस्त किया है, उसने उसे उसके विकल्प नही दिये। मानव आज क्रमशः एक बड़े सामाजिक दायरे से अलग सिमटता हुआ अपने-अपने घरौदों में सीमित हो गया है। कहने को तो उसकी पूरी दुनिया है, पर सच्चाई यह है कि वह अकेला है, नितान्त अकेला !

कुछ मूल्य जो मानव जीवन के सम्बल थे, उन पर प्रश्नचिह्न लगाकर वह जैसे स्वयं पर अविश्वास करने लगा है। उसके पारिवारिक एवं सामाजिक संबंध जैसे एक ढोंग बन कर रह गये है और वह जीता नही बल्कि जीने का जैसे अभिनय कर रहा है। ऐसी स्थिति में खंडित अकेला निःसम्बल मानव विश्व-बन्धुत्व या विश्व-ग्राम की किस कल्पना को साध पायेगा? यह एक बड़ा प्रश्न है।

प्राचीन काल से ही भारत में पुरुषार्थों की परिकल्पना मनुष्य के जीवन को व्यवस्थित एवं अनुशासित रखते हुये उसके उत्कर्ष हेतु ही की गयी थी। धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष चारो पुरुषार्थों का समन्वय इस रूप में किया गया था कि एक ओर जहाँ वे स्वयं में साध्य थे, वहीं दूसरी ओर एक दूसरे के लिये साधन भी थे। ये पुरुषार्थ मनुष्य को जीवन से, उसके दायित्व से एवं उससे जुड़ी तमाम चुनौतियों से उसे जोड़ते हुये उसके जीवन को सार्थकता प्रदान करते थे।

आज हम मानवीय मूल्यों की चर्चा करते समय पुरुषार्थों को- 'सर्वे पदाः हस्ति पदा निमग्नाः' की भाँति मूल्यों के उत्स के रूप में देख सकते है। आज के मानव के जीवन में आये बिखराव को देखते हुये लगता है कि इन लुप्त हो रहे तमाम मानवीय, नैतिक एवं सामाजिक मूल्यों की प्रतिष्ठा पर बल देना अपरिहार्य हो गया है।

दरअसल प्रथम विश्व-युद्ध के बाद विश्व-मानव के सम्मुख अस्थिरता, निराशा एवं कुंठा का जो स्वरूप उभरा, उसके आवेग में उसका विवेक ही कुंठित हो गया। मानव ने बचे हुये जीवन के प्रत्येक क्षण को जी लेना चाहा। इसके चलते उसने पारम्परिक-मूल्यों का तिरस्कार कर दिया। पश्चिम के जीवन में एक पतन एवं अपसंस्कृति का ऐसा दौर आया, जिसकी झलक हमें टी.एस.इलियट की "The Waste Land" जैसी कविताओं में स्पष्ट देखने को मिलती है।

पश्चिमी दुनिया में आये इस बदलाव तथा साथ ही विज्ञान के बढ़ते हुये प्रभाव के कारण भी जीवन-मूल्यों में विघटन एवं बिखराव उभरना प्रारंभ हुआ। इन पस्थितियों से उबरने के लिये इलियट ने पूर्व की ओर आस लगायी और बौद्ध-दर्शन एवं औपनिषिदिक् मीमांसा को सम्बल के रूप में देखा। कहना न होगा कि आज मूल्यों के विघटन एवं अपसंस्कृति के जिस युग में हम जी रहे है, वह हमें डराती ज्यादा है, आश्वस्त कम करती है। तोड़ती ज्यादा है, सम्बल कम देती है। बिखराती ज्यादा है, समन्वित कम करती है। लाचार होकर हमें भी वर्तमान से अतीत तक बड़े गौर से देखना होगा और इलियट की तरह ही उन मूल्यों को तलाशना होगा, उसका पुनर्मूल्यांकन करना होगा, उनकी महत्ता को स्वीकार करना होगा, जिससे मानव-जीवन में एक सुन्दर विहान आ सके और वह भी ओम् शान्तिः, शान्तिः, शान्तिः कह सके।

आधुनिक अतिविज्ञानवाद ने इन मानवीय-मूल्यों पर अतिभौतिकता का आवरण चढ़ाकर इन्हे अंधविश्वास की श्रेणी में डाल कर मानवता के अवांछित पतन को पुनः न्योता दे दिया है। और इस पतन से इस सभ्यता को उबारने का एक ही रास्ता है विज्ञान के साथ धर्म या अध्यात्म का समन्वय। क्योकि इस सत्य को नकारा नही जा सकता कि - विज्ञान के साथ धर्म या अध्यात्म के समन्वय से सृष्टि में सृजन सम्पादित होता है, वही धर्म या अध्यात्महीन विज्ञान विनाश की आधारशिला रखता है। कमोवेश इस चिंतन के प्रति पश्चिम भी सकारात्मक दृष्टिकोण रखता है। इस सन्दर्भ मे डा0 डब्ल्यू पूनीक्यूक, एक आस्ट्रेलियन वैज्ञानिक के लेख Where is Sciences taking का उल्लेख विषयप्रवेश के दृष्टिकोण से करना तर्कसंगत हैं, जिसमें वो कहता है-

"Where is science taking us with regard to ethical and spiritual values? We know what it is doing

* अनुभाग अधिकारी, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

* * आचार्य, हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

with regard to material things, for material things are its daily business, but what is it doing with regard to non material thing? If the answer were nothing at all, that would be bad enough, but the actual answer is less than nothing. Here science is actually doing less than nothing for its material teachings have been so over emphasized that many people are floundering and wondering whether after all man is but a machine animated by forces over which he has no control."[1]

गीता में कहा गया है कि सम्पर्क मे आने से कामनाओं की उत्पत्ति होती है, और उन कामनाओं में असफलता के परिणामस्वरूप क्रोध की उत्पत्ति होती है, क्रोध के कारण स्मृतिभ्रम की स्थिति आती है और अंततः ये स्मृतिभ्रम बुद्धि का नाश कर हमे पूर्णतया समाप्त कर देता है। कुछ ऐसा ही हुआ है हमारी सभ्यता व संस्कृति के साथ, पश्चिमी सम्पर्क में आकर हमारे स्थापित मूल्यों ने अपना स्तित्व खोया है जिसके कारण हमारी संस्कृति को आज ये दुर्दिन देखने पड़ रहे है। आगे गीता में इन मूल्यों पर विस्तृत व्याख्या देते हुये कहा गया है कि –

कुलक्षये प्रणष्यन्ति कुधर्माः सनातनः,

धर्मे नष्टे कुलं कृत्स्नमधर्मोऽभिभवत्युत।

अधर्माभिभवात्कृष्ण प्रदुष्यन्ति कुलस्त्रियः

स्त्रीषु दुष्टासु वार्ष्णेय जायते वर्णसंकरः।

संकरो नरकायैव कुलघ्नानं कुलस्य च

पतन्ति पितरो ह्योषां लुप्तपिण्डोदकक्रियाः।[2]

अर्थात् कुल के नाश होने धर्म नष्ट होते है, धर्म के नष्ट होने से पाप विस्तारित होता है, पाप के विस्तार से कुल की स्त्रियॉं दूषित हो जाती है और इनके दूषित होने से वर्ण-शंकर उत्पन्न होते है जो समाज और कुल को नर्क की ओर ले जाते है।

दुर्भाग्यवश वर्तमान वैज्ञानिक विकास की अवधारणा में वर्णसंकरो की भरमार है। यहॉं वर्तमान परिवेश के परिप्रेक्ष्य में वर्णसंकर का अभिप्राय वर्तमान समाज के उच्छृंखल स्वरूप व उसके परिणामस्वरूप उत्पन्न मूल्य-विघटनो से लिया जाना चहियें, -

जिसके अन्तर्गत उच्छृंखला को स्वतंत्रता का पर्याय मान लिया गया है। स्पष्ट है कि उच्छृंखला और स्वतंत्रता समानार्थी नही हों सकते। उच्छृंखला के अर्न्तत व्यक्ति वो तमाम नैतिक व अनैतिक आजादियॉं प्राप्त कर लेता है, उसके कार्य, स्वभाव बिना परिणाम सोचे सीमारहित व्यवहार को उद्यत हो जाते है। उनके क्रिया-कलाप का कोई मापदण्ड नही रह जाता, जबकि स्वतंत्रता में इसके ठीक विपरीत व्यक्ति की आत्मनिरुज प्रवृत्तियॉं सक्रिय हो जाती है। उसे सामाजिक और नैतिक मूल्यों की सीमा में व्यवहार करना होता है। प्रश्न यह उठता है कि इतनी तीव्रता से निरन्तर हो रहे मानवीय-मूल्यों के विघटन के साये में कैसे वांछित विकास सम्भव है ?

और ये कैसे एक सुदृढ़ विकसित भविष्य की आधारशिला रख सकता है? संभव है श्रीमद्भगवतगीता के उक्त श्लोक से अतिशयोक्ति का आभास हो, किन्तु यदि उसमें आंशिक सच्चाई भी है तो परिवेश सोचनीय हो जाता है। गीता जिसने 'कर्मयोग' का सार्वभौमिक सिंद्धांत वरदानस्वरूप इस विश्व को दिया है और जो निसंदेह वर्तमान वैज्ञानिक विकास के मूल में विद्यमान है, तो उसी में वर्णित दूसरे सिंद्धांत या उपादान कैसे मिथ्या हो सकते है, बस उसे देखने और समझने की पारखी दृष्टि होनी चाहिये।

ध्यायतो विषयान्पुंसः संगस्तेषूपजायते।

संगातसंजायते कामः कामात्क्रोधेभिजायते।।

क्रोधात्मवति स्म्मोहः स्ममोहात्स्मृति विभ्रमः।

स्मृतिभ्रंषत्बुद्धिनाषो बृद्धिनाषातप्रणष्यति।[3]

मानव अपने सम्पूर्ण परिवेश में प्रकृति की एक विशिष्ट एवं सुन्दरतम् रचना है, जिसकी समानता पार्थिव किसी भी पदार्थ या जीवराशि से नही की जा सकती, चाहे इस बात को 'न मानुषात् श्रेष्ठतम् हि किंचिंत' जैसी पुरातन उक्तियों से प्रमाणित किया जाय या फिर इसी तरह की बात प्रकारान्तर से प्रस्तुत करने वाले मानववादी विचारको की वाक्यावलियों से। आधुनिक युग में प्रायः सभी मानववादी चिन्तक मानव की अर्थवत्ता एवम् महत्ता को स्थापित एवं प्रतिष्ठित करने के लिये प्रयत्नशील है। इनके समस्त चिन्तन का मुख्य केन्द्रबिन्दु मानव का स्वस्थ एवम् सम्यक विकास है और इस सम्यक विकास हेतु तमाम मानवीय-मूल्यों का विभिन्न कालक्रम में अनुभवों के आधार पर उद्भव हुआ।

जहॉं तक तमाम मानवीय मूल्यों के अभ्युदय का प्रश्न है, मानव आज जो इतनी विस्मयकारी शक्तिपुंज का केन्द्र बन सका है, उसके पीछे काम करती है उसके अतीत की वह प्रयास-श्रृंखला जिसके निर्मित होने एवं सर्वस्वीकृत सत्ता के रुप में प्रतिष्ठित होने में सदियॉं लगी होगी। ऐसे मूल सत्यों की आज जो लम्बी परम्परा मिलती है और जो मनुष्य को सभी दृष्टियों से विकसित, परिष्कृत एवं समृद्ध बनाये जा रही है, उसका अध्ययन एवं विश्लेषणात्मक विमर्ष कम महत्वपूर्ण नही है। आज मनुष्य देश, काल, जाति, वर्ण, सम्प्रदाय एवं अन्य तरह की इकाइयों में विभाजित होकर अपने आस-पास वैषम्य की खाई चौड़ी करने में सतत् प्रयत्नशील है, ऐसी स्थिति में मानवीय मूल्यों का अध्ययन, उनकी उपादेयता का विश्लेषण एवं चिन्तन नितान्त आवश्यक है, ताकि विखराव में एक्य-भावना, संव्यूहनात्मक विवेक एवं अपेक्षित संवेदनात्मक विश्व-वन्धुत्व स्थापित किया जा सके। आधुनिक युग में विद्वानों ने ऐसे मूल्यों एवं सत्यों की खोज तथा अनुसंधान का कार्य अत्यन्त सतर्कता से किया है।[4]

सामान्यतया यह माना जाता है कि, चिंतनशील होने के कारण मनुष्य अपने व्यवहार के लिये कुछ विचार या सिद्धान्त

निश्चित करता है और उन्हें आदर्श मानकर अपने जीवन में उतार लेता है। कालान्तर में उपयोगी होने पर ग्रहण अथवा धारण किये हुये विचार ही सामाजिक मान्यता प्राप्त होने पर मूल्य बन जाते है। उनका अनुपालन अच्छा और उनकी अस्वीकृत को बुरा अथवा पाप माना जाने लगता है। संक्षेप में ये कहा जा सकता है कि किसी विचार के प्रति अनुकूल धारणा ही तद्विषयक मूल्य को जन्म देती है।[5]

विचारों को मूल्य बनाने में दो बातें सहायक होती है - प्रथम तो विचार की सामाजिक अथवा समूहगत उपयोगिता और दूसरी उसकी सामाजिक स्वीकृति अपने उपयोगी विचारों को ही स्वीकृत कर समाज स्वयं के लिये मूल्य बना लेता है। विचार वैयक्तिक भी हो सकता है, और समूह, वर्ग, जाति अथवा सम्प्रदाय का भी। समूह अथवा सम्प्रदाय के विचारों को शीघ्र ही सामाजिक अथवा साम्प्रदायिक स्वीकृति मिल जाती है। इसलिये उनको मूल्य बनने में अधिक देर नही लगती। कम से कम वे सम्प्रदाय या वर्ग विशेष के लिये सामाजिक समझौते के रुप में तत्काल ही मूल्य बन जाते है। इसके विपरीत वैयक्तिक विचारों को मूल्य के रुप में प्रतिष्ठा बड़ी कठिनाई से मिल पाती है।

समाज ऐसे विचारों को पहले परखता है, जीवन में उतारने का अभ्यास करता है, फिर उसकी उपयोगिता सिद्ध हो जाने पर उसे मूल्य के रुप में स्वीकृति प्रदान करता है। इन मूल्यों के मूल में मानव और मानव-कल्याण भी होता है। ऐसा विचार कर मूल्य को जीने की कला से भी सम्बद्ध किया जा सकता है। समान्यतया माना जाता है कि मूल्य मनुष्य को मंगलपूर्वक जीवन बिताने में सहायता करते है। वस्तुतः जिन जीवनादर्शो को मानदण्डों के रुप में व्यक्ति अथवा समाज अपने लिये निश्चित कर लेता है वही उसके निर्विघ्न जीवननिर्वाह में सहायक होते है। इस प्रकार उपयोगी होने पर वे मानदण्ड समाज के लिये मूल्य रुप में स्वीकृति पा जाते है।

ये मूल्य मानव जीवन के स्वस्थ विकास में सहायक होते है। कभी-कभी इन मूल्यों के पीछे सक्रिय सामाजिक चिंतन परिस्थितिवश विपरीत गति ग्रहण कर लेता है और इन जीवनादर्शी अथवा मूल्यों पर नया रंग चढ़ा देता है।

मानव का स्वस्थ एवं सम्यक विकास किस प्रकार का हो? वह कैसे जीवन-यापन करे? इन्ही प्रश्नों के समाधान हेतु जीवन-मूल्यों की कल्पना की गयी है। कुछ निश्चित जीवनादर्षो को मानदण्ड बनाकर मानव-जीवन को कसौटी पर कसा जाने लगा है। इन्ही को मानदण्डों के आधार पर अच्छे या बुरे जीवन का निराकरण करतें है। अतः हम कह सकते है कि - मानव के स्वस्थ एवं सम्यक विकास हेतु जीवन की आन्तरिक एवं वाह्य आवश्यकताओं के आधार पर कुछ निश्चित जीवनादर्षो को मानदण्ड या कसौटी के रुप में स्वीकार किया जाता है। इन्ही मानदण्डों या कसौटियों को हम मानव - मूल्य या जीवन - मूल्य कहते है।

मानव-जीवन की भॉति ही मानव-मूल्यों को भी एक निश्चित सीमा में बॉधकर पारिभाषित करना कठिन है। अतः मानव-मूल्यों की विवेचना से पूर्व मानववादियों का 'मानव' के सम्बन्ध में विचार, 'मानव-जीवन' और 'मूल्य' को अलग-अलग व्याख्यायित कर लेना श्रेयस्कर होगा।

'मूल्य' शब्द अग्रेंजी के वैल्यू शब्द का पर्यायवाची है। 'मूल्य' शब्द की व्युत्पत्ति मूल और यत् से हुई है। सामान्यतया इसका अभिप्राय किसी पदार्थ के बदले में दिया जाने वाला धन, पदार्थ या बाजार भाव है। अनेक शब्द अपने विकास क्रम में अर्थ-विस्तार पाते है। इसी तरह 'मूल्य' शब्द का भी पर्याप्त अर्थ-विस्तार हुआ है।

वस्तुतः 'मूल्य' शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम अर्थशास्त्र के क्षेत्र में किया गया था। आधुनिक युग में 'मूल्य' शब्द अर्थशास्त्र के अतिरिक्त समाजशास्त्र, दर्षनशास्त्र, नीतिशास्त्र, साहित्य एवं विज्ञान आदि अनेक संदर्भों में विभिन्न अर्थों में प्रयुक्त हो रहा है। इस प्रकार हम देखते है कि आज 'मूल्य' शब्द मानव और उसके जीवन के साथ भी जुड़ चुका है। मूल्य की व्याख्या करते हुये प्रो0 गोविन्दचन्द्र पाण्डेय ने उसे मानवोचित लक्ष्य या पुरुषार्थ कहा है।[6]

पाश्चत्य विचारक काब ने मूल्यों की विवेचना करते हुये उन्हें मानदण्ड या स्तर स्वीकारा है।[7]

क्यूबर ने मूल्यों को व्यक्ति-विश्वास एवं विचार माना है।[8]

यंग तथा मैक ने भी मूल्यों को उचित तथा महत्वपूर्ण की व्यापक अचेत धारणायें कहा है।[9]

डा0 राधाकमल मुकर्जी ने 'मूल्यों' की व्युत्पत्ति की कल्पना मानव-अस्तित्व और अनुभव के अनुभावित आयाम से किया है।[10]

मानव-मूल्यों पर वैज्ञानिक दृष्टि से विचार करने वाले विद्वानो ने भी मूल्यों को मानदण्ड के रुप में ही स्वीकार किया है। जब हम यह कहते है कि जीवन अपनी अर्थवत्ता रखता है तब हमारा आशय यही होता है कि जीवन कुछ मूल्यों से युक्त है और जब हम यह कहते है कि जीवन अर्थहीन है तब हमारा तात्पर्य होता है कि जीवन में मूल्यों का ह्रास अथवा विघटन हो गया है।[11]

समाजशास्त्र एवं दर्शन के क्षेत्र में मानव-मूल्यों पर विभिन्न दृष्टिकोणें से विचार हुआ है। लेकिन प्रायः सभी विचारको ने यह स्वीकार किया है कि मानव-मूल्य जीवन की सार्थकता के लिये अनिवार्य है।

अतः ये निर्विवाद रुप से कहा जा सकता है कि आधुनिक जीवन की भोगवादी विकृतियों को तिरस्कृत कर भारतीय आदर्शो से युक्त मानव-मूल्यों की प्रतिष्ठा से सम्पूर्ण विश्व के कल्याणकारी मंत्र विश्व-बन्धुत्व के सपने को साकारता प्रदान होगी।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. Where is Sciences taking – Dr.W.Puniquik
2. श्रीमद्भगवतगीता 1/40
3. श्रीमद्भगवतगीता 2/63
4. स्वातंत्रयोत्तर हिन्दी उपन्यासः मूल्य संक्रमण, पृ01 हेमेन्द्र पामेरी
5. मानव-मूल्य और प्रसाद का गद्य-साहित्यः प्रो.रंगनाथ पाठक, पृ.13
6. मूल्य-मीमांसा - गोविन्दचन्द्र पाण्डेय, पृ0 3
7. Value are criteria or standard" & William K. Kolb& Value in America Ed. DonaldN, Barrett.
8. "People cherish certain Ideas or beliefs which are often called their Values & Johmn F. Cuber/ Sociology & A synopsis of Principles Page 51
9. "Vallues are assumptions, largely unconscious of what is right and important" "Sociology and social life" Page 72
10. Value are criteria or standard" - William K. Kolb-Values in America Ed. By Donald N. Barrett.
11. There is nothing either good or bad, but thinking makes it so" Shakespeare : Hamlet' Act II scene II line 250C

●

बनारस घराने के प्रतिष्ठित संगीताचार्य पं. बड़े रामदास मिश्र जी एवं उनकी शिष्य परम्परा

ज्योति यादव एवं प्रो0 शारदा वेलंकर***

हमारा भारत वर्ष प्राचीन काल से ही धर्म, संस्कृति एवं संगीत के लिए विश्व में एक अलग स्थान रखता है। भारत वर्ष में वैसे तो अनेक शहर है, परन्तु उन शहरों में काशी नगरी का विशेष महत्व है। चाहे धर्म हो, चाहे साहित्य हो या संगीत, काशी का स्थान सर्वोपरि है। प्राचीन समय से ही काशी ने संगीत की परम्परा को पोषित किया और आज भी करती आ रही है। बनारस घराने के माध्यम से 600 वर्षों से चली आ रही संगीत परम्परा का निर्वहन करते हुए सम्पूर्ण विश्व में नृत्य, गायन, वादन के माध्यम से काशी सदैव प्रतिष्ठित होती रही। बनारस घराने ने नृत्य शैली, तबला वादन सारंगी वादन, सितार वादन एवं गायन के क्षेत्र में धुरन्धर कलाकारों एवं प्रकाण्ड विद्वानों को पोषित किया है, जिन्होंने संगीत की नियमित साधना एवं समर्पण से काशी को गौरवान्वित किया।

- **नृत्य कला के क्षेत्र में**-पं0 गोपीकृष्ण जी, सितारा देवी जी, पांडे महाराज जी, मोहनकृष्ण जी, रामकृष्ण जी, लोकनाथ मिश्र जी, बिरजू महाराज जी इत्यादि।

- **तबला वादन के क्षेत्र में**-रामसहाय जी, कण्ठे महाराज जी, भैरोसहाय जी, अनोखे लाल जी, किशन महाराज जी, गुदई महाराज जी, शारदा सहाय जी, संजू सहाय जी इत्यादि।

- **सारंगी वादन के क्षेत्र में**-गोपाल मिश्र जी, हनुमान प्रसाद मिश्र जी, पं0 बैजनाथ मिश्र जी, पं0 नारायण मिश्र जी, संतोष मिश्र जी इत्यादि।

- **सितार वादन के क्षेत्र में**-पं0 रविशंकर मिश्र जी, अमरनाथ मिश्र जी, सुरेन्द्रनाथ मिश्र जी इत्यादि।

- **गायन के क्षेत्र में**-पं0 बड़े रामदास मिश्र जी, छोटे रामदास मिश्र जी, हरिशंकर मिश्र जी, गणेश प्रसाद मिश्र जी, महादेव प्रसाद मिश्र जी, अमरनाथ-पशुपति नाथ मिश्र जी, जालपा प्रसाद मिश्र जी, राजन-साजन मिश्र जी, जैसे अनेक संगीत विभूतियों ने बनारस घराने में जन्म लेकर यहाँ की संगीत परम्पराओं को विश्व पटल के शिखर तक पहुँचाने में अपना सम्पूर्ण जीवन समर्पित कर दिया। इन सभी विद्वानों ने ताउम्र संगीत की सेवा की। ऐसे ही संगीत गायन के क्षेत्र में प्रकाण्ड विद्वान, संगीताचार्य, गायनाचार्य, संगीत के साधक पं0 बड़े रामदास मिश्र जी का नाम सर्वोपरि है जिन्होंने गायन कला को सम्पूर्ण विश्व में प्रतिष्ठित करने के लिए अपना सम्पूर्ण योगदान दिया और निरन्तर संगीत की सेवा में जुटे रहकर बनारस की गायकी को एक ऐसा स्वरूप दिया जिसकी अनुभूति आज भी लोग करते हैं और उनकी शिष्य-परम्परा में उनकी झलक देखते आ रहे हैं।

पं0 बड़े रामदास जी का जन्म काशी के प्रतिष्ठित संगीतज्ञ परिवार में श्री शिवनंदन मिश्र जी के सुपुत्र के रूप में हुआ था। श्री शिवनंदन मिश्र को लंबे समय तक कोई सन्तान न हुई, परन्तु काशी के त्रिकालज्ञ स्वामी भास्करानंद जी को आपका संगीत इतना भाता था कि आपकी गायकी से प्रसन्न होकर उन्होंने आपको पुत्ररत्न प्राप्ति का आशीर्वाद दिया। इसी के फलस्वरूप पं0 बड़े रामदास जी का जन्म सन् 1877 ई0 को काशी के कबीर-चौरा मुहल्ले में हुआ। संगीतमय वातावरण से परिपूर्ण परिवार के सानिध्य में आपका रुझान बाल्यकाल से ही संगीत के प्रति रहा और पिता के आशीर्वाद स्वरूप संगीत की प्रारम्भिक शिक्षा आपको अपने पिता से ही प्राप्त होती रही। बाल्यकाल से ही आप अनेकों सांगीतिक कार्यक्रमों को अपने पिता के साथ सुनने जाया करते थे और संगीत का पूरा आनन्द उठाते थे। प्रारम्भिक शिक्षा पूर्ण होने के पश्चात् आपके पिता आपको श्रेष्ठ विद्वान गायक पं0 शिव सहाय मिश्र के पास आगे की शिक्षा दिलाने के उद्देश्य से ले गये। अपनी वृद्धावस्था के कारण पं0 शिव सहाय जी ने स्वयं संगीत शिक्षा देने में असमर्थता बताते हुए बेतिया घराने के श्री जयकरण मिश्र जी से शिक्षा दिलाने का सुझाव इनके पिता जी को दिया।

जयकरण मिश्र जी बेतिया घराने के सुप्रतिष्ठित ध्रुपद-धमार के गायक थे, जो कि काशी के कबीरचौरा मोहल्ले में आ बसे थे। पं0 बड़े रामदास जी के पिता ने पं0 जयकरण मिश्र जी से आपको संगीत की आगे की शिक्षा ग्रहण करने हेतु भेज दिया। रामदास जी ने जयकरण जी से ध्रुपद, धमार सहित गायन की सभी शैलियों जैसे-ख़्याल, टपख़्याल, टप्पा, ठुमरी, दादरा, होरी, चैती, कजरी इत्यादि का उत्कृष्ट ज्ञान अर्जित किया। गायनाचार्य जी ने चारों पट की गायकी में निपुणता हासिल की। जयकरण मिश्र जी की एकमात्र पुत्री जिनका विवाह उन्होंने अपने प्रिय शिष्य पं0 बड़े रामदास जी से किया और उपहार स्वरूप ध्रुपद-धमार की 700 से अधिक बंदिशे आपको प्रदान की।[1] पं0 बड़े रामदास जी अत्यन्त ही विद्वान संगीतज्ञ थे। जटिल से जटिल तालों में सहजतापूर्वक गाना, प्रचलित-अप्रचलित रागों एवं तालों का आपको विशेष ज्ञान था। खुले आवाज़ में साढ़े तीन सप्तक गाने की स्वतंत्रता, लयकारी युक्त तानें, बंदिश के बोलों को उसके शब्दों के अनुसार भावपूर्ण तरीके से व्यक्त करना, स्पष्ट एवं शुद्ध उच्चारण, उपज की बहुलता इत्यादि

* शोध छात्रा, गायन विभाग, संगीत एवं मंच कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।
* * प्रोफेसर, गायन विभाग, संगीत एवं मंच कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

अनेक विशेषताओं से आप परिपूर्ण थे। अनेक कार्यक्रमों, सम्मेलनों व रियासतों में आपकी गायकी का बोलबाला था।

नेपाल नरेश के दरबार में आप ज्यादातर आमंत्रित किये जाते थे। आपकी गायकी से विद्वतजन, श्रोताजन सभी आश्चर्यचकित व मंत्रमुग्ध रहते थे। आप अत्यन्त ही दयालु, उदार, निरअभिमानी, निश्छल प्रवृत्ति के थे। भेद भाव से परे आपने सदैव लोगों को संगीत की शिक्षा प्रदान की। पं0 जी बाबा विश्वनाथ एवं बाबा कीनाराम के अनन्य भक्त थे। प्रतिदिन बाबा कीनाराम के प्रांगण में बैठकर आप कुछ देर संगीत साधना करते थे। आपकी साधना से बाबा अत्यन्त प्रसन्न रहते थे और आपको एक दिन आशीर्वाद स्वरूप बाबा जी ने स्वयं की रचनाएँ करने को कहा। बाबा कीनाराम के आशीर्वाद से आपने बंदिशों की रचनाएँ करनी प्रारम्भ कर दी एवं अनेक बंदिशों की रचना की। बन्दिशों की रचना करते समय साहित्य पक्ष को ध्यान में रखते हुए आपने शब्दों का चयन किया, जिसे भावों से परिपूर्ण करते हुए उन शब्दों को उचित स्वरों, रागों व तालों में निबद्ध किया। पं0 जी की बंदिशों में ईश्वर की स्तुति, गुरु के प्रति समर्पण भाव स्पष्ट दिखाई देता है। पं0 बड़े रामदास जी ने प्रत्येक रचनाओं में 'रामदास के मोहन प्यारे' एवं 'रामदास के गोविन्द स्वामी' जैसे शब्दों को जोड़कर अपनी बंदिशों को पूर्ण किया।[2]

पं0 बड़े रामदास मिश्र जी की रचनाओं में से राग गुर्जरी तोड़ी की एक रचना हैं जोकि तीनताल में निबद्ध है।

स्थाई - फोरी रे मोरी कान्ह गगरियाँ
डगर चलत बरजोरी।

अन्तरा- रामदास के मोहन प्यारे
रोकत है मोरी आन डगरियाँ।।[3]

इस रचना में पं0 जी ने भगवान श्री कृष्ण जी की नटखट लीलाओं का वर्णन किया है जिसमें उन्होंने बताया है कि किस प्रकार से भगवान कृष्ण गोपियों से छेड़खानी करते थे। गोपियों का मार्ग रोक उनकी मटकियाँ फोड़ देते थे। ऐसे साहित्य को पढ़ने मात्र से ही स्पष्ट हो जाता है कि वे एक कुशल रचनाकार थे। ऐसे ही एक बंदिश राग शंकरा में है जो कि एकताल में निबद्ध है, जिसमें गायनाचार्य जी ने भगवान शंकर जी की महिमा का बखान किया है।

स्थाई - शंकर हो दया करो
हम पर त्रिपुरारी,
वास तो कैलाश कीन्हो
कर त्रिशूल डमरू धारी।

अन्तरा-बहुतन को दियो ज्ञान
अनधन अरु विद्या,
रामदास के स्वामी
शरन में तिहारी।।[4]

पं0 जी की इन रचनाओं में ईश्वर की स्तुति, उनके प्रति समर्पण भाव उजाकर हो रहा है। ऐसी ही अनेको रचनाएँ है जिनमें ईश भक्ति, गुरु भक्ति व संगीत की विशिष्टताओं को पं0 जी ने साहित्य का उचित प्रयोग करते हुए भाव व स्वर, ताल इत्यादि से उसे उसके अनुकूल अलंकृत किया। आपकी इन्हीं विशिष्टताओं के कारण आपकी सांगीतिक रचनाएँ आज भी संगीत जगत में अमर है। आपके शिष्यों के माध्यम से आपकी रचनाएँ देश-विदेश सर्वत्र संगीत जगत् में प्रतिष्ठित हो रही है। ख़्याल शैली के अतिरिक्त पं0 जी की अन्य विधाओं में भी कुछ रचनाएँ हैं जिसे वे अक्सर गाया करते थे। उनके द्वारा रचित एक कजरी इस प्रकार है।

स्थाई - हमरे सावरियाँ नहीं आये
सजनी छायी घटा घनघोर।

अन्तरा – दादुर मोर पपीहा बोले
कोयल कर रही शोर
सजनी छायी घटा घनघोर।।[5]

इस कजरी की विशेषता यह है कि इसका स्थाई कहरवा ताल में और अंतरा दादरा ताल में है जिसके कारण यह अत्यन्त प्रभावशाली प्रतीत होता है। रागों को ध्यान में रखते हुए पं0 जी ने इस कजरी को देश राग में निबद्ध किया है। इन सभी रचनाओं को देखते हुए यह कह सकते हैं कि पं0 जी एक कुशल वाग्गेयकार, संगीत के प्रकाण्ड विद्वान, अनेक भाषाओं के ज्ञानी तथा आयुर्वेद का भी ज्ञान रखने वाले महान पुरुष थे। वे न केवल कुशल संगीतज्ञ थे, बल्कि एक श्रेष्ठ गुरु भी थे। इन्होंने कभी भी अमीर-गरीब, ऊँच-नीच, छोटा-बड़ा जैसी निम्न स्तरीय सोच को बढ़ावा न देते हुए इन सबसे परे अपने सभी शिष्यों को समानता के साथ संगीत शिक्षण प्रदान किया।

पं0 बड़े रामदास मिश्र जी ने अपने शिष्यों को कुछ गूढ़ तथ्यों से अवगत कराया और सदैव उसे अपने जीवन में पालन करने को कहा। पं0 जी मानते थे कि-

- गायन करते समय अपनी मुद्रा एवं वाणी का ध्यान रखना आवश्यक होता है।
- किसी भी बंदिश को गाते समय उसके कहने पर जोर देना चाहिए। जिससे वो सीधे हृदय को स्पर्श कर सके।
- तानों में पिछला मुख सदैव सुस्पष्ट होना चाहिए।
- किसी भी प्रकार के नशे एवं दुर्व्यसनों से स्वयं को दूर रखना चाहिए।
- कभी भी अपने गुरु से छल, कपट या चोरी नहीं रखनी चाहिए और न ही कभी स्वयं पर घमण्ड करना चाहिए।

- गायन से पूर्व आलाप करते समय ''ओम अनन्त नारायण नर हरि नारायण'' कहना अति उत्तम माना जाता है।

- पं0 जी का कहना था कि जब तक स्वयं के आँखों से अश्रु न आ जाए तब तक संगीत की साधना पूर्ण नहीं होती।[6]

इनके इन्हीं वचनों को उनके शिष्यों ने अपने जीवन में धारण कर अपने गुरु को सदैव गौरवान्वित किया। आपके शिष्यों की श्रेणी में न केवल गायक अपितु सारंगीवादक, शहनाई वादक, संतूरवादक, सितारवादक एवं तबलावादक भी सम्मिलित थे जिन्हें आपने अपना शिष्यत्व प्रदान किया।

पं0 हरिशंकर मिश्र, पं0 गणेश प्रसाद मिश्र, राम सेवक मिश्र (सजीले जी), रामू-शास्त्री जी, दाउ जी मिश्र, गोपाल मिश्र, महादेव प्रसाद मिश्र, हनुमान प्रसाद मिश्र, अमरनाथ-पशुपति नाथ मिश्र, जालपा प्रसाद मिश्र, राजन-साजन मिश्र, सिद्धेश्वरी देवी जी, गंगा प्रसाद मिश्र, धर्मनाथ मिश्र, उमादत्त शर्मा, नन्दलाल जी इत्यादि अनेक शिष्यों ने आपकी गायन परम्परा को पिछले कई वर्षों से संपूर्ण विश्व में प्रस्फुटित किया और विश्व पटल पर स्थापित किया।[7]

पं0 बड़े रामदास जी के श्रेष्ठ शिष्य

पं0 बड़े रामदास जी के कुछ विशिष्ट शिष्यों का उल्लेख निम्नलिखित है-

हरिशंकर प्रसाद मिश्र

श्री हरिशंकर प्रसाद मिश्र जी का जन्म पं0 बड़े रामदास मिश्र जी के छोटे भाई श्यामसुन्दर मिश्र जी के घर में 13 सितम्बर 1918 ई0 को हुआ था। आपने संगीत की शिक्षा अपने पिता एवं बड़े पिता से प्राप्त की। अत्यन्त ही कुशाग्र बुद्धि एवं प्रतिभावान होने के कारण 18 से 20 वर्ष की अल्पायु में ही आपने अपनी गिनती कुशल कलाकारों में करा ली थी। प्रचलित-अप्रचलित रागों, तालों, क्लिष्ट बंदिशों को सहजतापूर्वक गाने में आपको विशेष महारथ हासिल था। खुली आवाज़ आकर्षक मुखाकृति, गौरवपूर्ण ललाट से सुसज्जित आप चारों पट की गायिकी के अतिरिक्त कजरी, होरी, रूबाईया, गुलनख्श, सरगम, बरगम, छन्द, प्रबन्ध इत्यादि सभी शैलियों का विशाल भण्डार रखते थे। जिन्हें गाते समय लय, ताल, मींड, गमक, लयकारी युक्त तानों का प्रयोग आप विशेष रूप से किया करते थे। बड़े-बड़े रियासतों, संगीत सम्मेलनों में आप उपस्थित होकर विद्वत्जनों और श्रोताजनों को अपनी चमत्कारी गायकी से चकित कर देते थे। हरिशंकर मिश्र जी को उ0 प्र0 सरकार द्वारा संचालित संगीत विद्यापीठ, भातखण्डे संगीत विश्वविद्यालय लखनऊ में कण्ठ संगीत के प्रवक्ता के पद पर नियुक्त किया गया, जहाँ विभागाध्यक्ष पद को सुशोभित करते हुए आपने अपना सेवाकाल पूर्ण किया। संगीत के क्षेत्र में आपने अपनी विशेष योग्यता के साथ संगीत की सदैव सेवा की और संगीत के महनीय साधक के रूप में काशी के संगीत को सम्पूर्ण विश्व में प्रतिष्ठित कराते हुए काशी को गौरवान्वित किया।

श्री हनुमान प्रसाद मिश्र जी

सुप्रसिद्ध सारंगीवादक श्री सुरसहाय जी के ज्येष्ठ पुत्र श्री हनुमान प्रसाद मिश्र जी का जन्म काशी के कबीरचौरा मोहल्ले में सन् 1914 ई0 को हुआ। प्रारम्भिक संगीत ज्ञान आपको आपके पिता के मार्गदर्शन में बाल्यकाल से ही प्राप्त होने लगा था। अपनी लगन और मेहनत से आप कुशल सारंगीवादक के रूप में प्रसिद्ध होने लगे थे। पिता की मृत्यु के पश्चात् आपने संगीत की शिक्षा श्रेष्ठतम गुरु संगीताचार्य पं0 बड़े रामदास मिश्र जी के सानिध्य में पूर्ण किया। पं0 जी के देखरेख में आपने प्राचीन राग-रागिनियों, तालों एवं गायन की सभी शैलियों का पूर्ण ज्ञानार्जन किया। सुरीली, लयदार, प्रभावपूर्ण वादन शैली ने संगीत जगत में आपको विशेष ख्याति प्रदान करायी। अनेकों संगीत सम्मेलनों, रियासतों, आकाशवाणी दूरदर्शन के विभिन्न केन्द्रों द्वारा आयोजित कार्यक्रमों को आपने सदैव अपनी उत्कृष्ठ वादन से सफल बनाया और अपने गुरु की महिमा को संगीत जगत् में प्रतिष्ठित किया। सन् 1989 ई0 में संगीत नाटक अकादमी (उत्तर प्रदेश) एवं केन्द्रीय संगीत नाटक अकादमी (दिल्ली) से आपको धनराशि एवं प्रशस्ति पत्र से सम्मानित किया गया था। आपका व्यक्तित्व विनम्र एवं रोचक था। आपको खान-पान का अत्यधिक शौक था। 70 वर्ष की आयु के उपरान्त भी आप शिक्षण देने और नियमित साधना करने में कभी न चूकते थे। आप जैसे विद्वान को पाकर काशी धन्य हो गयी।

3. श्री गोपाल मिश्र

सुरसहाय जी के सारंगी वादन घराने में ही श्री गोपाल मिश्र जी का जन्म 1920 ई0 में हुआ। आपने अपने पिता से सारंगीवादन की शिक्षा प्राप्त की। तत्पश्चात् पं0 बड़े रामदास जी के मार्गदर्शन से गोपाल जी ने अनेकों प्रचलित-अप्रचलित रागों-तालों एवं गायन की सभी शैलियों को अपने सारंगी पर नियमित अभ्यास और अपनी कुशाग्र बुद्धि के माध्यम से ग्रहण किया। सभी सम्मेलनों में आपने अपनी अप्रतिम योग्यता को और प्रभावपूर्ण वादन से श्रोताओं विद्वानों को सदैव भाव-विभोर किया और संगीतजगत में अपनी प्रतिष्ठा स्थापित करते हुए काशी की कीर्ति को बढ़ाया। विद्वतापूर्ण वादन शैली, सुरीलेपन, तैयारी, लयदारी, सफाई, शहजोरी, अद्भुत सूझ-बूझ युक्त विशिष्ट उपजों के लिए कमानी एवं उंगलियों के उचित समन्वय के धनी वादक के रूप में महान कलाकारों और विद्वतजनों की पहली पसन्द सदैव आप ही रहे। विनम्र, विनोदी हँसमुख व मिलनसार स्वभाव के धनी गोपाल जी को संगीत जगत् ने खूब ख्याति व सम्मान दिया।[8] सन् 1977 ई0 को दिल्ली में हृदयघात के कारण इस नश्वर शरीर का इन्हें त्याग करना पड़ा। आपने 57 वर्षों तक संगीत की पूर्ण निष्ठा से सेवा की। आपका जाना सभी संगीत प्रेमियों के लिए एक हृदय विदारक घटना सिद्ध हुई। संगीत जगत सदैव आपको स्मरण करता रहेगा।

4- श्री गणेश प्रसाद मिश्र (भद्दू जी)

श्री गणेश प्रसाद मिश्र उर्फ (भद्दू जी) का जन्म बनारस के कबीरचौरा मोहल्ले में माघ मास की गणेश चतुर्थी को सन् 1900 ई0 में एक संगीतज्ञ परिवार में हुआ था। आपके पिता का नाम बड़कू मिश्र था जो कि एक श्रेष्ठ नर्तक कलाकार थे। अपने परिवार से आपने संगीत शिक्षा का श्रीगणेश किया परन्तु तबले में विशेष झुकाव को देख आपको 'वाद्य रसराज' से अलंकृत पं0 बलदेव मिश्र के पास शिक्षण हेतु आपके पिता जी ने भेजा और आप शीघ्र ही एक कुशल संगतकार के रूप में प्रतिष्ठित होते चले गये। तत्पश्चात् काशी के प्रकाण्ड विद्वान् संगीताचार्य पं0 बड़े रामदास मिश्र जी के संरक्षण में आपने संगीत के गायन की शिक्षा प्राप्त करने में सफलता हासिल की। तबले की विशेष संगति के अलावा गणेश जी एक कुशल गायक के रूप में भी जाने गये। आपने गायन की सभी शैलियों को आत्मसात किया और बनारस के अलावा बंगाल, बिहार एवं अन्य स्थानों पर अपनी खुली गायकी, लयदारी, तीन सप्तक तक विचरण करने वाली आवाज़ व सर्वोत्तम गायन एवं वादन के कार्यक्रमों को फलीभूत कर अपना विशेष स्थान संगीत प्रेमियों के मन-मस्तिष्क में बनाया और यशास्वादन किया। आपने अनेकों शिष्यों को तैयार किया। 67 वर्ष की अवस्था में 1967 को आपका देहावसान हो गया।

अपने जीवन काल में अपने गुरु पं0 बड़े रामदास मिश्र जी के साथ आप अनेक कार्यक्रमों में तबले की संगति हेतु जाया करते थे और सदैव अपने गुरु का आशीर्वाद पाते थे। जीवन के अन्त समय तक गणेश मिश्र जी ने संगीत जगत की सेवा की।

श्री जालपा प्रसाद मिश्र जी

पं0 बड़े रामदास मिश्र जी की वंश परम्परा में उनकी एकमात्र पुत्री जगता देवी एवं श्री बैजनाथ मिश्र (बग्गड़ जी) के सुपुत्र जालपा प्रसाद मिश्र का जन्म सन् 1934 ई0 को काशी में हुआ था। आपके पिता एक कुशल सारंगीवादक थे।[9] गायनाचार्य जी के नाती होने के कारण उनके मृत्यु से पूर्व तक आपने संगीत की शिक्षा नाना जी से ही प्राप्त की थी और चारों पट की गायकी का रसास्वादन किया। गायनाचार्य के मरणोपरान्त आपने अपने मामा हरिशंकर मिश्र जी के मार्ग निर्देशन में संगीत साधना को निरन्तर आगे बढ़ाया। कुशल प्रतिभा व दैनिक साधना ने आपको कलाकारों में विशेष स्थान दिलाया। आपकी गायन शैली इतनी स्पष्ट, क्लिष्ट व चमत्कारिक थी कि गायनाचार्य जी की छवि स्वयं ही दिखाई पड़ने लगती थी। सभी शैलियों को सहजतापूर्वक प्रदर्शित कर श्रोतागणों को मंत्रमुग्ध करने की कला में जालपा जी निपुण थे। आकाशवाणी, इलाहाबद वाराणसी के कलाकार श्री जालपा मिश्र जी एक कुशल संगीत शिक्षक के पद पर बी0टी0एस0 विद्यालय कमच्छा से जुड़े रहे, तत्पश्चात् सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय के संगीत विभागाध्यक्ष के पद पर कार्यरत रहे। आपने अनेकों जलसों, समारोहों, कार्यक्रमों में अपने प्रभावी प्रदर्शन से संगीत प्रेमियों की संगीत-सुधा को सदैव पूर्ण कर उन्हें तृप्त किया। आपकी महानतम् संगीत सेवा से संगीत जगत को सदैव कीर्ति मिली है। निःसन्तान होने के कारण आपने अपनी सम्पूर्ण शिक्षा अपने योग्य शिष्यों को दी और घराने की परम्परा को जीवित रखा।

श्री अमरनाथ पशुपतिनाथ मिश्र जी (मिश्र बन्धु)

युगल कलाकारों की श्रेणी में मिश्र बन्धु श्री अमरनाथ एवं पशुपति नाथ मिश्र जी का नाम सर्वोपरि लिया जाता है। श्री अमरनाथ मिश्र का जन्म 1937-39 ई0 तथा पशुपतिनाथ मिश्र जी का जन्म 1940-41 ई0 के मध्य हुआ था। इनके पिता श्री बद्रीपसाद मिश्र जी प्रसिद्ध गायक महादेव प्रसाद मिश्र जी के बड़े भाई थे। वे एक कुशल तबलावादक एवं गायक थे। अमरनाथ एवं पशुपतिनाथ जी को संगीत की शिक्षा अपने पिता और चाचा से प्राप्त हुई। दोनों भाई नियमित रूप से 8 से 10 घण्टे अभ्यास करते थे जिस कारण उनका गायन सदैव निखरता रहा। इनकी संगीत को और जीवन्त व उत्कृष्ट बनाने हेतु इनके पिता ने इन दोनों भाइयों को पं0 बड़े रामदास मिश्र का शिष्यत्व ग्रहण करने हेतु भेजा। दोनों भाई मन चित्त लगा संगीत की अतुलनीय शिक्षण पद्धति को आत्मसात करते रहे और धीरे-धीरे संगीत जगत में ऐसे छाएँ कि आपने डागर बन्धुओं को भी अपनी गायकी से मोहित व चकित कर दिया। अनेकों जलसों, संगीत सम्मेलनों में दोनों भाई मिश्र बन्धु के नाम से श्रेष्ठ युगल गायक कलाकार के रूप में ख्यातिबद्ध होते चले गये। संगीत नाटक अकादमी, विष्णु दिगम्बर सम्मान, कुमार गन्धर्व सम्मान, तान सम्राट, लय-भास्कर जैसी उपाधियों से अलंकृत कर आप दोनों को सम्मानित किया गया। उदार, निराभिमानी, मिलनसार, हँसमुख व धार्मिक स्वभाव के धनी दोनों भाइयों ने सदैव अपने जीवन के अन्त तक संगीत की सेवा की। आप दोनों का निधन बनारस घराने के लिए अत्यन्त शोकनीय रहा। वर्तमान समय में आपके पुत्र और शिष्य आपसे प्राप्त संगीत शिक्षा के माध्यम से बनारस घराने की गायन परम्परा को जीवित रखने में अपना विशेष योगदान दे रहे हैं।

श्री रामू शास्त्री जी

डा0 रामू शास्त्री जी काशी में एक सुप्रतिष्ठित वायलिन कलाकार के रूप में जाने जाते हैं, इन्होंने काशी विद्यापीठ से शास्त्री की उपाधि प्राप्त की एवं काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के संगीत एवं मंचकला संकाय में रामू शास्त्री जी ने वायलिन प्रवक्ता के रूप में कार्यभार ग्रहण किया। बाल्यावस्था से ही संगीत में विशेष रुचि व निष्ठा होने के कारण आप सामाजिक संकीर्णताओं को दूर कर संगीत की शिक्षा लेते रहे।

आपने संगीत शिक्षा के साथ-साथ ही संगीत से स्नातकोत्तर एवं डी0म्यूज की परीक्षाएं भी उत्तीर्ण की और कई वर्षों तक राजस्थान अलवर में स्थापित संगीत संस्था में शिक्षक के रूप में

कार्यरत थे। पटना के आकाशवाणी केन्द्र में आपने कार्यक्रम निदेशक के रूप में भी कार्य कर अनुभव लिया। देश के अनेकानेक सांगीतिक कार्यक्रमों में आपने अपनी सफलतापूर्वक प्रस्तुतियों से श्रोताओं को मोहित कर अपनी एक विशिष्ट पहचान बनाई। आपने संगीत जगत में अपनी सेवाओं के माध्यम से विशेष ख्याति भी अर्जित की।

श्री उमादत्त शर्मा जी

जम्मू नगर के निवासी श्री उमादत्त शर्मा जी को संगीत से अत्यधिक लगाव हुआ, जब वे कश्मीर दरबार में बड़े-बड़े कलाकारों को गाते-बजाते सुने। शर्मा जी के परिवार से कोई भी संगीत जगत् में नहीं था, परन्तु इन्होंने अकेले एक कुशल गायक, तबला वादक व दिलरूबा वादक के विशिष्ट कलाकारों में अपनी पहचान बनाई।[10] आपने सरदार हरनाम सिंह जी से तबला वादन की शिक्षा ली, किन्तु कुछ समय पश्चात् आपका रुझान कंठ संगीत की ओर अधिक होने लगा और आप शिक्षा ग्रहण करने हेतु काशी आए। लंबे इंतजार व कठिनाइयों से जूझने के बाद, आपने पं0 बड़े रामदास जी का शिष्यत्व ग्रहण किया। कई वर्षों तक कंठ शिक्षा लेने के पश्चात् आप वापस जम्मू पहुँचे और ऑल इंडिया रेडियो में म्यूजिक सुपरवाइजर के रूप में कार्य करने लगे। जम्मू के शारदा संगीत विद्यालय में आपने संगीत की शिक्षा भी दी। आप एक कुशल गायक, वादक, विद्वान, भाषाविद् के साथ ज्योतिषशास्त्र में भी अपनी विशेष पहचान रखते थे।

श्री नंदलाल जी

सुप्रसिद्ध शहनाई वादक के रूप में ख्याति प्राप्त श्री नंदलाल जी का जन्म काशी के भेलूपुर नामक स्थान पर सन् 1893 ई0 में हुआ था। आपके परिवार में शहनाई वादन पिछले 3 पीढ़ियों से चली आ रही है। आपके पिता श्री सुद्धुराम एवं पितामह श्री बाबूलाल अपने समय के प्रतिष्ठित शहनाई वादकों में से एक थे और आप सभी काशी नरेश के दरबार से पीढ़ी-दर-पीढ़ी जुड़े रहे। संगीत शिक्षा का आरंभ आपके पिता के देखरेख में हुआ। कुछ समय बाद दिल्ली के प्रसिद्ध शहनाई वादक श्री छोटे जी से आपने आगे की शिक्षा ली। सहसा आपने विचार किया कि अच्छा वादन करने के लिए अगर गायन की भी शिक्षा ली जाय तो संगीत सार्थक हो पाएगा और आपने काशी के गायनाचार्य पं. बड़े रामदास मिश्र जी से ख्याल, ठुमरी, टप्पा व अन्य शैलियों की उत्कृष्ठ शिक्षा ग्रहण की तदोपरान्त दूसरे घराने की ख्याल शैली को सिखने हेतु आपने उस्ताद हुसैन खाँ साहब को गुरु बनाया। इसके पश्चात् ध्रुपद अंग की शिक्षा हेतु श्री हरनारायण मुखर्जी और पानुबाबू सरीखे जैसे संगीत साधकों से शिक्षा ली।[11] अनेकों सिद्ध कलावन्तों से उत्कृष्ठ शिक्षा प्राप्त कर नन्दलाल जी ने ध्रुपद, धमार, ख्याल, ठुमरी, टप्पा, होली, चैती, कजरी सभी शैलियों को शहनाई पर उतार अपनी साधना, निष्ठा से काशी में लोकप्रिय शहनाई वादक के रूप में अपनी पहचान बनाई। पिता के मरणोपरान्त आपको काशी नरेश के दरबार में नियुक्त किया गया। आपने आकाशवाणी केन्द्रों के बड़े-बड़े संगीत समारोहों में बनारस अंग की वादन शैली को शहनाई पर उतार कर संपूर्ण विश्व में ख्याति अर्जित की।

सिद्धेश्वरी देवी जी

संगीत जगत में ठुमरी गायिकाओं में शीर्ष स्थान रखने वाली विदुषी सिद्धेश्वरी देवी जी का जन्म सन् 1908 ई0 को काशी में हुआ। आप श्रीमती चन्दा बाई एवं श्याम जी की सुपुत्री थीं। बचपन में ही माता का देहान्त होने के कारण इनका लालन-पालन इनकी मौसी राजेश्वरी देवी जी ने किया। संगीत की प्रारम्भिक शिक्षा आपको आपकी मौसी से ही प्राप्त हुआ। तत्पश्चात् 11 वर्ष की आयु में प्रतिष्ठित सारंगीवादक श्री सिया जी मिश्र से आपने शिक्षण ग्रहण किया।[12]

चतुर्मुखी संगीत प्रतिभा को जानने की जिज्ञासा में आपने देवास के प्रसिद्ध गायक उस्ताद रज़्ज़ब अली खां एवं लाहौर के इनायत खां से भी शिक्षा प्राप्त की और अंत में बनारस घराने के संगीत साधक पं0 बड़े रामदास जी से चारों पट की गायकी का शिक्षण प्राप्त किया। सभी गायन शैलियों में निपुण व विद्वता होने पर भी आपका विशेष रुझान उपशास्त्रीय संगीत में था। जहाँ आप ठुमरी, दादरा, टप्पा शैलियों को पूरब अंग की गायन विशेषता के साथ श्रोता जनों के मध्य प्रस्तुत करती थीं। आपकी प्रभावशाली गायकी को देखते हुए भारत सरकार ने आपको पद्मश्री एवं राष्ट्रपति द्वारा संगीत नाटक अकादमी पुरस्कार से सम्मानित किया। इसके अलावा शांति-निकेतन द्वारा सर्वोच्च उपाधि 'देशीकोत्तम' एवं अन्य शैक्षणिक संस्थानों से आपको सम्मानित व गौरवान्वित किया गया।

दिल्ली के भारतीय कला केन्द्र में आपको बनारसी अंग के ठुमरी, टप्पा शैली की शिक्षा देने हेतु आमंत्रित किया गया और आपने वहीं पर रहने का निर्णय लिया। मधुमेह जैसी बिमारी से ग्रस्त होने के कारण दिल्ली में ही आपका निधन हो गया, किन्तु आपकी विरासत को आपकी दोनों पुत्रियां शांता देवी व सविता देवी आज भी जीवित रखी हुई हैं।

राजन-साजन मिश्र जी

काशी के मिश्र बन्धु अमरनाथ पशुपतिनाथ मिश्र के पश्चात् युगल गायक के रूप में जिन दो भाइयों ने संगीत जगत में खूब नाम कमाया उनका नाम पं0 राजन-साजन मिश्र है। अपनी गायकी से देश-विदेश तक काशी की संगीत परम्परा को जीवन्त रखने वाले श्री राजन मिश्र का जन्म काशी में कबीरचौरा मुहल्ले में 27 नवम्बर, सन् 1951 ई0 एवं साजन मिश्र का जन्म 1956 ई0 में हुआ था। आपके पिता काशी के श्रेष्ठ सारंगीवादक श्री हनुमान प्रसाद मिश्र जी थे इन्हीं के मार्ग-दर्शन में आपकी संगीत शिक्षा का श्री गणेश हुआ इसके पश्चात् पं0 बड़े रामदास जी का शिष्यत्व ग्रहण कर बड़े ही तनमयता के साथ आपने संगीत की शिक्षा प्राप्त की। राजन मिश्र जी

ने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में समाजशास्त्र से स्नातकोत्तर एवं साजन मिश्र ने स्नातक की परीक्षाएं उत्तीर्ण की। चारों पट की गायिकी में समान अधिकार रखने वाले पं0 रामदास जी की मृत्यु के पश्चात् आपने अपने चाचा श्री गोपाल मिश्र के साथ दिल्ली में रहकर संगीत की शिक्षा ली और धीरे-धीरे इस युवा युगल जोड़ी ने अपनी प्रभावशाली गायिकी से श्रोताओं के मध्य अपना स्थान बनाना प्रारम्भ कर दिया।

दमदार गायकी, सुरताल पर विशेष अधिकार, मित्रवत् व्यवहार, मिलनसार व्यक्तित्व, विनम्रता, शालीनता, विवेकपूर्ण साधना और मंच चतुरता जैसे अनेकानेक विशेषताओं के साथ संगीत प्रेमियों को मंत्रमुग्ध कर अपनी गायकी का प्रभाव आप उनके मानस पटल पर छोड़ जाते थे। आकाशवाणी केन्द्रों, संगीत सम्मेलनों, भारत सरकार द्वारा आयोजित संगीत नाटक अकादमी के कार्यक्रमों में देश-विदेश जाकर आपने अपनी गायकी का लोहा मनवाया। आपके कुशल संगीत सेवा को देखते हुए भारत सरकार द्वारा सन् 2007 ई0 में कला के क्षेत्र में आपको 'पद्मभूषण' के सम्मान से नवाजा गया। इसके अतिरिक्त संगीत नाटक अकादमी पुरस्कार, गन्धर्व राष्ट्रीय पुरस्कार, प्रधानमंत्री द्वारा संस्कृत अवार्ड, गन्धर्व सम्मान एवं काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से डॉक्ट्रेट की उपाधियों से आपको नवाजा गया।[13] 25 अप्रैल 2021 को श्री राजन मिश्र जी के निधन के पश्चात् ये युगल जोड़ी टूट गई जिससे संगीत जगत् को अपूरणीय क्षति का सामना करना पड़ रहा है।

पं0 बड़े रामदास मिश्र जी की शिष्य परम्परा में इन महान शिष्यों के अतिरिक्त और भी शिष्य हैं जिन्होंने इनकी शिष्य परम्परा को देश-विदेश में जन-जन तक पहुँचाते हुए संगीत जगत् में अपना विशेष योगदान दिया और काशी को गौरवान्वित भी किया।

पं0 बड़े रामदास मिश्र जी ने अपना सम्पूर्ण जीवन संगीत की साधना एवं संगीत की सेवा में व्यतीत कर दिया। अपने अंत समय में पं0 जी ने अपनी नाड़ी का अवलोकन करते हुए अपने जीवन की बची अवधि में लगभग 3 से 4 बंदिशें गाई और कहा अब चलते हैं। इस प्रकार उन्होंने अपने नश्वर शरीर का 1960 ई0 में 83 वर्ष की अवस्था में त्याग किया और पंचतत्वों में विलीन हो गए।

गायनाचार्य जी के सांगीतिक योगदान को देखते हुए काशी सनातन विद्यापीठ द्वारा सन् 1926 ई0 को 'संगीताचार्य' एवं 'गायनाचार्य' की, सन् 1935 ई0 में हरिनाम प्रदायिनी द्वारा 'संगीत कला निधि' एवं 1927 ई0 में भारत धर्म महामंडल द्वारा 'संगीत भूषण' उपाधियों से अलंकृत किया गया।[14] आप जैसे दैदीप्यमान, प्रकाण्ड विद्वान एवं कुशल वाग्गेयकार को संगीत जगत सदैव आपके शिष्यों के माध्यम से स्मरण करता रहेगा। आपके शिष्यों के गायन-वादन में आपकी विशेष छवि सदैव दिखाई पड़ती रहेगी और सदियों तक अमरत्व को प्राप्त करती रहेगी।

पाद टिप्पणी

1- मिश्र, कामेश्वर नाथ, काशी की संगीत परम्परा (संगीत जगत को काशी का योगदान), भारत बुक सेन्टर, लखनऊ, पृ0 104

2- वही, पृ0 105

3- मिश्र, राजेश्वर प्रसाद, साक्षात्कार द्वारा प्राप्त बन्दिश, बनारस घराना

4- वही

5- मिश्र, आशीष, साक्षात्कार द्वारा प्राप्त रचना

6- गर्ग, डॉ0 लक्ष्मीनारायण, भारत के संगीतकार, संगीत कार्यालय हाथरस, पृ0 678

7- मिश्र, कामेश्वर नाथ, काशी की संगीत परम्परा (संगीत जगत को काशी का योगदान), भारत बुक सेन्टर, लखनऊ, पृ0 106

8- श्रीवास्तव, पं0 हरिश्चन्द्र, हमारे प्रिय संगीतज्ञ, संगीत सदन प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ0 164

9- झा, नरेन्द्र, साक्षात्कार द्वारा प्राप्त, बनारस घराना

10- गर्ग, लक्ष्मीनारायण, भारत के संगीतकार, संगीत कार्यालय हाथरस, पृ0 1233-1235

11- पर्वतकर, वनमाला, संगीतमय बनारस, शारदा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, पृ0 209

12- शुक्ला, मधुरानी, अनहद लोक, पाठक पब्लिकेशन, पृ0 255

13- भक्त नारायण, हमारे संगीतकार नर्तक, गायक एवं वादक, वी0 एण्ड एस0 पब्लिशर्स, पृ0 114

14- मिश्र, कामेश्वर नाथ, काशी की संगीत परम्परा (संगीत जगत को काशी का योगदान), भारत बुक सेन्टर, लखनऊ, पृ0 106

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1- जौहरी, रेणु, भारतीय संगीत जगत् में वाराणसी का योगदान, कलासिकल पब्लिशिंग कंपनी, नई दिल्ली-1101

2- सिंह, लावण्य कीर्ति 'काव्या', भारतीय संगीतज्ञ गायक, वादक एवं नर्तकों के शब्दचित्र, कनिष्क प्रकाशक

3- पोहनकर अंजली, सफर ठुमरी गायकी का, कनिष्क पब्लिशर्स, नई दिल्ली।

4- श्रीवास्तव, पं0 हरिश्चन्द्र, हमारे प्रिय संगीतज्ञ, संगीत सदन प्रकाशन, इलाहाबाद

5- गर्ग, लक्ष्मीनारायण, भारत के संगीतकार, संगीत कार्यालय हाथरस

6- पर्वतकर, वनमाला, संगीतमय बनारस, शारदा संस्कृत संस्थान, वाराणसी

7- शुक्ला, मधुरानी, अनहद लोक, पाठक पब्लिकेशन

8- भक्त नारायण, हमारे संगीतकार नर्तक, गायक एवं वादक, वी0 एण्ड एस0 पब्लिशर्स

9- मिश्र, कामेश्वर नाथ, काशी की संगीत परम्परा (संगीत जगत को काशी का योगदान), भारत बुक सेन्टर, लखनऊ

सङ्गीतरत्नाकरवर्णित पिण्डोत्पत्ति प्रकरण का संक्षिप्त अध्ययन

कु० बन्दना एवं प्रो० के० शशि कुमार***

भारतीय सङ्गीत में नाद शब्द का बड़े व्यापक अर्थ में प्रयोग हुआ है। व्यक्त-अव्यक्त, आहत-अनाहत, वर्णयुक्त-वर्णरहित, नियमित-अनियमित, सतत्-असतत् आदि जितने भी रूप हैं सभी को 'नाद' शब्द अपने में समाहित किये हुये है।

भौतिक शास्त्रियों के अनुसार ध्वनि दो प्रकार की है- सङ्गीतोपयोगी ध्वनि जिसे हम **नाद** कहते हैं, सङ्गीतेतर ध्वनि जिसे हम **राव** कहते हैं। सभी प्रकार की ध्वनियाँ कंपन से ही उत्पन्न होती हैं। नाद मुख्य रूप से दो प्रकार का होता है, अनाहत और आहत।

अनाहत नाद बिना किसी आघात अर्थात् जो ध्वनि स्वतः या प्राकृतिक रूप से उत्पन्न होता है अनाहत नाद कहलाता है, जैसे- बादल की गरजना, बिजली कड़कना, हवाओं का बहना, बारिश की झमझमाहट आदि। किन्तु विभिन्न ग्रन्थों में अनाहत नाद को योगिगम्य माना गया है जो योगियों द्वारा साधना करके अपने शरीर के भीतर सुना जा सकता है और वह नाद मुक्तिदायक होता है।

आहत नाद आघात से उत्पन्न होता है जो सामान्य मनुष्य के वाचिक व्यवहार का आधार है। आहत नाद सतत् और नियमित होने के कारण रंजकता उत्पन्न करता है इसलिए यह सङ्गगीतोपयोगी होता है।

नाद मुलतः शरीर से उत्पन्न होता है। इसलिए नाद की अभिव्यक्ति शरीर (पिण्ड) से होने के कारण सर्वप्रथम ग्रन्थकार (शार्ङ्गदेव) ने पिण्ड का निरूपण किया है।

सङ्गीत का मुख्य उपादान नाद है और नाद के द्वारा साधना करने वाले सङ्गीतज्ञ को उसके सही प्रयोग के दृष्टि से नादोत्पादक अङ्गो का और वे अङ्ग जिसके घटक है, उस अङ्गी शरीर का ज्ञान होना अति आवश्यक है। नाद प्रशंसा के अन्तर्गत कहा गया है कि यह जगत् नाद के अधीन है नाद से ही वर्ण, वर्ण से पद, पद से वाक्य व्यक्त होता है और वाक्य से ही इस जगत् का व्यवहार होता है। इसलिए शब्द को ब्रह्म और ईश्वर का रूप माना गया है अर्थात् शब्द ही ब्रह्म है उसी की सत्ता है सम्पूर्ण जगत् शब्दमय है शब्द से ही संपूर्ण संसार गतिशील है।

सृष्टि की उत्पत्ति शब्द से हुई और नष्ट भी शब्द के द्वारा होगा। इसी शब्द-ब्रह्म को नाद-ब्रह्म कहा गया है। शब्द का आरम्भ 'ओउम्' है जो अनन्त काल तक बना रहेगा। नाद ब्रह्म की उपासना से ही ब्रह्मा-विष्णु, महेश तीनों सन्तुष्ट होते हैं जो समस्त प्राणियों में चैतन्य और आनन्दमय है।

प्राण और अग्नि के संयोग से नाद शब्द की व्युत्पत्ति होती है कहने की इच्छा रखता हुआ यह आत्मा मन को प्रेरित करता है, मन देह में स्थित अग्नि पर आघात करता है वह अग्नि वायु को प्रेरित करता है तब ब्रह्मग्रन्थि में स्थित वह वायु ऊपर की ओर चलता हुआ क्रम से नाभि, हृदय, मूर्धा से होते हुए मुख में ध्वनि को आविर्भाव करता है।

नाद के तीन स्थान मन्द्र (हृदय), मध्य (कण्ठ) तथा तार (मूर्धा) से उत्पन्न होता है।

इस दृष्टि से शारङ्गदेव ने पिण्ड की उत्पत्ति और रचना का निरूपण किया है।

शार्ङ्गदेव के पूर्वज भास्कर आयुर्वेद के प्रकाण्ड विद्वान तथा संरक्षक थे। शार्ङ्गदेव स्वयं आयुर्वेदाचार्य होने के कारण आयुर्वेद के आधार पर गर्भ में जीव के प्रवेश से लेकर हर महीने भ्रूण में होने वाले परिवर्तनों, विकासों की अवस्थाओं का संक्षिप्त लेकिन संपूर्ण निरूपण सङ्गीतरत्नाकर के स्वरगताध्याय के द्वितीय प्रकरण (पिण्डोत्पत्ति) के अंतर्गत किया है। शार्ङ्गदेव कृत सङ्गीतरत्नाकर का सङ्गीत के अत्यंत विशाल और व्यापक क्षेत्र, विषय के स्पष्ट, सूक्ष्म और व्यवस्थित निरूपण तथा प्रमाणिकता की दृष्टि से सङ्गीत के शास्त्र ग्रंथों में महत्वपूर्ण स्थान है। यह एक मात्र ऐसा ग्रन्थ है जो संस्कृत में लिखे गये सङ्गीतशास्त्र के सबसे लंबे ग्रन्थों तथा जिसका पाठ शुद्ध अविकल-अखंडित रूप में प्राप्त है। सङ्गीत 'गीत, वाद्य तथा नृत्य' के तीनों अंगों का लक्षण ग्रन्थ है। इसे सप्ताध्यायी के नाम से जानते हैं। वे सप्त अध्याय निम्न हैं-

1. स्वरगताध्याय- आठ प्रकरण-i. पदार्थ संग्रह, ii. पिण्डोत्पत्ति, iii.नादस्थानश्रुतिस्वरजातिकुलदेवता, iv. ग्राममुर्च्छनाक्रमतान, v.साधारण, vi. वर्णालंकार, vii. जाति, viii. गीतिप्रकरण।
2. रागविवेकाध्याय- ग्रामराग, देसीराग।
3. प्रकीर्णकाध्याय- वाग्गेयकार, गायकभेद, गमक, स्थाय, आलप्ति, वृंद।
4. प्रबंधाध्याय- प्रबंध के तत्व, प्रबंधभेद, प्रबंध के लक्षण तथा गीत के गुणदोष।

* शोध छात्रा, (नेट/जे.आर.एफ.) गायन विभाग, संगीत एवं मंच कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।
* * प्रोफेसर, गायन विभाग, संगीत एवं मंच कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

5. तालाध्याय- ताल के तत्व, मार्गताल, गीतक, देशीताल और ताल प्रत्यय।

6. वाद्याध्याय- चतुर्विध वाद्यों की बनावट, वादनशैली, निर्गीत।

7. नर्तनाध्याय- नृत्य के तत्व, नृत्यविधाएँ।

शार्ङ्गदेव ने पिण्डोत्पत्ति प्रकरण में नाद के पश्चात ब्रह्म के स्वरूप का वर्णन किया है-

अस्ति ब्रह्म चिदानन्दं स्वयंज्योतिर्निरञ्जनम्।

ईश्वरं लिङ्गमित्युक्तमद्वितीयमजं विभुः॥

निर्विकारं निराकारं सर्वेश्वरमनश्वरम्।

सर्वशक्ति च सर्वज्ञं तदंशा जीवसंज्ञकाः॥''[1]

विभिन्न ग्रन्थों में ब्रह्म के स्वरूप को दर्शाया गया है जो एक ही तथ्य सिद्ध करता है कि वह परमपुरूष सर्वशक्तिमान है, जिनको शास्त्रों में सत्रूप चिदानन्द, स्वयंज्योति, निरंजन, ईश्वर अद्वितीय, अजन्मा, व्यापक, निर्विकार, निराकार, पूरे जगत का कर्ता, नाशरहित, सर्वशक्तिमान, सर्वज्ञ आदि संज्ञा से जाना जाता है। ग्रन्थकार ने इन श्लोकों में वेदान्त दर्शन के अनुसार ब्रह्म के स्वरूप का और अगले श्लोकों में ब्रह्म के मनुष्य शरीर में संक्रमण करने के क्रम का निरूपण किया है।

वेदान्त में ब्रह्म के दो रूप माने गये हैं-निर्गुण और सगुण।

तात्विक दृष्टि से दोनों में कोई भेद नहीं है, केवल दृष्टिकोण का भेद है।

व्यावहारिक दृष्टि से ब्रह्म सगुण हैं और परमार्थिक दृष्टि से निर्गुण है।

दोनों एक ही सत्ता के दो नाम हैं, जैसे नाट्यशाला में किसी अन्य व्यक्ति की भूमिका निभाने वाला राम नामक व्यक्ति वहाँ नट कहलाता है लेकिन नाट्य से बाहर राम ही रहता है।

जीव स्वरूप

परब्रह्म ने अपने आनन्द के लिए माया द्वारा इस जगत् की सृष्टि की है जो उसी के द्वारा जन्मता है, अंततः उसी में समा जाता है। किन्तु जीव का मोक्ष तो जन्म-जन्मांतर के फलों के बाद ही होता है। अनादि कर्मों से नियंत्रित जीव उस जाति से युक्त शरीर, आयु, कर्म से उत्पन्न भोग को हर जन्म में प्राप्त करता है। भारतीय दार्शनिक मानते हैं कि मनुष्य का स्थूल शरीर बार-बार नष्ट होने पर भी सूक्ष्म शरीर तब तक नष्ट नहीं होता जब तक जीव मोक्ष नहीं हो जाता। यह सूक्ष्म शरीर ही स्थूल शरीर की उत्पत्ति और कर्मफल के भोग का कारण होता है। जीवों में मनुष्य देह की प्राप्ति सर्वश्रेष्ठ है ऐसा दार्शनिक एवं वैज्ञानिकों द्वारा सिद्ध किया गया है तथा हम स्वयं अनुभव कर सकते हैं।

जीव-आत्मा और जगत् का अभेद

ते जीवा नात्मनो भिन्ना भिन्नं व नात्मनो जगत् ।

शक्त्या सृजन्नभिन्नोऽसौ सुवर्ण कुण्डलादिव॥

सृजत्यविद्ययेत्यन्ये यथा रज्जुर्भुजङ्गमम्॥''[2]

अर्थात् वे जीव आत्मा से भिन्न नहीं है और न ही जगत् आत्मा से भिन्न है। यह आत्मा अपनी शक्ति से जगत् की सृष्टि करता हुआ भी उससे उसी तरह अभिन्न है। जैसे सोना कुंडल आदि आभुषणों से भिन्न नहीं है। अन्य मतानुसार अविद्या के द्वारा जगत् की सृष्टि करता है यथा रस्सी साँप की सृष्टि करती है।

यहाँ ग्रन्थकार ने आत्मा और जीव के संबंध के बारे में वेदान्त के दो मतों-परिणामवाद और विवर्तवाद का भेद दिखाते हुए आत्मा और जगत् का ऐक्य सिद्ध किया है।

परिणामवाद के अनुसार आत्मा और जीव में अंश-अंशी भाव से और जीव तथा जगत् में कारण-कार्य भाव से अभेद है क्योंकि आत्मा का ही एक अंश जीव है और जीव का परिणाम ही जगत्; जैसे सोने और कुंडल आदि आभूषणों में अभेद है। कुंडल आदि सोने का परिणाम है लेकिन जैसे कुंडल बनने के बाद सोना उससे अभिन्न है उसी तरह जगत् की सृष्टि होने पर ब्रह्म का अंशरूप जीव भी जगत् से अभिन्न रहता है।

माया अथवा अविद्या ब्रह्म की इच्छाशक्ति है जिसके द्वारा वह जगत् की सृष्टि करता है। इस अविद्या की दो शक्तियाँ हैं-आवरण और विक्षेप। आवरण शक्ति वस्तु के शुद्ध स्वरूप को ढक देती है और तब विक्षेप शक्ति का उस वस्तु में किसी अन्य वस्तु का आरोप कर देती है। इस प्रकार आवरण और विक्षेप के द्वारा मूल स्वरूप ढका जाकर अन्य वस्तु का अरोप होने के बाद जो मिथ्या रूप दिखाई देता है वह 'विवर्त' कहलाता है। जैसे, अँधेरे में पड़ी रस्सी के असली स्वरूप पर आवरण पड़ कर उसमें साँप का अरोप होना और तब रस्सी को साँप ही समझ लिया जाना। यही वेदान्त में 'विवर्तवाद' कहलाता है। इसके अनुसार यह जगत् आत्मा का उसी तरह विवर्त है जैसे साँप रस्सी का विवर्त है।

सृष्टि का क्रमः

आत्मनः पूर्वमाकाशस्ततो वायुस्ततोऽनलः॥

अनलाज्जलमेतस्मात्पृथिवी समजायत।

महाभूतान्यमून्येषा विराजो ब्रह्मणस्तनुः॥''[3]

आत्मा से सबसे पहले आकाश, आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल, और जल से पृथ्वी उत्पन्न होती है। ये आकाश आदि महाभूत विराट् ब्रह्म का शरीर है।

ब्रह्म ब्रह्माणमसृजत्तस्मै वेदान्प्रदाय च।

भौतिकं वेदशब्देभ्यः सर्जयामास तेन तत्॥''[4]

ब्रह्म ने ब्रह्मा को उत्पन्न किया और उसे वेदों को देकर ब्रह्मा के द्वारा वेद शब्दों से भौतिक (जगत्) की सृष्टि कराई।

ब्रह्म ने स्वयं ब्रह्मा और वेदों को उत्पन्न किया। फिर स्वयं प्रयोजक कर्ता (निमित्तस्वरूप) रह कर ब्रह्मा को प्रयोज्य कर्ता (जिसके द्वारा कोई काम कराया जाय) बनाकर उसके द्वारा भौतिक जगत् की सृष्टि कराई। 'वेद शब्दों के द्वारा' कहने का आशय यह है कि जगत् की सृष्टि का क्रम अनन्त काल से चला आ रहा है लेकिन प्रत्येक व्यक्तिगत क्रम में कल्पान्तरों में हुई सृष्टि का स्मरण वेद शब्दों के द्वारा ही होता है-

तदाज्ञयाऽसृजद् ब्रह्मा मनसैव प्रजापतीन्।

तेभ्यस्तु रैतसी सृष्टिः,

उस (ब्रह्म) की आज्ञा से ब्रह्मा ने मन के द्वारा ही (दक्ष आदि) प्रजापतियों को उत्पन्न किया (और) उनके द्वारा रैतसी (वीर्य अथवा रक्त वाली) सृष्टि की।

शरीराणां निरूप्यते॥

स्वेदोद्भेदजराण्डहेतुभेदाच्चतुर्विधम्।

देहं यूकाऽऽदिनः स्वेदादुद्भेदात्तु लताऽऽदिनः॥

जरायोर्मानुषादीनामण्डात्तु विहगादिनः॥''[5]

स्वेद (पसीना), उद्भेद (अंकुर फूटना), जरायु (गर्भाशय) और अंडे के कारण के भेद से शरीर के चार प्रकार का निरूपण किया जाता है। पसीने से जूँ आदि का शरीर, अंकुरण से लता आदि का, गर्भाशय से मनुष्य आदि का और अंडे से पक्षी आदि का शरीर उत्पन्न होता है।

इनमें से मनुष्य शरीर में ही विविध नाद उत्पन्न करने की क्षमता है इसलिए मानव देह का ही निरूपण किया जा रहा है।

मनुष्य शरीर की उत्पत्ति का क्रम

आकाश में स्थित जीव, आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से वायुमंडल और वायुमंडल से बादल में आता है। यज्ञादि में आहुति के द्वारा तृप्त पृथ्वी के रसों को किरणों के माध्यम से सोखकर सूर्य, मेघ में उस घने रस को डालता है, जब मेघ वर्षा के साथ बरसता है, तब पृथ्वी से उत्पन्न वनस्पतियों (पेड़-पौधे), औषधियों (जड़ी-बूटी) में जीव प्रत्यक्ष रूप से संक्रमण करता है। उन वनस्पतियों एवं औषधियों से उत्पन्न अन्न पुरुषों के द्वारा खाया जाता है तब पुरुष शुक्लता (श्वेत शुक्ररूप) को प्राप्त करता है। जीव के कर्मों से प्रेरित वह गर्भ योनि गर्भाशय में गये हुए शुक्र और रस के संघात को आरंभ करता है अर्थात् क्रियाशील बनाता है।

पहले महीने में 'कलल' नामक द्रवरूप (केवल शुक्र और रज का मिश्र रूप) उत्पन्न होता है।

दूसरे महीने में घन (घना) हो जाता है। यह तीन प्रकार का हो सकता है-यदि पिण्डाकृति (ठोस लौंदा) हो तो पुरुष, पेश्याकृत (वर्गाकार मांस पिण्ड) हो तो स्त्री तथा अर्बुदाकृत (सेमल का फूल या लंबाकार) हो तो नपुंसक गर्भ होता है।

तीसरे महीने में मनुष्य शरीर की आकृति के पाँच प्रमुख अंग यानी सिर, दो हाथ और दो पैर पाँच अंकुरों के रूप में बनने लगते हैं।

दाढ़ी-मूँछ, दाँत आदि का जन्म के बाद होना गर्भ से उत्पन्न होने वाले का साधारण धर्म है। इसलिये इन्हें 'प्रकृति' कहा है, लेकिन ये जन्म के साथ ही उत्पन्न हो जायँ या बाद में भी उत्पन्न न हों अथवा यथास्थान न हों या निश्चित रूप से कम-ज्यादा हों, यह विकार है इसलिये इन्हें 'विकृति' कहा है।

चौथे महीने में उनके भावों की व्यक्तता भी उत्पन्न होने लगती है अर्थात् पुरुषों के शौर्यादि भाव, स्त्री के डर आदि और नपुंसक के संकीर्ण (मिले-जुले) होते हैं। इस महीने में विभिन्न अंग विकसित होते हैं। विभिन्न भाव यानि अनुभूति की शक्ति भी भ्रूण में इसी महीने में आती है।

मातृजं चास्य हृदयं विषयानभिकाङ्क्षति।

अतो मातुर्मनोऽभीष्टं कुर्याद्गर्भसमृद्धये॥''[6]

गर्भस्थ जीव चौथे महीने में अपने हृदय की इच्छाओं को माता के हृदय के द्वारा प्रकट करता है यानि माता के हृदय मे उन विषयों की इच्छा उत्पन्न होती है जिनकी इच्छा गर्भस्थ जीव को होती है। इसलिए गर्भस्थ के विकास के लिए माता की इच्छा पूरी करना चाहिए। माता की इच्छा पूरी न होने पर उत्पन्न हुए बालक में व्यंगता (विकार) हो सकती है। जैसे- कानापन, अंधापन, पंगुता आदि। इसलिए बुद्धिमानों ने गर्भवती को **दोहद** (दो हृदय) वाली कहा है। अतः द्विहृदया गर्भणी को जो-जो चाहे वह दे किन्तु गर्भनाशक भावों को छोड़कर।

पाँचवें महीने में चित्त प्रबुद्ध, मांस और रक्त की पुष्टाता होती है। इस महीने में चिकित्सक यंत्र की सहायता से बालक के हृदय की गति को सुन सकते हैं।

छठवें महीने में अस्थि, स्नायु (शिरा), नख, केश (बाल), रोमो की पृथकता और बल तथा वर्ण (रंग) में वृद्धि होता है।

सातवें महीने में अंगों की पूर्णता होती है लेकिन गर्भणी सबसे अधिक क्लांत होती है। इस मास के अंत में यदि गर्भ का जन्म हो जाये तो बालक को बड़ी ही सावधानी से पालने पर वह जीवित रह सकता है। ग्रन्थकार के द्वारा इस महीने में जांघ जिनके बीच में पड़ी हो ऐसी हाथों से कानों के छिद्रों को ढककर वह गर्भाशय में घिरा हुआ, गर्भ में रहने के कारण उद्विग्न रहता है,

पूर्वजन्मों के अनुभव की गयी यातनाएँ स्मरण करता हुआ मोक्ष के उपाय का ध्यान करता हुआ चिंतन में लगा रहता है।

आँठवें महीने में त्वचा, स्मृति और ओज (जो हृदय में होने वाला शुद्ध और कुछ पीले लाल रंग वाला) जीवन का कारण माना गया है क्योंकि ओज बार बार गर्भ से माता की ओर तथा पुनः माता से गर्भ की ओर चंचलता से दौड़ता है। इस महीने महीनें में उत्पन्न यह ओज स्थिर नहीं रहता इसलिये माता और बालक दोनों के जीवन का कारण होता है। अतः जब ओज गर्भ को छोड़कर माता में संक्रमण करता है तब गर्भस्थ में ओज का संचार न होने के कारण उस समय उत्पन्न हुआ बालक जीवित नहीं रहता। इसी तरह जब ओज गर्भ में गया हो तब बालक उत्पन्न हो तो माता जीवित नहीं रहती। यदि ओज संक्रमण की स्थिति में हो यानि न माता में हो और न गर्भस्थ में बल्कि बीच में हो, यदि उस समय बालक का जन्म हो तो माता और बालक में से कोई जीवित नहीं रहता। जब ओज माता में गया हो उस समय उत्पन्न बालक कभी-कभी कुछ देर के लिए जीवित रह जाता है इसका कारण यह है कि ओज संचार का कुछ संस्कार गर्भस्थ में रह गया हो जैसे शरीर से कट कर अलग हुए अंग में प्राण संचार का संचार रह जाने से वह अंग कुछ देर तक हिलता दिखायी देता है।

नवें महीने में प्रसव का समय होता है। माता की रसवाहा नाम की नाड़ी से संबद्ध गर्भ की नाभि में स्थित माता से गर्भ में आहार को रस रूप में ले जाने वाली अन्य नाड़ी होती है। इस महीने बालक अंगों को सिकोड़ें हुए ललाट में अंजलि किये हुए गर्भ में माता की पीठ की ओर स्थिर होकर रहता है। गर्भ के दाहिनी ओर स्थिति हो तो पुरूष, बाँयी ओर स्थित हो तो स्त्री और बीच में हो तो नपुंसक माना जाता है। नवें आदि इसलिए कहा गया है कि कभी-कभी दसवें और ग्यारहवें महीने में भी प्रसव होता है।

तब प्रसूती की प्रबल वायु के द्वारा (जन्म के समय बालक) नीचे (की ओर) सिर वाला कर दिया जाता है और पीड़ित देह वाला बालक योनि के छिद्र से होकर बाहर निकाल दिया जाता है। अतः जब उत्पन्न हुए कि पूर्व जन्म के बोध के संस्कार के कारण उस बालक की स्तनपान की प्रवृत्ति होती है यह जीव की नित्यता है।

उत्पन्न हुए बालक के भाव- (छः प्रकार)

1. **मातृजा भाव** (माता से उत्पन्न)- रक्त, चर्बी, मज्जा, तिल्ली, जिगर, गुदा, हृदय और नाभि इत्यादि मृदता से युक्त मातृजा भाव माने गये हैं।
2. **पितृजा भाव** (पिता से उत्पन्न)- दाढ़ी-मूछ, रोम, बाल, स्नायु, सिरा, धमनियाँ, नख, दांत, शुक्र आदि कठोर युक्त पितृजा भाव हैं।
3. **रसजा भाव** (रस से उत्पन्न)- शरीर का बढ़ना, रंग, लम्बाई, नींद, बल, स्थिति, लालच का न होना, उत्साह आदि रसजा भाव हैं।
4. **आत्मजा भाव** (आत्मा से उत्पन्न)- इच्छा, द्वेष, सुख-दुख, धर्म-अधर्म, भावना, प्रयत्न, ज्ञान और आयु, इंद्रियाँ आदि आत्मजा भाव हैं।

   पाँच ज्ञानेंद्रियाँ- श्रवण, स्पर्शन, दर्शन, रसन, घ्राण कही गयी है। इनकी क्रम से शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध ये विषय हैं।

   पाँच कर्मेंद्रियाँ- जीह्वा, हाथ, पैर, गुदा और उपस्थ कही गयी है। इनकी क्रम से क्रियाएं- बोलना, लेना, जाना, मलत्याग और रति (संभोग) है।
5. **सत्वसंभवा भाव-** तीन प्रकार का है- सत्व (आस्तिकता, शुद्ध धर्म के प्रति रूचि), रज (काम, क्रोध, मद आदि), तम (नीद्रा, आलस्य, प्रमाद, रोग, वंचना) है।
6. **सात्म्यजा भाव (चिर परिचित संस्कार से होने वाला)-** इद्रियों की प्रसन्नता, आरोग्य, आलस्य का न होना आदि सात्म्यजा भाव है।

शरीर में पंचमहाभूतों के गुण

शब्दं श्रोतं सुषिरतां वैविक्त्यं सूक्ष्मबोद्धृताम्।

बिलं च गगनाद्वायोः स्पर्शं च स्पर्शनेन्द्रियम् ॥

उत्क्षेपणमवक्षेपाकुञ्चने गमनं तथा।

प्रसारणमितीमानि पञ्च कर्माणि रूक्षताम्॥''[7]

अर्थात् आकाश से शब्द, श्रोत्र, सूक्ष्म छिद्रयुक्त, पृथकत्व, दुर्बोध अर्थ का भी अनायास ज्ञान होना और बड़ा छेद (आदि गुणों को शरीर लेता है)।

शरीर वायु से स्पर्श और स्पर्शनेन्द्रिय (त्वचा), ऊपर जाना, नीचे जाना और शरीर सिकोड़ना, जाना और फैलाना इस प्रकार के पाँच कर्म रूखापन लेता है।

रामचरितमानस में गोस्वामी दास जी कहते हैं-

क्षिति, जल, पावक, गगन, समीरा।

पंच रचित यह अधम शरीरा।

अर्थात् यह शरीर नश्वर है इसे ही स्थूल शरीर या पंच भौतिक शरीर कहते हैं। प्रकृति से यह शरीर निर्मित है व मृत्यु के पश्चात् समस्त तत्व अपने-अपने तत्वों से मिल जाते हैं।

भारतीय परम्परा में प्राचीन काल से ही इन तत्वों को देवस्वरूप माना गया है, किन्तु यदि हम इनकी उपेक्षा करते हैं तो इसका परिणाम हमें प्राप्त हो रहा है कि हम विभिन्न मानसिक, शारीरिक व आध्यात्मिक व्याधियों से जकड़े हुये हैं।

पंचमहाभूतों में आकाश का गुण शब्द, वायु का स्पर्श, तेज (अग्नि) का रूप, जल का रस तथा पृथ्वी का गन्ध है। संभवतः

इन्हीं पंचमहाभूतों की न्यूनता व अधिकता के कारण शरीर में विकृति आती है। जिसे हम आयुर्वेद के अन्तर्गत कफ-पित्त-वात के अन्तर्गत समझते हैं। जैसे-(कफ-पित्त-वात) के आधार पर कण्ठ ध्वनि के चार भेद बताये गये हैं-(1) खाहुल (कफ से उत्पन्न कण्ठ सुकुमार, मधुर, स्निग्ध युक्त होता है।), (2) नाराट (पित्त से युक्त कण्ठ गम्भीर होता है।), (3) बोम्बक (वात से उत्पन्न कण्ठ कठोर, रूखा होता है।), (4) मिश्रक (तीनों धातुओं के मिश्रण से) सन्निपात कहलाता है। इन धातुओं का संगीत में विशिष्ट प्रभाव है।

प्राणापानौ तथा व्यानसमानोदानसंज्ञकान्।

नागं कूर्म च कुकुरं देवदन्तं धनञ्जयम्॥

दशेति वायुविकृतीस्थता गृह्यति लाघवम्॥''[8]

अर्थात् प्राण, अपान, व्यान, समान, उदान संज्ञा वाले नाग, कूर्म, कुकर, देवदत्त और धनंजय से दस वायु के विकार और हल्केपन को शरीर वायु से ग्रहण करता है।

इन सभी वायुओं का शरीर में पृथक-पृथक स्थान व महत्व है, शरीर की समस्त क्रियाएं इन्हीं के माध्यम से सम्भव है, प्रस्तुत है प्रथम पाँच वायु के स्थान-

1. **प्राण**- यह इन पाँचों में प्रधान है, इसकी गति मुख और नासिका द्वारा होती है। नासिका के अग्रसभाग से लेकर हृदय तक शरीर में इसका देश है। शब्दोच्चारण, निःश्वास (साँस भीतर लेना), खाँसी आदि का कारण है।
2. **अपान**-यह नीचे की ओर गमन करने वाला है, नाभि से लेकर पाद तल तक इसका देश है। अपान वायु गुदा में, पुरुष जननेद्रिय में, कमर, पिंडली और पेट में, नाभि मूल में जांघों के जोड़ों, घुटनों में रहता है। इसका कर्म मूत्र-मल आदि का त्याग करना है। मूत्र, विष्ठा और गर्भ आदि इसी के वेग से नीचे उतरते हैं।
3. **समान**- हृदय से लेकर नाभि तक इसका देश है। खान-पान के रस को समस्त शरीर में यथायोग्य पहुंचा देना इसका काम है, इसकी गति सम है।
4. **व्यान**-यह समस्त शरीर में व्याप्त रहता हुआ ही समस्त नाड़ियों में विचरता है। व्यान वायु आँख, कान, टखनों, कमर और नाक के दोनों छिद्रों में रहता है। इसके कर्म धारण, त्याग (बाहर निकालना), ग्रहण (भीतर लेना) आदि हैं।
5. **उदान**- यह ऊपर की ओर गमन करने वाला है, कण्ठ में रहने वाला और सिर तक गमन करने वाला है। मृत्यु के समय इसी के सहारे सूक्ष्म शरीर का गमन होता है। यह मूलतः पैरों, हाथों, शरीर के जोड़ों में रहता है। इसके कर्म शरीर को ऊँचा उठाना और मरण आदि हैं।

शरीर के अंग-प्रत्यंग

छः अंग- सिर, दो हाथ, दो पैर और मध्य (धड़) है।

प्रत्यंग- त्वचा, कला, धातु, आशय, हृदय, स्त्रोत, जालानि, अस्थि, स्नायु, पेशी, सिरा, धमनी, मर्मस्थान, रोम, दाढ़ी-मूँछ, बाल और द्रव्यों की मात्रा आदि प्रत्यंग हैं।

आशय- रक्ताशय, श्लेष्माशय, आमाशय, पित्ताशय, पक्वाशय, मरूदाशय और मुत्राशय ये सात आशय हैं लेकिन स्त्रियों में गर्भाशय को मिलाकर कुल आठ आशय।

स्त्रोत- मल को बाहर ले जाने वाले नौ स्त्रोत हैं- दो कान, दो आँख, दो नासिका रंध्र, मुह, गुदा और शेफस् (पुरूष जननेद्रिय हैं) लेकिन स्त्रियों में तीन अधिक होते हैं, दो स्तनों में और स्त्री की योनि।

मर्मस्थान (प्राण के स्थान)- यह शरीर का ऐसा स्थान है जहाँ तीव्र आघात होने से मृत्यु हो जाती है।

हृदय- शुद्ध कफ और रक्त से उत्पन्न होने वाला कमल की आकृति वाला बीच में से खोखला, नीचे की ओर मुह वाला हृदय, यकृत और प्लीहा के बीच में स्थित होता है और यह चेतन का स्थान है। हृदयरूपी कमल जब बन्द हो जाता है तो वह आत्मा या जीव की निद्रा कहलाती है और हृदय कमल के खिलने पर आत्मा की जाग्रत अवस्था होती है। जब आत्मा को अपने चेतन या ब्रह्म स्वरूप का ज्ञान नहीं होता उस समय उसकी तीन अवस्थाएँ होती हैं-जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति। जीव रूप में यही अवस्थाएं क्रम से विश्व, तेजस और प्राज्ञ कहलाती हैं।

हृदयोग के अनुसार चक्र-

1. आधार चक्र (गुदा और लिंगों के बीच)
2. स्वाधिष्ठानचक्र (लिंग के मूल में)
3. मणिपूर चक्र (नाभि में)
4. अनाहत चक्र (हृदय में)
5. विशुद्धि चक्र (कंठ में)
6. ललना चक्र (कौड़ी में)
7. आज्ञा चक्र (भहों के बीच)
8. मनस् चक्र
9. सोमचक्र
10. सुधाधर चक्र

इन चक्रों में संगीत की सिद्धि बताई गई है जैसे-अनाहत चक्र के (1,8,11,12वें) दलों में स्थित जीव गीत आदि की

सिद्धि तथा (4,6,10वें) दलों में गीत आदि नष्ट होते हैं। विशुद्धि चक्र के (8,9,10,11,12,13,14,15वें) दलों में जीव आश्रित होने पर गीतादि की सिद्धि तथा (16वाँ) उसका विनाशक है। ललना चक्र के (10,11वें) पत्र में जीव स्थित होने पर गीतादि की सिद्धि तथा (1,4,5वें) दल में गीतादि नाशक माने जाते हैं। सुधाकर चक्र (ब्रह्मरन्ध्र) में स्थित जीव अमृत से अप्लावित हुए के समान संतुष्ट होकर गीतादि कार्यों को प्रकर्ष सहित साधता है। इसके अतिरिक्त जो बचे हुये चक्रों और पत्रों में स्थित जीव गीतादि की सिद्धि को कभी प्राप्त नहीं करता है।

ब्रह्मग्रन्थि

आधार चक्र से, दो अंगुल से ऊपर मेहन लिंग से दो अंगुल से नीचे एक अंगुल तपे हुए सोने की प्रभा वाला देह का मध्य (स्थान) है वहाँ पतली अग्निशिखा रहती है। उस आधार चक्र से (अर्थात् देहमध्य से) नौ अंगुल पर शरीर का कंद (विस्तार का कारण) है जो लम्बाई-चौड़ाई से चार अंगुल है। प्राचीन विद्वानों के द्वारा उसका नाम ब्रह्मग्रन्थि कहा है। बारह आरों वाला नाभिचक्र उसके बीच में अवस्थित जाल में स्थित मकड़ी के समान यह जीव वहाँ घूमता रहता है।

नाड़ियाँ- इनकी संख्या बहुत है लेकिन उनमें से चौदह मुख्य कही गयी है- सुषुम्णा, इड़ा, पिंगला, कुहू, सरस्वती, गान्धारी, हस्तिजिह्वा, वारुणी, यशस्विनी, विश्वोदरा, शंखिनी, पूषा, पयस्विनी तथा अलम्बुसा हैं। उनमें से आरम्भ की तीन (सुषुम्णा, इड़ा, पिंगला) मुख्य हैं और इन तीनों में से सुषुम्णा श्रेष्ठ, वैष्णवी (विष्णु देवता वाली) मुक्ति मार्ग को जाने वाली तथा कंद (ब्रह्मग्रन्थि) के बीच में स्थित है।

सामान्यतः संगीत सम्बन्धी ग्रन्थों में शरीर के निरूपण की कल्पना नहीं है लेकिन शार्ङ्गदेव स्वयं आयुर्वेद के ज्ञाता होने के साथ-साथ आयुर्विज्ञान सम्बन्धी ग्रन्थ के रचनाकार भी थे इसलिए उन्होंने वेदान्त और आयुर्वेद के आधार पर गर्भ में जीव के प्रवेश से लेकर हर महीने भ्रूण में होने वाले विकासक्रमों को बताया है। चूंकि नाद संगीत का मुख्य विषय है और नाद की उत्पत्ति शरीर (पिण्ड) से होने के कारण ग्रन्थकार ने सभी संगीत साधकों के ज्ञान हेतु पिण्ड की उत्पत्ति के सम्बन्ध में संक्षिप्त किन्तु संपूर्ण वर्णन किया है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. चौधरी, डॉ0 सुभद्रा, सङ्गीतरत्नाकर, खण्ड-1, राधा पब्लिकेशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, सन् 2000, पृ0 20-55
2. वही, पृ0 23
3. वही, पृ0 23
4. वही, पृ0 24
5. वही, पृ0 24
6. वही, पृ0 27
7. वही, पृ0 33
8. वही, पृ0 33
9. गोयन्दका, श्रीकृष्ण महर्षि पातंजलि कृत योगदर्शन, हिन्दी व्याख्या सहित, गीता प्रेस, गोरखपुर, 37वां संस्करण, संवत् 2066
10. आचार्य पं0 श्री राम शर्मा, शब्दब्रह्म, नादब्रह्म, युग निर्माण योजना प्रेस, गायत्री तपोभूमि, मथुरा संस्करण, सन् 2006
11. चौधरी, डॉ सुभद्रा, सङ्गीत के अनुसंधान की समस्याएं और भेद, कृष्णा ब्रदर्स, अजमेर, प्रथम संस्करण, सन् 1988
12. चक्रवर्ती, डॉ0 इन्द्राणी, संगीत मंजूषा, मित्तल पब्लिकेशन
13. दासगुप्ता, प्रो0 लिपिका, संगीतशास्त्र ग्रन्थ परम्परा : एक अध्ययन, प्रेस एण्ड पब्लिकेशन सेल, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, संस्करण 2009
14. शुक्ल, आचार्य (510) विद्याधर, कायचिकित्सा, (प्रथम भाग), चौखम्बा सुर भारती प्रकाशन, वाराणसी, संस्करण 2009
15. मुसलगाँवकर, डॉ0 (सौं0) विमला, भारतीय संगीतशास्त्र का दर्शन परक अनुशीलन, संगीत रिसर्च अकादमी, कलकत्ता के लिए विश्वविद्यालय प्रकाशन, चौक वाराणसी, प्रथम संस्करण, 1995

●

नाथ परम्परा में गोरखनाथ का महत्व

डॉली मेघनानी एवं प्रो0 सदानन्द शाही***

नाथ सम्प्रदाय के नौ नाथों में गुरु गोरखनाथ का महत्वपूर्ण स्थान है। वे नाथ सम्प्रदाय के संस्थापक और मत्स्येन्द्रनाथ के शिष्य थे। वे अपने युग के सबसे बड़े धार्मिक नेता के रूप में पहचाने गये। वास्तव में गोरखनाथ का प्रादुर्भाव उस काल में हुआ जब समाज में धर्म को विकृत करने वाले प्रवृत्तियाँ जन्म ले चुकी थीं, चारों ओर साम्प्रदायिक द्वेष का माहौल व्याप्त था। ऐसे में उन्होंने समाज में व्याप्त कर्मकाण्ड, पाखण्ड व कुरीतियों पर कठोर आघात किया। उन्होंने तीर्थयात्रा, व्रत-उपवास आदि को व्यर्थ बताते हुए सहजता पर विशेष बल दिया। गोरखनाथ ने विविध सम्प्रदायों एवं मतों के सार तत्व को नाथ सम्प्रदाय में समन्वित करके नाथ पंथ को लोक कल्याणकारी बनाया। उनके द्वारा बताए गए योग-मार्ग का विशेष महत्व है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी अपनी पुस्तक 'नाथ-संप्रदाय' में लिखते हैं-''शंकराचार्य के बाद इतना प्रभावशाली और इतना महिमान्वित महापुरुष भारतवर्ष में दूसरा नहीं हुआ। भारतवर्ष के कोने-कोने में उनके अनुयायी आज भी पाए जाते हैं। भक्ति आंदोलन के पूर्व सबसे शक्तिशाली धार्मिक आंदोलन गोरखनाथ का योग-मार्ग ही था।''[1]

गोरखनाथ के समय को लेकर विद्वान एकमत नहीं हैं। राहुल सांकृत्यायन ने इनका समय 845 ई0, हजारी प्रसाद द्विवेदी ने 9वीं शती, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 13वीं शती और डॉ0 पीतांबरदत्त बड़थ्वाल ने 11वीं शती माना है। गोरखनाथ की उत्पत्ति के विषय में अनेक किन्वदंतियाँ प्रचलित हैं। एक किन्वदंती की चर्चा करते हुए रांगेय राघव अपनी पुस्तक ''गोरखनाथ और उनका युग'' में लिखते हैं-''पार्वती ने शिव से एक भक्त को भस्म दिलाई, भक्त की पत्नी ने भस्म फेंक दी, शिव देखने गए, गोबर में बालक मिला। वह गोरक्ष था। शिव ने उसे गुरु ढूंढने भेजा। गोरक्ष ने समुंद्र में पीपल के पत्ते पर रोटी अर्पित की। राखो नामक मत्स्य ने खा ली और 12 वर्ष बाद एक बालक दिया जो शिव की आज्ञा से मत्स्येन्द्र नाम से गोरक्ष का गुरु हुआ।''[2] भारतीय दंत कथाओं में उनको सर्वव्यापक और सर्वशक्तिमान बताया गया है। जनश्रुतियों के अनुसार गोरखनाथ शिव रूप थे जिन्होंने माया जाल में फंसे अपने गुरु मत्स्येन्द्रनाथ का उद्धार किया था।

सर्वप्रथम डॉ0 पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल ने गोरखनाथ की रचनाओं का संग्रह 'गोरखबानी' नाम से प्रकाशित कराया। इसमें उन्होंने गोरखनाथ की 40 पुस्तकों का उल्लेख किया है जिसमें से 14 रचनाओं को प्रमाणिक माना है-'सबद', 'पद', 'सिष्या दरसन', 'प्राण संकली', 'नरवै बोध', 'आत्मबोध', 'अभैमात्राजोग', 'पन्द्रह तिथि', 'सप्तवार', 'मच्छीन्द्र गोरखबोध', 'रोमावली', 'ग्यान तिलक', 'ग्यान चौंतीसा' और 'पंचमात्रा'। गोरखनाथ की संस्कृत भाषा में भी रचनाएँ मिलती हैं- 'गौरक्षशतक', 'चतुरशीत्यासन', 'ज्ञानामृत', 'योगचिंतामणि', 'योगसिद्धांतपद्धति', 'विवेकमार्तंड' और 'सिद्धसिद्धांतपद्धति'। नाथ योगियों का एकमात्र उद्देश्य था-मानव मात्र में अपनी साधना का प्रचार-प्रसार करना। अतः गोरखनाथ ने शास्त्रीय भाषा परंपरा को त्याग कर सर्वसाधारण तक अपने उपदेशों को पहुंचाने के लिए जन समुदाय की भाषा का सहारा लिया।

गोरखनाथ ने अपनी कविता में योग साधना का मार्ग बतलाते हुए बाह्य आडंबरों का कड़ा विरोध किया। उन्होंने कर्मकाण्ड, तीर्थयात्रा, व्रत-उपवास, यज्ञ आदि सबको व्यर्थ बतलाया है। वे लिखते हैं कि मुसलमान कुरान पढ़ता है और ब्राह्मण वेदों का अध्ययन करता है। कापड़ी और संन्यासी तीर्थ यात्रा करके भ्रमित हो रहे हैं परंतु इनमें से कोई भी उस परम तत्व के भेद को नहीं जान पाया है। उस परमपद का रहस्य कठिन साधना से ही जाना जा सकता है ना कि मात्र पुस्तक ज्ञान या तीर्थ भ्रमण से-

काजी मुलां कुरांण लगाया, ब्रह्म लगाया वेदं।

कापड़ी संन्यासी तीरथ भ्रमाया, न पाया नृबांण पद का भेदं।।[3]

इसी प्रकार एक अन्य स्थान पर वे लिखते हैं कि मनुष्य तीर्थ यात्रा करके व्यर्थ में ही श्रम करता है। वास्तव में ईश्वर तीर्थयात्रा करने से नहीं प्राप्त होते हैं बल्कि उसे अंतः साधना के माध्यम से ही पाया जा सकता है क्योंकि समस्त तीर्थ मनुष्य के शरीर के भीतर ही विद्यमान है-

पंथि चले चलि पवनां तूटै, नाद बिंद अरू बाई।

घट ही भीतरि अठसठि तीरथ, कहाँ भ्रमै रे भाई।।[4]

गोरखनाथ एक योगी के लिए ब्रह्मचर्य व्रत के पालन को आवश्यक मानते हैं। वे कहते हैं कि वास्तविक योगी तो वह प्राणी है जो जप, तप और संयम से काम को जलाकर क्षार कर देता है। अर्थात् अपनी इंद्रियों को वश में कर लेता है। जो साधक अपनी इंद्रियों को विषयोन्मुख बनने से नहीं रोक पाता है, वह नाम मात्र का योगी है और उसने केवल भिक्षा मांग कर जीवन यापन करने और अपना पेट भरने के लिए योगी का वेश धारण किया है-

---

* शोध छात्रा, भोजपुरी अध्ययन केन्द्र, कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

* * प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

जप तप जोगी संजमसार। बाले कंद्रप कीया छार।

येहा जोगी जग मैं जोय। दूजा पेट भरे सब कोय।।[5]

गोरखनाथ ने सभी धर्म के लोगों के लिए योग साधना का मार्ग सुझाया था। चाहे वह हिंदू धर्म हो या इस्लाम। वे कहते हैं कि हिंदू मंदिर में ईश्वर की पूजा करता है और मुसलमान मस्जिद में अल्लाह की। परन्तु सच्चा साधक मंदिर-मस्जिद से परे सर्वत्र उस परमपद का ध्यान करता है-

हिंदू ध्यावै देहुरा मुसलमान मसीत।

जोगी ध्यावै परम पद जहां देहुरा न मसीत।।[6]

गोरखनाथ एक सच्चे साधक को मध्यम मार्ग अपनाने का उपदेश देते हैं। उनके अनुसार योगी को अत्यधिक आहार से भी बचना चाहिए और अत्यधिक व्रत उपवास भी नहीं करना चाहिए, उसे मध्यम मार्ग अपनाते हुए स्वल्पाहार से ही काम चलाना चाहिए जिससे उसका मन भी निश्चल रहेगा, शरीर में प्राण भी स्थिर रहेगा और इस प्रकार वह साधना करके उस परम तत्व की प्राप्ति भी कर सकेगा-

षांये भी मरिये अणषांये भी मरिये। गोरष कहै पूता संजमि ही तरिये।।

मधि निरंतर कीजै बास। निहचल मनुवा थिर होइ सास।।[7]

गोरखनाथ ने अपनी कविता में गुरु की महत्ता को भी प्रतिपादित किया है। उनके अनुसार जिस प्रकार दूध से धोने पर कोयला सफेद नहीं होता और पुष्प की माला पहनने से कौवा हंस नहीं हो सकता, उसी प्रकार गुरु की प्राप्ति के बिना मनुष्य को उस परम ज्ञान की प्राप्ति नहीं हो सकती-

गुर कीजै गहिला निगुरा न रहिला। गुर बिन ग्यांन न पायला रे भाईला।

दूधै धोया कोइला उजला न होइला। कागा कंठे पहुप माल हंसला न भैला।।[8]

गोरखनाथ ने कथनी और करनी में अभेद पर मुख्य रूप से बल दिया है। उनके अनुसार मनुष्य को अपनी कथनी के अनुरूप ही कर्म करना चाहिए। क्योंकि उपदेश देना तो सरल होता है परंतु उस उपदेश के अनुसार चलना कठिन कार्य होता है। जिस प्रकार से यदि कोई व्यक्ति बिना गुड़ खाये ही उसके मीठे स्वाद का बखान करने लगे या कोई व्यक्ति हींग खाकर कहे कि मैंने कपूर का रसास्वादन किया है तो ऐसे में वह केवल संसार को भ्रमित करता है। ठीक उसी प्रकार से यदि कोई व्यक्ति सांसारिक बंधनों में आसक्त रहते हुए योग-ज्ञान की बातें करता है तो वह केवल दूसरों को धोखा देता है-

कहणि सुहेली रहणि दुहेली बिन षायां गुड़ मीठा।

खाई हींग कपूर बषांणै गोरष कहै सब झूठा।।[9]

गोरखनाथ एक योगी के लिए मन की शुद्धता और दृढ़ता को आवश्यक मानते हैं। वे कहते हैं कि हंसना-खेलना कोई बुरी बात नहीं है। योगी को केवल अपना चित्त स्थिर रखना चाहिए। अतः एक योगी को हंसते खेलते हुए अपना जीवन बिताना चाहिए और उस परम ब्रह्म का ध्यान करना चाहिए। दिन-रात ब्रह्म ज्ञान की बातें करनी चाहिए। संसार में रहते हुए भी मन को काम और क्रोध में आसक्त नहीं करना चाहिए। जो योगी ऐसा करता है, ईश्वर सदैव उसके साथ रहते हैं-

हसिबा षेलिबा धरिबा ध्यांन। अहनिसि कथिबा ब्रह्म ग्यांन।

हसै षैले न करै मन भंग। ते निहचल सदा नाथ के संग।।[10]

गोरखनाथ सहज भाव के साथ उदात्त जीवन व्यतीत करने का उपदेश देते हैं। मनुष्य के जीवन में संयम और गांभीर्य का होना अति आवश्यक है। उनका कथन है कि एक योगी को बिना सोचे-समझे नहीं बोलना चाहिए। जोर से पैर पटकते हुए नहीं चलना चाहिए, सोच-विचार करके ही धीरे-धीरे पांव रखना चाहिए। मन में किसी तरह का अभिमान नहीं करना चाहिए। साधक को सामान्य जीवन व्यतीत करते हुए सहज अवस्था में रहना चाहिए-

हबकि न बोलिबा, ठबकि न चालिबा, धीरे धारिबा पांव।

गरब न करिबा सहजै रहिबा भणत गोरष रांव।।[11]

गोरखनाथ एक योगी को उपदेश देते हैं कि एक सच्चे साधक को अपनी साधना का रहस्य किसी को नहीं बताना चाहिए। उसे अपने मन के भीतर ही रखना चाहिए और सबसे मधुर वचन ही बोलना चाहिए। यदि सामने वाला व्यक्ति क्रोधित भी होता है तो सच्चे साधक को पानी हो जाना चाहिए। अर्थात् क्रोध न करके शांत ही रहना चाहिए। ऐसी स्थिति में सामने वाला का क्रोध स्वतः ही शांत हो जाएगा। योग मार्ग में तल्लीन साधक के मन में किसी प्रकार का उद्वेग नहीं आना चाहिए-

मन मैं रहिणां भेद न कहिणां, बोलिबा अमृत बांणी।

अगिला अगनी होइबा अवधू, तौ आपण होइबा पांणी।।[12]

गोरखनाथ के अनुसार एक सच्चे योगी को सांसारिक प्रपंच के प्रति सदैव तटस्थ रहना चाहिए। उसे संसार में मात्र द्रष्टा बनकर रहना चाहिए। संसार में जो भी वार्ता चल रही हो उसको केवल सुनना चाहिए और जो दृश्य हो, उसे देखना चाहिए परंतु उसके संबंध में अपना विचार व्यक्त नहीं करना चाहिए क्योंकि संसार की मोह माया से मुक्त रहकर मौन रहना ही सच्ची योग साधना है-

गोरष कहै सुणह रे अवधू जग मैं ऐसैं रहणां

आषै देषिबा कांनै सुणिबा मुष थैं कछू ना कहणां।।[13]

गोरखनाथ द्वारा बताए गये सहज साधना का मार्ग सबके लिए खुला था। उन्होंने अपने उपदेशों के माध्यम से भ्रमित जनता

को सही राह दिखाई। उन्होंने जनसमुदाय को मध्यम मार्ग का अनुसरण करने का उपदेश दिया। सहज और संयमित जीवन व्यतीत करने पर विशेष बल दिया। कालांतर में गोरखनाथ के नाथ पंथ की विचारधारा से संत मार्ग भी प्रभावित हुआ। डॉ0 रामकुमार वर्मा गोरखनाथ के महत्व को रेखांकित करते हुए लिखते हैं, ''गोरखनाथ ने नाथ संप्रदाय को जिस आंदोलन का रूप दिया, वह भारतीय मनोवृत्ति के सर्वथा अनुकूल सिद्ध हुआ। उसमें जहां एक ओर ईश्वरवाद की निश्चित धारणा उपस्थित की गई वहां दूसरी ओर धर्म को विकृत करने वाली समस्त परम्परागत रूढ़ियों पर कठोर आघात भी किया गया। जीवन को अधिक से अधिक संयम और सदाचार के अनुशासन में रखकर आध्यात्मिक अनुभूतियों के लिए सहज मार्ग की व्यवस्था करने का शक्तिशाली प्रयोग गोरखनाथ ने किया।''[14] स्पष्ट है कि नाथ परंपरा में गोरखनाथ का सर्वोच्च स्थान है।

संदर्भ ग्रंथ

1. नाथ सम्प्रदाय : हजारी प्रसाद द्विवेदी, हिंदुस्तानी एकेडेमी, उत्तर प्रदेश, इलाहाबाद, 1950, पृ0 96
2. गोरखनाथ और उनका युग : रांगेय राघव, आत्माराम एंड संस, दिल्ली-6, 1963, पृ0 54
3. गोरखबानी : संपादक-रामलाल श्रीवास्तव, गोरखनाथ मंदिर, गोरखपुर, दूसरा संस्करण 1996, पृ0 44
4. वही, पृ0 71
5. वही, पृ0 106
6. वही, पृ0 32
7. वही, पृ0 64
8. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास : डॉ0 रामकुमार वर्मा, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2017, पृ0 111
9. वही, पृ0 54
10. नाथ-सम्प्रदाय : हजारी प्रसाद द्विवेदी, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, उत्तर प्रदेश, इलाहाबाद, 1950, पृ0 183
11. वही, पृ0 12
12. वही, पृ0 30
13. वही, पृ0 34
14. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास : डॉ0 रामकुमार वर्मा, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2017, पृ0 112

●

विधि और मनोविज्ञान का परस्पर vUr lEc/k

प्रो0 धर्मेन्द्र कुमार मिश्रा एवं डॉ अंशु मिश्रा***

विधि और मनोविज्ञान मानव-ज्ञान की दो महत्त्वपूर्ण विधायें हैं। समाज-विज्ञान की इन दोनों शाखाओं को ज्ञान की एक पूर्ण विकसित पृथक विधा के रूप में मान्यता प्राप्त है। दोनों के पृथक विषय-वस्तु हैं, दोनों के अपने अलग क्षेत्र-विस्तार हैं तथा मानक भी हैं। फिर भी, वर्तमान अध्ययनों के सूक्ष्मविश्लेषण[1] से यह ज्ञात होता है कि इन दोनों ज्ञान की पूर्ण विकसित पृथक विधाओं में परस्पर समानता है। इनके मध्य निरन्तर अन्तःक्रिया भी होती है, और इनमें अन्योन्याश्रितता भी हैं, जिससे, विशेषतः विधि का क्षेत्र सम्पूरित होता है। जहाँ मनोविज्ञान का उद्देश्य एक ओर मानव-मन एवं मानव-व्यवहार का अध्ययन करना है, वहीं दूसरी ओर, विधि का उद्देश्य मानव-व्यवहार को नियन्त्रित करना है। सामान्यतया, विधि मानव-व्यवहार को नियन्त्रित करने वाले नियमों के समूह का ही एक नाम है, जिसे राज्य के लोगों के ऊपर आरोपित किया जाता है और उनमें प्रवर्तित कराया जाता है[2]। इस भाव में, विधि नियमों का वह समुच्चय है जो समाज के सदस्यों में कार्य-व्यवहार का प्रतिरूप निर्मित करता है। इस प्रकार, विधि, विशेषतः तीन अवयवों से युक्त दृष्टिगत होता है- प्रथम, विधि व्यापक है और वस्तुतः जीवन के प्रत्येक के क्षेत्र को समाहित करती है[3]। द्वितीय, यह केवल व्यापक ही नहीं है अपितु, चूँकि, यह उन नियमों को निरूपित करती है, जिनसे समस्त मानव समुदाय शासित होते हैं, इसलिए, विधि गत्यात्मक होती है अर्थात् ऊद्विकासी (ऊभरती) सामाजिक आवश्यकताओं का सामना करने के लिए विधि सतत परिवर्तनीय भी होती है[4]। जैसा कि, पूर्ववर्ती दो अवयव विधि के निमयनिर्मात्री तत्त्व पर संकेन्द्रित हैं, तृतीय, विधि समाज में विभिन्न हितों के मध्य उत्पन्न विवादों के समाधान के साधन के रूप में सहयोग करती है[5]। यद्यपि कि, मनोविज्ञान को, वर्तमान में, मानव-व्यवहारों और मानसिक प्रक्रियाओं के वैज्ञानिक अध्ययन के रूप में परिभाषित किया जाने लगा है । अतः यह विश्लेषित करने की आवश्कयता है कि मनोविज्ञान विधि के समस्त तीनों अवयवों से किस सीमा तक सरोकार रखते हुए विधि के क्षेत्र को समुन्नत करती है? मनोवैज्ञानिक किस प्रकार मानव-व्यवहार को समझने तथा उसे व्याख्यायित करने में विधि की सहायता करते हैं? चूँकि, विधिशास्त्रियों का भी प्रयत्न मानव-व्यवहारों को नियन्त्रित करने वाली विधि को समझना तथा उसे व्याख्यायित करना ही है।

अतः मानव-व्यवहारों को नियन्त्रित करने वाली विधि को भली-भाँति समझने तथा उसे व्याख्यायित करने में, यदि विधिवेत्ता में, मनोविज्ञान की अच्छी समझ हो, तो विधि की प्रतिपादना, निश्चय ही, ऋजु, निष्पक्ष एवं तार्किक होगी। इसलिए, मनोविज्ञान और विधि की परस्पर अन्तःक्रिया को विश्लेषित करने तथा उसकी प्रभावकारिता सिद्ध करने के लिए अध्येताओं को कुछ महत्त्वपूर्ण बिन्दुओं पर विचार करना आवश्यक है।

1. विधि और मनोविज्ञान की परस्पर संक्रिया के क्षेत्र

जैसा ज्ञात है कि दोनों विधाओं की स्थापित मान्यता वह मूल कारण अथवा प्रयोजन जानना है जिसके वशीभूत होकर मनुष्य कार्य करता है। इस विमर्श में, इसी मूल कारण को प्रकट करने में एक दूसरे से पूर्णतया सुभिन्न ज्ञान की दोनों विधायें किस प्रकार एक दूसरे के अभिन्न और पूरक हैं? उसी को जानने की चेष्टा की गयी है। साथ ही, यह भी स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है कि विधि के वह प्रमुख क्षेत्र कौन है? जहाँ परस्पर संक्रिया होती है[6]।

आपराधिक उत्तरदायित्व के निर्धारण में एक प्रमुख विनिर्धारक तत्व 'आपराधिक मनःस्थिति' है। इसके अतिरिक्त, आपराधिक उत्तरदायित्व से उन्मुक्ति के भी कतिपय आधार ऐसे हैं, जिसमें अभियुक्त के कार्य करते समय की मनोदशा को ध्यान में रख कर ही न्यायालय द्वारा दोषमुक्ति या दोषसिद्धि का निर्णय प्रदान किया जाता है। पुनश्च, प्रक्रियात्मक-न्याय के अनेक प्रक्रमों यथा- न्यायालय कक्ष से बाहर अन्वेषण एवं जाँच में नियुक्त अन्वेषण-अधिकारी या अन्य नियुक्त व्यक्ति के कार्यव्यवहार, पुलिस द्वारा की गयी पूछताछ, पूछताछ की पद्धति एवं उसके लिए अपनाये गये विभिन्न तरीके, अपराध की संस्वीकृति, अभियोजन हेतु नियुक्त विधि सलाहकार का चयन, ऐसे विभिन्न साक्षियों/आवश्यक व्यक्तियों से जानकारी प्राप्त करने के विभिन्न ढ़ंग, और इन सबके आधार पर आपराधिक रुपरेखा तैयार करना इत्यादि को यदि व्यावहारिक मनोविज्ञान के दृष्टिकोण से देखा जाय, तो इन सब पर मनोविज्ञान के पड़ने वाले प्रभाव को स्पष्टः देखा जा सकता है। इस प्रकार के अनेक अध्ययनों से प्राप्त निष्कर्षों में यह सलाह दी गयी है कि आपराधिक न्याय-प्रणाली में, यदि मनोवैज्ञानिक की सहभागिता हो, विशेषकर, प्रत्यक्ष साक्षी की विश्वसनीयता की परख आदि में, तो न्याय-प्रणाली में इस सहभागिता से वह कार्य संभव हो सकता है जो पूर्व में संभव नहीं था और कार्य-कारण प्रभाव को अधिक सरलता से पृथक किया जा सकता है।[7]

---

* आचार्य, (विधि) विधि संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

**सह-आचार्य, (राजनीतिशास्त्र), श्री बलदेव स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बड़ागाँव, वाराणसी- 221204, उ.प्र.

न्यायालय-कक्ष में किये जाने वाले विचारण के विभिन्न चरण, जैसे- साक्षियों की विभिन्न परीक्षा (मुख्य परीक्षा, प्रति-परीक्षा एवं पुनः परीक्षा आदि), उनके कथनों की विश्वसनीयता, यहाँ तक कि न्यायाधीश द्वारा विनिर्णित मामलों का समग्र विश्लेषण इत्यादि सभी को सामाजिक मनोविज्ञान की सहायता से परीक्षित एवं विश्लेषित किया जा सकता है। मुख्यतः, मनोविज्ञान मन के अध्ययन का विज्ञान है। दूसरे शब्दों में, यह मानव-व्यवहार मानव-मष्तिष्क की संक्रिया अथवा मष्तिष्कीय अंगों के अध्ययन का विज्ञान है। अतः विधि के समुचित ज्ञान के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि विधि के समस्त विषयों का व्यावहारिक अध्ययन मनोवैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य में किया जाय। जिससे मनुष्य के मष्तिष्क की संक्रिया अथवा मष्तिष्कीय अंगों के विशेष अध्ययन से आपराधिक विधि के क्षेत्र में दायित्व का निर्धारण करने में कठिनाईयाँ निवारित हो सके।

मनोविज्ञान और विधि का एक दूसरे से संबंध मुख्यतः तीन रूपों में स्थापित किया जा सकता है। प्रथम- **मनोविज्ञान और विधि,** जिसके अन्तर्गत मनोविज्ञान का कार्य विधिक-प्रणाली के प्रर्वतन का परीक्षण करना सम्मिलित होता है, द्वितीय- **विधि में मनोविज्ञान**, जिसमें विधिक-प्रणाली में, जिस प्रकार वह क्रियाशील है, उसमें मनोविज्ञान का प्रयोग और तृतीय- **विधि का मनोविज्ञान,** इसके अन्तर्गत मनोविज्ञान का प्रयोग विधि के समग्र परीक्षण के लिए किया जाता है।[8]

2. आपराधिक मनःस्थिति के सिद्धान्त का मनोवैज्ञानिक परिपेक्ष्य

विधि में, विशेषतः आपराधिक विधि के क्षेत्र में दायित्व निर्धारण के लिए पूर्णतया स्थापित यह एक प्रमुख सिद्धान्त[9] है कि 'मात्र कार्य के आधार पर किसी भी व्यक्ति को उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता है'। अभियुक्त का उत्तरदायित्व विनिर्धारित करने के लिए प्रत्येक दशा में युक्तियुक्त संदेह के इतर यह सिद्ध होना चाहिए कि आपराधिक-कार्य आपराधिक मनोभावना (दुराशय) से किया गया था। इस सूत्र वाक्य से ही दूसरे समनुषंगी विधि सिद्धान्त का जन्म होता है कि 'मेरी इच्छा के विरुद्ध किया गया कार्य मेरा कार्य नहीं है'।[10] आपराधिक मनःस्थिति के अन्तर्गत कई अन्य ऐसी चित्तवृत्तियाँ (मनोदशायें) यथा-इच्छा, आशय, हेतु व ज्ञान आदि सम्मिलित हैं, जो पूर्व वर्णित दोनों सिद्धान्तों को समझने और उनकी व्याख्या करने में अधिक सहयोगी हैं। यही सिद्धान्त आपराधिक दायित्व से उन्मुक्ति के मामलों में भी महती भूमिका निभाता है, जब विवशता, भूल, बाल्यावस्था, उन्मत्तता और मत्तता आदि अनारोग्यता की दशा में आपराधिक दायित्व का आरोपण नहीं किया जा सकता है।

इस प्रकार दंड विधि आपराधिक आशय *(मेन्स-रिया)* मात्र को दण्डित नहीं करती। इस आपराधिक आशय का जब कार्य *(एक्टस रियस)* के साथ सम्मिलन होता है, तब यह दण्डनीय होता है, वशर्ते कि ऐसे कार्य के पीछे का वह आपराधिक आशय न्यायालय में सिद्ध हो जाय। आपराधिक आशय का सिद्ध होना एक दुष्कर न्यायिक-प्रक्रिया का अंग है। इस कारण मात्र यह है कि मनुष्य के मन की गतिविधि मापने का पूर्व काल से ही कोई साधन प्राप्त नहीं था,[11] और उसको सही रूप से जानने की संभावना का आज भी कोई सटीक उपाय विकसित नहीं है।

अतः इन स्थितियों में न्यायिक प्रक्रिया के लिए आवश्यक साक्ष्यों (विशेषतः आपराधिक न्याय-प्रशासन के लिए) के विश्लेषण की दक्षता आवश्यक है और यह तभी संभव है, जब विधि-अध्येता को विधि के साथ-साथ मनोविज्ञान की दक्षता भी हो। मनोविज्ञान के अध्ययनों में यह पाया गया है कि मानव-मन में निर्मित होने वाला आशय सात प्रकार होता है[12]। जिसमें प्रथम तीन- दुर्भावनाग्रस्त, बुरा और स्वार्थपरक आशय कहलाते हैं। शेष चार इस विषय-विमर्श हेतु उपयुक्त नहीं हैं। प्रथम, दुर्भावनाग्रस्त आशय होता है, जो शारीरिक, मनोवैज्ञानिक अथवा भावनात्मक क्षति करने में पाया जा सकता है। यह आशय न केवल आशयित पीड़ित के प्रति आशय के चिह्न छोड़ देता है, अपितु परिवार और समुदाय के व्यक्तियों के चतुर्दिक इसका संकेत छोड़ता है। इस प्रकार के विभिन्न उदाहरण अपराधी और आतंकवादी के कृत्यों में पाये जाते हैं। द्वितीय, बुरा आशय कहलाता है जो व्यक्ति से मिश्रित रहता है। यद्यपि कि, इससे शारीरिक क्षति नहीं होती है फिर भी, मनोवैज्ञानिक अथवा भावनात्मक क्षति अवश्य होती है। यह विद्वेषकल्पित होता है। जहाँ जानबूझकर व्यक्ति विशेष का विकास अवरूद्ध किया जाता है, वहाँ बुरा आशय अवश्य विद्यमान रहता है। तृतीय, स्वार्थपरक आशय बतलाया गया है जो पूर्णतया स्वकेन्द्रित होता है। यह आशय अहंकेन्द्रित स्वभाव वाले व्यक्ति में पाया जाता है। ऐसा व्यक्ति स्व-इच्छापूर्ति में कार्य करते हुए अन्य को हानि करता है। इस प्रकार, एक न्यायाधीश, यदि इन मनोभावों को मनोविज्ञान के प्रतिपादनों के आधार पर भली-भाँति समझता है, तो निश्चय ही उसे आपराधिक न्याय-प्रशासन में, अभियुक्त की आपराधिक दुर्भावना सिद्ध करने में, कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिए।

3. आपराधिक मनःस्थिति के विभिन्न रूप और मनोविज्ञान

आपराधिक विधिशास्त्र में दायित्व के विनिर्धारण में तीन मानसिक अवस्थाओं का महत्वपूर्ण स्थान है। यह तीनों मानसिक अवस्थाएँ- स्वेच्छा, आशय और हेतु हैं। यह तीनों परस्परव्यापी एवं समतुल्य मनोदशाएँ है। आपराधिक न्याय-प्रशासन में इन तीनों पर सतर्क दृष्टि की आवश्यकता होती है, अन्यथा एक निर्दोष के दण्डित होने की प्रबल संभावना बनती है। यहाँ ध्यान देने योग्य यह है कि यह तीनों विधि की विषय-वस्तु नहीं हैं, बल्कि तीनों मनोविज्ञान की विषय-वस्तु हैं। तथापि, इन तीनों के विषय में संक्षिप्त में इतना जानना आवश्यक है कि कोई भी कार्य (आपराधिक-कृत्य) शारीरिक

स्पन्दन द्वारा इच्छा के परिणामस्वरूप ही होता है। प्रत्येक इच्छा, जो शारीरिक स्पन्दन को उत्तेजित करती है, 'स्वेच्छा' कहलाती है। यदि कार्य, ऐसी इच्छा, जो बिना किसी डर अथवा विवशता के बिना होता है, 'स्वैच्छिक कार्य' कहलाता है। इच्छित लक्ष्य को पाने की उत्सुकता, जो स्वेच्छा को क्रियाशील करती है, 'हेतु' है। इच्छित कार्य द्वारा वांछित परिणाम के प्राप्ति की आशा 'आशय' होती है। आशय मन की उस अवस्था का संकेत करता है, जबकि मनुष्य न केवल अपने व्यवहार (आचरण) के संभावी परिणाम को पहले से जानता है, वरन् उनकी इच्छा भी करता है। यही आशय आपराधिक विधिशास्त्र में उत्तरदायित्व के विनिर्धारण में सबसे महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। दूसरी ओर, आशय की तुलना में हेतु का उत्तरदायित्व के विनिर्धारण में कोई भूमिका नहीं है, बल्कि कभी-कभी दण्ड की मात्रा को कम करने का यह एक आधार हो सकता है।

इसके अतिरिक्त, 'ज्ञान' भी एक प्रकार की मानसिक अवस्था है, जो आशय की अनुपस्थिति में उत्तरदायित्व के विनिर्धारण में सहायक होती है। किसी बात को जानने का अर्थ उसके मानसिक ज्ञान से है। कार्य के परिणाम की पूर्व जानकारी ही ज्ञान कहलाती है। विधि के क्षेत्र में यह एक सर्वमान्य धारणा है कि प्रत्येक स्वस्थ मष्तिष्क (प्रज्ञावान) व्यक्ति अपने कार्य के प्राकृतिक परिणाम को जानता है। 'आशय' नितांत मष्तिष्कीय क्रिया है और बहुधा इसको साबित करना कठिन है[13]। अतः इसको परवर्ती परिस्थितियों और उस व्यक्ति के कार्यों से अनुमानित किया जाता है। ऐसे अनुमान कभी-कभी निश्चितता पर और कभी-कभी भिन्न मात्रा की संभाव्यता पर आधारित होते हैं। जबकि अनुमान लगभग निश्चित सा होता है, तब हम उसको ज्ञान पर आधारित करते हैं। तद्नुसार अपराधकर्ता के मष्तिष्कीय ज्ञान के आधार पर उत्तरदायित्व का विनिर्धारण करते हैं[14]।

आपराधिक न्याय-प्रशासन में विशेष रूप से 'आशय' अथवा 'ज्ञान' को सिद्ध करते समय अभियोजन अथवा उसका खण्डन करते समय बचाव पक्ष केवल आरोपित कार्य की प्रकृति या अन्य सहायक परिस्थितियों की सहायता से न्यायाधीश को किसी निष्कर्ष पर पहुँचने और उसके आधार पर उत्तरदायित्व के विनिर्धारण में मदद करते हैं। परन्तु यह सब मात्र अमूर्त साक्ष्यों पर आधारित होने के बजाय, यदि किन्हीं ठोस संज्ञानात्मक मनोविज्ञान[15] के सिद्धान्त की सहायता से सुस्थापित किया जाय, तो निश्चित ही न्यायालय द्वारा की गयी ऐसी दोषसिद्धि अथवा दोषमुक्ति अधिक वैज्ञानिक एवं सटीक तथा न्यायसंगत हो सकेगी। ऐसी दोषिता या निर्दोषिता में, किंचित भी, युक्तियुक्त संदेह का स्थान शेष नहीं रहेगा। इस प्रकार अभिनिर्धारित मामला पूर्णतया व्यावहारिक परिस्थितियों पर आधारित होगा।

यह कहना अतिशयोक्तिपूर्ण न होगा कि न्यायालय कक्ष में होने वाली विचारण की प्रक्रिया मात्र एक दवाब निर्मित करने वाला मनोवैज्ञानिक नाटक के अतिरिक्त कुछ नहीं है। वहाँ पर अभिप्रेरण का प्रश्न होता है। क्या यह स्नेह, घृणा, भय, लोभ या ईर्ष्या है? जिसने अभियुक्त के कार्य व्यवहार को प्रभावित किया। अथवा क्या वह अनुनय है? जिसने अधिवक्ता या साक्षियों को न्यायाधीश को प्रभावित करने का प्रयत्न किया और न्यायालय में तर्क के समय जूरी सभी को प्रभावित करने की कोशिश करता है। ऐसी दशा में शाश्वत और संज्ञानात्मक प्रक्रियायें भूमिका में आती हैं। प्रत्यक्ष साक्षी को यह स्मरण रखना और बतलाना होता है कि वह तथ्यगत घटना से संबंधित क्या देखा? उसे अपनी स्मृति ताजा करने का अवसर दिया जाता है। अन्ततः, वह निर्णय-प्रक्रिया, जहाँ पहुँचना मनोविज्ञान का लक्ष्य है और निर्णय, यदि त्रुटिपूर्ण है, तो निश्चय ही वहाँ पर अपराधी के दण्ड निर्धारण के विकल्प की संभावना है। न्यायालय-कक्ष के अन्दर चलने वाली प्रक्रियायें यह सब न्यायिक-प्रक्रिया के विभिन्न अंग हैं, जिसका प्रत्यक्षीकरण बड़ी आसानी से हो सकता है। इसके अतिरिक्त, न्यायालय-कक्ष के बाहर विचारण से इतर कई न्यायिक-प्रक्रिया के अंग हैं जो मनोविज्ञान की चिन्ता के महत्वपूर्ण विन्दु हैं। यदि कहा जाय तो अतिशयोक्ति नहीं होगी कि मनोविज्ञान के अनेक क्षेत्र विधि के कतिपय आयामों के लिए अधिक सुसंगत हैं[16]।

कतिपय मामलों में आपराधिक दायित्व का विनिर्धारण अभियुक्त के ज्ञान की विवेचना के आधार पर भी किया जाता है। आपराधिक न्याय-प्रशासन के क्षेत्र में आपराधिक विधिशास्त्र की स्थापित मान्यता है कि 'प्रत्येक व्यक्ति स्वस्थ मष्तिष्क होता है और अपने प्रत्येक कार्य के स्वाभाविक परिणामो ंको जानता है', को कदाचित इस आधार पर कि दायित्व से मुक्ति मिल सकती है कि अपराधकर्ता इसके विपरीत सिद्ध न कर दे। अर्थात् कार्य न तो आशय से युक्त होकर किया गया और न ही ज्ञान की संभावना पर आधारित था। इस प्रकार अनेकानेक मनोवैज्ञानिक अनुसंधानों द्वारा आपराधिक न्याय-प्रशासन करते समय न्यायालय द्वारा आपराधिक मनःस्थिति के संबंध में मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण को ध्यान में रखे जाने पर बल दिया गया है, उनमें से कुछ का उल्लेख निम्नवत् है।

4. आपराधिक मामलों के विनिर्धारण में मनोविज्ञान की भूमिका

आर बनाम ***मैकनाटन***[17]

इस आंग्ल मामले के निर्णय के परिणामस्वरूप इंग्लैण्ड में हाउस ऑफ लार्ड्स द्वारा पन्द्रह न्यायाधीशों को आपराधिक उत्तरदायित्व से उन्मत्ता के आधार पर बचाव के विषय पर प्रस्तुत किये गये आपराधिक मनःस्थिति की अनुपस्थिति के तर्क पर स्वयं प्रतिपादित प्रश्नों के उत्तर देने के किये गये निवेदन पर लार्ड्स द्वारा 14:1 के बहुमत से दिये गये प्रत्युत्तर में यह मत प्रकट किया गया कि अभियुक्त के चित्त की अवस्था पर, जब उसने कार्य किया था, विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए अर्थात् यह देखना चाहिए कि क्या अपराधकर्ता मष्तिष्क की किसी विकृति के कारण कार्य की प्रकृति और परिणाम जानने में असमर्थ था? क्या उसका मष्तिष्क इतना

अधिक विकृत हो गया था कि वह तत्समय विभेदकारी शक्ति खो चुका था? तो वह उन्मत्तता के आधार पर उत्तरदायित्व से बचाव का हकदार हो सकेगा, अन्यथा नहीं। इस तथ्य का ऑकलन तथा समुचित विश्लेषण किसी संज्ञानात्मक मनोविज्ञान के विशेषज्ञ (मनोवैज्ञानिक) द्वारा अधिक सर्तकता और सावधानी से संभव हो सकेगा, सिवाय कि एक विधिवेत्ता या अधिवक्ता के मात्र तर्क की अभ्यर्थना द्वारा।

***सम्राट** बनाम **धीरजिया**[18]*

इस मामले में इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने भारतीय दण्ड संहिता की धारा 300 के उपखण्ड चार के द्वितीय भाग में हत्या के आरोप को पुष्ट करने वाली विशिष्ट परिस्थिति को स्पष्ट करते हुए अभिनिर्धारित किया है कि हत्या के अपराध को इस खण्ड के उपबंध में वर्णित 'बिना किसी प्रतिहेतु' के अन्तर्गत लाने के लिए उसको बिना किसी दोष विमोचन की परिस्थिति के होना चाहिए। न्यायालय ने यहाँ इस बात की आवश्यकता पर बल दिया है कि कौन से तथ्य प्रतिहेतु का निर्माण करते हैं? और कौन से तथ्य प्रतिहेतु का निर्माण नहीं करते हैं? यह प्रश्न न्यायालय को अभियुक्त की कार्य कारित करने के समय की 'मनोवृत्ति' को ध्यान में रखकर विनिश्चत करना होता है। यहाँ यह बतलाना समीचीन होगा कि मनोवृत्ति का अध्ययन मनोविज्ञान की विषय-वस्तु है, न कि विधि की। परन्तु यह विधि के लिए यह एक अत्यन्त महत्वपूर्ण विषय है और इसका ज्ञान अधिवक्ता एवं न्यायाधीश को होना अपेक्षित है।

***पी रथीनम / नागभूषण पटनायक** बनाम **भारत संघ**[19]*

भारतीय उच्चतम न्यायलय ने आत्महत्या के प्रत्यत्न के आरोपित व्यक्ति के लिए भारतीय दण्ड संहिता 1860 की धारा 309 में उपबंधित दण्डात्मक प्रावधान को विश्लेषित करते हुए स्पष्ट किया है कि दण्डात्मक विधियों को मानवीय बनाने की आवश्यकता है और उसे मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से परखने की जरूरत है। इस मामले में उच्चतम न्यायालय ने संप्रीक्षित किया है कि :

> 'धारा 309, भा.द.वि. एक अविवेकपूर्ण और क्रूर प्रावधान है, जिसे काननू की पुस्तकों से निरसित कर दिया जाना चाहिए। जब हम इस अविवेकीय और अविचारणीय कृत्य के लिए वर्णित दण्ड की मात्रा[20] को देखते हैं तो यह ज्ञात होता है कि दाण्डिक उपबंध भय दिखलाने का कोई उपकरण नहीं है, बल्कि इसका उद्देश्य आरोपित को नैतिकता के पथ का प्रकाश दिखलाना तथा उसके व्यतिक्रमित मष्तिष्क को दिशा-निर्देश देना है जिससे वह ऐसे नैराश्यपूर्ण कार्य में अपने को संलग्न न करें।[21]

न्यायालय ने अपनी टिप्पणी में आगे कहा कि 'जैसा कि आत्महत्या का प्रयत्न क्षणिक आवेश में लिया गया एक व्यक्तिगत निर्णय होता है। अतः इसे विधिक बाध्यता के अलावा उस व्यक्ति को कोई दूसरा विचार देकर यदि बदल दिया जाय, तो वह पुनः जीवन की मुख्य धारा में वापस लौट सकता है। इसलिए न्यायालय को आत्महत्या के प्रयत्न के आरोपित को मनोचिकित्सकीय उपचार के लिए भेजना चाहिए।[22] दण्ड का भय बाध्यकारी जीवन व्यतीत करने को बाध्य करता है, अतः जब व्यक्ति अत्यधिक मानसिक भावनात्मक दबाव में हो, तब उसे मनोवैज्ञानिक सलाह की आवश्यकता होती है न कि यातना की।[23]

5. निष्कर्ष

उपरोक्त विवेचनों से यह प्रकट होता है कि मनोविज्ञान और विधि के मध्य प्रवृत्त अन्तःक्रिया और उनकी अन्योन्याश्रितता अत्यन्त महत्वपूर्ण है। यदि हम न्यायिक विवादों में अन्वेषण अधिकारी, गवाह, अधिवक्ता और न्यायाधीश के मन-मष्तिष्कों का अध्ययन करें,तब यह प्रकट हो सकेगा कि किस प्रकार यह सब बतला सकते हैं कि क्या सत्य हो सकता है? अथवा क्या असत्य हो सकता है? और इसका क्या परिणाम होगा? इस संबंध में उक्त सभी अपने-अपने प्रत्यक्षीकरण द्वारा अलग-अलग उत्तर देंगे। परन्तु एक मनोवैज्ञानिक वस्तुनिष्ठ रूप में तथ्यों के आधार पर उसकी विश्वसनीयता, तद्नुसार, उसकी वैधता के आधार पर बता सकेगा कि यह सत्य होगा। यहाँ निष्कर्ष के रूप में न्यायमूर्ति मार्शल की आशंका को उद्धृत करना प्रासंगिक है कि हमारी आपराधिक न्याय-प्रणाली में, विशेषतः विधि अपने पीड़ितों को मायूस करने को बाध्य है, क्योंकि विधि के द्वारा अग्रवर्ती कोई भी लोकहित का उद्देश्य उसके द्वारा पहुँचायी जाने वाली हानि को न्यायोचित ठहराने के लिए पर्याप्त नहीं है[24]।

संदर्भ सूची :

1. बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में मनोविज्ञान के क्षेत्र में अप्रत्याशित वृद्धि हुई। इस क्षेत्र में न केवल अनेक मनोवैज्ञानिक शोध प्रकाशित हुए, अपितु मनोवैज्ञानिक शोधों को अन्तरविषयी शोध कार्य (उदाहरण के लिए - मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों एवं ज्ञान) हेतु विधि (विशेष रूप से अपराधिक विधिशास्त्र) के क्षेत्र में प्रयुक्त किया जाने लगा.
2. *यूनाइटेड स्टेट्स फिडेलिटी एण्ड गॉरण्टी कं. बनाम ग्यून्थर,* 281 यू.एस. 34 (1930).
3. यदि आप किंचित क्षण के लिए मनन करें, आप महसूस करेंगे, कि आपका आजकल प्रत्येक कार्य व्यवहार (क्रिया-कलाप) विधि द्वारा नियन्त्रित होता है। जैसे- यदि आप अपना वाहन चलाते हैं, भलें ही आपका वाहन उचित अनुज्ञप्ति के अधीन है और आपके पास वाहन चलाने का अनुज्ञप्ति भी है। फिर भी, यातायात नियमों के अधीन आपका वाहन मार्ग में अनेक सड़क पथ-प्रदर्शक संकेतों द्वारा प्रतिक्षण नियन्त्रित होता रहता है.
4. अत्याधुनिक चिकित्सकीय शोधों के द्वारा यह सुझाव दिया जा रहा है कि अजात भ्रूण के मष्तिष्क के उत्तकों को मनुष्य की स्नायविक हानि से उत्पन्न कतिपय विकारों के निदान हेतु उपयोग में लाया जा सकता है, जैसा कि विशेषकर परकिंसन जैसे रोग में। अतः, विधि को इस प्रकार की उत्पन्न परिस्थिति में इस विनिर्धरण हेतु कि क्या यह समाज में

स्वीकार्य होगा, विधि को परिवर्तित होना चाहिए। इस प्रकार विधि तब मष्तिष्कीय उत्तकों की प्राप्ति और उसके प्रयोग के दुरूपयोग को विनियमित कर सकती है.

5. यदि आप अपने व अपने पड़ोसी की सम्पत्ति के मध्य उभय सहमति से बाड़ लगाने को सहमत है और तद्नुसार बाड़ बनाते हैं और आपका पड़ोसी उस पर आये कुल खर्च में अपना अंश नहीं देता है तो यह एक विवाद को जन्म देगा, जिसका समाधान न्यायालय के माध्यम से ही हो सकेगा.

6. विधि और मनोविज्ञान के क्षेत्र विगत शताब्दी में सर्वप्रथम विकसित होना प्रारम्भ हुए और वर्तमान में विकास और विस्तार की समस्त ऊँचाईयों को छू रहे हैं। मनोविज्ञान और विधि के मध्य परस्पर संबंध पिछले पाँच दशक में तीन परस्पव्यापी क्षेत्रों में देखने को मिलती है- न्यायिक चिकित्सा (फोरेन्सिक) मनोविज्ञान, विधिक मनोविज्ञान और मनोवैज्ञानिक विधिशास्त्र। प्रथम में, विधिक रूप से सुसंगत लाक्षणिक या नैदानिक क्षेत्रों जैसे- परीक्षण में व्यक्ति को खड़े करने की सक्षमता, पागलपन अथवा मनोरोग चिकित्सलयों में नागरिक प्रतिबद्धता के संबंध में विशेषज्ञों, चिकित्सकों, शोधकर्ताओं और / या सलाहकारों के रूप में मनोवैज्ञानिक को कार्य करना, द्वितीय में, विधिक मनोविज्ञान में विधिक प्रणाली के महत्व के किन्हीं विन्दुओं के सीमा क्षेत्र (उदाहरण के तौर पर -गवाह की परिशुद्धता, पुलिस का चयन, प्रक्रियात्मक-न्याय, और प्रतिवादियों, पीड़ितों, बच्चों और मानसिक रोगियों के अधिकारों के लिए सुसंगत मानव व्यवहार के बारे में विधिक मान्यताओं) के अध्ययन के लिए अनुप्रयुक्त और अनुभवाश्रित शोध विधियों का प्रयोग करना और तृतीय में, मनोवैज्ञानिक विधिशास्त्र में उस क्षेत्र, जिसमें मनोवैज्ञानिक मूल्यों के आधार पर विधि और न्याय के दर्शन को विकसित करने का प्रयास करना है, आदि सम्मिलित हैं.

7. *एन्सवर्थ, पी (1998), मनोविज्ञान, विधि और प्रत्यक्ष साक्षी का बयान,* वेस्ट ससेक्स, इग्लैण्ड विले (*साइकोलॉजी, लॉ एण्ड आईविटनेस टेस्टीमनी,* वेस्ट ससेक्स, इंग्लैण्ड, विले).

8. क्रेज डब्ल्यू हेनरी, *विधि और मनोविज्ञान का संबंध, स्टडी डाक्यूमेण्ट,* यूनिवर्सिटी ऑफ वाटरलू, पी.एस.वाई.सी.एच. 230.

9. *एक्टस नॉन फैसिट रियम निसि मेन्स सिट रिया.*

10. *एक्टस मी इनविटो फैक्टस नान एस्ट मेन्स एक्टस.*

11. आपराधिक विधिशास्त्र के क्षेत्र में आने वाली इस कठिनाई को न्यायाधीश ब्रायन ने उद्धृत किया है कि मनुष्य के आशय की खोज शैतान भी नहीं कर सकता.

12. जॉन मर्ट्ज, ए.एम.ए., लीडरशीप इन्टेंशन.

13. आशय सोद्देश्यपूर्ण कार्य और उसे कार्य को पूर्ण करने का एक सचेतन निर्णय है जो विधि द्वारा प्रतिसिद्ध है, जबकि प्रतिहेतु (प्रयोजन या प्रेरणा) कार्य का दूरस्थ कारण है, जो व्यक्ति को किसी विशिष्ट कार्य को करने या उसे न करने को प्रेरित करता है.

14. ज्ञान किसी सचेतन कार्य के स्वाभाविक परिणाम की पूर्व जानकारी है.

15. संज्ञानात्मक मनोविज्ञान आंतरिक मानसिक प्रक्रियाओं का अध्ययन करता है। मनुष्य के मष्तिष्क की आन्तरिक समस्त चीजें यथा- प्रत्यक्षीकरण, विचार, स्मृति, ध्यान, भाषा, समस्या समाधान एवं अधिगम समस्त संक्रियाएँ संज्ञानात्मक मनोविज्ञान के द्वारा स्पष्ट होती हैं। इस संज्ञानात्मक अनुसंधान के कई व्यावहारिक अनुप्रयोग हैं, जैसे- स्मृति विकारों में सहायता प्रदान करना, निर्णय लेने की सटीकता में वृद्धि करना, आदि।

16. सामाजिक मनोविज्ञान, व्यावहारिक मनोविज्ञान, विकासमूलक मनोविज्ञान, नैदानिक मनोविज्ञान एवं संज्ञानात्मक मनोविज्ञान आदि.

17. (1843) 8 इंग्लिश रिपोर्ट्स 718.

18. ए आई आर 1940 इला. 486.

19. ए.आई.आर 1994 एस सी 1844, यद्यपि कि इस निर्णय को उच्चतम न्यायालय की संवैधानिक पीठ ने *ज्ञान कौर बनाम पंजाब राज्य* ए.आई.आर. 1996 एस. सी. 946 के मामले में उलट दिया है.

20. जुर्माने सहित या रहित एक वर्ष का साधारण कारावास या जुर्माना के दण्ड का प्रावधान धारा 309, भारतीय दण्ड संहिता, 1860 में है.

21. तत्रैव नोट 19.

22. वही, *चेन्ना जगदीश्वर रेड्डी बनाम आन्ध्र प्रदेश (1988)* कि.लॉ.ज. 549 आन्ध प्रदेश.

23. *स्टेट बनाम संजय भाटिया* (1985) क्रि.लॉ.ज. 931 दिल्ली, *दिल्ली उच्च न्यायालय बनाम योगेश शर्मा* 1984 अनरिपोर्टेड क्रिमिनल केस, *मारुति श्रीपति दूबाल बनाम महाराष्ट्र राज्य* (1987) क्रि.लॉ.ज 743 बम्बई आदि वादों में यह कहा गया कि यह दुर्भाग्यपूर्ण एवं दुखद विडम्बना है कि आज भी भा.द.वि. में धारा 309 जैसे कठोर उपबध विद्यमान हैं जहाँ आरोपित के मनःस्थिति का अवलोकनन करके उन्हें दण्डित कर जेलर की देखरेख में कारागार में रखा जाता है बजाय इसके कि उन्हें मनोचिकित्सक की देखरेख में रखें.

24. *स्केल बनाम मार्टिन* 467 यू.एस. 253 (1984) में न्यायमूर्ति मार्शल का विसम्मत.

●

उपशास्त्रीय संगीत (ठुमरी) : एक संक्षिप्त अध्ययन

डॉ0 शिवि तिवारी[*] एवं प्रो0 मंगला कपूर[**]

संगीत वह आकर्षक ललित कला है जिसके द्वारा मनुष्य अपने हृदय के भावों को स्वर व लय की सहायता से प्रकट करता है। यह संगीत की अत्याधुनिक परिभाषा है।

भारतीय संगीत शाताब्दियों की अमूल्य देन है। जिसकी ऐतिहासिक व्याख्या परम्परा के वातावरण में देखने को मिलती है। प्राचीन समय में हिन्दुस्तानी संगीत आध्यात्मिक और भावात्मक जीवन का अनिवार्य अंग रहा है। इस प्राचीन कला का जन्म वैदिक युग में हुआ। किसी भी कला के गौरवशाली अतीत काल का केवल स्तुति गान करना ही पर्याप्त नहीं है अपितु उसके गुणों और विशेषताओं का कलात्मक विश्लेषण करना भी परम् आवश्यक है।

शास्त्रीय संगीत शैली अपनी गंभीरता और संयतता के लिए प्रसिद्ध थी, तो उपशास्त्रीय संगीत स्वर वैचित्र्य एंव चपलता के लिए। शास्त्रीय संगीत की तुलना यदि गंगा नदी के धीर, गंभीर एवं प्रशान्त प्रवाह से की जाय, एवं उपशास्त्रीय संगीत की तुलना पहाड़ी प्रदेशों में उन्मुक्त रूप से बहते और कल-कल करते हुए छोटे-छोटे झरनों से की जाय तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। हम यहाँ अपने लेख में उप-शास्त्रीय संगीत के कुछ पहलुओं पर विचार करेंगे।

दरअसल उपशास्त्रीय संगीत का अस्तित्व तो शास्त्रीय संगीत के स्त्रोत से ही निकला हुआ है। शास्त्रीय अर्थात् शास्त्रोक्त (नियम परिधिबद्ध), उपशास्त्रीय अर्थात् शास्त्र के समीप रहने वाला तथा जिसमें शास्त्रपालन कटिबद्धता से न होकर शिथिलता से होता हो। इस संगीत में नियमेत्तर प्रयोगों की यदा-कदा सम्भावना रहती है।

वर्तमान में प्रचलित ध्रुवपद, धमार, ख्याल, टप्पा, तराना, रागमाला, तिरवट, चतुरंग गायन शैलियाँ यदि शास्त्रीय संगीत की श्रेणी में आते हैं तो गीत, गज़ल, भजन इत्यादि लोक, सरल या सुगम संगीत की श्रेणी में आते हैं, किन्तु यदि साहित्य में पूर्ण भावात्मकता एवं शास्त्र नियमों में शिथिलता हो अर्थात् न केवल शब्दों की ही प्रधानता हो वरन् स्वरों का भी पूर्ण समन्वय हो, तो, न तो ऐसे संगीत को शास्त्रीय की श्रेणी में रखा जा सकता है और न ही सुगम में। अतः ऐसी विधाओं को उपशास्त्रीय संगीत के अन्तर्गत रखना ही उपयुक्त होगा यथा- ठुमरी, दादरा, होरी, चैती, कजरी, सावनी, बारहमासा आदि। इनमें से कतिपय विधाओं का प्रचलन लोक एवं उपशास्त्रीय दोनों ही संगीत में होता है। यहाँ तक कि अब गज़ल गायन की इस विधा में भी स्थान प्राप्त है। उपशास्त्रीय संगीत का निर्वहन अत्यन्त लोकप्रिय है। शास्त्रीय संगीत की प्रस्तुति के पश्चात् उपशास्त्रीय विधाओं का प्रयोग परिपाटी की भाँति प्रचलित हो गया है। ऐसा उपशास्त्रीय संगीत के सुगम, भाव प्रधान, चपल ताल प्रयोग के कारण संभव होता है। उपशास्त्रीय संगीतात्मक विधाओं की समृद्धि इतनी विपुल है कि जहाँ एक ओर शास्त्रीय संगीत के रागों, राग प्रयोगों, रागेतर प्रयोगों, छोटी-छोटी तानों एवं बहलावे का प्रयोग होता है वहीं दूसरी ओर लोक संगीत की सरलता, सहजता, हदयग्राही संप्रेषणता एवं रस बरबस ही मन्त्र-मुग्ध कर देते हैं। हम यहाँ ठुमरी विधा की चर्चा प्रसंगवश करना चाहेंगे जिसे उपशास्त्रीय संगीत की श्रेणी में मानते हैं।

ठुमरी

उपशास्त्रीय संगीत में शास्त्रीय पक्ष (राग शुद्धता) से अधिक भाव-सौन्दर्य एवं रस माधुर्य को प्रधानता दी जाती है इसमें पद के साहित्यिक सौन्दर्य को आधार मानकर उसके भावपक्ष पर बल दिया जाता है। इन भावों को स्पष्ट करने का माध्यम 'स्वर' ही है। ऐसे संगीत में श्रृंगारिक भावना अधिक होती है। ठुमरी हिन्दुस्तानी संगीत की वह शैली है, जो मुख्यतः श्रृंगार रस से ओत-प्रोत है ठुमरी शब्द का अर्थ है ठुमकना, ठुमका, ठुमक। 'ठुमरी' शब्द के 'ठुम' और 'री' दो अंश हैं। 'ठुम' ठुमकने का घोतक है और 'री' अंतरंग सखी से अपनी अंदर की बात कहने का। 'ठुमरी' का विषय नायिका के अंदर की असंख्य भाव-लहरियों का चित्रण है।[1] अंग्रेजी के एक शब्दकोष के अनुसार ठुमरी का शाब्दिक अर्थ नवाब वाजिद अली शाह द्वारा रचित गीत जो कि प्रेमी-प्रेमिकाओं से संबंधित थे, उसकों ठुमरी कहा गया है।[2] श्री सुनील कुमार बोस, आचार्य कैलास चन्द्र देव वृहस्पत्ति, स्वर्गीय गिरजा शंकर चक्रवर्ती तथा स्वर्गीय चंद्रशेखर पंत इन सभी विद्वानों ने ठुमरी शब्द का अर्थ बताते हुए 'ठुम' को 'ठुमक' का घोतक माना है। ठम शब्द संस्कृत के सतभ या स्तम्भ् धातु से बने स्तम्भ शब्द का अपभ्रंश माना जाता है। प्राकृत और अपभ्रंशों की परम्परा में संस्कृत के दंत्य 'स्त' का परिवर्तन ठ और थ दोनों रूपों में होने के कारण स्तम्भ शब्द के ठंभ और थंभ दो रूप बनते है।[3] विस्तृत रूप से अर्थ विचार करने पर ठम, ठमक अथवा ठुम, ठुमक शब्दों के अंतर्गत तीन गुण दिखाई पड़ते हैं। पहला 'हर्षोत्फुल्लता या उमंग दूसरा 'थोड़े-थोड़े समय के अंतर पर रूकावट' और तीसरा 'आघातमूलक गुंजनपरक ध्वन्यात्मकता अतएव ठम अथवा ठुम का समष्टिगत अर्थ 'उमंग सहित थोड़े-थोड़े समय के अंतर पर होने वाली आघातमूलक गुंजनपरक ध्वनि' होता है। इसीलिए नृत्य-क्रिया में थोड़े-थोड़े समय के अंतर पर लययुक्त

* शोध छात्रा, गायन विभाग, संगीत एवं मंच कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।
* * प्रोफेसर, गायन विभाग, महिला महाविद्यालय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

पदाघात से बजने वाले पैरों के घुँघरू, नुंपुर, पायल, बिछुवा इत्यादि धातुनिर्मित अलंकारों की गुंजनात्मक ध्वनि के लिए व्यवहृत होने के कारण कालांतर में ठम, ठमक, ठुम, ठुमक इत्यादि शब्द नृत्यवाची हो गए और नृत्य तथा उससे संबंधित लयात्मक चाल के अर्थ में इन शब्दों का व्यवहार किया जाने लगा जैसे

1. ''इहाँ ठम ठम ठुमके रे, इहाँ बींछीड़ा चमके रे'।[4]
2. ''बीच लाल बीच बाल, प्रति प्रति प्रति धुति रसाल। ठुमकत गति श्रुति उताल, रीझ प्राण बारी''[5]
3. ''पाय ठाढ़ी पग ठुमक के बाजे, बिछुवन की झनकारन साज''[6]

ठुमरी शब्द के दूसरे अंश 'री' की व्याख्या विभिन्न विद्वानों ने अलग-अलग ढंग से की है। स्व0 आचार्य कैलाश चन्द्रदेव वृहस्पति ने 'री' का अर्थ 'नायिका का अंतरंग सखी को संबोधन[7] और स्वर्गीय गिरजा शंकर चक्रवर्ती 'रिझाना' माना है।[8] श्री सुनील कुमार बोस ने अपने गुरू चक्रवर्ती महोदय के ही मत का अनुसरण करते हुए 'री' को 'राधा द्वारा कृष्ण के मन को रीझाने, को भावमय अर्थ में ग्रहण किया है।[9]

लोक भाषाओं में री, अरी, हेरी, एरी इत्यादि शब्द अंतरंग सखी के संबोधन की अभिव्यक्ति अवश्य करते हैं, जैसे री, अरी, सखी, आली, सखी री, सजनी री, आली री, अरी सखी, अरी आली, हेरी सखी, एरी सखी, एरी आली, हे री इत्यादि।

यद्यपि स्वर्गीय चन्द्रशेखर पंत ने 'री' को संबंधसूचक कारक की विभक्ति मानते हुए भाषाशास्त्रीय व व्याकरणिक नियमों के अनुसार उसकी व्याख्या करने का प्रयत्न अवश्य किया है।[10]

अतः इससे स्पष्ट है कि उपरोक्त सभी विद्वानों के मतानुसार ठुमरी शब्दकी व्युत्पत्ति ठुमक शब्द से मानी है तथा ठुमरी शब्द के 'ठुम' और 'री' यह दो अंश और ठुम को ठुमक का द्योतक माना है।

ठुमरी का उद्भव

प्राचीन और मध्यकाल में भी ठुमरी से मिलती जुलती एक विद्या थी चर्चरी। इसकी ठुमरी से तुलना करते हुए डॉ0 शत्रुघन कहते हैं कि ''चर्चरी गीतों की परम्पराओं में चले आए चाचरी और ठुमरी के पारस्परिक सम्बन्धों के विस्तृत अध्ययन और तुलनात्मक विवेचन में दोनों में व्युत्पत्ति, भाषा, धुन, राग, ताल, गीत रचना, सौष्ठव, गायन शैली और उसके प्रत्यक्ष में पूर्ण तादात्म्य दिखाई देता है। अतएव इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि ठुमरी का उद्भव लोक शैली में गाए जाने वाले चाचरि गान से हुआ है।[11]

प्राचीन काल से ही चर्चरी का गान और नृत्य-प्रदर्शन मुख्यतः बसंत तथा होली के अवसर पर होता आया है। किन्तु महाराणा कुंभा कृत संगीत राज ग्रंथ में 'वसंतादि' अर्थात् वसंत के अतिरिक्त अन्य अवसरों पर भी इसके प्रयोग का संकेत मिलता है। आज भी ब्रज के अहीरों में विवाहादि अवसरों पर नृत्य सहित चाँचरि गान किया जाना इसी बात का द्योतक है। इस प्रकार आगे चलकर ब्रजभाषा में गाए जाने वाले इस प्रकार के चर्चरी गीतों को, नृत्य तथा भावाभिनय सहित गाए जाने के कारण ही ब्रज और उसके आस-पास के क्षेत्रों में ठुमरी कहने की प्रथा चल पड़ी है। चर्चरी और ठुमरी शब्दों में नृत्यात्मक अर्थ का तादात्म्य, होली (चाचर) और ठुमरी गान-शैली की एकता तथा आज के जन समाज में चाँचर ताल-निबद्ध एक ही जैसी दो गेय रचनाओं में से वसंत और होली वर्णित-युक्त गीत को होली (चाचर) और उससे रहित दूसरी को ठुमरी कहा जाना, उक्त मत की पुष्टि करते हैं।[12]

ठुमरी की उत्पत्ति के बारे में विभिन्न मान्यताएँ है। ठुमरी का अविष्कार कब, कहाँ और किसके द्वारा हुआ? 19वीं शताब्दी में अवध के शासक वाजिद अली शाह के समय लखनऊ दरबार से ठुमरी गान शुरू हुआ। वाजिद अली शाह का उर्दू शायरी नाट्य, संगीत कथक नृत्य तथा ठुमरी के क्षेत्र में विशेष योगदान रहा हैं उन्होंने 'अख्तर' उपनाम से अनेक काव्य तथा संगीत रचनाएँ की। उनके समय में ठुमरी खूब प्रचलित हुई। इसीलिए सामान्तया लोगों की धारणा बन गई कि वाजिद अली शाह ही ठुमरी के अविष्कारक थे।

डॉ0 सुनील कुमार चौबे के अनुसार लखनऊ के उ0 सादिक अली खाँ ठुमरी के अन्वेषक समझे जाते हैं। एक शताब्दी पूर्व वे लखनऊ के श्रेष्ठ और अग्रगण्य संगीतज्ञों में से थे।[13]

डॉ0 स्वर्गीय विश्वभंर नाथ भट्ट का यही मत है, वे कहते हैं- ''यों कहने को तो कहा ही जाता है कि अवध के नवाबों के दरबार में ठुमरी का उद्भव हुआ था, परन्तु उक्त दरबार में जो ठुमरी गायी जाती थी उसका स्वरूप इतना प्रौढ़ था कि उसके आधार पर यह कदापि नहीं कहा जा सकता की उस समय से ठुमरी की नवीन परिपाटी प्रचलित हुई होगी। जिसे हम आरंभ मान रहे हैं वह शुरू में ही इतना प्रौढ़ रूप कैसे प्राप्त कर सकता है? अतः यही कहना पड़ता है कि यह परिपाटी जनता में बहुत पहले से चली आ रही है।[14]

ठुमरी की उत्पत्ति के विषय में श्री बैनर्जी कहते हैं, ''अवस्था देखने से ऐसा विश्वास होता है कि टप्पा को और भी संक्षिप्त करके गाने से ठुमरी गान का उद्भव हुआ है।[15]

परन्तु मियाँ शैरी का नाम ठुमरी से संबंधित होकर टप्पा से संबंधित है। इसीलिए श्री कृष्ण धन बनर्जी ने श्री क्षेत्रमोहन गोस्वामी के मत की प्रमाणिकता तथा विश्वसनीयता में संदेह प्रकट किया है और राधागोविन्द कृत संगीत सार ग्रंथ मे उल्लिखित, शोरी मियां द्वारा ठुमरी की उत्पत्ति संबंधी मान्यता की आलोचना करते हुए बताया है कि लखनऊ अंचल में ठुमरी बहुत लोकप्रिय हैं और संगीतज्ञ शोरी मियाँ भी वहीं के निवासी थे। इसीलिए बहुतों की

धारणा बन गई कि शौरी मियाँ ठुमरी के उद्भावक भी थे। किन्तु वस्तुतः ऐसा नहीं है, क्योंकि शोरी कृत टप्पा से ठुमरी गाने की रीति बहुत ही अलग है।[16]

मिर्जा खाँ के अनुसार पूरब अर्थात् दिल्ली से पूरब की ओर के क्षेत्र में ठुमरी गाये जाने का अधिक प्रचलन था। उस समय की धारणा के अनुसार पूर्व में जौनपुर तक का क्षेत्र पूरब कहा जाता था। 17वीं, 18वीं, 19वीं शताब्दी की ठुमरी का सिंहावलोकन करने पर ज्ञात होता है कि अधिकतर बरवा, पहाड़ी, काफ़ी, जंगला, मुल्तानी, भैरवी, सिंधु भैरवी, सिंधु काफ़ी, सिंधु मुल्तानी, मुल्तानी बरवा, सावनी बरवा, देस, पीलू, गारा बिहारी, कालिंगड़ा, खम्माइची (खमाज), झिंझोटी, परज, धानी, सिंधु, लूम, बिहाग इत्यादि रागों में ठुमरी गाई जाती रही है।[17]

यह भी अनुमान लगाया जाता है कि ठुमरी का उद्भव लोक-शैली में गाए जाने वाले चर्चरी गान से हुआ है। ठुमरी का संबंध लोकसंगीत की उस परम्परा से क्रमशः छालिक्य गांधर्व, रास, नाट्य रासक, चर्चरी (चच्चरी) से होते हुए वर्तमान युग में ब्रज के चांचरी गान तक चली आई और यही धारा आज ठुमरी के परिवेश में गतिमान होकर प्रवाहित हो रही है।

यद्यपि 19वीं शताब्दी ई0 के उत्तरार्ध मे लखनऊ में बोलबाँट ओर बोल बनाव दोनों प्रकार की ठुमरियों का प्रचलन रहा, जिसका प्रमाण महाराज बिंदादीन तथा चांद पिया जैसे रचनाकारों की ठुमरियों में मिलता है। परन्तु बोलबाँट की ठुमरियों का प्रसार ब्रज दिल्ली और उत्तर प्रदेश के पश्चिमी भाग में विशेष रूप से रहा है। इसलिए बाद में बोलबॉट की ठुमरियों को 'पछाही ठुमरी' अर्थात् पश्चिमी इलाके की ठुमरी भी कहा जाने लगा। इसी प्रकार आगे चलकर बोलबनाव की ठुमरी का प्रचलन विशेषकर लखनऊ और उसके पूर्वी प्रदेशों अर्थात् पूर्वी उत्तर प्रदेश व बिहार की ओर अधिक होने के कारण कालांतर में उसे 'पूरब अंग की ठुमरी' कहा जाने लगा।

बनारस के पुराने लोगों का यह भी मत है कि पहले ठुमरी अधिकतर मध्यलय में गायी जाती थी। विलंबित लय की ठुमरी गाने का प्रचलन जगदीप मिश्र ने आरंभ किया। बाद में मौजुद्दीन खाँ ने इसे आगे बढ़ाया।[18]

इस प्रकार जगदीप मिश्र, भैया गणपत राव तथा मौजुद्दीन खाँ के समय उन्हीं लोगों के प्रयत्न से विलम्बित लय की बोल बनाव ठुमरी गाने का प्रचलन बढ़ा। इस प्रकार की ठुमरी गाने वालों में बनारस के मोजुद्दीन खाँ अपने युग के अप्रतिम ठुमरी गायक हुए। उनकी ठुमरी के एक-एक बोल बनाव और पुकार पर लोग अभिभूत होकर सिर धुनने लगते थे।[19]

अतः ठुमरी की वर्तमान गान शैलियों के विकास में ठुमरी के बोलों और स्वरों के साथ उनके बोल विस्तार की प्रमुख भूमिका रही है। ठुमरी एक बोल प्रधान गायकी है। ठुमरी की गीत रचना में निहित बोलों की गेत्यात्मकता और भावाभिव्यंजनात्मक गुणों की प्रधानता के आधार पर कालान्तर में ठुमरी के दो प्रमुख भेद हो गए। जिन्हें क्रमशः बोलबॉट की ठुमरी व बोलबनाव की ठुमरी कहा जाता है। बोल बॉट की ठुमरी प्रायः गीत प्रधान व बोल-बनाव की ठुमरी भाव प्रधान होती है।

पहली प्रकार की ठुमरी को बन्दिश की ठुमरी भी कहा जाता है। जिसकी रचना विशेष रूप से नृत्य के अनुकूल हैं स्वरों के अलंकारिक प्रयोग तथा लय वैचित्र्य इस के सौन्दर्यात्मक तत्व है। गायक इसका गायन द्रुतगति या मध्यगति में भाव प्रदर्शन के साथ करते हैं। नर्तक तथा नर्तकियाँ अभिनय द्वारा ठुमरी के भावों को प्रकट करने में अपनी उत्कृष्ट कला का परिचय देते हैं।

बोल बनाव की ठुमरी में आलाप या बनाव के साथ गीतों के शब्दों की बढ़त होती है। भाव प्रदर्शन के लिए इसमें भी अभिनय का होना आवश्यक है। बोल-बनाव की ठुमरी में उसका उपयोग अन्त में जब लग्गी शुरू होती है तब किया जाता है इस प्रकार देखा जाय तो बोल-बनाव की ठुमरी के जन्मदाता और प्रचारक मौजूद्दीन खाँ और गनपत राव ही माने जाते हैं।

वाजिद अली शाह के समय लखनऊ में ठुमरी गान का इतना अधिक प्रचार व प्रसार हो गया था कि 19वीं शताब्दी के अन्त तक लखनऊ नगर को ठुमरी गान का प्रायः एकमात्र केन्द्र समझा जाता था इसीलिए परवर्ती युग में गाई जाने वाली ठुमरी के मुख्य भेदों का मूल्यांकन क्षेत्रीय अथवा प्रादेशिक प्रचार की दृष्टि से, लखनऊ को ही केन्द्र मानते हुए किया गया। उदाहरणार्थ लखनऊ से पश्चिम की ओर प्रचलित ठुमरी को प्रायः पछांही ठुमरी को पूरब अंग की ठुमरी कहा जाता है इनमें से पश्चिम ठुमरी (पछांही ठुमरी) में प्रायः बोल-बॉट की ठुमरी और पूरब अंग की ठुमरी में बोल बनाव की प्रधानता होती है। गीत रचनाओं के बोलों में निहित लयात्मकता और भावात्मकता की प्रधानता के आधार पर ही ठुमरी की दो प्रणालियाँ विकसित हुई।

1. बोल बाँट की ठुमरी
2. बोल बनाव की ठुमरी

बोल बॉट की ठुमरी को पछांही ठुमरी के नाम से भी संबोधित किया जाता है। क्योंकि इसका प्रचलन लखनऊ के पश्चिम में स्थित फर्रूखाबाद, इटावा, बरेली, रामपुर, मथुरा व दिल्ली इत्यादि स्थानों को है। बोल-बाँट की ठुमरियों में बंदिश की रचना का चमत्कार का सर्वाधिक महत्व होता है। अतः शैली की ठुमरियों को बंदिशी ठुमरी या बंदिश की ठुमरी भी कहने का प्रचलन है।

उदाहरणः- बोलबाँट की एक पुरानी ठुमरी

त्रिताल-मध्यलय

स्थायी

देखो सोणा मेनू छल बल अपनी दिखान्दा।।

1 अंतरा

नाजो अदा करबे चंचल कामिनि वे।

नेनों दी सेन चल्पन्दा, वारी वे चलान्दा।।

2 अंतरा

नेन लगा लीनों वे इश्कदा तन मन वे।

इश्क दी आग लगान्दा, वारी वे लगान्दा।।

उदाहरणः- ठुमरी राग खमाज (त्रिताल मध्यलय)

स्थायी

अब कब तक तरसाये रखियों जी।

मैं तो नैन भी छवि देखन की हूँ गरजी।।

अंतरा

कदर दिया, मैं तोपे वारी।

बिन दामों से चेरी तिहारी।

हूँ राजी जिसमें तेरी मरजी।।

बोल बाँट की ठुमरियों में एक ओर तो पश्चिमी उत्तर प्रदेश, ब्रज व बुंदेलखण्ड में गाए जाने वाले होली, रसिया, सावन, मल्हार लेद इत्यादि लोकधुनों का प्रभाव तो दूसरी ओर उनकी रचना व प्रदर्शन में परम्परागत घरानेदार गायकों, सितार वादकों व कथक नर्तकों का विशेष योगदान रहने के कारण इन पर परम्परागत राग संगीत का भी बहुत प्रभाव है। यह बोलबाँट की ठुमरियाँ प्रायः त्रिताल या उसके भेद अद्धा था सितारखानी में निबद्ध होती है। कभी-कभी रूपक, झपताल, एक ताल व आड़ा चौताल में निबद्ध रचनाएँ मिलती है। यह ठुमरियाँ मध्य या द्रुतलय में गाई जाती हैं।

बोल बनाव की ठुमरीः-

जिस प्रकार बोलबाँट की ठुमरी में बंदिश को अधिक महत्व दिया जाता है। इसी प्रकार बोल बनाव ठुमरी गायकी प्रधान ठुमरी होती है। जिसमें गीत के बोलों में निहित भाव को साक्षरालप्ति के माध्यम द्वारा अभिव्यंजित करने का प्रयत्न किया जाता है। वर्तमान युग में प्रायः माँड, बिहाग, पहाड़ी, खमाज, तिलंग, गारा, झिंझोटी, बिहारी, तिलककामोद, देस, जोगिया, कालिंगड़ा, परज, सोहनी, काफी, सिंदूरा, बरवा, सिंधु, पीलू, जंगला, भैरवी, सिंध-भैरवी इत्यादि रागों में बोल बनाव की ठुमरियां गाए जाने का रिवाज है। बोल-बनाव की ठुमरियां विशेषकर दीपचंदी जत और पंजाबी इत्यादि तालों में गायी जाती है। बोल बनाव ठुमरियों की रचना व शैली के अर्थ में प्रायः 'अंग' शब्द व्यवहार किये जाने का प्रचलन हैं 'अंग' शब्द, रचना व शैली को अभिव्यक्त करने के साथ-साथ बोल बनाव ठुमरियों का क्षेत्रीयता या प्रादेशिकता से भी संबंध रहता है।

जैसे-

1. पूरब अंग
2. पंजाब अंग

पूर्वी अंग की ठुमरी को बनारस तथा लखनऊ की ठुमरी भी कहते हैं। इसमें उर्दू एवं ब्रज मिश्रित भाषा की प्रचुरता, ख्याल गायकी द्वारा ठुमरी अंग की विशिष्टता दिखाना, रागों को गाते हुए भी शुद्धता पर कम ध्यान देना अर्थात् मूल राग का तिरोभाव करके विभिन्न रागों का समावेश कर कुशलतापूर्वक मूल पर आविर्भाव करना, गायन लालित्य की कुशलता एवं सूक्ष्मता तथा पदों के बोलों का मर्मस्पर्शी भाव प्रदर्शन ही पूर्वी अंग की विशेषता है। बनारस की ठुमरी इसी अंग में आती है। बाद में कजरी, चैती, होली, सावनी आदि ठुमरी के ही अंग बन गए।

लखनऊ और उसके आसपास के क्षेत्रों में प्रचलित है। लखनऊ क्षेत्र में टप्पा और ठुमरी इन दोनों गान विधाओं का बहुत प्रचार होने के कारण लखनवी शैली के ठुमरी गान में टप्पा शैली के स्वर संदर्भों की झलक भी कहीं-कहीं दिखाई पड़ती है। सादिक अली खाँ कृत भैरवी की एक ठुमरी का उदाहरण जिसमें टप्पा शैली के छोटे-छोटे स्वर संदर्भ व्यवहृत है।

ठुमरी भैरवी (ताल पंजाबी विलम्बित लय)

सारे म म मग	गमपप गम-ग रेसा रेनि	सा - - सारे	ममग-गरेरेरे सासानिनि सां
अरे जा ऽ गोऽ	रेऽऽऽ ऽऽऽनि दिया ऽकी	मा ऽ ऽ ऽऽ	ऽऽऽऽ ऽऽऽऽ ऽऽऽऽ तो
0	3	×	2

बनारस और उसके आस-पास के क्षेत्रों में प्रचलित होने के कारण इसे बनारसी ठुमरी कहा जाता है। ब्रज, अवधी, भोजपुरी व मगही इत्यादि पूर्वी बोलियों का प्रयोग होता है। बनारसी ठुमरी पर पूर्वी उत्तर प्रदेश में गाए जाने वाले चैती, कजरी, पूरबी, झूमर आदि लोकगीतों व उसकी धुनों का बहुत प्रभाव है। बोल बनाव के भाव पक्ष पर अधिक जोर दिया जाता है।

वर्तमान समय में लखनवी शैली की अनेक विशेषताएँ बनारस शैली में ही समाहित हो गई और धीरे-धीरे लखनवी शैली का प्रचार कम होने लगा और उसका स्थान बनारसी शैली ने ले लिया।

पंजाब अंग की ठुमरी बहुत ही लोकप्रिय हो रही है। ठुमरी की पंजाब शैली का प्रारम्भ सुपसिद्ध गायक स्व0 अली बख्श द्वारा हुआ। पंजाब अंग ठुमरी की गान शैली के आधार पर स्तम्भ जाने वाले सुविख्यात गायक स्व0 उ0 बड़े गुलाम अली खाँ स्वयं 'पंजाब

अंग' के अस्तित्व को 'पूरब अंग' से स्वतंत्र व भिन्न मानने को तैयार नहीं थे। पूरब अंग की ठुमरी में पंजाब के लोक स्वरसंदर्भों का रंग देते हुए उसे वैचित्र्यपूर्ण बनाने से ही ठुमरी गान की पंजाबी शैली विकसित हुई। पंजाब अंग की ठुमरी उ0 बड़े गुलाम अली खाँ और उ0 बरकत अली खाँ, उ. अब्दुल करीम खाँ, फैय्याज खाँ तथा हीराबाई बड़ौदकर प्रसिद्ध हैं।

इसके अतिरिक्त वर्तमान नाट्य व सिनेमा संगीत में ठुमरी गान के प्रचुर उपयोग के साथ-साथ उनमें प्रयुक्त होने वाले गीतों की नई धुनों के निर्माण के लिए भी ठुमरी और उसकी शैली का आश्रय लिया जा रहा है जिसका प्रमाण विभिन्न फिल्मों में कुंदन लाल सहगल, मोहम्मद रफी, लता मंगेशकर व संध्या मुखर्जी द्वारा गायी अनेक मधुकर ठुमरियों से मिलता है। खेमचंद्र व नौशाद इत्यादि सुप्रसिद्ध फिल्म निर्देशकों द्वारा बनाई गई अनेक गीतों की लोकप्रिय धुनें भी ठुमरियों व दादरों पर आधारित है।

संदर्भ सूची

1. आचार्य बृहस्पति : संगीत चिन्तामणि, पृ0 103
2. निर्मला देवी : संगीत शब्द कोष, पृ0 203
3. फ़िशल, डॉ0 रिचर्ड, प्राकृत भाषाओं का व्याकरण पैराग्राफ 308, पृ0 437
4. शारंगदेव, संगीत रत्नाकर, प्रथम स्वरगताध्याय
5. व्यास, कृष्णानंद देव, ''संगीत राग कल्पद्रुम'' रंगीन गान मजमुआ, पृ0 103
6. वही, पृ0 169
7. बृहस्पति, आचार्य कैलाशचन्द्र देव, 'ठुमरी में सनातन सांगीतिक तत्व' कला भारती ठुमरी सम्मेलन पत्रिका' (1965), पृ0 4
8. दा लव लिरिक्स ऑन राधा एंड कृष्णा, पृ0 1
9. नैना देवी, ठुमरी गायकी, 'कला भारती ठुमरी सम्मेलन पत्रिका' (1965), पृ0 66
10. पंत, चन्द्र शेखर, लिटरेरी अस्पेक्ट ऑफ ठुमरी, 'कलाभारती ठुमरी सम्मेलन पत्रिका', पृ0 40
11. शुक्ल, शत्रुघ्न, ठुमरी की उत्पत्ति विकास और शैलियाँ, पृ0 118
12. वही, पृ0 120
13. चौबे, सुशील कुमार, द लखनऊ ठुमरी, उ0प्र0 दिसंबर (1957), पृ0 27
14. भा विश्वंभर नाथ, ठुमरी की प्रेरणा शक्ति और उसकी विशेषताएँ, 'संगीत' (मासिक पत्रिका), ठुमरी अंक (जन, फर 1947), पृ0 11
15. बंदोपाध्याय, कृष्णघन, 'गीत सूत्रसार' (प्रथम भाग), पृ0 87
16. वही, पृ0 87
17. फकीरूल्लाह, 'राग दर्पण', पृ0 85
18. स्व0 राम जी द्वारा 1868 में बताए गए तथ्यानुसार
19. 'सुमन', रामनाथ, छायावाद, युगीन काशी (संगीत की रसधारा), कादंबिनी (मासिक), मई 1966, पृ0 56 व 57

●

बंकिम के उपन्यासों में समाज और इतिहास

प्रतीक गुप्ता एवं प्रो0 अनुराधा सिंह***

व्यक्ति एक सामाजिक प्राणी है। वो जिस समाज में रहता है, वो समाज उसके व्यक्तित्व और विचारों के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करता है। एक साहित्यकार जब किसी साहित्य की रचना करता है तो उसके जीवन और उसके इर्द गिर्द घटने वाली घटनाएँ (जो उसे प्रभावित करती हैं) उसके साहित्य की विषयवस्तु बन जाती हैं। रवीन्द्रनाथ टैगोर ने लिखा था, जब मैं पद्मा (गंगा नदी को बांग्लादेश में पद्मा कहते हैं) में नाव से अपने जमींदारी क्षेत्र का निरीक्षण करने जाता था तो नदी के किनारे बसे गाँवों में घटने वाली घटनाएँ (जिन्हें मैं देखता-सुनता था) मेरी कहानियों की विषयवस्तु बन जाती थीं।

बंकिम चंद्र चट्टोपाध्याय के पिता यादव चंद्र डिप्टी कलेक्टर थे।[1] बंकिम के पिता का स्थानान्तरण अनेक जिलों में हुआ था। बंकिम को पिता के साथ उन स्थानों पर जाकर रहने और घूमने का भरपूर अवसर मिला था। कलकत्ता विश्वविद्यालय से स्नातक उत्तीर्ण करते ही बंकिम डिप्टी मजिस्ट्रेट बन गये।[2] बंकिम का समय-समय पर स्थानान्तरण होता रहता था। बंकिम जहाँ भी जातें, उन स्थानों पर घटने वाली घटनाएँ, वहाँ का भौगोलिक सामाजिक परिवेश, वहाँ की लोक संस्कृति, लोक कथाएँ और लोकगीत, बंकिम के उपन्यासों की विषयवस्तु का हिस्सा बन जाते थें। बंकिम ने अपने अधिकांश उपन्यासों में इतिहास और समकालीन समाज को समन्वित करने का प्रयास किया।

बंकिम ने पहला उपन्यास 1864ई0 में 'राजमोहन की स्त्री' अंग्रेजी भाषा में लिखा था।[3] ये तत्कालीन बंग समाज में प्रचलित बहुविवाह, बेमल विवाह, अल्पायु विवाह में स्त्रियों के साथ होने वाले अन्याय को उपन्यास के पात्रों और कथानक के माध्यम से तीन दम्पत्तियों का तुलनात्मक वर्णन करते हुए प्रकट करता है। बंकिम ने इस उपन्यास की कथावस्तु बंगाल के राजनैतिक इतिहास से ली। बंकिम ने 'राजमोहन की स्त्री' में बंगाल के नवाब मुर्शिद कुली खाँ के समय से सिराजुद्दौला द्वारा घसीटी बेगम (मौसी) के षडयंत्र को विफल करने तक के कालखण्ड में घटी घटनाओं को, आधुनिक परिवेश में, पात्रों और स्थानों का नाम बदलकर उपन्यास के रूप में प्रस्तुत किया ।

बंकिम ने बंग्ला भाषा में पहला उपन्यास 'दुर्गेशनंदिनी' 1865ई0 में लिखा। बंकिम जब ये उपन्यास लिख रहे थे, उस समय मारेलगंज इलाके के मजिस्ट्रेट थें।[4] स्वजातीयता का फायदा उठाते हुए एक अंग्रेज मि0 हिल्स ने कृष्ण नगर (मारेलगंज) में बहुत अधिक कृषियोग्य भूमि पर अधिकार कर लिया था। हिल्स ने वहाँ के स्थानीय व्यक्तियों की लठैतों की एक सेना बनाई और हेली को उसका सेनापति नियुक्त किया। बड़खाली गाँव के एक (पठान) किसान ने हिल्स की, पहले से अधिक राजस्व देने की, आज्ञा मानने से इंकार कर दिया था। गाँव के अन्य लोग भी उस पठान के साथ खड़े हो गये थे। हिल्स ने गाँव के लोगों को सबक सिखाने के लिये 13 नावों से 320 लठैतों को रात्रि के अंधकार में ही बड़खाली गाँव भेजा। हेली इन लठैतों का नेतृत्व कर रहा था। लठैतों ने वहाँ जाकर सोते हुए लोगों को मारना शुरू कर दिया। खेतों और घरों में आग लगा दी। उस पठान ने अन्य गाँव वालों के साथ मिलकर प्रतिरोध किया तो उसे गोली मारकर उसकी लाश को, उसकी पत्नी और बहन के साथ लेकर, वो लठैत गाँव तहसनहस कर, बाकी बचे अनाज को नदी में डालकर, वापस चले गये। हिल्स सजा से बचने के लिये इंग्लैण्ड वापस चला गया। हेली भारत छोड़कर भागते हुए बम्बई के बंदरगाह से गिरफ्तार हुआ किन्तु कुछ महीनों में ही छूट गया। हिल्स और हेली के आदेश पर काम करने वाले दौलत चौकीदार को फाँसी हुई व 24 अन्य लठैतों को कालापानी की सजा हुई।[5]

इस घटना ने बंकिम को बहुत व्यथित किया। बंकिम ने अपने बाबा से कई बार गढ़मंदारन के बारे में प्रचलित लोककथाएँ सुनी थीं। उत्सुकता वंश बंकिम मढ़मंदारन देखने भी गये थे। बंकिम के जीवनाकार, उनके भतीजे सचीशचन्द्र लिखते हैं, वो समझ नहीं पा रहे थे कि बंकिम खुलना में बैठकर गढ़ मंदारन के बारे में क्यों लिख रहे थें जबकि वो कहानियाँ तो उन्होंने बचपन में सुनी थीं। दुर्गेशनंदिनी में बंकिम बड़खालीपुर के उस पठान किसान को गढ़मंदारन के शासक के रूप में वर्णित कर रहे थें, जिसको मारकर उसकी लाश, बहन और पत्नी को हिल्स के लठैत उठा ले गये थे। बंकिम ने दुर्गेशनंदिनी के कथानक को अकबर के कालखण्ड का आश्रय लेकर वर्णित किया। अकबर ने उपद्रवी पठानों पर नियंत्रण स्थापित कर, उस क्षेत्र में शांति और सुव्यवस्था की पुनर्स्थापना करने के लिये मानसिंह को भेजा था। मानसिंह और उनके पुत्र ने इस अभियान का नेतृत्व किया था।

बंकिम औपनिवेशिक सत्ता की नौकरशाही के अंग होकर उसकी नैतिक छवि पर प्रश्न चिन्ह लगाने का साहस नहीं कर पा रहे थें, इसलिये वो इस घटना के सूत्र पूर्व में घटी ऐतिहासिक घटनाओं में खोज रहे थें। बड़खालीपुर गाँव में घटी घटना को

* शोध छात्र, इतिहास विभाग, सामाजिक विज्ञान संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

* * एसोसिएट प्रोफेसर, इतिहास विभाग, सामाजिक विज्ञान संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

बंकिम ने, गढ़मंदारन के इतिहास का आश्रय लेकर दुर्गेशनंदिनी उपन्यास की कथावस्तु बना दिया। ये दिखाता है कि लेखक अतीत के बारे में लिखते समय, अपने वर्तमान में घटित घटनाओं और प्रचलित विचारधाराओं को जिनसे वो प्रभावित होता है, अतीत की घटनाओ का आश्रय लेकर प्रस्तुत करता है। लेखक उन्हीं ऐतिहासिक घटनाओं और पात्रों का चयन करता है जो उसके वर्तमान उद्देश्य, (अथवा जो संदेश वो देना चाहता है) सोच और विचारधारा के अनुरूप होते हैं।

बंकिम ने 1866ई0 में तीसरा उपन्यास 'कपालकुण्डला' लिखा था। इस उपन्यास ने बंकिम को देश-विदेश में बहुत प्रसिद्धि दिलायी। इस उपन्यास को लिखने के बाद बंकिम की गणना शीर्ष बंगाली साहित्यकारों में होने लगी। बंकिम का स्थानान्तरण जैसोर से नेगुआ हो गया था। वहाँ एक ताँत्रिक तीन दिनों तक नित्य बंकिम के घर आकर बंकिम से अपने साथ चलने का आग्रह करता रहा। अगले दिन बंकिम वो जगह छोड़कर दूसरी जगह जाकर रहने लगे। नेगुआ समुद्रतटीय क्षेत्र था। बंकिम ने 'कपालकुण्डला' में नेगुआ के भौगोलिक परिवेश और उस ताँत्रिक वाली घटना का वर्णन किया।

बखत्यार खलजी द्वारा बंगाल शासक लक्ष्मण सेन पर आक्रमण कर बंगाल पर अधिकार कर लेने के ऐतिहासिक घटनाक्रम पर बंकिम ने 1869ई0 में उपन्यास 'मृणालिनी' लिखा। बंगाल पर क्लाइव द्वारा प्लासी का षडयंत्र रचकर अधिकार किये जाने की घटना को बंकिम ने बख्त्यार खलजी के आक्रमण के रूप में प्रस्तुत किया। क्लाइव ने सेनापति मीरजाफर, जगतसेठ बंधु व अन्य सामंतों को अपने पक्ष में मिलाकर कर, प्लासी के मैदान में 'सिराजुद्दौला को हराकर, कत्ल करवा दिया और सिराजुद्दौला की जगह मीरजाफर को शासक बना दिया था। कालांतर में जब मीरजाफर कम्पनी की और अधिक धन की माँग को पूर्ण करने में असमर्थ रहा तो उसे भी हटाकर मीरकासिम से बंगाल की सत्ता का सौदाकर, उसे बंगाल नवाब बना दिया था। बंकिम ने इस घटना को बंग शासक लक्ष्मण सेन के माध्यम से प्रस्तुत किया। बंकिम ने 'मृणालिनी' में 'इतिहासकारों के पूर्वाग्रहों के कारण, इतिहास के उनके इतिहासलेखन में आयी विसंगतियों को इंगित करते हुए लिखा कि एक चित्रकार द्वारा मनुष्य और शेर की लड़ाई को प्रदर्शित करने हेतु बनाए चित्र में मनुष्य ही शेर को हराता है, अगर शेर भी चित्र बना सकता तो शायद परिणाम कुछ दूसरा होता।'[6]

बंकिम ने 1873ई0 में 'विषवृक्ष' लिखा। विषवृक्ष का सामाजिक-सांस्कृतिक फलक बहुत विस्तृत है। विषवृक्ष में बंकिम ने समकालीन समाज-सुधार संस्थाओं और समाज सुधारकों के कार्यों और उनके मानसिक अर्न्तद्वन्द्व को उजागर किया। विषवृक्ष में बंकिम ने इस विषय पर भी प्रकाश डाला कि तत्कालीन आम बंग जनमानस इन समाज सुधारकों के प्रयत्नों को किस दृष्टिकोण से देख रहा था। विषवृक्ष में कैलाशी ब्रह्म समाज द्वारा अल्पायु विवाह का विरोध और विधवा विवाह के लिये प्रेरित करने के प्रयत्नों पर व्यँग्य करते हुए कहती है, 'देवीपुर के देवेन्द्रबाबू के ब्रह्म समाज में हर हफ्ते तत्वबोधिनी के भाषण चुराकर पढ़े जाते हैं, चाची ताई से विवाह करने को कहा जाता है। अगर कोई विधवा से विवाह करने को तैयार है तो विद्यासागर विवाह की सारी व्यवस्था कर देते हैं। सुनती हूँ, विद्यासागर कलकत्ते के बड़े पंडितों में से हैं। वो पंडित हैं तो फिर मूर्ख कौन हैं।[7] बंकिम विषवृक्ष के पात्र ताराचंद के माध्यम से ब्रह्म समाजियों के मानसिक अंतर्द्वन्द्व और दुविधाओं को उजागर करते हैं। ताराचंद ब्रह्म समाज की सभाओं में जाकर पर्दाप्रथा के विरोध में और समाज-सुधार के कार्यों में स्त्रियों की सहभागिता की अनिवार्यता पर प्रत्येक सप्ताह भाषण देता है, किन्तु कुंदनँदिनी से विवाह होने के बाद वो देवेन्द्र बाबू द्वारा बार-बार प्रेरित करने के बाद भी अपनी पत्नी को अपनी कही बातों का अनुसरण करने के लिये कहने की हिम्मत नहीं कर पाता है।

वैचारिक स्तर पर ब्रह्म समाज को जितना भी प्रोत्साहन मिला हो, व्यवहारिक जीवन में ब्रह्म समाजियों की समाज में स्वीकार्यता न के बराबर थी। राजा राम मोहन राय, ईश्वर चंद्र विद्यासागर, केशवचंद्र सेन आदि समाज सुधारक वैचारिक स्तर पर शिक्षित अत्यल्प लोगों को प्रभावित करने में आंशिक रूप से भले ही सफल रहें हों किन्तु वे अपने वैयक्तिक जीवन में ही, आधुनिक और पारम्परिक मूल्यों और मान्यताओं के बीच निरंतर दुविधा की स्थिति में रहे।

राजा राममोहन राय, प्रतीकात्मक मुगल बादशाह अकबर द्वितीय की पेंशन के लिये पानी के जहाज से इंग्लैण्ड गये तो ब्राह्मण रसोइया और दो गायें अपने साथ ले गये। समुद्र में चलने वाली हवाओं के कारण जहाज में, खुले में भोजन बनाने में उन्हें बहुत कठिनाई हुई, किन्तु पारंपरिक मान्यता के दृढ़ मानसिक बंधनों के कारण वो दूसरों के भोजन को स्वीकार नहीं कर सकें। इग्लैण्ड पहुँचकर राजा राममोहन राय ने भारत और पश्चिम के सम्बन्ध को स्थायी बनाने के लिये एक मिश्रित समाज (परस्पर विवाह द्वारा निर्मित) की वकालत की[8], किन्तु बीमार पड़ने पर उन्होंने अपनी चिकित्सा के लिये नियुक्त स्वास्थ्य परिचारिका (नर्स) को चिकित्सा करने के दौरान अपना शरीर स्पर्श करने से मना किया।[9] वो नहीं चाहते थे कि कोई परस्त्री उनके शरीर को स्पर्श करें।

राजा राममोहन राय ने इंग्लैण्ड में, अपने अंतिम समय में, अपना दाह संस्कार हिन्दू विधि से करने की इच्छा जतायी। इग्लैण्ड में शव को दफनाने का प्रचलन था अतः राजा राममोहन राय की इच्छा के विरूद्ध उन्हें दफना दिया गया। केशव चंद्र सेन ने अल्पायु में ही अपनी 13 वर्षीय पुत्री का विवाह कूच बिहार के राजा से कर दिया। तत्कालीन समय में आधुनिक शिक्षा प्राप्त वर्ग प्राच्य और पाश्चात्य, परम्परा और आधुनिकता के वैचारिक अन्तर्द्वन्द्वों से ग्रस्त था, जिसकी अभिव्यक्ति 'विषवृक्ष' में हुई है।

बंकिम ने विषवृक्ष में ब्रह्म समाजियों के इन अन्तर्द्वन्द्वों और दुविधाओं का सूक्ष्म विश्लेषण किया। बंकिम ने उत्तर आधुनिकतावादी विचारधारा 'सापेक्षतावाद' को सामाजिक परिप्रेक्ष्य में विश्लेषित किया। बंकिम ने लिखा, 'सत्य' धर्म का प्रधान अंग है किन्तु अवस्था विशेष में वो परनिंदा जैसा पाप हो जाता है। क्षमा परमधर्म है किन्तु दुष्कृतकारी पर करो तो वो महापाप बन जाएगा। कोई बड़ा व्यक्ति तमाचा मारे तो बुरा लगेगा लेकिन छोटा बच्चा मारे तो प्यार आएगा। धन गरीब को दो तो 'दान' पर किसी धनाढय को दो तो 'खुशामद' कहलाएगा।

उपन्यास 'युगलांगुरीय' में बंकिम ने बंगाल और काशी के धार्मिक सांस्कृतिक जुड़ाव पर प्रकाश डाला।[10]

उपन्यास 'चंद्रशेखर' में बंकिम ने बंगाल के नवाब मीर कासिम के समय, बंगाल की राजनीतिक परिस्थितियों और अंग्रेजों के समक्ष नवाब की असहाय अवस्था का उल्लेख किया। बंकिम ने बंगाल आकर अपने उद्योग केन्द्र स्थापित करने वाली विभिन्न यूरोपियन औपनिवेशिक कम्पनियों और अनेक मातहतों पर कटाक्ष करते हुए लिखा कि बंगाल की हवा में उन्हें परायाधन छीन लेने का रोग हो जाता था।[11]

उपन्यास 'राधारानी' में बंकिम ने न्याय की आशा में न्यायालय आने वालों की कठिनाइयों और आर्थिक शोषण पर प्रकाश डाला। राधारानी के पिता की मृत्यु के बाद रिश्तेदारों ने उसकी अचल सम्पत्ति हड़पनी चाही। राधारानी की माँ ने मुकदमा दायर किया। उनकी सारी सम्पत्ति डिग्री में चली गयी।[12] गहनों को बेचकर वो प्रिवी कौंसिल में अपील करती हैं। मुकदमें में होने वाले खर्च में उनका सबकुछ लुट जाता है और खाने तक को कुछ नहीं बचता। इसी मानसिक पीड़ा को सहन करते हुए राधारानी की माँ की मृत्यु हो जाती है। 'राधारानी' के माध्यम से बंकिम ने शोषक न्यायतंत्र और उसकी जटिल न्यायिक प्रणाली की वास्तविकता को उद्घाटित करने का प्रयास किया।

वायसराय लार्ड लिट्न के उपन्यास 'लास्ट डेज ऑफ पाम्पेई' की मुख्य पात्र एक अंधी लड़की से प्रेरित होकर बंकिम ने 1977ई0 में रजनी लिखा।[13] रजनी, मनोविश्लेषणात्मक शैली में लिखा गया प्रथम बंग्ला उपन्यास है। बंकिम ने रजनी में 'बिल्की कालिन्स' के उपन्यास 'वूमेन इन व्हाइट' की कथा शैली का अनुकरण किया था।

बंकिम के परिवार में पिता के जीवनकाल में ही चलअचल सम्पत्ति के बँटवारे की परम्परा थी। पिता अपने जीवनकाल में ही अपना वसीयतनामा तैयार करा कर, जिसे जो उचित समझता था, दे देता था। पिता यादवचंद द्वारा किये गये वसीयतनामें को लेकर बंकिम का अपने परिवार और भाईयों से मनमुटाव हो गया था। बंकिम नाराज होकर काँटालपाड़ा के अपने पैतृक घर को त्याग चिनसुरा आकर रहने लगे थे।[14] इस दौरान बंकिम ने बंग दर्शन का प्रकाशन भी बंद कर दिया था। कालांतर में पारस्परिक मनोमालिन्य दूर हो गये और बंगदर्शन का प्रकाशन पुनः प्रारम्भ हो गया। 1878ई0 में बंकिम ने परिवार की चल-अचल सम्पत्ति के बंटवारे की इस घटना को अपने उपन्यास 'कृष्णकांत का वसीयतनामा' की विषयवस्तु बनाया।

बंकिम ने कर्नल टॉड और मनूची के ग्रंथों का अध्ययन कर, औरंगजेब के समय मुगलों और राजपूतों के कटु होते सम्बन्धों पर 1882ई0 में 'राजसिंह' उपन्यास लिखा। 1882ई0 में ही बंकिम की अमरकृति आनंदमठ का प्रकाशन हुआ। बंकिम ने आनंदमठ में 1757ई0 में मीरजाफर के बंगाल नवाब बनने से 1880ई0 तक अपने दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण राजनीतिक घटनाओं का वर्णन किया। सन्यासी विद्रोह पर केन्द्रित ये उपन्यास कालान्तर में क्राँतिकारियों की बाइबिल बन गया और इसमें उद्धृत गीत 'वंदेमातरम' ने राष्ट्रीय आंदोलन में साहित्यिक और धार्मिक उत्प्रेरक की भूमिका अदा की। आनंदमठ का कथानक 'ग्लेग' की कृति 'मेमोयर्स आफ द लाइफ ऑफ द वारेन हेस्टिंग' और 'हण्टर' की कृति 'अनाल्स ऑफ रूरल बंगाल' से काफी साम्य रखता है।[15]

पूर्वी बंगाल में चलनाबिल के पास वारेन्द्रवंशीय ब्राह्मणों का एक गाँव था। ये लोगों नौका से डकैती करते थे। एक बार अनजाने में उन लोगों ने अपनी नाव से अपनी ससुराल (वारेन्द्रवंशीय ब्राह्मण की कन्या से उसका विवाह हुआ था) आ रहे अपने दमाद की ही हत्या कर दी थी। पश्चाताप स्वरूप उन वारेन्द्रवंशीय ब्राह्मणों ने डकैती करना छोड़ दिया था। राजशाही और पाबना में ये लोककथा बहुत प्रसिद्ध थी। बंकिम ने इसी लोककथा को आधार बनाकर 1884ई0 में 'देवी चौधरानी' उपन्यास लिखा था।

1885-86ई0 बंकिम जैसोर में द्वितीय श्रेणी के मजिस्ट्रेट के पद पर कार्यरत थे। जैसोर में प्रचलित लोककथाओं और लोकगीतों में जैसोर के इतिहास की जानकारी राइचरण मुखोपाध्याय ने बंकिम को दी थी। बंकिम ने जैसोर के इतिहास से जानने की जिज्ञासा में वेस्टलैण्ड की कृति 'मेमॉयर ऑफ जैसोर' और स्टीवर्ट की कृति 'हिस्ट्री ऑफ बंगाल' पढ़ी। बंकिम ने इनसे प्राप्त जानकारी के आधार पर अपना अंतिम उपन्यास 'सीताराम' 1887ई0 में लिखा।

बंकिम ने अपने उपन्यासों में समकालीन बंग समाज की सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक और प्रशासनिक स्थिति का, अपने अध्ययन और अनुभव के आधार पर विश्लेषण किया। बंकिम विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में नियमित रूप से लेख लिखते थे। प्रकाशित-पुस्तकों की समालोचना करते थे। बँग समाज की समकालीन वस्तुस्थिति से बंगवासियों को अवगत कराने के लिये बंकिम ने 1872ई0 में 'बंग दर्शन' पत्र शुरू किया।

बंकिम का अधिकांश समकालीन साहित्यकारों से अपने लेखों और समालोचनाओं के माध्यम से परिचय हो गया था। बंकिम

नौकरी के दौरान स्थानान्तरण होने पर जहाँ भी जाते थें, वहाँ के बुद्धिजीवी वर्ग से बंकिम नित्य सामाजिक-सांस्कृतिक मुद्दों पर चर्चा किया करते थें। बंकिम नौकरी के दौरान जहाँ भी रहे, उनका निवास स्थान नित्य होने वाली चर्चा का केन्द्र बना रहा। न्यायालय से प्राप्त अनुभवों ने समाज संस्कृति को देखने-समझने के बंकिम के दृष्टिकोण को व्यापक किया। इसी का प्रतिफल था कि बंकिम ने अपने उपन्यासों में समकालीन मुद्दों को उठाया और उसे अपने उपन्यास की विषयवस्तु बनाने के लिये उसके सदृश अतीत में घटी ऐतिहासिक घटनाओं को उपन्यास का रूप दिया।

बंकिम ने समकालीन समाज में व्याप्त बुराईयों यथा जाति प्रथा, स्त्रियों की दयनीय स्थिति, बहुविवाह, बेमेल विवाह, अल्पायु विवाह, विधवाओं का नारकीय जीवन, अशिक्षा, सामाजिक रूढ़ियाँ, अप्रासंगिक हो चुकी परम्पराओं के दुष्परिणाम का शाब्दिक चित्र खींचते हुए इनके प्रति उदासीन लोगों को जगाने का प्रयास किया। बंकिम के साहित्यिक प्रयासों ने बंग्ला भाषा को पुनर्जीवन प्रदान करते हुए उसे पुनर्प्रतिष्ठित किया।

तत्कालीन समय में इतिहास लेखन के राजनीति केन्द्रित होने के कारण, समाज के अन्य पहलुओं और वस्तु स्थिति को समझने में बंकिम के उपन्यास, इतिहासकार को महत्वपूर्ण अन्तदृष्टि और स्रोत सामग्री प्रदान करते है।

संदर्भः-

1. ओंकार शरद. बंकिम ग्रंथावली. वाराणसी : माडर्न दीपक प्रेस, 1987, पृ0 सं0 112
2. पाण्डेय, रूप नारायण. बंकिम चंद्र चटर्जी : समग्र, लखनऊ : गंगा पुस्तक माला, 1976, पृ0 सं0 97
3. चटर्जी, बंकिम चंद्र, राजमोहन की स्त्री, नई दिल्ली : पेग्विन, 2009, पृ0 सं0 64
4. पाण्डेय, रूप नारायण. बंकिम चंद्र चटर्जी : समग्र, लखनऊ : गंगा पुस्तक माला, 1976, पृ0 सं0 108
5. पाण्डेय, रूप नारायण. बंकिम चंद्र चटर्जी : समग्र, लखनऊ : गंगा पुस्तक माला, 1976, पृ0 सं0 203
6. चटर्जी, बंकिम चंद्र. मृणालिनी, नई दिल्ली : डायमण्ड बुक्स, 2012, पृ0 सं0 74
7. चटर्जी, बंकिम चंद्र. विषवृक्ष, नई दिल्ली : डायमण्ड बुक्स, 2016, पृ0 सं0 129
8. वर्मा, पवन कुमार. बिकमिंग इण्डियन, नई दिल्ली, पेंग्विन, 2015, पृ0 सं0 59
9. वर्मा, पवन कुमार. बिकमिंग इण्डियन, नई दिल्ली, पेंग्विन, 2015, पृ0 सं0 47
10. चटर्जी, बंकिम चंद्र. विषवृक्ष, नई दिल्ली : डायमण्ड बुक्स, 2012, पृ0 सं0 130
11. चटर्जी, बंकिम चंद्र. चन्द्रशेखर, नई दिल्ली : डायमण्ड बुक्स, 2016, पृ0 सं0 82
12. चटर्जी, बंकिम चंद्र. राधारानी, नई दिल्ली : डायमण्ड बुक्स, 2012, पृ0 सं0 24
13. चटर्जी, बंकिम चंद्र. रजनी, नई दिल्ली : डायमण्ड बुक्स, 2017, पृ0 सं0 77
14. पाण्डेय, रूप नारायण. बंकिम चंद्र चटर्जी : समग्र, लखनऊ : गंगा पुस्तक माला, 1976, पृ0 सं0 21
15. ओंकार शरद. बंकिम ग्रंथावली, वाराणसी : माडर्न दीपक प्रेस, 1987, पृ0 सं0 18

●

स्वास्थ्य एवं पर्यावरणीय परिदृश्य पर उपभोक्तावाद का प्रभावः एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

डॉ0 दिनेश कुमार सिंह[*]

वर्तमान दौर भारतीय समाज के लिए एक ऐसा दौर है कि उसको विश्लेषण करना अति आवश्यक हो जाता है। आधुनिकीकरण, नगरीकरण तथा वैश्वीकरण जैसी प्रक्रियाओं ने समाज में परिवर्तन की प्रक्रिया को तीव्र किया है। जिसका प्रभाव समाज के प्रत्येक व्यवहारिक प्रतिमान पर दृष्टिगोचर हो रहा है। इसको प्रसारित एवं प्रचारित करने में आज के संचार साधनों का व्यापक रूप से प्रभाव नजर आता है। इन सभी का प्रभाव व्यक्ति के मानसिक पटल पर इस प्रकार से पड़ा है कि व्यक्ति इस डिजिटल संचार साधनों से ही संचालित होना शुरू हो चुका है। भारतीय समाज भी इसका अपवाद नहीं है, वर्तमान समय का युवा वर्ग इस प्रकार के मानसिकता से ग्रस्त हो चुका है कि उसको अपने आसपास के वातावरण एवं स्वास्थ्य से कुछ भी लेना देना नहीं है। युवावर्ग के साथ ही हमारे समाज का मध्यम वर्ग इस प्रकार के विचारों एवं संस्कृति से ओत-प्रोत है कि वह स्वयं को मात्र एक उपभोक्ता के दृष्टिकोण से ही प्रस्तुत कर रहा है। वैश्वीकरण ने समाज में जिस प्रकार के प्रतिबिम्ब का छायांकन मानसिक पटल पर उकेरित किया है उससे पृथक हो पाना आज के जनमानस के लिए एक दुरूह कार्य हो गया है। उपभोक्तावादी संस्कृति ने ऐसे समाज का सृजन किया है जिसमें व्यक्ति को एक प्रकार से उपभोगी साधन की भाँति ही देखने का प्रयास किया जा रहा है। भारतीय संस्कृति के लक्ष्यों से मध्यम वर्ग स्वयं को दूर करता जा रहा है तथा अतिशय वास्तविकता को ही विकास के सूचक मानकर उपभोगी एवं विलासी होता जा रहा है। विकास के सूचकांक में उपभोग के माध्यम से अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ करने की वकालत करते हैं तथा इससे समाज के उस पहलू को नजरअंदाज भी किया जाता है जिसमें स्वास्थ्य एवं पर्यावरण दोनों ही शामिल होते हैं। स्वास्थ्य के निर्धारण में व्यक्ति के व्यवहारिक प्रतिमान एवं पर्यावरण दोनों का ही साथ होता है। स्वस्थ शरीर से ही स्वस्थ मन का निवास होता है और स्वस्थ मन से ही हमारे समाज हेतु लिये गये निर्णय समाज के लिये उपयेागी होते हैं। लेकिन पूंजीवादी दशाओं ने इस उपभोगी संस्कृति को इस प्रकार से प्रसारित एवं प्रचारित करने में अपना तर्क दिया कि व्यक्ति का अभिमुखन उसी संस्कृति के तरफ होना शुरू हो जाता है (बोर्दियों 1984)।[1] अब इस प्रकार से व्यक्ति को स्वास्थ्य दशाओं का ध्यान रखना अतिआवश्यक हो जाता है। अब इस प्रकार से व्यक्ति को स्वास्थ्य दशाओं का ध्यान रखना अतिआवश्यक हो जाता है, इसमें किसी प्रकार का संशय नहीं है कि लोगों की मानसिकता अर्थव्यवस्था की तरफ अधिक होती है कि यदि अर्थव्यवस्था से मजबूत है तथा उसके साथ ही साथ उसके पास स्वयं के प्रस्थिति को उच्च करने के अधिक से अधिक अवसर प्राप्त होते हैं, लेकिन इस तथ्य पर ध्यान देना अपरिहार्य हो जाता है कि यदि हम मात्र उपभोग के तरफ ध्यान अधिक करेंगे तो उससे कई प्रकार के स्वास्थ्य एवं पर्यावरणीय संकटों का सामना करना पड़ सकता है।

अध्ययन के उद्देश्य

- उपभोक्तावादी समाज में स्वास्थ्य दशाओं का अध्ययन करना।
- उपभोक्तावादी समाज में पर्यावरणीय संकट का अध्ययन करना।

विषयवस्तु विश्लेषण

वर्तमान समाज में पूंजीवादी संस्कृति के प्रसार से एक ऐसे समाज का सृजन हो रहा है जिसमें प्रमुख रूप से उपभोग का दायरे में वृद्धि होती जा रही है। समसामयिक परिदृश्य में स्वास्थ्य एवं पर्यावरण ऐसे प्रासंगिक विषय हैं कि जिस पर सदैव अकादमिक जगत में संवाद होते रहते हैं। स्वास्थ्य एवं पर्यावरण दोनों ही विज्ञान एवं समाजविज्ञान के दायरे में आते हैं। सभी विज्ञानों का प्रमुख ध्येय मानव जीवन का कल्याण करना है। नेटल (2005)[2] ने बताया कि 1960 के दशक तक स्वास्थ्य को मानव जीवन के अच्छे पैमाने के रूप में मात्र 3000 ही अध्ययन दृष्टिगोचर होते हैं। इनमें से सबसे प्रमुख चुनौती इस तथ्य पायी गयी कि किस प्रकार से स्वास्थ्य को सामाजिक विज्ञानों के साथ जोड़ कर देखा जा सकता है। प्रमुख रूप से हम यहाँ यही दर्शाने का प्रयास कर रहे हैं कि किस प्रकार से समाज में स्वास्थ्य एवं पर्यावरण किसी संस्कृति के कारण संकट का सामना कर रहे हैं। स्वास्थ्य का सरोकार व्यक्ति के जीवन के प्रतिमानों से प्रत्यक्ष रूप से जुड़ा हुआ है। स्वास्थ्य का सरोकार व्यक्ति के जीवन शैली तथा उसके जीवन प्रत्याक्षा, आनन्द तथा संतुष्टि के पैमाने से जुड़ा होता है (सीडहाउस 1995)।[3] इसी तथ्य के सन्दर्भ में विश्व स्वास्थ्य संगठन[4] ने स्वास्थ्य की बहुआयामी दशाओं तथा स्वास्थ्य के गुणात्मक पहलू पर बल दिया है जिसमें स्वास्थ्य में मात्र बीमारी के निदान को ही शामिल ही नहीं किया जाता बल्कि उसके सामाजिक एवं सांस्कृतिक आधारों पर भी ध्यान दिया जाता है। स्वास्थ्य के आधार क्षेत्रों में निरन्तर वृद्धि हो रही है। व्यक्ति के चिन्तन आधारों को भी इसमें शामिल किया गया है तथा साथ ही साथ मानसिक स्वास्थ्य को उत्तम बताने पर बल दिया है।

* असिस्टेन्ट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, सामाजिक विज्ञान संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

व्यक्ति आज के दौर में इस प्रकार के गतिविधियों में शामिल हो रही है जिसमें व्यक्ति अवसाद का शिकार होता जा रहा है। विश्व स्वास्थ्य संगठन ने आज के दौर में स्वास्थ्य को एक वैश्विक परिघटना के रूप में संज्ञायित किया है जिसमें विश्व में स्वास्थ्य को पाना एक लक्ष्य निर्धारित किया गया है। शारीरिक स्वास्थ्य, मानसिक स्वास्थ्य तथा सामाजिक व सांस्कृतिक स्वास्थ्य पर विश्व स्वास्थ्य संगठन ने स्वास्थ्य के इन समस्त पहलुओं को स्वास्थ्य के दशाओं में शामिल किया है। इस प्रकार से स्वास्थ्य को मात्र रोगों के निदान व उपचार तक ही सीमित नहीं रखा जाता है उसको उसके निर्धारण में व्यक्ति के सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिवेश का भी योगदान नजर आता है (स्टुअर्ट एवं ब्राउन 1998)।[5]

उपभोक्तावादी संस्कृति एवं स्वास्थ्य

उपभोक्तावादी संस्कृति इस प्रकार के जीवन शैली को अभिव्यक्त करता है जिसका मूल रूप से उद्देश्य अधिक से अधिक वस्तुओं का उपभोग तथा उन संसाधनों पर स्वामित्व होने से प्रसन्नता के भाव का पाया जाना है। इस प्रकार के संस्कृति के निर्माण के पीछे सबसे बड़ा हाथ वैश्वीकरण के सहायक साधनों का है। इसमें व्यक्ति को लुभाने के लिए इस प्रकार के विज्ञापनों का सहारा लिया जाता है कि व्यक्ति के मानसिक पटल पर उसकी एक अमिट छाप नजर आये। इसका परिणाम यह नजर आता है कि व्यक्ति स्वयं से अधिक उन साधनों पर बल देता है जो कि व्यक्ति को मात्र क्षणिक सुख ही प्रदान करता है, व्यक्ति की इस प्रवृत्ति के कारण समाज में लोगों की मानसिकता में भी व्यापक तौर पर बदलाव नजर आया है। व्यक्ति भौतिक संसाधनों का गुलाम होता जा रहा है तथा उसके प्रयोग से ही स्वयं को उच्च वर्ग में दिखाने का प्रयास कर रहा है।

उपभोक्तावादी समाज में व्यक्ति को स्वास्थ्य के लिए भी एक उपभोक्ता की तरह ही लिया जा रहा है। व्यक्ति की सेवाओं तथा वस्तुओं के प्रति इस प्रकार के लोकलुभावन अवसरों को प्रदान किया जा रहा है कि व्यक्ति उन आदतों का गुलाम होता जा रहा है। व्यक्ति ने स्वयं को उच्च दिखाने के लिए सदैव इस प्रकार के प्रयासों को कर रहा है जिसका प्रभाव व्यक्ति के स्वास्थ्य पर पड़ रहा है। उपभोक्तावादी संस्कृति में विज्ञापनों से व्यक्ति को उन आदतों का शिकार बनाया जा रहा है जिससे कि वह स्वयं के मानवीय मूल्यों को भूल चुका है। उपभोक्तावादी संस्कृति के आने के परिणामस्वरूप पूंजीवादी प्रवृत्तियों को अधिक से अधिक बढ़ावा मिला है जिसका कि एक मात्र लक्ष्य उत्पादित वस्तुओं से अधिक से अधिक लाभ अर्जित किया जा सके। लाभ के प्रेरक तत्वों को बढ़ोतरी देने के लिए तार्किकता इस प्रकार से हावी हो रही है कि व्यक्ति इस तार्किकता के पिंजरे से बाहर नहीं निकल पा रहा है (बोमैन 1999)।[6]

जनस्वास्थ्य एवं सामाजिक संरचना में बड़ा ही गहरा रिश्ता पाया जाता है। सामाजिक संरचना भी व्यक्ति के स्वास्थ्य को निर्धारित करती है। सामाजिक संरचना को ध्यान में रखकर ही कोई भी देश स्वास्थ्य के नीतियों का निर्धारण करता है, लेकिन पूंजीवादी सामाजिक संरचना के आने के कारण स्वास्थ्य के सामाजिक रचना (Social Construction) में भी व्यापक तौर पर बदलाव नजर आया है (विलियम्स 2000,[7] विलियम्स 2003,[8] विलकिन्सन 2004[9])। उपभोक्तावाद एवं स्वास्थ्य से सम्बन्धित अध्ययनों (हारमर्ट 1998,[10] हापर्ट 2005[11]) में ज्ञात हुआ कि इसके मध्य व्यापक सम्बन्ध है तथा इसने स्वास्थ्य के निर्धारण में प्रतिकूल प्रभावों को दर्शाया है।

उपभोक्तावाद को आधुनिकता के पैमाने के तौर पर देखा जाता है, आधुनिकता में तार्किकता का गुण पाया जाता है तथा जिसमें नकदी के रूप में हमारे समाज में बहुत अधिक प्रगति की है लेकिन स्वास्थ्य के संदर्भ में स्वास्थ्य में गुणात्मक अपेक्षाकृत सुधार नहीं आया है (नीस 2005)।[12] पाश्चात्य जगत के प्रतिमानों को ही विकास के पैमाने के तौर पर देखा जा रहा है, जिसमें पूंजीवादी संरचना ने इस प्रकार के समाज का निर्माण किया है कि उसमें परम्परा को एक सामाजिक समस्या के रूप में देखा जा रहा है। जिसमें कि लोगों के स्वास्थ्य से सम्बन्धित परम्पराओं को नकारा जा रहा है। जो कि व्यक्ति के स्वास्थ्य को उत्तम बनाये रखने में अपना योगदान देती है। हमारे देश के योग एवं आयुर्वेद के साधनों को सीधे तौर पर नकार दिया गया। उपभोक्तावाद ने इस प्रकार के संस्कृति को प्रसारित करने में योगदान दिया जिसमें मात्र विलासिता है तथा लोगों को इस प्रकार का बना दिया जा रहा है कि वह अपने शरीर में कई प्रकार के रोगों को जन्म दिया है। व्यक्ति को उच्च रक्तचाप, मधुमेह तथा अवसाद का शिकार होता जा रहा है। इसके लिए व्यक्ति दवाओं पर निर्भर रह रहा है। संस्कृति परोक्ष एवं अपरोक्ष रूप से व्यक्ति के विश्वास, परम्पराओं, मूल्यों एवं ज्ञान के आधारों को निर्धारित करता है जिसमें हम अपने जीवन के प्रतिमानों को निर्धारित कर रहे हैं तथा व्यक्ति अपने परम्पराओं से विमुख होता जा रहा है और नवीन परम्पराओं को ग्रहण करने के बाद ही कई प्रकार के बीमारियों से ग्रस्त होता जा रहा है। हमारे शास्त्रों में कहा गया है कि व्यक्ति को रात्रि प्रहर में निद्रा लेनी चाहिये तथा यथासम्भव हो देह के लिए सात्विक भोजन को ही ग्रहण करना चाहिये लेकिन हमारे समाज में भी लोग देर रात्रि तक जाग रहे हैं, अधिक से अधिक धन को ही अपने जीवन का लक्ष्य मान चुके हैं जिससे कि खान-पान सम्बन्धी आदतों में निरन्तरता का अभाव होता जा रहा है तथा व्यक्ति के पास इतनासमय नहीं है कि वह स्वयं के स्वास्थ्य पर अपना ध्यान दे सके। उपभोगवादी मानसिकता के गुलाम होने के कारण व्यक्ति अतिरिक्त कार्य भार में फसता जा रहा है तथा प्रतिस्पर्धात्मक दौर में स्वयं का आंकलन किसी से कम नहीं मानकर इस प्रकार के संस्कृति में लिप्त होता जा रहा है कि स्वास्थ्य पर ध्यान हीं नहीं दे पा रहा है। स्वास्थ्य का संकट इस संस्कृति में और भी अधिक हो चुका है क्योंकि उपभोग करने की प्रवृत्ति के कारण हम नित्य इस प्रकार के रसायनों का प्रयोग कर रहे हैं जोकि हमारे

शरीर की प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाने के बजाय उसको क्षति पहुंचाने का कार्य कर रही है (डेनियल एवं सेल्गिमेन 2004)।[13]

उपभोग की संस्कृति पूंजीवाद की देन है तथा इससे इस प्रकार के वर्ग का निर्माण होता है कि जिसमें एक वर्ग साधन सम्पन्न होता है तथा दूसरा वर्ग साधन विहीन पाया जाता है। साधन सम्पन्न वर्ग धन के बल पर अपने बीमारियों को धन के बल पर तो कुछ समय के लिए टाल लेता है लेकिन साधनविहीन लोगों के पास स्वास्थ्य को उत्तम रखने के साधनों का अभाव पाया जाता है जिससे कि उपभोक्तावादी संस्कृति के कारण स्वास्थ्य का संकट और भी गहरा नजर आता है (गोल्ड एवं गोल्ड 2001,[14] ल्यूरे 2003[15])।

उपभोक्तावादी संस्कृति एवं पर्यावरण संकट

उपभोक्तावाद के जीवन शैली से मानवीय समाज में समरसत्ता में कमी, अवसाद तथा निराशावादी जीवन की बढ़ोत्तरी हुई है। इससे मानवीय इतिहास के उस मोड़ पर आ गये हैं कि मानवीय समाज में पर्यावरणीय संकट में भी बढ़ोत्तरी हो रही है। उपभोग की बढ़ती प्रवृत्तियों के कारण आज हमारा ध्यान पर्यावरण से बिल्कुल ही हट गया है। व्यक्ति की उपभोग की निरन्तर बढ़ती हुई प्रवृत्ति के कारण भौतिक एवं सामाजिक दोनों प्रकार के पर्यावरण की क्षति हुई है (कुमार 2004[16])। हमारी बढ़ती हुई विलासिता की मानसिकता के कारण लोगों में स्वयं को उच्च दिखाने का जो जुनून बढ़ता जा रहा है उससे पर्यावरण को सबसे अधिक हानि पहुँची है। व्यक्ति के जीवन का लक्ष्य मात्र भौतिक सम्पदा को एकत्रित करना है तथा इसके लिए व्यक्ति ने अपनी देशजीय परम्पराओं का त्याज्य किया है। लोगों की मानसिकता में इस प्रकार का बदलाव आया है कि मानवीय संवेदना पर तीव्र कुठाराघात हुआ है। आर्थिक सम्पदा के संग्रहण की होड़ के कारण सामाजिक विकास को गौण दृष्टि से देखा जा रहा है। उपभोक्तावादी संस्कृति में आर्थिक व भौतिक सम्पदा को ही महत्व दिया जाता है तथा इसके कारण संसाधनों का दोहन अत्यधिक तीव्र गति से हो रहा है (फीदरस्टोन 1991[17]) जिसके कारण पर्यावरण के बिना किसी रोक टोक के छेड़खानी की जा रही है। लोगों के लिए प्रस्थिति का मानव उनके पास सम्पदा का होना तथा दिखावा करने की परम्परा को विकसित करना है। आज के दौर में लोगों के पास गाड़ियों का होना, बड़े-बड़े फर्मों का होना, शानोशौकत की जीवन शैली का होना ही प्रस्थिति का निर्धारक होता जा रहा है। अपने सुखसुविधा के लिए वनों को एवं नदियों का दोहन इस प्रकार से व्यक्ति करता है कि उसको इस बात से कोई फर्क नहीं पड़ता कि इनके अतिशय दोहन से आने वाले समय में किस प्रकार का प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा। उपभोक्तावाद संस्कृति को हम पूंजीवाद के प्रतिफल के रूप में देख सकते हैं जिसमें कि उपभोग की प्रवृत्ति को तीव्र करना होता है जिससे कि मनुष्य को इस प्रकार के आरामदायक जीवन का लोकलुभावन हेतु प्रेरित किया जाता है। इसके लिए मनुष्य गाड़ियों को खरीदता है तथा गाड़ियों की संख्या अधिक होने के कारण सड़कों को एक्सप्रेस वे में परिवर्तित किया जा रहा है, जिसके लिए कई बार तो कृषि योग्य भूमि को भी सड़कों के नाम पर कुर्बान कर दिया जाता है। लोगों को इससे दो प्रकार की हानि होती है एक तो किसानों की भूमि चली जाती है तथा दूसरा खाद्यान्न संकट का भय भी बना रहता है। पूंजीवादी के इस उपभोक्तावाद की प्रवृत्ति से वातावरण में बहुत से अवांछनीय तत्व शामिल हो जाते हैं, क्योंकि वृहद उत्पादन के लिए नये कारखानों की स्थापना के लिए कई प्रकार के उपयोगी संसाधनों को भी समाप्त करना पड़ता है। हमने आज के दौर में मानवीय मूल्यों पर प्रहार किया है जिससे कि सामाजिक वातावरण को भी क्षति पहुँची है तथा लोगों के मनमस्तिष्क से अपनी संस्कृति की प्रतिछाया धूमिल होती जा रही है (मैक्सवेल 2003)[18]। शारीरिक देखरेख करने के लिए हम ए.सी. युक्त कमरों में जाकर व्यायाम कर रहे हैं उससे निकलने वाले विषाक्त पदार्थ हमारे पर्यावरण को बहुत अधिक हानि पहुँचा रहे हैं। उपभोक्तावाद ने जिस प्रकार से जल संसाधनों को हानि पहुँचायी है उससे ये दिन दूर नहीं कि जब विश्व के विभिन्न देश जल के पूर्ति के लिए आपस में संघर्ष करते नजर आयेंगे। उपभोगवाद के कारण पेय पदार्थों की बढ़ोत्तरी में वृद्धि हुई है जिसमें पेयजल की बहुत अधिक मात्रा में व्यर्थ होता है। आवास की साज सज्जा के लिए वनों को हमने दाव पर लगा दिया है वनों से निकले वाली नदियों में जल के स्रोतों में निरन्तर कमी आयी है। पर्यावरण के संदर्भ में हम उत्पादों का उपभोग नहीं कर रहे हैं बल्कि उत्पाद ही हमारा उपभोग कर रहे हैं (स्लाटर 1997)[19]। हम इनका संसाधनों का उपभोग करते करते हम इनके गुलाम हो चुके हैं और पर्यावरण की तरफ किसी प्रकार का ध्यान नहीं दिया जा रहा है। उपभोक्तावाद ने पर्यावरण के संकट को इस कदर बढ़ाया है कि यदि हम अभी इसके प्रति सजग नहीं हुए तो हमारे पास कुछ भी शेष नहीं रहेगा। इसी संदर्भ ने कैफारों (2001)[20] ने बताया कि पर्यावरणीय संहिताओं को यदि हमने नहीं बचाया तो हमारे पास अपने पास जीवन के लिए उपभोग करने के लिए कुछ भी शेष नहीं रहेगा। उपभोग का तात्पर्य अतिशय मात्रा में किसी वस्तु का उपयोग करना नहीं बल्कि उसका उसी मात्रा में उपभोग करना है जिससे कि समाज के सम्पोषण का मार्ग प्रशस्त कर दिया जाये (लेयार्ड 2006)[21]। उपभोग का अर्थ नष्ट करने के मायने में नहीं होना चाहिये बल्कि उसका वास्तविक प्रयोग इस अर्थ में होना चाहिये कि सही दिशा में मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति हो तथा उससे समाज के किसी भी परम्परा को हानि न हो (मिचेल, वुर्डरफ हेल्स 2005[22], आर्चर 1996[23])।

समापन अवलोकन

उपभोक्तावाद के इस संस्कृति में हमें स्वास्थ्य एवं पर्यावरण को गंभीरता से समझना चाहिये। स्वास्थ्य एवं पर्यावरण दोनों का ही आपस में गहरा सरोकार है तथा उपभोग ने दोनों के लिए ही संकट

की अवस्था को उदित करने में सहायक भूमिका निभायी है। स्वास्थ्य को सही दिशा में करने के लिए हमें अपने आदतों और व्यवहार पैमानों को बदलना होगा। इसके लिए हमें अपनी आवश्यकताओं को इस प्रकार से बनाना होगा कि जिससे समाज में किसी वर्ग को हानि न हो तथा समाज के लिए एक ऐसा मानक तय होगा जिससे कि पर्यावरण को भी बचाया जा सके। पूंजीवाद में लाभ के प्रेरक तत्वों में आर्थिक पक्ष की अपेक्षा उन पक्षों पर बल देने की आवश्यकता है कि जिससे विकास का दायरा व्यापक हो तथा उपभोग का आधार सम्पोषित विकास हो। आज के इस दौर में जिस प्रकार के जीवन शैली का अनुसरण कर रहे हैं उससे समाज में स्वास्थ्य और पर्यावरण का संकट होना स्वाभाविक है तथा इससे बचने के लिए हमें अपने उन्हीं भारतीय मूल्यों का संरक्षण करना होगा जिससे कि समाज में स्वास्थ्य सही हो और पर्यावरण को बचा सके।

सन्दर्भ-

1. Bourdieu, P. (1984) Distinction : A Social Critique of the Judgement of Taste. Routlege, London, p. 35
2. Nettle, D. (2005) The Science Behind Your Smile. Oxford University Press, Oxford.
3. Seedhouse, D. (1995) 'Well-being' : health promotion's redherring. Health Promotion International, 10, 61-67
4. WHO (2001) Mental Health : New Understanding, New Hope. World Health Orgnization, WHO Report 2001, Geneva.
5. Stuart-Brown, S. (1998) Emotional well-being andits relation to health. British Medical Journal, 317, 1608-1609.
6. Bauman, Z. (1999) Culture as Praxis. Sage, London.
7. Williams, S.J. (2000) Reason, emotion and embodiment : is 'mental' health a contradiction in terms ? Sociology of Health and Illness, 22, 559-581
8. Williams, G. (2003) The determinants of health : structure, context and agency. Sociology of Health and Illness, 25, 131-154.
9. Wilkinson, R. (2004) Linking social structure and individual vulnerabilty. Journal of Community Work and Development, 5, 31-48.
10. Hartmut, R. (1998) On defining the good life : liberal freedom and capitalist necessity. Constellations, 5, 201-214
11. Huppert, F.A., Baylis, N. and Keverne, B (eds) (2005) The Science of Well-Being. Oxford University Press, Oxford.
12. Nesse, R.M. (2005) Natural section and the elusiveness of happiness. In Nettle, D. (2005) The Science Behind Your Smile. Oxford University Press, Oxford.
13. Diener, E. and Seligman, M.E.P. (2004) Beyond money : toward an economy of well being. Psychological Sciencein the Public Interest, 5, 1-31.
14. Gould, N. and Gould, E. (2001) 'Health as a consumption object : research notes and preliminary investigation. Internationla Journal of Consumer Studies, 25, 90-101.
15. Lury, C. (2003) Consumer Culture. Polity Press, Cambridge.
16. Kumar, S. (2004) Spiritual imperative. Bristol Schumacher Lecture, University of Bristol, 30 October.
17. Featherstone, M. (1991) Cosumer Culture and Postmodernis. Sage, London.
18. Maxwell, T.P. (2003) Integral Spirituality, Deep Science and Ecological Awareness, Zygon, 38, 257-276.
19. Slater, D. (1997) Consumer Culture and Modernity. Polity Press, Cambrdige.
20. Cafaro, P. (2001) Economic consumption, pleasure, and the good life. Journal of Social Philosophy, 32, 471-486.
21. Layard, R. (2006) Happiness : Lessons from a New Science, Penguin Books Ltd, Middlesex.
22. McMichael, A.J., Woodruff, R. E. and Hales, S. (2006) Climate change and human health : present and futurerisks. Lancet, 367, 859-869. nef (2004) A Well-Being Manifesto for a Flourishing Society . New Economics Foundation, London.
23. Archer, M. (1996) Culture and Agency : The Place of Culture in Social Theory. Cambridge University Press, Cambridge.

●

भारतीय संस्कृत पत्रकारिता : संभावनाएँ, चुनौतियाँ एवं भविष्य

डॉ. अमिता एवं मोनू सिंह राजावत***

संस्कृत भाषा को जितना अधिक महत्व हमारे समाज में मिला है उतना शायद अन्य किसी भाषा को नहीं मिला है। यह सिर्फ एक भाषा ही नहीं है बल्कि भारतीय आस्था का प्रतीक भी है। भारत का सबसे प्राचीन ग्रन्थ ऋग्वेद भी संस्कृत भाषा में लिखा गया है। ऐसा माना जाता है कि 'यह भाषा ग्रीक से भी अधिक पूर्ण है, लैटिन से अधिक समृद्ध और अन्य किसी भी भाषा से अधिक परिष्कृत है। संस्कृत को सभी भाषाओं की जननी कहा जाता है एवं सभी भाषाओं की उत्पत्ति की सूत्रधार भी मानी जाती है।''[1] इस देश में समस्त मौलिक निधि संस्कृत में ही निहित है। भारतीय दर्शन, धर्मशास्त्र, विधिशास्त्र, अर्थशास्त्र, कामशास्त्र, गणित, फलित, ज्योतिष, आयुर्वेद, विज्ञान, मन्त्र, यंत्र, इतिहास, पुराण, संगीतशास्त्र, काव्य एवं नाट्यशास्त्र कलाएं आदि सभी संस्कृत भाषा में ही है।[2] प्राचीनकाल से ही इस देश में संवाद और सम्प्रेषण की स्मृद्ध परम्परा रही है। पुराणों में दूतकर्म में नारदमुनि का विशेष स्थान है। आदिकाव्य रामायण में सुमुख नामक गुप्तचर का वर्णन मिलता है। तत्कालीन समाज में गुप्तचरों के माध्यम से समाचार प्राप्त किये जाते थे। महाभारत में वनेचर का वर्णन मिलता है जो समाचार प्राप्त करके राम तथा युधिष्ठर को बताते हैं। उस समय राजाओं के यहां विधिवत गुप्तचर नियुक्त होते थे जो दूसरे राजाओं के समाचार गुप्त रूप से प्राप्त करके अपने राजाओं को देते थे। महाभारत में धृतराष्ट्र को संजय ने कुरुक्षेत्र में होने वाले युद्ध का आँखों देखा हाल सुनाया था।[3]

वहीँ आधुनिक समय में देश विदेश के कई विश्वधालयों में संस्कृत भाषा को पढ़ाया जा रहा है। एक रिपोर्ट के अनुसार है कि रूसी, जर्मन, जापानी, अमेरिकी सक्रिय रूप से आध्यात्मिक ग्रन्थों से नई चीजों पर शोध कर रहे हैं और उन्हें वापस दुनिया के सामने अपने नाम से रख रहे हैं। लगभग 40 देशों में संस्कृत भाषा से संबंधित शोध चल रही हैं।''[4] साथ ही इस भाषा से computational linguistic science को परिपोषित और सम्वर्धित करने में संस्कृत के शब्दानुशासन से अधिकाधिक मदद ली जा रही है।[5] 'ऐसे परिदृश्य में किन्हीं कारणों से शिथिल-गति वाली संस्कृत-पत्रकारिता अब, आधुनिक संचार माध्यमों के सर्वविध क्षेत्रों में और सामाजिक संचार माध्यमों में अपनी उपयोगिता और प्रभाव को स्थापित कर रही है'।

संस्कृत पत्रकारिता का इतिहास

भारत में सर्वप्रथम बंगालगजट नामक साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन समाचार पत्र के रूप में 20 जनवरी सन् 1780 ई. में हुआ। इस पत्र के संपादक जेम्स ऑगस्टस हिक्की थे। इसके आगमन के बाद अनेक अंग्रेजी पत्र अनेक जगहों से प्रकाशित किये गए। देशी भाषा के प्रथम पत्र के रूप में दिग्दर्शन नामक पत्र सन् 1817 में बांग्ला में प्रकाशित हुआ। इस पत्र के प्रकाशन के बाद पत्रकारिता में अत्यंत उन्नति हुई और अनेक भाषाओँ में साप्ताहिक, मासिक, पाक्षिक और दैनिक पत्रों का प्रकाशन हुआ। इसके अलावा 30 मई 1826 को हिंदी का पहला समाचार पत्र 'उदन्त मार्तण्ड' जुगल किशोर शुक्ला के सम्पादकत्व में निकला। भारत में हिंदी पत्रकारिता के साथ ही संस्कृत पत्रकारिता का भी प्रारम्भ हुआ। उस समय अनेक पत्र-पत्रिकाएं संस्कृत मिश्रित थी। जैसे उदन्त मार्तण्ड में उनके द्वारा रचित श्लोक इसमें छापते थे। लेकिन मूलतः भारत में संस्कृत पत्रकारिता का आरम्भ वर्ष 1866 में काशी से निकली पत्रिका 'काशी विधा सुधानिधि' से माना जाता है जिसका दूसरा नाम पंडित पत्रिका भी था।[6] सन् 1970 में संस्कृत-पत्रकारिता के क्षेत्र में एक ऐतिहासिक घटना हुई जिसके महानायक थे– मैसूरू, कर्नाटक के सुप्रसिद्ध संस्कृत-विद्वान, गीर्वाणवाणीभूषण, विद्यानिधि, पण्डित-कल्ले-नडादूरु-वरदराजय्यङ्गार्य,जिन्होने मैसूरू से 'सुधर्मा' नामक दैनिक संस्कृत समाचार-पत्र प्रकाशित कर के विश्व-पत्रकारिता के मञ्च पर संस्कृत-पत्रकारिता का ध्वज फहरा दिया। सुधर्म दैनिक समाचारपत्र उन पुराने जीवंत समाचार पत्रों में से एक है जिसकी प्रतियों को अभी भी देश विदेशों में ऑफलाइन और ऑनलाइन पढ़ा जाता है। यद्यपि 1907 ई., 1-जनवरी को थिरुअनन्तपुरम् (केरल) से 'जयन्ती' नामक पहला दैनिक संस्कृत-समाचार-पत्र प्रकाशित कर के श्री कोमल-मारुताचार्य और श्री लक्ष्मीनन्द-स्वामी ने एक अभूतपूर्व साहस किया था किन्तु धन और ग्राहक-पाठक के अभाव में इस संस्कृत-दैनिक का प्रकाशन कुछ दिनों बाद ही बन्द करना पड़ा फिर कालान्तर में, कानपुर से भी कुछ समय तक 'सुप्रभातम्' नाम का दैनिक संस्कृत-समाचार-पत्र निकलता रहा किन्तु पाठक-ग्राहक के अभाव में इसको भी बन्द करना पड़ा'।[7]

संस्कृत पत्रकारिता का इतिहास लगभग 150 सालों से अधिक का है, शुरुआत की संस्कृत पत्र-पत्रिकाएं मूल रूप से समाचार से सम्बंधित नहीं थी। यहां पर मुख्यतः दो प्रकार की संस्कृत पत्र-पत्रिकाएं बहुतायत में देखने को मिलती थी। एक वे पत्रिकाएं जो मूल रूप से शोध-आलेखों, प्राचीन ग्रंधो, पांडुलिपियों को ही प्रकाशित करती थी अर्थात यह मूल रूप से शोध पत्रिकाएं थी और वहीं दूसरी ओर सामान्य पत्रिकाएं जिनमे सभी विषयों को जगह मिलती थी अर्थात यह सामान्य पत्रिकाएं थी जो साप्ताहिक,

* अस्सिटेंट प्रोफेसर, पत्रकारिता एवं जनसंप्रेषण विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।
* * पी-एच0डी0 स्कॉलर, पत्रकारिता एवं जनसंप्रेषण विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

पाक्षिक और मासिक थी जिनमें साहित्यिक लेख, पाण्डुलिपियाएँ छपती रही और बाद में समाचार का पुट इन पत्रिकाओं में देखने को मिला'।[8]

संस्कृत पत्रकारिता के वृहद इतिहास को 3 भागों में विभाजित करके आसानी से समझा जा सकता है

1. 19 वीं शती की पत्र-पत्रिकाएं
2. 20 वीं शती की पत्र–पत्रिकाएं
3. वर्तमान (21 वीं शती) की पत्र-पत्रिकाएं

उन्नीसवीं शती की प्रमुख पत्र -पत्रिकाएं

इस समय की प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं में विद्योदय, संस्कृत चन्द्रिका, उषा, सहृदयता और मञ्जुभासिनी आदि प्रधान पत्रिकाएं था। विद्योदय के प्रकाशन से ही व्यंगात्मक एवं चुभते निबंधों का उदय हुआ और एक नवीन विधा प्रारम्भ हुई। इन पत्र-पत्रिकाओं के पूर्व कई पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन हुआ परन्तु अर्थाभाव के कारण वे अधिक समय तक प्रकाशित न हो सकी। विधार्थी, आर्षविधासुधानिधि, ब्रह्मविधा और श्रुतप्रकाशिका आदि सन् 1887 ई. के पूर्व की पत्र-पत्रिकाएं हैं। सन् 1888 में विज्ञान चिंतामणि पत्र का प्रकाशन प्रारंभ हुआ। यह समाचार प्रधान पत्र आरम्भ हुआ। यह समाचार प्रधान पत्र उच्च कोटि के पत्रों में प्रथम है। इसकी प्रमुख विशेषता भाषा की सरलता और सुगमता थी। सन् 1899 ई. में उषा, वेद, वेदांग विषय प्रधान पत्रिकाएं प्रकाशित की थी। जयचंद सिद्धांत भूषण ने कलकत्ता से सन् 1933 में उषा पत्रिका के बाद संस्कृत चन्द्रिका का प्रकाशन आरम्भ किया। विद्योदय और संस्कृत चन्द्रिका की भाषा अत्यंत परिष्कृत और परिमार्जित थी। इन पत्रिकाओं में देश के विशिष्ट विद्वानों की रचनाएँ प्रकाशित होती थी। इसमें अनेक प्रकार के विषयों पर लेख लिखे जाते थे। सहृदय पत्रिका (1895), मञ्जुभासिनी (1900) इस पत्रिका का महत्व समाचार की दृस्टि से अधिक रहा है। खासतौर पर साहित्यिक अभिवृद्वि, राजनैतिक चेतना का उत्थान इन पत्र-पत्रिकाओं में हुआ।[9]

बींसवी शती -

इस शती के प्रथम दशक की प्रमुख पत्रिकाओं में से सुनृतवादिनी साप्ताहिक पत्रिका तथा मासिक मित्र-गोष्ठी प्रधान है। सुनृतवादिनी में समाचार प्रधान राजनैतिक विषयों एवं समस्यायों पर व्यंगात्मक निबन्धों का प्रकाशन हुआ जिसके फलस्वरूप पत्रिका का प्रकाशन शीघ्र ही रोक दिया गया। मित्रगोष्ठी पत्रिका में साहित्यिक, सामाजिक, ऐतिहासिक और वैज्ञानिक लेख प्रकाशित होते थे। आर्यप्रभा, शारदा क्रमशः 1909 और 1913 ई. में निकली। सन् 1918-1919 ई. में 'परिषत्पत्रिका और संस्कृत महामंडलम दो पत्रों का प्रकाशन हुआ। इन दोनों पत्रिकाओं में स्त्री शिक्षा, समाज सुधार, संस्कृतभाषा आदि विषयों पर लेख प्रकाशित होते रहे। खासतौर पर गांधी जी के आंदोलन को सफल बनाने में साकेत और संस्कृत-साकेत नामक यह दो पत्रों ने हास्य और व्यंग्य के सहारे उपर्युक्त विषयों का निरूपण करके अहम भूमिका निभायी। सुप्रभातम तथा सूर्योदयः पत्र का प्रकाशन सन् 1923-24 में वाराणसी में हुआ। प्रमुख रूप से आजादी के समय में राष्ट्रीय चेतना और साहित्यिक नवचेतना को मुखरित करती हुई अनेक संस्कृत पत्र पत्रिकाओं का प्रकाशन हुआ। उनमे समय समय पर साहित्यिक लेखों के साथ सामाजिक, राजनैतिक और धार्मिक आदि विषयों की चर्चा हुई। इसके अलावा इस युग में विज्ञान चिंतामणि, संस्कृत साकेत, ज्योतिष्मती आदि का भी विशेष महत्व है। विज्ञान चिंतामणि, मञ्जुभाषिणि साप्ताहिक पत्रों में राजनैतिक विषयों पर अधिक संख्या में लेख निकलते थे। शारदा, सुप्रभातम, श्रीः, मञ्जूषा, संस्कृत पधवाणी, मधुरवाणी, सरस्वती, सुषमा, कौमुदी आदि पत्रिकाएं भी इस युग में महत्पूर्ण स्थान रखती है। मूलतः मित्रगोष्ठी इस समय की सर्वश्रेष्ठ पत्रिका थी। परन्तु समाचारों के अभावों की पूर्ति संस्कृति और सुधर्मा के प्रकाशन से हुई। पुरातन संस्कृत पत्र-पत्रिकाओं के प्रमुख सम्पादकों में दामोदर शास्त्री, ऋषिकेश शास्त्री भट्टाचार्य, सत्यव्रत, सामश्रमी, विधवावाचस्पति अप्पाशास्त्री, विधुशेखर भट्टाचार्य, महामहोपाध्याय रामवतार शर्मा, चंद्रशेखर आदि का नाम प्रमुख है।[10]

वर्तमान संस्कृत पत्र- पत्रिकाओं का परिचय

वर्तमान दैनिक समाचार पत्र

सुधर्मा : यह समाचार पत्र जुलाई 1960 ई0 को प्रकाशित हुआ इसका संपादन वरदराज अयंगार ने किया। नवप्रभातम नामक समाचार पत्र का प्रकाशन 1990 ई. को हुआ इसको प्रकाशित करने के लिए 16-5-1997 ई. को संस्कृत नवप्रभातम न्यास की स्थापना हुई। जिसके संस्थापक सदस्य पं. रामलाल मिश्र, डॉ. शिवबालक द्विवेदी, डॉ. प्रेमकृष्ण शुक्ल आचार्य, सोमदत्त वाजपेयी, श्री विश्वनाथ कपूर थे। इसके अलावा और कुछ दैनिक समाचारपत्र जो देश के अलग अलग हिस्सों से प्रकाशित होते हैं जिनमे से कुछ इस प्रकार है; संस्कृतवर्त्मपत्रम (गुजरात), विश्वस्य वृत्तान्तं (सूरत, गुजरात), नवप्रभातम (कानपुर, उत्तर प्रदेश), दिग्व्रता (इटावा, उत्तर प्रदेश), सम्प्रतिवर्ताः (ऑनलाइन, केरला), प्राची प्राजना (ऑनलाइन काँगड़ा, हिमाचल प्रदेश), इंडियन नेचर संस्कृत समाचार पत्र (दिल्ली) है।[11]

वर्तमान साप्ताहिक संस्कृत पत्र- पत्रिकाएँ

भवियतम नामकपत्रिका वर्ष 1959 ई. में प्रो. श्रीधर भास्कर वर्णकर के नेतृत्व में निकली। गाण्डीवम नामक पत्रिका का प्रकाशन सन् 1964 ई. में शुरू हुआ इसको वाराणसी से निकाला गया इसके संपादक श्री रामबालक शास्त्री थे। इस पत्र में प्रायः सभी प्रकार के समाचारों का प्रकाशन होता था। सिद्धिदात्री नामक पत्रिका डॉ. शिवबालक द्विवेदी के सम्पादकत्व में कानपुर से निकली। इसमें संस्कृत समाचार के आलावा अधुनिक कविता, गद्य, ललित, निबंध,

लेख, लघुनाटक एवं संस्कृत वाड्यम से सम्बंधित सामग्रियों पर समीक्षात्मक लेख प्रकाशित होते हैं। युगगति नामक साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन गोरखपुर से हुआ इसके संपादक- श्री राजसकेति थे।[12]

वर्तमान पाक्षिक पत्र-पत्रिकाएँ

शारदा नामक यह पाक्षिक का प्रकाशन 1959 ई. में हुआ इसके सम्पादक श्री वसंत अनंत गाडगिल है। इसमें कविता, नाटक, निबंध, लघुकथा, अनुवाद एवं समाचार छपते थे। हितसाधिका नामक पत्रिका हरियाणा के यमुनानगर से निकली, इसका संपादन आचार्य वर्मा ने किया।

वर्तमान मासिक संस्कृत पत्रिकाएँ

(संस्कृत प्रतिमा-1951 अमरनाथ मठ वाराणसी), (संस्कृत सन्देश–1953, काठमांडू नेपाल संपादव- श्री योगी, हरिहरनाथ और बुद्धिसागर पराजुली थे।), (दिव्यज्योति, 1953 ई. शिमला), (प्रणव पारिजातम-कलकत्ता), (अभिवन संस्कृतम–कानपुर), (संस्कृतामृतं-दिल्ली), (साहित्यवाटिका-दिल्ली 1960), (जयतु संस्कृतम, 1960, काठमांडू), (सर्वगंधा-लखनऊ), (गुरुकुल पत्रिका,1960-गुरुकुल कांगड़ी), (देववाणी-मुंगेर बिहार), सरस्वती सौरभम।

वर्तमान द्वैमासिक संस्कृत पत्रिकाएँ

भारत सुधा - 1932 पूना, भारत मुद्रा – केरल, बहुश्रुत-1940।

त्रेमासिक संस्कृत पत्रिकाएँ

शारदा – 1938, भारती, सागरिका, विश्वमाया, अभिनव सुरभारती ।

षाणमासिक संस्कृत पत्रिकाएँ

संस्कृत प्रतिभा, संस्कृत विमर्श, मागधम है।

वार्षिक संस्कृत पत्रिका

मृतवाणी - 1942, गंवेषणा, शोध परिजातम, सिद्धिदात्री निकली।

इस प्रकार संस्कृत की कुछ और पत्र-पत्रिकाएँ जो दैनिक, साप्ताहिक, पाक्षिक, मासिक तथा वार्षिक आदि है जिनकी विषयवस्तु में समाचार लेखों के अलावा राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक, खेल, कहानियाँ, कविताएँ, शोक, निबंध तथा संस्कृत को प्रचार प्रसारित करने वाली सामग्री छपती थी– संवित् (पाक्षिकं पत्रम्), संस्कृत-बाल-संवादः (मासिकं पत्रम्), गीर्वाणी (मासिकं पत्रम्), महास्विनी (षाण्मासिकं पत्रम्), आरण्यकम् (षाण्मासिकं पत्रम्), संस्कृत-सम्मेलनम् (त्रैमासिकं पत्रम्), अर्वाचीन-संस्कृतम् (त्रैमासिकं पत्रम्), आर्षज्योतिः (मासिकं पत्रम्), संस्कृत-प्रतिभा (त्रैमासिकं पत्रम्), संस्कृत-मञ्जरी (त्रैमासिकं पत्रम्), संस्कृत-वार्त्ता (त्रैमासिकं पत्रम्), संस्कृत-विमर्शः (वार्षिकं पत्रम्), अभिव्यक्ति-सौरभम् (त्रैमासिकं पत्रम्), अतुल्यभारतम् (मासिकं पत्रम्), संस्कृतवाणी (पाक्षिकं पत्रम्), संस्कृत-सम्वादः (पाक्षिकं पत्रम्), संस्कृत-रत्नाकरः (मासिकं पत्रम, दिशा-भारती (त्रैमासिकं पत्रम्), देव-सायुज्यम् (त्रैमासिकं पत्रम्), संस्कृत-वर्तमानपत्रम् (दैनिकं पत्रम्), विश्वस्य वृत्तान्तम् (दैनिकं पत्रम्), संस्कृत-साम्प्रतम् (मासिकं पत्रम्), निःश्रेयसम् (षाण्मासिकं पत्रम्), श्रुतसागरः (मासिकं पत्रम्), सेतुबन्धः (मासिकं पत्रम्), हितसाधिका (पाक्षिकी पत्रिका), दिव्यज्योतिः (मासिकं पत्रम्), रावणेश्वर-काननम् (मासिकं पत्रम्), रसना (मासिकं पत्रम्), दूर्वा (त्रैमासिकं पत्रम्), नाट्यम् (त्रैमासिकं पत्रम्), सागरिका (त्रैमासिकं पत्रम्), ऋतम् (द्विभाषिकं मासिकं पत्रम्), स्रग्धरा (मासिकं पत्रम्), अमृतभाषा (साप्ताहिकं पत्रम्), प्रियवाक् (द्वैमासिकं पत्रम्), दिग्दर्शिनी (त्रैमासिकं पत्रम्), वसुन्धरा (त्रैमासिकं पत्रम्), संस्कृत-मन्दाकिनी (षाण्मासिकं पत्रम्), लोकप्रज्ञा (वार्षिकं पत्रम्), लोकभाषा-सुश्रीः (मासिकं पत्रम्) लोकसंस्कृतम् (त्रैमासिकं पत्रम्), विश्वसंस्कृतम् (त्रैमासिकं पत्रम्), स्वरमङ्गला (त्रैमासिकं पत्रम्), भारती (मासिकं पत्रम्), रचना-विमर्शः (त्रैमासिकं पत्रम्), सरस्वती-सौरभम् (मासिकं पत्रम्) संस्कृतश्रीः (मासिकं पत्रम्), वाक् (पाक्षिकं पत्रम्), अजस्रा (त्रैमासिकं पत्रम्), परिशीलनम् (त्रैमासिकं पत्रम्), प्रभातम् (दैनिकं पत्रम्), व्रजगन्धा (त्रैमासिकं पत्रम्), संगमनी (त्रैमासिकं पत्रम्), विश्वभाषा (त्रैमासिकं पत्रम्), भास्वती (षाण्मासिकं पत्रम्), कथासरित् (षाण्मासिकं पत्रम्), दृक् (षाण्मासिकं पत्रम्), वाकोवाकीयम् (षाण्मासिकं पत्रम्), वैदिक-ज्योतिः(षाण्मासिकं पत्रम्), अभिषेचनम् (षाण्मासिकं पत्रम्), अभ्युदयः (षाण्मासिकं पत्रम्), सत्यानन्दम् (मासिकं पत्रम्), संस्कृत-साहित्य-परिषता पत्रिका (त्रैमासिकं पत्रम्) इसके आलावा संस्कृत की एक न्यूज़ एजेंसी भी है- News in Sanskrit [News agency] Hindustan Samachar आदि।[13]

बहुत-सारी ई-पत्रिकाएँ हैं जिनमें प्राची प्रज्ञा (मासिकी ई-पत्रिका), जान्हवी (त्रैमासिकी ई-पत्रिका), संस्कृत-सर्जना (त्रैमासिकी ई-पत्रिका) और सम्प्रति वार्त्ताः (दैनिकं ई-पत्रम्) आदि प्रमुख हैं।[14]

पत्र-पत्रिकाओं की विषयवस्तु एवं भाषा शैलीः

इन पत्र-पत्रिकाओं में राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक, साहित्यिक, सांस्कृतिक समाचारों के आलावा संस्कृत एवं संस्कृति के प्रचारार्थ सामग्री यथा नवीन कवियों की रचनाएँ, सम्पादकीय अग्रलेख आदि रहते है। खासतौर पर दैनिक समाचार पत्रों में प्रचलित एवं सरल शब्दों के साथ व्यावहारिक भाषा का प्रयोग किया गया है। पंडित पत्रिका की विषयवस्तु में धार्मिक, सैद्धांतिक, वैज्ञानिक, आध्यात्मिक, राजनैतिक, सामाजिक निबंध रहते थे। धर्म का प्रचार प्रसार तथा तत्संबंधी समाचारों का प्रकाशन इस पत्र का प्रमुख विषय रहा है, इसके अतिरिक्त समसामयिक विषयों पर सम्पादकीय लेख भी प्रकाशित होते थे।[15]

संस्कृत पत्रकारिता का आधुनिक स्वरुप

बीसवीं और इक्किसवीं शदी में कई मायनो में संस्कृत पत्रकारिता का रूप बदला है, खासतौर पर पिछले 50 वर्षों में अभूतपूर्व परिवर्तन देखने को मिले हैं। सूचना एवं प्रौद्योगिकी में हुए क्रांतिकारी परिवर्तन ने पत्रकारिता की दशा एवं दिशा में भी बदलाव किये हैं। भारतीय समाचार पत्रों के पंजीयक कार्यालय (आर. इन.आई) से 131 संस्कृत समाचार प्रकाशनों का पंजीकरण है जिसमे से 20 पंजीकरण पिछले 4 सालों में हुए हैं।[16] और यह प्रकाशन की संख्या समय दर समय ज्यादा ही हो रही है। संस्कृत पत्रकारिता के इतिहास में महत्वपूर्ण दिन तब आया जब भारत सरकार के सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय ने प्रयोगात्मक रूप से वर्ष 1974 में 30 जून की सुबह आकाशवाणी के दिल्ली केंद्र से समाचार प्रसारित किये, यह आकाशवाणी का पहला संस्कृत बुलेटिन था जो रेडियो सेवा शुरू होने के लगभग चार दशक बाद आया।'[17] इसके बाद इसमें सांस्कृतिक कार्यक्रम की शुरुआत हुई।

संस्कृत दिवस के अवसर पर वर्ष 1994 में दूरदर्शन पर संस्कृत बुलेटिन की शुरुआत हुई।[18] दूरदर्शन में संस्कृत बुलेटिन को जगह भारतीय संस्कृत पत्रकारिता के इतिहास में किसी क्रांति से कम नहीं थी। इसके बाद इंटरनेट पत्रकारिता के आगमन ने संस्कृत की पहुंच देश ही नहीं बल्कि दुनिया के किसी भी कोने में बैठे व्यक्ति तक सुलभ करा दी। आज न्यूज़ पोर्टल, ऑनलाइन रेडियो आदि अनेक माध्यमों ने संस्कृत पत्रकारिता के विकास में महत्पूर्ण भूमिका निभायी है।

'दिव्यवाणी संस्कृत रेडियो' श्री अरबिंदो फाउंडेशन फॉर इंडियन कल्चर (एसएएफआईसी), श्री अरबिंदो सोसायटी, पुडुचेरी, भारत की एक ऐसी ही पहल है। यह पहली बार देश में शुरू हुआ पहला 24 घंटे ऑनलाइन संस्कृत रेडियो है जो 15 अगस्त 2013 को शुरू किया गया था। इसके माध्यम से विश्व स्तर पर संस्कृत में विभिन्न प्रकार के कार्यक्रमों का प्रसारण किया जाता है। वहीं 'वार्तावली' संस्कृत की पहली साप्ताहिक संस्कृत मैगज़ीन है जिसका उद्घघाटन 28 जून 2015 को डीडी न्यूज़ के नए प्रोजेक्ट के रूप में किया गया था। इसके अलावा साप्ताहिक बुलेटिन की बात की जाए तो 'संस्कृत सप्ताहिकी' नामक यह साप्ताहिक बुलेटिन 4 जुलाई 2020 से आकाशवाणी से प्रसारित किया गया, इस बुलेटिन की अवधि करीब 20 मिनट की है (ऑल इंडिया रेडियो एफएम न्यूज चैनल 100.1 मेगाहर्ट्ज फ्रीक्वेंसी) है। इस कार्यक्रम में सप्ताहभर की प्रमुख गतिविधियां, संस्कृत साहित्य, दर्शन, इतिहास, कला और संस्कृति में निहित मानवीय मूल्यों को प्रकट करने वाली सूक्ति, प्रसंग, ज्ञान-विज्ञान, बाल वल्लरी, एक भारत श्रेष्ठ भारत और अनविक्षिकी खंड शामिल है।''[19] इसके साथ ही भारतीय जनसंचार संस्थान नई दिल्ली और राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान ने मिलकर संस्कृत भाषा में पत्रकारिता के कोर्सेज शुरू करके एक अहम पहल की हैं। वहीं देश का संस्कृत पत्रकार संघ (रजि.) भी समय समय पर राष्ट्रीय स्तर पर कार्यक्रमों, कार्यशालाओं का आयोजन करता रहता है।

वर्तमान संस्कृत पत्र- पत्रिकाओं के समक्ष चुनौतियाँ

वर्तमान संस्कृत पत्र-पत्रिकाओं के समक्ष विभिन्न प्रकार की चुनौतियां है। जिसमे से कुछ प्रमुख चुनौतियां निम्न है।

1) आर्थिक संकट

आर्थिक संकट संस्कृत पत्र-पत्रिकाओं की प्रमुख समस्या रहा है। ज्यदातर पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन व्यक्तिगत आय और व्यय से हुआ है। जो संस्कृत के सम्पादक साधन सम्पन नहीं थे वे निरंतर पत्रिका का प्रकाशन नहीं कर पाते थे। ज्यदातर पत्र-पत्रिकाओं के बंद होने का प्रमुख करण यही रहा है। कई पत्र -पत्रिकाओं में पाठकों से निवेदन किया जाता था कि वो नियमित समय पे मूल्य दें और ज्यादा से ज्यादा लोगों तक इस पत्र-पत्रिका को पहुचायें ताकि प्रकाशन बनाये रखने में आसानी हो। वर्ष 2016 में संस्कृत अख़बार सुधर्मा ने फंड के लिए सरकार से मदद की अपील की थी। अखबार प्रबंधन ने सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय से भी विज्ञापनों के लिए मदद के लिए संपर्क किया था लेकिन इस पर अब तक कोई निर्णय नहीं लिया जा सका।[20]

संस्कृत पत्र-पत्रिकाओं के अध्यनोपरांत मैक्समूलर इस निष्कर्ष पर पहुँचे थे-

There are journals written in Sanskrit which must entirely depend for their support on readers.[21]

2) पेशेवर लोगों की कमी

संस्कृत पत्रकारिता में अन्य भाषाओँ की तरह न तो मीडिया इंडस्ट्री विकसित है और ना ही अन्य भाषा के मीडिया हाउस की तरह कार्य करने वाले प्रोफेशनल लोगों की उपलब्धता है। 'संस्कृत विधापीठ, दिल्ली और भारतीय जनसंचार संस्थान, दिल्ली ने मिलकर संस्कृत पत्रकारिता में एडवांस डिप्लोमा शुरू किया है लेकिन संस्थान के पास संस्कृत में पढ़ाने के लिए शिक्षक नहीं है, उसकी जगह हिंदी पत्रकारिता के शिक्षक को पत्रकारिता के टेक्निकल पहलु पढ़ाने के लिए भेजा गया।'[22] इस अभाव से गुजरती हुई कोई पत्रकारिता कैसे अपना स्थान इस गला काट मीडिया जगत में पत्रकारिता के शीर्ष में बना पायेगी।

3) लेखकों का अभाव

संस्कृत पत्रकारिता के प्रशिक्षण के लिए देश में गिने हुए कुछ ही संस्थान है और ऊपर से उन संस्थानों में प्रशक्षित संस्कृत पत्रकारिता के शिक्षकों की कमी है। इसके अलावा पत्र-पत्रिकाओं में विविधता के लिए अन्य भाषा की पत्रकारिता की तुलना में विषय विशेषज्ञ स्तम्भ लेखकों की कमी है जिस वजह से पत्र-पत्रिकाओं में लेखन के लिए भी एक प्रकार से प्रशक्षित लेखकों की कमी है जिसकी वजह से गुणवत्तापूर्ण विषयवार सामग्री का अभाव रहता है।

4) अन्य समस्याएँ

संस्कृत पत्रकारिता के समक्ष सबसे बड़ी चुनौती भाषा का ज्ञान, इच्छा शक्ति, पहुँच, आर्थिक संसाधन तथा संगठित कार्य है।[23] संस्कृत पत्रों का संचालन सम्पादकों के परिवार वाले ही कर रहे है जिस वजह से ऐसा प्रतीत होता है कि इसका प्रकाशन सिर्फ संस्कृत भाषा के प्रचार प्रसार तक ही सीमित सा हो गया है। संस्कृत पत्र-पत्रिकाओं में ग्राहकों का अभाव भी एक महत्वपूर्ण चुनौती है इसे खरीदकर पढ़ने वालों की तादात बहुत कम है। इसमें पाठक संख्या कम होने की वजह से विज्ञापनों की उपलब्धता भी इनको पर्याप्त मात्रा में नहीं मिल पाती है। जिस वजह से प्रकाशन का व्यय संपादक पर एक चुनौती सा बन जाता है। इलेक्ट्रॉनिक मीडिया और रेडियो की स्तिथि भी संस्कृत में बहुत अच्छी नहीं है। संस्कृत में पढ़ने वाले एवं बोलने वालों की संख्या अन्य क्षेत्रीय भाषाओँ से ज्यादा तो है लेकिन एक स्थान पे नहीं है। दूसरी महत्पूर्ण चीज यह है की आज संस्कृत पत्रकारिता में कॉर्पोरेट लोगों का साथ नहीं है इस भाषा को सिर्फ अकादमिक जगत तक ही सीमित बना दिया है। इस भाषा को सिर्फ एक धरोहर की तरह ही समझा जा रहा है इस भाषा की पत्रकारिता में समाचार सामग्री का पुट कम वहीँ साहित्यिक पत्रकारिता का स्थान ज्यादा दिया जाता रहा है। आज भी संस्कृत बोलने वालों और पढ़ने वालों को हीन भाव से देखा जाता है ऐसे माहौल में कोई पत्रकारिता कैसे जीवोपार्जन का रास्ता बनाएगी। इक्के दुक्के लोग असंगठित रूप से पत्रिका निकल तो देते है लेकिन धनार्जन के अभाव में कुछ समय बाद पत्र-पत्रिका दम तोड़ देती है।

संभावनाएँ एवं भविष्य

थाईलैंड (बैंकाक) में हुए विश्व संस्कृत सम्मलेन की विशेषता को बताते हुए दिल्ली दूरदर्शन के एक वरिष्ठ सलाहकार का कहना है कि नासा के वैज्ञानिक के लम्बे समय तक अनुसंधान से यह सिद्ध हुआ है कि छठी और सांतवी पीढ़ी के कंप्यूटर की भाषा संस्कृत होगी क्यूंकि उनकी प्रोग्रामिंग केवल संस्कृत में ही संभव हो पायेगी। दूसरी कोई भी भाषा इतनी वैज्ञानिक नहीं है।[24] डॉ बलदेवानंद सागर के अनुसार भी इस भाषा से computational linguistic science को परिपोषित और सम्वर्धित करने में संस्कृत के शब्दानुशासन से अधिकाधिक मदद ली जा रही है। जब विश्वस्तर पे जिस भाषा का महत्व इतना अधिक होगा तो स्वाभाविक ही इसकी पत्रकारिता समाज और विश्वकल्याण में सार्थक बनेगी। इस भाषा की वैश्विक महत्ता को समझते हुए सरकार और बुद्धिजीवियों को इस भाषा की पत्रकारिता में आने वाली चुनितियाँ पे ध्यान देना चाहिए। यदि देश विदेश से इस भाषा की पत्रकारिता के लिए क्राउडसोर्सिंग जैसे नवीनतम मॉडल का प्रयोग करके धन एकत्रित किया जाये और साथ ही विज्ञापन सरकारी और प्राइवेट कंपनी द्वारा पत्र पत्रिकाओं को उचित संख्या में उपलब्ध कराये जाये तो निश्चित ही इस पत्रकारिता के समक्ष धनार्जन की समस्या ख़त्म हो जाएगी और सुचारू रूप से प्रकाशन हो पाएंगे। यदि सरकारी व गैर सरकारी संस्स्थानो द्वारा विभिन्न प्रकार के पत्रकारिता के कोर्सेज चलाये जाएँ जो भाषा की समझ के साथ ही थ्योरेटिकल और प्रैक्टिकल स्किल पे ध्यान केंद्रित करें तो निश्चित ही इसका विकास तीव्र होगा। सम्प्रतिव्रताः जो एक ऑनलाइन संस्कृत न्यूज़ पोर्टल है वो संस्कृत के संवर्धन के लिए समय समय पर स्कूलीय छात्रों को न्यूज़ रीडिंग ट्रेनिंग देता है, ऐसी ही पहल अन्य पत्र-पत्रिकाओं के द्वारा की जाए तो इस क्लासिकल भाषा की पत्रकारिता को और बेहतर तरीके से प्रस्तुतु किया जा सकता है।

References:

- Sagar, B. (n.d.). Swatantrta swangram me sanskritnisht patrkaron ki bhumika. Retrieved November 26, 2020, from Bhartiy Darohar: https://www.bhartiyadharohar.com
- Jha, J. (n.d.). Sanskrit patrkarita chunotiyan evam samadhaan. Retrieved November 26, 2020, from sanskritbhashi: https://sanskritbhasi.blogspot.com/2016/06/blog-post_23.html
- Dev,S. (2020). Importance ofsanskrit language in hindi. Retrieved from https://aboutinhindi.com/importance-of-sanskrit-language-in-hindi/
- Sagar, B. (n.d.). Sanskrit patrkarita: Itihas evam adhunatan swaroop. Retrieved from https://globalpress.hinduismnow.org/global-press-originals/sanskit
- Jha, J. (n.d.) Sanskrit patrkarita chunitiyan evam samadhan. Sanskritbhasi. https://sanskritbhasi.blogspot.com/2016/06/blog-post_23.html
- Sahu, S. (2018). Hindi patrkarita me uplabdhiya sambhavnae evam chunotiya [Unpublished PhD thesis, Jiwaji University]. Shodhganga theses reservoir. http://hdl.handle.net/10603/262690.
- Web duniya. (n.d.). Sanskrit me basti he Bharat ke atma- Pramod Shastri. Retrieved February 20, 2021, from Web Duniya Hindi: https://hindi.webdunia.com/indore/sanskrit-sammelan-in-indore-118122600081_1.html.
- Gupta, S. (2020, July 4). AIR par Sanskrit bhasha me shuru huaa pahla weekly news bulletin, aaj prasarit hua pahla episode. Oneindiahindi. Retrieved February 23,2021 from https://hindi.oneindia.com/news/india/the-first-weekly-news-bulletin-in-air-started-in-sanskrit-aired-first-episode-on-july-4-568288.html
- Goswami, R. (2019, Aug 15). On Sanskrit Diwas, a look at what govt. did for the ancient language. Hindusatan Times, New Delhi. Retrieved February 24,2021from https://www.hindustantimes.com/india-news/on-sanskrit-diwas-a-look-at-what-govts-did-for-the-ancient-language-opinion/story-jYWJEf2iH21bUDTAQC5gYP.html
- Sagar, B. (n.d.). Sanskrit- Prasuti.[Blog post] Retrieved on 3 March 2021 From https://sanskritaprasruti.wordpress.com
- Sudharma sanskrit daily. (n.d.). Origin of Sudharma. Retrieved March 1, 2021, from Sudharma sanskrit daily: https://sudharmasanskritdaily.in/about-us/
- Sanskritdocuments. (n.d.) Sanskrit Periodicals: Newspapers and Magazines. [Blog]. Retrived March 3 2021 from https://sanskritdocuments.org/news/SanskritNewspapersandMagazines.html

- Sharma, M. (2017, Oct 30). How Sanskrit journalism is slowly hogging headlines. Hindustan times. Retrieved 4 march 2021 from https://www.hindustantimes.com /delhi-news/how-sanskrit-journalism-is-slowly-hogging-headlines/story-e8iKt4MzRKnsBAwEqGQQuJ.html
- Kumar, P. (2007). Vartman Sanskrit patrakarita ka samikshatmak adhyayan [Doctoral dissertation, Chhatrapati Sahuji Maharaj University]. Shodganga a reservior of Indian theses http://hdl.handle.net/10603/311812
- Chaudhary, S.S. (2017, Aug 25). First students of Sanskrit journalism in Delhi prefer vaidyut madhyam to mudrankan madhyam.SCROLL.IN. Retrieved 24 march 2021 from https://scroll.in/article/848117/first-students-of-sanskrit-journalism-in-delhi-prefer-vaidyut-madhyam-to-mudrankan-madhyam
- Bharteey Darohar (n.d.). Sanskrit se milegi patrkarita ko nayi disha. Bhartiy Darohar. Retrieved March14,2021 from https://www.bhartiyadharohar.com
- The Wire (2017, Aug 18). IIMC me ab Sanskrit me bhi padhai jayegi patrkarita. The Wire. Retrieved on 15 March 2021 from http://thewirehindi.com/16224/iimc-will-start-sanskrit-journalism-course/
- Praveen, M.P. (2016, Sept. 15). Promoting Sanskrit through journalism. The Hindu. Retrieved 14 March 2021, from https://www.thehindu.com/news/cities/Kochi/Promoting-Sanskrit-through-journalism/article14393496.ece
- Singh, S.K. (2016, April 13). Sanskrit bhasha ka mahtav: sanskrit ke baare me jaane rochak tathy or jaankari [Weblog post] Retrieved from https://www.apratimblog.com/sanskrit-ki-rochak-jankari/#:~:text
- The Hindu. (2018, Oct 8). Ambedkar wanted Sanskrit to be official language of India. The Hindu. Retrieved on 2021, March 3 from https://www.thehindu.com/news/cities/Mangalore/ambedkar-wanted-sanskrit-to-be-official-language-of-india/article25151860.ece

1. Web duniya . (n.d.). Sanskrit me basti he Bharat ke atma- Pramod Shastri. Retrieved February 20, 2021, from Web Duniya Hindi: https://hindi.webdunia.com/indore/sanskrit-sammelan-in-indore-118122600081_1.html.
2. Pushpendra, Kumar. (2007). Vartman Sanskrit patrakarita ka samikshatmak adhyayan [Doctoral dissertation, Chhatrapati Sahuji Maharaj University]. Shodgangaa reservior of Indian theses http://hdl.handle.net/10603/311812
3. Ibid. P(9-10)
4. Web duniya . (n.d.). Sanskrit me basti he Bharat ke atma- Pramod Shastri. Retrieved February 20, 2021, from Web Duniya Hindi: https://hindi.webdunia.com/indore/sanskrit-sammelan-in-indore-118122600081_1.html
5. Baldevanad, Sagar (n.d.). Sanskrit- Prasuti: Retrieved 3 March 2021 from https://sanskritaprasruti.wordpress.com
6. Pushpendra, Kumar. (2007). Vartman Sanskrit patrakarita ka samikshatmak adhyayan [Doctoral dissertation, Chhatrapati Sahuji Maharaj University]. Shodgangaa reservior of Indian theses http://hdl.handle.net/10603/311812
7. Baldevanad, Sagar (n.d.). Sanskrit- Prasuti: Retrieved 3 March 2021 from https://sanskritaprasruti.wordpress.com
8. Baldevanand, Sagar (n.d.). Sanskrit patrkarita: Itihas evam adhunatan swaroop. Retrieved from https://globalpress.hinduismnow.org/global-press-originals/sanskit
9. Pushpendra, Kumar. (2007). Vartman Sanskrit patrakarita ka samikshatmak adhyayan [Doctoral dissertation, Chhatrapati Sahuji Maharaj University]. Shodgangaa reservior of Indian theses http://hdl.handle.net/10603/311812
10. [1]Ibid. 19-32
11. [1]Sanskritdocuments.(n.d.) Sanskrit Periodicals: Newspapers and Magazines. [Weblog post]. Retrieved March 3 2021 from https://sanskritdocuments.org/news/SanskritNewspapersandMagazines.html
12. Pushpendra, Kumar. (2007). Vartman Sanskrit patrakarita ka samikshatmak adhyayan [Doctoral dissertation, Chhatrapati Sahuji Maharaj University]. Shodgangaa reservior of Indian theses http://hdl.handle.net/10603/311812
13. Baldevanand, Sagar (n.d.). Sanskrit patrkarita: Itihas evam adhunatan swaroop. Retrieved from https://globalpress.hinduismnow.org/global-press-originals/sanskit.
14. Ibid.
15. Ibid page no. 84
16. Sharma, M. (Oct, 30, 2017). How Sanskrit journalism is slowly hogging headlines. Hindustan times. Retrieved 4 march 2021 from https://www.hindustantimes.com /delhi-news/how-sanskrit-journalism-is-slowly-hogging-headlines/story-e8iKt4MzRKnsBAwEqGQQuJ.html
17. Ibid.
18. Rakesh, Goswami (Aug 15, 2019). On Sanskrit Diwas, a look at what govt. did for the ancient language. Hindusatan Times, New Delhi. Retrieved from https://www.hindustantimes.com/india-news/on-sanskrit-diwas-a-look-at-what-govts-did-for-the-ancient-language-opinion/story-jYWJEf2iH21bUDTAQC5gYP.html#:~:text=Sanskrit%20news%20bulletin%20was%20started%20on%20All%20India,when%20PV%20Narsimha%20Rao%20was%20the%20prime%20minister
19. Shubham, Gupta (July 4, 2020). AIR par Sanskrit bhasha me shuru huaa pahla weekly news bulletin, aaj prasarit hua pahla episode. Oneindiahindi. Retrieved from https://hindi.oneindia.com/news/india/the-first-weekly-news-bulletin-in-air-started-in-sanskrit-aired-first-episode-on-july-4-568288.html
20. The Wire (Aug 18, 2017). IIMC me ab Sanskrit me bhi padhai jayegi patrkarita. The Wire. Retrieved on 15 March

2021 from http://thewirehindi.com/16224/iimc-will-start-sanskrit-journalism-course/

21. Pushpendra, Kumar. (2007). Vartman Sanskrit patrkarita ka samikshatmak adhyayan [Doctoral dissertation, Chhatrapati Sahuji Maharaj University]. Shodgangaa reservoir of Indian theses http://hdl.handle.net/10603/311812

22. Shreya Roy, Chaudhary. (Aug 25, 2017). First students of Sanskrit journalism in Delhi prefer vaidyut madhyam to mudrankan madhyam.SCROLL.IN. Retrieved 24 march

23. Jagdanand, Jha (n.d.) Sanskrit patrkarita chunitiyan evam samadhan. Sanskritbhasi. Retrieved from https://sanskritbhasi.blogspot.com/2016/06/blog-post_23.html

24. Bharteey Darohar (n.d.). Sanskrit se milegi patrkarita ko nayi disha. Bhartiy Darohar. Retrieve on March 14 ,2021 from https://www.bhartiyadharohar.comस्कृत-से-मिलेगी-पत्रका/#:~:text=बहरहाल%2C%20संस्कृत%20पत्राकारिता%20के%20समक्ष,का%20सामना%20करना%20पड़ता%20है।

●

पंडित मदन मोहन मालवीय : एक महान क्रिया समाजशास्त्री

*डॉ0 विमल कुमार लहरी**

पंडित मदन मोहन मालवीय का जीवन भारतीय शिक्षा प्रणाली के लिए एक समग्र विग्रह है। पंडित मदन मोहन मालवीय का जन्म 15 दिसम्बर 1861 को प्रयाग में हुआ था। इनके पिता का नाम पंडित ब्रजनाथ व्यास एवं माता का नाम मुना देवी था। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा-दीक्षा घर से हुई। 1884 में इन्होंने बी.ए. की परीक्षा उत्तीर्ण किया। मालवीय जी बी.ए. की परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद अपनी पारिवारिक पृष्ठभूमि के बारे में लिखते हैं कि ''जब मैं बी.ए. पास हुआ तो घर में गरीबी बहुत थी, घर के प्राणियों को अन्न, वस्त्र का भी क्लेश था।''

प्रस्तुत शोध-आलेख में मालवीय जी की जीवन-यात्रा के संघर्ष एवं गरीबी से जुड़े तथ्यों का उल्लेख यहाँ इसलिए किया जा रहा है कि परिवार में अभाव एवं संघर्षों के बावजूद भी मालवीय जी कर्म एवं सेवा के पथ पर गतिमान रहे। आगे वे पूरी सच्चाई एवं दुःख के साथ स्वीकार करते हैं कि- ''मैंने एम.ए. स्तर तक की शिक्षा नहीं प्राप्त की।'' मालवीय जी का इतने संघर्षों एवं गरीबी को झेलना एवं उच्च शिक्षा ग्रहण न कर पाना, इसका उन्हें काफी दुःख रहा। परन्तु ये दुःख एवं संताप भी उनको वास्तविक उद्देश्य से डिगा नहीं पाया। भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन में भागीदारी, समाजसेवा एवं शिक्षा की लौ को अनवरत जारी रखा। इस तथ्य के संदर्भ में वैश्विक पटल पर मूल्यांकन करें तो इतने संघर्षों एवं गरीबी के दंश को झेलने के बावजूद भी काशी हिन्दू विश्वविद्यालय का एक ऐसा विशाल शिक्षारूपी बट वृक्ष उगाया जिसके छाँव में दुनियाँ के कोने-कोने से लोग शिक्षा प्राप्त करने आते हैं। वास्तव में मदन मोहन मालवीय का पूरा जीवन, शिक्षा एवं भारत की स्वतंत्रता के लिए ही समर्पित रहा। जीवनपर्यन्त भारत में शिक्षा के विकास के लिए काम किया। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय मालवीय जी की अनुपम कृति है, जिसे धरती का स्वर्ग कहा जाता है। उन्होंने अपने पुरुषार्थ से काशी हिन्दू विश्वविद्यालय रूपी बगिया को जीवंतता प्रदान किया।

देखा जाय तो मालवीय जी का संघर्ष, उनकी लब्धबुद्धि एवं कार्य के प्रति समर्पण आधुनिक भारत की कल्पना को साकार रूप प्रदान करता है और उन्हें एक क्रिया समाजशास्त्री के रूप में स्थापित करता है। उनके सामाजिक जीवन को समाजशास्त्र की विषय-वस्तु के रूप में देखा जा सकता है। वैश्विक पटल पर हम देखें तो बहुत कम ही ऐसे लोग दृष्टिगोचर होते हैं, जो अपने जीवन को एक क्रिया समाजशास्त्री के रूप में स्थापित किया हो। पं. मदन मोहन मालवीय को एक क्रिया समाजशास्त्री एवं उनके समाजशास्त्र को कुछ पन्नों में समेटना कहीं से भी न्याय संगत नहीं है, परन्तु शोध-आलेख की शब्द सीमा को देखते हुए कुछ प्रमुख पक्षों को अधोलिखित बिन्दुओं पर विश्लेषित करने का एक छोटा सा प्रयास किया गया है :

स्वतंत्रता आंदोलन में मालवीय जी का योगदान

स्वतंत्रता आन्दोलन में मालवीय जी का योगदान प्रमुख रहा, क्योंकि स्वतंत्रता के लिए तत्कालीन समय में शिक्षा बड़ी मायने रखती थी। जनसंख्या का बहुत बड़ा भाग निरक्षर था, ऐसी स्थिति में मालवीय जी ने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के सपने को साकार करके शैक्षिक कर्मवीर योद्धाओं की एक पूरी फौज खड़ी कर दिया। स्वतंत्रता आन्दोलन के लिए मालवीय जी का यह योगदान एक मझे हुए क्रिया समाजशास्त्री के रूप में देखा जा सकता है। शिक्षा और समाजसेवा को व्यावहारिक धरातल पर क्रिया रूप प्रदान करने के लिए मालवीय जी ने अपनी वकालत को त्याग दिया, लेकिन चौरी-चौरा काण्ड के 177 स्वतंत्रता सेनानियों को बचाने के लिए पुनः उन्हें अदालत में उतरना पड़ा और अपने तर्क एवं मजबूत दलीलों से सभी को बरी भी कराया। 1909 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का उन्हें अध्यक्ष बनाया गया। 1909 से 1932 तक वे भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के 4 बार अध्यक्ष रहे। 1920 के दशक में पं. मदन मोहन मालवीय जी ने गाँधी के साथ कदम से कदम मिलाते हुए असयोग आन्दोलन के भागीदार ही नहीं रहे, वरन् एक प्रमुख नेता के रूप में अपने पद-दायित्व का निर्वाह किया। तत्कालीन नेताओं के साथ मिलकर उन्होंने 'साइमन आयोग' का भी जबरदस्त विरोध किया। स्वतंत्रता आन्दोलन में उनका सबसे बड़ा योगदान यह भी है कि उन्होंने तुष्टिकरण की राजनीति को सिरे से नकारा और 1916 में लखनऊ पूना पैक्ट में मुसलमानों के लिए अलग निर्वाचन मण्डल की माँग को सिरे से खारिज कर दिया। उनका यह योगदान भारतीय समाज की धार्मिक विविधता को वैश्विक पटल पर एक अलग पहचान के रूप में स्थापित करता है।

इस संदर्भ में उनका कथन है-

''स्वराज्य की सीढ़ी में हमारा सबसे प्रथम प्रयास एकता स्थापित करना है।''[1]

1931 में मालवीय जी ने गोलमेज सम्मेलन में भारत का प्रतिनिधित्व किया था एवं पूना पैक्ट में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। पूरे जीवन में उन्होंने अपने प्रसिद्ध कथन **'सत्यमेव जयते'** को व्यवहार में आत्मसात् किया और लोकजन को आत्मसात करने के लिए उत्प्रेरित भी किया। मालवीय जी विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं के

* असिस्टेन्ट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

माध्यम से स्वतंत्रता आन्दोलन में एक योद्धा के रूप में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। स्वतंत्र भारत के सपने को साकार करने के लिए अपने जीवन को समर्पित कर दिया। आज मालवीय जी का भौतिक शरीर नहीं है, लेकिन उनके अवदान एवं विचार भारतीय राष्ट्रवाद को अनवरत मजबूती प्रदान कर रहे हैं।

मालवीय जी को भारतीय राष्ट्रवाद के महानायक के रूप में जाना जाता है, जिन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन भारत को आजाद कराने के लिए समर्पित कर दिया। उनकी प्राथमिकता थी कि- एक बार फिर सनातन संस्कृति की स्थापना पूरी दुनियाँ में हो, वे कहते हैं कि-

''जनता की स्थिति में उन्नति ही स्वरात्य की वास्तविक परीक्षा है।''[2]

मालवीय जी का राष्ट्रवाद भारत की प्राचीन भाषा हिन्दी को स्वीकारने पर बल देता है। उनका राष्ट्रवाद तो यहाँ तक कहता है कि-

''मान, प्रतिष्ठा और गौरव की रक्षा के लिए प्राण अर्पण करना अच्छा मालूम पड़ता है।''[3]

वस्तुतः ये सभी तथ्य पं. मदन मोहन मालवीय को एक महान क्रिया समाजशास्त्री के रूप में स्थापित करते हैं।

मानवतावादी मूल्यों की स्थापना

पं. मदन मोहन मालवीय का सम्पूर्ण जीवन मानवीय मूल्यों के साथ ही गतिमान रहा है। जाति, धर्म, सम्प्रदायगत जैसे भेदगत वैचारिकी से परे मानवता की सेवा को ही सर्वोपरि माना। वे अपने एक वक्तव्य में कहते हैं कि-

''मैं जाति के भाव ब्राह्मण से लेकर चाण्डाल तक को भाई समझता हूँ। जाति के पक्ष से, जाति की ममता से हमें सब प्यारे हैं।''[4]

मालवीय जी का यह कथन जहाँ एक तरफ उनके मानवतावादी दृष्टिकोण को उद्घाटित करता है, तो वहीं दूसरी तरफ उन्हें एक सशक्त क्रिया समाज वैज्ञानिक के रूप में भी स्थापित करता है।

मानवतावादी समाजशास्त्र के संदर्भ में हरिकृष्ण रावत कहते हैं कि-

''मानवतावादी समाजशास्त्र समाजशास्त्रीय ज्ञान को जनसाधारण के हित में उपयोग का हामी है। ज्ञान की यह शाखा व्यापाक मानव हितों को अध्ययन को केन्द्र बिन्दु बनाकर मानवीय समस्याओं के समाधान का प्रयास करती है।''[5]

एक क्रिया समाजशास्त्री का मूल कार्य तत्कालीन समस्या से सम्बन्धित समाधान को ढूंढ़ना एवं उस समस्या का निराकरण करना होता है। पं. मदन मोहन मालवीय जी के जीवन इतिहास का मूल्यांकन किया जाय तो उनके जीवन से सम्बन्धित ऐसी ढेर सारी कहानियाँ एवं अवदान प्रचलित हैं, जो उनके मानवतावादी दृष्टिकोण को स्थापित करते हैं। मालवीय जी का सम्पूर्ण जीवन मानव सेवा में ही व्यतीत हुआ। वे एक ऐसी संरचना पर बल देते हैं, जहाँ किसी भी स्तर पर कोई भेद न हो। मानवतावादी मूल्यों की स्थापना हेतु सतत् प्रयत्नशील रहे।

पवित्रता की सामाजिक अवधारणा की स्थापना

दुनियाँ की अधिकांश मानव सभ्यता की यात्राएँ पवित्रता एवं अपवित्रता की वैचारिकी से पोषित रही है। हाँ पवित्रता एवं अपवित्रता को लेकर परिप्रेक्ष्य जरूर अलग-अलग रहे हैं। अपनी यात्रा में अपवित्रता जैसी वैचारिकी के कारण जनसंख्या का एक बड़ा भाग हाशिए पर रहा है। यहाँ तक कि उनका जीवन पशुवत समाज से भी बदतर रहा है।

पवित्रता एवं अपवित्रता के संदर्भ में दुर्खीम कहते हैं कि-

''पवित्र वस्तुओं से विश्वासों एवं व्यवहारों की एक संयुक्त व्यव्यस्था को धर्म कहते हैं, पवित्र वस्तुएं वे वस्तुएं हैं, जो पृथक रखी जाती है और निषिद्ध मानी जाती है- विश्वास और व्यवहार जो एक अकेले नैतिक समुदाय में संगठित होते हैं, जिसे चर्च कहते हैं, वे सभी लोग उनको अपनाते हैं।''[6]

यदि हम भारतीय धर्म ग्रन्थ गीता के तथ्यों को देखें तो समस्त बुरे कर्मों को अपवित्रता की श्रेणी में रखा गया है। अच्छे कर्म से वर्णों का निर्धारण भी होता था। कालान्तर में पवित्रता एवं अपवित्रता की धारणा को कर्म की बजाय जाति से जोड़ा गया। यहाँ तक कि वैधव्य जीवन जी रहीं महिलाओं को भी अपवित्रता की श्रेणी में रखा गया है। लेकिन मालवीय जी ने अपने कालखण्डों में इस तरह की वर्जनाओं को पूरी तरह से नकारा है। यहाँ तक कि इन वर्जनाओं की समाप्ति के लिए अथक प्रयास भी किया। मालवीय जी ने सदैव कर्म की प्रधानता को ही महत्व दिया एवं मानव शरीर को परमात्मा के मंदिर के रूप में स्वीकार किया। इस संदर्भ में वे कहते हैं कि-

''यह शरीर परमात्मा का मंदिर है, ईश्वर को सदैव अपने भीतर अनुभव करना चाहिए और इस मंदिर को कभी अपवित्र न होने दो।''[7]

इस तरह देखा जाय तो मदन मोहन मालवीय ने जाति और लैंगिकता पर लगे अपवित्रता के धब्बे को अपने पुरुषार्थ से पूरी तरह साफ किया। पवित्रता एवं अपवित्रता की एक नई अवधारणा को स्थापित किया।

धर्म के वास्तविक एवं समाजशास्त्रीय स्वरुप की स्थापना

मदन मोहन मालवीय का पूरा जीवन धर्म के ही पथ पर गतिमान रहा। वे सनातन धर्म के अंग बने रहे। लोकजन के दुःख-दर्द को मिटाना अथवा समाप्त करना ही उनका वास्तविक धर्म था।

वास्तव में धर्म का यह वास्तविक एवं समाजशास्त्रीय स्वरुप भी है। उनका मानना था कि समाज की मुख्यधारा से अलग-थलग पड़े लोकजन् के उद्धार के लिए सदैव आगे बढ़ना चाहिए।

धर्म के समाजशास्त्रीय स्वरूप के संदर्भ में प्रो. श्यामधर सिंह कहते हैं कि-

''धर्म संस्कृति द्वारा सुपरिभाषित अंतिम सत्य के प्रति विश्वासों, भावनाओं एवं व्यवहारों की यह एकीकृत व्यवस्था है, जो सम्पूर्ण आत्मबद्धता के आधार पर लोगों को समन्वित जीवन की ओर अभिमुख होने तथा समदृष्टि रखने की अहर्निश केन्द्रीय अभिवृत्ति प्रदान करती है।''[8]

मालवीय जी ने धर्म के वास्तविक स्वरुप को लोगों के सामने रखा। धर्म के वास्तविक रूप पर वे कहते हैं कि- ''मुझे राज्य की कामना नहीं, बल्कि दीन-दुखियों की सेवा करना ही धर्म का सच्चा स्वरुप है।'' हमारा सनातन धर्म इसी वैचारिकी के साथ अनादिकाल से गतिमान है। इसीलिए पूरी दुनियाँ में धर्म के इस स्वरूप को 'मानव धर्म' भी कहा जाता है। मालवीय जी की जीवनी को पढ़ने से स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है कि उनका जीवन, संघर्ष एवं व्यस्तताओं से परिपूर्ण रहा है। इसके बावजूद भी वे संध्याकालीन वंदना के साथ-साथ पूजा, आराधना, जप एवं पाठ के लिए समय किसी न किसी प्रकार निकाल ही लेते थे। मदन मोहन मालवीय का अपने सनातन धर्म से बेहद लगाव था। मालवीय जी अपने अमृत वचन में कहते हैं कि-

''मनुष्य का सबसे बड़ा धन 'धर्म' है।''[9]

मालवीय जी के इस तथ्य से यह अवधारणा निर्मित होती है कि मानवता की सच्ची सेवा, इस धरा का सबसे बड़ा धन है। मालवीय जी जीवनपर्यन्त इसी वैचारिकी के साथ आगे बढ़े। मालवीय जी ने 'धर्म का समाजशास्त्र' को मजबूत आधार प्रदान किया। इस संदर्भ में वे कहते हैं-

''हम धर्म को चरित्र-निर्माण का सीधा मार्ग और सांसारिक सुख का सच्चा द्वार समझते हैं। हम देशभक्ति को सर्वोत्तम शक्ति मानते हैं, जो मनुष्य को उच्चकोटि की निःस्वार्थ सेवा करने की ओर प्रवृत्त करती है।''[10]

इस अमृत वचन से पूरी तरह स्पष्ट है कि मालवीय जी ने समाज सेवा को ही वास्तविक धर्म के रूप में स्वीकार किया है। धर्म के इस स्वरूप को स्वीकार करना एक क्रिया समाज वैज्ञानिक की महत्वपूर्ण विशेषता है। इन तथ्यों से यह अवधारणा निर्मित होती है कि मालवीय जी ने **'सेवा के रूप में धर्म'** जैसी अवधारणा को पूरी दुनियाँ में स्थापित किया, जिसे मानवतावादी धर्म के साथ-साथ सामाजिक धर्म के रूप में भी देखा जा सकता है।

वैश्विक पटल पर शिक्षा के आधुनिक स्वरुप की स्थापना

पं. मदन मोहन मालवीय ने वैश्विक पटल पर आधुनिक शिक्षा की नींव रखी। जिसमें वे आधुनिक शिक्षा के साथ परम्परागत शिक्षा एवं प्राचीन विद्या संस्कृत को साथ लेकर आगे बढ़े। वास्तव में दुनियाँ का एक अनोखा विश्वविद्यालय जहाँ संस्कृत, कला, कृषि, समाज, विज्ञान के साथ-साथ आयुर्वेदिक एवं आधुनिक चिकित्सा पद्धति को एक ही प्रांगण में देखा जा सकता है। मालवीय जी की इस संकल्पना को 'धरती का स्वर्ग' कहा जाता है। इस विश्वविद्यालय में विदेशों से छात्र जहाँ विज्ञान, कला, समाज, कृषि एवं चिकित्सा जैसे पाठ्यक्रमों को पढ़ने तो आते हैं, वहीं दूसरी तरफ दुनियाँ के अधिकांश छात्र संस्कृत की विद्या भी ग्रहण करने आते हैं। इन सब पक्षों के आधार पर देखा जाए तो, यह दुनियाँ का एक अकेला एवं अनोखा विश्वविद्यालय है। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय एक ऐसा विश्वविद्यालय है, जो दान के पैसों से बना है और यह पुरुषार्थ पं. मदन मोहन मालवीय ने कर दिखाया। यह विश्वविद्यालय मालवीय जी के खून-पसीने से निर्मित है। यह विश्वविद्यालय अपनी यात्रा में आज दुनियां में अलग पहचान रखता है।

वास्तव में मालवीय जी ने शैक्षिक समाजशास्त्र की नींव रखा। 'शैक्षिक समाजशास्त्र' के संदर्भ में हरिकृष्ण रावत कहते हैं कि-

''ज्ञान की वह शाखा, जो शिक्षा के प्रशासन तथा/या प्रक्रियाओं का वैज्ञानिक रूप से अध्ययन करती है, शैक्षिक समाजशास्त्र के नाम से जानी जाती है। इसमें समाज का अध्ययन शिक्षा की दृष्टि से किया जाता है, अर्थात् इस प्रकार शिक्षा समाज की प्रगति को प्रभावित करती है। शैक्षिक समाजशास्त्र का मूल उद्देश्य शैक्षणिक तथा शिक्षा से सम्बन्धित सामाजिक प्रश्नों के हल ढूंढ़ना है।''[11]

मदन मोहन मालवीय का मानना था कि जीवन के सर्वांगीण विकास में शिक्षा मूल मंत्र हो और ऐसी शिक्षा के माध्यम से व्यक्ति अपने मोक्ष की प्राप्ति कर सके। मालवीय जी का शिक्षा रूपी स्वर्ग जहाँ उनकी शैक्षणिक भागीदारी को वैश्विक पटल पर सुनिश्चित करता है, वहीं दूसरी तरफ उनके चरित्र निर्माण पर भी बल देता है। इन तथ्यों के आधार पर कहा जा सकता है कि पं. मदन मोहन मालवीय की दृष्टि शिक्षा के प्रति काफी पैनी थी। वे आधुनिक शिक्षा प्रणाली के साथ-साथ परम्परात शिक्षा पद्धति की पाण्डित्य परम्परा को भी आधुनिक कदमों के साथ लेकर आगे बढ़े। शिक्षा के क्षेत्र में यह अनूठा प्रयोग था। यहाँ एक बात और कहना आवश्यक है कि समस्याओं की खोज के साथ-साथ समस्याओं का निराकरण करना एक क्रिया समाज वैज्ञानिक की विशेषता होती है। मालवीय जी की पैनी दृष्टि को देखा जाए तो वैश्विक पटल पर आज से 100 वर्ष

पहले ही इस तरह के अनुसंधान की वैचारिक को क्रियान्वित कर दिया था। अस्तु, पं. मदन मोहन मालवीय को दुनियां का सबसे बड़ा क्रिया समाजशास्त्री कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी।

शिक्षा के साथ चरित्र निर्माण पर विशेष बल

पं. मदन मोहन मालवीय का दृष्टिकोण शिक्षा सुनिश्चित करने के साथ-साथ चरित्र निर्माण पर भी बल देता है। अर्थात् मानव मूल्यों के अनुरूप लोकजन को आगे बढ़ने के लिए प्रेरित करता है। मालवीय जी के शिक्षा के स्वर्ग को शांति स्वरुप भटनागर **'सर्वविद्या की राजधानी'** कहते हैं। वे इसे ईंट-पत्थर एवं कंकरीटों से बने महल के रूप में नहीं देखते, बल्कि विश्वकर्मा की अनुपम कृति के रूप में देखते हैं, जो कर्मवीर योद्धाओं को जन्म देती है। मालवीय जी का मानना था कि चरित्र निर्माण के बिना मानव पूरी तरह से अधूरा है। इस तरह पं. मदन मोहन मालवीय शिक्षा और चरित्र निर्माण को साथ-साथ लेकर आगे बढ़े। शिक्षा के संदर्भ में वे कहते हैं कि-

''शिक्षा सारे सुधारों की जड़ है।''[12]

आज मालवीय जी का भौतिक शरीर नहीं है, लेकिन उनका स्वर्ग अर्थात् काशी हिन्दू विश्वविद्यालय शिक्षा और चरित्र निर्माण की वैचारिकी को पूरी निष्ठा, ईमानदारी एवं शुद्धता के साथ पुष्पित और पल्लवित कर रहा है।

विद्यार्थियों को महामानव बनाने पर बल

मदन मोहन मालवीय का मुख्य लक्ष्य विद्यार्थियों को महामानव बनाना था। यह सम्भव मालवीय जी काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना करके दिखाया। मालवीय जी विद्यार्थियों को महामानव बनाने के लिए अपने उद्देश्य में कहते हैं कि-

''सत्येन ब्रह्मचर्येण व्यायामेनाथ विद्यया।

देशभक्तयात्मत्यागेन सम्मानार्ह सदा भव॥''[13]

इस पद्य के माध्यम से मालवीय जी छात्रों को महामानव बनाने के संदर्भ में अपने संदेश में कहते हैं कि-

''सत्य ब्रह्मचर्य, विद्या, व्यायाम, देशभक्ति तथा आत्मत्याग द्वारा अपने समाज में सदा सम्मान के योग्य बनो। मालवीय जी का मानना था कि सत्य का आचरण और व्यायाम द्वारा शारीरिक तथा मानसिक स्तरों पर मजबूत बनते हैं। अपने कुटुम्ब एवं राष्ट्र को बचाने के लिए क्षमता पैदा करें। इसके साथ-साथ सदैव शुद्धता तथा सेवा का पालन करें। अपने व्यवहार के साथ-साथ विद्यालय का गौरव बढ़ायें। गुरुजनों का आदर करें। सहपाठियों के साथ सौहार्दपूर्ण व्यवहार करें। कर्मचारियों के साथ सहानुभूति और प्रेम का व्यवहार करें, अपने से छोटों की सेवा, अपना कर्त्तव्य समझें। दूसरों के प्रति कोई भी ऐसा आचरण न करें, जिसे वह अपने प्रति किया जाना अनुचित समझें, उन कार्यों से डरें जो त्याज्य हो, मातृभूमि से प्रेम करें।''[14]

अस्तु, देखा जाय तो ये सभी तथ्य पं. मदन मोहन मालवीय को क्रिया समाजशास्त्री के रूप में स्थापित करते हैं।

आधुनिक भारत के निर्माता

मदन मोहन मालवीय को आधुनिक भारत के निर्माता के रूप में भी जाना जाता है। मालवीय जी एक ऐसे अकेले व्यक्ति थे, जिन्होंने आधुनिक शिक्षा की अलख जगाई और शिक्षा, स्वदेशी वस्तुएँ, सर्वधर्म समभाव एवं स्वराज्य जैसे वैशिष्ट्यों के साथ आगे बढ़े। स्वदेशी वैचारिकी का प्रचार-प्रसार करके हर हाथों में कार्य को प्रतिष्ठापित किया। गाँधी जी स्वयं मालवीय जी को अपने भाई के बराबर स्वीकार करते थे। गाँधी जी मालवीय जी को **'आधुनिक भारत का निर्माता'** भी कहते हैं।[15]

वहीं नेहरु जी ने मालवीय जी को **'महामानव'** की संज्ञा दी। नेहरु जी स्वयं कहते थे कि मालवीय जी ने आधुनिक भारतीय राष्ट्र की नींव रखी। मालवीय जी एक समन्वयकारी दृष्टिकोण के साथ आगे बढ़ते थे। यह उनकी विशेषता भी थी। मालवीय जी आधुनिक मूल्यों के साथ-साथ परम्परागत मूल्यों के साथ गतिमान थे। यह पक्ष एक अच्छे क्रिया समाजशास्त्री की प्रमुख विशेषता है।

सरल एवं सादा जीवन

मालवीय जी का जीवन सरल एवं सामान्य सदैव बना रहा। मालवीय जी ने अपने सरल एवं सहज जीवन के माध्यम से लोकजन को एक बड़ा संदेश दिया। वास्तव में उस संदेश में यह था कि हम स्वदेशी वस्तुओं को धारण करें, जिससे हर हाथों को काम मिल सकें एवं जीव-हत्या रोकी जाय। वे जीव हत्या को इस धरा का सबसे बड़ा पापकर्म मानते थे। इसलिए वे जीवनपर्यन्त शाकाहार के पथ पर चलते रहे एवं लोकजन को चलने के लिए प्रेरित भी किया। इस संदर्भ में वे अपने अमृत वचन में कहते हैं कि-

''आप उन्हीं को खरीदिये जिनके खरीदने से अपने गरीब भाईयों को कुछ पैसा मिल सके।''[16]

इस तरह देखा जाय तो मालवीय जी का यह योगदान सिद्धान्त की बजाय व्यवहार में दिखता है। अस्तु, यही क्रिया समाजशास्त्र का दर्शन भी है एवं क्रिया समाज विज्ञानी का प्रकार्य भी है।

मालवीय जी की सामाजिक एवं सांस्कृतिक विरासत

मदन मोहन मालवीय के सामाजिक एवं सांस्कृतिक विरासत का यदि मूल्यांकन किया जाए तो दृष्टिगत है कि **'समाज सेवा'** ही उनका मुख्य धर्म था। गरीबों, निःसहायों के लिए आधुनिक शिक्षा के प्रबन्ध हेतु उन्हें भिक्षाटन भी करना पड़ा, तो वहीं गरीबों एवं असहायों के लिए चिकित्सा व्यवस्था सुदृढ़ करने हेतु तत्कालीन सरकारों के समक्ष अपनी बातों को रखा। आधुनिक शिक्षा व्यवस्था

के साथ-साथ हस्तशिल्प आधारित शिक्षा को बढ़ावा दिया। 1924 में हिन्दू महासभा के विशेष अधिवेशन में लोकजन के बीच पारस्परिक सौहार्द्र और मजबूती प्रदान करने हेतु पहल की। इस धरा पर ब्राह्मण और अब्राह्मण दोनों एक ही सभ्यता के अन्तर्गत हैं। अर्थात् ब्राह्मण और अब्राह्मण दोनों को भाई-भाई की तरह रहना चाहिए। गुण एवं योग्यता के आधार पर सबको समान अधिकार मिले। इस तरह देखा जाये तो मालवीय जी ने दलितों, पिछड़ों को मुख्यधारा में लाने के लिए आजीवन प्रयत्न करते रहे। वास्तव में यही उनकी सामाजिक विरासत भी थी। मालवीय जी के तपस्वी जीवन के आधार पर उनकी सामाजिक-सांस्कृतिक विरासत का चित्रण करते हुए शिवधनी सिंह कहते हैं कि-

''उनका तपस्वी जीवन, उनका उदार हृदय, उनकी कठोर नैतिकता, मानवता के प्रति उनकी शुद्धनिष्ठा, लोगों के प्रति विरक्ति, त्याग एवं बलिदान में अनुरक्ति, पवित्रता तथा ऊँचे आदर्शों की अमित पूजा, कर्त्तव्य पथ में प्रशंसनीय अडिगता- भला एक साथ किसी जीवन में दिखाई देती है?''[17]

उनकी यात्रा को देखें तो स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है कि मालवीय जी ने जहाँ सनातन धर्म को जीवन का आधार बनाया, वहीं, दूसरी तरफ धर्म के क्रियात्मक पक्ष को लोगों के बीच रखा। मालवीय जी ने कांग्रेस एवं अन्य संगठनों द्वारा निर्मित समितियों में विशेष योगदान दिया। इनकी सांस्कृतिक विरासत में इनके द्वारा सम्पादित एवं प्रकाशित विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं एवं समाचार-पत्रों को देखा जा सकता है। हरिजनों के उद्धार के लिए विशेष प्रयास किया।

जीवन आधार-स्वावलम्बन

मदन मोहन मालवीय ने जीवनपर्यन्त स्वावलम्बन को आधार बनाया और स्वयं छात्रों को स्वावलम्बी बनने के लिए प्रेरित भी किया। मालवीय जी स्वावलम्बन की वैचारिकी को व्यावहारिक धरातल पर क्रियान्वयन करने के लिए गाँधी जी के साथ मिलकर विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार किया। स्वदेशी वस्तुओं के निर्माण एवं उपयोग के लिए प्रयासरत रहे। पत्रकारिकता, गोरक्षा के अनके अवदान में स्वालम्बन की झलक स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। इस अवधारणा की संकल्पना पं. मदन मोहन मालवीय ने आज 100 वर्ष पहले ही देख लिया था। इसकी झलक मालवीय जी के स्वदेशी आन्दोलन में बखूबी देखी जा सकती है।

स्वदेशी एवं स्वावलम्बन भारत के संदर्भ में मालवीय जी कहते हैं कि-

''सिर्फ स्वदेशी वस्तुओं के उपयोग से ही स्वदेशी आन्दोलन और स्वावलम्बी भारत का सपना पूरा नहीं हो सकता, बल्कि भारतीय रहन-सहन, खानपान, बोली, भाषा, विचार, शिक्षा, संस्कृति आदि ने भी देशवासियों को स्वदेशी होना होगा।''[18]

स्वदेशी एवं स्वालम्बन की कल्पना को मालवीय जी ने व्यावहारिक धरातल पर क्रियान्वित किया। इन तथ्यों के आधार पर अवधारणात्मक रूप में कहा जा सकता है कि मालवीय जी ने स्वावलम्बन की वैचारिकी को स्वयं आत्मसात् किया ही नहीं, वरन् इसके माध्यम से हस्तश्रम शक्ति की प्रतिष्ठा को स्थापित किया एवं आर्थिक उपादान तथा जीविकोपार्जन के लिए मबजूत आधार प्रदान किया।

राष्ट्र के प्रति समर्पण एवं सर्वधर्म समभाव के समर्थक

पं. मदन मोहन मालवीय सच्चे राष्ट्रभक्त थे, जिन्होंने अपना पूरा जीवपन राष्ट्र के लिए, सर्वधर्म समभाव की स्थापना के लिए समर्पित कर दिया। स्वतंत्रता आन्दोलन से लेकर स्वर्ग के समान काशी हिन्दू विश्वविद्यलय की स्थापना, दलितों, पिछड़ों को मुख्यधारा में लाने की प्रतिबद्धता, वास्तव में उनका राष्ट्र के प्रति समर्पण है। ये सारे अवदान उन्हें एक क्रिया समाजशास्त्री के रूप में स्थापित करते हैं। मदन मोहन मालवीय सर्वधर्म समभाव को अपने जीवन में स्थान दिया। साथ ही साथ हिन्दू धर्म की वैचारिकी को भी उन्होंने बड़े स्तर पर पुष्पित एवं पल्लवित किया।

इस संदर्भ में पं. विश्वनाथ त्रिपाठी द्वारा सम्पादित काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के संस्थापक में मालवीय जी के सर्वधर्म समभाव को उल्लेखित किया गया। आभार सहित यहाँ उद्धृत है-

''हिन्दू धर्म के प्रति मालवीय जी दृढ़निष्ठा थी। वे अपने सनातन धर्म को सर्वश्रेष्ठ समझते थे, पर उनकी निष्ठा, सहिष्णुता से समन्वित थी। वे समान रूप से सब धर्मों, धर्मग्रन्थें, धर्मगुरुओं का आदर करना, सब धर्मनिष्ठ व्यक्तियों का कर्त्तव्य समझते थे। वे 'मंदिर, गुरुद्वारा, मस्जिद, गिरजाघर' सभी को सम्मान के काबिल समझते थे और कहते थे- ''जब मैं किसी गिरजाघर, मस्जिद के पास से गुजरता हूँ, तब मेरा सिर सम्मान से झुक जाता है।'' यद्यपि उन्होंने शुद्धि आन्दोलन को प्रोत्साहित किया, अपने धर्म का व्यापक प्रसार और शास्त्र संगत प्रचार हिन्दुओं का कर्त्तय बताया, फिर भी उन्होंने कभी किसी दूसरे धर्म, धर्मगुरु या धर्मग्रन्थ की निन्दा नहीं की। उनका कहना था कि ''मैं सदैव अपने धर्म का दृढ़ विश्वासी और पाबंद हूँ। किसी के धर्म का अपमान करने का ख्याल तक दिल में कभी नहीं आया।''[19]

पं. मदन मोहन मालवीय का उपर्युक्त तथ्य सर्वधर्म समभाव की वैचारिकी को मजबूत आधार प्रदान करता है। सर्वधर्म समभाव की वैचारिकी, एकता को प्रदर्शित करती है और तोड़ने की बजाय जोड़ने पर बल देती है।

हिन्दी एवं हिन्दी भाषा पर विशेष बल

मालवीय जी ने हिन्दी एवं हिन्दी भाषा पर विशेष बल दिया। इस संदर्भ में मालवीय जी कहते हैं कि-

''जहाँ तक हो हिन्दी में हिन्दी ही रखा जाय।''[20]

इस तथ्य को शीतिकण्ठ मिश्र का तथ्य और मजबूत करता है-

''वे हिन्दी, हिन्दू, हिन्दुस्तान के थाती थे।''[21]

मालवीय जी ने 10 अक्टूबर 1910 को काशी में आयोजित हिन्द साहित्य सम्मेलन के प्रामि अधिवेशन की अध्यक्षता की। मालवीय जी ने अपने सम्बोधन में लोकजन को हिन्दी सीखने के लिए अनुरोध किया। इस संदर्भ में इनका तीन अमृत वचन उल्लेखनीय है-

''आपका भारत धर्म प्रधान देश है। इसके चारों कोनों पर चार धाम है। आप ही सोचिये कि धार्मिक सम्बन्ध से सारे भारत वर्ष में कौन सी भाषा से काम चल सकता है। मेरी समझ में इसके लिए हिंदी का ज्ञान बहुत आवश्यक है।''[22]

''हमारे देश के भाईयों के मरने-जीने का न्याय हो, पर हो वह दूसरी भाषा में, यह कैसे आश्चर्य की बात है? वास्तव में न्याय उस भाषा में होना चाहिए जिसका एक-एक शब्द उसकी समझ में आता हो, जिसके लिए न्याय हो रहा है।''[23]

''देवनागरी अक्षर संसार के सब अक्षर से अधिक सरल एवं स्पष्ट है।''[24]

उपर्युक्त अमृत वचन पं. मदन मोहन मालवीय की हिन्दी भाषा के प्रति समर्पण को उद्घाटित करते हैं।

मदन मोहन मालवीय की अमृतकृति- काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

मदन मोहन मालवीय का काशी हिन्दू विश्वविद्यालय उनका जीवन्त विग्रह है, जो आधुनिक भारत के निर्माण का युग आरम्भ है। सभी विद्याओं की राजधानी, वास्तव में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय पं. मदन मोहन मालवीय की अमरकृति है। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय मालवीय जी के समर्पण, पुरुषार्थ एवं उनके कठिन परिश्रम का परिणाम है। इसकी स्थापना का मुख्य उद्देश्य शिक्षा प्रदान करने के साथ-साथ छात्रों का चरित्र निर्माण भी करना था। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय उस कामधेनु की तरह है जिससे विद्यार्थी जितना चाहे उतना ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं, क्योंकि मालवीय जी खुद छात्रों को कहते थे कि-

''पढ़ते समय सारी दुनियाँ को एक तरफ रख दो और पुस्तकों, लेखक की विचारधारा में डूब जाओ, यही तुम्हारी समाधि है, यही तुम्हारी उपासना है और यही तुम्हारी पूजा है।''[25]

मदन मोहन मालवीय का यह शिक्षा रूपी स्वर्ग शिक्षा प्रदान करने के साथ-साथ अपने मूल्यों, मान्यताओं एवं परम्पराओं को भी संरक्षित कर रहा है। मालवीय जी जिस चरित्र निर्माण की बात किया करते थे, 100 वर्षों के बाद भी उसकी यात्रा जारी है। मालवीय जी के शिक्षारूपी स्वर्ग का काफी विस्तार भी हो चुका है। भारत ही नहीं, वरन् पूरी दुनियाँ से लोग इस शिक्षा के स्वर्ग से सीखने-सीखाने आते हैं। मालवीय जी द्वारा संकल्पित काशी हिन्दू विश्वविद्यालय रूपी स्वर्ग में सीखने-सिखाने की परम्परा अनवरत जारी है। दुनियाँ का यह अनोखा शिक्षा रूपी स्वर्ग में जहाँ इतिहास, कला, साहित्य, समाज, कृषि विज्ञान, चिकित्सा के शब्दों का उच्चारण होता है, तो वहीं यहाँ वेद के मंत्र, उर्दू की अयातें एवं मन्दिर की घंटियाँ, इसके समग्र दर्शन को स्थापित करते हैं, दुनियाँ के विश्वविद्यालयों से इसे अलग भी करते हैं।

आज पं. मदन मोहन मालवीय का भौतिक शरीर नहीं है, लेकिन उनके विचार काशी हिन्दू विश्वविद्यालय रूपी स्वर्ग की दीवारों को अनवरत मजबूत कर रहे हैं। यहाँ से इस स्वर्ग के कर्मवीर पूरी दुनियाँ में अपना परचम फहरा रहे हैं। पं. मदन मोहन मालवीय का काशी हिन्दू विश्वविद्यालय रूपी धरती का स्वर्ग अपनी यात्रा में न रूका, न थका, न ठिठका, आगे बढ़ता ही जा रहा है।

समापन-अवलोकन

प्रस्तुत शोध-आलेख के समापन-अवलोकन के रूप में उपरोक्त तथ्यों के आधार पर कहा जा सकता है कि पं. मदन मोहन मालवीय का पूरा जीवन एक क्रिया समाज वैज्ञानिक के रूप में गतिमान रहा। वे गुलाम भारत को आजाद कराने के लिए लड़ते रहे। दलितों, पिछड़ों की भागीदारी सुनिश्चित करने के लिए अनवरत तटस्थ और लोकजन के बीच धर्म, कर्म, मोक्ष, पुरुषार्थ एवं पवित्रता की एक नयी अवधारणा को स्थापित किया। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के रूप में धरती का स्वर्ग बनाया। जिस स्वर्ग में ना ही कोई भेद था और ना ही कोई दुराव था, और ना ही कोई अलगाव। उस स्वर्ग के दरवाजे को उन्होंने समस्त लोकजन के लिए खोला, जहाँ जाति, धर्म, सम्प्रदाय के आधार पर कोई भेद नहीं था। ऐसे विचार को व्यवहार में क्रियान्वित करना, मालवीय जी को एक क्रिया समाजशास्त्री के रूप में स्थापित ही नहीं करता, बल्कि एक चमत्कारी पुरुष के साथ-साथ ईश्वरीय सत्ता की श्रेणी में खड़ा करता है। मालवीय जी के इस स्वर्ग से प्रति वर्ष हजारों की संख्या में क्रिया समाज वैज्ञानिक बाहर निकलते हैं, जो पूरी दुनियाँ में मालवीय जी के सपने को साकार कर रहे हैं एवं काशी हिन्दू विश्वविद्यालय रूपी स्वर्ग की लकीरों को अनवरत लम्बा कर रहे हैं।

संदर्भ

1. लाल, मुकुट बिहारी (1987) : महामना मदन मोहन मालवीय – जीवन और नेतृत्व, मालवीय अध्ययन संस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, पृ.सं. 150
2. पाण्डेय, विश्वनाथ- सम्पादक (2008) : काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के संस्थापक महामना पंडित मदन मोहन मालवीय का विद्यार्थियों के लिए संदेश, पृ.सं. 44
3. वही, पृ.सं. 44

4. पाण्डेय, विश्वनाथ- सम्पादक (2008) : काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के संस्थापक महामना पंडित मदन मोहन मालवीय का विद्यार्थियों के लिए संदेश, पृ.सं. 44
5. रावत, हरिकृष्ण (2001) : समाजशास्त्र विश्वकोष, रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर एवं नई दिल्ली, पृ.सं. 167
6. सिंह, श्यामधर (2005) : धर्म का समाजशास्त्र, सपना अशोक प्रकाशन, वाराणसी, पृ.सं. 7
7. पाण्डेय, विश्वनाथ- सम्पादक (2008) : काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के संस्थापक महामना पंडित मदन मोहन मालवीय का विद्यार्थियों के लिए संदेश, पृ.सं. 39
8. सिंह, श्यामधर (2005) : धर्म का समाजशास्त्र, सपना अशोक प्रकाशन, वाराणसी, पृ.सं. 47
9. पाण्डेय, विश्वनाथ- सम्पादक (2008) : काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के संस्थापक महामना पंडित मदन मोहन मालवीय का विद्यार्थियों के लिए संदेश, पृ.सं. 43
10. वही, पृ.सं. 44
11. रावत, हरिकृष्ण (2001) : समाजशास्त्र विश्वकोष, रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर एवं नई दिल्ली, पृ.सं. 102
12. पाण्डेय, विश्वनाथ- सम्पादक (2008) : काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के संस्थापक महामना पंडित मदन मोहन मालवीय का विद्यार्थियों के लिए संदेश, पृ.सं. 44
13. वही, पृ.सं. 20
14. वही, पृ.सं. 20
15. वही, पृ.सं. 9
16. वही, पृ.सं. 42
17. सिंह, शिवधनी (1989) : मालवीय महराज जी की छाया में- अट्ठारह वर्ष, ज्ञान मंडल लिमिटेड, वाराणसी, पृ.सं. 25
18. तिवारी, उमेश दत्त (2005) : महामना पं. मदन मोहन मालवीय – संक्षिप्त जीवन परिचय, पृं.सं. 13
19. पाण्डेय, विश्वनाथ- सम्पादक (2008) : काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के संस्थापक महामना पंडित मदन मोहन मालवीय का विद्यार्थियों के लिए संदेश, पृ.सं. 29-30
20. वही, पृ.सं. 40
21. मिश्र, शितिकण्ठ (2010-2011) : 'प्रज्ञा' – काशी हिन्दू विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित पत्रिका में 'अवतारी पुरुष पं. मदन मोहन मालवीय' शीर्षक पर लेख, अंक-56, भाग-2, पृ.सं. 192
22. पाण्डेय, विश्वनाथ- सम्पादक (2008) : काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के संस्थापक महामना पंडित मदन मोहन मालवीय का विद्यार्थियों के लिए संदेश, पृ.सं. 41
23. वही, पृ.सं. 41
24. वही, पृ.सं. 41
25. वही, पृ.सं. 39

●

समाज से विलुप्त हो रही नेटुआ जनजाति की लोक संस्कृति

खुशबू कुमारी एवं डॉ0 ज्ञानेश चन्द्र पाण्डेय***

'लोक' यह शब्द संस्कृत के 'लोकदर्शने' धातु से 'घञ्' प्रत्यय लगाकर बना है। जिसका अर्थ है-देखने वाला। साधारण जनता के अर्थ में इस शब्द का प्रयोग ऋग्वेद में अनेक स्थानों पर हुआ है।[1]

लोक का सामान्य अर्थ साधारण जन-समाज से संबंधित है। आधुनिक साहित्य की नयी प्रवृत्तियों में लोक का प्रयोग गीत, वार्ता, कथा, संगीत के साथ संयुक्त रूप से होता है।

लोक शब्द ऐंग्लों सेक्सन शब्द FOLK के समानार्थक है। FOLK शब्द की उत्पत्ति FOLC से हुई है। जर्मनी में इसे VOLK लिखा जाता है। अंग्रेजी के FOLK का अर्थ अशिक्षित, असंस्कृत और गूढ़ समाज से है। परंतु वर्तमान समय में सर्वसाधारण और राष्ट्र के सभी व्यक्तियों के लिए इस शब्द का प्रयोग हो रहा है। हिन्दी के 'लोक' शब्द का पर्यायवाची अंग्रेजी का 'FOLK' शब्द है।[2]

'लोक' हमारे समाज की वह आत्मा है जो निश्छल, सरल, व सहज होती है। अपनी बातों को बिना किसी बनावट के अपने लहजों में रखती हैं। हम उन्हें असभ्य नहीं कह सकते। अपनी बातों को सहज भाषा में प्रस्तुत करना या फिर स्वयं को बिना किसी बनावटीपन के दुनियाँ के समक्ष लाना असभ्यता नहीं हुआ बल्कि यह उनकी उदारता है। हमारे 'लोक' के चरित्र का एक ही रूप होता है और वो सबके साथ एक जैसा ही व्यवहार करता है। चाहे कोई बड़ा हो या छोटा, अमीर हो या गरीब। परन्तु सभ्य समाज के आचरण के कई रूप होते हैं। या यूं कहें कि सभ्य समाज बहुरूपिया होता है। सभ्य समाज हमेशा अपने मूल आचरण को छुपाकर कृत्रिम आचरण व्यवहार में लाता है। इनकी नजर में अमीर-गरीब, ऊँच-नीच, छोटा-बड़ा जैसे विचार व उसमें सदैव अन्तर रहता है। इनका व्यवहार सबके साथ अलग-अलग होता है। अतः हम यह कह सकते हैं कि हमारा लोक असभ्य नहीं है। किसी की उदारता, निश्छलता, सरलता आदि को हम असभ्यता नहीं कह सकते।

लोक, मनुष्य समाज का वह वर्ग है जो आभिजात्य संस्कार, शास्त्रीयता और पांडित्य की चेतना अथवा अहंकार से शून्य है और जो एक परंपरा के प्रवाह में जीवित रहता है।[3]

हमारे लोक समुदाय की मिली-जुली संस्कृति लोक संस्कृति कहलाती है। लोक संस्कृति किसी क्षेत्र विशेष को अन्य क्षेत्रों से स्वतंत्र पहचान देती है। लोक संस्कृति का संगीत में प्राचीन काल से ही गहरा सम्बन्ध रहा है। इस संस्कृति में ही हमें लोक-संगीत व नृत्य का भी दर्शन होता है। यह संस्कृति अत्यंत प्राचीन है। क्योंकि गाथाओं से इसका संबंध बहुत निकट जान पड़ता है जिसका उल्लेख ऋग्वेद गृह्यसूत्र, ब्राह्मण तथा अरण्यक में मिलता है। यह संस्कृति हमारे जीवन का वह मूल तत्त्व है जिसके अभाव में हम मानव जीवन का रंगमंच विरान हो जायेगा।

लोक मूल है वेद का, न कि वेद मूल है लोक का। लोक सबको लेकर चलता है। सबको जोड़कर चलता है। लोक भाववादी है। इसलिए वह संवादी है। इसका संवाद होता है-जन परंपरा के उन संदर्भों एवं जीवनचर्यायों, पर्वों, उत्सवों, लोक-अनुष्ठानों और लोककलाओं के साथ जो सदियों से अलिखित रूप में जन, गण और मन को जोड़े हुए है।[4]

विभिन्न समुदाय होने के साथ ही भारत में आज भी बहुत बड़ा वर्ग ऐसा है जो सभ्यता के उद्गम से आज तक लगातार बना हुआ है, जिसे हम आदिम समाज या जनजातीय वर्ग कहते हैं। यह वर्ग हमारे लोक समाज का अभिन्न अंग है। यह समुदाय प्रकृति से बहुत ज्यादा प्रेम करता है। आधुनिकता के चकाचौंध से दूर ही रहना इनको पसंद है। यही कारण है कि यह समुदाय बहुत ही निश्छल, सरल और सहज होते हैं।

डॉ0 श्याम सुन्दर घोष जी भी लिखते हैं कि-आदिवासी जीवन में सरलता और निश्छलता विशेष मात्रा में हैं, इसे सभी स्वीकार करते हैं। वे सभ्यता के दुष्प्रभावों से बचे हैं। ये प्रकृति के गोद में रहते हैं। अतः इनका जीवन नृत्य गीत से संवलित है।[5]

हमारा शहरी समाज उपभोक्तवादी संस्कृति में रच-बस गया है। इनको अपनी सुख-सुविधाओं के लिए हर उपयोगी वस्तुएँ चाहिए होती है, परंतु आज भी जनजातीय लोग प्रकृति से जुड़े हुए हैं। ये मिट्टी से जुड़े हुए लोग हैं। इनको अपनी मिट्टी, धर्म, आस्था इत्यादि से अत्यधिक प्रेम है।

अनुसूचित जनजातियों का इतिहास बहुत पुराना है। पर्वतीय क्षेत्रों में आज भी इनका जीवन परंपरागत ही है। अतः इन्हें आदिम जाति भी कहा जाता है। इनका जीवन शहरी तथा ग्रामीण समाज से कभी एकाकार नहीं हो पाया क्योंकि इनकी संस्कृति ही कुछ भिन्न और स्वतंत्र है। आदिवासी समाज को राष्ट्रीय धारा में लाने का प्रयास अंग्रेजों ने भी किया था। लेकिन अंग्रेजों ने जैसे ही अपनी जड़ें भारत में मजबूत की वैसे ही आदिवासियों ने उनका विरोध भी किया। क्योंकि अंग्रेजों ने अपने और प्रशासन को पर्वतीय क्षेत्रों में

* शोध छात्रा, भोजपुरी अध्ययन केन्द्र, कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

* * असिस्टेंट प्रोफेसर, गायन विभाग, संगीत एवं मंच कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

भी स्थापित किया और आदिवासियों की भूमि तथा परम्परागत व्यवसाय भी अपने नियंत्रण में ले लिए। इसका भरसक विरोध आदिवासियों ने किया।[6]

बिहार में यदि जनजातियों की संख्या देखें तो राज्य की आबादी का लगभग 1.3 प्रतिशत जनजाति ही यहाँ बच पाये हैं। जब बिहार और झारखण्ड एक राज्य हुआ करता था तब बिहार की जनजातियों की संख्या अधिक थी परंतु बिहार राज्य का जनजाति बहुल अधिकांश क्षेत्र 15 नवंबर 2000 के बंटवारे के बाद नवीन राज्य झारखण्ड में चला गया। अतः बिहार में मात्र 1.3 प्रतिशत जनजाति ही है। बिहार में भी सबसे अधिक जनजाति पश्चिमी चम्पारण जिला में रहते हैं। क्योंकि जनजातियों को जंगल, जलोढ़ मिट्टी व पर्वतीय क्षेत्र बहुत पसंद है। नेपाल के तराई इलाका पश्चिम चम्पारण जिला है। यदि पश्चिम चम्पारण जिला को करीब से जानना हो तो कवि बृजबिहारी प्रसाद 'चूर' जी की कविता **''चम्पारण के लोग हँसेला''** को पढ़ने से हमें समस्त चम्पारण का दर्शन हो जाता है। यह कविता उस (1952) वक्त लिखी गयी थी जब पश्चिमी चम्पारण और पूर्वी चम्पारण दोनों एक ही जिला हुआ करता था। इसलिए इस कविता में समस्त चम्पारण जिला का वर्णन है। ''चूर'' जी लिखते हैं-

उत्तर में सोमेसर खाड़ा
दक्खिन गंडक के जलधारा
पूरब बागमती के जानी
पश्चिम तिरबेनी जी बानी।
माघ मास लागेला मेला
चंपारण के लोग हँसेला
तिरवेनी के नामी जंगल
जहवाँ बाघ करेला दंगल
बड़ा दिन के छुट्टी होला
बड़-बड़ हाकिम लोग जुटेला
केतना गोली रोज छुटेला
चम्पारण के लोग हँसेला।[7]

कितना सुन्दर भौगोलिक वर्णन किये हैं 'चूर' जी उनके कहने का तात्पर्य है कि चम्पारण जिला के उत्तर में सोमेश्वर एवं दून श्रेणी है। यह सोमेश्वर से सटा तराई क्षेत्र है। हिमालय के गिरिपाद क्षेत्र से रिसकर भूमिगत हुए जल के कारण यहाँ यथेष्ट आर्द्रता है। इसलिए यहाँ दलदली मिट्टी पाई जाती है।

बिहार के कुल वन्य क्षेत्र का सबसे बड़ा हिस्सा पश्चिमी चम्पारण में ही है। बिहार का एकमात्र बाघ अभयारण्य इसी जिला में है जो 880 वर्ग किलोमीटर से अधिक क्षेत्र में फैला है। यह बाल्मिकीनगर राष्ट्रीय उद्यान में स्थित है और नेपाल के चितवन नेशनल पार्क से सटा है।

यही कारण है कि जनजातियों की सर्वाधिक संख्या पश्चिमी चम्पारण जिला में ही है। क्योंकि जिस वातावरण में वे रहना पसंद करते हैं वैसा वातावरण यहाँ उपलब्ध है। जंगलों से आच्छादित इस क्षेत्र में बहु प्रकार के जनजाति निवास करते हैं।

इन जनजातियों में उदारता और सरलता के साथ-साथ वीरता भी कूट-कूटकर भरी है। इसका सबसे बड़ा प्रमाण है पश्चिमी चम्पारण का सत्याग्रह आंदोलन। इसी जिला के, सतवरिया गाँव के श्री राजकुमार शुक्ल जी के आग्रह पर महात्मा गाँधी जी का इस जिला में आगमन हुआ और उन्होंने यहीं से अंग्रेजों के खिलाफ नील आन्दोलन से सत्याग्रह की मशाल जलायी थी। इस आन्दोलन में गाँधी जी को यहाँ के किसान व आदिवासियों का भरपूर सहयेाग मिला था। उत्तर प्रदेश और नेपाल की सीमा से लगा इस जिला में आदिवासियों की भाँति ही जंगलों से आच्छादित और एकांत स्थान उनको उपयुक्त लगा ठहरने के लिए। इसलिए वे गौनाहा प्रखण्ड के भितिहरवा में अपना आश्रम बनाये एवं सत्य और अहिंसा के मार्ग पर चलकर सत्याग्रह की मशाल जलायी। चम्पारण की धारती पर सबसे अधिक जनजातियों का बसेरा है जिनका भारत स्वाधिनता में महत्त्वपूर्ण हाथ है। इस जिला में कई जनजातियाँ निवास करती हैं परंतु यहाँ हम विशेष रूप से 'नेटुआ' (नट) जनजातियों के जीवन-यापन का अध्ययन करेंगे। यह जनजाति पश्चिमी चम्पारण के तीनों अनुमण्डल (1) बेतिया, (2) नरकटियागंज और (3) बागहा में निवास करती है।

डॉ0 कृष्णदेव उपाध्याय जी इस जाति के सम्बन्ध में लिखते हैं कि-नेटुआ शब्द की उत्पत्ति 'नट' से ज्ञात होती है जिसका अर्थ नाचना या अभिनय करना है।[8]

उपाध्याय जी के अनुसार उत्तर प्रदेश के पूर्वी जिलों में नेटुआ लोग गाँव के बाहर सीक की झोपड़ी बनाकर रहते हैं। अतः स्पष्ट होता है कि उत्तर प्रदेश की सीमा से लगा पश्चिमी चम्पारण होने के कारण इस जिला में भी जनजातियों की संख्या अधिक है। जिस समय उपाध्याय जी इन जनजातियों का अध्ययन किये होंगे उस समय इन जनजातियों की स्थिति बहुत दयनीय रही होगी। वे सीक की झोपड़ी में रहते थे परंतु अब इनकी स्थिति में थोड़ा सुधार हुआ है। सरकारी योजनाओं के तहत अब इन जनजातियों का भी पक्का घर हो गया है।

इस जनजाति को खानाबदोश, घुमन्तू भोटिया, बंजारा आदि नामों से जाना जाता है। इनका निवास एक स्थान पर ज्यादा दिनों तक नहीं होता है। ये लोग एक स्थान से दूसरे स्थान पर घूम-घूम कर अपनी नट कला को दिखाते हैं और इसी से अपना जीवन यापन करते हैं। बिहार के पश्चिमी चम्पारण जिला में निवास करने

वाले नेटुआ जनजाति स्थायी निवासी हैं। इस जिला के नरकटियागंज अनुमण्डल के नकटियागंज प्रखण्ड के अंतर्गत सेमरी पंचायत के वार्ड नं-8 में इन जनजातियों का गाँव है। इस गाँव को नेटुआ टोली कहा जाता है। यह गाँव साठी रेलवे स्टेशन के पूर्व में महज 100 गज की दूरी पर है। यह गाँव ब्रिटिश शासन से पूर्व का गाँव है। यहाँ के नेटुआ जनजातियों में दो धर्म है। कुछ नेटुआ हिन्दू धर्म को मानते हैं और कुछ मुस्लिम धर्म को। इनकी औरतें नेटुइन कहलाती हैं। ये बहुत सुन्दर, चपल, चंचल और कलाओं की धनी होती हैं। इनकी इन्हीं सब गुणों के कारण प्रायः पुरुष समाज इनकी ओर आकृष्ट हो जाता है। अंग्रेजों के शासनकाल में इन नेटुइनों की आबरु खतरे में थी। उस समय इनका पक्का घर नहीं हुआ करता था। इसलिए कोई भी आसानी से इनके घरों में प्रवेश कर जाता था। कभी-कभी हिंसक पशु भी इनके घरों में काफी तबाही मचाते थे। अतः सुरक्षा की दृष्टि से ये लोग कुत्ता पालना शुरू किये। कुत्ता पालन आज भी इन सबके घरों में होता है। यही कुत्ता इनके घरों की रखवाली करता है। यहाँ के नेटुआ लोगों का मुख्य व्यवसाय मधुपालन है। गाँवों व शहरों में घूम-घूमकर ये लोग शहद (मधु) 'मध' बेंचते हैं। इसके अलावा साँप पालन भी इनका मुख्य पेशा है। ये लोग साँपों को झपोली (बाँस का बना हुआ टोकरी जो ऊपर से बाँस के बने ढ़क्कन से ही बंद रहता है) में बंद करके गाँवों व शहरों में जाकर घर-घर घूमकर दिखाते हैं व बदले में जो अन्न मिलता है उसी से अपना और अपने परिवार का पेट पालते हैं। पेट पालने का सबसे महत्त्वपूर्ण जरिया है इनका 'बंकबाकुम' कला। इस कला में पुरुष एक प्रकार के नाकाब जैसे-कपड़े से अपना मुँह ढँक लेते हैं और हाथों में डमरु जैसा ही वाद्य लेकर बजाते हुये गाँवों में प्रवेश करते हैं। इन गीतों व वाद्यों की आवाज सुनकर दूर से ही पता चल जाता है कि गाँव में बकबाकुम आ गया है। इनका वेशभूषा इतना अद्भुत होता है कि बच्चे मारे डर के घरों में छुप जाते हैं। नेटुआ बकबाकुम के रूप में सिर्फ डरावने दिखते हैं परंतु ये किसी का नुकसान नहीं करते हैं। पेट की भूख मिटाने के लिए ही ऐसा रूप इनको धारण करना पड़ता है। घर-घर घूमकर अपना करतब दिखाते हैं और जो कुछ मिल जाता है बदले में उसी से अपना घर चलाते हैं। लोग भले ही इसको भिक्षावृत्ति कहते हैं, लेकिन देखा जाए तो ये लोग स्वाभिमानी हैं तभी तो अपनी कलाओं को दिखाकर धन अर्जित करते हैं। वर्ना मुफ्त में भी मांगकर खा सकते थे। जिस कपड़े को पहनकर नेटुआ बकबाकुम का रूप धारण करता है वह एक प्रकार का फेस मास्क ही है। यह फेस मास्क सर से लेकर छाती के नीचे तक रहता है। इस पर कौड़ियों से सुन्दर कलाकृति बनी होती है। दोनों आँखों के पास दो छिद्र होता है ताकि बकबाकुम बने नेटुआ को दिखाई दे सके। बकबाकुम गीत कुछ इस प्रकार का होता है

एक आना दू आना

आना आना

गोदी में के लइका बोले

नाना नाना

बकबाकुम बाकुम

दिआ बरऽताऽ

लइका पढ़ऽ ताऽ

दिआ बुत गईल

लइका सुत गईल

बकबाकुम बाकुम

इस गीत को देखने से लगता है कि यह जनजाति काफी प्राचीन है। जब हमारे देश में एक आना, दो आना मुद्रा हुआ करता था तब की मुद्राओं का वर्णन है इस गीत में। इस गीत के अध्ययन से यह भी पता चलता है कि ये लोग रिश्तों को भी काफी महत्त्व देते हैं। ये लोग भले ही अशिक्षित होते थे परंतु इनका दिमाग बहुत तेज था। इनके अंदर दूरदर्शिता भी होती थी। इनको पता है कि दिआ (दीपक) तभी तक बर (जल) रहा है जब तक कि बच्चा पढ़ रहा है। दिआ बुत गईल अर्थात् दीपक बुझ गया है। इसका मतलब कि बच्चा भी सो गया है। यदि जगा होता तो दीपक जरूर जलता।

इनकी यह कला विलुप्त हो रही है अब गाँवों में कोई बकबाकुम दिखाई नहीं देता है। पहले जब कोई बच्चा रोया करता था तो माताएँ बच्चें का ध्यान रोने से हटाने के लिए बोला करती थी कि बकबाकुम आया है और बच्चा चुप हो जाता था, परंतु अब तो गाँवों में बकबाकुम शब्द को लोग भूल ही गए हैं।

स्त्रियों का मुख्य व्यवसाय

इस जनजाति की स्त्रियों का मुख्य व्यवसाय गोदना है। महिलाएँ गाँवों व नगरों में घूम-घूम कर गोदना गोदती है। नव-नवेली सुहागिन स्त्रियों का गोदना गोदाना बहुत शुभ माना जाता है ऐसी मान्यता है कि गोदना एक ऐसी अलंकरण प्रणाली का नाम है जिसका संबंध सीधे लोक संस्कृति से जुड़ता है। त्वचा चित्रांकन को गोदना कहा जाता है। अर्थात् शरीर पर भिन्न-भिन्न कलाकृतियों को सूई द्वारा चुभोकर उकेरा जाता है। चूँकि यह कलाकृति को बनाने के लिए सूई को त्वचा में गोदा (चूभाया) जाता है। इसलिए इसे गोदना

बोला जाता है। गोदना प्रथा अत्यधिक प्राचीन प्रथा है। कहते हैं कि द्वापर युग में भी भगवान श्रीकृष्ण गोदनहरी का रूप धारण करके राधा को गोदना गोदे थे। इस प्रथा में महिलाएँ अपने विभिन्न अंगों पर गोदना गोदवाती हैं जिसमें विभिन्न प्रकार के फूल, बूटा, पेड़, पौधे, पशु, पक्षी अपने इष्टदेव चित्र व अपने पति या प्रेमी का नाम इत्यादि होता है। गोदना पुरुष भी गोदवाते हैं परंतु पुरुषों की तुलना में महिलाओं की संख्या अधिक होती है। नव-नवेली सुहागिन स्त्रियों का गोदना गोदवाना बहुत शुभ माना जाता है। ऐसी मान्यता है कि गोदना वह अमूल्य गहना है जिसको ना कोई ले सकता है ना चुरा सकता है। मरने के बाद सभी गहनों को उतार लिया जाता है और यदि नहीं भी उतारा गया तो चिता के साथ जलकर धरती पर ही रह जाता है परंतु गोदना ही एकमात्र ऐसा गहना है जो मृतआत्मा के साथ स्वर्गलोक जाता है।

डॉ0 रविशंकर उपाध्याय जी भी गोदना के संबंध में लिखते हैं कि स्त्रियों का विश्वास है कि मृत्यु के उपरान्त यही परलोक में साथ जाता है। उनकी यह भी धारणा है कि इसके बिना स्त्रियों को स्वर्ग की प्राप्ति नहीं हो सकती।[9]

नेटुइन काजल को भेंगरईया (भृङ्गाराज-एक प्रकार का पौधा) के रस से मिलाकर तेज सुईयों द्वारा कोमलगी बहुओं की बाहुओं पर गोदना गोदती हैं।[10]

गोदना गोदवाती नव-नवेलियों के कष्ट को दूर करने के लिए नेटुइनें गीत भी गाती हैं ताकि उनके कष्ट को कम किया जा सके। इन गीतों में प्रायः सोहर, खेलवना व पुरुषों के साथ मजाक स्वरूप गारी (गाली) भी गाती हैं।

नेटुइन को इस कलाकृति बनाने के बदले अर्थात् गोदना गोदने के बदले नेग (उपहार) स्वरूप चावल, दाल, रुपया, गहना कपड़ा इत्यादि लोग अपने-अपने सामर्थ्य के अनुसार देते हैं। दिनभर गाँव-गाँव घूमकर गोदना गोदने के बाद शाम को नेटुइन अपने घर पहुँचती है। घर की रसोई में उनका प्रवेश करना वर्जित होता है। नेटुओं का मानना है कि कई लोगों को छुने के कारण नेटुइन अपवित्र हो जाती हैं। इसलिए रसोइघर का सारा कार्य पुरुष ही करते हैं और महिलाएँ केवल बाहर का कार्य करती हैं।

गोदना गोदते समय नेटुइन विभिन्न प्रकार के गीत गाती है जिसमें सोहर, खेलवना, गारी इत्यादि गीत होते हैं। इन्हीं गीतों में से प्रस्तुत है एक सोहर गीत-

आरे कावना बने उपजेला केसर कवना बने, ऐ कुसुम हो।

ऐ लालाना कावना बने उपजेला गुलाब चुनरिया हम रागाइबी हो।

बाबा बने उपजेला ए केसर भईया बने, ए कुसुम हो।

लालाना सईया बने उपजेला गुलाब चुनरिया हम रागाइबी हो।

यूं तो सोहर एक प्रचलित लोक गीत है परंतु सोहर के इन शब्दों का उच्चारण नेटुइनों द्वारा बिल्कुल अलग होता है। इनके गाने का ढंग भी बहुत अलग होता है। सुकोमल नव विवाहित बहुओं के कलाइयों पर जब गोदना गोदा जाता है तो उनकी पीड़ा को कम करने के लिए नेटुइन इस प्रकार के गीतों को गाती हैं ताकि इन गीतों को सुनकर नवविवाहिता अपना दर्द भूल जाए। अतः नेटुइनों द्वारा गाये सोहर के स्वरों को सुनकर ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे-जैसे गोदना गोदवा रही महिला को दर्द का आभास होता है, वैसे-वैसे इनके स्वर भी ऊँचे होने लगते हैं।

गोदना गोदती हुई नेटुइन

नेटुइन द्वारा गाए सोहर गीत की स्वरलिपि बनाने का नीचे प्रयास मात्र है। यद्यपि इनके गाने के भाव को स्वरों में नहीं दिखाया जा सकता तथापि एक कोशिश मात्र है।

सासा	सा	सा	सा	रे	म	रे	म	प	सा
आरे	का	वा	ना	ब	ने	उ	प	जे	ला
प	प	म	म	प	ग	ग	म	प	सा
ए	के	ऽ	स	र	का	वा	ना	भ	ने
प	प	म	म	प	ग	रे	सा		
ए	कु	ऽ	सु	म	हो	ऽ	ऽ		
सा	-	रे	-	म	-				
ला	ऽ	ला	ऽ	ना	ऽ				
ग	ग	रे	सा	नि	ध़	नि	सा	-	
का	वा	ना	ब	ने	ऽ	उ	प	ऽ	
सा	-	सा	-	रे	ग	ग	रे	सा	-
जे	ऽ	रे	ऽ	गु	ऽ	ला	ऽ	ब	ऽ
नि	ध़	नि	नि	सा	सा	सा			
चु	ऽ	न	रि	या	ह	म			
रे	ग	रे	सा	नि	सा	रे	सा	सा	- -
रा	ऽ	गा	ऽ	ऽ	ई	ऽ	बी	हो	ऽ ऽ

बकबाकुम, गोदना, इत्यादि नेटुआ जनजाति की अमूल्य निधि है। यह सिर्फ नेटुआ समाज की ही निधि नहीं अपितु संपूर्ण समाज की अमूल्य निधि है, परंतु चिंता का विषय यह है कि इस निधि का क्षरण हो रहा है। बिहार के पश्चिमी चम्पारण के साठी 'नेटुआ टोली' के गैसा खातून, शोभा देवी, अप्साना खातून, पवना देवी इत्यादि नेटुइनों का कहना है कि हमारे इस व्यवसाय पर भी आधुनिकता का इतना प्रभाव पड़ा है कि हमारे जीने का एकमात्र व्यवसाय गोदना भी अब विलुप्ति के कगार पर है। हमारे ही इस कला को चुराकर शहर के सभ्य लोग गोदना का नाम बदलकर टैटू नाम रख लिए हैं और इसका व्यवसाय शुरू कर दिए हैं। अतः अधिकांश लोग गोदना गोदवाना छोड़ दिए हैं व टैटू बनवाना आधुनिक शौक हो गया है। अब गाँवों में भी कोई नई नवेली दुल्हन गोदना नहीं गोदवाती है परंतु गोदना का ही नया रूप टैटू को सभी अपना रहे हैं।

अतः नेटुआ जीवन-यापन का एकमात्र कला गोदना भी समाज से धीरे-धीरे विलुप्त हो रहा है। इसके लिए हम सभी को सजग होना पड़ेगा तभी हम इस अमूल्य धरोहर को संजोकर रख पायेंगे।

संदर्भ सूची

1. जैन, डॉ0 शान्ति, लोकगीतों के संदर्भ और आयाम, पृ0 1
2. सिंह, निष्ठा, शोध-प्रबंध-बिरहा : पारम्परिक लोक गायन शैली का पुनरावलोकन, अध्याय-1, पृ0 4
3. सत्येन्द्र, लोक साहित्य विज्ञान, पोरवाल प्रिंटिंग प्रेस, आगरा-6, द्वितीय संस्करण, 1971, पृ0 03
4. शुक्ल त्रिभुवन, अवधी लोक साहित्य : कला एवं संस्कृति, वाणी प्रकाशन, दरियागंज नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2016, द्वितीय संस्करण 2020, पृ0 9
5. घोष श्याम सुन्दर, लोक साहित्य विविध प्रसंग, साहित्य संगम, नया 100 लूकरगंज, इलाहाबाद-1, संस्करण प्रथम, 1995, पृ0 163
6. महाजन ज्ञानेश्वर, भारतीय साहित्य और आदिवासी विमर्श, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ0 122
7. कवि : बृज बिहारी प्रसाद 'चूर', चम्पारण के लोग हँसेला
8. उपाध्याय, डॉ0 कृष्णदेव, भोजपुरी लोक-संस्कृति, पृ0 293
9. उपाध्याय, डॉ0 रिवशंकर, भोजपुरी लोकगीतों का सांस्कृतिक अध्ययन, पृ0 192
10. उपाध्याय, डॉ0 कृष्णदेव, भोजपुरी लोक-संस्कृति, पृ0 293

●

महिलाओं के सामाजिक-आर्थिक सशक्तीकरण में उज्जवला योजना की भूमिका

डॉ0 रविश कुमार तिवारी[*] एवं प्रो0 शैलेश कुमार मिश्र[**]

भारत में प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी की सरकार बनने के उपरांत अब तक जितनी भी जनकल्याणकारी योजनाएं आरंभ हुई है, उनमें से अधिकांश का केंद्रीय प्रेरक तत्व पं. दीनदयाल उपाध्याय का 'अन्त्योदय और गांधी का 'समाज के अंतिम व्यक्ति' के सशक्तीकरण की भाव ही रहा है। इस भावभूमि के तहत प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने मई, 2016 में उत्तर प्रदेश के बलिया जिले से प्रधानमंत्री उज्जवला योजना की शुरुआत की थी। इसका उद्देश्य लकड़ी और उपले से जलने वाले चूल्हे के धुएं से देश की आधी आबादी को बचाना और उनके स्वास्थ्य का संरक्षण करना था। पारंपरिक चूल्हे महिलाओं और बच्चियों की आंखों को तो कमजोर करते ही थे, उनके फेफड़ों में भरकर उन्हें हृदय और श्वांस के मरीज भी बनाते थे।

प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने महिलाओं और बच्चियों की इस पीड़ा को समझा और उसके निवारण के लिए ही वे प्रधानमंत्री उज्जवला योजना शुरू की। आरंभ में इस योजना का लक्ष्य देश की पांच करोड़ गरीब महिलाओं को मुफ्त गैस कनेक्शन उपलब्ध कराना था, लेकिन इस योजना की सफलता के मद्देनजर वित्त वर्ष 2018-19 के आम बजट में सरकार ने इस लक्ष्य को पांच करोड़ से बढ़ाकर आठ करोड़ करने की घोषणा कर दी। आंकड़ों की मानें तो अब तक इस योजना के तहत मुफ्त में 3.8 करोड़ गैस कनेक्शन दिए जा चुके हैं और शेष आंकड़ों की मानें तो अब तक सिर्फ इस योजना के तहत मुफ्त में कनेक्शन दिए जाने की दिशा में भी बड़ी तेजी से काम हो रहा है। आंकड़े बताते हैं कि वर्ष 2020 तक दस करोड़ गैस कनेक्शन वितरित किए जा चुके हैं जबकि वर्ष 2014 से पूर्व के 60 सालों में मात्र 13 करोड़ गैस कनेक्शन ही दिए गए थे। इससे सरकार द्वारा योजनाओं के गतिपूर्ण क्रियान्वयन का पता चलता है। वास्तव में यह योजना प्रधानमत्री नरेंद्र मोदी के मस्तिष्क की एक रचनात्मक पहल है, जिसकी शुरुआत एलपीजी सिलेंडर और सब्सिडी वितरण की व्यवस्था में सुधार के साथ हुई।

जब केंद्र में मोदी सरकार बनी तब एलपीजी वितरण व्यवस्था अत्यंत बदहाल थी। सब्सिडी को लेकर भी कोई पारदर्शी व्यवस्था नहीं थी। तमाम लोगों को तो यह पता भी नहीं होता था कि उन्हें गैस पर सब्सिडी मिल रही है। गैस वितरक मनमाने दाम पर गैस देते थे और सब्सिडी की बड़ी भारी रकम बिचौलियों की भेंट चढ़ जाती था। मोदी सरकार ने इस व्यवस्था को दुरस्त करते हुए डीबीटीएल योजना आरंभ की, जिसके तहत लोगों की सब्सिडी सीधे उनके बैंक खातों में भेजी जाने लगी। सरकार ने सब्सिडी को तार्किक भी बनाया, इससे न केवल वास्तविक हकदार लोगों तक उनके हक का पैसा पहुंचा, बल्कि सरकारी खजाने को भारी लाभ हुआ। फिर प्रधानमत्री की अपील पर बड़ी सख्या में संपन्न लोगों ने अपनी गैस सब्सिडी छोड़ दी, इससे भी सरकारी राजस्व तो बचा ही, जो धन बचा, उसी में कुछ और पैसा मिलाकर उज्ज्वला योजना की शुरुआत की गई। इससे पता चलता है कि यह सरकारी खजाने पर अनुचित भार डालने वाली कोई लोकलुभावन योजना नहीं है अपितु, जनता के धन का जनता के हित में उपयोग करने वाली एक रचनात्मक योजना है। आज इस योजना के जरिये न केवल गरीब महिलाओं के जीवन-स्तर में बदलाव आया है, बल्कि धुआं जनित बीमारियों से उन्हें मुक्ति मिली है और उनके परिवार में आर्थिक समृद्धि के द्वार भी खुले हैं।[1]

प्रधानमंत्री उज्ज्वला योजना के आगाज वर्ष 2016 में गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले पांच करोड़ परिवारों 2019 तक मुफ्त में एलपीजी कनेक्शन मुहैया कराने का लक्ष्य रखा गया था और इसके लिए इसके लिए 8000 करोड़ रुपये का प्रावधान किया गया था। 2016 से 2019 के बीच महज चार साल के भीतर 8 करोड़ गरीबों को एलपीजी के नए कनेक्शन दिए जाने थे। इस योजना के तहत प्रदत्त गैस कनेक्शनों पर गौर करें तो बहुत जल्द गैस कनेक्शन का आंकड़ा 10 करोड़ की संख्या को पार कर जाएगा, इतनी उम्मीद तो की ही जा सकती है।

एक उल्लेखनीय और विचारणीय सत्य है कि आजादी के बाद के साठ सालों में वर्ष 2014 तक केवल 13 करोड़ गैस कनेक्शन देश में दिए गए थे जिसमें केवल शहरी क्षेत्र शामिल थे लेकिन नरेंद्र मोदी ने ग्रामीण क्षेत्र को भी प्रधानमंत्री उज्जवला योजना से जोड़ा और चार साल में ही वर्ष 2020 तक दस करोड़ कनेक्शन देने की रिकॉर्ड उपलब्धि भी अपने नाम की। अकेले उत्तर प्रदेश में उज्ज्वला उपभोक्ताओं की संख्या पर गौर करें तो इंडेन गैस की ओर से 70.39 लाख गरीब परिवारों, हिन्दुस्तान पेट्रोलियम की ओर से 33.30 लाख और भारत पेट्रोलियम की ओर से 43.89 लाख गरब परिवारों को कनेक्शन उपलब्ध कराए गए हैं। सबसे बड़ी बात यह है कि अधिकतर नए गैस कनेक्शन पश्चिम बंगाल, उत्तर प्रदेश, बिहार, झारखंड, उड़ीसा और पूर्वोत्तर जैसे पिछड़े राज्यों में जारी हो रहे हैं, जहां स्वच्छ ईधन की पहुंच बहुत कम है। इससे न केवल महिलाओं का सशक्तीकरण हो रहा है, बल्कि खाना बनाने में लगने वाले समय व श्रम को कम करने में भी

* (PDF) डॉ. अम्बेडकर इण्टरनेशनल सेंटर, नई दिल्ली

* * प्रोफेसर, (राजनैतिक विज्ञान, सामाजिक विज्ञान विभाग, सं.सं.वि.वि., वाराणसी)

मदद मिल रही है। इतना ही नहीं, इस योजना से गैस वितरण के क्षेत्र में युवाओं को रोजगार भी मिल रहा है।[2]

किसी भी सरकार का यह दायित्व होता है कि वह गरीबों, वंचितों, महिलाओ की समस्याओं के निदान के लिए हर संभव प्रयास करे, इसके लिए उन समस्याओ की जड़ में जाकर उसकी सूक्ष्मता को समझने के बाद ही उसे दूर करने की नीति बने तो वह कारगर साबित होती है, जिसकी पहल मोदी सरकार ने पिछले चार वर्षों में की है तो उसके नेक कदमों की सराहना होनी चाहिए। पिछड़ी और अनुसूचित जातियां और देश की आधी आबादी सिर्फ पूर्ववर्ती सरकारों के कार्यकाल में वोटबैंक तक सीमित थी। उनके सामाजिक उत्थान और सामाजिक जीवन को बेहतर की ओर ले जाने का बीड़ा मोदी सरकार ने उठाया है। मोदी सरकार ने अनुसूचित जाति-जनजाति और महिलाओ के जीवन को बेहतर बनाने हेतु तमाम योजनाए क्रियान्वित की हैं, जिसमें से एक है, प्रधानमंत्री उज्जवला योजना। इस योजना से पर्यावरण प्रदूषण पर अगर रोक लगी है तो वनों की कटान भी रुकी है। धुएं से बीमार होने वाली महिलाओं के इलाज पर होने वाला अपव्यय भी रुका है। इससे गांवों में खुशहाली बढ़ी है। विशेषज्ञ भी मानते हैं कि अंगीठी या चूल्हे से निकलने वाला धुंआं चाहे वह लकड़ी जलने से हो, कोयला जलने से हो या उपलों के जलने से, प्रति घंटे चार सौ सिगरेट पीने के बराबर खतरनाक होता है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन के एक अनुमान के मुताबिक भारत में प्रति वर्ष 5 लाख लोगों की मृत्यु अस्वच्छ जीवाश्म ईधन के कारण होती है। ऐसे में प्रधानमंत्री उज्जवला योजना समाज की महिलाओं को नया जीवन देने से कमतर कतई नहीं मानी जा सकती है। वर्ष 2014 तक गैस कनेक्शन अमीरों और कुछ मध्यमवर्गीय समाज तक ही सीमित थे लेकिन नरेंद्र मोदी ने इसे सार्वजनीन बनाया सबके लिए उपलब्ध कराया। सोशियो इकोनॉमी कास्ट सेन्सस से देश में जातिगत विभिन्नता का पता लगाया जाता है, ऐसे में स्थिति विकट तब मालूम पड़ती है जब यह पता चलता है कि आज़ादी के बाद सत्तर सालों के दरमियान भी जातिगत असमानता की खाई बढ़ती गई। यह भी ऐसी स्थिति में जब अधिकतर राजनीतिक दल किसी न किसी जाति के मसीहा अपने आपको साबित करने में लगे रहे।

शुरू में इस योजना का लाभ उन्हीं परिवारों को मिल रहा था, जो 2011 की सामाजिक-आर्थिक जाति गणना के अनुसार गरीबी की रेखा के नीचे थे। लेकिन अब इस योजना का दायरा बढ़ाया गया है। अब इसमें सभी अनसूचित जाति-जनजाति परिवार, वनवासी, अत्यंत पिछड़ा वर्ग, द्वीपों, चाय बागानों में रहने वालों तथा प्रधानमत्री आवास योजना एवं अंत्योदय योजना के लाभाथिऱ्यों को भी शामिल कर लिया गया है। कैग की रिपोर्ट बताती है कि प्रधानमंत्री उज्जवला योजना के तहत जिन लोगों को एलपीजी गैस कनेक्शन मिले हैं, वे अपने सिलेंडर को नियमित रूप से भरवा नहीं रहे हैं। इसके साथ ही कैग की रिपोर्ट में कई अनियमितता भी सामने आई है। रिपोर्ट के मुताबिक 31 मार्च 2019 तक ऑयल मार्केटिंग कंपनियों ने 7.19 करोड़ एलपीजी कनेक्शन दिए थे, जो मार्च 2020 तक के 8 करोड़ कनेक्शन के लक्ष्य का लगभग 90 फीसदी है। मतलब लक्ष्य का 90 प्रतिशत कनेक्शन दिया जा चुका है और वह भी बिना किसी सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक भेदभाव के, मैदानी और पहाड़ी क्षेत्रों का अंतर पाटने में भी सरकार बहुत हद तक सफल रही है। केंद्र सरकार 2022 तक देश के हर घर में स्वच्छ ईंधन पहुंचाना चाहती है ताकि चूल्हे के धुएं से देश की एक भी मां-बेटी बीमार न हो।[3]

आजादी के बाद गरीबी मिटाने की सैकड़ों योजनाओं के बावजूद गरीबों की तादाद में अपेक्षित कमी नहीं आई तो इसका कारण है कि हमने उन कारणों को दूर नहीं किया जो लोगों को गरीबी के बाढ़ में धकेलती हैं। आजादी के बाद से ही सरकारों का पूरा जोर सस्ता राशन और भत्ता बांटने पर रहा ताकि गरीबों में असंतोष न पनपे और वोट बैंक की राजनीति चलती रहे। यदि सरकारों ने बिजली, पानी, सड़क, शिक्षा, स्वास्थ्य है, रोजगार जैसी मूलभूत सुविधाएं मुहैया कराई होती तो आज गरीबी की समस्या इतनी भयावह रूप न धारण करती। देश में एलपीजी वितरण की शुरुआत 1955 में हुई थी और 2014 तक अर्थात साठ वर्षों के दौरान सिर्फ 13 करोड़ लोगों को एलपीजी कनेक्शन मुहैया कराया जा सका। दूसरे, एलपीजी का दायरा शहरी व कस्बाई इलाकों तथा गांवों के समृद्ध वर्ग तक सिमटा रहा। सरकारी उदासीनता के चलते चूल्हे के धुएं से हर साल करोड़ों लोग बीमार पड़कर गरीब बनते रहे। इस योजना से गैस वितरण के क्षेत्र में अब युवाओं को रोजगार भी मिल रहा है। शुरू में इस योजना का लाभ उन्हीं परिवारों को मिल रहा था, जो 2011 की सामाजिक-आर्थिक जाति गणना के अनुसार गरीबी की रेखा के नीचे थे, लेकिन अब इस योजना का दायरा बढ़ाया गया है। अब इसमें सभी अनुसूचित जाति-जनजाति परिवार, वनवासी, अत्यंत पिछड़ा वर्ग, द्वीपों, चाय बागानों में रहने वालों तथा प्रधानमंत्री आवास योजना एवं अंत्योदय योजना के लाभाथिऱ्यों को भी शामिल कर लिया गया है। इतना ही नहीं, सरकार प्रधानमंत्री उज्जवला योजना को दूर दराज व पहाड़ी क्षेत्रों में कामयाब बनाने के लिए बड़े रसोई गैस सिलेंडर की जगह पांच-पांच किलो के दो छोटे-छोटे सिलेंडर लेने का भी विकल्प बनाया है। ग्राहकों को बड़े सिलेंडर की कीमत का किस्तों में भुगतान करने की सुविधा भी दी गई है।[4]

देश के पेट्रोलियम और प्राकृतिक गैस क्षेत्र के इतिहास में नरेंद्र मोदी सरकार ने अपने शासनकाल के पहले तीन वर्षों के दौरान उज्जवला योजना, सब्सिडी छोड़ो योजना, ऊर्जा गंगा योजना सहित कई नई पहल शुरू करने के साथ ही अंतराष्ट्रीय तेल बाज़ार में उतार-चढ़ाव जैसी परिस्थितियों का सामना किया। ऊर्जा सुरक्षा के उद्देश्य को पूरा करने की दिशा में निश्चित कदम उठाते हुए सरकार

ने एलपीजी नेटवर्क को फैलाकर इस क्षेत्र को समृद्ध बनाने की योजना पर काम किया। ऊर्जा सुरक्षा के लिए रास्ता तैयार करने की दिशा में निम्न, मध्य और उच्च वर्गों के लिए कई पहलों की शुरुआत की गई और कई अन्य पहल अभी विचाराधीन हैं। प्रधानमंत्री उज्जवला योजना के तहत गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन करने वाली 4 करोड़ से अधिक महिलाओं को गैस सिलेंडर वितरित किए गए, सरकार ने प्रधानमंत्री उज्जवला योजना के अतंर्गत अगले दो सालों में गरीबी रेखा से नीचे रहने वाली 8 करोड़ से अधिक महिलाओ को नए एलपीजी कनेक्शन उपलब्ध कराने के लिए 13,000 करोड़ रुपये को मंजूरी दी है। अन्य प्रमुख योजनाओ में से एक प्रधानमंत्री उज्जवला योजना नए कनेक्शन जारी करने के मामले में वित्त वर्ष 2016-17 में वर्ष निर्धारित लक्ष्य को पार गई है, बीपीएल परिवारों के लिए शुरू की गई उज्ज्वला योजना के अतंर्गत पहले ही साल में 2.20 करोड़ से ज्यादा एलपीजी कनेक्शन वितरित किए जा चुके हैं।

केन्द्रीय पेट्रोलियम एवं प्राकृतिक गैस राज्यमंत्री (स्वतंत्र प्रभार) धर्मेन्द्र प्रधान के अनुसार अब देशभर में कुल एलपीजी उपभोक्ताओं की संख्या 20 करोड़ के पार पहुंच गई है, यह साल 2014 में 14 करोड़ एलपीजी उपभोक्ताओ की तुलना में काफी लंबी छलांग है। एलपीजी की मांग में 100 से अधिक की वृद्धि दर्ज की गई है। पिछले तीन वर्षों में 4600 नए एलपीजी वितरकों को जोड़ा गया है, इनमें से ज्यादातर वितरक ग्रामीण या उससे सटे हुए क्षेत्रों में जोड़ गए हैं, सरकारी आकंड़े बताते हैं कि नए उपभोक्ताओ में से 85 फीसदी से भी अधिक उपभोक्ताओ ने सिलेंडर को दोबारा भरवाने के लिए गैस एजेंसियों से संपर्क किया है। पीएमयूवाई के अतंर्गत करीब 38 फीसदी लाभार्थी अनुसुचित जाति/अनुसुचित जनजाति से हैं। 'पहल' नामक विश्व की सबसे बड़ी प्रत्यक्ष लाभ हस्तांतरण योजना ने बिचौलियों को खत्म कर, उपभोक्ताओ को दी जाने वाली ऊर्जा सुरक्षा के पथ पर भारत अग्रसरः उज्जवला योजना की अहम भूमिका देकर सब्सिडी की राशि को उपभोक्ता के पंजीकृत बैंक खाते में सीधे स्थानांतरित करना सुनिश्चित किया है।[5]

वाराणसी के निवासियों को आगामी दो वर्षों में पाइप लाइन के जरिए रसोई गैस मुहैया कराने के उद्देश्य से सरकार द्वारा महत्वाकांक्षी 'गंगा ऊर्जा' योजना की शुरुआत की गई, यह योजना वाराणसी के बाद, झारखंड, बिहार, ओडिशा और पश्चिम बंगाल के लोगों की ज़रूरतों को भी पूरा करेगी। यह योजना पांच राज्यों के 40 जिलों और 26 गांवों की ऊर्जा ज़रूरतों को पूरा करेगी। यह योजना तीन बड़े उर्वरक संयंत्रों के पुनरुत्थान के लिए मार्ग प्रशस्त करेगी।

यह 20 से अधिक शहरों में औद्योयोगिकीकरण को बढ़ावा देगी और 7 शहरों में गैस नेटवर्क का विकास करने में मदद करेगी, जिसके परिणामस्वरूप, बड़ी संख्या में नौकरियों की संभावना बढ़ेगी। इंडियन स्ट्रेटेजिक पेट्रोलियम रिज़र्व्स लिमिटेड ने विशाखापट्टनम, मैंगलोर और पादुर में तीन स्थानों पर 5.33 मिलियन मीट्रिक टन (एमएमटी) की भडारण क्षमता के साथ स्ट्रेटेजिक क्रूड ऑयल के भडारण का निर्माण किया है। सरकार ने राष्ट्रीय तेल कम्पनियां ओएनजीसी और ओआईएल द्वारा किए गए 69 हाइड्रोकार्बन खोजों से मुनाफा कमाने और धन अर्जित करने के लिए खोजी लघुक्षेत्र नीति को भी मंजूरी दी है, ये वही परियोजनाएं हैं, पृथक स्थान भडारण का छोटा आकार, उच्च विकास लागत, तकनीकी बाधाएं, वित्तीय व्यवस्था आदि विभिन्न कारणों से कई वर्षों से धन अर्जित नहीं किया जा सका है, यह गुवाहाटी, बोंगाइ गांव और नुमालिगढ़ रिफाइनरी के विस्तार, नुमालीगढ़ में बायो-रिफाइनरी की स्थापना और राज्य में प्राकृतिक गैस, पीओएल एवं एलपीजी पाइपलाइन के नेटवर्क को विकसित करने का प्रस्ताव करता है। हाइड्रोकार्बन विजन डॉक्यूमेट 2030, पूर्वोत्तर में तेल और गैस क्षेत्र में वर्ष 2030 तक 1.3 लाख करोड़ रुपये के निवेश का प्रस्ताव करता है।[6]

अब उज्जवला भी हमारी उन्नति की एक प्रतीक बन चुकी है, आज देश में एलपीजी ऊर्जा का सबसे स्वच्छ और सर्वसुलभ साधन बन चुका है। पिछले कुछ वर्षों से यह समाज में रहन-सहन के स्तर को आसान बनाने और गरीबों, दलितों, पंडितों, वंचितों, पिछड़ी जाति के, हमारी आदिवासी भाइयों-बहनों को, इन सब महिलाओं को सशक्त बनाने में इसने बहुत बड़ी अहम भमिूका अदा की, सच तो यह है कि प्रधानमंत्री उज्जवला योजना अब भारत में गरीब से गरीब परिवार का सामाजिक उत्थान और सामाजिक परिवर्तन के माध्यम से देश के सतत विकास का एक बहुत बड़ा स्रोत बन चुका है। देश की आधुनिक जनसंख्या को उनका उचित अधिकार दिलाना हमारी सरकार का प्राथमिक लक्ष्य रहा है। इसलिए देश की हर रसोई में स्वच्छ ईधन सुनिश्चित कराने की दिशा में हमने बहुत बड़ा प्रयास किया है।

प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने अपनी एक सभा में कहा था कि आज देश में हर सौ में से 81 परिवार ऐसे हैं जिनके घर में गैस का सिलेंडर है, गैस का चूल्हा है, स्वच्छ ईधन है। जल्द ही हम सभी परिवारों तक खाना बनाने के लिए एलपीजी गैस कनेक्शन पहुंचाने का लक्ष्य लेकर के चल रहे हैं। उन्होंने एक वीडियो दिखाकर लोगों को बताया था कि उज्जवला से चार तरह से जीवन में बहुत लाभ हुआ है- सबसे बड़ा तबियत के लिए, स्वास्थ्य के लिए, जिन-जिन रसोई घरों में एलपीजी से चूल्हे जल रहे हैं, वहां लकड़ी, सूखे पत्ते, गोबर के उपलों या केरोसिन जैसे ईधनों से छुटकारा मिल गया है, यानि आज उज्जवला ने दी है[7] जानलेवा धुएं से आजादी, नारी शक्ति को धुएं से मुक्ति मिली है, यानि पिछले चार वर्षों में दस करोड़ परिवार की महिलाओं और बच्चों को आग, सांस या फेफड़े से जुड़ी बीमारियों से बहुत बड़ी राहत मिली है, मेरा तो बचपन ही गरीबी में बीता है, मुझे मालूम है कि हमारी मां जब

खाना पकाती थी तो इतना धुआं हो जाता था, कभी वो खुद छत पर जाकर के, जो मिट्टी के बने हुए छत रहती थी, उसकी कुछ नलियां जो रहती थी, उसको हटा देती थी और ऊपर एक छेद करती थी, खुद जाती थी ताकि धुँआ ऊपर चला जाए ताकि बच्चों को परेशानी न हो। और मैं देखता था कि कितनी परेशानी से गुजारा करना पड़ता था।[8]

नारी का सम्मान और पूरे परिवार के स्वास्थ्य का भी ध्यान यह काम किया है ये उज्जवला योजना ने आर्थिक सुरक्षा ये भी एक बहुत बड़ा लाभ है क्योंकि जो महिलाएं घर के काम काज के अलावा दूसरी आर्थिक गतिविधियों से जुड़ी हुई है, एलपीजी ने उनकी कार्य क्षमता अप्रत्याशित रूप से बढ़ा दी है, उनका जो समय जलावन इकट्ठा करने में बर्बाद होता था, लकड़ी लाना, ये लाना, वो लाना। अब वो समय बच गया और उसका उपयोग बाकी जो वो काम करती थी, उसमें लग गया अगर सिलाई काम करके, मसाला पीसने का काम करके या कोई और काम करके.... उसको जो एक्सट्रा इनकम कर सकती है, अब वो समय ज्यादा मिलने लगा है, एक बड़ा काम समाज की दृष्टि से, आने वाली पीढ़ियों के लिए हुआ है,[9] दुनिया की दृष्टि से हुआ है वो पर्यावरण की सुरक्षा या प्रकृति की सेवा एलपीजी स्वच्छ ईंधन है यानि प्रदूषूण से मुक्ति लकड़ी के लिए वनों का कटाव कम हुआ है, पर्यावरण की रक्षा हुई है प्रकृति की भी सेवा हो रही है यानि स्वच्छ ईधन, स्वस्थ भारत ग्रामीण गरीब महिलाओं का सशक्तीकरण उज्जवला योजना की सफलता क्या है, यह उन महिलाओं से बेहतर कौन बता सकता है जिन्होंने अपने जीवन में कई बसंत, जिंदगी का हर साल चूल्हा फूंकते-फूंकते बिताया है, जबसे उज्जवला योजना का लाभ मिलना प्रारंभ हुआ है, बहुत बड़ा सामाजिक बदलाव स्पष्ट दिखने लगा है।[10]

प्रधानमंत्री उज्जवला योजना ने लोगों की जिंदगी को सरल और सहज बनाने का काम किया है। इससे जहां पर्यावरण प्रदूषण को रोकने में मदद मिली है, वहीं महिलाओं के स्वास्थ्य में भी सुधार हुआ है। इंटरपेन्योरशिप, उद्यमशीलता को भी बढ़ावा मिला है। 2010 से 2014 तक कांग्रेस की यूपीए सरकार में एलपीजी गैस सिलेंडर के डिस्ट्रिब्यूटर का काम नौ सौ दलित परिवारों को मिला था लेकिन 2014 से 2018 के बीच मोदी सरकार में करीब 1300 परिवारों को एलपीजी डिस्ट्रिब्यूशनशिप मिली है।[11] कोई भी बिचौलिया किसी भी परिवार का हक न मार पाए। इसलिए पीएल लाभार्थियों की चयन की प्रक्रिया भी पूरी तरह पारदर्शी और भरोसेमंद रखी गई है।[12]

उज्जवला योजना का सही लाभ मिल सके इसके लिए एलपीजी पंचायत भी शुरू की गई है। ग्रामीण इलाकों में एलपीजी के उपभोक्ताओं को इसके सुरक्षित उपयोग और लाभों की जानकारी दी गई है। वर्ष 2020 में इस साल एक लाख एलपीजी पंचायत आयोजित करने की सरकार की योजना है। देश में नरेंद्र मोदी के नेतृत्व में सरकार बनने के बाद पीएम उज्जवला योजना की शुरुआत कर एक क्रांतिकारी कदम उठाया गया। इस योजना को लागू किए जाने से एक तरफ जहां वृक्षों और वनों की अंधाधुंध कटाई पर रोक लगी, वहीं दूसरी तरफ माताओं-बहनों के स्वास्थ्य पर अच्छा असर पड़ा और उनके समय की भी बचत होने लगी। यह एक अच्छी योजना है, इसे घर-घर तक पहुंचाने में ही इस देश का कल्याण है।[13] बलिया से शुरू हुई यह योजना राष्ट्रव्यापी स्वरूप धारण कर चुकी है। इसके लिए सरकार की नीति और नीयत दोनों बराबर की सहभागी है।

संदर्भ : -

1. www.pmujjwalayojna.com
2. http//petroleum.nic.in/hi
3. मन की बातः नरेंद्र मोदी, प्रकाशकः बसुक्रॉफ्ट डिजिटल फाउंडेशन, हरियाणा, पृ0सं0 20-25
4. https//finmin.nic.in/hi
5. सेठी रजतःमोदी का भारत, प्रकाशन ईकेए, चेन्नई, पृ0सं0 8-18
6. भारत-2020 प्रकाशक : सूचना एवं प्रसाण मंत्रालय, भारत सरकार, पृ0सं0 191-194
7. राजेश कुमार एंड गिरीश चंद प्रकाशकः महात्मा गांधी से मोदी,मनोलैंड लिमिटेड, वर्ष 2016, पृ0सं0 231-233
8. www.upenergy.in/uppcl/hi
9. कुरूक्षेत्र – सितम्बर 2016, प्रकाशन : सूचना केन्द्र प्रसारण मंत्रालय लोधी रोड, नई दिल्ली-120003, पृ0सं0 231-233
10. श्रीवास्तव बीना : प्रधानमंत्री उज्जवला योजना प्रभाव आंकलन, प्रकाशन-अटल बिहारी वाजपेयी सुशासन एवं नीति विश्लेषण संस्थान, भोपाल, पृ0सं0 5-6
11. तिवारी अवधेश : उज्जवला से उत्थान, प्रकाशन-डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी शोध अधिष्ठान-9, अशोका रोड, नई दिल्ली, पृ0सं0 5-23
12. योजना अगस्त 2015 : प्रकाशन : सूचना और प्रसारण मंत्रालय लोधी रोड नई दिल्ली, पृ0सं0 34-35
13. योजना सितम्बर 2016, प्रकाशन : सूचना और प्रसारण मंत्रालय लोधी रोड, नई दिल्ली, पृ0सं0 55-63

प्रेमचंद और निराला का दलित संदर्भित साहित्य

डॉ0 राकेश कुमार राम[*]

प्रेमचंद और निराला की दलित संदर्भित साहित्य का मूल्यांकन करने से पूर्व उस दौर की दलित-समस्याओं पर राजनीतिज्ञों की सोच, सामाजिक मान्यताओं, विद्वानों-लेखकों की धारणाओं, विचारों, मान्यताओं आदि को जानना आवश्यक है। हम देखते हैं कि 1920-1936 ई0 का यह वह दौर है, जिसमें स्वतंत्रता आन्दोलन, नवजागरण, आर्य समाज, ब्रह्मसमाज, हिन्दू महासभा, कांग्रेसी विचारधारा, गांधी जी और डॉ0 भीमराव अम्बेडकर आदि के आन्दोलन शिखर पर थे। यह समय हिंदी साहित्य में 'छायावाद' के नाम से जाना जाता है। यह समय भारी उथल-पुथल से भरा हुआ था। मजदूर वर्ग के हड़तालों की शुरूआत इससे पूर्व भारत में नहीं हुआ था। दिसम्बर 1918 में बम्बई की मिलों की हड़ताल, तो मार्च-अप्रैल में गांधी जी के आवाहन पर रौलट एक्ट (1919) के विरोध में लोग संघर्ष में कूद पड़े थे। इसी समय दलित समस्या पर भी लोगों का ध्यान गया। क्योंकि डॉ0 भीमराव अम्बेडकर भारतीय राजनीति का इस समय तक प्रमुख हिस्सा बन चुके थे। डॉ0 अम्बेडकर का आगमन मूक दलितों की वाणी थी। इसी समय हजारों साल से शोषित, दमित दलितों ने अपने शोषण के विरूद्ध अवाज उठाई। लेकिन दलितों के इस मुक्ति-संघर्ष को हिन्दू लोग अलगाववादी नजरिये से देख रहे थे। लाला लाजपत राय जैसे सूझ-बूझ वाले नेता दलितों के इस आन्दोलन को संदेह की दृष्टि से देख रहे थे। दलितों के आन्दोलनों के सम्बन्ध में उनका कहना था- ''नौकरशाही की सहानुभूति के पात्र के रूप में अछूत एक नई खोज है- भारतीयों की स्वराज कामना के विरूद्ध एक हथियार के रूप में अछूत कितना बहुमूल्य है।''[1]

यह नया नहीं है। जब भी दलितों ने अपने अधिकारों के लिये संघर्ष किया, उन पर इन जैसे हिन्दुओं ने इसी तरह का आरोप लगाया। गांधी जी ने भी डॉ0 भीमराव अम्बेडकर पर यहीं आरोप लगाया था। 1921 ई0 की गोलमेज कांफ्रेस में जब डॉ0 भीमराव अम्बेडकर ने दलितों के लिए पृथक निर्वाचन की मांग की तो गांधी जी ने इसका विरोध किया। इतना ही नहीं 17 अगस्त, 1932 ई0 को रैमजे मैकडानल्ड ने इस सम्बन्ध में अपना निर्णय देते हुए न केवल मुसलमानों के लिए पृथक चुनाव क्षेत्रों बल्कि दलितों को भी एक इकाई के रूप में मान्यता दी तो गांधी जी ने यरवदा जेल (पूना) में रहते हुए ही इसके विरोध में आमरण अनशन शुरू कर दिया। हिन्दुओं ने यह प्रचारित किया कि स्वतंत्रता आन्दोलन को कमजोर करने के लिए दलितों का इस्तेमाल किया जा रहा है। यहाँ तक कि वामपंथियों ने डॉ0 अम्बेडकर को साम्राज्यवादियों का पिट्ठू कहा। उनकी नजर में दलितों का शोषण-दमन उनके सर्वहारा का शोषण दमन नहीं था।

यही स्थिति इस दौर के रचनाकारों की भी थी। उनमें भी दलितों को लेकर यही भाव मौजूद थे। उनकी साहित्यिक चिंताओं में मुख्य बिन्दु यही था कि ''दलित धर्म-परिवर्तन न करें, इससे हिंदू समाज कमजोर होगा।''[2] इस दौरान आया चाँद का अछूत अंक और सरस्वती में प्रकाशित कविता कहानियाँ एवं नाटक इसके उदाहरण हैं। जनगणना में दलितों को अलग इकाई मानने का हिन्दुओं ने विरोध किया था। जबकि दलित मंदिरों में प्रवेश नहीं पा सकते थे। उनके तालाबों में मवेशी तो पानी पी सकते थे, लेकिन दलित नहीं। स्कूलों में दलितों का प्रवेश वर्जित था। ऐसी स्थिति में दलितों का हक मांगने के कारण डॉ0 अम्बेडकर को साम्राज्यवादियों का पिट्ठू कहा जाय, हिन्दुओं की मानसिकता को समझा जा सकता है। प्रेमचन्दयुगीन साहित्य में भी इसी दृष्टिकोण को देखा जा सकता है। दलितों की पीड़ा, दुःख-दर्द, उनकी चेतना, उनका संघर्ष तत्कालीन साहित्य में संवेदना का अधिकारी बनकर अभिव्यक्ति नहीं पा सकता था।

एक सम्पादक की हैसियत से प्रेमचंद ने अपने मासिक पत्र 'हंस' और साप्ताहिक 'जागरण' में दलितों की समस्याओं से सम्बन्धित अनेक टिप्पणियाँ लिखी। लेकिन उनकी दृष्टि में भी वहीं तत्व मौजूद थे जो तत्कालीन हिंदू चिंतकों में थे। डॉ0 अम्बेडकर के पृथक निर्वाचन की मांग पर जो प्रतिक्रिया गांधी जी की थी वहीं बात प्रेमचंद भी 22 अगस्त, 1932 के 'जागरण' में अपनी सम्पादकीय टिप्पणी में कहते हैं कि ''साम्प्रदायिक भेद की नीति ही आपत्तिजनक है, गवर्मेंट भारत को राष्ट्र नहीं समझती, हम अपने व्यवहार में उसे ऐसा समझने का अवसर ही नहीं देते हैं। वह तो भारत को संप्रदायों की दृष्टि से देखती है। अतएव साम्प्रदायिक मताधिकार के लिए हम इतने इच्छुक हों, यह तो गर्वमेंट की दृष्टि का समर्थन है।''[13] यहाँ प्रेमचंद की दृष्टि में दलितों की समस्या साम्प्रदायिक लगती है। यह गांधी जी के इस दृष्टिकोण से मेल खाती है, जहाँ वे 11 मार्च, 1931 को अपने पत्र में भारत मंत्री 'सैमुअल होट' को लिखते हैं ''मैं समझता हूँ पृथक निर्वाचन अछूतों के लिये भी नुकसानदेह है, और धर्म के लिये भी। शुद्ध राजनीतिक नजरिये से चाहे यह फायदेमंद क्यों न साबित हो..... पृथक निर्वाचन हिन्दू धर्म को तार-तार कर देगा। इन वर्गों का सवाल मेरे लिए नैतिक और धार्मिक सवाल है। उसे राजनीतिक पहलू का भी महत्व है, लेकिन नैतिक और धार्मिक मुद्दों के ज्ञान में उसका महत्व बहुत कम है।''[4] उपरोक्त

* प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, डी0ए0वी0पी0जी0 कालेज, वाराणसी।

कथन से यह साफ हो जाता है कि गांधी जी हिन्दू धर्म को दलितों से ज्यादा तरजीह दे रहे थे, जबकि इसी धर्म ने दलितों का जीवन नारकीय बना रखा है। प्रेमचंद भी गांधी जी के इस धार्मिक भावना को राष्ट्रीय भावना कहते हुए उनके आमरण अनशन का समर्थन करते हैं। वे लिखते हैं- ''धन्य हो महात्मा! राष्ट्र की सेवा में तुम पहले ही अपना सर्वत्र अर्पण कर चुके हो। एक प्राण रह गया था उसे भी राष्ट्र को ही भेंट करने जा रहे हो।''[5] क्या दलित इस राष्ट्र का हिस्सा नहीं थे जिसकी बात गांधी जी व प्रेमचंद कर रहे थे? और तो और गांधी जी जहाँ इस आमरण अनशन को धार्मिक कह रहे थें, वहीं प्रेमचंद उस पर राष्ट्रीयता का रंग चढ़ा देते हैं। 24 सितम्बर, 1932 ई0 को डॉ0 अम्बेडकर से समझौता के बाद गांधी जी का आमरण अनशन खत्म होता है। जिसे इतिहास में (पूना-पैक्ट) के नाम से जाना जाता है। इसे दलितों और डॉ0 अम्बेडकर ने अपनी हार के रूप में लिया तो गांधी जी एवं हिन्दुओं ने अपनी जीत के रूप में। प्रेमचंद का भी यहीं दृष्टिकोण है। इस सम्बन्ध में प्रेमचंद 26 सितम्बर, 1932 के जागरण में लिखते हैं-''शत्रु ने लक्ष्य भी उसी स्थान पर किया था जो सबसे कमजोर है, लेकिन गांधी जी की तपस्या ने पासा पलट दिया और न जाने कितनी दैवी शक्ति लेकर सामने आ खड़ी हुई। देखते ही देखते हवा बदल गयी और शत्रुओं से घिरी राष्ट्रीयता अपने मोर्चे से निकलकर सांप्रदायिकता का संहार कर रही है। पूना में उसने पहली विजय पायी....।''[6] प्रेमचंद की इस भाषा और दृष्टिकोण से यह कत्तई सिद्ध नहीं होता कि वे दलितों के पक्ष में खड़े थे। वे गांधी जी द्वारा चलाये गये सुधारवादी कार्यक्रमों तक ही प्रेमचंद अपनी सहमति प्रकट करते हैं।

प्रेमचंद अपने प्रारंभिक दिनों में सनातनी फिर आर्यसमाजी एवं गांधीवादी तथा अंत में प्रगतिशील दिखलाई पड़ते हैं। इसलिए वे अपने शुरूआती दलित विषयक लेखन में वर्ण-व्यवस्था में उपजी शोषण-दमन की विभीषिका की जगह आर्थिक अन्तर्वस्तु को ही ज्यादा महत्व देते हैं। प्रेमचंद के इस अन्तर्द्वन्द को उनकी प्रारंभिक रचनाओं में देखा जा सकता है। प्रेमचंद अपनी रचनाओं में एक ओर हृदय परिवर्तन का आदर्श रख रहे थे तो दूसरी तरफ दलितों को शराब न पीने व मरे जानवरों का मांस न खाने की सलाह दे रहे थे। प्रेमचंद के इस आदर्शवादी रूप को उनके दलित विषयक कहानियों- मंदिर (1927) मंत्र (1928) घासवाली (1931) आदि में देखा जा सकता है। लेकिन दलित शराब क्यों पीते हैं या वे मरे हुए जानवरों का मांस क्यूँ खाते हैं, वे इसकी जाँच-पड़ताल नहीं करते। प्रेमचंद ही नहीं उस समय के अनेक रचनाकार, बुद्धिजीवी एवं आलोचक किसान, मजदूर एवं दलितों को एक ही खांचे में रखकर तौलते थे। वे वर्ण व्यवस्था से उपजी अमानवीय परिणामों को अनदेखा कर देते है। वे आदर्शवादी, सुधारवादी पद्धति से इस समस्या का निराकरण करना चाहते थे। प्रेमचंद के आदर्शवादी एवं सुधारवादी पद्धति की आलोचना करते हुए डॉ0 श्यौराज सिंह बेचैन कहते हैं- ''एक दलित लेखक के रूप में प्रेमचंद 'ब्राह्मणवादी मूल्यों के वाहक हैं, और प्रबल गांधीवादी लगते हैं।''[7] जबकि दलित चिंतक सामाजिक जड़ों की अनदेखी नहीं कर सकते। उदाहरण के लिये प्रेमचंद कृत 'कफन' कहानी के पात्र घीसू, माधव, चमार हैं, लेकिन कहानी में चमारों या दलितों से सम्बन्धित किसी समस्या को नहीं उठाया गया है। केवल उनकी अकर्मण्यता जैसे ''घीसू एक दिन काम करता है तो तीन दिन आराम करता। माधव इतना कामचोर था कि आधे घंटे काम करता तो घंटेभर चीलम पीता। इसलिए उन्हें कहीं मजदूरी नहीं मिलती थी''[8] और हृदयहीनता जैसे- प्रसव पीड़ा के कारण बुधिया के हृदय को दहला देने वाली चीख सुनकर भी घीसू, माधव में से कोई घर के अन्दर उसे देखने नहीं जाता ''माधव को भय था कि वह कोठरी में गया तो घीसू आलुओं का बड़ा भाग साफ कर देगा।''[9] का ही विस्तृत चित्रण किया है।

प्रेमचंद की संवेदना और सहानुभूमि किसान के साथ जिस शिद्धत से थी उतनी दलितों के साथ नहीं थी। प्रेमचंद की कलावादी रूझान में गांधी जी का पूरा प्रभाव था। 'प्रेमाश्रम' उपन्यास से लेकर 'कर्मभूमि' तक इनके इसी रूझान को देखा जा सकता है तो 'गोदान' उन्हें वर्ग विषमता के इच्छापूर्ति वाले आदर्श समाधान के त्याग और सत्य के साक्षात्कार की ओर अभिमुख कर रही थी। हालांकि 'गोदान' का होरी तमाम संघर्षों के बाद भी एक भला और धार्मिक आस्थावान व्यक्ति बना रहता है। मरते वक्त होरी की चिंता उत्पीड़न से मुक्त होने के बजाय 'गोदान' करके अपने जीवन को सफल बनाना ही रहा है, जो होरी की वर्ग चेतना नहीं अपितु धर्म चेतना है।

प्रेमचंद की साहित्यिक विकास यात्रा में कई तरह के अन्तर्विरोध दिखलाई पड़ते हैं। कहीं प्रगतिशीलता तो कहीं संस्कारी पूर्वाग्रहों की छाप इनकी रचनाओं में दिखलाई पड़ते हैं। कहानी 'मुक्तिमार्ग' में हरिहर नाम के पात्र पर दूसरे पात्र बुद्धू की टिप्पणी कि- ''भैया मैं गाय-भैंस नहीं रखता, चमारों को तो जानते हो, एक ही हत्यारे होते हैं। इसी हरिहर ने मेरी गऊएं मार डाली। न जाने क्या खिला देता है।''[10] इस कहानी में हरिहर का चमार होना उल्लेखनीय है, जो दूसरे के गाय-भैसों को मार डालते हैं। क्या यह हिंदू मानसिकता के अनुसार उनका चित्रण नहीं है।

दलित विमर्श अथवा दलित चेतना की बात करें तो यहाँ प्रेमचंद की तीन कहानियों यथा 'ठाकुर का कुआं', 'दूध का दाम' और 'सद्गति' का विशेष रूप से उल्लेख किया जा सकता है। इसमें दूध का दाम और ठाकुर का कुआँ पर डॉ0 अम्बेडकर के आन्दोलन का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है। ठाकुर का कुआँ और दूध का दाम के प्रकाशन का वर्ष क्रमशः 1932 एवं 1934 ई0 है। इतिहास का यह वहीं समय है जब डॉ0 भीमराव अम्बेडकर महाड़ आन्दोलन और कालाराम मंदिर आन्दोलन कर रहे थे। आन्दोलन की वैचारिक छाप इन कहानियों की अर्न्तवस्तु में गुंथी हुई है। इसे 'ठाकुर का कुआँ' कहानी के दलित पात्र 'जोखू' के इस संवाद से कि ''हाथ-पांव तुड़वा आयेगी, और कुछ न होगा। बैठ

चुपके से। ब्राह्मण देवता आशीर्वाद देंगे, ठाकुर लाठी मारेंगे, साहूजी एक के पांच लेंगे, गरीबों का दर्द कौन समझता है। हम तों मर भी जाते हैं तो कोई दुआर झांकने नहीं आता, कंधा देना तो बड़ी बात है। ऐसे लोग कुएं से पानी भरने देंगे।''[11] इसी कहानी की दलित महिला पात्र गंगी की आंतरिक सोच और वेदना को जिस तरह प्रेमचंद ने कहानी में दिखाया है, वह हिन्दी साहित्य में उनके समय तक विरले ही दिखाई पड़ता है। गंगी कहती है- ''हम क्यों नीच हैं, और ये लोग क्यों ऊँच है? इसलिये कि ये लोग गले में तागा डाल लेते हैं। यहां तो जितने भी हैं, एक से एक छंटे हैं, चोरी ये करें, जाल-फरेब ये करें, झूठे मुकदमें ये करें। अभी इस ठाकुर ने उस दिन बिचारे गड़ेरिये की भेड़ चुरा ली थी बाद में मारकर खा गया। इन्हीं पंडित जी के घर में बाहर मांस जुआ होता है। यही साहू जी तो घी में तेल मिलाकर बेचतें है। काम करा लेते हैं, मजूरी देने में नानी मरती है, किस बात में हैं, हमसे ऊँचे।''[12]

इसी तरह प्रेमचंद की दूसरी कहानी 'दूध का दाम' भी है, जिसमें दलित चेतना की अभिव्यक्ति कहानी को श्रेष्ठ बनाती है। कहानी में सुरेश (सवर्ण) और मंगल (दलित) सवार-सवार का खेल खेलते हैं। सुरेश मंगल से कहता है ''चल हम लोग सवार-सवार खेलते हैं, तू घोड़ा बनेगा, हम लोग तेरे उपर सवारी करके दौड़ाएंगे।

मंगल ने शंका की, मैं बराकर घोड़ा ही रहूँगा कि सवारी भी करूँगा यह बता दो। यह प्रश्न टेढ़ा था। किसी ने इस पर विचार न किया था। सुरेश ने एक क्षण विचार करके कहा 'तुझे कौन पीठ पर बिठाएगा, सोच। आखिर तू भंगी है कि नहीं?

मंगल भी कड़ा हो गया, बोला, मैं कब कहता हूँ कि मैं भंगी नहीं हूँ, लेकिन तुम्हें मेरी माँ ने ही दूध पिलाकर पाला है। तुम लोग चघड़ हो। आप तो मजे से सवारी करोगे और मैं घोड़ा ही बना रहूँगा।''[13] अर्थात दलित सिर्फ सेवा ही करता रहेगा। उसे अपने अधिकारों की मांग करने का हक नहीं है। यहां दलितों के प्रति प्रेमचंद की धारणा बदली हुई दिखाई पड़ती है, जो निश्चित रूप से अम्बेडकर के आन्दोलनों का प्रभाव है। 'सद्गति' एक उत्कृष्ट कहानी है, लेकिन इसे दलित-विमर्श की कहानी कहना अनुचित है। कहानी गांव के सामंती ढांचे की नग्नता को चित्रित करती है, जिसमें 'दुःखी' (कहानी का दलित पात्र) धार्मिक पाखंडो के सामने अपने आप को चुपचाप मार देता है। यहाँ तक कि उसके मर जाने पर भी कुछ नहीं होता। दलित विमर्शकार ओमप्रकाश वाल्मीकि के अनुसार ''यह घोर नैराश्य की कहानी है, जिसमें दलित विमर्श का कहीं कोई संकेत नहीं है।''[14] अर्थात प्रेमचंद की लगभग तीन सौ कहानियों में मात्र दो कहानी ''ठाकुर का कुआं और दूध का दाम'' ऐसी कहानी है जिसमें दलितों की पीड़ा को सही अभिव्यक्ति मिल पायी है।

इन तमाम सहमतियों एवं असहमतियों के बावजूद प्रेमचंद अपने समय के एकलौते गैर दलित रचनाकार हैं जिन्होंने हिन्दी साहित्य में दलित यथार्थ को स्वीकार्य बनाया। दलित साहित्य में पाठकों की रूचि विकसित की। किसान मजदूर, दलित को हिन्दी साहित्य का अंग बनाया। प्रेमचंद की रचनाऐ जितनी सहज और सरल हैं, उतना ही उनका प्रभाव गहरा है। इसलिए दलित रचनाकार प्रेमचंद को अपने करीब पाता है। समाज के विकास में साहित्य की भूमिका कितनी महत्वपूर्ण है, यह प्रेमचंद को पढ़ने के बाद समझ में आता है। प्रेमचंद अपने समय में जितने प्रासंगिक थे, उससे ज्यादा आज हैं।

बंगाल के मेदिनीपुर जिले के महिषादल नामक रियासत में सन् 1896 ई0 में बसन्त पंचमी के दिन जन्में सूर्यकांत त्रिपाठी निराला का हिंदी साहित्य में विशिष्ट स्थान है। साहित्यिक जगत में उन्हें वर्ग-संघर्ष का कवि प्रगतिशील, जनवादी आदि विशेषणों से संबोधित किया जाता था। निराला जी को रूढ़ियों से चिढ़ थी। उन्होंने समाज के समस्त बन्धनों को तोड़कर मुक्त छंद की रचना की और इसमें जो बाधक बना उसकी खबर ली। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानन्दन पंत शायद ही कोई ऐसा साहित्यकार रहा जो निराला के व्यंग बाणों से बच सका हो। निराला जी ने बहुत कम लोगों को कुछ समझा तो बहुत कम लोगों ने भी इनकों कुछ समझा। फलतः इनका जीवन कुंठा, असंतोष, आत्मप्रताड़ना एवं घुटन की सीमाओं में बंधकर रह गया और यहीं आक्रोश और कुंण्ठा इनकी रचनाओं में भी देखा जा सकता है। उदाहरण के लिए 'कुल्लीभाट' उपन्यास के पं0 भगवानदीन जी जो पतुरिया से व्याह करने के कारण गाँव-गिरांव से बंद थे, जिसके आक्रोश में हर घर का इतिहास कण्ठाग्र कर रखा था और अवसर आने पर सबको घेरकर सुनाते कि ''रामचरण की बेवा लड़की के लक्खू पासी का हमल रह गया था, शिवप्रसाद मिसिर की बहन बीस साल की व्याही न होने के वजह से लक्ष्मण लोध के साथ भाग गई। रामदुलारे तिवारी अपने छोटे भाई की बेवा स्त्री को बैठाले है, सुन्दर सिंह का लड़का पल्टन में था, ससुर ने पुतोहू के हमल कर दिया, बात फैल गयी, थानेदार आये फिर रुपया देकर दबाया और पुतोहू को बेटे के पास लेकर चले कहकर कलकत्ता, जाने कहाँ पहुँचे, वहाँ लड़का होने पर उसे मारकर पुतोहू को बेटे के पास ले गये, कहा-संग्रहणी हो गयी थी कलकत्ता इलाज कराने ले गये थे।''[15]

निराला की रचनाएं- वह तोड़ती पत्थर, जल्दी-जल्दी कदम बढ़ाओ, चतुरी चमार, कुल्लीभाट, कुकुरमुत्ता आदि रचनाओं के आधार पर उन्हें दलित चेतना का कवि प्रचारित करने की कोशिश भी होती है, लेकिन ऐसा है नहीं। 'तोड़ती पत्थर' वर्ग चेतना तो 'कुकुरमुत्ता' मार्क्सवादी चेतना का प्रतीक है। अलबत्ता 'चतुरी चमार' और 'कुल्ली भाट' में दलितों के यथार्थ का चित्रण जरूर मिलता है। चतुरी चमार में चतुरी अपने अर्जुन को निराला के पास पढ़ने के लिये भेजते हैं, जहाँ निराला के बेटे चिरंजीव जो गर्मियों की छुट्टी में ननिहाल से आया है, मौका पाकर अर्जुन को छेड़ता है। पढ़ाने के नाम पर उस पर रौब जमाता है। उम्र में बड़े होने बावजूद अर्जुन चिरंजीव से दबता है। निराला इसे महसूस भी करते हैं। इस सम्बन्ध

में वह कहते हैं, मैं ''ब्राह्मण-संस्कारों की सब बातों को समझ गया पर उसे (चिरंजीव) उपदेश क्या देता? चमार दबेंगे, ब्राह्मण दबाएँगे। दवा है, दोनों की जड़े मार दी जाएँ पर यह सहज साध्य नहीं है। सोचकर चुप हो गया।''[16] अर्थात निराला भी मानते हैं कि जाति-पात के इस सनातनी व्यवस्था को ठीक नहीं किया जा सकता है। इसमें रहकर ही इसकी कुछ खामियों को दूरकर, धारण योग्य बनाया जाए। जो दलित साहित्यकारों की दृष्टि में सम्भव नहीं था। उनकी दृष्टि में ''निराला जी वेदांती हैं। शंकर के अद्धैत दर्शन से प्रभावित हैं। तुलसीदास के भक्त हैं। रामकृष्ण परमहंस और विवेकानन्द के प्रति आस्थावान हैं।''[17] निराला के दलित साहित्य और दलितों के दलित साहित्य में, जो भेद है, वह रचनाकारों के यथार्थ और संवेदना के स्तर पर है। निराला जी दलित जन पर करुणा की प्रार्थना करते हैं, पर किससे? यथा-

''दलित जन पर करो करूणा।

दीनता पर उतर आये

प्रभु तुम्हारी शक्ति अरूणा।।''[18]

वहीं अछूतानंद की एक कविता जो 'मनुस्मृति' पर है उसमें उनकी अन्तर्वेदना स्पष्ट दिखती है। यह विमर्श की रचना है सहानुभूति की नहीं यथा-

''निसदिन मनुस्मृति ये हमको जला रही है।

ऊपर न उठने देती नीचे गिरा रही है।

ब्राह्मण व क्षत्रियों को सबको बनाया अफसर

हमको पुराने उतरन पहनो बता रही है।

दौलत कभी न जोड़े गर हो तो छीन ले वह

फिर नीच कह हमारा दिल भी दुखा रही है।''[19]

हालांकि निराला जी अपने जीवन के संघर्षों और इसके अनुभवों के कारण वैचारिक रूप से क्रांतिकारी हो गये थे। उन्हें सभी प्रकार के रूढ़ियों-साहित्यिक, धार्मिक, सामाजिक आदि को तोड़ने में बड़ा आनन्द आता था। उनका मकान साधारण जनों का अड्डा हो गया था। जहाँ समय-समय पर लोध, पासी, धोबी, चमारों का ब्रह्मभोज चलता। यहीं नहीं ''घृत्पक्व मसालेदार मांस की खुशबु से जिसकी भी लार टपकी, आप निमंत्रित होने को पूछा।''[20] निराला जी उदासीन होकर अपना बौद्धिक प्रलाप नहीं कर सकते थे, जैसा कि अन्य छायावादी कवियों के साथ हो रहा था। वे बड़े ही निर्ममता के साथ सामाजिक कुरीतियों पर प्रहार कर रहे थे। कुल्ली भाट के गुरूकुल में (जिसमें सभी लड़के दलित ही पढ़ा करते थे) जब निराला जी को सम्मानित किया जाता है, तो दलितों की दशा देखकर विचलित हो जाते हैं। निराला जी सोचते हैं कि ये सबका सम्मान करते हैं, लेकिन इनकी ओर किसी ने नहीं देखा ''ये पुश्त-दर-पुश्त से सम्मान देकर नत मस्तक ही संसार से चले गए हैं। संसार की सभ्यता में इनका स्थान नहीं। ये नहीं कह सकते हमारे पूर्वज कश्यप, भारद्वाज, कालि, कणाद थे, रामायण, महाभारत इनकी कृतियाँ हैं, अर्थशास्त्र कामसूत्र इन्होंने लिखे हैं, अशोक, विक्रमादित्य, हर्षवर्धन, पृथ्वीराज इनके वंश के हैं। फिर भी ये थे, और हैं।''[21]

उक्त निष्कर्षी के आधार पर हम कह सकते हैं कि निराला जी की रचनाओं में भले ही दलित विमर्श न हो लेकिन दलित समाज पर हो रहे शोषण पर से अपना ध्यान नहीं खींचा। अपनी लेखकीय प्रतिक्रियाओं से असहमति प्रकट की। 'कुल्ली भाट' और 'चतुरी चमार' इसी की एक बानगी है।

संदर्भ-सूची

1. मुख्य धारा और दलित साहित्य, ओमप्रकाश बाल्मीकि, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2014, पृ0- 145
2. वही, पृ0- 146
3. वही, पृ0- 147
4. वही, पृ0- 148
5. वही, पृ0- 148
6. वही, पृ0- 149
7. वही, पृ0- 150
8. कफन, प्रेमचंद की सर्वश्रेष्ठ कहानिया-संग्रह, प्रेमचंद, पृ0-258
9. वही, पृ0- 256
10. मुक्ति मार्ग, मानसरोवर भाग-1, प्रेमचंद, पृ0- 31
11. ठाकुर का कुआँ, मानसरोवर भाग-1, प्रेमचंद, पृ0- 113
12. वही, पृ0- 114
13. दूध का दाम, मानसरोवर भाग-2, प्रेमचंद-पृ0-131
14. मुख्यधारा और दलित साहित्य, ओमप्रकाश वाल्मीकि, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2014, पृ0-154
15. कुल्लीभाट, सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, आवृत्ति-2011, पृ0-30
16. चतुरी चमार, सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010, पृ0-17
17. मुख्यधारा और दलित साहित्य, ओमप्रकाश वाल्मीकि, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2014, पृ0-32
18. दलित विमर्श की भूमिका, कंवल भारती, इतिहास बोध प्रकाशन, इलाहाबाद, पुनर्मुद्रण, 2007, पृ0-115
19. वही, पृ0- 112
20. चतुरी चमार, सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010, पृ0-6
21. कुल्ली भाट, सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, आवृत्ति-2011, पृ0-79

पारम्परिक भारतीय विद्वानों के अनुसार संगीत का उद्भव

प्रो0 बिरेन्द्र नाथ मिश्र एवं डॉ0 विपिन बिहारी दूबे***

''संगीतसाहित्यकलाविहीनः,

साक्षात् पशुः पुच्छविषाणहीनः।''[1]

अर्थात् जिस मनुष्य के जीवन में संगीत साहित्य या कला नहीं है वह मनुष्य बिना सिंह एवं बिना पुंछ के पशु के समान है। इस प्रकार हम देखते हैं कि हमारे जीवन में संगीत का कितना महत्त्व है जिसका प्रतिपादन हमारे शास्त्रों ने किया है, किन्तु संगीत की उत्पत्ति कैसे हुई इस विषय में विद्वानों के मध्य हम महान् मतभेद देखते हैं। कुछ भारतीय पारम्परिक विद्वानों का मत है कि संगीत के आदि स्रोत ब्रह्मा जी के पास था, और अन्त में नारद जी द्वारा संगीत का प्रचार इस पृथ्वी पर हुआ। संगीत की उत्पत्ति आरम्भ में वेदों के निर्माता ब्रह्माजी द्वारा हुई। ब्रह्मा जी ने यह कला शिवजी को दी और शिवजी के द्वारा देवी सरस्वती को प्राप्त हुई। सरस्वती जी को इसीलिए 'वीणा पुस्तक धारिणी' कहकर संगीत और साहित्य की अधिष्ठात्री माना है। सरस्वती जी से संगीत कला का ज्ञान नारद जी को प्राप्त हुआ, नारद जी ने स्वर्ग के गंधर्व, किन्नर एवं अप्सराओं को संगीत की शिक्षा दी। वहीं से ही भरत, मनु और हनुमान प्रभृति और उनसे ऋषि आदि संगीत कला में प्रवीण होकर भू-लोक पर संगीत कला के प्रचारार्थ अवतरित हुए।

एक अज्ञात ग्रन्थकार के मतानुसार[2], नारदजी ने अनेक वर्षों तक योग साधना की, तब शंकर जी ने उन पर प्रसन्न होकर संगीत कला प्रदान की। पार्वती जी की शयन मुद्रा को देखकर शिवजी ने अनेक अङ्ग-प्रत्यंगों के आधार पर 'रुद्र वीणा' बनाई और अपने पाँचों मुखों से पाँच रागों की उत्पत्ति की। तत्पश्चात् छठा राग पार्वती जी के श्री मुख से उत्पन्न हुआ। शिवजी के पूर्व पश्चिम, उत्तर, दक्षिण तथा आकाशोन्मुख से क्रमशः भैरव, हिंडोल, मेघ, दीपक और श्री राग प्रकट हुए एवं पार्वती जी द्वारा कौशिक राग की उत्पत्ति हुई।

''शिव प्रदोष[3]'' स्त्रोत में लिखा है कि तीन जगत की जननी गौरी को स्वर्ण सिंहासन पर उपविष्ट कराकर प्रदोष के समय शूलपाणि शिव से नृत्य करने की इच्छा प्रकट की। इस अवसर पर सब देवता उन्हें घेरकर खड़े हो गये और उनकी स्तुतिगान करने लगे। सरस्वती ने वीणा, इन्द्र ने वेणु एवं ब्रह्मा ने करताल बजाना आरम्भ किया, लक्ष्मी जी ने गाना गाया तथा विष्णु भगवान् मृदंग बजाने लगे। इस नृत्यमय संगीतोत्सव को देखने के लिए गन्धर्व, यक्ष, पतंग, उरग (नाग तथा सर्प), सिद्ध, साध्य, विद्याधर देवता, अप्सरायें आदि सभी उपस्थित थे।

''संगीत दर्पण'' के लेखक श्री दामोदर पंडित के अनुसार संगीत की उत्पत्ति ब्रह्मा जी से हुई है। उन्होंने लिखा है-

''ब्रुहिणोत यदन्विष्टं प्रयुक्तं भरते न च।

महादेवस्य पुरतस्तन्मार्गाख्यं विमुक्तदम्॥''[4]

अर्थात् ब्रह्माजी ने जिस संगीत को शोध कर निकाला भरत मुनि ने महादेव शिवजी के सामने जिसका प्रयोग किया तथा जो मुक्तिदायक है वह मार्गीय संगीत कहलाता है।

कुछ विद्वानों का मत है कि संगीत का जन्म 'ओम्' शब्द के गर्भ से हुआ। ओम् शब्द एकाक्षर होकर भी अ, उ, म इन तीन अक्षरों से निर्मित हुआ है। ये एकाक्षर इस अर्थ में कहा जाता है कि तीनों अक्षरों के संयोग से इसकी ध्वनि एक ही अक्षर के समान होती है। ओम् के तीनों अक्षर तीन शक्तियों के द्योतक हैं। अ उत्पत्ति शक्ति के द्योतक सृष्टिकर्ता ब्रह्मा। उ धारक, पालन, रक्षण। अर्थात् स्थिति शक्ति का प्रतीक विष्णु। म महेश शक्ति का द्योतक है। तीनों शक्तियों का पुंज ही 'त्रिमूर्ति' परमेश्वर है।

ओम् वेद का बीज मन्त्र हैं। इसके विषय में मनु कहते हैं कि ऋग्वेद, सामवेद और यजुर्वेद से 'अ', 'उ', 'म' ये तीन अक्षर लेकर प्रणव 'ओम्' बना है। श्रुति स्मृति के अनुसार ये प्रणव परमात्मा का अनुपम नाम है।

वेद में संक्षेप में ब्रह्म पद वरण करते समय ओम् रूप से ही उस पद का वर्णन किया गया है। जैसे-

''सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति

तपांसि सर्वाणि च यद् वदन्ति

यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति

तत्ते पदं संग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत्।''[5]

सकल वेद तथा सम्पूर्ण तपस्या में लक्ष्य रूप से जिस पद का वर्णन है, और जिस पद की इच्छा करके मुमुक्षुगण ब्रह्मचर्य का अवलम्बन करते हैं उस पद का संक्षिप्त नाम 'ओम' है। तन्त्रों में वर्णन है-

---

* पूर्व संकाय प्रमुख, संगीत एवं मंचकला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।
**पूर्व शोध छात्र, संस्कृत एवं धर्म विज्ञान संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

''अकारो विष्णुरुद्दिष्ट उकारस्तु महेश्वरः।

मकारेणोच्यते ब्रह्मा प्रणवेन त्रयो मतः॥''[6]

अर्थात् अकार विष्णु का वाचक, उकार महेश्वर का वाचक और मकार ब्रह्मा का वाचक है।

महर्षियों ने वेदांग रूपी शिक्षा शास्त्र द्वारा यह भली-भांति सिद्ध कर दिया है कि प्रणव में तीनों गुणों की तीनों शक्तियाँ भरी हुई है।[7], इसी कारण प्रणव ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत तीनों स्वरों की सहायता बिना उच्चारण नहीं किया जा सकता। पुनः गान्धर्व उपवेद सम्बन्धी शिक्षाओं में भली-भाँति वर्णित है कि षड्ज आदि सातों स्वर एकमात्र ओंकार के ही अन्तर विभाग हैं। जिस प्रकार बहिः सृष्टि में सात दिन, सात रंग, सात धातु आदि सात विभाग पाये जाते हैं और जिस प्रकार अन्तर राज्य में सप्त ज्ञान भूमिका आदि सप्त विभागों का प्रमाण मिलता है, उसी शैली के अनुसार एकमात्र अद्वितीय शब्द ब्रह्म रूपी ओंकार षडज आदि सप्त स्वर विभाग में विभक्त होकर नाना शब्द राज्य की सृष्टि किया करता है। इसी कारण शब्द ब्रह्म रूपी ओंकार सब मन्त्रों का मूल है। तन्त्रों में लिखा है। **''मन्त्राणां प्रणवः सेतुः''**[1] सब मंत्रों का एकमात्र प्रणव (ओम्) ही सेतु है, जिस प्रकार बिना सेतु के पथ अनवरोधी नहीं हो सकता। उसी प्रकार बिना ओंकार की सहायता के न तो मंत्र समूह पूर्ण बल को प्राप्त होता है और न ये लक्ष्य के अनुसार यथावत् काम करने में उपयोगी हो सकते हैं। फलतः एकमात्र प्रणव (ओम्) ही शब्दमय साक्षात् शब्द ब्रह्म है, स्वर ब्रह्म है। शब्द और स्वर दोनों की उत्पत्ति ओम् के गर्भ से हुई है। प्रथम स्वर प्रसूत हुआ और फिर शब्द निकले। पहिले पहल मनुष्य को स्वर सुनाई दिया, इसके बाद शब्द सुनाई दिये। मुख से उच्चारण होने योग्य प्रणव यद्यपि अलौकिक प्रणव नाद का प्रति शब्द है, तथापि वह केवल लौकिक सम्बन्ध से अविष्कृत नहीं हुआ है। तंत्रों में यह निश्चय कर लिया गया है कि मुख से उच्चारण होने योग्य ओंकार ध्वनि ही अपूर्व रीति के आधार पर पद्म से उठकर सहस्त्र दल स्थिति पुरुष में लय हुआ करती है। प्रणव ही संगीत के जन्म का मूलाधार है। इस सत्य को पाश्चात्य विद्वान भी मान गये हैं।

मैं एक से बहुत हो जाऊँ, सृष्टि करू ये संकल्प होता है, परमात्मा का कभी ब्रह्माण्ड प्रकृति में कम्पन होता है। ये कम्पन ही संगीत की प्रथम किरण है और समस्त ब्रह्माण्ड प्रकृति को कम्पितकर जो प्रथम स्वर निकलता है वही 'प्रणव नाद' है। ये ध्वनि कैसी है इस विषय में योगशास्त्र में लिखा है-

''तैलवारभिवाच्छिन्नं। दीर्घघन्टानिनादवत्।''[8]

अर्थात् ये प्रणव तैलधार के समान अविच्छिन्न एवं घन्टा के दीर्घ स्वर की तरह श्रुति मधुर है एवं उसको तभी ग्रहण किया जा सकता है जबकि साम्यावस्था होकर प्रकृति में मन स्थिर करके साधना कर सकें। ये ओंकार ध्वनि वाच्य वाचक सम्बन्ध से अनादि व अनन्त है।[9] अतएव संगीत भी अनादि एवं अनन्त हुआ।

वास्तव में ओऽम शब्द ही संगीत के जन्म का उपकरण है। ओम् के परे कुछ भी नहीं, समस्त कलायें ही ओम के विशाल गर्भ से आविर्भूत हुई है जो ओम् की साधना कर पाते हैं वे ही वास्तव में संगीत का यथार्थ रूप समझ पाते हैं। इसमें लय, ताल, स्वर सभी कुछ तो है। क्या नहीं है इसमें। आप ओम् शब्द की दार्शनिकता को गहराई से समझिए तब आपको उसके वास्तविक रूप का ज्ञान होगा।

संगीत के जन्म के सम्बन्ध में भारत के इतिहासकार पूर्वोक्त तथ्यों के विषय में कहते हैं कि-''विद्वानों के जो ये अभिमत प्राप्त हुए हैं, वे प्रायः धार्मिक हैं अथवा किंवदंतियों पर आधारित है, ये ऐतिहासिक कसौटी पर खरे नहीं उतरते। बात तो दरअसल ये है कि संगीत के जन्म के सम्बन्ध में कोई ऐतिहासिक तथ्य अभी तक प्राप्त नहीं हुए हैं और जो कुछ भी है ये पूर्ण प्रामाणिक नहीं है, उनमें काल्पनिक आधार पर्याप्त मात्रा में सम्मिलित है। लेकिन ऐतिहासिक तथ्यों के अभाव में हमें उन्हीं तथ्यों का सहारा लेना पड़ता है। संगीत का जन्म कैसे हुआ, इस सम्बन्ध में हम संगीत की विभिन्न पुस्तकों को ज्यों-ज्यों पढ़ते हैं, त्यों-त्यों हमारे सामने विभिन्न प्रकार के अभिमत आते हैं, और वे अभिमत परस्पर एक-दूसरे से बहुत कम सादृश्यता रखते हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि लोगों ने संगीत के सम्बन्ध में अपने-अपने वातावरण एवं धर्म एवं देश काल को परिस्थितियों के अनुसार कल्पना की है। उन्होंने ऐतिहासिक तथ्यों का पता लगाने का बहुत कम प्रयास किया है। अगर हम ऐतिहासिक रूप से इस विषय पर विचार करें तो संगीत के जन्म के सम्बन्ध में एक दूसरी ही प्रकार की तस्वीर हमारे सामने प्रस्तुत होती है। वह तस्वीर इस प्रकार है, जब सृष्टि का आविर्भाव हुआ, तो पुरुष और नारी दोनों ही पृथ्वी पर आये, उन्होंने अपने इर्द-गिर्द एक अभिनव वातावरण को देखा। ये उस नवीन वातावरण में मस्त रहने लगे। पुरुष ने नारी को समझने की कोशिश की। क्योंकि उसके मधुर सहयोग से उसके हृदय की दुनिया में एक अपूर्व शान्ति, एक असीम आनन्द का प्रादुर्भाव हुआ और इसी प्रकार नारी ने भी पुरुष को समझने का प्रयास किया। क्योंकि उसे भी पुरुष शक्तिशाली संरक्षण से अद्वितीय आनन्द प्राप्त हो रहा था तथा वह अपने जीवन में एक नवीन कायाकल्प महसूस कर रही था। बस इस प्रकार दोनों परस्पर सहयोग से अपनी जीवन यात्रा की मंजिल की ओर अग्रसर हो रहे थे। जीवन की इस महायात्रा में उन्हें अनेक पड़ाव पार करने पड़े होंगे तथा अनेक कड़वे एवं मीठे अनुभव प्राप्त हुए होंगे। लेकिन ज्यों-ज्यों समय बीतता गया होगा, त्यों-त्यों उन्हें अपने पदार्थों की आवश्यकताएँ महसूस हुई होगी। जैसे पानी पड़ने पर अथवा कड़ी धूप से बचाव के लिए उन्हें किसी संरक्षण आवास की आवश्यकता महसूस हुई होगी। आपत्तिकाल में सहयोग की आवश्यकता महसूस हुई होगी। जीवन के लम्बे सफर में परस्पर सहयोग का बड़ा महत्व है, अतः एवं समाज की भावना का जन्म हुआ होगा। शनैः-शनैः समाज की भावना विकसित हुई होगी और

फिर समाज के निर्मित हो जाने पर अनेक समस्याएँ सामने आई होंगी। जिसको उन्होंने सम्मिलित प्रयास से हल किया होगा और इस प्रश्न की पूर्ति के लिये उन्होंने बहुत कम सोचा विचारा होगा। सम्मिलित प्रतिभाओं के सहयोग से अनेक मूल्यवान् तथ्यों का जन्म हुआ होगा। इन्हीं मूल्यवान् तथ्यों से सभ्यता एवं संस्कृति का आविर्भाव हुआ होगा। सभ्यता के प्रथम चरण में ही संगीत का जन्म हुआ होगा। जब मानव ने अपने जीवन के इर्द-गिर्द सारा वातावरण मधुर देखा होगा। जिधर भी वह प्रकृति की ओर उनका मन जाता रहा होगा उधर ही उन्हें संगीतमय वातावरण प्राप्त हुआ होगा। रंग-बिरंगी चिड़ियों के कलरव में, सरिताओं की लहरों के चढ़ाव-उतार में, समीर के बहने में, वृक्षों की खड़खड़ाहट में, बादलों के गर्जन में, बिजली के कौंधने में, कोयल के कूकों में मतलब यह की हर तरफ उसे मीठे स्वर ही मिलते होंगे। जिससे उसका मन प्रसन्नता के महासागर में डूबा रहता होगा और वह अवश्य कुछ क्षणों के लिए जीवन की पीड़ा एवं कष्टों को भूल जाता होगा। इन मीठे स्वरों को सुनकर उसके हृदय में भी यह भाव जागृत होने पर उन्होंने उसके अनुकरण का प्रयास किया होगा। इस अनुकरण की यात्रा में उन्हें अनेक असफलतायें भी प्राप्त हुई होंगी। अनेक बार उनके मन में ये भावना पैदा हुई होगी क्यों व्यर्थ में इन स्वरों को अपनाया जाय, लेकिन फिर इस भाव पर अनुकरण करने वाले भाव की जीत हुई होगी। शनैः शनैः उन्हें स्वर अनुकरण करने में सफलता प्राप्त हो गई होगी। बस यही सफलता संगीत के जन्म की वास्तविक पृष्ठभूमि है। यह पृष्ठभूमि ठोस है एवं स्वाभाविक भी है। विकास की श्रृंखला इसी प्रकार आगे बढ़ती है, इसी प्रकार प्रत्येक पदार्थ नवीन रूप को धारण करता है और इसी प्रकार सभ्यता और संस्कृति की श्रृंखला अपने केन्द्र बिन्दु पर अहर्निश गति से क्रियाशील रहती है।

संदर्भ

1. नीतिशतकम्, पृ0 24, भर्तृहरि
2. भारतीय संगीत का इतिहास, पृ0 05, ठाकुर जयदेव सिंह
3. लिंगपुराण, पृ0 183, अज्ञात
4. संगीत दर्पण, पृ0 79, दामोदर पण्डित
5. कठोपनिषद, पृ0 13, वेदव्यास
6. कठोपनिषद, पृ0 07, वेदव्यास
7. तंत्र वार्तिक, पृ0 235, अभिनवगुप्त
8. पाणिनिशिक्षा, पृ0 117, पाणिनि
9. पातञ्जलयोगसूत्र, पृ0 196, महर्षिपतञ्जलि
10. ध्वन्यालोक, पृ0 72, आनन्दवर्धनाचार्य

●

समुदाय आधारित पारिस्थितिकी पर्यटन एवं सामुदायिक विकास

डॉ0 राजबहादुर अनुरागी एवं डॉ0 संजय कुमार***

लगभग 20 वर्षों से पारि-पर्यटन विश्व परिदृश्य में बहुत तेजी से उभरता हुआ एक क्षेत्र विशेष के रूप में प्रसिद्ध हो रहा है। ''संसाधनों को विकसित करना, जागरूकता बढ़ाना, स्थानीय लोगों को सहभागी बनाना, लोगों में सशक्तीकरण की क्षमता को विकसित करना, स्थानीय लाभों का मिल-बांटकर उपयोग करना, क्षमता निर्माण को बढ़ाना, रोजगार पैदा करना, विदेशी मुद्रा का अर्जन करना आदि उसके जबरजस्त फायदे हैं।''[1] इसकी उपयोगिता को इसकी परिभाषा से समझा जा सकता है जिसे अन्तर्राष्ट्रीय पारि-पर्यटन सोसायटी (1990) ने दी थी, जो इस प्रकार है-

'प्राकृतिक क्षेत्रों की वह जवाबदार यात्रा जिसमें पर्यावरण का संरक्षण हो तथा स्थानीय लोगों में कल्याण का सतत् विकास हो।' हालांकि यह सोसायटी इस बात पर विश्वास करती है कि इस गतिविधि में शामिल सभी को इसके नियमों का पालन करना चाहिए जिससे इसके निम्नतम नकारात्मक प्रभाव हो सकें, जिससे सांस्कृतिक एवं पर्यावरणीय जागरूकता का निर्माण हो, आगन्तुक तथा आयोजकों पर सकारात्मक अनुभव का विकास हो, आर्थिक लाभों तथा संरक्षण का सीधा वितरण हो, स्थानीय लोगों को इसका सीधा फायदा मिले तथा उनमें सशक्तीकरण की भावना विकसित हो, इसकी संवेदनशीलता को आयोजक तथा आगन्तुक देशों के लोग समझ सकें।

पारिस्थितिकी पर्यटन की आवश्यकता

आज जिस अनियोजित तरीके से पर्यटन का प्रसार हो रहा है उससे यह कहना गलत नहीं होगा कि इसके दीर्घकालीन पर्यावरण एवं पारिस्थितिकी पर नकारात्मक प्रभाव को महसूस किये जाने लगे हैं। इन प्रभावों के मद्देनजर वैकल्पिक पर्यटन की आवश्यकता महसूस की जाने लगी है, जो आगामी पीढ़ी को एक स्वस्थ पर्यटन की सुविधा उपलब्ध करा सके, जिसमें पर्यटन का विकास भी हो और पर्यावरण/पारिस्थितिकी का नुकसान भी न हो। ''बाजारीकरण के इस युग ने पारिस्थितिकी के हर आयाम को छुआ है, जिससे समाज के सामने एक प्रश्न चिन्ह खड़ा हो गया है कि कैसे पर्यावरण को सन्तुलित रखा जा सके तथा पर्यावरण में व्याप्त बाधाओं को दूर किया जा सके।''[2] सरकार, समाजवादी संगठन एवं स्वयंसेवी संस्थाएँ इस दिशा में अनेक शोध उपरान्त इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि पारि-पर्यटन से पर्यावरण, पारिस्थितिकी और समाज कल्याण की भावना को सतत् बनाये रखकर एक सामूहिक सन्तुलित विकास किया जा सकता है।

''प्रारंभिक अवस्था में आम आदमी इको-टूरिज्म के अर्थ को पर्यटन के रूप में समझ सकता है। जबकि यह उसके विपरीत प्रकृति के साथ ताल-मेल स्थापित करता है, साथ ही पारिस्थितिकी प्रणाली के संरक्षण की संभावनाओं की रणनीति खोजने में सार्थक है तथा सतत् विकास को बढ़ावा देता है।''[3] ''पारिस्थितिकी पर्यटन की सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि इसमें उपभोक्तावादी दृष्टिकोण नहीं अपनाया जाता है। यह पर्यावरण के अनुकूल गतिविधि है।''[4]

पारि-पर्यटन के कार्य

पारि-पर्यटन के कार्यों को निम्न प्रकार से समझा जा सकता है-

- प्रकृति क्षेत्रों का संरक्षण,
- जैव विविधता का पोषण,
- मुद्रा का सृजन करना,
- समाज में जागरूकता का प्रसार,
- गुणवत्तापूर्ण पर्यटन को बढ़ावा,
- स्थानीय सहभागिता को बढ़ावा,
- पर्यटकों का प्रकृति के साथ पुनः रिश्ता स्थापित करने का समर्थक,
- स्थानीय संस्कृति की सुरक्षा।

पारिस्थितिकी पर्यटन की विशेषताएँ

पारिस्थितिकी पर्यटन में निम्न विशेषताएँ हैं-

- यह प्रकृति आधारित पर्यावरण का हितैषी है साथ ही सांस्कृतिक तत्वों का भी पोषक है।
- यह पारिस्थितिकी के सतत् विकास का समर्थक है।
- यह पर्यावरणीय जागरूकता की शिक्षा देता है।
- यह स्थानीय समुदाय को सहभागी बनाकर समाज कल्याण की भावना पर जोर देता है।
- ''यह खासकर पर्यटकों के लिए संतुष्टि प्रदान करने वाला अनुभव भेजता है, जिससे यह कहा जा सकता है कि इसका भविष्य उज्ज्वल है।''[5]

---

* सहायक प्राध्यापक, सामान्य एवं व्यावहारिक भूगोल विभाग, डॉ0 हरिसिंह गौर वि0वि0, सागर (म0प्र0)
**सहायक प्राध्यापक, भूगोल विभाग, महिला महाविद्यालय, बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

पारिस्थितिकी पर्यटन के संभावित फायदे

पारिस्थितिकी पर्यटन के मुख्यतः तीन संभावित फायदें/लाभ हैं-

- आर्थिक परिप्रेक्ष्य
- पर्यावरणीय परिप्रेक्ष्य
- सामाजिक-सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य

पहला, इसका महत्वपूर्ण लाभ स्थानीय लोगों को आर्थिक लाभ पहुँचाना इसका पहला काम है। विशेष रूप से स्थानीय लोगों को रोजगार उपलब्ध कराकर। जैसे- भोजन तथा आवास जैसे छोटे-छोटे उद्यमों का स्वयं संचालन करके। इससे स्थानीय अर्थव्यवस्था को आगे बढ़ाने में मदद मिलती है। आधारभूत संरचना को बढ़ावा भी मिलता है। ''इस उद्योग में इतनी अधिक विकास दर है कि इससे प्रेरित होकर इस क्षेत्र के कई विशेषज्ञों ने इसकी आर्थिक उन्नति को देखकर इसे पूर्ण उद्योग का दर्जा प्रदान किया है।''[6]

इस प्रकार सतत् विकास के परिप्रेक्ष्य में, समुदाय आधारित पारि-पर्यटन को विकसित करने हेतु स्थानीय/स्वदेशी समुदाय को अधिक सुविधायुक्त और सक्षम बनाना है। इस पर्यटन के माध्यम से स्थानीय लोगों को कुछ सीखने और निर्णय लेने के अवसर मिलते हैं जिससे वह या तो पारि-पर्यटन विकास के साथ आगे बढ़ना चाहता है या फिर नहीं। वह इसका भी चुनाव कर सकते हैं कि पर्यटकों को किस प्रकार जोड़ा जाय एवं इस सम्बन्ध में निर्णय लेने की क्षमता कैसे विकसित की जाय। यह सच है कि इस व्यवस्था में उद्यम क्षमताओं के सृजन की चुनौतियाँ हैं साथ ही संसाधनों के कौशल को बढ़ाने की भी।

इस प्रकार समुदाय आधारित पारि-पर्यटन स्थानीय समुदाय को उनकी जमीनी हकीकत को याद दिलाता है जैसे-संस्कृति, रीति-रिवाज, आध्यात्मिक गुणों, प्राकृतिक सम्पत्ति, सांस्कृतिक धरोहरों आदि का विकास करना तथा उनको लाभ का विषय बनाकर स्वामित्व हासिल करना। साथ ही समुदाय आधारित पारिस्थितिकी पर्यटन समुदाय के आर्थिक, सामाजिक और पारिस्थितिकीय स्वास्थ्य में सुधार करने के पर्याप्त अवसर प्रदान करता है। ''लोगों के बीच बेहतर समझ को बढ़ावा देना, रोजगार के अवसर प्रदान करना, खासकर दूर-दराज क्षेत्रों को सामाजिक आर्थिक लाभ पहुँचाना तथा भारत की सांस्कृतिक विरासत को संरक्षित एवं प्रोत्साहित करना है।''[7]

सकारात्मक पर्यावरणीय प्रभाव का वातावरण बनाना इसका दूसरा संभावित लाभ है। पर्यावरण की सुरक्षा, उसकी बहाली तथा सतत् विकास पारिस्थितिकी पर्यटन का उत्कृष्ट लाभ है, जिसका सीधा सम्बन्ध आर्थिक क्रियाओं से है। साथ ही चिकित्सा पर्यटन के लिए उपयुक्त वातावरण निर्मित होता है जहाँ लोग स्वस्थ व सुखी रहते हैं।

सामाजिक एवं सांस्कृतिक लाभ इसका तीसरा फायदा है, जिसका सीधा सम्बन्ध आर्थिक उन्नति एवं जीवन स्तर में बेहतरी से है। एक स्वस्थ्य व समृद्ध समाज में सामाजिक एवं सांस्कृतिक तत्वों की विविधता व समरसता की उत्पत्ति होती है। इसके साथ स्थानीय समाज एवं संस्कृति को आगन्तुकों से उसका प्रचार, प्रशंसा, विशेषताएँ, समझ आदि का भी आदान-प्रदान करने का अवसर भी प्रदान करता है।

समुदाय आधारित पारि-पर्यटन

समुदाय आधारित पारि-पर्यटन विकास में समाज की सहभागिता एवं उसके नियंत्रण की अवधारणा को बढ़ावा देना है। इसका मुख्य उद्देश्य आर्थिक प्रगति के साथ-साथ पर्यटकों के प्रति सुखद अनुभव व सुविधायें प्रदान करना है। इस वादे के साथ कि प्राकृतिक तथा सांस्कृतिक संसाधनों का संरक्षण तथा उपयोग दीर्घकालीन तक बनाए रखना है। समुदाय आधारित पारिस्थितिकी पर्यटन इस बात का समर्थन करता है कि समुदाय द्वारा समुदाय के लिए उद्यम तैयार करना जिसमें सबसे पहले पारि-पर्यटन का विकास करना, समुदाय योजना एवं नियम बनाने में सहभागी बनाना, आधारभूत सुविधाओं का विकास करना तथा योजनाओं को क्रियान्वित करके आय बढ़ाने वाले संसाधनों का इस्तेमाल करते हुए पूरी प्रक्रिया को संचालित करना है।

इसलिए सामुदायिक सुरक्षा, सामुदायिक व्यवसाय/उद्यम सृजन एवं सामुदायिक विकास आदि इसके मुख्य घटक हैं।

सामुदाय आधारित पारिस्थितिकी पर्यटन के तत्व

समुदाय आधारित पारिस्थितिकी पर्यटन के तत्वों को निम्न प्रकार से समझा जा सकता है-

1. **सामुदायिक सहभागिता एवं लाभांश-** पारिस्थितिकी पर्यटन के विकास से प्राप्त आमदनी में सामुदायिक हिस्सेदारी संभव है, क्योंकि इसमें प्रत्येक स्तर पर समाज की हिस्सेदारी जरूरी है। प्रत्येक स्तर पर प्रत्येक समुदाय को अपनी कला एवं कौशल का प्रदर्शन करना पड़ता है। पारिस्थितिकी दृष्टि से सम्पन्न क्षेत्र एवं वहाँ पर निवासित समाज इससे अधिकाधिक लाभान्वित हो सकता है।
2. **पर्यावरणीय शिक्षा एवं संरक्षण-** पर्यावरणीय शिक्षा पारिस्थितिकी पर्यावरण का अहम हिस्सा है। यह समाज को उनके यहाँ मौजूद संसाधनों के प्रति जागरूकता में विश्वास करता है। इससे अपने संसाधनों के प्रति सजग समाज अपने संसाधनों की किसी भी प्रकार से क्षति नहीं होने देता है और वह भविष्य के प्रति संचेतक बनकर उसे आगे बढ़ाने का काम करता है।
3. **स्थानीय संस्कृति को प्रोत्साहन-** पर्यटन का यह प्रकार स्थानीय संस्कृति के संरक्षण एवं प्रोत्साहन को बढ़ावा देता

है। इससे विलुप्त हो रही संस्कृति को बचाने में मदद मिलती है तथा उसी संस्कृति को पर्यटन का आधार बनाकर पर्यटन को विकसित किया जा सकता है। स्थानीय शिल्पकला, हस्तकला, व्यंजन, गीत-संगीत, नृत्य, खेलकूद आदि को उचित संरक्षण के साथ बढ़ावा भी मिलता है।

4. **वित्तीय सहभागिता-** समुदाय आधारित पारिस्थितिकी पर्यटन के विकास से प्राप्त आमदनी के अनेक अवसर उपलब्ध होते हैं। हर स्तर पर मिलने वाली आमदनी के स्त्रोत वित्तीय स्थिति को सुधारने में सहायक होते हैं।

5. **पर्यावरण-पर्यटकों के बीच सामंजस्य-** पर्यटन के इस नवीन आयाम की सफलता इसी पर है कि यह पर्यटकों को पर्यावरण के नजदीक लाता है। पर्यावरण के प्रति पर्यटकों का रिश्ता मजबूत करता है। जिससे पर्यटन के सतत् विकास की बुनियाद मजबूत होती है और पर्यावरण को स्थायित्व प्राप्त होता है।

6. **बाजारी प्रतिस्पर्धा का अभाव-** पारिस्थितिकी पर्यटन बाजार आधारित प्रतिस्पर्धा से काफी दूर का क्षेत्र है। इसमें प्राकृतिक एवं सांस्कृतिक पर्यावरण/संसाधनों के संरक्षण की जबरदस्त पकड़ होती है। इसमें प्राकृतिक तत्वों को बाजार की आकर्षक वस्तु बनाकर प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं होती है। साथ ही संस्कृति के मूल तत्वों को विदूषित होने की सशक्त मनाही है। इस प्रकार यह बाजार आधारित प्रतिस्पर्धा में विश्वास नहीं करता है।

समुदाय आधारित पारि-पर्यटन : योजना एवं नीति

एक व्यवस्था या क्षेत्र के रूप में पर्यटन को विकसित करने में अनेक चुनौतियों का सामना करना पड़ता है, जिसमें हितों के साथ ताल-मेल बिठाना, हितग्राहियों के लिए योजना व नीतियाँ निर्धारित करना, विविध स्तरों के बीच समन्वय इत्यादि। पर्यटन योजना एवं निर्णय लेने की प्रक्रिया काफी राजनीतिक हो सकती है, क्योंकि इसमें सरकारी सहभागिता के विविध स्तर, स्थानीय लोगों के हितों की हिस्सेदारी, पर्यटन उद्योग से जुड़े सदस्य एवं स्थानीय निजी संस्थाएँ आदि शामिल है। अर्थात् निर्णय लेने की क्षमता ऊपर से नीचे तक एक जटिल प्रक्रिया है। समुदाय आधारित पारि-पर्यटन नियोजन में समुदाय आधारित हित सर्वोपरि होना चाहिए। यहाँ कुछ योजनाएँ एवं नीति इस प्रकार हैं-

1. **पर्यटन एवं पारि-पर्यटन योजना में भागीदारी-** एक समुदाय-उन्मुख पर्यटन रणनीति में चार प्रमुख विचार शामिल किये जा सकते हैं- पर्यावरण एवं पहुँच, व्यवसाय एवं आर्थिक लाभ, सामाजिक एवं सांस्कृतिक सुरक्षा एवं प्रबन्धन।

"किसी स्थान का पारिस्थितिकी पर्यटन दो तत्वों जैविक एवं अजैविक पर निर्भर करता है। जैविक (आगन्तुक), अजैविक (पर्यटन स्थल, पर्यावरण एवं सुविधाएँ) के बीच परस्पर ताल-मेल बिठाना ही पारिस्थितिकी को विकसित करना है, क्योंकि दोनों का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध पारिस्थितिकी तंत्र को विकसित करने में सहायक होता है।"[8]

1. संस्कृति- सांस्कृतिक मूल्य
2. कल्याण- आर्थिक, शारीरिक, मनोवैज्ञानिक
3. ज्ञान- पर्यावरण एवं सांस्कृतिक

अतः इन चारों से समाज में मात्रात्मक की जगह गुणात्मक परिवर्तन ज्यादा संभव है।

जैसा कि तर्क है कि इन सामुदायिक विकास के लिए बनाये जाने वाली इन परियोजनाओं में आजीविका की बजाय जीवन शैली, तौर-तरीकों पर ध्यान केन्द्रित करना चाहिए। स्थानीय लोगों के पास यह विकल्प होना चाहिए कि वह कौन-सा विकास सर्वोपरि मानते हैं। वह अपने स्थानीय मूल्यों, विश्वासों, परम्पराओं और रीति-रिवाजों से पर्यटकों को आकर्षित कर सकते हैं। समुदाय आधारित नीतियाँ या नियोजन बनाते समय निम्न बातों को प्राथमिकता में होना चाहिए-

- सामुदायिक भागीदारी का वैध व उचित होना।
- स्थानीय निर्णय बहुमत के आधार पर निर्धारित होना चाहिए।
- योजना की रणनीति, उसका क्रियान्वयन, मूल्यांकन, निगरानी आदि की रणनीति बनाना।
- सामुदायिक जागरूकता, सहायता, सहभागिता आदि की जोरदार सिफारिशें।
- स्थानीय वन्य जीव एवं संसाधनों का बेहतर प्रबन्धन।

2. **सामुदायिक तत्परता-** सामुदायिक विकास एवं कल्याण के लिए सामुदायिक तत्परता का होना जरूरी है। इसमें स्थानीय निवासी सार्थक रूप से भाग लेकर इसको सफल बनाएंगे। समाज में आज भी तीन वर्ग हैं- उच्च, मध्यम व निम्न। इन तीनों का सामुदायिक तत्परता से ही स्थानीय सम्पत्ति को संसाधन के रूप में तैयार किया जा सकता है तथा उसका संरक्षण किया जा सकता है। पर्यावरण एवं परिस्थिकी सुरक्षा एवं पर्यटन को बढ़ावा देना सामुदायिक प्रतिनिधित्व जरूरी है।

3. **सामुदायिक दृष्टिकोण का विकास करना-** पारि-पर्यटन के माध्यम से समुदाय आधारित विकास की सबसे बड़ी चुनौती कई हितग्राहियों का एक साथ काम करना है, क्योंकि यह अपने हितों व मूल्यों के साथ जुड़े व जकड़े रहते हैं। इस हेतु स्थायी पर्यटन विकास हेतु एक पुख्ता दृष्टिकोण का होना जरूरी हो जो सामुदायिक विकास के साथ ही स्थानीय

पर्यटन गतिविधियों को भी अग्रसर करे। इस हेतु सामुदायिक राउंड-टेबल, लिविंग-रूप, परिचर्चा, कैम्प-फायर-चर्चा तथा सामुदायिक समारोहों में सामुदायिक निवासियों के साथ संयुक्त संवाद के माध्यम से निर्णय लिया जा सकता है। जिससे स्थानीय संगठन व समितियाँ बनायी जा सकती है। ये संगठन/समितियाँ भविष्य को दृष्टिगत रखते हुए योजनाएँ तैयार करें व उनके क्रियान्वयन में योगदान करे।

4. **रणनीति बनाना, क्रियान्वयन करना एवं निगरानी रखना-** समुदाय आधारित पारि-पर्यटन का विकास करने के लिए आवश्यक है कि पर्यटन विकास के निर्धारित लक्ष्यों को लागू करने पर विचार किया जाय। इस हेतु आर्थिक, मनोवैज्ञानिक, सामाजिक एवं राजनीतिक सशक्तीकरण जरूरी है। इस हेतु समुदाय का उन्मुख होना, नीति निर्धारित करना, समस्याओं का एकत्रीकरण करना, नीतियों का क्रियान्वयन करना एवं उसकी निगरानी करना तथा मूल्यांकन करना, जिससे आर्थिक विकास और गरीबी में कमी के उपाय खोजे जा सके। रणनीति लक्ष्य आधारित होना चाहिए तथा उसके सुनियोजित क्रियान्वयन के लिए निगरानी समिति का होना जरूरी है जो समय-समय पर इनका मूल्यांकन करे।

पारिस्थितिकी पर्यटन एवं सतत् सामुदायिक विकास

"पारिस्थितिकी पर्यटन न केवल मानव समाज की तत्कालीन आवश्यकताओं की पूर्ति करे वरन् स्थायी तौर पर भविष्य के लिए भी निर्बाध विकास का आधार प्रस्तुत करे।"[9] पर्यटन विद्वानों का यह मानना है कि समुदाय के अन्तर्गत स्थानीय लोग, रहवासी, मूल निवासी, स्वदेशी लोग, मेजबान आदि आते हैं, जो आमतौर पर एक-दूसरे से भिन्न विशेषताओं वाली प्रकृति के होते हैं तथा एक भौगोलिक क्षेत्र में निवास करते हुए भौगोलिक वातावरण को समझा करते हैं एवं स्थानीय प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग करते हैं। विद्यमान संसाधनों का उपयोग सामाजिक सामंजस्य, सत्ता की ताकत तथा सांस्कृतिक विकास के आधार पर निर्धारित होता है। स्थानीय स्तर पर नीतियों का निर्धारण एवं क्रियान्वयन बहुमत के आधार पर लिया जाता है।

पारिस्थितिकी पर्यटन का विचार अपने आप में एक पर्यावरण के सतत् विकास की अवधारणा है और आज इसको अपनाने में सरकारों, गैर-सरकारी संगठनों, शिक्षाविदों आदि इसके सतत् विकास के महत्व को पहचानते हुए दीर्घकालीन आयाम के रूप में मान लिया है। 'रियो अर्थ समिति' (1992) में भी कहा गया था कि इसमें पर्यावरण की रक्षा करने व इसकी क्षमता बढ़ाने की जबरदस्त ताकत है। "इको पर्यटन का उद्देश्य सिर्फ पर्यटन स्थल का मजा लेने से नहीं है बल्कि इसका मुख्य उद्देश्य पर्यटकों को संरक्षण में महत्त्व को बताना है। क्योंकि सतत् विकास हेतु संरक्षण ही इको-पर्यटन का मूल मंत्र है।"[10]

पारि-पर्यटन में तीन तत्वों के परस्पर सन्तुलन की धारणा निहित है- सामाजिक, आर्थिक एवं पर्यावरणीय। इन तीनों तत्वों के सम्पोषित विकास की बात पारि-पर्यटन में निहित है। साथ ही यह स्थानीय संसाधनों के स्वामित्व, पोषण एवं उत्तरोत्तर विकास की बात पर जोर देता है। इसके अलावा समुदाय का भविष्य सुनिश्चित करने व आगामी पीढ़ी के सामूहिक विकास को भी सुरक्षित रखता है।

पारिस्थितिकी पर्यटन सामूहिक भागीदारी एवं टीम वर्क को भी प्रोत्साहित करता है। कुछ विशेषज्ञ तो इकोटूरिज्म और सतत सामुदायिक विकास के दर्शन को परस्पर एक-दूसरे से जोड़कर देखते हैं, क्योंकि इकोटूरिज्म के साहित्य में स्थिरता की चिन्ता का उल्लेख हर स्तर पर किया गया है। यही कारण है कि विकासशील देश इसको एक उपकरण के रूप में अपना रहे हैं।

अध्ययन का उद्देश्य

1. समुदाय आधारित पर्यटन की संभावनाओं की पहचान करना।
2. समुदाय आधारित पर्यटन के माध्यम से स्थानीय समाज में जागरूकता के स्तर का पता लगाना।
3. समुदाय आधारित पर्यटन के प्रति सहभागिता का परीक्षण करना।
4. समुदाय आधारित पर्यटन को सामाजिक विचारधारा के विकास का यंत्र बनाना।
5. स्थानीय समुदाय की सहभागिता एवं उनके सशक्तीकरण को बढ़ावा देना।
6. क्षमता निर्माण-योजना के तहत प्राप्त फायदों को यंत्रीकरण के माध्यम से स्थानीय समुदाय में साझा करना।

अध्ययन की सीमाएँ

आँकड़ों का संग्रह करना सबसे बड़ी चुनौती होगी। विविध मौसम में इनकी जानकारी को एकत्रित करना एक कठिन कार्य होगा। वित्तीय सहायता इसका दूसरा पहलू होगा एवं तीसरा स्थानीय स्तर तक पहुँच को सुगम करना।

अध्ययन का महत्व

पर्यटन प्रेमियों के लिए इस अध्ययन का बड़ा महत्व होगा, क्योंकि इस अध्ययन से समुदाय को अपनी सीमाओं की जानकारी, पर्यटन में विद्यमान सम्भावनाओं, हितों का साझाकरण, स्थानीय सशक्तीकरण और लाभों का मिल बांटकर पहचान करने का अवसर देता है इसके अलावा गैर-सरकारी संगठनों की तो अपार संभावनाएँ मौजूद है। जिसमें इस पर्यटन की क्षमताओं को पहचानना एवं उनका निरंतर विकास करना है। "पर्यटन निर्धारकों, नीति-निर्माताओं, निर्णय-निर्माताओं, पर्यावरण संरक्षकों आदि को महत्वपूर्ण योगदान देता है।"[11] इसके अलावा यह वैकल्पिक आजीविका का महत्वपूर्ण स्रोत है। इस प्रकार का पर्यटन हितग्राहियों के बीच समझ और

सहयोग को बढ़ावा देता है। जिससे स्थानीय लोगों की पारि-पर्यटन के प्रति अधिक-से-अधिक सहभागिता हो सके।

यह आर्थिक विविधता लाने और बढ़ाने में मददगार है। यह स्थानीय उत्पादों की आपूर्ति से स्थानीय समुदायों को लाभ एवं इस गतिविधि में शामिल होने के अवसर प्रदान करता है। स्थानीय कारीगरी एवं उत्पाद को उचित स्थान प्रदान कर स्थानीय समृद्धता को बढ़ावा देने की क्षमता रखता है।

निष्कर्ष एवं सुझाव

समुदाय आधारित पारिस्थितिकी पर्यटन, पर्यावरण पर्यटन के बीच रोमांचकारी रूप से विकसित हुआ है। यह पर्यावरणीय मुद्दों के समाधान के साथ-साथ सामाजिक विकास एवं आर्थिक आमदनी का मिल बाँटकर उपयोग करने पर बल देता है। यह समुदाय केन्द्रित तथा प्राकृतिक संसाधन आधारित पर्यटन है। इस पर्यटन के माध्यम से पर्यावरण की सुरक्षा, संरक्षण एवं संवर्धन करके स्थानीय संसाधनों की सुरक्षा, प्राकृतिक तत्वों का पोषण एवं जैव-विविधता को सुरक्षित किया जा सकता है। ऐसा करने से निर्भर समुदाय में पर्यावरण सुरक्षा के प्रति शिक्षा एवं उससे रोजगार सृजन की संभावनाओं को प्रोत्साहित किया जा सकता है। पर्यटकों को समुदाय के नजदीक लाकर लोगों से लगाव एवं संस्कृति के प्रति समझ को प्रबल किया जा सकता है।

समुदाय आधारित पारिस्थितिकी पर्यटन की सफलता बिना सामुदायिक भागीदारी के संभव नहीं है। इसके विकास के लिए समाज के हर संगठन को आगे आना पड़ेगा। इससे विकास की परियोजनाओं को बनाना, सरकार की सक्रिय सहभागिता, गैर-सरकारी संगठनों की भूमिका, पर्यावरणीय समुदायों एवं संगठनों एवं एजेंसियों आदि का स्थानीय लोगों के साथ मिलकर काम करने की जरूरत है। ऐसा करने से यह पर्यटन रोजगार आधारित, वित्तीय वितरक, प्राकृतिक एवं सांस्कृतिक तत्वों का संरक्षक बन सकता है। पारि-पर्यटन के विकास से सामुदायिक विकास के साथ-साथ पर्यटन एवं पर्यावरण दोनों की बहाली संभव है।

संदर्भ सूची

1. अनुरागी, राजबहादुर (2007), 'बघेलखण्ड में पारि-पर्यटन', अप्रकाशित शोध प्रबंध, अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा (म0प्र0), पृ0 64
2. वही, पृ0 14
3. जोशी अतुल, कुमार अमित, जोशी महिमा (2010), 'भारत में आधुनिक पर्यटन', रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर, पृ0 85
4. अनुरागी, राजबहादुर (2007), 'बघेलखण्ड में पारि-पर्यटन', अप्रकाशित शोध प्रबंध, अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा (म0प्र0), पृ0 61
5. वही, पृ0 63
6. वही, पृ0 320
7. वही, पृ0 318
8. वही, पृ0 82
9. जोशी, अतुल, कुमार अमित एवं जोशी महिमा (2010), 'भारत में आधुनिक पर्यटन', रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर, पृ0 113
10. स्थापक, मधु (2016), 'पर्यावरण एवं पर्यटन', कृष्णा कम्प्यूटर, सागर (म0प्र0), पृ0 383
11. खत्री, हरीश कुमार (2010), 'पर्यटन भूगोल', कैलाश पुस्तक सदन, भोपाल, पृ0 267

सहायक ग्रन्थ सूची

- कामरा, के0 किसन एवं चंद मोहिन्दर (2015), 'बेसिक ऑफ टूरिज्म-थ्योरी, ऑपरेशन एण्ड प्रेक्टिस', कनिष्का पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली
- स्टान्जा अमेंडा ली, 'बिकाज इट अवटर्स : कम्यूनिटी बेस्ड इको-टूरिज्म इन द पेरुवियन अमेजन', वाल्यूम 61-08ए ऑफ डिजरटेशन आब्सट्रेक्ट्स इन्टरनेशनल।
- कुरुक्षेत्र, वाल्यूम 66, नं0 2, दिसम्बर 2017।
- डब्लू0डब्लू0डब्लू0.इको टूरिज्म.कॉम।
- डब्लू0डब्लू0डब्लू0.कम्यूनिटी बेस्ड इकोटूरिज्म.कॉम

●

भरत कृत 'नाट्यशास्त्र' का अष्टाविंशतितमोध्यायः एक अध्ययन

शुचि उपाध्याय एवं डॉ0 मधुमिता भट्टाचार्या***

संगीत कला भारतीय संस्कृति की आत्मा है। इसका इतिहास अन्य विद्याओं अथवा कलाओं के इतिहास की अपेक्षा कहीं अधिक अगम्य होता है क्योंकि संगीत अपने किसी भी अवशेष को काल के वक्ष पर नहीं छोड़ जाता। संगीत का वर्णन, उसके लक्ष्य-लक्षण का विचार-विमर्श अथवा उसका प्रयोगात्मक स्वरूप-ये सभी उपलब्ध हो सकते हैं किन्तु संगीत का जो श्रव्य रूप है वह क्षणजीवी ही होता है। चित्रकला, मूर्तिकला, स्थापत्यकला, साहित्य आदि का प्रत्यक्ष रूप सुरक्षित रहता है। नृत्यकला को भी मूर्ति तथा चित्रों के माध्यम से उसे अंकित कर सुरक्षित रखा जा सकता है परन्तु गेय विधा का अंकन करना अत्यन्त कठिन है क्योंकि उस श्रव्य का प्रत्यक्ष रूप सुरक्षित नहीं रखा जा सकता है। भारतीय संगीत के इतिहास का अध्ययन भी बीहड़ है क्योंकि इसके कुछ ही अंश स्वरलिपि में अंकित हैं। इसके कालक्रम में दीर्घ काल से अनेकानेक धाराओं का प्रवाह होता आ रहा है। इसलिए इसके ऐतिहासिक अध्ययन का मुख्य आधार **'लक्षण'**-ग्रन्थ बन जाते हैं।

भारतीय संगीत का इतिहास वेदों जितना ही प्राचीन है। वैदिक काल में संगीत नियमित तथा सुसम्बद्ध था। चतुर्वेदों अर्थात् ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद तथा सामवेद में संगीत की परम्परा अक्षुण्ण बनी रही। इस काल में जिन विद्याओं अथवा कलाओं की शिक्षा प्रदान की जाती थी वह सब मौखिक रूप में होती थी। प्रत्येक गुरू इनमें निहित समस्त विद्या तथा कलाओं की शिक्षा अपने शिष्यों को मौखिक परम्परा के रूप में प्रदान करते थे। यह परंपरा अक्षुण्ण रूप से एक दूसरे पर हस्तांतरित होती चली गई। प्रारंभ में वेद एक ही था जिसे सिर्फ भगवान तथा ऋषि मुनि ही याद रख सकते थे परंतु जनमानस को वेद को अपनी स्मृति में याद रखना अत्यंत कठिन था अतः इसे लिपिबद्ध करना आवश्यक हो गया, तब इसे **''ऋषि कृष्ण द्वैपायन जी''** ने ऋषियों से आज्ञा लेकर वेद को चार भागों में विभाजित किया। वेदों के चार भागों में विभाजन के कारण ही **''ऋषि कृष्ण द्वैपायन जी''** को **'वेदव्यास'** के नाम से जाना जाता है। **'वेदव्यास'** का अर्थ है **'वेदों का विभाजन करने वाला'।** इन चतुर्वेदों में समस्त विद्याओं के साथ-साथ सभी कलाओं का भी वृहद् रूप से वर्णन प्राप्त है। सामवेद तो पूर्णतयः संगीतमय है। कालान्तर में इन्हीं वेदों को आधार मानकर पंचमवेद **'नाट्यशास्त्र'** की रचना हुई। भगवान ब्रह्मा जी ने चतुर्वेदों का स्मरण करते हुए यह संकल्प किया कि मैं **'नाट्य'** नामक पंचमवेद की इतिहास सहित रचना करता हूँ। यह पंचम वेद धर्म तथा अर्थ की प्राप्ति कराने वाला, यश प्रदान कराने वाला, उपदेश तथा संग्रह से युक्त, भावी जगत् के लिए पथ-प्रदर्शक, सम्पूर्ण शास्त्रों के अर्थों से परिपूर्ण तथा संपूर्ण शिल्पों को प्रदर्शित करने वाला होगा। इस प्रकार के संकल्प के साथ भगवान ब्रह्मा जी ने चारों वेदों के अंगों से उत्पन्न होने वाले **'नाट्यवेद'** की रचना की। यथा-

जग्राह पाठ्यमृग्वेदात् समाभ्यो गीतमेव च।
यजुर्वेदादभिनयान् रसानाथर्वणादपि।।[1]

(नाट्यशास्त्रम्, श्लोक-17)

अर्थात् तब **'नाट्य'** के प्रथम अंग **'पाठ्य'** को **'ऋग्वेद'** से, द्वितीय अंग **'गीत'** को **'सामवेद'** से, तृतीय अंग **'अभिनय'** को **'यजुर्वेद'** से तथा चतुर्थ अंग **'रसों'** को **'अथर्ववेद'** से लिया गया है।

इस प्रकार ब्रह्मा जी के द्वारा **'नाट्यवेद'** की उत्पत्ति के उपरान्त उन्होंने देवराज इन्द्र से कहा- मेरे द्वारा **नाट्यकथा** का निर्माण कर दिया गया है अब आप जो देवगण इस अभिनय के प्रयोगार्थ के लिए उपयुक्त हों, जो विदग्ध, प्रौढ़, चतुर तथा परिश्रमी हों, उन्हीं को इस **'नाट्यवेद'** की शिक्षा प्रदान कीजिए। देवराज इन्द्र ने कहा -

ग्रहणे धारणे ज्ञाने प्रयोगे चास्य सत्तम।
अशक्ता भगवन् देवा अयोग्या नाट्यकर्मणी।।[2]

(नाट्यशास्त्रम्, श्लोक-22)

अर्थात् इस नाट्य प्रयोग को ग्रहण करने, धारण करने, जान लेने तथा प्रयोग करने की देवताओं में सामर्थ्य नहीं, इसलिए जो वेद के गुह्य रहस्यों के ज्ञाता तथा उत्तम व्रतों का पालन करने वाले ऋषिगण हैं, वे ही इस नाट्यवेद ग्रहण, धारण तथा प्रयोग करने की सामर्थ्य रखते हैं। तब नाट्य का ज्ञान तथा उपदेश भरत को ब्रह्मा जी से प्राप्त हुआ है और महर्षि भरत ने अपने शत पुत्रों को नाट्यवेद की शिक्षा से परिपूर्ण कर उसे लोक में प्रतिष्ठित करने तथा उसका प्रचार-प्रसार करने का आदेश दिया। यह **'नाट्यवेद'** वर्तमान समय में **'नाट्यशास्त्र'** के नाम से विख्यात है। इस **'नाट्यशास्त्र'** को **'योगशास्त्र'** तथा **'मोक्षशास्त्र'** भी कहा जाता है।

---

* शोध छात्रा, (यू0जी0सी0/जे0आर0एफ0), गायन विभाग, संगीत एवं मंच कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।
* * असिस्टेंट प्रोफेसर, गायन विभाग, संगीत एवं कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

'नाट्यशास्त्र' के प्रणेता तथा प्रयोक्ता **महर्षि भरत** का काल लगभग **500 ईसा** पूर्व का माना गया है। **प्रो0 स्वतन्त्र शर्मा** ने अपनी पुस्तक **'भारतीय संगीत इतिहास : एक ऐतिहासिक विश्लेषण'** में **भरत** कृत **'नाट्यशास्त्र'** की रचना का काल **नाग युग** अर्थात् **तीसरी शताब्दी ई0 पू0** का माना है।[3] नाट्यशास्त्र ग्रंथ के रचनाकार भरत के नाम पर विद्वानों में मतमतान्तर है क्योंकि राजा दुष्यंत के पुत्र का नाम भरत था। प्रभु श्रीरामचन्द्र जी के अनुज का नाम भरत था। भरत शब्द का अर्थ कहीं-कहीं नट के रूप में भी प्रयुक्त हुआ है। राजा दुष्यंत के पुत्र तथा प्रभु श्रीरामचन्द्र जी के अनुज 'भरत' को नाट्यशास्त्र ग्रंथ का रचयिता कोई भी विद्वान् स्वीकार नहीं करते किन्तु, **'भरत'** शब्द **'नट'** के अर्थ में प्रयुक्त होता रहा है। **अमरकोश ग्रंथ** में **'भरत'** को **'नट'** का पर्यायवाची शब्द माना है। यथा :-

शिलालिनस्तु शैलूषा जायाजीवाः कृशाश्विनः।

भरता इत्यपि नटाः चारणास्तु कुशीलवाः।।[4]

(द्वितीय काण्ड, 12)

अर्थात् शिलाली, शैलूष, जायाजीव, कृशाश्वी, भरत, नट, चारण और कुशीलव थोड़े से अन्तर के साथ नट के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

हेमचन्द्राचार्य ने भी **'अभिधानचिन्तामणि'** में **'भरत'** शब्द को **'नट'** के अर्थ में ही प्रयुक्त किया है-

शैलूषो भरतः सर्वकेशी भरतपुत्रकः।[5]

धर्मीपुत्रो रंगजाया-जीवो रंगावतारकः

नटः कृशाश्वी शैलाली, चारणस्तु कुशीलवः।।[6]

(द्वितीय काण्ड, 252-53)

शैलूष, भरत, सर्वकेशी, भरतपुत्रक, धर्मीपुत्र, रंगजीव, जायाजीव, रंगावतारक, नट, कृशाश्वी, शैलाली, चारण, कुशीलव- इन सबके कार्य मिलते-जुलते थे।

कुछ विद्वानों के अनुसार, भरत को नट की संज्ञा इसलिए कहा गया है क्योंकि नट को संगीत में निष्णात् होना आवश्यक था। संगीत के तीन आवश्यक अंग हैं - भाव, राग और ताल। यदि भरत शब्द के तीनों अक्षर को पृथक् करें तो **'भ'** से **'भाव'**, **'र'** से **'राग'** तथा **'त'** से **'ताल'** अर्थ होता है और इन्हीं का संक्षिप्त रूप **'भरत'** है। अर्थात् जो **भाव, राग** तथा **ताल** का प्रयोग सुसम्बद्ध रीति से करे वह **'भरत'** है। **14वीं शती** में **श्रृंगारशेखर** ने अपने ग्रन्थ **'अभिनयभूषण'** में भी लिखा है-

भकारो भावनैर्युक्तो रेफो रागेण मिश्रितः।

तकारस्ताल इत्याहुर्भरतार्थविचक्षणाः।।[7]

'भरतकल्पलतामंजरी' यह 1800 ई0 के लगभग बनी थी, इसमें भी **'भरत'** शब्द का इसी आशय में श्लोक द्वारा वर्णन किया गया है-

भकारो भावसंयुक्तो रेफो रागेण संश्रितः।

तकारस्ताल इत्याहुर्भरतार्थविचक्षणाः।।[8]

अर्थात् **भरत** शब्द के अर्थ को जानने वाले कहते हैं कि **'भ'** का अर्थ- **'भाव-संयुक्त'**, **'र'** का अर्थ- **'रागसंश्रित'** तथा **'त'** का अर्थ- **'ताल'**। जो भाव, राग तथा ताल इन तीनों के संयुक्त अध्येयता हैं वह **'भरत'** है।

इन सभी उद्धरणों से यह ज्ञात होता है कि भरत एक अक्षरमुष्टिरूपी शब्द है, जो न केवल नट के रूप में ही प्रयुक्त हुआ है अपितु यह एक **नाट्य** के ज्ञाता के अर्थ के रूप में भी एक **जातिवाचक संज्ञा** के रूप में भी विद्यमान था। केवल नट को ही भरत कहते हैं ऐसा नहीं था **'नाट्यशास्त्र'** से यह ज्ञात होता है कि नाटक से संबंधित सभी उपयोगी संज्ञा तथा सामग्री का प्रबंधन करने वालों को भी **'भरत'** के नाम से जाना जाता था, इसलिए भरत काल के सभी अभिनयकर्ता **'भरत'**, **'नट'** अथवा **'नाट्यप्रयोक्ता'** कहलाते थे।

'नाट्यशास्त्र' ग्रंथ का विषय **'नाट्य'** है, **'संगीत'** नहीं, तथापि भरत ने अपने नाटकों में **'संगीत'** को प्रमुख स्थान दिया है इसी कारण **'नाट्यशास्त्र'** में संगीत विषय पर विशद् तथा बृहद् चर्चा की है। भरत मुनि ने **'नाट्यशास्त्र'** में लिखा है कि कोई ऐसा ज्ञान, शिल्प, कला, विद्या, योग अथवा कर्म नहीं है जो नाट्य के अन्तर्गत न परिलक्षित होता हो-

न तज्ज्ञानं न तच्छिल्पं न सा विद्या न सा कला।

नासौ योगो न तत्कर्म नाट्येस्मिन् यन्न दृश्यते।।[9]

(नाट्यशास्त्रम्, श्लोक-117)

प्रस्तुत नाट्य में सभी शास्त्रों, सभी प्रकार के शिल्पों तथा विविध प्रकार के कार्यों का सन्निवेश है -

सर्वशास्त्राणि शिल्पानी कर्माणि विविधानि च।

अस्मिन्नाट्ये समेतानि च तस्मादेतन्मया कृतम्।।[10]

(नाट्यशास्त्रम्, श्लोक-118)

अतः हम यह कह सकते हैं कि भरत मुनि ने नाट्य के प्रयोग के लिए जो उपयुक्त संगीत था उस पर विस्तारपूर्वक विचार किया है तथा संगीत के मूलभूत सिद्धान्तों पर भी पूर्ण प्रकाश डाला है। उस काल में प्रचलित ग्रामराग, जातिगायन, जाति के दशविध लक्षण, ग्राम-मूर्च्छना, वर्ण, अलंकार तथा उनके विभेद, रस इत्यादि विषयों पर वृहद् रूप से प्रकाश डाला है। इनके अतिरिक्त इस ग्रन्थ

में मार्गीय संगीत पर भी पूर्ण चर्चा की है। प्राचीन काल के ग्रन्थों में **'नाट्यशास्त्र'** ग्रन्थ के दो संस्करणों का उल्लेख प्राप्त है :- प्रथम **12 हज़ार श्लोक** का जिसे **'द्वादशसाहस्त्री'** तथा द्वितीय **6 हज़ार श्लोक** का जिसे **'षट्साहस्त्री'** कहा जाता है। **'द्वादशसाहस्त्री'** को **'वृहत् पाठ'** तथा **'षट्साहस्त्री'** को **'लघु पाठ'** कहा जाता है। **'द्वादशसाहस्त्री'** आज अनुपलब्ध है तथा **'षट्साहस्त्री'** वर्तमान में **'नाट्यशास्त्र'** के रूप में उपलब्ध है। **आचार्य अभिनवगुप्त** ने **'अभिनवभारती'** नामक ग्रन्थ की रचना की है जो **'नाट्यशास्त्र'** की टीका है जो **'षट्साहस्त्री'** श्लोक पर आधारित है। यह ग्रन्थ चार भागों में विभक्त है जिसके अनन्तर **छत्तीस अध्याय** हैं। प्रथम भाग में **प्रथम अध्याय** से लेकर **सप्तम अध्याय** तक, द्वितीय भाग में **अष्टम् अध्याय** से लेकर **एकोनविंश अध्याय** तक, तृतीय भाग में **विंशोध्याय** से लेकर **सप्तविंश अध्याय** तक तथा चतुर्थ भाग में **अष्टाविंश अध्याय** से लेकर **षट्त्रिंश अध्याय** तक है। इन छत्तीसों अध्यायों में नाट्य से संबंधित सभी विषयों का सूक्ष्मातिसूक्ष्म रूप से वर्णन किया है, किन्तु **28वें अध्याय** से लेकर **33वें अध्याय** तक, इन छः अध्यायों में संगीत के सभी पक्षों का विस्तृत उल्लेख है। यह ग्रन्थ मुख्य रूप से चार प्रकाशनों से प्रकाशित होती है- (1) गायकवाड़ ओरिएन्टल सीरिज, बड़ौदा द्वारा प्रकाशित। (2) निर्णय सागर प्रेस, बम्बई। (3) चौखम्भा संस्कृत सीरिज, विद्या विलास प्रेस, वाराणसी। (4) काशी हिन्दू विश्वविद्यालय प्रेस, वाराणसी द्वारा प्रकाशित होती है।

'नाट्यशास्त्र' का अष्टाविंशतितमोध्यायः

'नाट्यशास्त्र' का **अष्टाविंशतितमोध्यायः** अर्थात् **अट्ठाइसवें अध्याय** का आरंभ **'आतोद्य'** से होता है। **'आतोद्य'** शब्द का अर्थ वाद्यों के चतुर्विध प्रकार से है। वाद्य के चार प्रकार हैं - तत्, अवनद्ध, घन तथा सुषिर इन्हीं को भरत मुनि ने अपने ग्रन्थ नाट्यशास्त्र में **'आतोद्य'** की संज्ञा दी है। प्रस्तुत अध्याय में इन वाद्य वर्गीकरण पर विस्तृत चर्चा की है इसलिए इस अध्याय को **'आतोद्यविधान'** के नाम से भी जाना जाता है। इसमें आतोद्य के चार प्रकार के वर्गीकरण का विवरण निम्न श्लोक द्वारा दिया है-

आतोद्यविधिमिदानीं व्याख्यास्यामः। तद् यथा-[11]

ततंचैववावनद्धंच घनं सुषिरमेव च।

चतुर्विधन्तु विज्ञेयमातोद्यं लक्षणान्विम् ॥[12]

(नाट्यशास्त्रम्, चतुर्थ भाग, श्लोक-1)

अर्थात् अब हम **आतोद्य-विधि** का विवरण दे रहें हैं। आतोद्य के चार प्रकार हैं - तत्, अवनद्ध, घन तथा सुषिर। आगे इन आतोद्य के स्वरूप को निम्न श्लोक द्वारा बताया है कि -

ततं तन्त्रीगतं ज्ञेयमवनद्धन्तु पौष्करम्।

घनं तालस्तु विज्ञेयः सुषिरो वंश उच्यते॥[13]

(नाट्यशास्त्रम्, चतुर्थ भाग, श्लोक-2)

वीणा आदि **'तत'**, पीटे जाने वाले पुष्कर अर्थात् मृदंग आदि **'अवनद्ध'**, कांसी आदि धातुओं के बने हुए तालार्थ वाद्य **'घन'** तथा फूंककर हवा भरते हुए बजने वाले अर्थात् बांसुरी आदि वाद्य **'सुषिर'** के अन्तर्गत आते हैं। इन चतुर्विध वाद्यों में से **'तत'** तथा **'सुषिर'** का उपयोग **'स्वर'** के लिए तथा **'अवनद्ध'** तथा **'घन'** का उपयोग **'ताल'** के लिए था। स्वर तथा ताल दोनों की आवश्यकता संगति में होती है इसलिए आतोद्य का विभागपूर्वक विवरण दिया है। आतोद्य का नाट्य में प्रयोग तीन प्रकार से करते हैं -

प्रयोगस्त्रिविधो ह्येषां विज्ञेयो नाटकाश्रयः।

ततंचैववावनाद्धंच तथा नाट्यकृतश्च यः॥[14]

(नाट्यशास्त्रम्, चतुर्थ भाग, श्लोक-3)

इन्हीं आतोद्य के अन्तर्गत ही **'कुतप'** की भी चर्चा की है। नाट्य के प्रयोगों में यह कुतप अनेक वाद्ययन्त्रों का आश्रय लेने वाला तथा विविध स्थितियों वाले उत्तम, मध्यम तथा अधम प्रकृति के पात्रों से सम्बद्ध है। इनके अतिरिक्त गान्धर्व का स्वरूप तथा इनके उत्पत्ति के स्थान, स्वरों के अधिष्ठान् अर्थात् आश्रय दो हैं – एक **'शरीर'** तथा दूसरा **'वीणा'** वाद्य है। इन दोनों आश्रय में होने वाले स्वरों की विधि का भी वर्णन किया है। यथा –

स्वरा ग्रामौ मूर्च्छनाश्च तना स्थानानि वृत्तयः।

स्वरसाधारणे वर्णा ह्यलंकारास्थातवः॥[15]

श्रुतयो जातयश्चैव विधिस्वरसमाश्रयाः।

दारव्यां समवायोयं वीणायां समुदाहृत॥[16]

अर्थात् **दारवी वीणा के स्वर-समुदाय में** - स्वरों की आश्रित विधि के अनुसार रहने वाले स्वर-समुदाय- स्वर, ग्राम, मूर्च्छना, तान, स्थान, वृत्ति, स्वर-साधारण, वर्ण, अलंकार, धातु, श्रुति तथा जाति को समझाया और **शरीरस्थ स्वरों के समुदाय में**– स्वर, ग्राम, मूर्च्छना, स्थान, स्वर तथा स्थान-साधारण, अष्टादश जातियाँ, चार वर्ण तथा अलंकार का वर्णन किया। यथा –

स्वरा ग्रामौ ह्यलंकारा वर्णा स्थानानि जातयः।

साधारणे च शारीर्यो वीणायामेष संग्रहः॥[17]

स्वरों के पदगत विधि के अनन्तर- व्यंजन, स्वर वर्ण, सन्धि, विभक्ति, आख्यात उपसर्ग, निपात, तद्धित, छन्द, वृत्त तथा जाति हैं, **तालगतविधान तत्व के अनन्तर**- इनके दो प्रकार –

अनिबद्ध तथा **निबद्ध** । इन दो प्रकार के तालगत तत्वों का विधान होता है। आवाप, निष्काम, विक्षेप, प्रवेश, शम्या, ताल, सन्निपात, परिवर्त, वस्तु, मात्रा, विदारीमात्रा, अंगुलिमात्रा, यति, प्रकरण, गीति, अवयव, मार्ग, पादभाग तथा पाणि ये इक्कीस तत्व तालगत विधान में होते हैं। स्वर, स्वर के विभेद तथा संबंध, वादी, संवादी, विवादी तथा अनुवादी, **ग्राम तथा उसके दो प्रकार** - **षड्जग्राम** तथा **मध्यमग्राम**। इनमें निहित 22 श्रुतियों के विभाजन का उल्लेख किया है, यथा-

अथ द्वौ ग्रामौ षड्जो मध्यमश्चेति। अत्राश्रिताः द्वाविंशतिः श्रुतयः। यथा-[18]

तिस्त्रो द्वे च चतस्त्रश्च चतस्त्रस्तिस्त्र एव च।

द्वे चतस्त्रश्च षड्जाख्ये ग्रामे श्रुतिनिदर्शनम्।।[19]

मूर्च्छना के अनन्तर- मूर्च्छना के विषय में कहा है कि यह दोनों ग्रामों अर्थात् षड्जग्राम तथा मध्यमग्राम से मिलकर चौदह होती है। यथा – **अथ मूर्च्छनाः द्वैग्रामिक्यश्चतुर्दश। यथा-**[19] **षड्जग्रामाश्रित सप्त मूर्च्छनाओं के नाम – 1)** उत्तरमन्द्रा **2)** रजनी **3)** उत्तरायता **4)** शुद्धषड्जा **5)** मत्सरीकृता **6)** अश्वक्रान्ता तथा **7)** अभिरूद्गता। **मध्यमग्रामाश्रित सप्त मूर्च्छनाओं के नाम -1)** सौवीरी **2)** हरिणाश्वा **3)** कलोपनता **4)** शुद्धमध्या **5)** मार्गवी **6)** पौरवी तथा **7)** हृष्यका का भी पूर्ण उल्लेख किया है। इन मूर्च्छनाओं में क्रम से सात स्वरों का होना आवश्यक है – सा, रे, ग, म, प, ध, नि। इन दोनों मूर्च्छनाओं की प्राप्ति पहला षड्जग्राम में यदि गान्धार स्वर की दो श्रुतियां चढ़ाकर उसे धैवत मान लिया जाए तो उसमें मध्यमग्राम की समस्त शद्ध मूर्च्छनाएं प्राप्त हो जाएंगी तथा मध्यमग्राम में यही प्रक्रिया को विपरीत कर दें अर्थात् मध्यमग्राम के धैवत को दो श्रुति उतारकर गान्धार मान लिया जाए तो षड्ग्राम की प्रथम मूर्च्छना प्राप्त हो जाएंगी। **जाति के अनन्तर –** जाति तथा जातियों के विभेद, जातियों के दशविध लक्षण- ग्रह, अंश, तार, मन्द्र, न्यास, अपन्यास, अल्पत्व, बहुत्व, षाडत्व, औडत्व इत्यादि का वर्णन, शुद्ध तथा विकृत जातियों का विस्तार पूर्वक वर्णन किया है।

जर्मनी के **महाकवि गेटे** ने कहा है कि एक महान् चिन्तक जो सबसे बड़ा सम्मान आगामी पीढ़ीयों को अपने प्रति अर्पण करने के लिए बाध्य करता है, वह है उसके विचारों को समझने का सतत प्रयत्न। महर्षि भरत ऐसे ही महान् चिन्तक थे, जिन्हें समझने की चेष्टा मनीषियों ने शताब्दियों से की है, परंतु जिनके विषय में कदाचित् कोई भी यह न कहेगा कि अब कुछ कहने को शेष नहीं है।[20]

संदर्भ सूची

1- नाट्यशास्त्रम्, पृष्ठ संख्या—6।

2- नाट्यशास्त्रम्, पृष्ठ संख्या—7

3- भारतीय संगीत : एक ऐतिहासिक विश्लेषण, पृष्ठ संख्या— 46।

4- भारतीय संगीत का इतिहास, पृष्ठ संख्या—287।

5- वहीं।

6- वहीं।

7- भारतीय संगीत का इतिहास, पृष्ठ संख्या—291।

8- भारतीय संगीत का इतिहास, पृष्ठ संख्या—291।

9- नाट्यशास्त्रम्, पृष्ठ संख्या—28।

10- नाट्यशास्त्रम्, पृष्ठ संख्या—28।

11- नाट्यशास्त्रम्, चतुर्थ भाग, पृष्ठ संख्या—3।

12- वहीं।

13- नाट्यशास्त्रम्, चतुर्थ भाग, पृष्ठ संख्या—4।

14- वहीं, पृष्ठ संख्या—8

15- वहीं।

16- वहीं।

17- वहीं, पृष्ठ संख्या—14।

18- वहीं।

19- वहीं, पृष्ठ संख्या—17।

20- भरत का संगीत सिद्धांत, पृष्ठ संख्या— 7।

●

राग वर्गीकरण रागांग पद्धति के संदर्भ में

जागृति पाठक एवं प्रो0 बिरेन्द्र नाथ मिश्र***

राग स्वरों का वह गुच्छ है जो एक निश्चित मनःस्थिति को व्यक्त करने के लिए बनाया जाता है। सर्वप्रथम मतंग ने बृहद्देशी में राग का सुस्पष्ट उल्लेख किया है, उनके अनुसार विशिष्ट स्वर वर्णों से विभूषित उस ध्वनि विशेष को राग कहते हैं, जो मनुष्य के चित्त को रंजित करता है। ''राग एक अनुभूति व्यंजक स्वर-संदर्भ होता है। इसका प्रत्यक्षीकरण मानव को ब्रह्मानंद की अनुभूति कराने में समर्थ है।''[1]

राग सांगीतिक कलाकृति है, यह भारतीय संगीत की आत्मा है। राग एक महासागर की तरह है और श्रोता उसका तट है। सागर से लहरें उठकर उसके तट को भिगोकर सरस बना जाती हैं।

भारतीय संगीत के इतिहास और विकास का क्रम मूलतः भारतीय राग परम्परा के विकास में ही निहित है। कुछ महत्वपूर्ण कलाकारों ने रागाभिव्यक्ति में अभूतपूर्व योगदान देकर रागों को अधिक समृद्ध, वैविध्यपूर्ण और प्रगतिशील बनाया है।

भारतीय संगीत के विभिन्न सिद्धान्तों एवं पहलुओं को सर्वसुलभ बनाने के लिए वर्गीकरण का सहारा लिया गया। वर्गीकरण का तात्पर्य है-श्रेणी, प्रभाग, दल, समूह या वर्गों में बांटना।

प्राचीन काल से ही जीवन के हर क्षेत्र में वर्गीकरण किया गया। इसके आधार पर मनुष्य जाति में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शुद्र को इस प्रकार वगीकृत किया गया।

भारतीय संगीत में रागों के विकास क्रम को मूर्त रूप प्रदान करने के लिए विद्वानों ने समय-समय पर रागों का वर्गीकरण किया। जैसे-जाति गायन, ग्रामराग वर्गीकरण, दशविध राग वर्गीकरण, राग-रागिनी, शुद्ध छायालग व संकीर्ण राग वर्गीकरण, मेल राग, थाट राग व रागांग वर्गीकरण इत्यादि।

रागों के इतिहास पर दृष्टिपात करने से यह ज्ञात होता है कि राग का स्वरूप परिवर्तित होता आया है। आचार्य भरत के समय में 'जातिराग' का प्रचार था, मतंग मुनि के समय तक आते-आते ग्रामराग व देशी राग इत्यादि राग प्रचार में आए। इस प्रकार समय बदलता गया और रागों का स्वरूप भी बदल गया। जैसे-जैसे रागों का क्रम या स्वरूप बदलता गया, उसी प्रकार उन रागों को वर्गीकृत करने के लिए वर्गीकरण की पद्धतियाँ भी बदलती रहीं।

प्राचीनकाल में ग्राम, मूर्च्छना, जाति वर्गीकरण, दशविध राग वर्गीकरण, शुद्ध छायालग राग वर्गीकरण, मध्यकाल में राग-रागिनी वर्गीकरण, मेल राग वर्गीकरण तथा आधुनिक काल में थाट राग वर्गीकरण, रागांग वर्गीकरण के द्वारा रागों को वर्गीकृत किया गया।

प्रस्तुत शोध पत्र का मूल विषय 'रागांग' राग-वर्गीकरण पर आधारित है।

भारतीय संगीत में 'रागांग' का महत्वपूर्ण स्थान है। 'रागांग' शब्द राग+अंग को मिलाकर बना है। राग से तात्पर्य उस विशिष्ट स्वर समुदाय से है जिसमें कुछ विशिष्ट नियमों का पालन कर जन-मन का रंजन कर सके। अंग से तात्पर्य है अवयव या भाग, राग की मुख्य स्वरावली में प्रयुक्त होने वाली विशिष्ट स्वर संगति से है। रागांग को राग का महत्वपूर्ण अंग मानना चाहिये। यह महत्वपूर्ण रागांग विशिष्ट राग समूह की अलग पहचान बना देता है।

'डॉ0 (श्रीमती) कृष्णा बिष्ट के अनुसार, ''Just as the idiom and not merely grammer makes a language so also it is the 'Anga' and not merely the scale of a 'Raga' that is its distingushing feature.''[2]

तात्पर्य यह है कि जिस तरह एक भाषा शब्दों का संग्रह मात्र नहीं होती वह व्याकरण के द्वारा यदि सही रूप प्राप्त करती है तो मुहावरों व लोकोक्तियों के द्वारा उसका सौंदर्य वर्धन होता है। इसी प्रकार राग मात्र स्वरों का संग्रह नहीं अपितु उन स्वरों के नियमित व समुचित प्रयोग के साथ विशिष्ट स्वर संगतियाँ विशिष्ट चलन के द्वारा ही वह मौलिक सौंदर्य-सम्पन्न बनता है। यह अंगों पर आधारित एक राग वर्गीकरण है, जिसका नाम रागांग पद्धति है।

किसी भी राग की प्रकृति, उसका स्वरूप, राग का सौंदर्य राग में प्रयुक्त विशिष्ट अंगों पर ही निर्भिर करता है। राग की पहचान तो उसमें प्रयुक्त स्वरों के द्वारा ही होती है, किन्तु उसकी विशिष्ट पहचान, कुछ विशिष्ट स्वर समुदायों के द्वारा होती है। जो 'रागांग' कहलाती है। हिन्दुस्तानी संगीत में एक ही प्रकार के अंगों का प्रयोग कई रागों में प्रयुक्त होता है, जैसे-ग म रे रे सा से भैरव के अन्य प्रकारों में भी मिलती है। इसके अतिरिक्त 'नि प ग म रे सा' से कान्हड़ा अंग प्रकट होता है जो कान्हड़ा अंग के लगभग सभी रागों में प्रयुक्त होता है।

रागांग शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग मतंग कृत बृहद्देशी में हुआ है। मतंग ने अपने समय में प्रचलित रागों को दो भागों-ग्राम राग व

* शोध छात्रा, वाद्य विभाग, संगीत एवं मंचकला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।
* * प्रोफेसर, वाद्य विभाग, संगीत एवं मंचकला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

देशी रागों में विभाजित किया गया है। देशी रागों के अन्तर्गत तीन प्रकारों का वर्णन किया है-रागांग, भाषांग व क्रियांग।

शारंगदेव कृत संगीत रत्नाकर की टीका कल्लिनाथ की कलानिधि तथा सिंह भूपाल की संगीत सुधाकर में 'मतंग' के रागांग मत का वर्णन किया गया है। जिसके अनुसार,

'ग्रामोक्तानां तु रागाणं छात्रामात्रं भवेदिति।

गीतज्ञैः कथिताः सर्वे रागांगास्तेन हेतुना॥'[3]

इसका अर्थ है, जिन रागों में ग्रामरागों की छाया दिखाई दे, वह रागांग कहलाते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि ग्राम रागों के नियम भंग, मिश्रण अथवा उनमें विकार उत्पन्न करके जो राग बनते हैं, वे रागांग कहलाते हैं।

ईसा की प्रारम्भिक शताब्दि में उमापति द्वारा रचित 'औमापतम्' ग्रंथ के बारहवें अध्याय में कुछ रागांगों के नाम दिये हैं। यथा-''मध्यमादि, देशी, हिंदोल, तोड़ी, बराटी, मालवश्री, गुर्जरी, शंकराभरण, धन्यासी, देवसारव, गौड़, भैरवी, सोम, घण्टावती, गुण्डक्री, कौशी, शुद्ध वराटिका, घण्टिका तथा श्री।''[4]

शारंगदेव ने संगीत रत्नाकर में पूर्व प्रसिद्ध एवं अधुना प्रसिद्ध कुल 21 रागांग कहे हैं। इन्होंने अपने समय के पूर्व प्रसिद्ध आठ रागांग-''शंकराभरण, घण्टारव, हंसक, दीपक, रीति, कर्णाटिका, लाटी, पांचाली तथा आधुना प्रसिद्ध रागांग-मध्यमादि, मालवश्री, तोड़ी, बंगाल, भैरव, वराली, गुर्जरी, गौड़, कोलाहल, बसन्त, धन्यासी देशी, देशाख्य 13 रागांग कहे हैं।''[5]

संगीत समयसार में पार्श्वदेव ने रागांगों के लक्षणों का वर्णन करते हुए सम्पूर्ण, षाड्व तथा औड्व प्रकार बताये हैं। 'सम्पूर्ण रागांग-मध्यमादि, शंकराभरण, तोड्डि, देशीहिन्दोल, शुद्धबंगाल, आम्रपंचम, घण्टारव, गुर्जरी, सोमराग, मालव श्री, दीपक राग तथा वराटी। षाड्व रागांग-गौड़ी, देशी, धन्यासी, देशाख्य। औड्व रागांग-भैरव, श्री मार्ग-हिन्दोल, गुणक्री।'[6]

पं0 शारंगदेव के समय से ही रागांग रागों के संकेत प्राप्त होते हैं। इनके पश्चात् के ग्रंथकारों ने भिन्न-भिन्न रूप से रागांग की व्याख्या की है। मध्यकाल में अधिकतर ग्रंथकारों ने शारंगदेव कृत दशविध राग वर्गीकरण की ही चर्चा की है। मध्यकाल में रागांग के लिए 'प्रकार' या भेद शब्द का प्रयोग किया गया है।

महाराणा कुम्भा कृत 'संगीत राज' ग्रंथ के 'रागोल्लास' नामक अध्याय में शारंगदेव के सदृश ही देशी रागों का वर्णन किया है तथा देशी रागों के अन्तर्गत ही राणा कुम्भा ने रागाङ्गादि का भी वर्णन किया है।

'मानसिंह कृत मानकुतूहल ग्रंथ में राग-रागिनियों तथा उनकी रागिनी और पुत्रों का उल्लेख किया है। इस ग्रंथ में 'रागांग' का नाम नहीं लिया गया है परन्तु एक राग में अन्य रागों का मिश्रण करके उसके प्रकारों का वर्णन मिलता है। जैसे-राग श्याम में अन्य रागों का मिश्रण कर गौर श्याम, श्याम मल्हार, भूपाल श्याम, किन्नर श्याम इत्यादि।'[7]

राग विबोध में पं0 सोमनाथ ने शारंगदेव की दशविध राग का वर्गीकरण किया है तथा शारंगदेव का अनुसरण करते हुए देशी रागों के अन्तर्गत रागांग का वर्णन किया है।

संगीत सुधा में श्री रघुनाथ भूप ने भी देशी रागों के अन्तर्गत ही रागांग का उल्लेख किया है।

चतुर्दण्डिका प्रकाशिका में व्यंकटमखी ने शारंगदेव सदृश ही रागांग का वर्णन किया है, इन्होंने रागांग रागों के स्वरूप का वर्णन किया है। जैसे-शुद्ध वसंत, धन्यासी, भूपाल, नागध्वनि आदि।

पं0 भावभट्ट कृत अनूप संगीत रत्नाकर व अनूप संगीत विलास में रागांग की व्याख्या की है। रागांग प्राणाली के विकास में भावभट्ट का महत्वपूर्ण योगदान है। मध्यकाल के सर्वप्रथम ग्रंथकार थे, जिन्होंने रागों के अंगों के आधार पर अपने समय के प्रचलित रागों को व्यवस्थित ढंग से वर्गीकरण किया तथा 'रागांग' के स्थान पर 'भेद' संज्ञा का प्रयोग किया है। भावभट्ट ने कुल 18 राग व उनके विभिन्न भेदों की व्याख्या की है। यथा-नट भेद, वेलावली भेद, कर्णाट भेद, तोड़ी भेद, वराटी भेद, कल्याण, गौरी, पूरिया, आसावरी, सारंग, गुर्जरी, केदार, भैरव, मल्हार आदि।

आधुनिक काल में 'रागांग' का स्वतंत्र पद्धति के रूप में उल्लेख सर्वप्रथम पं0 नारायण मोरेश्वर खरे ने किया था। इन्होंने समस्त रागों के अध्ययन के पश्चात् कुछ ऐसे स्वर समुदाय चुने जिनका स्वतंत्र अस्तित्व था। पं0 नारायण मोरेश्वर ने 26 स्वर-समुदायों को रागांग की संज्ञा देकर समस्त रागों को रागांगों के अंतर्गत वर्गीकृत कर दिया।

पं0 नारायण मोरेश्वर खरे ने पूर्व श्री कृष्णधन बनर्जी ने 'गीत सूत्र सार' में कान्हड़ा के 18 प्रकारों का उल्लेख किया है तथा रागांग-पद्धति को महत्वपूर्ण बताया है।[8]

पं0 भातखण्डे जी ने 'थाट पद्धति' के रूप में भारतीय संगीत में रागों का सरलतम रूप प्रस्तुत किया है, किन्तु उन्होंने अपने ग्रंथ 'भातखण्डे संगीतशास्त्र भाग-1 से 4' में रागांग पद्धति को मान्यता देते हुए भैरव अंग, पूर्वी अंग, काफी अंग आदि का उल्लेख किया है। 'भातखण्डे जी ने काफी थाट के पाँच अंग बताये हैं-काफी अंग, धनाश्री अंग, कान्हड़ा अंग, सारंग अंग तथा मल्हार अंग।'[9]

पं0 भातखण्डे के अनुसार 'अंग' से तात्पर्य ऐसे भाग से है जो रागों में अधिक स्पष्ट दिखाई देता है। 'रागांग की व्याख्या करते हुए भातखण्डे जी ने कहा है कि 'रागांग' ऐसा स्वर समुदाय है, जो राग रूपी शरीर का मुख्य भाग (अंश) होता है। इन अंगों के आधार पर जो वर्गीकरण किया जाता है, उसे रागांग-वर्गीकरण कहते हैं।'[10]

पं0 ओंकारनाथ ठाकुर जी ने भी संगीतांजलि भाग 1-6 में जितने रागों का वर्णन किया है, उनके थाट ने बताकर राग के मुख्य अंग को बताया है।

इसके अतिरिक्त विनायक राव पटवर्धन जी ने अपनी पुस्तक राग विज्ञान भाग 1-7 में रागों का आधार रागांग पद्धति को बताया है।

'रागांग पद्धति' का जनक पं0 नारायण मोरेश्वर खरे को माना जाता है। इन्होंने 'रागांग पद्धति के आधार पर रागों को वर्गीकृत किया है। उनके अनुसार किसी भी राग का मुख्य आधार 'विशिष्ट स्वर संदर्भ' पर आधारित होता है। स्व0 पं0 नारायण मोरेश्वर खरे ने 30 रागांगों की व्याख्या की है-

भैरव-भैरव, कालिंगड़ा, जोगिया, गुणक्री, गौरी, शिवमत, रामकली, अहीर, प्रभात, मंगल, बैरागी, शोभावरी।

बिलावल-बिलावल, अल्हैया, सरपरदा, कुकुभ, लच्छासाख, शुक्ल, यमन, दवेगिरी, जैज, सुखिया।

कल्याण-कल्याण, शुद्ध कल्याण या भूप कल्याण, यमन, चंद्रकांत, तीव्र कल्याण, पहाड़ी, हेमकल्याण, जयतकल्याण।

खमाज-खमाज, झिंझोटी, तिलंग, मांड, खंबावती।

काफी-काफी, सिंधोरा, आनंद भैरवी।

पूर्वी-पूर्वी, पूरिया-धनाश्री, परज।

मारवा-मारवा, भटियार, भंखार, पूरिया।

तोड़ी-तोड़ी, गुर्जरी तोड़ी, छाया तोड़ी, मुलतानी।

भैरवी-भैरवी, मालकंस, भूपाल, सिंध भैरवी।

आसावरी-आसावरी, जौनपुरी, गांधारी, देवगांधार, कोमल, आसावरी, देशी।

सारंग-बिन्द्राबनी सारंग, मेघ, शुद्ध सारंग, मधमाद सारंग।

ललित-ललित, बसंत, पंचम, प्रभात, ललिता गौरी।

पीलू-पीलू, बरवा, बड़हंस।

सोरठ-सोरठ, देस, तिलक कामोद, जयजयवंती।

विभास-विभास, रेवा, जयताश्री।

नट-नट, गौड़।

श्री-श्री राग, तिरवन, चैती दीपक।

बागेश्री-बागेश्री, रागेश्री, बहार, कौशिक, कान्हड़ा।

केदार-केदार नट, भवानी केदार, कामोद, जलधर केदार।

शंकरा-शंकरा, विहाग, मालश्री, हंसध्वनि।

कान्हड़ा-दरबारी, अड़ाना, सुघराई, शहाना, नायकी, गुंजी, कान्हड़ा, मल्हार, हुसैनी कान्हड़ा, मुद्रिकी, कौंसी, आभोगी।

मल्हार-मल्हार, रामदासी मल्हार, सूर मल्हार, गौड़ मल्हार, मेघ मल्हार, चरजू की मल्हार, घुंडिया मल्हार।

हिंडोल-हिंडोल, सोहनी, भिन्न षड्ज, शुद्ध सोहनी।

भूपाली-भूपाली, देसकार, जयत, जयत कल्याण।

आसा-आसा, भवानी।

भटियार-भटियार, भंखार।

कामोद-कामोद, हमीर, छायानट।

भीमपलासी-भीमपलासी, धानी, पटदीप।

बिहाग-बिहाग, बिहागड़ा, नट बिहाग।

दुर्गा-दुर्गा, गोरखकल्याण, नारायणी।

पं0 नारायण मोरेश्वर खरे द्वारा उल्लिखित 30 रागांगों के स्वर समूह

1. भैरव-ग म <u>रे</u> सा।	2. बिलावल-म ग म रे सा
3. कल्याण- म ग रे सा।	4. खमाज – सा ग म प
5. काफी- म प <u>ग</u> रे	6. पूर्वी- <u>ध</u> प म प
7. मारवा- <u>ध</u> म ग <u>रे</u>	8. तोड़ी- ग म <u>ध</u> प
9. आसावरी-म प <u>ध</u> प	10. भैरवी – <u>ग</u> म <u>ध</u> <u>नि</u>
11. सारंग- <u>नि</u> प म रे	12. भीमपलासी – सा <u>ग</u> म प
13 ललित- नि <u>रे</u> ग म (म म)	14. सोरठ- म प नि सा
15. पीलू- प <u>ध</u> नि सां	16. विभास – ग म <u>ध</u> प
17. नट- सा रे ग म	18. श्री- रे प म <u>ग</u>
19. बागेश्री- <u>ग</u> म ध <u>नि</u>	20. केदार- म प ध प म
21. शंकरा – ग म <u>नि़</u> प	22. कान्हड़ा- <u>ग</u> म रे सा
23. मल्हार- <u>नि</u> ध नि सा	24. हिंडोल- म ध नि सा
25. भूपाली – प ग रे सा	26. आसा – रे म ध प
27. बिहाग – सा ग म प	28. कामोद – ग म रे सा
29. भटियार – प ग <u>रे</u> सा	30. दुर्गा - ध म रे सा

रागांग के निर्धारण में अलंकार, मींड, गमक, आंदोलन, कण, स्थाय आदि के प्रयोग से ही भिन्न-भिन्न रागांगों का निर्माण होता है। जैसे-सा <u>रे</u> <u>ग</u> <u>रे</u> सा' यह स्वर संगीत तोड़ी अंग का रागांग वाचक स्वर समूह है किन्तु तोड़ी के गंधार का लगाव कोमल ऋषभ के सहारे से लिया जाता है जो अतिकोमल कहा जाता है। बिना

उसके तोड़ी का रागांग वाचक संगति नहीं बन सकती। मियाँ मल्हार और मियाँ की सारंग में म रे रे प की स्वर संगति समान रूप से प्रयोग होती है, किन्तु मियाँ मल्हार में ऋषभ पर मध्यम का कण लगाकार 'म ᵐरे ᵐरे प' मींड का प्रयोग करते हैं। जबकि मियाँ की सारंग में ऋषभ पर न्यास कर सारंग अंग को स्पष्ट किया जाता है। यथा-म रे प रे म ऩी ऽ सा कान्हड़ा तथा आसावरी दोनों में समान स्वरों का प्रयोग किया जाता है। दोनों में कोमल धैवत का प्रयोग करते समय कोमल निषाद का स्पर्श किया जाता है। यथा- म प ⁿीध प। किन्तु कान्हड़ा में धैवत पर निषाद के स्पर्श के साथ गंभीर गमक का प्रयोग किया जाता है। जैसे-म प ⁿीध....नी प' जबकि आसावरी में 'रे म प ⁿीध प' इस प्रकार सीधा लिया जाता है।

शुद्ध सारंग और श्याम कल्याण दोनों में 'ऩी सा रे म प' समान रूप से लिया जाता है, किन्तु शुद्ध सारंग में ऋषभ पर मध्यम का कण लगाकर 'ऩी सा ᵐरे म प प्रयोग किया जाता है जिससे सारंग अंग स्पष्ट होता है जबकि श्याम कल्याण में इन्हीं स्वरों का सीधा प्रयोग होता है जो कल्याण अंग को स्पष्ट करता है। इसी प्रकार एक ही तरह के स्वर समूह होते हुए भिन्न-भिन्न तरीके से प्रयोग करने पर रागांग बदल जाते हैं।

वर्तमान समय में राग वर्गीकरण की थाट-राग प्रणाली सर्वाधिक प्रचार में है, किन्तु इसका यह मतलब नहीं कि रागांग पद्धति महत्वहीन हो गयी है। थाट पद्धति को मानने वाले रागांग पद्धति को भी उतना ही महत्वपूर्ण मानते हैं।

हमारे विद्वान् चाहे वह पं0 भातखण्डे जी, ओंकारनाथ ठाकुर, रामरंग जी या विनायक राय पटवर्धन इत्यादि सभी ने रागांग पद्धति की महत्ता को स्वीकार किया है तथा अपने ग्रंथों में रागों की चर्चा करते समय रागांग का भी उल्लेख किया है।

संदर्भ सूची

1. राग जिज्ञासा, देवेन्द्रनाथ शुक्ल, पृ0 46
2. हिन्दुस्तानी संगीत में सारंग, मल्हार और कान्हड़ा, प्रेमलता नाहर, पृ0
3. बृहद्देशी, प्रो0 प्रेमलता शर्मा, पृ0 201
4. औमापतम्, श्लोक सं0 172-176, पृ0 18
5. संगीतरत्नाकर-2, पृ0 14-15
6. संगीत समयसार, पृ0 72, 73 (5)
7. मानसिंह और मानकुतूहल, द्वितीय सर्ग, पृ0 61
8. गीत सूत्र सार, पृ0 69
9. भातखण्डे संगीतशास्त्र भाग-4, पृ0 29
10. भातखण्डे संगीतशास्त्र, भाग-4, पृ0 29

●

कोविड-19 से बचने के प्राकृतिक उपाय

राकेश कुमार प्रजापति,[*] डॉ0 सुशील कुमार दूबे[**] एवं डॉ0 नरेन्द्र शंकर त्रिपाठी [***]

मनुष्य समाज का एक अंग है और उसका नियन्ता भी। शरीर के विविध अंगों की भांति सामाजिक संरचना भी अनेक तत्वों से मिल कर पूर्ण होती है। सामाजिक संरचना के रूप में संगठन, संस्थाएँ एवं समूह आदि शामिल होते है जिसका निर्माण लोगों द्वारा किया जाता है। सदैव बदलती परिस्थिति के अनुकूल परिवर्तन करते हुए बने रहने का प्रयास किया जाता है जिसका अपना कुछ निश्चित उद्देश्य होता है किन्तु मनुष्य की थोड़ी भूल प्रज्ञापराध को जन्म देती है जो सम्पूर्ण मानव समाज के लिए खतरा बन कर खड़ी हो जाती है और हमारे सामाजिक संरचना को नष्ट-भ्रष्ट कर डालती है जिससे प्रकृति प्रकुपित हो उठती है। विनाशकारी रोग का जन्म होता है। जो महामारी का रूप ले लेता है।

आयुर्वेद शास्त्र के अनुसार ऐसे महामारी को 'जनपदोंध्वंस' के नाम से जाना जाता है। जिसके कई कारण बताये गये हैं। जैसा कि दूषित वायु, दूषित जल, दूषित देश, ग्रहों की विकृति, पृथ्वी एवं अंतरिक्ष में होने वाला उत्पात और प्राणियों का इस जन्म तथा पूर्व जन्म का सामुदायिक कर्म आदि।[1] महर्षि आत्रेय ने 'अधर्म' को वायु, जल, देश, काल के दूषित होने का कारण कहा है।[2]

आज की विकट समस्या के रूप में कोरोना नाम की महामारी ने विश्व भर में अपना विकराल पाँव पसारता जा रहा है जो कि वैश्विक महामारी का रूप ले लिया है। दुनिया के बड़े-बड़े वैज्ञानिक इसके तोड़ खोजने में नये–नये प्रयोग करने में लगे हुए है पर अभी तक इसका कोई सटीक उपचार उपलब्ध नहीं हो सका है। यह बीमारी अनेकों देशों की मानव-जीवन के साथ-साथ आर्थिक व सामजिक स्थिति को भी बिगाड़ कर रख दिया है। सरकारें इस महामारी से निपटने के लिए नये-नये नियम खोज रही है और उसे देश की जनता पर लागू कर रही है। जितना संभव हो सके पूरा प्रयास कर रही है। सरकार द्वारा देश में लॉकडाउन, कर्फ्यू लगा कर तथा सोशल डिस्टेंसिंग का पालन करने का आदेश दे कर उत्तम प्रयास किया गया है।

वैज्ञानिकों के अनुसार कोरोना एक परजीवी विषाणु है। यह चमगादड़ों में पाया जाता है। गोस्वामी तुलसीदास के अनुसार जो मूर्ख सबकी निंदा करता है वह चमगादड़ होकर जन्म लेता है। ये निन्दा करने वाले लोग मानसिक रोग से ग्रसित होते है। इनके कारण सब लोग दुःख को प्राप्त करते हैं।[3]

कोविड-19 के प्रभाव व विस्तार

इस महामारी के प्रभाव की बात करें तो मानो पैर से जमीन खिसकने लगती है। विश्व भर में लाखो की संख्या में लोग प्रतिदिन बीमार पड़ रहे हैं और कई लाख लोग अपने जीवन से हाथ भी धो चुके हैं। बहुत से देशों में तो कुछ लोग इतने भयभीत हो चुके हैं कि अब जीने की आशा ही छोड़ दिए है। कितने तो ऐसे मामले सुनने को मिलते है कि व्यक्ति इस बीमारी से भयभीत होकर खुदखुशी कर लेता है। इस बीमारी का प्रसार नित्य बढ़ता ही जा रहा है जो चीन से चल कर विश्व भर में फैलता जा रहा हैं। बड़े-बड़े कलकारखाने बंद पड़ गए है। मजदूर वर्ग बड़ी संख्या में शहर छोड़कर अपने गाँव-घर की ओर लौट रहे है। यातायात की समस्या इतनी विकट हो गयी कि आने-जाने के साधन भी नहीं मिल पाते। परिस्थिति इतनी विकट हो गयी कि लोग हजारो किमी की दूरी पैदल चलने को मजबूर हो गए। कितने तो चलते-चलते सफर में ही दम तोड़ देते है। अगर देखा जाय तो इस महामारी का असर देश के प्रत्येक नागरिक पर पड़ा है। सरकार से लेकर आम आदमी तक, उद्योगपति से लेकर मजदूर तक और शिक्षक से लेकर छात्र तक आदि सभी वर्ग इस महामारी का दंश झेल रहा है। देश की आर्थिक स्थिति कमजोर पड़ती जा रही है।

वैसे इस महामारीकाल में कुछ संतोषजनक परिवर्तन भी देखने को मिले है। जब लम्बी अवधि तक लॉकडाउन के कारण लोग अपने घरों में सिमट गए, कारखाने आदि बंद हो गए, कारखानों से निकलने वाले गन्दे जल नदियों में जाने बन्द हो गए, लोग नदियों में नहाना बन्द कर दिए तो नदियों की जलधारा निर्मलता को प्राप्त होने लगी। जब कारखानों से धुएँ बन्द हो गए, सड़कों पर वाहनों की गति थम गयी तब हवाएँ साफ-सुथरी हो गई, आकाशमण्डल साफ-सुथरा दिखने लगा है और पशुपंक्षी निडरता पूर्वक विचरण करने लगे है।

कोविड-19 के लक्षण

खाँसी, छींक, बुखार, सांस फूलना, थकान आदि इसके सामान्य लक्षण हैं। इस बीमारी में अधिकतर लोग बिना किसी खास उपचार के ही स्वस्थ हो जाते है। किन्तु जो पहले से ही किसी गंभीर बीमारी की चपेट में आने से कमजोर हो चुके है या उन्हें अस्थमा/ डायबिटीज/ दिल की बीमारी है उनके लिये यह विषाणु खतरनाक

* शोध छात्र, क्रिया शारीर विभाग, आयुर्वेद संकाय, चिकित्सा विज्ञान संस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।
* * सहायक प्रोफेसर, क्रिया शारीर विभाग, आयुर्वेद संकाय, चिकित्सा विज्ञान संस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।
* * * एसोसिएट प्रोफेसर, क्रिया शारीर विभाग, आयुर्वेद संकाय, चिकित्सा विज्ञान संस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

सिद्ध हो सकता है। इस विषाणु से ग्रसित व्यक्ति में निम्नलिखित लक्षण प्रकट होते है –

1. श्वास नलिकाओं में म्युकस का इकट्ठा होना।
2. श्वास नलिकाओं में सूजन का होना।
3. बार–बार छींके आना।
4. गले में खरास होना।
5. तेज बुखार का आना।
6. थकान का आभास होना।
7. सांस लेने में कठिनाई का होना।
8. इस बीमारी से लिवर फंक्शन भी गड़बड़ हो जाने की संभावना होती है। पेट दर्द होना, भूख न लगना, दस्त की शिकायत, उल्टी की समस्या आदि डायरिया जैसे लक्षण भी सामने आ सकते है।[4]

कोविड-19 के कारण

इस विषाणु के फ़ैलने का मुख्य कारण मनुष्य ही होता है जिसे यह पता नहीं होता कि वह संक्रमित है। एक संक्रमित व्यक्ति अनजाने में अन्य कई व्यक्ति को संक्रमित कर देता है। कुछ लोग यह सोच कर कि यह सर्दी-जुकाम की बीमारी मेरा क्या क्षति करेगा, मेरे शरीर में तो रोगप्रतिरोधक क्षमता है इस प्रकार बिना किसी बर्ताव के रहते हुए किसी संक्रमित व्यक्ति से मिल कर खुद को संक्रमित कर लेते है और अपने लोगों को भी संक्रमित कर देते है। जिससे यह बीमारी लोगों से अन्य लोगों में दिन पे दिन बढ़ती जा रही है।

गोस्वामी जी ने मोह को समस्त व्याधियों का मूल कारण कहा है। जिससे बहुत पीड़ा उत्पन्न होती है।[5] मोह अर्थात अज्ञानता, ज्ञान से विमुख मूढ़ लोग मोह के वशीभूत होकर केवल अपने निजी हित के लिए लोगों को अपना अनुयायी बनाकर लॉकडाउन का उलंघन करते हुए भीड़ इकट्ठा कर लेते है जिससे संक्रमण और तेजी से फ़ैलने लगता है। ऐसे लोग लोक हित का ध्यान न करके केवल निजी स्वार्थ के लिए, घोर अज्ञानता में पड़कर समस्त लोक की कल्याणकारी मर्यादाओं कों शर्मसार करते हुए सम्पूर्ण मानवता का नाश करने वाले अधम कार्यों को करने में लगे होते हैं।

श्रीमद्भगवतगीता के अनुसार– जो व्यक्ति झूठे ज्ञान का आश्रय करके अपने स्वभाव को नष्ट कर लिया है उस व्यक्ति की बुद्धि मन्द हो जाती है। वह सबका अपकार करने वाला, तथा संसार का नाश करने वाला होता है।[6]

इस प्रकार के लोग देह को ही सब कुछ समझते हैं इसलिए देह का पोषण करने के लिए ही सारा जीवन व्यर्थ में गवाँ देते हैं। ऐसा कोई कर्म नहीं जिसे वे न करते हों। ऐसे लोगों की बुद्धि साधारणतः अज्ञानता से ढका होता है। इसी से सूकर-कूकूर जैसे गंदे पशुओं के समान केवल इस अधम देह के पोषण के लिए आजीवन व्यस्त रहते हैं। उनकी बुद्धि अल्प तथा कुण्ठित होती है। इसलिए उनके ज्ञान का विषय भी बहुत अल्प ही होता है। वे अपरिमेय ज्ञान-वस्तु या आत्मा के पास तक नही जाते। वे ही नष्टात्मा हैं। ये लोग सज्जनों की बातों का अनुकरण नहीं करते। ऐसे लोगों की प्रकृति प्रायः हिंसात्मक होती है। ये जीव-जगत का अकल्याण करके संसार को व्याकुलता प्रदान करते हैं।[7] संसार में तमोगुणी प्रकृति के लोग अनेको हीन भावनाओं से ग्रसित होते है जिनमें प्रमाद, मोह एवं अज्ञानता का प्रभाव होता है।[8] तामसिक प्रकृति के लोग अपना या किसी दूसरे का हित न कर सदा लापरवाही भरे कार्य करते है। इन्हें विद्वानों की लोक कल्याणकारी बाते बुरी लगती हैं। ये किसी जिम्मेदारी को बड़ी लापरवाही के साथ करने के अभ्यस्त होते है। इन्हें अपने के प्रति घोर मोह होता है। मोह अर्थात किसी सत्य को जाने बिना मान लेना, जो नहीं है उसी को मौजूद मान लेना। ऐसे लोग अज्ञानता के वशीभूत होते है। जिसके कारण ये अपना तथा अपने कुल का भी नाश करते रहते हैं।

समस्त शरीरधारियों को मोहित करने वाला तमोगुण होता है जो अज्ञानता से उत्पन्न होता है। वह तमोगुण जीवात्मा को प्रमाद (कार्य करने में लापरवाही), आलस्य तथा निद्रा द्वारा बाँधता है।[9]

अविद्या की आवरणशक्ति तमोगुण है। तमोगुण जीव को सर्वदा आच्छन्न कर रखता है, मोहाभिभूत कर डालता है। जो कार्य करने से कल्याण होगा उसकी ओर घूम कर भी नहीं देखेगा और जो कार्य करने से अपनी हानि होगी उसमें खूब उत्साह दिखलायेगा। सर्वदा बुद्धि में जड़ता रहती हैं, अतएव स्वयं कुछ विचारपूर्वक नहीं कर पाता, सर्वदा परमुखापेक्षी (अर्थात सदा दूसरें की सुनने वाला/ दूसरे का मुख देखने वाला) रहता है। चित्त का इतना अवसाद कि जब कुछ स्थिर होकर बैठ जाता है तब जम्हाई उठती है, नींद आती है। हाथ में माला चाहे जितनी ही फिरती हो, सिर दिवाल से ठक्-ठक् टकराता रहता है। सुन्दर उपदेस सुनने में इतनी नींद आती है कि एक बात भी श्रवणगोचर नहीं होती। ध्यान में बैठने पर नाक गरजने लगती है, परन्तु मन में धारणा होती है कि वह समाधिस्थ हो रहा है। ये सब बुद्धि के विपर्यय भाव तमोगुणी को सदा घेरे रहते हैं। ध्यान या साधना करने में अच्छा नहीं लगता। पुछने पर कहता है कि यह सब अनावश्यक है, मुझे तो बैठते ही ध्यान लग जाता है, परन्तु वस्तुतः उसका ध्यान नहीं लगता, लगती है निद्रा !! इस तमोगुण के वश में जो जितना ही होगा, उसका अज्ञान उतना ही वृद्धि को प्राप्त होगा। उतना ही उसके सामने आत्मा घनाच्छादित सा प्रतीत होगा। इसी से कहना पड़ता है कि तमोगुण से बढ़कर मनुष्य का शत्रु और कोई नहीं है। भगवान जो करेंगे वही होगा यह कह कर बहुत से लोग आलस्य में कालक्षेप (समय व्यतीत) करते हैं, परन्तु यह प्रकृति भगवत-निर्भरता नहीं है। भगवान ने इसको ही देही का भ्रान्ति जनक भाव या तमोगुण कहा है। आलस्य और अनिद्रा इसके अनुचर हैं। इस प्रकार की भ्रान्ति, आलस्य और निद्रा के वशवर्ती होने पर भगवत्साधना नहीं होती।[10]

कोविड-19 के निवारण / रोक-थाम के उपाय

अभी तक कोरोना बीमारी को रोकने के लिए कोई विशेष दवा उपलब्ध नहीं है फिर भी इस बीमारी को रोकने की सबसे अच्छी विधि यह है कि संक्रमित व्यक्ति को जन सामान्य से अलग रखना (आइसोलेट करना) तथा संदिग्ध लोगों को अन्य लोगों से अलग ठहराना (क्वारंटाइन करना) है जिससे कि इनमें लक्षण प्रकट होने तक या चिकित्सकीय विधि द्वारा जाँच कर उचित निष्कर्ष पर पहुँचने या निर्णय लेने में सहायता मिल सके और बीमारी को अन्य व्यक्तियों तक फैलने से रोका जा सके। हमें इसके संक्रमण से बचने के लिए निम्नलिखित बातों पर ध्यान देने की आवश्यकता आ पड़ी है–

1. हमें नियमित रूप से अल्कोहल वाले हैण्ड सेनेटाइजर का प्रयोग करना चाहिए।
2. साबुन से 20 सेकेण्ड तक झाग करके अच्छे से हाथ धोने चाहिए।
3. खाँसते या छींकते समय रूमाल/ टिशू पेपर/ कोहनी से मोड़कर नाक व मुह को ढकें।
4. बीमार व्यक्ति से कम से कम एक मीटर की दूरी बनायें रखे।
5. खुद बीमार होने पर लोगों से स्वयं दूरी बनाये व अकेले रहें।
6. हाथों को बिना साफ किये आँख/ मुह/ नाँक को न छुएं।

कोविड-19 से बचाव

जब हमें बचने के कोई उपाय न प्राप्त हो तो उस पारिस्थिति में हमें अपने आप को मजबूत बनाने के लिए प्रकृति की गोद में समर्पित कर देना ही उचित होता है। क्योंकि प्रकृति ही जीवन का मूल है जहाँ से मानवता जन्म लेती है। व्यक्ति के शरीर का निर्माण, प्रकृति की महान रचना है और इसकी मजबूती भी प्रकृति की महान सम्पदा से ही संभव हो सकता है।

इस महामारी से बचने का एक अच्छा उपाय यह है कि अपने शरीर की रोगप्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाना। जिनके शरीर में यह क्षमता जितना अधिक मौजूद होगी उसे उतना ही इस महामारी का सामना करने में आसानी होगी। शरीर में किसी रोग के प्रति प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने के अनेको आसान तरीके है जिसका वर्णन आयुर्वेद ग्रंथों में प्राप्त होता है। जिसमें ऋतुओं के अनुसार आहार-विहार का सेवन करने के विधि-विधानों का वर्णन किया गया है।

इस महामारी से बचने के लिए सब को एक साथ प्रयास करना चाहिए जैसा कि प्राचीन काल में सभी देवगणों को मिलकर समस्या का समाधान करने को कहा गया है।[11] महर्षि चरक ने खाँसी, श्वांस से सम्बन्धित समस्या के समाधान हेतु तुलसी के रस का सेवन करने की बात कही है।[12] पद्मपुराण के अनुसार जिस स्थान पर तुलसी का पौधा रहता है वहाँ ईश्वर निवास करते है। तुलसी की पूजा करने से, सुबह, दोपहर, संध्या तीनो समय तुलसी का सेवन करने से शरीर शुद्ध हो जाता है। जिस घर के आगन में तुलसी नहीं होती वहाँ लक्ष्मी का वास नहीं होता। तुलसी एक औषधि है जो भरपूर मात्रा में ऑक्सीजन उत्पन्न करती है। मनुष्य को जीने के लिए ऑक्सीजन की जरूरत है जो भरपूर मात्रा में तुलसी से प्राप्त होता है। व्यक्ति शुद्धऑक्सीजन पाकर सदा निरोगी जीवन जी सकता है। उसे बीमारी नहीं होगी, उसके धन बीमारी में खर्च नहीं होगे, उसे धन लाभ होगा। इस प्रकार लक्ष्मी सदा उसके पास होगी।

अपने अनेक गुणों के कारण तुलसी मात्र हिन्दू परिवार में ही नहीं बल्कि अन्य धर्मों में भी पूजनीय है। यह औषधि के रूप में प्रयोग तो की जाती ही है इसके साथ ही साथ अपने आसपास के वातावरण को भी शुद्ध बना देती है। यह वायुप्रदूषण को कम करती है। वायुमंडल में फैले विषैले तत्वों को नष्ट करती है। अब तो ऐतिहासिक इमारतों को प्रदूषण से बचाने के लिए तुलसी के पौधे का रोपण किया जा रहा है। ऐतिहासिक ईमारत ताजमहल के आस-पास भी भारी मात्रा में तुलसी के पौधे लगाये जा रहे है। इस पौधे को गमले में लगाकर घर में रखने से मक्खियों, मच्छरों आदि कीटों का उपद्रव भी कम हो जाता है। इसके गंध हवा के संघ जहा तक पहुंचते हैं वहां तक प्राणी निर्विकार व रोगरहित हो जाते हैं।

महर्षि चरक ने तुलसी को हिचकी, खाँसी, विष-विकार, पार्श्व-दर्द दूर करने वाली तथा पित्त की वृद्धि और दूषित कफ व वायु का शमन करने वाली और दुर्गन्ध को मिटाने वाली बताया है।[13]

पीपल का वृक्ष शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने में महत्वपूर्ण स्रोत है। यह अन्य वृक्ष की तुलना में सबसे ज्यादा आक्सीजन उत्सर्जित करता है। श्रीमद्भगवतगीता में भगवान श्रीकृष्ण ने कहा है कि मै वृक्षों में पीपल हूँ।[14]

शरीर की प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने के लिए हम घरेलू नुख्से भी अपना सकते है। गिलोय, अश्वगंधा, दालचीनी, लौंग, काली मिर्च आदि से बने काढ़े प्रतिरोधक क्षमता में वृद्धि करते हैं। इससे हम सामान्य सूखी खांसी और गले में खराश का उपचार कर सकते हैं।

आयुष मंत्रालय ने काढ़ा पीने का सुझाव दिया है। मंत्रालय के निर्देशानुसार दिन में दो बार तुलसी, दालचीनी, कालीमिर्च, सूखी अदरक और मुनक्का का काढ़ा पीना सेहत के लिए फायदे मंद हो सकता है। इससे सूखी खाँसी और गले की खराश में राहत मिलती है।

पुदीना के पत्तों या अजवाइन के साथ दिन में एक बार भाप लिया जा सकता है।

सेंधा नमक, पानी को हल्का गर्म (गुनगुना) करके गरारे कर सकते है। सुबह-शाम नाक में तिल का तेल/ नारियल का तेल या घी की कुछ बूंदे डाले।

ऑयल पुलिंग थेरेपी का पालन करते हुए एक चम्मच तिल या नारियल के तेल को दो मिनट तक मुंह में लिए रखें फिर उसे थूंक दें तथा फिर गर्म पानी से कुल्ला करें।

गोल्डन मिल्क अर्थात् 150 मिली गर्म दूध में आधा चम्मच हल्दी पाउडर मिलाकर दिन में एक या दो बार लें।

संभव हो सके तो प्रतिदिन सुबह एक चम्मच च्यवनप्राश लें। मधुमेह से पीड़ित व्यक्ति के लिए शुगर-फ्री च्यवनप्राश लेना हितकर होगा ।

शरीर को स्वस्थ बनाये रखने के लिए हमें कुछ आसन, प्राणायाम और व्यायाम करना चाहिए। योग के अभ्यास से शरीर स्वास्थ्य को प्राप्त करता है। इसे अपने जीवन का एक हिस्सा बनाना चाहिए। आसनो में सूर्यनमस्कार का अभ्यास अति लाभप्रद है। नाड़ीशोधन प्राणायाम, सूर्यभेदन, कपालभाति, भस्त्रिका और अनुलोम-विलोम शरीर के समस्त विकारों को दूर करने वाला है। इसके अभ्यास से शरीर को भरपूर मात्रा में आक्सीजन प्राप्त होने लगता है और श्वास से सम्बन्धित समस्याएँ धीरे-धीरे समाप्त होने लगती है। शरीर में हिमोग्लोविन की आवश्यक मात्रा उपलब्ध होने लगता है। शारीरिक व्यायाम के लिए हाथ, पाँव, पंजे, गर्दन, कमर आदि को बारी-बारी से क्लॉक व एन्टीक्लॉक वाईज तब तक घुमाएँ जब तक शरीर गर्म न होने लगे।

हमें औषधीय गुणों से भरपूर वनस्पतियों आदि समस्त प्राकृतिक सम्पदाओं की रक्षा करनी चाहिए जिससे ये औषधियाँ हमारे लिए हितकारी हो सके। हमारे प्राचीन ग्रंथों में भी ऐसा वर्णन प्राप्त होता है कि ये औषधियाँ हमारे लिए मधुर हों, सूर्य हमारे लिए कल्याणकारी हों।[15]

प्रस्तुत मन्त्र में वनस्पतियों के साथ सूर्य से भी कामना की गयी है। यह असीम उर्जा का भण्डार है। यह सृष्टि का आदि कारण है। आधुनिक विज्ञान के अनुसार सूर्य से हमें विटामिन-डी प्राप्त होता है जो शरीर को मजबूती प्रदान करता है। सुबह-सुबह सूर्य की स्वर्णिम किरणे स्वास्थ्य के लिए अत्यन्त लाभप्रद है।

वृक्ष से ही जीवन संभव हो सका है। वृक्ष के बिना हम जीवन की कामना कैसे कर सकते है? वातावरण को शुद्ध बनाने में वृक्षों का महान योगदान है। इनसे हमें औषधियाँ, ईधन, भोजन तथा फर्नीचर आदि प्राप्त होते है। प्राचीन ग्रंथों में वृक्षों की उपासना की गयी है।[16]

अतः हमें वृक्षों की रक्षा करनी चाहिए जो हमें अनेकों बीमारी से बचने में सहायता करते हैं। प्राचीन ग्रन्थ यजुर्वेद में औषधियों के लिए शान्ति पाठ किया गया है।[17]

कृषि प्रधान देशों में जहाँ अधिकतर लोगों का जीवन कृषि पर निर्भर हैं सीमित भूमि पर अधिक से अधिक अन्न का उत्पादन करने में रात-दिन लगे हुए है। जनसंख्या दिन पे दिन बढ़ती जा रही है। लोगों की आवश्यकतायें भी बढ़ती जा रही है। हर व्यक्ति को भोजन की आवश्यकता है। फसलों की अच्छी पैदावार बढ़ाने के लिए लोग रासायनिक खादों का प्रयोग कर रहे हैं जिससे भूमि की उर्वराशक्ति नष्ट होती जा रही है। खाद्यान्न दूषित होते जा रहे है जिसका असर हमारे प्रतिरक्षातंत्र पर पड़ रहा है। हमारा प्रतिरक्षातंत्र कमजोर होता जा रहा है। यही कारण है कि हम हल्के मानसून के परिवर्तन होने पर, देश, काल, वातावरण के बदलने पर हम अपनेआप को उसके अनुकूल ढाल नहीं पाते जिसके कारण बीमार पड़ जाते हैं। हमें अपने प्रतिरक्षातंत्र को मजबूत बनाने के लिए अपने आहार-विहार पर विशेष रूप से ध्यान देने की जरूरत है। तभी हम उत्तम स्वास्थ्य का लाभ उठा सकते है। इसके लिए हमें अपने आस-पास के वातावरण को साफ-सुथरा बनाना चाहिए। शरीर के पोषण स्वरूप अन्न व जल को शुद्ध बनाये रखने के लिए हमें अपने खेतों में रासायनिक खादों, कीटनाशक दवाओं आदि का प्रयोग न कर जैविक खाद का उपयोग करना चाहिए।

निष्कर्ष

इस प्रकार हम कह सकते है कि हमें सदैव प्रकृति के अनुरूप जीवन का आनन्द प्राप्त करना चाहिए। प्रकृति के साथ अनुकूलता स्थापित करने का सतत प्रयास करना चाहिए। किसी भी तरीके से हमें प्रकृति के साथ छेड़छाड़ नहीं करना चाहिए। प्रकृति की हर घटनाओं के पीछे कोई कारण अवश्य होता है, जिसका निवारण भी प्रकृति के पास होती है जो विविध घटनाओं के रूप में सामने उपस्थित होती रहती है। जो भी घटनाएँ घटती है उन समस्त घटनाओं के दो पक्ष प्राप्त होते हैं सकारात्मक और नकारात्मक। यदि कहीं से नकारात्मक उर्जा उत्पन्न हुई है तो उसके सन्तुलन हेतु सकारात्मक उर्जा का भी प्रादुर्भाव अवश्य हुआ होगा। जैसा कि महात्मा बुध्द ने कहा है कि संसार में दुःख है, दुःख का कारण है तो दुःख का निवारण भी है और दुःख निवारण के मार्ग (उपाय) भी है। इस प्रकार इस महामारी का निवारण भी है जो औषधियों के द्वारा और प्राकृतिक रूप से आहार-विहार को अपनाने से तथा बचाव हेतु उपरोक्त वर्णित क्रियाकलापों से संभव हो सकता है।

सन्दर्भ

1. चरक संहिता, विमान स्थान अ.3/4)
2. चरक संहिता, विमान स्थान अ.3, शुक्ल विद्याधर एवं त्रिपाठी रविदत्त कृत हिन्दी व्याख्या सहित, भाग-1, प्रथम संस्करण, वाराणसी, चौखम्भा विद्याभवन 1998, पेज- 554
3. रामचरितमानस उत्तरकाण्ड दोहा.120 की चौपाई
4. डॉ. सुमित रूंगटा, विभागाध्यक्ष, गैस्ट्रोएंट्रोलाजी केजीएमयू, लखनऊ (समाचार पत्र) के अनुसार
5. रामचरितमानस उत्तरकाण्ड दोहा.120 की चौपाई
6. श्रीमद्भगवद्गीता 16/9
7. श्री भूपेन्द्रनाथ सान्याल

8. श्रीमद्भगवद्गीता.14/17
9. श्रीमद्भगवद्गीता.14/8
10. (श्रीमद्भगवद्गीता.14/8) श्री भूपेन्द्रनाथ सान्यालकृतव्याख्या
11. ऋग्वेद 7/50/3
12. च.सं.चि.स्था. 17 / हिक्का-स्वाश...
13. चरक संहिता सूत्र स्थान 27/169
14. श्रीमद्भगवतगीता 10/26
15. ऋग्वेद 1/90/8
16. यजु.16/17
17. यजु.36/96

●

''प्रज्ञा''
नियम एवं निर्देश

1. ''**प्रज्ञा**'', जहाँ तक संभव होगा, वर्ष में दो प्रकाशित होगी : प्रथम अंक सत्रारम्भ के अवसर पर और दूसरा अंक मालवीय जयंती के अवसर पर।

2. ''**प्रज्ञा**'' पत्रिका में प्रकाशनार्थ काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के शोध छात्रों एवं अध्यापकों के लेख/शोध प्रपत्र सम्पादक ''**प्रज्ञा**'' के कार्यालय में प्रथम अंक के लिए 30 नवम्बर तथा द्वितीय अंक के लिए 30 अप्रैल तक पहुँच जाने चाहिए। शोध छात्रों के लेख/शोध प्रपत्र अपने निर्देशक एवं विभागाध्यक्ष से संस्तुत एवं अग्रसारित होने चाहिए।

3. ''**प्रज्ञा**'' जर्नल में प्रकाशित लेखों/शोध प्रपत्रों के लेखकों को ''**प्रज्ञा**'' की दो प्रतियाँ दी जायेगी : प्रथम लेखकीय प्रति और दूसरी प्रतिमुद्रण की 10 प्रतियों के बदले में।

4. सभी प्रकार का शुल्क, सम्पादक ''**प्रज्ञा**'' काशी हिन्दू विश्वविद्यालय पत्रिका, वाराणसी-221005 के नाम भेजें।

5. **शोध-प्रपत्र/लेख के पाण्डुलिपि निर्माण सम्बन्धी दिशा निर्देश :**

(क) संगणक (कम्प्यूटर) पर टंकित शोध प्रपत्र/लेख की एक प्रति सी०डी० के साथ ''**प्रज्ञा**'' कार्यालय में जमा करना होगा।

(ख) पाण्डुलिपि ए-4 आकार के बाण्ड पेपर पर डबल-स्पेस में टंकित होना चाहिए। लेख के चारों तरफ 2 से०मी० की हासिया छोड़ें।

(ग) **हिन्दी एवं संस्कृत भाषा में टंकित लेखों के लिए दिशा निर्देश :**

ए.पी.एस.-डी.वी.-प्रियंका रोमन फॉन्ट, शीर्षक– 17 प्वाइंट ब्लैक, लेखक का नाम – 13 प्वाइंट इटैलिक ब्लैक, टेक्स्ट– 13 प्वाइंट, फोलियो – 11 प्वाइंट और पाद टिप्पणी 9 प्वाइंट।

(घ) **अंग्रेजी भाषा में टंकित लेखों/शोध प्रपत्रों के लिए दिशा निर्देश :**

'टाइम्स न्यू रोमन' फॉन्ट, शीर्षक – 14 प्वाइंट आल कैप्स काला, लेखक का नाम – 11 प्वाइंट सभी कैप्स इटैलिक ब्लैक, टेक्स्ट – 11 प्वाइंट ऊपर नीचे की पाद टिप्पणी और फोलियो – 9 प्वाइंट।

(ङ) **टंकित पृष्ठ संख्या : अधिकतम 10 पृष्ठ।**

6. **लेखक का घोषणा-पत्र :**

''**प्रज्ञा**'' जर्नल में प्रकाशनार्थ प्रेषित ''.....'' शीर्षक लेख/शोध प्रपत्र का लेखक मैं घोषणा करता हूँ कि—

(अ) मैं लेखक के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेता हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है, और साथ ही अपने लेख/शोध प्रपत्र को ''**प्रज्ञा**'' जर्नल में प्रकाशित होने की स्वीकृति देता हूँ।

(ब) यह लेख/शोध प्रपत्र मूल रूप से या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छापने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है।

(स) मैं ''**प्रज्ञा**'' जर्नल के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देता हूँ। ''**प्रज्ञा**'' में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापी राइट का अधिकार **सम्पादक ''प्रज्ञा''** को देता हूँ।

लेखक का नाम एवं हस्ताक्षर .....

दिनांक एवं स्थान .....

मोबाइल/टेलिफोन नं0 .....

●

पर्वत से झरती एक कृति : कामायनी

*डॉ0 राकेश कुमार द्विवेदी**

''हिमगिरी के उत्तुंग शिखर पर,
बैठ शिला की शीतल छाँह;
एक पुरुष, भीगे नयनों से,
देख रहा था प्रलय-प्रवाह।''

– 'चिंता सर्ग'

जयशंकर प्रसाद हिंदी साहित्य के उन रचनाकारों में प्रथम पाँक्तेय हैं जिन्होंने अपनी मौलिक, नवोन्मेषी प्रतिभा से द्विवेदी-युग की स्थूल और इतिवृत्तात्मक कविताधारा को अपनी मधुमय कल्पनाशीलता, सूक्ष्म सौन्दर्याभिरुचि और चित्रमयी भाषा के द्वारा एक नया रूप प्रदान किया। वे छायावाद के उन्नायक और प्रतिनिधि कवि होने के साथ-ही-साथ युग-प्रवर्तक नाटककार, निबंधकार, कहानीकार और उपन्यासकार हैं। छायावाद के क्रांतिकारी कवि 'निराला' ने उन्हें हिन्दी में 'युगांतर' उपस्थित करने वाले तीन प्रजापतियों (मैथिलीशरण गुप्त, प्रेमचंद और प्रसाद) में से एक माना है।

प्रसाद-विरचित, 'कामायनी' भारतीय चेतना का गौरव ग्रंथ है। युग-चेतना की समस्त अभिव्यक्तियों के कारण तथा मानव-हृदय की सूक्ष्म गहराइयों को संस्पर्शित करने के कारण इस महाकाव्य को अमरत्व प्राप्त है। वास्तव में यह प्रसाद के साहित्यिक जीवन की 'सिद्धावस्था' है जिसकी रचना करते समय वे 'समाधि-अवस्था' में चले जाते थे, उनके पुत्र रत्नशंकर प्रसाद ने लिखा कि — ''कामायनी का सृजन समाधि की अवस्था में किया हुआ माना जा सकता है, दरअसल वे लिखते समय समाधि की अवस्था में आ जाते थे।''[1]

कवि प्रसाद जी का दृष्टिकोण विशुद्ध मानवीय है, उसमें आध्यात्मिक आनंदवाद के प्रति दृढ़ आस्था दिखाई पड़ती है, ऐसा लगता है कि वे जीवन की चिरंतर समस्याओं का चिरंतर समाधान ढूँढने में लगे थे। 'इच्छा', 'ज्ञान' और 'क्रिया' के समन्वय का दर्शन इसी ओर संकेत करता है। प्रवृत्ति और निवृत्ति का सुखद संयोग ही जीवन का मूल है। 'कामायनी' के माध्यम से कवि ने मानवता को यही संदेश दिया है। वर्तमान युग में हिंसात्मक युद्धों की जो परम्परा चल पड़ी है, प्रसाद का उसमें विश्वास नहीं था। युद्धों द्वारा मानवता का विकास न होकर विध्वंस और विनाश ही होता है। मनु के अपराधों से शारस्वत नगर की प्रजा जब युद्ध पर उतारू हो जाती है तब इड़ा उन्हें रोकती है —

''भीषण जन संहार आप ही तो होता है,
ओ पागल प्राणी तू क्यों जीवन खोता है।
क्यों इतना आतंक ठहर जा ओ गर्वीले,
जीने दे सबको फिर तू भी सुख से जी ले।''[2]

'कामायनी' का रचनाकाल छायावाद का उत्तरार्द्ध (1936 ई0) है। यह समय भारतीय स्वतंत्रता –संघर्ष का वह समय था जब देश की राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक और सांस्कृतिक परिस्थितियाँ अत्यंत जटिल थीं, विषमता की पीड़ा और दोहरे शोषण के कारण जनता में चारों ओर असंतोष व्याप्त था। वर्ग-वर्ण, छूआछूत और भेद-भाव की भावना विद्यमान थी। साम्प्रदायिकता की भावना भी चरम पर थी जिसका परिणाम 'मुस्लिम लीग' की स्थापना थी जो बाद में देश-विभाजन का कारण बनी। चारों ओर व्याप्त निराशा ने कवियों को भी पलायनवादी, दुःखवादी और नियतिवादी बना दिया।

जहाँ तक 'कामायनी' के कथानक का सवाल है; प्रसाद ने इसे पौराणिक, मिथकीय और कल्पनाओं के माध्यम से या यूँ कहें कि इन सबके मिश्रित योग से तैयार किया है। इसका कथानक 'ऋग्वेद' और 'शतपथ ब्राह्मण' से लेकर उपनिषदों तक फैला है। 'कामायनी' के 'आमुख' में प्रसाद ने लिखा कि, ''यह आख्यान इतना प्राचीन है कि इतिहास में रूपक का भी अदभुत मिश्रण हो गया है, इसीलिए मनु, श्रद्धा और इड़ा अपना ऐतिहासिक अस्तित्व रखते हुए सांकेतिक अर्थ की भी अभिव्यक्ति करें तो मुझे कोई आपत्ति नहीं।''[3]

'कामायनी' में विलासप्रधान देव-सभ्यता के विनाश और आनंदप्रधान मानव-सभ्यता के विकास की कथा को मनोवैज्ञानिक रूपक के साँचे में ढालकर प्रस्तुत किया गया है। 'कामायनी' की भूमिका में प्रसाद ने लिखा कि, ''यदि श्रद्धा और मनु अर्थात् मनन के सहयोग से मानवता का विकास रूपक है तो भी यह बड़ा ही भावमय और श्लाघमय है। यह मनुष्यता का मनोवैज्ञानिक इतिहास बनने में समर्थ हो सकता है।''[4] 15 सर्गों में निबद्ध 'कामायनी' – कथा का आरम्भ 'जल-प्रलय' की घटना से होता है जिसका उल्लेख 'कुरान-शरीफ' तथा 'बाइबिल' आदि में भी मिलता है। प्रथम 'चिंता' सर्ग में हम 'कामायनी' के कथा-नायक को भीगे नेत्रों से इसी घटना की चिंता में डूबे हुए पाते हैं —

---

* एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, डी0ए0वी0पी0जी0 कॉलेज, वाराणसी।

''हिमगिरि के उत्तुंग शिखर पर,
बैठ शिला की शीतल छाँह,
एक पुरुष भीगे नयनों से
देख रहा था प्रलय-प्रवाह।
नीचे जल था, ऊपर हिम था,
एक तरल था एक सघन,
एक तत्व की ही प्रधानता,
कहो उसे जड़ या चेतन?''[5]

'आशा' सर्ग में काल-रात्रि के व्यतीत होने पर मनु द्वारा पाक यज्ञ के होने 'श्रद्धा' सर्ग में मनु और श्रद्धा के मिलन 'काम' सर्ग में मनु का श्रद्धा के समक्ष जीवन-डोरी में बँधने, 'वासना' सर्ग में श्रद्धा के पशु-प्रेम तथा मनु के साथ उसका प्रेमालाप, 'लज्जा' सर्ग में श्रद्धा के आत्मसमर्पण, 'कर्म' में किलात-आकुलि जैसे असुर पुरोहितों द्वारा मनु को बहलाने, 'ईर्ष्या' सर्ग में मनु के पलायन करने, 'इड़ा' में इड़ा के सहयोग से सारस्वत नगर बसाने, 'संघर्ष' में मनु और प्रज्ञा के बीच संघर्ष, 'निर्वेद' में मनु और श्रद्धा के पुनर्मिलन, 'दर्शन' सर्ग में शिव-तांडव, 'रहस्य' सर्ग में त्रिपुर रहस्योद्घाटन और 15वें 'आनंद' सर्ग में कैलाश पर समस्त कुटुम्बियों के साथ समरसता की स्थापना कर मनु अपने जीवन के अभीष्ट को प्राप्त करता है।

इस प्रकार 'कामायनी' का कथानक इतिहास, पुराण और कल्पना के मिश्रण से निर्मित हुआ है। उक्त कथानक का अधिकांश सूत्र 'ऋग्वेद', 'शतपथ ब्राह्मण', 'छान्दोग्य उपनिषद', 'मनु-स्मृति', 'ब्रह्मपुराण', 'विष्णु पुराण', 'मार्कण्डेय पुराण', 'मत्स्य पुराण', 'देवी भागवत पुराण', 'हरिवंश' तथा शैवागम साहित्य में प्राप्त होता है। प्रसाद ने स्वयं इसकी तरफ संकेत किया है। वे लिखते हैं – ''जल-प्लावन भारतीय इतिहास में एक ऐसी ही घटना है, जिसने मनु को देवों से विलक्षण मानवों की एक भिन्न संस्कृति को प्रतिष्ठित करने का अवसर प्रदान किया।''[6]

पर, 'कामायनी' के उक्त कथानक में प्रसाद ने कई नवीन परिवर्तन भी किये हैं जैसे- मनु की नौका का एक बड़ी मछली से टकराकर हिमगिरि की चोटी से लगना, पाक-यज्ञ पुत्रोत्पत्ति के लिए नहीं देव-संस्कारवश संपादित करना। इड़ा का मनु की पुत्री न होकर शारस्वत प्रदेश की महारानी बनना, मनु पर देवताओं के बदले प्रजा का कोप होना आदि। कुछ नवीन काल्पनिक घटनाओं को भी प्रसाद ने इसमें जोड़ा है, जैसे — श्रद्धा का तकली काटना (गाँधी-दर्शन का प्रभाव), उसका 'स्वप्न' देखना, मनु का ईर्ष्यावश भागना, श्रद्धा द्वारा उसे ढूढ़ना, कैलाश-मानसरोवर यात्रा और आनंदोपलब्धि आदि। 'त्रिपुर-दर्शन' और 'शिव-तांडव' जैसी घटनाएँ अलौकिक और अस्वाभाविक लगती हैं। कहानी का आरम्भ जितना चमत्कारपूर्ण है अंत उससे कहीं भी कम चमत्कारिक नहीं है।

दरअसल में, 'कामायनी' के कथानक ने चले आ रहे महाकाव्यों के परम्परागत ढाँचे को झकझोरने व तोड़ने का काम किया। डॉ0 प्रभाकर श्रोत्रिय ने बिलकुल ठीक लिखा है कि- ''असल में कामायनी की रचना हिन्दी कविता में आधुनिक परिवर्तन की सबसे बड़ी सर्जनात्मक घटना है। 'कामायनी' ने ही हिन्दी प्रबंधों को आगाह किया कि कथा और चरित्र के सतही रद्दोबदल से मौलिक क्रांति संभव न होगी। महाकाव्य का पारम्परिक ढाँचा पहली बार यहीं अस्वीकृत हुआ और विस्तार के उपादानों से कविता ने अपने को मुक्त करने की कोशिश की। सघन और जटिल बुनावट की सर्जनात्मक संभावनाओं की तलाश का गंभीर सिलसिला 'कामायनी' से ही शुरू हुआ। मिथक, फैंटेसी और मनस्तत्व का पारम्परिक गुंफन 'कामायनी' के लिए केवल शिल्प का प्रयोग नहीं था, वह काव्य के लिए अंतस्तव्य व अस्मिता की सक्रिय खोज थी। 'कामायनी' ने प्रतीकीकरण की भी नई दृष्टि दी।'[7] मुक्तिबोध ने तो 'कामायनी' को एक फैंटेसी ही कहा है।

कविता 'युग का गान' और कवि उस 'युग का गायक' होता है, इसीलिए कविता को 'युगवाणी' भी कहते हैं। वास्तव में 'कामायनी' में वर्णित जीवन-दर्शन मनु-कालीन न होकर रचनाकालीन है। यह महाकाव्य मनुकालीन परिस्थितियों, संघर्षों और हलचलों की ओट में अपने समय की परिस्थितियों, संघर्षों और हलचलों को प्रस्तुत करता है। 'कामायनी : एक पुनर्विचार' (मुक्तिबोध), 'कामायनी के अध्ययन की समस्याएँ' (डॉ0 नगेन्द्र) आदि ने इसके कथानक की जटिलताओं की ओर संकेत किया है। प्रस्तुत रचना की मूल समस्या 'बुद्धि की विगर्हणा' है। प्रश्न उठता है कि क्या बुद्धि प्रधान भौतिकवाद से लोक कल्याण और अभीष्ट आनंद की प्राप्ति संभव है? कवि आरम्भ से 'स्वप्न सर्ग' तक यही समस्या खड़ी करता है और 'संघर्ष' तथा 'निर्वेद' सर्गों में इस भौतिकता का दुष्परिणाम रक्तपात के रूप में दिखाता है —

''प्रकृति शक्ति तुमने यंत्रों से सबकी छीनी,
शोषण कर जीवनी बना दी जर्जर झीनी।''[8]

यांत्रिक सभ्यता के चरम विकास का दुष्परिणाम जो होना चाहिए वह यहाँ दिखाया गया है। आचार्य पंडित रामचन्द्र शुक्ल ने अपने इतिहास-ग्रंथ में लिखा कि — ''यह काव्य बड़ी विशद् कल्पनाओं और मार्मिक उक्तियों से परिपूर्ण है। इसका विचारात्मक आधार या अर्थ-भूमि केवल इतनी है कि श्रद्धा या विश्वासमयी रागात्मिका वृत्ति ही मनुष्य को इस जीवन में शांतिमय आनंद का अनुभव और चारों ओर प्रसार करती हुई कल्याणमार्ग तक ले जा सकती है और निर्विशेष आनंदधाम तक पहुँचाती है। 'इड़ा' या 'बुद्धि' मनुष्य को सदा चंचल रखती है। अनेक प्रकार के तर्क-वितर्क

और निर्मम कर्मजाल में फँसाये रखती है।''[9] शुक्ल जी इस काव्य के मनोवैज्ञानिक आधारों को दोषपूर्ण मानते हैं।

वस्तुतः 'कामायनी' के 'त्रिपुर-दर्शन' में 'इच्छा', 'ज्ञान' और 'कर्म' लोकों का जीवन इसी भूतल का जीवन है। धन-यश और अधिका-एषणा का कुचक्र यहाँ प्रतिक्षण चल रहा है —

''कर्मचक्र-सा घूम रहा है
यह गोलक बन नियति-प्रेरणा।
सबके पीछे लगी हुई है
कोई व्याकुल नयी एषणा।
श्रममय, कोलाहल, पीड़नमय –
विकल प्रवर्तन महायंत्र का।
क्षणभर भी विश्राम नहीं है
प्राण दास है क्रिया तंत्र का।''[10]

'कर्मलोक' का यह विहंगम दृष्य आज के भौतिकभोगी जीवन का ही दृष्य है जहाँ- आकांक्षा, उन्माद, असंतोष और उत्पीड़न का चक्र निर्बाध गतिमान है। ठीक इसी प्रकार अनंगपीड़ा की कसकभरी अनुभूतियाँ, देवियों की भाव-भंगी, सोमपान और मदिरा की मस्ती, इन्द्रियलिप्सा में देवताओं का आपादमस्तक डूब जाना वास्तव में वर्तमान-युग की विषयाशक्ति और मनुष्यों की इन्द्रिय लोलुपता का प्रतीक है —

''वह अनंग पीड़ा अनुभव-सा
अंग-भंगियों का नर्तन।
X X X X
सुरा-सुरभिमय वदन अरुण थे
नयन भरे आलस अनुराग।''[11]

सारस्वत नगर की सभ्यता और संस्कृति भी वर्तमान युगीन सभ्यता और संस्कृति का ही प्रतिबिम्ब है। यह भोगवादी सभ्यता का ही वर्तमान-विकृत रूप है। मनु अँग्रेजों की तरह एक स्वेच्छाचारी शासक की भाँति प्रजा पर निर्बाध अधिकार भी चाहता है —

मैं शासक, मैं चिर स्वतंत्र, तुम पर भी मेरा।
हो अधिकार, असीम सफल हो जीवन मेरा॥''[12]

इसी प्रकार 'कामायनी' के 'स्वप्न' सर्ग में व्यापार और उद्योग का विकास, अस्त्र-शस्त्रों के कारखाने भी रचनाकालीन व्यवसाय के प्रतीक हैं। मनु स्वयं पूँजीवादी वर्ग का प्रतीक मालूम पड़ता है। मुक्तिबोध, जिन्होंने 'कामायनी' का लगभग 20 वर्ष तक अध्ययन किया था, मनु को सामंती वृत्तियों का प्रतीक कहा है। वे लिखते हैं— ''प्रसाद का मनु उसी वर्ग का मनु है, जिस वर्ग के स्वयं प्रसाद जी हैं। उसे मनन मात्र का, मन मात्र का, मानव-मात्र का प्रतिनिधि कहना सरासर गलत है। मनु एक टाइप है।''[13] 'कामायनी' के प्रति मुक्तिबोध की अपनी मार्क्सवादी दृष्टि है, किन्तु उनके तर्क ऐसे हैं जिनसे असहमत होना भी कठिन लगता है।

'कामायनी' का जीवन-दर्शन अत्यंत विशद् है। प्रसाद का कथन है कि इस विश्व में सर्वत्र एक चेतनता विलास कर रही है वह 'चिति', 'महाचिति', 'चैतन्य' आदि नामों से जानी जाती है, वही विश्व-रूप में अपने को प्रकट कर आनंद क्रीड़ा कर रही है। सृष्टि उसी विशद् चेतना का विराट स्वरूप है, जीवन और मृत्यु उसी का खेल है —

''कर रही लीलामय आनंद,
महाचिति सजग हुई-सी व्यक्त,
विश्व का उन्मीलन अभिराम,
इसी में सब होते अनुरक्त !''[14]

अनवरत जीवन-संघर्षों के कारण प्रसाद नियतिवादी हो गये थे, उनका विशुद्ध रूप से कहना था कि 'विश्व-जीवन नियति के हाथों की कठपुतली मात्र है' नियति पर मनुष्य का कोई बस नहीं। नियति अत्यंत ही निर्मम और निरंकुश है, मनुष्य ही नहीं देवता और नक्षत्र भी उसकी आज्ञा मानने को विवश हैं —

''विश्वदेव, सविता या पूषा
सोम, मरुत, चंचल पवमान;
वरुण आदि सब घूम रहे हैं
किसके शासन में अम्लान?''[15]

क्षणभंगुरता और जीवन की नश्वरता का संकेत भी इसमें कई स्थलों पर हुआ है। प्रसाद बौद्धों के दुःखवाद, क्षणभंगवाद, परिवर्तनवाद आदि से अत्यंत प्रभावित थे, पर शैवागम दर्शन से प्रभावित होने के कारण वेदांत के विपरीत वे जीवन की नित्यता के साथ जगत् की नित्यता को भी मानते थे। यथा —

''अपने सुख, दुःख से पुलकित,
यह चेतन विश्व चराचर,
चिति का विराट वपु मंगल,
यह सत्य सतत चिर सुंदर।''[16]

'कामायनी' में भारतीय दर्शनों के अन्य पहलू कर्मवाद, शक्तिवाद, परमाणुवाद, समरसतावाद, महाकरुणावाद और आनंदवाद जैसे सिद्धांतों का बड़ा ही सूक्ष्म और ललित निरूपण देखने को मिलता है। 'कर्म' जीवन का प्रधान तत्व है, इसके बिना जाग्रति और

प्रगति संभव नहीं है। कामायनी के 'श्रद्धा' सर्ग में प्रसाद ने इसे बड़ी सजगता से चित्रित किया है —

''कर्म का भोग, भोग का कर्म,
यही जड़ का चेतन आनंद।''[17]

'कामायनी' का 'समरसतावादी दर्शन' शैवागम प्रत्यभिज्ञा-दर्शन के ''त्रिक-दर्शन'' से गृहीत है 'शिवत्व' और 'शक्तितत्व' का सामंजस्य ही इस दर्शन का मूल है। डॉ0 द्वारिका प्रसाद सक्सेना ने लिखा कि — 'प्रसाद ने विश्व में प्राप्त उस विषमता के दर्शन किये थे, जिसके फलस्वरूप मानव विराट् विश्व और विश्वात्मा की अभिन्नता और अभेद को भूलकर अपने जीवन में कोलाहल एवं हाहाकार से परिपूर्ण वर्ग, वर्ण, धर्म और प्रांतीय भेद से अपने जीवन को विषैला कर रहा था।'[18] इसीलिए प्रसाद ने 'समरसता' दर्शन द्वारा इस विष को दूर करने का प्रयास किया-

''नित्य समरसता का अधिकार
उमड़ता कारण जलधि-समान,
व्यथा की नीली लहरों बीच
बिखरते सुख-मणिगण द्युतिमान।''[19]

सारस्वत नगर में मानव कुमार को संदेश देती हुई श्रद्धा कहती है-

''सबकी समरसता का प्रचार,
मेरे सुत! सुन माँ की पुकार।''[20]

मानव-जीवन का चरम लक्ष्य 'आनंद' की प्राप्ति है, चूँकि संसार दुःखमय है और आनंद दुःख-निवृत्ति है। यह आनंद 'इच्छा', 'ज्ञान' और 'क्रिया' के परस्पर सामंजस्य से पैदा होता है इसीलिए उन्होंने व्यवसायात्मिका बुद्धि और रागात्मिका वृत्ति दोनों के समन्वय को आवश्यक बताया। डॉ0 द्वारिका प्रसाद सक्सेना ने लिखा कि— 'प्रसाद की यह स्पष्ट धारणा है कि जैसे ही व्यक्ति जड़-चेतन सभी पदार्थों को समरस और शुद्ध चेतन का स्वरूप समझने लगता है वैसे ही आत्मा का अंधकार मिटने लगता है और मनुष्य की आत्मा सर्वत्र शिव का मंगलमय दर्शन कण-कण में करने लगती है।'[21] अंतिम 'आनंद सर्ग' में मनु की भेद-बुद्धि नष्ट हो जाती है और वह सर्वत्र आनंद सवरूप (सच्चिदानंद) शिव तत्व का दर्शन करता है। यही कामायनीकार का भी अभीष्ट है-

''समरस थे जड़ या चेतन
सुंदर साकार बना था,
चेतनता एक विलसती थी
आनंद अखण्ड घना था।''[22]

प्रसाद के जीवन-दर्शन की यह विचारधारा उपनिषदों के 'ब्रह्मवाद', वेदांत के 'अद्वैतवाद', शैवदर्शन के 'ईश्वराद्वयवाद' और प्रत्यभिज्ञा दर्शन के 'अभेदवाद' को माले में मनके की तरह जोड़ती है और अपनी मूल भारतीय दार्शनिक परम्परा को प्रगतिशील बनाती है। यही कामायनीकार की सबसे बड़ी उपलब्धि है। यह ग्रंथ मानवतावाद के महान संदेश से भाष्वित है —

''औरों को हँसते देखो मनु
हँसो और सुख पाओ,
अपने सुख को विस्तृत कर लो
सबको सुखी बनाओ।''[23]

इस प्रकार पन्द्रह सर्गों में निबद्ध प्रसाद का यह महाकाव्य उनके साहित्यिक जीवन और चिंतन-मनन का चरम निदर्शन है। भाव और कलापक्ष दोनों ही दृष्टियों से इसमें छायावाद की समस्त विशिष्टताओं का एक साथ पुंजीभूत दर्शन होता है। प्रबंध काव्यों को प्रगतिशील बनाते हुए उन्हें जड़ीभूत सौन्दर्य से मुक्त कर प्रसाद ने भविष्य के साहित्यकारों के लिए एक राजमार्ग प्रशस्त कर दिया है। कामायनी की सफलता-असफलता का विश्लेषण अपनी जगह है पर भाव, भाषा, बिम्ब, प्रतीक, चित्र-रूप, दर्शन, सौन्दर्य, रस, छन्द, अलंकार, संगीतात्मकता आदि दृष्टियों से यह काव्य सम्पूर्ण हिन्दी साहित्य में अनूठा और विरल है और विश्व-साहित्य में समादरणीय स्थान पाने का अधिकारी भी। कवित्व की जिस समाहार शक्ति का परिचय इसमें मिलता है वह छायावाद ही नहीं समूची हिन्दी कविता में अद्वितीय है।

संदर्भ-सूची

1. डॉ0 कमलकिशोर गोयनका, सम्पादक- 'हिन्दी अनुशीलन, (जयशंकर प्रसाद विशेषांक) संयुक्तांक 1-4, वर्ष-31 भारतीय हिन्दी परिषद, इलाहाबाद- 211002 रत्नशंकर प्रसाद का लेख – 'प्रसाद की रचना और जीवन यात्रा, पृ0 11
2. जयशंकर प्रसाद, 'कामायनी', लोक भारती प्रकाशन, 15ए, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद, 1994, 'संघर्ष सर्ग', पृ0 183
3. जयशंकर प्रसाद, 'कामायनी', वही, आमुख, पृ0 8
4. वही, पृ0 1
5. जयशंकर प्रसाद, 'कामायनी', वही, 'चिंतासर्ग', पृ0 9
6. वही, पृ0 4
7. डॉ0 प्रभाकर श्रोत्रिय : 'कालयात्री है कविता', राधाकृष्णन प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण- 1993, पृ0 113
8. जयशंकर प्रसाद, 'कामायनी', वही, 'संघर्ष सर्ग'पृ0 181
9. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, 'हिन्दी साहित्य का इतिहास', नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, 32वाँ संस्करण, वि0सं0 2054, पृ0 373
10. जयशंकर प्रसाद, 'कामायनी', वही, 'रहस्य सर्ग', पृ0 242

11. वही, 'चिंता सर्ग', पृ0 17
12. वही, 'संघर्ष सर्ग', पृ0 180
13. गजानन माधव मुक्तिबोध, 'कामायनी एक पुनर्विचार', राजकमल प्रकाशन प्रा0लि0, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण- 1950, पृ0 23
14. जयशंकर प्रसाद, 'कामायनी', वही, 'श्रद्धा सर्ग', पृ0 53
15. वही, 'आशा सर्ग', पृ0 29
16. वही, 'आनंद सर्ग', पृ0 261
17. वही, 'श्रद्धा सर्ग', पृ0 56
18. डॉ0 कमलकिशोर गोयनका, सम्पादक- 'हिन्दी अनुशीलन', वही, पृ0 35
19. जयशंकर प्रसाद, 'कामायनी', वही, 'श्रद्धा सर्ग', पृ0 54
20. वही, 'दर्शन सर्ग', पृ0 222
21. डॉ0 कमलकिशोर गोयनका, सम्पादक- 'हिन्दी अनुशीलन', वही, पृ0 40
22. जयशंकर प्रसाद, 'कामायनी', वही, 'आनंद सर्ग', पृ0 267
23. वही, 'कर्म सर्ग', पृ0 122

●

महान् वाग्गेयकार पं0 बलवन्तराय भट्ट 'भावरङ्ग' जी की सांगीतिक यात्रा

प्रीति सिंह एवं डॉ0 ज्ञानेश चन्द्र पाण्डेय***

भारतीय संगीत के अनन्त कोष को अनेक विद्वानों ने अपनी प्रतिभा तथा सुन्दर रचनाओं से समृद्ध किया है। बीसवीं शताब्दी के महान् वाग्गेयकारों में महान् गुरु एवं संगीतज्ञ पं0 बलवंतराय भट्ट 'भावरङ्ग' जी का नाम अत्यन्त ही आदर एवं सम्मानपूर्वक लिया जाता है। महान् संगीतज्ञ पं0 शार्ङ्गदेव जी द्वारा लिखित महान ग्रंथ 'संगीत रत्नाकर' में वर्णित है कि-

'वाचं गेयं च कुरुते यः स वाग्गेयकारकः'।

अर्थात् वह संगीतज्ञ, जो स्वर-रचना एवं पद-रचना दोनों में विशिष्ट रूप से पारंगत हो ऐसे महान् विद्वान् को वाग्गेयकार की संज्ञा दी जाती है।

भारत सरकार द्वारा सम्मानित एवं 'पद्मश्री' नामक विशेष अलंकरण से विभूषित पं0 बलवंतराय भट्ट जी को सम्पूर्ण संगीत जगत् में 'भावरङ्ग' उपनाम से जाना जाता है। पं0 बलवन्तराय भट्ट 'भावरङ्ग जी' का जन्म 23 सितम्बर 1921 ई0 में गुजरात के भावनगर नामक स्थान पर हुआ था। पं0 बलवंतराय भट्ट जी के पिता जी का नाम श्री गुलाबराय पुरुषोत्तम भट्ट एवं माता जी का नाम श्रीमती हरकुँवर था। पं0 बलवंतराय भट्ट जी के पिता जी रेलवे विभाग में एक सामान्य पद पर नौकरी करते थे। भट्ट जी का परिवार काफी बड़ा था। अतः भट्ट जी के परिवार की आर्थिक दशा निम्न मध्यवर्ग की ही थी। पं0 बलवंतराय भट्ट जी के पिता श्री गुलाबराय पुरुषोत्तम भट्ट जी कविताएं लिखा करते थे तथा माता अपनी मधुर कण्ठ द्वारा सुन्दर एवं मधुर लोकगीत का गायन किया करती थीं। इसी कारण पं0 बलवंतराय भट्ट जी में भी बीजरूप में काव्य एवं संगीत की प्रतिभा विद्यमान थी। पं0 बलवंतराय भट्ट जी ने 'विक्टोरिया मेमोरियल स्कूल फॉर द ब्लाइण्ड' नामक स्कूल में पढ़ते हुए ही विभिन्न भाषाओं की शिक्षा भी ग्रहण कर लिया था। विभिन्न सांगीतिक वाद्यों जैसे-तबला, इसराज, हारमोनियम, जलतरङ्ग इत्यादि को बजाने की कला एवं गायन की विशेष कला का ज्ञान भी पं0 बलवंत राय भट्ट जी ने विद्यालय में रहते हुए ही ग्रहण कर लिया था। पं0 बलवंतराय भट्ट जी विद्यालय द्वारा आयोजित किये जाने वाले अनेक कार्यक्रमों में भी निरन्तर भाग लिया करते थे।

पं0 बलवंतराय भट्ट जी ने 13 वर्ष की अल्पायु से ही कविताएं लिखना प्रारम्भ कर दिया था। पं0 जी ने अपनी प्रथम कविता का लेखन गुजराती भाषा में किया। इस कविता की भाषा एवं भाव अत्यन्त ही सरल थे जो इस प्रकार हैं-

''करूँ विनती तने जगनाथ, विनय थी जोड़ी जुगल हूँ हाथ।
सुबुद्धि सर्वदा देजे, कुबुद्धि झट हरी लेजे।''[1]

विद्यालय में संगीत गायन एवं वादन की शिक्षा ग्रहण करते हुए पं0 बलवंतराय भट्ट जी में संगीत के प्रति विशेष रुझान एवं प्रतिभा उभरकर सामने आई। पं0 जी प्रतिदिन नियमित रूप से उ0 फैयाज खाँ, उ0 अब्दुल करीम खाँ, पं0 नारायण राव व्यास एवं मास्टर बसन्त इत्यादि महान् संगीत कलाकारों का गायन ध्वनि मुद्रिकाओं के माध्यम से सुना करते थे। इसी समय ही विद्यालय में शिक्षा ग्रहण करने वाले प्रभाकर कोलम्बेकर नामक एक विद्यार्थी के द्वारा पं0 बलवंतराय भट्ट जी को महान् एवं विशिष्ट रूप से सुविख्यात गुरु पं0 ओम्कारनाथ ठाकुर जी के गायन के विषय में पता चला, तत्पश्चात् भाभा साहब के कठिन प्रयास के फलस्वरूप भारतवर्ष के सर्वश्रेष्ठ एवं महान् संगीतकार एवं अन्यतम् कलाकार के चरणों में विशिष्ट एवं गहन शिक्षण प्राप्त करने का पं0 बलवंतराय भट्ट जी को सुअवसर प्राप्त हुआ। महान् गुरुवर्य पं0 ओम्कारनाथ ठाकुर जी के सान्निध्य में 12 वर्षों तक संगीत का विशिष्ट शिक्षण ग्रहण करने के उपरान्त पं0 बलवंतराय भट्ट जी ने उनके विद्यालय 'संगीत निकेतन' से 'संगीताचार्य' की विशिष्ट एवं सर्वोच्च पदवी प्राप्त की तथा गुरु जी के साथ विभिन्न संगीत समारोहों तथा यात्राओं में जाने लगे।

एक महान् एवं सफल गायक कलाकार तथा अनेक वाद्यों के वादन में पारंगत होने के साथ ही पं0 बलवंतराय भट्ट जी संगीत-रचना की विलक्षण एवं अद्भुत कला तथा प्रतिभा से परिपूर्ण थे। अपने महान् गुरु पं0 ओम्कारनाथ ठाकुर जी के साथ प्रतिबिम्ब की भाँति रहने वाले पं0 बलवन्तराय भट्ट जी 'काशी हिन्दू विश्वविद्यालय' में संगीत महाविद्यालय की स्थापना होने पर वाराणसी में आये तथा 19 अगस्त सन् 1950 को शनिवार के दिन 'श्री कला सङ्गीत भारती' के उद्घाटन के पश्चात् 21 अगस्त 1950 को सोमवार के दिन से कक्षाएं आरम्भ होने पर प्रथम कक्षा पं0 बलवंतराय भट्ट जी द्वारा ही ली गयी। इसी समय से छात्र-छात्राओं के मध्य पं0 बलवंतराय भट्ट जी ने लगभग 30 वर्षों तक एक कर्तव्यनिष्ठ एवं आदर्श शिक्षक के रूप में समर्पित भावना एवं निःस्वार्थ रूप से संगीत का ज्ञान छात्र-छात्राओं को प्रदान किया।

पं0 बलवंतराय भट्ट जी ने सन् 1941 से अपने महान् गुरु 'सङ्गीत-मार्तण्ड' पं0 ओम्कारनाथ ठाकुर जी के साथ अनेक

---

* शोध छात्रा, गायन विभाग, संगीत एवं मंचकला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।
* * असिस्टेंट प्रोफेसर, गायन विभाग, संगीत एवं मंचकला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

कार्यक्रमों में देश के विभिन्न छोटे-बड़े शहरों में जाना प्रारम्भ कर दिया था तथा विभिन्न संगीत-समारोहों में भाग भी लिया करते थे। पं0 बलवंतराय भट्ट जी के जीवन एवं व्यक्तित्व से सम्बन्धित समस्त पहलुओं पर गहन अध्ययन करने के परिणामस्वरूप इस बात का पता चलता है कि प्रारम्भ से ही पं0 बलवंतराय भट्ट जी की रुचि अध्यात्म एवं सत्सङ्ग में रही है। पं0 बलवंतराय भट्ट जी समय एवं आयु के साथ-साथ जैसे-जैसे निरन्तर परिपक्व होते गये वैसे-वैसे ही उन्हें अनेक महान् हिन्दी एवं गुजराती कवियों की रचनाएं श्रवण करने के शुभ अवसर प्राप्त हुए। जिसके कारण उनके आध्यात्मिक रुचि को और भी अधिक बल मिलता गया। कालान्तर में पं0 बलवंतराय भट्ट जी को अनेक साधु-संतों के प्रवचनों को सुनकर उन्हें आत्मसात् करने का लाभ भी प्राप्त हुआ तथा विभिन्न सत्सङ्ग में जाने का अवसर भी प्राप्त हुआ। पं0 बलवंतराय भट्ट जी ने सत्सङ्ग की महिमा से प्रभावित होकर भी अनेक सुन्दर रचनाएं की हैं।

'श्वान, शूकर ने विडाल, खर, तेना टोळा नुं जे जन्त।

तेने मूके हरि करी, जेने मळे सतगुरु सन्त।।''[2]

पं0 बलवंतराय भट्ट जी द्वारा रचित कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं जिनमें निराकार समत्व, स्वयं प्रकाशित, अरूपी, अनन्त में विहार इत्यादि भाव व्यक्त होते हैं-

स्थायी

''अवधू! ऐसा रूप तुम्हारा।

रूप-अरूपी, रङ्ग रङ्गीला, बिना अगन उजियारा।

अन्तरा

नाहिंन सजत सजाव न कोऊ, आपै आप सँवारा।

बना न बिगरा सहज सलोना, समता का सिङ्गारा।।

अन्तरा

पञ्छीवत पथ अम्बर माँहि, धरा-धर्म सों न्यारा।

भूतल जाल परी परछाँई, आप अनन्त विहारा।।

अन्तरा

ध्याता ध्येय ध्यान होई आपहि, ब्रह्म भाव विस्तारा।

आतम में परमातम पाया, त्रिभुवन तारनहारा।।''[3]

संगीत द्वारा ईश्वर की भक्ति-साधना तथा भगवद्-भजन के फलस्वरूप हृदय को प्राप्त होने वाला सन्तोष ही पं0 बलवंतराय भट्ट जी के जीवन का परम लक्ष्य था। पं0 बलवंतराय भट्ट जी के आध्यात्मिक स्वरूप का परिचय उनकी रचनाओं से पूर्णरूपेण प्राप्त होता है।

''नेत्रहीन तन मोंहि प्रिय, भयौ नाद सन्धान।

नारद सों वर पायऊ, सीयराम गुनगान।।

सीयराम गुणगान, गीत प्रीत सों गाऊँ।।

स्वर-पद-ताल-विधान, ''भावरङ्ग' रङ्गाऊँ।।

गीत-राग-सर हंसमति, सद्गुरु कृपा प्रमान।

पान करौं हरिगान रस 'प्रणव रङ्ग' वरदान।।'[4]

पं0 बलवंतराय भट्ट जी ने महामना पं0 मदनमोहन मालवीय जी के दर्शन के पश्चात् उनके व्यक्तित्व से प्रभावित होकर महामना जी के कर्म के प्रति दृढ़-निश्चयी तथा धर्म परायण व्यक्तित्व का पूर्ण परिचय देते हुए सन् 1961 में महामना पं0 मदनमोहन मालवीय जी की जन्मशताब्दी के शुभ अवसर पर स्वयं नेतृत्व करते हुए रागबद्ध एवं तालबद्ध करके 'महामना-स्तुति' की रचना की तथा इस रचना को 'संगीत एवं ललित कला सङ्काय' के विद्यार्थियों द्वारा प्रस्तुत भी करवाया। 'महामना-स्तुति' इस प्रकार हैं-

स्थायी-

''हे! महामना महान्।

आज भव्य भारत गावत तव विमल यशोगान।

अन्तरा-

बीते वर्ष शत एक, हुए अनघ तव दिव्य अवतरण,

पुण्यश्लोक! तव सुकृत स्मरत लोकमङ्गलकरन,

कर्मवीर पुनि धर्मवीरवर, धन्य नाम तव मदन मोहन को

रङ्ग्यो 'भाव' हित सर्वदा शिव समान।''[5]

पं0 बलवंतराय भट्ट जी ने सन् 1950 में 'आत्मदर्शन' शीर्षक वाली गुजराती भाषा में एक कविता की रचना की। इस कविता को सन् 1958 में अमेरिका के ज्यूइश ब्रेल इन्स्टीट्यूट द्वारा आयोजित अन्तर्राष्ट्रीय साहित्य प्रतियोगिता में पुरस्कृत भी किया गया ये कार्यक्रम नेत्रहीनों के लिए आयोजित किया गया था। पं0 बलवंतराय भट्ट जी द्वारा रचित 'आत्मदर्शन' शीर्षक वाली सुन्दर कविता इस प्रकार हैं-

''हुँ देह नहीं चैतन्य रूप,

उपमेय नहीं हुँ तो अनूप।

आत्मा अविनाशी पूर्ण सार,

विश्वे तेनो समरस प्रसार,

ए अचल राज्य नो अमर भूप,

हुँ देह नहीं चैतन्य रूप।।

आनन्द अनादि गङ्ग वहे,
वेदो पण न्हाता 'नेति' कहे,
एवा जल नो हुँ अतल कूप,
हुँ देह नहीं चैतन्य रूप॥
थावा-जावा नो भाव नहीं
म्हारा-तार नो दाव नहीं,
छे एकमेव बस एक रूप,
हुँ देह नहीं चैतन्य रूप॥''

उपर्युक्त लिखित गुजराती कविता का हिन्दी अनुवाद इस प्रकार है-

''मैं देह नहीं चैतन्य रूप,
उपमेय नहीं मैं तो अनूप।
आत्मा अविनाशी पूर्ण सार,
जग में उसका समरस प्रसार,
उस अमित राज्य का अमर भूप,
मैं देह नहीं चैतन्य रूप॥
आनन्द अनादि गङ्ग बहे,
जहँ निगम नहाते 'नेति' कहें,
ऐसे जल का मैं अतल कूप,
मैं देह नहीं चैतन्य रूप॥
मेरे-तेरे का दाव नहीं,
होने-मिटने का भाव नहीं,
हूँ एकमेव बस एक रूप,
मैं देह नहीं चैतन्य रूप॥''[6]

पं0 बलवंतराय भट्ट जी ने अपनी आरम्भिक रचनाओं में मानव जीवन के मूल्यों को भली-भाँति स्पष्ट रूप से बताया है। इस प्रकार पं0 बलवंतराय भट्ट जी ने अपनी कविता यात्रा गुजराती भाषा से प्रारम्भ करके हिन्दी भाषा के पथ पर आगे बढ़ाया। पं0 बलवंतराय भट्ट जी की रचनाएं पूर्णतः त्रुटिरहित हैं तथा पं0 भावरङ्ग जी में वाग्गेयकार के समस्त गुण विद्यमान थे।

पं0 बलवंतराय भट्ट जी द्वारा रचित एक रचना का उदाहरण इस प्रकार है-

शब्दानुशासन-

स्थायी- ''नाचति वृषभानु-नन्दिनी,
सोहति मुखहास-मन्दिनी,
आनन्द-कन्दिनी॥
अन्तरा- मनमोहन श्याम-सङ्गिनी,
'भावरङ्ग' अाकि रङ्गिनी,
ताल की तरल तरङ्गिणी,
अति उर उमङ्गिगी।

अन्तरा-

रासेश्वर-हृदय-रञ्जिनी,
केकि-नृत्य-गर्व-गञ्जिनी,
भव-विकार-दल-प्रभञ्जिनी,
नयना-सुधाञ्जनी॥''[7]

ऊक्त पद में समास के उदाहरण-

(1) वृषभानु-नन्दिनी ...षष्ठी तत्पुरुष या सम्बन्ध तत्पुरुष

(2) श्याम-सङ्गिनी...षष्ठी तत्पुरुष या सम्बन्ध तत्पुरुष

(3) रासेश्वर हृदय-रञ्जनी ...षष्ठी तत्पुरुष या सम्बन्ध तत्पुरुष

(4) केकि-नृत्य-गर्व-गञ्जिनी... षष्ठी तत्पुरुष या सम्बन्ध तत्पुरुष

(5) भव-विकार-दल-प्रभञ्जनी...षष्ठी तत्पुरुष या सम्बन्ध तत्पुरुष

(6) नयना-सुधाञ्जनी ... सप्तमी तत्पुरुष या अधिकरण तत्पुरुष।[8]

सन्धि के उदाहरण

(1) रासेश्वर = रास + ईश्वर (अ + ई = ए) गुण सन्धि

सुधाञ्जनी = सुधा + अंजनी (आ + अ = आ) दीर्घ सन्धि

पं0 बलवंतराय भट्ट 'भावरङ्ग' जी ने अपनी महान् रचना 'भावरङ्ग-लहरी' को तीन भागों में प्रकाशित किया है। पं0 भावरङ्ग जी ने 'भावरङ्ग-लहरी' की रचना विशेष रूप से शास्त्रीय संगीत के विद्यार्थियों एवं समस्त संगीत प्रेमियों के लिए किया है। पं0 बलवंतराय भट्ट जी ने विभिन्न देवी-देवता स्तुति, प्रकृति-वर्णन, उपनिषद्-मन्त्रों तथा श्रीमद्भगवत् गीता के श्लोकों का छायानुवाद, प्रकृति-वर्णन, पौराणिक प्रसङ्ग, दार्शनिक-सिद्धान्त, नाद-महिमा, बोधपरक नीति-वचन, सङ्गीत महिमा, गुरु-महिमा, देशभक्ति, श्रृंगार की संयोग एवं विप्रलम्भ अवस्थाएं इत्यादि वर्ण्य-विषय के साथ ही 'भावरङ्ग-लहरी' के तीनों भागों की रचना की है। पं0 भावरङ्ग जी द्वारा समस्त संगीत जगत् में उनकी अप्रतिम प्रतिभा एवं योगदान हेतु

अनेक सरकारी एवं गैर-सरकारी संस्थाओं द्वारा विशेष उपाधियां एवं सम्मान पं0 भावरङ्ग जी को दिये गये।

पं0 बलवंतराय भट्ट जी में एक विशेष बात यह थी कि उन्होंने जब भी अपने कार्यक्रमों की प्रस्तुति दी सदैव उन्होंने अपने गायन का आरम्भ श्लोक का गायन करके ही किया है। पं0 भावरंग जी यदि रागदारी प्रस्तुत करने वाले होते थे तो वे सर्वप्रथम उसी राग में श्लोक अथवा 'राग-ध्यान' की प्रस्तुति देते थे तथा कभी यदि प्रार्थना गायन करना होता था तब भी वे आरम्भ में दोहे अथवा श्लोक का गायन अवश्य ही किया करते थे। पं0 बलवंत राय भट्ट 'भावरङ्ग' जी ने जिन-जिन श्लोकों, दोहों एवं सोरठों को कई बार गाया तथा जो उन्हें अत्यधिक प्रिय थे उनमें से कुछ रचनाओं की सूची इस प्रकार है-

''वन्दे बोधमयं नित्यं गुरुं शंकर रूपिणम्।
यमाश्रितो हि वक्रोऽपि चन्द्रः सर्वत्रे वन्धते।।
दयमान दीर्घ नयनां देशिकरूपेण दर्शिताभ्युदयाम्।
वामकुच निहित वीणां वरदां सङ्गीत मातृका वन्दे।।
सरिगमपधनिरतान्तां वीणासंक्रान्तकान्तहस्तान्ताम्।
शान्तां मृदुलस्वान्तां कुचभर तान्तां नमामि शिवकान्ताम्।।
ओङ्कारपञ्जशुकीमुपनिषदुद्यानकेलिकलकण्ठीम्।
आगमविपिनमयूरी मार्यामन्तर्विभावमेगौरीम्।।
ब्रह्मग्रन्थिजमारूतानुगतिना चित्तेन छत्पङ्कजे
सूरीणामनुरञ्जकश्रुतिपदं योऽयं स्वयं राजते।
यस्माद्ग्रामविभागवर्णरचनाऽलङ्कारजातिक्रमो
वन्दे नादतनुं तमुद्धुरजगद्गीतं मुदे शङ्करम्।।
यं ब्रह्मावरुणेन्द्ररुद्रमरुतः स्तुन्वन्ति दिव्यैः स्तवैः
वेदैः साङ्गपदक्रमोपनिषदैर्गायन्ति यं सामगाः।
ध्यानावस्थिततद्गतेन मनसा पश्यन्ति यं योगिनो
यस्यान्तं न विदुः सुरासुरगणा देवाय तस्मै नमः।।
आरुढ़ा श्वेतहंसे भ्रमति च गगने दक्षिणे चाक्षसूत्रम्।
वामेहस्ते च दिव्याम्बरकनकमयं पुस्तकं ज्ञानगम्या।।
सा वीणां वादयन्ति स्वकरकरजपैः शास्त्रविज्ञानशब्दैः।
क्रीऽन्ती दिव्यरूपा करकमतधरा भारती सुप्रसन्ना।।
धीं धीं धीं धारणख्ये घृतिमतिनतिर्भिर्नामभि कीर्तनीसे
नित्येऽ नित्ये निमित्ते मुनिगणनमिते नूतने वै पुराणे।।
पुण्ये पुण्यप्रवाहे हहिरनमिते नित्यशुद्धे सुवर्णे।
मातर्मात्रार्धतत्त्वे मतिमति मतिदे माधवप्रीतिमोदे।।
शुक्लां ब्रह्मविचारसारपरमाम् आद्यांजगद्व्यापिनीं।
वीणापुस्तकधारिणोमभयदां जाड्यान्धकारापहाम्।।
हस्ते स्फाटिकमालिकां विदधतीं पद्मासने संस्थिंता।
वन्दे तां परमेश्वरीं भगवतीं बुद्धिप्रदां शारदाम्।।''[9]

पं0 बलवन्तराय भट्ट 'भावरङ्ग' जी ने अपनी पुस्तक 'भावरङ्ग-लहरी' में अधिकांश रागों का विवरण देते समय उनके आरम्भ में राग-बोधक कविताओं का भी विवरण दिया है वैसे तो पं0 भावरङ्ग जी द्वारा रचित सभी कविताएं भारतीय संगीत जगत् में अपना एक विशिष्ट स्थान रखती है किन्तु उनकी राग भैरवी में रचित राग-बोधक कविता विशेष उल्लेखनीय है। राग-भैरवी में रचित राग-बोधक कविता को पं0 भावरङ्ग जी ने कई बार मंच पर भी राग-भैरवी के ध्यान-श्लोक के उपरान्त प्रस्तुत किया है। जो इस प्रकार है-

''स्फटिकरचितपीठे रम्यकैलासशृङ्गे विकचकमलपत्रैर्श्छन्ती महेशम्।
करधृतघनवाद्या पीतवर्णायताक्षी सुकविभिरियमुक्ता भैरवी भैरवस्त्री।।
हिमगिरि शिखर कैलास पर, कैलासपत आराधती।
दिनमुखप्रकट् सप्तस्वरा, रि ग ध नि कोमल साधती।।
स्वरमेल अनुमत् नाम की, कर्णाटकी तोड़ी कही।
रागाधिपतभैरव-प्रिया, यह भावपूरित भैरवी।।
कुन्द इन्दु सम देह, उमारमण करुणा अयन।
जाहि दीन पर नेह, करहु कृपा मर्दन भयन।।
नील सरोरूह स्याम तरूण अरूण वारिज नयन।
करहु सो मम उर धाम सदा क्षीरसागर शयन।।
बन्दौं गुरुपद कञ्ज कृपासिन्धु नररूप हरि।
महामोह तम पुञ्ज जासु बचन रविकर निकर।।
वह सोभा समाज सुख कहत न बनै खगेस।
बरनैं सारद सेष श्रुति सो रस जान महेस।।
नभ दुन्दुभी बाजहिं पिुल गन्धर्व किन्नर गावहीं।
नाचहिं अपछरा बृन्द परमानन्द सुर मुनि पावहीं।
भरतादि अनुज विभीषनाङ्गद हनुमदादि समेत ते।
गहे छत्र चामर ब्यजन धनु असि चर्म सक्ति विराजते।।''[10]

इस प्रकार अपने महान् प्रकाण्ड गुरु पं0 ओम्कारनाथ ठाकुर जी द्वारा प्राप्त अमूल्य ज्ञान के द्वारा पं0 बलवंतराय भट्ट 'भावरङ्ग' जी ने समस्त संगीत-जगत् को अपनी रचनाओं के द्वारा अत्यधिक ही सर्वोच्च स्थान दिलाया है।

जीवन-पर्यन्त संगीत सेवा में लीन तथा शिक्षण से जुड़े रहने के फलस्वरूप पं0 बलवन्तराय भट्ट 'भावरङ्ग' जी का शिष्य-परिवार भी अत्यधिक विशाल है। पं0 'भावरङ्ग' जी द्वारा रचित-रचनाओं को उनके विभिन्न देशों में रहने वाले शिष्य-शिष्याएं तो गाते ही हैं साथ ही साथ अन्य बड़े कलाकार भी अपने गायन, वादन तथा नृत्य के माध्यम से अपने-अपने कार्यक्रम में पं0 भावरङ्ग जी द्वारा रचित-रचनाओं का भी गायन किया करते हैं।

पं0 बलवंतराय भट्ट 'भावरङ्ग' जी द्वारा रचित-रचनाओं को प्रस्तुत करने वाले कुछ कलाकारों के नाम इस प्रकार हैं[11]-

सुविख्यात वॉयलिन वादिका 'पद्मभूषण' डॉ0 श्रीमती एन0 राजम्, श्री कनक राय द्विवेदी, डॉ0 दामोदर होता, प्रो0 चित्तरञ्जन ज्योतिषी, प्रो0 प्रदीप कुमार दीक्षित, डॉ0 राजेश्वर आचार्य, श्रीमती प्रभा मुखर्जी, श्री रामशंकर मिश्र, श्री अजित भट्टाचार्य, डॉ0 वनमाला पर्वतकर, डॉ0 श्रीमती अर्चना दीक्षित, डॉ0 श्रीमती स्वरवन्दना शर्मा (पुत्री), डॉ0 श्रीमती प्रतिमा कुमार प्रमुख हैं।

इसके अतिरिक्त विदेशी शिष्यों में प्रो0 हेराल्ड एस पॉवर्स, श्रीमती हेरियट, श्री हैनियल बिटकर (वंशी वादक), सुश्री ऐबी रॉबिनोविट्ज़ (वंशी) तथा श्रीमती सन्द्रा प्रमुख हैं तथा जिन कलाकारों ने पं0 बलवंतराय भट्ट 'भावरङ्ग' जी से साक्षात् शिक्षा ग्रहण नहीं की, परन्तु उनकी रचनाओं को अत्यधिक सरलता एवं प्रभुत्व के साथ प्रस्तुत करते हैं, ऐसे कलाकारों में श्री रसिकलाल अन्धारिया, श्रीमती प्रदीप्ता गाङ्गुली, श्री काशीनाथ बोडस, डॉ0 श्रीमती वीणा सहस्रबुद्धे, सुश्रीमालिनी राजुरकर, कल्पना झोकरकर, श्रीकान्त बाकरे, डॉ0 श्रीमती विद्या कातगडे, डॉ0 मोनिका शाह, सुश्री गोपा चैटर्जी, श्रीमती मिताली बैनर्जी भौमिक, डॉ0 श्रीमती सोमा घोष, डॉ0 श्रीमती सङ्गीता शङ्कर (वॉयलिन), सुश्री कला रामनाथ (वॉयलिन) तथा श्री रोनू मजूमदार (वंशी) प्रमुख हैं।

एक महान् संगीतज्ञ एवं कलाकार तथा वाग्गेयकार के रूप में पं0 बलवंतराय भट्ट जी ने सम्पूर्ण संगीत जगत् को अपना अभूतपूर्व योगदान दिया।

अतः उपर्युक्त तथ्यों से पूर्णतः यह स्पष्ट हो जाता है कि पं0 बलवंतराय भट्ट जी सम्पूर्ण संगीत जगत के एक ऐसे विलक्षण प्रतिभासम्पन्न महान् वाग्गेयकार थे जिन्होंने जीवन-पर्यन्त समस्त संगीत जगत् की निःस्वार्थ सेवा की। ऐसे महान् वाग्गेयकार को शत् शत् नमन्।।

सन्दर्भ-ग्रन्थ-सूची

1. 'स्वर-ताल-पद' के शिल्पी 'पद्मश्री' पं0 बलवन्तराय भट्ट 'भावरङ्ग' (व्यक्तित्व एवं कृतित्व)-डॉ0 लयलीना भट्ट, प्रकाशन-संस्कृतिः शोध एवं प्रकाशन, वाराणसी, प्रथम संस्करण 2012, पृ0 6
2. वही, पृ0 25
3. भावरङ्ग-लहरी, भाग-2, रचनाकार एवं प्रकाशक-पं0 बलवंतराय गुलाबराय भट्ट, वाराणसी, 1974, पृ0 327
4. भावरङ्ग अमृत महोत्सव (स्मारिका), सम्पादिका-स्वरवन्दना शर्मा, वाराणसी, 1997, पृ0 8
5. भावरङ्ग-लहरी, उपरलिखित, भाग-1, रचनाकार एवं प्रकाशक-पं0 बलवन्तराय गुराबराय भट्ट, वाराणसी, 1964, पृ0 327
6. नादरूप, अंक-1, श्री कला सङ्गीत भारती, प्रथम दशकपूर्ति समारोह विशेषांक प्रधान सम्पादिका-डॉ0 प्रेमलता शर्मा, 1961 (गुजराती कविता का हिन्दी रूपान्तर)।
7. भावरङ्ग-लहरी, भाग-1, रचनाकार एवं प्रकाशक-पं0 बलवन्तराय गुलाबराय भट्ट, वाराणसी, 1964, पृ0 90
8. 'स्वर-ताल-पद' के शिल्पी 'पद्मश्री' पं0 बलवन्तराय भट्ट 'भावरङ्ग' (व्यक्तित्व एवं कृतित्व)-डॉ0 लयलीना भट्ट, प्रकाशन-संस्कृतिः शोध एवं प्रकाशन, वाराणसी, प्रथम संस्करण 2012, पृ0 38
9. वही, पृ0 157-158
10. भावरङ्ग-लहरी, भाग-2, रचनाकार एवं प्रकाशक-पं0 बलवंतराय गुलाबराय भट्ट, वाराणसी, 1974, पृ0 325
11. 'स्वर-ताल-पद' के शिल्पी 'पद्मश्री' पं0 बलवन्तराय भट्ट 'भावरङ्ग' (व्यक्तित्व एवं कृतित्व)-डॉ0 लयलीना भट्ट, प्रकाशन-संस्कृतिः शोध एवं प्रकाशन, वाराणसी, प्रथम संस्करण 2012, पृ0 161

●

अश्वघोष के महाकाव्यों में कृषि एवं पशुधन

डॉ0 गटुलाल पाटीदार[*]

सभ्यता के आरम्भ से ही कृषि एवं पशुपालन मनुष्य का मुख्य जीविकोपार्जन का साधन रहा है, इस पर हर राजसत्ता ने अपनी श्रेष्ठतम नीति-निर्माण कर गुणवत्तापूर्ण बनाने का प्रयास किया गया है। यह आलेख 'बुद्धचरितम्' एवं 'सौन्दरनन्दम्' के सन्दर्भों से परिपूर्ण किया गया है। आईये इस विषय को दार्शनिक महाकवि अश्वघोष की दिव्यदृष्टि से दर्शन करने का अल्पप्रयास करते हैं।

कृषक-स्वामी का सम्बन्ध

''काले च देशे प्रववर्ष देवः''[1] उस राजा शुद्धोदन के राज्य में देवता समय एवं उचित स्थान पर वृष्टि करते थे, जिससे उसका राज्य समृद्ध, वैभवशाली, कृषियोग्य एवं सम्पन्न था। राजा शुद्धोदन के समय कृषि, पशुपालन एवं व्यापार समृद्धशाली था। ''तदाकृतेनापि कृषिश्रमेण'[2] उस शाक्यराज्य के राज्य में कृषिश्रम ज्यादा किये बिना भी फल, धान्य एवं औषधियों की खूब उपज हुयी। उसके कुशल खेतीहर, पशुपालन व्यवस्था, वाणिज्य-व्यापार और किसान-कृषक के श्रेष्ठ नेतृत्व क्रियान्वयन कौशल का ही परिचायक माना जा सकता है। स्वामी-किसान का सम्बन्ध ईश्वरीय है, क्योंकि ईश्वर जलवर्षा कर किसान को समृद्ध करता है और कृषक श्रेष्ठ उपज कर स्वामी को। संसार के सर्ववैभव की पुष्टि केवल अन्न और अन्नदाता से ही होती है। किसान-स्वामी का सम्बन्ध अन्न और अन्नदाता का है। जगत् दाता और गृहीता से ही गम्यमान है, इसीलिए उस राजा शुद्धोदन ने कृषकों के लिए कूप (बावड़ियाँ) बनवाई थी।[3] **''ददौ द्विजेभ्यः कृशनं च गाश्च''**[4] ब्राह्मणों को सोना एवं गाएँ दान में दी। राज्य समृद्ध था राजा दान पुण्य तथा कृषिविस्तार योजनाओं पर अपना अपना विशेष ध्यानाकर्षण करते हैं।

कृषिकार्य उद्योगपूर्ण

अश्वघोष स्वयं मानते हैं कृषिकार्य परिश्रमपूर्ण है और फल अनिश्चित है। ऐसे कार्य को करना उद्योगपूर्ण है, किसान मानव के भरण-पोषण के लिए ऐसे कार्य को करता है-

वीर्ये परं कार्यकृतौ हि मूलं वीर्यादृते काचन नास्ति सिद्धिः।

उदेति वीर्यादिह सर्वसंपन्निर्वीर्यता चेत्सकलश्च पाप्मा॥[5]

अश्वघोष ने कहा है कि कार्य की सफलता का मूल कारण है- उत्तम उद्योग, उद्योग के बिना कोई भी सिद्धि नहीं होती है, उद्योग से ही सब समृद्धियों का उदय होता है और जहाँ उद्योग नहीं है वहाँ पाप ही पाप है, निश्चित ही कृषि एवं पशुपालन परम परिश्रम पर भी निर्भर है।

महाकवि अश्वघोष कहते हैं कि- **''कृष्ट्वा गां परिपाल्य च श्रमशतैरश्नोति सस्यश्रियम्''**[6] अर्थात् भूमि को जोतकर और अत्यन्त परिश्रमपूर्ण खेत की रखवाली कर मनुष्य उत्तम सस्य प्राप्त करता है। क्योंकि **''विनियतं वीर्ये हि सर्वर्द्धयः''**[7] उद्योग में ही सब समृद्धियों का निवास है। कृषिकर्म थकावट भरा है, पर किसान सुगमता से करने का प्रयास करता है।

उचित कर (टैक्स) व्यवस्था

कोश ही शासन का मूल है और मेरुदण्ड भी, फिर भी **''न चाजिहीर्षीद् बलिमप्रवृत्तं न चाचिकीर्षीत्परवस्त्वभिध्याम्''**[8] उस राजा ने प्रजाओं से अनुचित कर लेने की इच्छा नहीं की और परवस्तु हरण करना भी नहीं चाहा। राजा ने उचित टैक्स लेकर ही शासन व्यवस्था समुचित की। निर्दोष प्रजा को परेशान नहीं किया। जबकि आज की कर-व्यवस्था औचित्यपूर्ण नहीं दिखायी देती है। इस व्यवस्था में किसान-सेवक दोनों ही शोषित हो रहे हैं।

सुखी एवं अन्न से समृद्ध राज्य

''उस गणराज्य में शत्रुता और चोरी के कार्य नष्ट हो गए, राज्य स्वस्थ, स्वतन्त्र, वैदेशिक शासन से मुक्त, सुखी और अन्न से भरा हुआ था।''[9] आज जिस अन्न की कमी है वह उस समय नहीं थी क्योंकि हर व्यक्ति कृषिकर्म में लगा हुआ था शुद्धकर्म से शुद्धफल उगाया जाता था जैसे कि कहा गया है-

स विकृष्टतरां वनान्तभूमिं वनलोभाश्च ययौ महीगुणाच्च।

सलिलोर्मिविकारसीरमार्गो वसुधां चैव ददर्श कृष्यमाणाम्॥[10]

अर्थात् जंगल की लालच तथा पृथ्वी की उत्कृष्टता से आकृष्ट होकर वह अत्यन्त दूर की जंगली भूमि की ओर गया और जोती जा रही धरती को देखा, जिस पर हलों की जुताई के मार्ग जल तरंगों के समान दिख पड़ते थे। जिस पर हलों से कटे बाल-तृण व कुश तथा मरे हुए छोटे-छोटे कीड़े-मकोड़े बिखरे हुए थे वैसे उस धरती को देखकर उसने वैसे ही शोक किया, जैसे कि स्वजन की हत्या होने पर।[11] हवा, सूर्यकिरण व धूल से विवर्ण हुए कृषक पुरुषों तथा हल में बहने के श्रम से विकल हुए बैलों को देखकर उस परम आर्य कुमार सिद्धार्थ को अत्यन्त करुणा हुयी।[12]

---

* सहायक आचार्य, संस्कृत-विभाग, मोहनलाल सुखाडिया विश्वविद्यालय, उदयपुर (राजस्थान)

गाय की महिमा एवं महत्त्व

राजा शुद्धोदन के गणराज्य में गायों की अद्‌भुत महिमा थी। राजकुमार सिद्धार्थ के तप को देखकर ''जो गाय होम यज्ञ आदि के लिए दुही ही जाती थीं, दुही जाने पर भी फिर प्रस्रवित हुयी''[13] अर्थात् उनके थनों से दूध चुना जाने लगा। वे गायें पुनः दूध देने लगी। उस समय गायें यथासमय दूध देकर सर्वमानव का कल्याण करती थी और राजा-राज्य भी गायों के संरक्षण में तत्पर थे। उस समय पशुधन के महत्त्व-महत्ता को राजा और किसान दोनों जानते थे। आज हम ग्वाले के महत्त्व को समझते हैं, गाय के महत्त्व को नहीं। गाय की चर्चा ज्यादा है, पालते नहीं हैं। एक गाय सम्पूर्ण परिवार का पोषण करने में समर्थ है। अश्वघोष के समय में गायों की स्थिति-परिस्थिति सन्तोषजनक थी, उस समय गाएँ स्वस्थ एवं उत्तम दूध देने वाली थीं-

पुष्टाश्च तुष्टाश्च तदास्य राज्ये साध्व्योऽरजस्का गुणवत्पयस्काः।

उदग्रवत्सैः सहिता बभूवुर्बह्वयो बहुक्षीररदुहश्च गावः॥[14]

अर्थात् उस राजा शुद्धोदन के राज्य में गाएँ बहुत थीं। वे पुष्ट व सन्तुष्ट, साध्वी और निर्मल, उत्तम तथा दूध देने वाली और उन्नत बछड़ों से युक्त थीं।

कृषि का फल एवं वर्षा का महत्त्व

कृषिकर्म का फल जल के बिना असम्भव सा है। **''मूलवृद्धौ तथा द्रुमः''**[15] जड़ के बढ़ने से ही वृक्ष बढ़ता है, पर बिना जल के न तो प्रकृति जीवित रहती है और न मनुष्य जीवन। **''ऋतुभूम्यम्बुविरहाद्‌यथा बीजं न रोहति''**[16] जैसे ऋतु, भूमि व जल के अभाव से बीज अंकुरित नहीं होता है। मानव जीवन का अंकुरण भी जल के बिना सम्भव नहीं है। कृषि का फल वर्षा और तेज दोनों पर आश्रित है। ''गुणी व गुण जुदा-जुदा नहीं रह सकते हैं। रूप व गर्मी से रहित अग्नि नहीं पाई जाती है। जहाँ अग्नि होगी वहाँ रूप व गर्मी होगी ही होगी।''[17] कृषिकार्य के लिए गर्मी का भी महत्त्व है। बिना तेज के भी कृषिफल प्राप्य नहीं होता है।

कृषिकर्म और समयानुसार फल

''राजाधर्मस्थितत्वाच्च काले सस्यमसूषवत्''[18] राजा के द्वारा राजधर्म का पालन किये जाने से समय पर फसल की उत्पत्ति हुयी। राजधर्म और कृषककर्म के बिना कृषि का फल नहीं प्राप्त किया जा सकता है, उस समय राजसत्ता कृषक के अनुकूल व्यवहार करती थी, इसलिए कृषि का फल स्वामी-किसान दोनों को यथा समय मिल जाता था, तथा इन्द्रदेव भी **''प्रववर्ष चाम्बुधरवर्जितं नभः''**[19] बिना बादल के आकाश से वृद्धि करते-कराते थे, इसलिए भी फसल समय पर फल देती थी। किसान और राजा में एकत्व एवं तादात्म्य का भाव था, इसलिए दोनों सुखद अवस्था में थे।

कृषिफल के लिए बीज बोना

अश्वघोष ने कहा है कि **''यथा फलविशेषार्थं बीजं वपति कार्षकः''**[20] जिस प्रकार कृषक विशेष फल पाने के लिए बीज बोता है, उसी प्रकार हमें फल-प्राप्ति के लिए पुरुषार्थ करते रहना चाहिए, क्योंकि बोया हुआ ही काटा जाता है। उत्पन्न अन्न ही खाया जाता है, तथा जीवन अन्न पर ही आश्रित है। इस श्रद्धाभाव से ही कृषक कृषिकर्म को करता है और कहा भी गया है, यथा-

सस्योत्पत्तिं यदि न वा श्रद्दध्यात्कार्षकः क्षितौ।

अर्थी सस्येन वा न स्याद् बीजानि व वपेद् भुवि॥[21]

अर्थात् भूमि से अन्न की उत्पत्ति होगी, यदि यह श्रद्धा कृषक को न हो या यदि अन्न से उसे प्रयोजन न हो, तो वह भूमि में बीज न बोयेगा। निश्चित ही जीवित रहने के लिए केवल केवल अन्न, वायु और जल ही चाहिए। जल के विषय पर भी कहा गया है, यथा-

''अन्तर्भूमिगतं ह्यम्भः श्रद्दधाति नरो यदा।

अर्थित्वे सति यत्नेन तदा खनति गामिमां॥''[22]

पृथ्वी के भीतर जल है, यह श्रद्धा (विश्वास) जब मनुष्य को होती है तब प्रयोजन होने पर वह प्रयत्नपूर्वक पृथ्वी को खनता है।

शुद्ध आजीविका

अश्वघोष आजीविका के विषय में कहते हैं कि **''यथावदाजीवनयश्च शुद्धः''**[23] आजीविका शुद्ध होनी चाहिए, वे उसमें विश्वास करते हैं, जो वर्तमान सन्दर्भ में नहीं दिखायी देती है, आज छल-कपट, मार-काट, हत्या-लूट, जघन्यापराध आदि के द्वारा भी अर्थ को प्राप्त करने का मनुष्य देखने को मिलता है, धन-प्राप्ति में नैतिक मूल्य लुप्तप्राय है। यही मानवप्रजाति के विनाश का महाकारण भी है। शुद्ध-जीविका न होने के कारण ही आज का मानव कई प्रकार के अपराधों एवं रोगों से ग्रस्त हो गया है। कृषि एवं पशुपालन आज भी दरिद्रों के लिए शुद्ध-जीविका का प्रमुख माध्यम रहा है।

कृषक औषधियों का उत्पत्तिदाता

जीवन में औषधियों का सर्वाधिक महत्त्व है इसलिए अश्वघोष कहते हैं कि **''सर्वोषधीनामिव भूर्भवाय''**[24] सभी औषधियों का उत्पत्ति स्थान भूमि ही है तथा भूमिपुत्र ही संसार के समस्त प्राणिमात्र का भरण-पोषण करके, उनके स्वाध्याय का संवर्धन-संरक्षण करता है। पर आज वह स्वयं अस्वस्थ्य होकर दरिद्रता का जीवन-यापन कर रहा है। औषधियों एवं अन्न को उत्पन्न करने वाला कृषक ही रुग्ण हो गया है तो शेष व्यवस्थाओं के विषय में क्या कहना? उस युग में हर महामारी की औषधि व चिकित्सा उपलब्ध थी पर आज हम कोरोना जैसी भयंकर महामारी से लड़ रहे हैं। आज भी श्रेष्ठ औषधियाँ पृथ्वी पर उपलब्ध है, पर पहचान करने वाले लोग नहीं हैं।

पशुधन से ही सत्ता राजसत्ता की समृद्धि-वैभवता के गुणगान गाये जाते थे। पुराकाल में राजा हो या किसान धन के रूप में पशु ही उपलब्ध होता था और उनकी समृद्धि का वाहक भी उन्हीं पशुओं से कृषिकर्म भी किया जाता था, पशु स्वयं का एवं जीवमात्र की बुभुक्षा को शान्त कर राजसत्ता को वैभवशाली बनता था। किसान एवं राजा आश्रय-आश्रित्य भाव से पृथ्वी पर विचरण करते थे। अश्वघोष कहते हैं कि राजा शुद्धोदन गणराज्य में परस्पर शत्रुता नहीं थी और चोरी के कार्य नहीं होते थे उनका राज्य स्वस्थ, स्वतन्त्र, वैदेशिक शासन से मुक्त, सुखी और अन्न से भरा हुआ था।''[25] अन्न की अधिक उपज का हेतु राज्य की श्रेष्ठ कृषक समर्थक नीतियाँ ही हैं, और स्वास्थ्य योजनाएँ। क्योंकि स्वस्थ व्यक्ति ही जीवन के विकास-विस्तार में अपना उत्साह दिखा सकता है। उस समय कृषक अल्प आय में भी अधिक सुखी था, क्योंकि नृपसत्ता ने कभी भी शोषण की दृष्टि से राज नहीं किया। राजा और किसान का एकात्मभाव, शुद्ध आजीविका व्यवस्था, अनुचित कर (टैक्स) न लेना, निर्दोष प्रजा पर अनुचित अत्याचार न करना, कृषक-कल्याण-योजनाओं का विकास करना, गाय और पशुपालन पर अधिक ध्यान देना और इन्द्र का समय पर वर्षा करना आदि कार्यों के यथा-समय होने के कारण राजा एवं किसान आनन्दमय खुशहाल जीवन-यापन कर रहे थे तथा कृषि एवं पशुधन समृद्ध अवस्था में था। कृषि का फल तीन लोगों पर निर्भर करता है- कृषक, राजा एवं इन्द्रदेव। अब राजा की श्रेष्ठ योजनाएँ उस समय उपलब्ध थी और किसान का पूर्ण परिश्रम था, ये दो अनुकूल होने पर इन्द्रदेव निश्चित ही अमृतवर्षा करते हैं। इस प्रकार अश्वघोष के महाकाव्यों में और उस समय की राज्यसत्ता में कृषक, राजा, कृषि एवं पशुधन सब स्वस्थ अवस्था में थे। आज राजसत्ता का किसान अनुकूल न होना ही कृषक अवनति का हेतु है।

अन्न ही जीवन है, अन्नदाता का संरक्षण-संवर्धन ही परम ध्येय हैं।

सन्दर्भ सूची :

1. बुद्धचरितम् (महाकवि अश्वघोष)- 2/7
2. वही- 2/8
3. वही- 2/12
4. वही- 2/36
5. वही- 16/94
6. बुद्धचरितम् (महाकवि अश्वघोष)- 16/98
7. वही- 16/98
8. वही- 2/44
9. वही- 2/15
10. वही- 5/4
11. वही- 5/5
12. वही- 5/6
13. वही- 7/6
14. बुद्धचरितम् (महाकवि अश्वघोष)- 2/5
15. सौन्दरनन्दनम् (महाकवि अश्वघोष)- 12/41
16. बुद्धचरितम् (महाकवि अश्वघोष)- 12/72
17. वही- 12/78
18. सौन्दरनन्दनम् (महाकवि अश्वघोष)- 2/31
19. वही- 2/9
20. सौन्दरनन्दनम् (महाकवि अश्वघोष)- 11/27
21. वही- 12/35
22. वही- 12/33
23. वही- 16/31
24. वही- 16/7
25. बुद्धचरितम् (महाकवि अश्वघोष)- 2/15

सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची :

1. बुद्धचरितम् (महाकवि अश्वघोष), सम्पादक एवं अनुवादक- सूर्यनारायण चौधरी, संस्कृत-भवन, कठौतिया, पो0 काझा जिला- पूर्णियाँ, बिहार, संस्करण- 1999 ई0
2. बुद्धचरितम् (महाकवि अश्वघोष), व्याख्याकार- महन्त श्रीरामचन्द्रदास शास्त्री, चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी, संवत् 2019, सन् 1962 ई0
3. सौन्दरनन्दम् (महाकवि अश्वघोष), सम्पादक एवं अनुवादक- सूर्यनारायण चौधरी, संस्कृत-भवन, कठौतिया, पो0 काझा जिला-पूर्णियाँ, बिहार, संस्करण- 1959 ई0

●

जय प्रकाश नारायण और लोहिया के सिद्धांतों की वर्तमान में प्रासंगिकता

देवी प्रसाद एवं डॉ0 मनोज कुमार वर्मा***

भारतीय सरकार की नीतियों के खिलाफ बोलने वाले पत्रकार, सिविल सोसाइटी के सदस्य, दलित व अल्पसंख्यक समाज को चुप करने के लिए जब असंवैधानिक तत्वों का सहारा लिया जाता हो तथा जब एक भारतीय नागरिक गन्दी राजनीति का शिकार होता है या भ्रष्टाचार के दलदल के सामने असहाय महसूस करता हो तब समझ लीजिए हमें लोहिया और जेपी के सिद्धांतों पर चलने की जरूरत है। क्योंकि जय प्रकाश नारायण (जेपी) की 'संपूर्णक्रांति' की अवधारणा और लोहिया का 'समाजवाद' के दर्शन पर चलना आज समय की बुनियादी जरूरत है। जहाँ एक तरफ़, आज देश में कई बेकसूर व्यक्ति राजनीति से अभिप्रेरित 'मॉब-लिंचिंग' का शिकार हो रहे हैं, जिसके पीछे की मंशा को समझेंगे तो पायेंगे कि देश में एक ऐसा सामाजिक माहौल बना दिया गया है, जिसमें एक संप्रदाय का व्यक्ति अपने पड़ोस में रहने वाले दूसरे संप्रदाय के व्यक्ति को अपना प्रतिद्वंदी या राजनीतिक शत्रु समझने लगा है। वहीं दूसरी तरफ़, व्यक्ति 'राष्ट्रीयता' की भावनाओं को ताख पर रखकर अपना हित साधने के लिए भ्रष्टाचार में फंस जाता है। उदहारण स्वरूप, मध्य प्रदेश का 'व्यापम घोटाला' तथा बिहार राज्य का 'सृजन घोटाला' हमें राजनीतिक तंत्र में व्याप्त भ्रष्टाचार से अवगत कराता है। यदि हम स्थानीय स्तर पर देखे तो पाते हैं कि गाँव में किसी भी सरकारी योजना का लाभ लेने के लिए घूस देना और लेना बृहद रूप से स्वीकृत मानदंड बन चुका है।

ऐसे में प्रश्न यह उठता है कि एक जिम्मेदार नागरिक होने के नाते क्या आज हमें व्यक्तिगत स्वार्थ से ऊपर उठकर 'संपूर्णक्रांति' या 'समाजवाद' की पथरीली राहों पर चलने की जरूरत है? यह वर्षों से एक यक्ष प्रश्न रहा है, जिसे समझने के लिए थोड़ा हमें अपने इतिहास के आईने में झाँकना होगा। लोकतांत्रिक भारत में भ्रष्टाचार और राजनीति का गठजोड़ एक कड़वी सामाजिक सच्चाई रही है और कुछ राजनीतिक दलों ने इसका भरपूर प्रयोग अपने मंतव्य की पूर्ति के लिए किया। तत्कालीन प्रधानमंत्री नेहरू ने भी दबे मन से स्वीकार किया कि जब उनकी सरकार एक रुपया भेजती थी, तो सिर्फ़ दस पैसा ही ग़रीब जनता तक पहुँचता था तथा नब्बे पैसा विभिन्न पदों पर बैठे मंत्री, अधिकारी व मध्यस्थों के बीच भ्रष्टाचार की भेंट चढ़ जाता था। जिससे निपटने के लिए 'जननायक' जय प्रकाश नारायण ने भ्रष्टाचार विरोधी सात उद्देशीय सामाजिक आन्दोलन का सूत्रपात किया तथा वह बाद में 'संपूर्णक्रांति' (1974) में तब्दील होने के साथ 'व्यवस्था परिवर्तन' की ओर मुड़ गया। जय प्रकाश नारायण के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर मूर्धन्य साहित्यकार रामधारी सिंह 'दिनकर' एक कविता के माध्यम से कुछ इस तरह प्रस्तुत करते हैं-

''कहते हैं उसको जयप्रकाश जो नहीं मरण से डरता है / ज्वाला को बुझते देख, कुंड में स्वयं कूद जो पड़ता है / है जयप्रकाश वह जो न कभी सीमित रह सकता घेरे में / अपनी मशाल जो जला बाँटता फिरता ज्योति अंधेरे में / हां जयप्रकाश है नाम समय की करवट का, अंगड़ाई का / भूचाल, बवंडर, के दावों से, भरी हुई तरुणाई का / है जयप्रकाश वह नाम जिसे इतिहास समादार देता है / बढ़कर जिनके पदचिह्नों को उर पर अंकित कर लेता है।''

भ्रष्टाचार और जाति के गठजोड़ को समझने के लिए हमारा ध्यान भारत में 'सम्पूर्ण क्रांति' (1974) या उसके बाद के कार्यकाल तक जाता है। जिसकी शुरुआत भारत के बिहार राज्य से हुई थी। जेपी ने कहा कि संपूर्ण क्रांति का यह आंदोलन सामाजिक न्याय, जाति व्यवस्था तोड़ने, जनेऊ हटाने, नर-नारी समता के लिए था और बाद में इसमें शासन-प्रशासन का तरीका बदलने तथा राइट टू रिकॉल को भी शामिल कर लिया गया। तत्कालीन कवि रामधारी सिंह दिनकर भी इस क्रांति को लेकर काफ़ी आशान्वित दिखते हैं, और अपनी भावनाओं को शब्दों में कुछ इस तरह प्रस्तुत करते हैं-

''सदियों की ठंढी-बुझी राख सुगबुगा उठी / मिट्टी सोने का ताज पहन इठलाती है / दो राह, समय के रथ का घर्घर-नाद सुनो/ फावड़े और हल राजदण्ड बनने को हैं / धूसरता सोने से श्रृंगार सजाती है / सिंहासन खाली करो कि जनता आती है।''

देश जब एक गंभीर राजनीतिक संकट से गुजर रहा था, तब जेपी नारायण ने देश को पहली बार देश की सिहरती-ठिठुरती राजनीति को एक नई दिशा दी, तथा देश में गैर-कांग्रेसी सरकार बनने में मदद की। इसलिए जेपी नारायण के बारे में लिखा गया कि ''सपनों का दृष्टा जय प्रकाश, भारत का भाग्य विधाता है।'' संपूर्ण क्रांति आंदोलन का तत्कालीन आवाम पर गहरा प्रभाव पड़ा और उत्तर भारत में सामाजिक क्रांति लाने के लिए सक्रिय भूमिका निभाई। उस समय के युवा वर्ग अपने नाम में जातीय सरनेम लगाना भी छोड़ दिया था। लेकिन समय के बदलने के साथ उस समय के लालू प्रसाद और मुलायम सिंह आदि नेताओं को किसने लालू यादव और मुलायम सिंह यादव बनने पर मजबूर कर दिया कुछ पता

* शोध छात्र, समाजशास्त्र विभाग, हैदराबाद विश्वविद्यालय, गचिबोली, हैदराबाद।

* * असिस्टेंट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

ही नहीं चला तथा जेपी आंदोलन से निकले लालू प्रसाद तथा कई अन्य लोकप्रिय नेताओं पर भी भ्रष्टाचार के कई गंभीर आरोप लगे। हालाँकि उनके समर्थक इन आरोपों को एक सिरे से ख़ारिज करते हैं तथा इसे राजनीतिक पुर्वाग्रह से युक्त बताते हैं।

इतिहासकार केसी यादव (1994) उस समय की राजनीति तथा अनेक आंदोलनों पर गहन अध्ययन किया और पाया कि कांग्रेस के मंत्रिमंडल में आज़ादी के बाद लगभग 70 के दशक तक ओबीसी का प्रतिनिधित्व नगण्य रहा। काँग्रेसी नेताओं ने भी भारतीय जाति व्यवस्था में कभी आमूल-चूल परिवर्तन की हिमायत भी नही की। इसलिए चाहे वह गाँधी का 'अश्पृश्यता उन्मूलन' से सम्बंधित विचार रहा हो या विनोबा भावे का 'सवीदय', 'भू-दान' या 'ग्राम-दान' कभी पूर्णतया सफ़ल आंदोलन नही बन पाया। इन सामाजिक आंदोलनों की सीमित सफलता से दुखी स्वतंत्रता सेनानी जयप्रकाश नारायण ने भारतीय विकलांग लोकतंत्र को दोष मुक्त बनाने के लिए सात क्रांतियों की वकालत की और हमें अवगत कराते हैं कि 'राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, बौधिक, शैक्षिक और आध्यात्मिक जगत' में परिवर्तन आए बिना संपूर्ण क्रांति नहीं हो सकती है। वे तत्कालीन सत्ताधारी भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस पार्टी में धनबल और चुनाव के बढ़ते खर्च को ही कम करना चाहते थे ताकि साधारण जनमानस भी राजनीति में कदम रख सके तथा अपने हितों की रक्षा कर सके। जेपी का सपना एक ऐसा समाज बनाने का था जिसमें स्त्रियों-पुरुषों के बीच समानता हो और जाति-पाति का भेदभाव न हो। जेपी के सिद्धांतों से प्रभावित तत्कालीन आवाम राजनीति में बढ़-चढ़ कर हिस्सा लिया तथा कांग्रेस तथा उनके सहयोगी दल को बाहर का रास्ता दिखा दिया तथा सुशासन की नींव डाली।

यदि हम लोहिया के दर्शन पर नजर डालें तो पाएँगे कि लोहिया समानता के प्रतिपोषक थे।[1] दलित-पिछड़ों को समाज की मुख्य धारा में लाना चाहते थे। वे व्यक्ति तथा समाज की स्वतंत्रता और तरक्की के लिए विवेकपूर्ण संघर्ष के उपाषक थे। इसलिए कहते थे कि जिंदा कौमें पांच वर्ष तक इंतजार नही करती हैं। लोहिया के सामाजिक विमर्श और चिंतन चिरकाल तक हमारे मस्तिष्क में आशेष रहेंगे। उनके कर-क़दमों पर चलकर समाजवादी पार्टी तथा बहुजन समाज पार्टी ने दलित-पिछड़ों को 'जीरो फीस पर एडमिशन' की नीति लागू की। जिसका उद्देश्य गरीब तबकों से आने वाले बच्चों को मुफ्त में उच्च शिक्षा उपलब्ध करानी थी। जिसके शिक्षा के क्षेत्र में कई गुणात्मक परिणाम भी नजर आने लगे थे। हालाँकि वर्तमान योगी सरकार ने 'जीरो फीस पर एडमिशन' की पुरानी नीति को बंद कर दिया। वर्तमान सरकार का ये फैसला बहुत ही साजिशपूर्ण फ़ैसला प्रतीत होता है। सरकार के ऐसे फ़ैसलों से सामाजिक न्याय की अवधारणा को बहुत गहरी चोट लगने वाली है और शिक्षा को पैसा से खरीदने वालों के लिए एक विशेषाधिकार के तौर पर बदलने में मदद भी पहुंचेगी (प्रसाद, 2020)[2]। आज उत्तर प्रदेश में उच्च-शिक्षा में दलित-पिछड़ी जातियों का नामांकन बढ़ने के बजाय घट रहा है, जिसका प्रमुख कारण गरीबी है। बीएड, एम.एड. तथा बी.काम. कोर्स में दाखिला लेने के लिए लाखों रूपये का खर्च आता है और एक मजदूरी करके परिवार चलाने वाला व्यक्ति इतनी बड़ी धनराशि कैसे चुका सकता है (प्रसाद और यादव)[3]।

स्वघोषित पिछड़े व दलित वर्गों की पार्टियाँ- समाजवादी पार्टी, अपना दल, बहुजन समाज पार्टी, आदि भी इस ज्वलंत मुद्दे पर चुप्पी साधे हुए हैं। यदि हम इस प्रकार की चुप्पी को लोहिया और जेपी जैसे नायकों के सामाजिक दर्शनों के माध्यम से समझते है, तो हमारे मस्तिष्क में एक प्रश्न उठता है कि उत्तर प्रदेश का दलित-बहुजन समाज क्या आज भी अपने हीरो की तलाश में है? क्या माननीय कांशीराम और लोहिया की विचारधारा और अम्बेडकर की शिक्षाएं उनमें धुंधली पड़ गई हैं और यह बहुजन वर्ग एक-एक कर पिसता जा रहा है तथा सड़क पर आने से डर रहा है? इस संदर्भ में प्रख्यात चिंतक रतन लाल, बामसेफ के संस्थापक मान्यवर कांशीराम को प्रसंग बनाते हुए लिखते हैं, ''रोहित वेमुला और ऊना कांड पर उमड़ा जनाक्रोश और 2 अप्रैल, 2018 को एससी-एसटी एक्ट पर और 5 मार्च, 2019 को रोस्टर मामले में हुआ भारत बंद इस बात का प्रमाण है कि जनता हमेशा पांच साल का इन्तजार भी नहीं करती। लोहिया कहते थे, 'यदि सड़क सुनसान हो जाएंगी तो संसद आवारा हो जाएगी! अब न सड़कें सुनसान होंगी और न संसद आवारा!''

सामंती मानसिकता से अभिप्रेरित लोगो ने जब भी दलित-बहुजन तथा स्त्रियों पर अनेक कठोर नियम लागू किये तथा उनकी अस्मिता को खतरा पहुँचाने का संयुक्त प्रयास किया, तब अनेक प्रतिरोध की धाराएँ समाज के पटल पर प्रस्फुटित हुई। कबीरदास, रैदास, फुले, अम्बेडकर, गाँधी, नेहरू, कांशीराम, लोहिया, कर्पूरी ठाकुर, लालू, मुलायम, मायावती, आदि अनेक चेहरे उन विचार-धाराओं को समय-समय पर दशा और दिशा देने वाले जीवंत रूप हैं।

अगर इतिहास में झांकेगे तो हमें ज्ञात होता है कि 19 वीं शताब्दी में ज्योतिराव गोविंदराव फुले ने दलित-बहुजन को 'मानसिक गुलामी' से बाहर निकालने के लिए 'सत्य शोधक समाज' की स्थापना की तथा 'गुलामगीरी' जैसी प्रतिकूल धाराओं वाली पुस्तक का लेखन किया। फुले का मानना था कि आम लोग मानसिक तौर पर गुलाम हैं और मुक्त होने की इच्छा नहीं रखते हैं। दास (बहुजन समाज) स्वयं अपने स्वामी (ब्राह्मणवाद) के पक्ष में हैं। फुले अपनी बात की पुष्टि के लिए पश्चिमी देशों का सटीक उदाहरण भी देते हैंः अमेरिका में, मुक्त गोरे, काले दासों की तुलना में दासता को समाप्त करने के बारे में अधिक चिंतित थे। भारत के पश्चिमी तट का पर्वतीय अनुभाग (कोंकण) में ब्रिटिश अधिकारियों ने एक प्रणाली स्थापित की जिससे रैयत (किरायेदार-किसान) भू-स्वामियों के

खिलाफ शिकायत कर सकते थे। भू-धारकों/ भू-स्वामियों ने शासन-प्रणाली के दौरान अपने रैयतों का पसीना बहाया और गुलाम बनाया तथा बदले में उनके परिवार के सदस्यों को निर्वाह करने के लिए सिर्फ पर्याप्त भोजन दिया। रैयतों ने यदि कोई गलती की तो उन्हें भी पीटा गया। इसके बावजूद, अशिक्षित रैयतों ने इस हो रहे शोषण पर कोर्ट में अपने स्वामी का ही साथ दिया (प्रसाद और कुमार, 2018)[4]। इसलिए जनता को अंधविश्वासों से मुक्त होने तथा प्रतिरोध के लिए शिक्षित तथा सामाजिक रूप से जागरूक करना आवश्यक था। इसलिए सामाजिक बेड़ियों से मुक्त होने के लिए लोहिया और आंबेडकर भी शिक्षा की प्राप्ति पर विशेष बल डालते थे।

जय प्रकाश नारायण ने 5 जून 1974 के दिन पटना के गांधी मैदान में औपचारिक रूप से संपूर्ण क्रांति की घोषणा की, जिसका उद्देश्य व्यवस्था परिवर्तन और नवनिर्माण दोनों था। इस क्रांति ने यह भी सन्देश दिया कि भारत स्वतंत्रता संग्राम के बाद भी महात्मा गाँधी और बाबा साहब भीमराव अम्बेडकर के द्वारा दिखाए गए संविधान के रास्ते पर चलकर नए सामाजिक-राजनीतिक बदलाओं के लिए अब भी तैयार है। हालांकि, एक व्यापक उद्देश्य के लिए शुरू हुआ 'लोकनायक' जेपी का यह आंदोलन बाद में सामाजिक न्याय के सिद्धांत से भटक गया तथा आंशिक रूप से ही सफ़ल हो सका। क्योंकि लोकतांत्रिक भारत में जाति व्यवस्था एक कड़वी सामाजिक सच्चाई है।

दलित-बहुजन समाज इस जातीय व्यवस्था को अपने पिछड़ापन का प्रतीक मानता रहा है। सवर्ण बुद्धिजीवी वर्ग अधिकांशतया (कुछ अपवादों को छोड़कर) इस जातीय व्यवस्था को पिछड़ेपन का आधार मानने से इनकार करता है तथा इतिहास को ताख पर रखकर आशीष नंदी जैसे सवर्ण वर्ग से आने वाले भारतीय समाजशास्त्री उसे 'रोमांटीसाइज' करने से भी नही चूकते और दलित-बहुजन समाज को ''मोस्टकरप्ट'' (अत्याधिक भ्रस्टाचारी)[5] बताते हैं। भ्रष्टाचार एक सामाजिक सच्चाई थी, और उसे आज किसी जाति विशेष से जोड़ना अपनी जवाबदेही से मुह मोड़ने जैसा है।

भ्रस्टाचार और जाति के गठजोड़ को समझने के लिए हमारा ध्यान भारत में 'सम्पूर्ण क्रांति' (1974) या उसके बाद 'मूक क्रांति' (1990)[6] तक विभिन्न सरकारी पदों पर बैठे लोगों पर जाता है और सोंचने के लिए हमें मजबूर होना पड़ता है कि वे किस वर्ग या जाति से थे। हालांकि आज हमें यह बताने की आवश्यकता नही पड़ती है, क्योंकि उसका विस्तृत अध्ययन अनेक देश-विदेश के अध्येता (केसी यादव, 1994[7]; मिशेलिट्टी, 2009[8], जेफेरेलोत, 2003[9], आदि) कर चुके हैं।

यद्यपि जाति व्यवस्था के उन्मूलन या आंशिक सुधार के लिए लोहिया और जेपी के पहले भी समय-समय पर महात्मा बुद्ध से लेकर सूफ़ी संतों, बुद्धिजीविओं तथा समाज-सुधारकों द्वारा अनेक प्रयत्न किये जाते रहे। उन समाज सुधारकों की विचारधाराओं तथा जाति व्यवस्था के ख़िलाफ़ किये गए अनेक आंदोलनों का असर पथ-प्रदर्शक 'जननायक' जय प्रकाश नारायण और लोहिया पर भी पड़ा तथा 'समाजवाद का दर्शन' तथा 'सम्पूर्ण क्रांति' जैसे बड़े आंदोलनों की नीव डाली (प्रसाद,2020)[10]। लोहिया का समाजवाद तथा जेपी के संपूर्ण क्रांति के आंदोलन का तत्कालीन युवाओं पर गहरा प्रभाव पड़ा और उत्तर भारत में सामाजिक क्रांति लाने के लिए सक्रिय भूमिका निभाई। अगर इसके हम परिणामों पर दृष्टि डालें तो पायेंगे कि अनेक लोगों ने अपने नाम में जातीय सरनेम लगाना छोड़ भी दिया था तथा भ्रष्टाचार मुक्त भारत बनाने की कसमें भी खाई।

सम्पूर्ण क्रांति के उद्भव पर प्रकाश डालने पर ज्ञात होता है कि आज़ादी के पूर्व व उपरांत सवर्ण जातियाँ सभी बड़े पदों पर वर्षों से कब्ज़ा जमाई हुई थी तथा भारत में सामाजिक असमानता की खाई कम होने का नाम ही नही ले रही थी। यदि इतिहास के पन्नों पर दृष्टि डालते हैं तो ज्ञात होता है कि सामाजिक असमानता की दीवारें हमेशा रही हैं। इस सन्दर्भ में पीवी सावंत (2018)[11] ने ''मंडल कमीशनः राष्ट्र निर्माण की सबसे बड़ी पहल'' नामक पुस्तक में लिखते हैं कि 'राज्य सत्ता संभालने के बाद क्षत्रपति शाहू महाराज जी ने पाया कि उनके दरबार में इकहत्तर उच्च पदों में से साठ ब्राह्मण और ग्यारह ब्राह्मणेत्तर जातियां थीं। इसी तरह से निजी सेवा में बावन में से पैतालीस ब्राह्मण अधिकारी व सिर्फ़ सात ब्राह्मणेत्तर पदाधिकारी थे। इसलिए शाहू जी ने पिछड़ी जातियों को आरक्षण देने का प्रावधान किया तथा उस फ़ैसले का विरोध करने वालों में गंगाधर तिलक, रघुनाथ व्यंकाजी सबनवीस, गोपाल कृष्ण गोखले, एसएम परांजपे, नरहरि चिंतामन केलकर, दादा साहेब खापर्णे गनपतराव अभ्यंकर और न्यायमूर्ति महादेव गोविंद रानाडे आदि प्रमुख थे।'

इन सामाजिक आंदोलनों की सीमित सफलता से दुःखी स्वतंत्रता सेनानी जयप्रकाश नारायण ने सामाजिक क्रांति तथा भारतीय विकलांग लोकतंत्र को दोष मुक्त बनाने के लिए सात क्रांतियों की वकालत की और बताया कि 'राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, सास्कृतिक, बौधिक, शैक्षणिक और अध्यात्मिक जगत' में परिवर्तन आए बिना सम्पूर्ण क्रांति नहीं हो सकती है। वे तत्कालीन व्यवस्था से असंतुष्ट थे तथा सत्ताधारी कांग्रेस पार्टी में धनबल और चुनाव के बढ़ते खर्च को ही कम करना चाहते थे ताकि साधारण जनमानस का भला हो सके। जेपी का सपना एक ऐसा समाज बनाने का था जिसमें स्त्रियों-पुरुषों के बीच समानता हो और जाति का भेदभाव न हो।

प्रोफेसर आनंद कुमार का मत है कि 'सम्पूर्ण क्रांति आंदोलन में इमरजेंसी ने एक अलग भटकाव पैदा कर दिया। इसके बाद लक्ष्य यह हो गया कि किसी तरह लोकतंत्र बहाल हो। सन् 1977 की उपलब्धि कहेंगे कि लोकतंत्र फिर से बहाल हो गया तथा इस आन्दोलन की अनुपलब्धि यह रही कि जेपी के संपूर्णक्रांति के सपने को साकार नहीं किया जा सका।[12]' मणीन्द्रनाथ ठाकुर कहते हैं,

''वह आंदोलन एक ख़ास समय का प्रोडक्ट था और उस समय नया क्लास और कास्ट समीकरण उभर रहा था। वह राजनीति में अपने लिए जगह ढूंढ रहा था। उसमें लालू, मुलायम, नीतीश और रामविलास जैसे लोग थे। इसलिए आप देखेंगे कि जो लोग उनके शिष्य बने, वह राम मनोहर लोहिया के बारे में कभी कभार बात कर भी लेते हैं लेकिन जेपी के बारे में बहुत बात नहीं करते हैं। ऐसे में इस आंदोलन से कौन निकलता, नहीं निकलता यह जेपी तय नहीं कर सकते थे।[13]'' यहाँ यह भी उल्लेख करना महत्वपूर्ण हो जाता है कि नाथूराम द्वारा महात्मा गाँधी की हत्या (30 जनवरी 1948) के बाद 'राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ' (आरएसएस) पतन की तरफ़ चला गया और दो दशक तक एकांतवास के उपरांत देश में चल रही सम्पूर्ण क्रांति की बहती गंगा में आरएसएस को भी हाथ धोने का मौका मिल गया तथा जेपी भी उसे दबे मन से स्वीकार किया। दूसरे शब्दों में, जेपी ने जातिवाद तथा धर्मांधवाद का पुरजोर विरोध तथा महिलाओं तथा पिछड़े तबकों के कल्याण की बातें आदर्शात्मक तरीके से करते रहे और आखिर में आरएसएस को अपने आंदोलन में पनाह देकर व्यावहारिक दृष्टि से उन सिद्धांतों का गला घोंट दिया।

निष्कर्ष

ग्रामीण क्षेत्रों में एक कहावत है कि व्यक्ति पैदा होते ही महान नही बनता है, अपितु उसके जीवन में उतार-चढ़ाव तथा संघर्ष व समाज में गुणात्मक परिवर्तन लाने की जाद्दोजहद ही उसे महान बनाते हैं। कई किताबों में उल्लेख मिलता है कि जेपी के जीवन में एक सबसे बड़ा मोड़ तब आया जब उन्हें 1932 में 'सविनय अवज्ञा आंदोलन' में भाग लेने के कारण जेल जाना पड़ा। वे नासिक (महाराष्ट्र) के जिस जेल में वे बंद थे, वहीँ संयोग से राम मनोहर लोहिया, अशोक मेहता, बसावन सिन्हा, मीनू मसानी आदि पहले से ही बंद थे। देश में सामाजिक-राजनीतिक बदलाव लाने के लिए जेल में बंद इन सेनानियों में विचारों का आदान-प्रदान हुआ। इसी क्रम में राम मनोहर लोहिया और जेपी नारायण में समाजवादी विचारधारा का आदान-प्रदान हुआ तथा कांग्रेस के भीतर ही लेफ्ट-बिंग समूह का निर्माण हुआ। भिन्न-भिन्न विचार को समाहित करता हुआ वह समागम भारतीय लोकतंत्र में एक नई जान फूंकी। राममनोहर लोहिया ने अपने साथियों को समझाने का एक सफल प्रयत्न किया और उन्हें आगाह किया कि 'अगर सड़क संसद तक नहीं आ सकती, तो संसद को सड़क पर चला जाना चाहिए, क्योंकि सड़क के खामोश होने पर संसद आवारा हो जाएगी।' स्वतंत्रता-पूर्व जहाँ एक तरफ़ जेल भरो, विवेकपूर्ण विरोध, रेल रोको, अंग्रेजी नाम वाली पट्टियों को पोतो, जाति तोड़ो, सामाजिक न्याय जैसी बातें लोहिया के आन्दोलन में शामिल थी। वे अक्सर मंचों पर बोला करते थे कि ''जिन्दा कौमें पांच साल इंतज़ार नहीं करती''। वहीं दूसरी तरफ़, जयप्रकाश नारायण के कृतित्व पर दृष्टि डालने पर ज्ञात होता है कि वे एक दूरद्रष्टा राजनेता होने के साथ राजनीतिक महत्वाकांक्षा से ऊपर उठ चुके थे। जेपी ने गाँधी के ''भारत छोड़ो आंदोलन'' (1942) में भी भाग लिया तथा ''आल इंडिया रेलवे मैन फेडरेशन'' (1947-1953) के अध्यक्ष भी रहे। हालाँकि कुछ समय के लिए जेपी का राजनीति से मोह भंग हो गया था और विनोबा भावे के 'भूदान आन्दोलन' से जुड़ गए। लेकिन राजनीतिक परिदृश्य ऐसे बने कि जेपी नें फ़िर से आवारा-बंजर सड़कों को उर्वरक राजनीतिक खेती में बदला, क्योंकि वे तत्कालीन प्रधानमंत्री इंदिरा गाँधी की तानाशाहीपूर्ण रवैये से असंतुष्ट होने के साथ ही साथ समाज में बढ़ती हुई सामाजिक-आर्थिक विषमताएं और ऊपर से भ्रष्टाचार की घटनाओं से भी बहुत दुखी होने के कारण 'सम्पूर्ण क्रांति' का वीणा बजा दिया। जेपी आन्दोलन को जन-समर्थन मिलता देख इंदिरा गाँधी ने देश में आपातकाल की घोषणा कर दिया और जेपी सहित हजारों नेता सलाखों के पीछे धकेल दिए गए। यहाँ यह भी ध्यान देना होगा कि जिस विनोबा भावे के साथ जेपी 'भूदान' आन्दोलन को चला रहे थे; वे देश में लगा 'आपातकाल' को 'अनुशासन पर्व' कहकर विवादों से घिर गए और उनकी आध्यात्मिकता तथा जन-सरोकार को संशय से देखा जानेलगा था।

'सम्पूर्ण क्रांति' के उपरांत उत्तर भारत की राजनीति में पिछड़े समुदाय के लोगों की भागीदारी में गुणात्मक बढ़ोत्तरी हुई तथा राम विलास पासवान, लालू प्रसाद यादव, मुलायम सिंह यादव, जैसे वंचित समुदाय से आने वाले 'जमीनी' नेताओं को मौका मिला। जेपी की 'सम्पूर्ण क्रांति' की सम्पूर्ण सफलता पर प्रश्न-चिह्न भी लगता है, लेकिन हमें उत्तर भारत की राजनीति में आए बदलाओं को भी स्वीकार करना होगा, जिसका सूत्रपात जननायक ने किया था। जेपी की सम्पूर्ण क्रांति उत्तर भारत में आमूल-चूल परिवर्तन तो नहीं ला सकी, परन्तु बाद में चलकर वही क्रांति 'मूक क्रांति' के रूप में प्रस्फुटित हुई तथा उत्तर भारत में दलित-बहुजन को मुख्यधारा में आने के लिए मार्ग प्रशस्त किया। आज आवश्यकता इस बात की है कि लोहिया तथा जेपी जैसे महापुरुषों द्वारा दिखाए गए रास्ते पर चलते हुए सामाजिक न्याय की अवधारणा को अमलीजामा पहनाया जाय। अन्यथा अल्पसंख्यकों और समाज के कमजोर तबकों का 'मॉब-लिंचिंग' होता रहेगा। प्रसिद्ध कवि धर्मवीर भारती ने 'मुनादी' शीर्षक में जननायक के बारे में ओजपूर्ण पंक्तियां लिखी, जिससे आज के युवा प्रेरणा ले सकतें हैं-

''।। हर खासो-आम को आगाह किया जाता है / कि खबरदार रहें / और अपने-अपने किवाड़ों को अन्दर से / कुंडी चढ़ाकर बन्द कर लें / गिरा लें खिड़कियों के परदे / और बच्चों को बाहर सड़क पर न भेजें / क्योंकि एक बहत्तर बरस का बूढ़ा आदमी अपनी काँपती कमजोर आवाज में / सड़कों पर सच बोलता हुआ निकल पड़ा है।''[14]

अंत में प्रसिद्ध चिंतक के.एन. गोविन्दाचार्य तथा बाबा रामदेव द्वारा कहे गए वक्तव्य को आपके समक्ष रखना यथोचित होगा। जहाँ एक तरफ, गोविंदाचार्य का मानना है कि ''जयप्रकाश नारायण ने

सामाजिक समरसता और बराबरी का अद्भुत आंदोलन चलाया, लेकिन आज तक उस लक्ष्य को हासिल नहीं किया जा सका। देश की आजादी के कई दशक गुजर जाने के बाद भी लोगों को समान हक और बुनियादी सुविधाएं नहीं मिल पाई हैं। महंगाई चरम पर है, चारों ओर भ्रष्टाचार का बोलबाला है।''[15] वहीं दूसरी तरफ़, बाबा रामदेव के सुर भी बदले-बदले से नज़र आने लगे और काला धन उनके लिए अब उतना महत्वपूर्ण नहीं रहा। अब योगगुरु बाबा रामदेव के लिए कुछ अन्य मुद्दे ज्यादा जरुरी लगने लगे। अब वे कहते हैं कि, ''जिस देश में जनसंख्या नियंत्रण की कोई स्पष्ट नीति नहीं हो, मानव विकास सूचकांक में जिस देश का स्थान अभी भी काफी नीचे हो और न्यायालयों में तीन करोड़ से अधिक मामले लंबित हों, जहां शिक्षकों की भारी कमी हो और लोगों को शुद्ध पेयजल उपलब्ध नहीं हो, वहां यह कैसे माना जायेगा कि जयप्रकाश के सम्पूर्ण क्रांति के लक्ष्य को हासिल कर लिया गया है।''[16] जनता के नायक जयप्रकाश व लोहिया निश्चित रूप से आजाद भारत के दो सच्चे सपूत व रत्न थे तथा आने वाली कई पीढ़ियों तक उनके विचार एक आम भारतीय को प्रेरणा देते रहेंगे तथा सड़कों को आवारा होने नही देगे, भले ही कोई उन्हें 'आंदोलनजीवी' कहे। इस संदर्भ में अलेक्सिस डे टॉकविले अपनी पुस्तक 'डेमोक्रेसी इन अमेरिका' (1835) में लिखते हैं कि यदि बाह्य सामाजिक शक्तियां तथा विपक्ष अक्रिय पड़ गया हो तो लोकतंत्र के क्रूर (टिरिनी ऑफ़ डेमोक्रेसी) होने की पूर्ण संभावनायें हमेशा विद्यमान होती हैं।

सन्दर्भ सूची

1. यादव, योगेन्द्र (2010) ऑन रेमेम्बरिंग लोहिया, इकोनोमिक एंड पोलिटिकल वीकली, संख्या 45 (40), 2 अक्टूबर।
2. प्रसाद, देवी (2020) भारतीय समाज में सहिष्णुता एवं प्रतिरोधः एक विमर्श हाशिये की आवाज, अंक 15 (12), दिसम्बर.
3. प्रसाद, देवी और यादव, सर्वेन्द्र (2020) उत्तर प्रदेश में बहुजन वैचारिकी की कवायद और संभावनाएं. मानव पत्रिका, अंक 38 (1-2): 150-158.
4. प्रसाद, देवी और कुमार, अलोक (2018) गुलाम गीरी एंड कास्ट टुडे. इंटरनेशनल जर्नल ऑफ़ रिसर्च एंड एनालिटिकल रिव्यु, अंक 5 (3).
5. Retrieved on October 13 2019 from https://www.outlookindia.com/newswire/story/most-of-the-corrupt-from-scsts-obcs-ashis-nandy/788010
6. हिंदी भाषी क्षेत्रों में आए राजनीतिक बदलाव को दिखाने के लिए मूक क्रांति की परिकल्पना जेफेरेलोत ने अपनी पुस्तक 'इंडियाज साइलेंट रेवोलुशनः दराइज ऑफ़ दलो अरकास्ट्स इन नार्थ इंडिया' (2003) में की।
7. के.सी. यादव (1994) इंडियाज अन इकुव्वलसिटीजनसः अस्टडी ऑफ़ अदर बैकवर्ड क्लासेज। नई दिल्लीः मनोहर प्रकाशन।
8. लूसिया मिशेलिट्टी (2009) लोकतंत्र का वर्नाक्युलराइजेशनः भारत में राजनीति, जाति और धर्म। नईदिल्लीः रूटलेज पब्लिकेशन।
9. क्रिस्टोफ जेफर लाट (2003) इंडियाज साइलेंट रेवोलुशनः दराइज ऑफ़ दलो अरकास्ट्स इन नार्थ इंडिया। नई दिल्ली : कोलंबिया यूनिवर्सिटीप्रेस।
10. प्रसाद, देवी (2020) बहुजन जमात के विकास में 'अम्बेडकरवाद' की प्रासंगिकता. हाशिये की आवाज, अंक 15 (4).
11. सत्येन्द्र पीएस (2018) मंडल कमीशनः राष्ट्र निर्माण की सबसे बड़ी पहल। नई दिल्लीः लेफ्ट वर्ड्स बुक्स।
12. Retrieved on October 13 2019 from https://www.bbc.com/hindi/india-49999525
13. Retrieved on October 13 2019 from https://www.bbc.com/hindi/india-49999525
14. Retrieved on October 13 2019 fromhttp://kavitakosh.org/kk/%E0%A4%AE%E0%A5%81%E0%A4%A8%E0%A4%BE%E0%A4%A6%E0%A5%80_/_%E0%A4%A7%E0%A4%B0%E0%A5%8D%E0%A4%AE%E0%A4%B5%E0%A5%80%E0%A4%B0_%E0%A4%AD%E0%A4%BE%E0%A4%B0%E0%A4%A4%E0%A5%80
15. Retrieved on October 13 2019 from https://www.prabhasakshi.com/personality/jaiprakash-narayan-is-indias-loknayak
16. उपरोक्त

वेदान्त आधारित आनन्दमय एवं उद्देश्यपूर्ण जीवन-दर्शन की शिक्षा : आधुनिक वैश्विक सामाजिक परिवेश के संदर्भ में

डॉ0 अजय कुमार सिंह एवं डॉ0 विनोद कुमार सिंह***

वेदान्त सब धर्म एवं दर्शनों का मूल है, उसे यदि सार्वभौतिक एवं सर्वकालिक दर्शन कहा जाए तो कोई अतिशयोक्ति न होगी। श्रवण, मनन और निद्धियासन वेदान्त की साधना के त्रिविध सोपान हैं। मनुष्य जीवन का अंतिम उद्देश्य मुक्ति है और इस मुक्ति के लिए वेदान्त ज्ञान मार्ग का समर्थन करता है। यह आलेख 'वेदान्त आधारित आनन्दमय एवं उद्देश्यपूर्ण जीवन-दर्शन की शिक्षा को वर्तमान आधुनिक वैश्विक जीवन संघर्ष' के आलोक में प्रस्तुत किया गया है, इसमें वेदान्त जीवन-ज्ञान की कुछ प्रमुख शिक्षाओं को आधुनिक वैश्विक सामाजिक परिवेश के संदर्भ में वर्णित किया गया है। यह वेदान्त के उच्च जीवन आदर्शों को व्यावहारिक रूप में आचरण में अन्तर्निहित करते हुए जीवन जीने की शिक्षा नूत-नवीन अर्थों में प्रदान करता है, आलेख में वेदान्त ज्ञान-रत्न क्रमशः हैं- जीवन के सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक पक्ष में साम्य, उच्चतर जीवन ज्ञान-लक्ष्य, तीव्र कर्मण्यता के मध्य अनन्त शान्तभाव, वाह्य एवं आन्तरिक जीवन-संतुलन का तत्वज्ञान, उत्साह व उच्चता से परिपूर्ण जीवन माधुर्य, स्वयं मानव के अंतर्निहित दिव्यता से आत्मसाक्षात्कार व एक अखण्ड वस्तु के रूप में जीवन सार्वलौकिकता पर गूढ़ चर्चा की गयी है। प्रस्तुत आलेख आधुनिक वैश्विक समाज एवं उसमें निवास करने वाले नागरिकों को आनन्दमय एवं उद्देश्यपूर्ण जीवन जीने के लिए वेदान्ताधारित शिक्षा मार्गदर्शित करने में निश्चय ही सहायक सिद्ध होगा, जिसके माध्यम से मानव-उत्कर्ष का दीप पुनः प्रज्ज्वलित किया जा सकेगा।

प्रस्तावना

भारतीय वेदों की सिद्धि अन्त[1] एवं सर्वोच्च विकास के तत्वज्ञान और आध्यात्मिक ज्ञान के चिन्ह को व्यक्त करने वाली विचार प्रणाली, जिनकी संख्या मुख्य ग्रन्थों के रूप में दस है।[2] वे उपनिषद् कहे जाते हैं; विस्तृत व विविधतापूर्ण वैदिक साहित्य के अन्तिम अंश अर्थात् सार रूप होने के कारण उपनिषदों को वेदान्त कहा जाता है। वैदिक साहित्य के अन्तिम भाग-वेदान्त में कोई कठोर या दृढ़ सिद्धान्त वर्णित नहीं है बल्कि सनातन धर्म के मध्यवर्ती गुण-विशेषताओं का अभ्यास है। भारतीय दृष्टिकोण में धर्म एवं दर्शन अभिन्नता के साथ सामंजस्यपूर्वक एक-दूसरे के साथ बंधे हैं। भारत ने स्वयं इस धर्म या तत्त्वज्ञान को कोई विशेष नाम नहीं दिया।[3] यद्यपि तरह-तरह के नाम और प्रकार के धर्म और पंथों को निर्मित कर उन्हें अपने मातृहृदय में संजोए रखा। जो निर्भयतापूर्ण आच्छादित वातारण में पूर्ण मनोभाव एवं तीव्र कामनाओं के वेग से सम्पूर्ण प्रकृति, जीवन व अनुभव का मंथन कर वास्तविक जीवन-विज्ञान की विशेषताओं की सतत् खोज करते हुए, आंतरिक गहराई से प्राप्त आविष्कारों का ज्ञानार्जन कर जीवन में समाविष्ट करता है; जो कभी पुरातन नहीं जान पड़ते एवं वैश्विक जगत के हर काल, स्थान एवं मानव को नवीन अर्थों में जीवन-शिक्षा युक्त करते रहते हैं।

भारत राष्ट्र ने अपने विस्तृत प्रभावशाली एवं लम्बे सांस्कृतिक जीवन का अनुभव प्रत्येक दृष्टिकोण, स्तर व गहराई से किया है तथा वैश्विक दृष्टिकोण से मार्गदर्शित एवं परिपूर्ण उदार सर्वसमावेशी तत्व ज्ञानाधारित सांस्कृतिक जीवन को अभूतपूर्व समृद्धि, विविधता और परिपक्वता से पोषित व पल्लवित किया, जो आज भी आधुनिक वैश्विक मानवों को मार्गदर्शित कर, उन्हें उच्च जीवन आदर्शों को व्यावहारिक रूप से आचरण में व्यक्त करते हुए जीवन जीने की शिक्षा नूत-नवीन अर्थों में प्रदान करता रहा है।

वेदान्त-दर्शन : एक परिचय

वेदान्त दर्शन को भारतीय चिन्तन का चरण उत्कर्ष माना जाता है, साथ ही भारत की समस्त दर्शन पद्धतियों में वेदान्त-दर्शन का सर्वाधिक एवं सर्वातिशायी प्रभाव मानव-जीवन पर पड़ा है। वेद, ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषदों के गूढ़ एवं विस्तृत दार्शनिक चिन्तन का अन्तिम सार ही वेदान्त दर्शन है। जीवन को रूपान्त करने के प्रश्न पर तो वेदान्त का हमारी आचार-संहिता पर जैसा प्रभाव पड़ा वह पाश्चात्य जगत् के विज्ञानवाद के बौद्धिक प्रकर्ष के बावजूद यूरोप में व्यक्त नहीं हो सका। वेदान्त-दर्शन में शिक्षा के विचार तो प्रत्यक्षतः प्राप्त नहीं होते, लेकिन वेदान्त-दर्शन के जीवन-उद्देश्य की दृष्टि पर चिन्तन-मनन करने पर प्राप्त है कि मानव-जीवन तथा मानव-शिक्षा के लक्ष्य एक हैं- 'परमसत् रूप सम्पूर्ण ज्ञान की प्राप्ति' जिस प्रकार मध्ययुगीन आदर्शवादी विचारकों ने उपनिषदों की वेदान्तिक विचारधारा को पुनः गहनता से अध्ययन करके नवीन मान्यताएं स्थापित किया उसी प्रकार आज के आधुनिक-वैश्विक युग के अनुरूप वेदान्त आधारित आनन्दमय एवं उद्देश्यानुरूप मानव-जीवन दर्शन की शिक्षा पुनः संगठित कर प्राप्त किया जाने योग्य है।

नादरायण व्यास (चौथी शताब्दी) प्रथम व्यक्ति हैं[4], जिन्होंने समस्त प्राचीन ग्रंथों के सार तत्व को सूत्र रूप में 'ब्रह्म सूत्र' नामक

* सहायक आचार्य, शिक्षा विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

* * सहायक आचार्य, शिक्षा विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

ग्रंथ में विरचित किया; जो वेदान्त का आदि ग्रन्थ है। इनके पश्चात् कई सौ वर्षों में अनेकानेक विद्वानों ने ब्रह्मसूत्र पर भाष्य ग्रंथ की रचना की एवं अपनी दृष्टि के अनुरूप नए रूपों में वेदान्त की व्याख्याएं की, जिससे अनेक शाखा-उपशाखाओं का विकास हुआ। इनमें शंकर (9वीं शताब्दी) का अद्वैत, रामानुजाचार्य (12वीं शताब्दी) का विशिष्टाद्वैत, मध्वाचार्य (13वीं शताब्दी) का द्वैत, निम्बार्क (13वीं शताब्दी) का द्वैत, श्रीकण्ठ (13वीं शताब्दी) का शैव विशिष्ट द्वैत, श्रीपति (14वीं शताब्दी) का वीर शैव विशिष्ट द्वैत और वल्लभाचार्य (16वीं शताब्दी) का शुद्धा द्वैत मुख्य है। इन सभी में शंकर का अद्वैत वेदान्त तो पूर्ण रूपेण वेद एवं उपनिषद मूलक हैं परन्तु शेष अन्य सभी दर्शनों की तत्त्व-मीमांसा तो वेद एवं उपनिषदों पर आधारित है साथ ही उनकी उपासना पद्धतियाँ वैष्णव, शैव अथवा शाक्त आगमों पर भी आधारित हैं।[5]

आचार्य शंकर के पूर्व के वेदान्त की तीन परम्पराएँ प्रसिद्ध हैं-(1) अद्वैत वेदान्त की परम्परा, (2) भेदाभेदभाव की परम्परा तथा (3) भेदवादी परम्परा। इनके अतिरिक्त जो परम्पराएँ विकसित हुई वे किसी न किसी दृष्टि से इन्हीं तीनों धाराओं के अन्तर्गत ही समाविष्ट हैं।[6] आज भारत में जितने भी दर्शन एवं धर्म मानव जीवन के आचरण में विद्यमान हैं, उन पर वेदान्त का प्रभाव कुछ न कुछ अवश्य है।

'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा' ब्रह्म सूत्र का प्रथम सूत्र है, इस सूत्र द्वारा 'ब्रह्म जिज्ञासा' को हम शिक्षा का प्रमुख लक्ष्य मान सकते हैं। ब्रह्म ज्ञान की प्राप्ति से मानव को आत्मा, जगत्, पदार्थ, चेतन, जीव सभी का वास्तविक स्वरूप ज्ञात होता है। वेदान्त दर्शन के मानवीय शिक्षा का एकमात्र लक्ष्य है-'अज्ञान से मुक्त करके मानव को ज्ञान की प्रतीति' करवाना, जिससे मानव विद्या एवं अविद्या में विवेकपूर्ण भेद करके सत्य एवं मिथ्या का अन्तर समझ सके एवं अपने अन्तर में निहित अनन्त-ज्ञान व अनन्त-शक्ति की पहचान स्वयं कर सके।

वेदान्त-दर्शन का ब्रह्म यहूदी धर्म के जेहोवा, पारसी धर्म के आहुरमज्ज, ईसाई धर्म के गौड़ और इस्लाम धर्म के अल्लाह के समान निर्गुण एवं सर्वशक्तिमान है। अन्तर केवल इतना है कि जेहोवा, आहुरमज्ज, गौड और अल्लाह इस ब्रह्माण्ड के कर्ता मात्र हैं जबकि वेदान्त का ब्रह्म इसका कर्ता एवं उपादान, दोनों कारण हैं। जगत् के कर्ता के रूप में ब्रह्म को सगुण रूप देकर इसे ईश्वर की संज्ञा से विभूषित कर शंकर ने ईश्वर भक्त लोगों के हृदय को भी स्पर्श किया है।[7] आज के समय-संघर्ष में वेदान्त की समस्त शाखा एवं उपशाखाओं में सर्वाधिक महत्व शंकर के अद्वैत वेदान्त का है क्योंकि शंकर का वेदान्त भारतीय चिन्तन धारा का चरमोत्कर्ष है। प्रस्तुत आलेख में भी मुख्य रूप से शंकर के अद्वैत वेदान्त को ही आधार रूप में लिया गया है।

व्यावहारिक अर्थ में वेदान्त-दर्शन के अनुसार शिक्षा का तात्पर्य है-'प्राप्त ज्ञान का कर्म में उपयोग।' कर्म-भक्ति तथा ज्ञान के समन्वय की प्रक्रिया को वेदान्त-शिक्षा की संज्ञा दी जाती है। कर्म में उपयोग न होने से ज्ञान का कोई मूल्य और महत्व जीवन में नहीं है। अतः वेदान्त-दर्शन मानव-जीवन को श्रेष्ठतर बनाने हेतु मानव के व्यक्तित्व रूपान्तरण पर बल देता है तथा वेदान्त-दर्शन के शिक्षा का आदर्श मानव को उसकी पाशविक वृत्तियों से मुक्त करके उसे सही अर्थों में मानवोचित गुणों से युक्त करता है जिससे यह आनन्ददायक एवं उद्देश्यपूर्ण जीवन के मूल लक्ष्य की प्राप्ति व्यावहारिक जीवन में प्राप्त कर पाए।

आधुनिक वैश्विक जीवन-संघर्ष

विकास मानव की प्रकृति है एवं मानवीय मूल्य इसकी पहचान है। मानव ने अपनी प्रवृत्ति के अनुरूप विकास का लम्बा रास्ता तय किया है लेकिन आधुनिक विश्व ने विकास के नए माडलों का निर्माण कर मानव को उसकी मूल प्रकृति से विमुख कर दिया है। यदि केवल भौतिक पर्यावरण की ही समस्या को उजागर करें तो संयुक्त राष्ट्र महासचिव बान की मून ने सन् 2011 में आयोजित विश्व आर्थिक मंच पर व्यक्त किया था कि 'विश्व का वर्तमान आर्थिक माडल पर्यावरणीय आत्महत्या है। वैश्विक अर्थव्यवस्था को निर्वहनीय बनाने के लिए क्रान्ति की जरूरत है।[8]

आज हमारे आधुनिक विश्व को अनेकानेक मानवीय विसंगतियों ने घेर रखा है। भ्रष्टाचार, बेईमानी, जातिवाद, क्षेत्रवाद, भाषावाद, मादक पदार्थों का इस्तेमाल, हथियारों के प्रति आकर्षण, धन और भौतिक सामग्री की कभी खत्म न होने वाली भूख, आर्थिक और तकनीकी प्रगति एक ओर नए आसमान छू रही है तो दूसरी ओर सामाजिक और नैतिक पतन एक नया निम्न स्तर तलाश रही है, आय में असाधारण विषमताओं ने हालात को और जटिल बना दिया, सम्पन्न विश्व के भीतर एक नवीन वंचितों एवं पिछड़ों का विश्व आकार लेने लगा है। विभिन्न समाजों का उच्च एवं आधारभूत मूल स्वरूप, संस्कृति विहिनता के द्वार पर पराभाव के स्वागत के लिए बेकरार है, जीवन की स्थिरता व शांति को खतरा महसूस होने लगा है और यहाँ तक कि घर-परिवार में बिखराव ने जीवन के अनमोल मोती को बड़ी हृदय विहीन बेदर्दी से मानव-जीवन को पत्थरों व कंकरीट जंगलों में जकड़ रखा है। धार्मिक कट्टरता से उत्पन्न हुई हिंसा, हम वैश्विक नागरिकों को मानवता के हर क्षेत्र में परास्त कर रही है, अंध-धार्मिकता की चादर लपेट कर अमानवीय आचरण फल-फूल रहे हैं। धार्मिक कट्टरता वैश्विक स्तर पर आतंक व हिंसा फैला रहा है, धर्म के मूल-मानवीय बंधुत्व व शांति को नष्ट-भ्रष्ट कर रही है।[9] हमने अन्याय एवं अमानवता कृत्य कार्यों के द्वारा समाज के सर्वाधिक पिछड़े, निरीह एवं गरीब लोगों से उनका हक छीना है, परिणामतः हिंसात्मक संघर्ष विश्व में दिन-प्रतिदिन बढ़ रहे हैं।

आज नवयुवक राष्ट्र व विश्व निर्माण की सकारात्मक प्रवृत्ति के स्थान पर नकारात्मक प्रवृत्ति से ओत-प्रोत होकर वृहद् स्तर व अनेक रूपों में अपराध क्षेत्र में व्यापक बढ़ोत्तरी कर रहे हैं, आज का अधिकांश नवयुवक दिशाहीन एवं अमानवीय-जीवन को आलिंगन

बद्ध कर बैठा है। युवकों को आत्मविश्वास-हीनता के सर्प ने डस लिया है, वे उसके जहर से गस्त हो मूर्छित अवस्था में पड़े हैं, नशे की आदत ने तो उनकी शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक एवं आध्यात्मिक चेतना की दिव्यता को मानवीय आत्मा से हरण कर लिया है।

आज के वैश्विक समाज में केवल धन संचय को छोड़कर जीवन के अन्य लक्ष्य लक्ष्यविहीनता की स्थिति में हैं, मानव-जीवन अपने मूल जीवन-लक्ष्यों से भटक गया है[10] और शारीरिक व भौतिक सुख को ही आत्म-आनन्द समझ मानव इस लक्ष्यविहीन व आनन्दहीन अवस्था में भ्रमण कर रहा है।

आधुनिक वैश्विक युगानुरूप वेदान्ताधारित आनन्दमय एवं उद्देश्यपूर्ण जीवन-दर्शन की शिक्षा

प्राच्य भारत द्वारा प्रदत्त निष्पक्ष और विवेकशील अध्ययन जो असीम सर्वसमावेशी आध्यात्मिकता के द्वारा पोषित तथा धर्म के चिरस्थायी प्रारूप व उसके स्वरूप अध्ययन आज के वैश्विक नागरिकों के लिए बौद्धिक तथा आध्यात्मिक साधना की दृष्टि से फलदायी सिद्ध हो सकता है, कुछ प्रमुख आनन्दमय एवं उद्देश्यपूर्ण जीवन-दर्शन की शिक्षाएं निम्नलिखित वर्णित हैं-

1- वेदान्त साम्य-सैद्धान्तिक पक्ष एवं व्यावहारिक पक्ष में संतुलन एवं समन्वय

उपनिषदों से ज्ञातव्य है कि वेदान्त दर्शन केवल निर्जन अरण्यवास के फलस्वरूप ध्यान द्वारा ही नहीं प्राप्त हुए बल्कि वेदान्त के सर्वोत्कृष्ट भिन्न-भिन्न अंश सांसारिक कर्मों में विशेष सक्रिय, व्यस्त एवं हम सभी से अधिक कर्मण्य मनीषियों द्वारा ही चिन्तित तथा प्रदर्शित किये गये, जिन्हें हम राज सिंहासन पर विराजमान राज-राजर्षि के रूप में देखते हैं, वही वेदान्त के प्रणेता हैं अत्यधिक कार्य-व्यस्त निरंकुश राजाओं की वृहद् श्रृंखलाओं में अनेकानेक गम्भीर चिन्तक राजर्षि भी विराजमान थे, जो वेदान्त-सिद्धान्त को नगरों के कोलाहलपूर्ण व्यस्तताओं में तीव्र कर्मण्यता के साथ अनन्त शान्तभाव से मंथन किया। इसकी स्पष्टता इस तथ्य से और अधिक हो जाती है जब राजा प्रवाहण जैवलि ने आरूषि ऋषि के पुत्र श्वेतकेतु से कहा ''यह विद्या, यह ब्रह्मविद्या, केवल राजाओं को ही ज्ञात थी, पुरोहितों को इसका कभी ज्ञान न था।'' स्पष्ट है कि वेदान्त-दर्शन पूर्णतः व्यावहारिक है। यह आध्यात्मिक और व्यावहारिक जीवन के मध्य उपस्थित काल्पनिक भेद का अन्त कर मानव जीवन की समस्त अवस्थाओं में उसे व्यावहारिक कर्म में परिणत करता है तथा अपने व्यावहारिक पक्ष के कारण धर्म पर आरूढ होता है और कहता है, 'यदि ईश्वरोपासना करने के लिए प्रतिमा आवश्यक है, तो उससे कहीं श्रेष्ठ मानव प्रतिमा मौजूद भी है। यदि ईश्वरोपासना के लिए मन्दिर निर्माण करना चाहते हो, तो करो, किन्तु सोच लो कि उससे भी उच्चतर, उससे भी महान् मानव देहरूपी मन्दिर तो पहले से ही मौजूद है।'[11]

आज हमने वैश्विक आवरण में ज्ञान को विस्तार करके उसके सैद्धान्तिक पक्ष पर ज्यादा ध्यान दिया है। ज्ञान की अभिव्यक्ति एवं कर्म की अभिव्यक्ति में अन्तर सर्वविदित एवं सर्वत्र विद्यमान है। आज के वैश्विक ज्ञान को सहज, सरल एवं व्यावहारिक रूप में प्रकाशित किया जाय जिससे जीवन के ज्ञान व व्यवहार कर्म के मध्य आपसी सामन्जस्य के साथ समन्वय एवं संतुलन बना रहे।

2- वेदान्त ज्ञान – उच्चतर अर्थगाम्भीर्य ज्ञान-लक्ष्य

वेद को प्रमुख रूप से दो भागों 'कर्मकाण्ड' और 'ज्ञानकाण्ड' में वर्णित किया जाता है। इस अत्यन्त प्राचीन काल में यज्ञादिक कर्मकाण्ड अत्यधिक प्रचलित थे, इन कर्मकाण्डों का अत्यन्त जटिल एवं विस्तारपूर्ण परिधि होने के कारण इससे मुक्त होना असम्भव-सा लगता था लेकिन उपनिषद काल में ज्ञानियों का अभ्युदय हुआ, इस उपनिषदों के अभ्युदयकाल में इन्होंने यज्ञादि कर्मकाण्ड को पाखण्ड या मिथ्या बताकर इनके विरूद्ध प्रचार नहीं किया और न ही उसे पूर्णतः समाप्त करने की विरूद्धीय चेष्टा प्रकट किया, बल्कि अत्यन्त सहजता से धीरे-धीरे प्रत्येक कर्मकाण्ड में निहित एक उच्चतर अर्थगाम्भीर्य व्यावहारिक ज्ञान से परिचित कराने की चेष्टा की गयी तथा उन्हीं का उच्चतर तात्पर्य समझाकर मानवों को एक ऐसी ज्ञान वस्तु दी जिसे जीवन में स्वयं के व समस्त जगत के हित में ग्रहण किया जा सके। अन्ततः कहा जा सकता है कि उपनिषदों ने कर्मकाण्ड को बिल्कुल त्याग दिया। प्राचीन उपनिषद् में वर्णित उच्चतर अर्थगाम्भीर्य ज्ञान के एक तिनका अंश के रूप में पांचालराज द्वारा श्वेतकेतु से कहा, इस अत्यन्त प्राचीन काल में यज्ञादिक कर्मकाण्ड अत्यधिक प्रचलित थे, इस ''अग्नि में हवन करो, बहुत अच्छी बात है किन्तु तुम्हारी इस क्षुद्र अग्नि में हवन (होम) करने का कोई प्रयोजन नहीं, सम्पूर्ण जगत ही वह अग्नि है और दिन-रात उसमें हवन (होम) हो रहा है। ...यह निर्मित क्षुद्र मंदिर है, ठीक है, किन्तु सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड ही हमारा मंदिर है, हम कहीं भी उपासना कर सकते हैं। .....तुम लोग वेदी बनाते हो किन्तु हमारे लोगों के मत में, जीवित, चेतन, मनुष्य देहरूपी वेदी वर्तमान में विद्यमान है और इस मनुष्य देहरूपी वेदी पर की गयी पूजा, दूसरी अचेतन, मृत, जड़ प्रतीक की पूजा की अपेक्षा श्रेयस्कर है।''[12]

आज भी जीवन एवं शिक्षा को कर्मकाण्डीय की अपेक्षा उच्चतर अर्थों में ज्ञानकाण्डीय बनाने की चेष्टा होनी चाहिए। यह ज्ञानकाण्डीय कर्म व्यवहार संकुचित न होकर मानव विकास की व्यापक संभावनाओं को लक्षित करेंगे व मानवीय मूलगुण को प्राप्त करेंगे। जीवन एवं शिक्षा के मूल लक्ष्यों की प्राप्ति की ओर ही हमारा मूल कर्म होना चाहिए न कि पूर्ण भौतिक क्रिया-कलापों में आबद्धता। उच्च जीवन मूल्यों की प्राप्ति की प्रतिबद्धता शिक्षा के माध्यम से किया जा सकता है, यही मूल व अन्तिम ध्येय शिक्षा का हो। व्यावसायिक जीवन हुनर के साथ उच्च जीवन-शिक्षा मूल्यों का हुनर भी समाविष्ट किया जाए।

3- वेदान्त कर्मरहस्य- तीव्र कर्मण्यता के मध्य अनन्त शान्तभाव

मानव कर्मशील है, कर्मशीलता उसका प्रमुख जीवन गुण है, इस आदर्श जीवन गुण पर जीवन प्रवाहमान रहता है। मानव कर्म हेतु एक प्रकार का आवेग अनुभव करता है तथा उसी के द्वारा कार्य सिद्धि प्राप्त करता है, लेकिन इसकी मात्रा अधिक हो जाने पर मानव भावनाओं के अधीन होकर मन को चंचलामान कर बैठता है, जिस शक्ति को कार्यरूप में परिणत होना था, वह वृथा भावुकता में नष्ट-भ्रष्ट हो जाती है, तब मानव शक्ति का अपव्यय कर देता है। कामनायुक्तता कर्म को अद्योगति प्रदान करती है।

साधारणतः 'अकर्म' या 'अकर्म-शीलता' का अर्थ है 'निश्चेष्टता', इस निश्चेष्टता का वरण मानव नहीं कर सकता, क्योंकि भौतिक (पत्थर, मिट्टी इत्यादि) एवं वनस्पति (पेड़, पौधे, तना, शाखाएं इत्यादि) भी तो निश्चेष्ट है, नहीं तो यह परमज्ञानी व महातपस्वी होते। प्रश्न यह है कि संसार में कार्य करने के लिए मानव की किस प्रकार की मनोवृत्ति सर्वश्रेष्ठ एवं उपयोगी होगी?

इसका उत्तर हमें मानव जीवन संघर्ष के सबसे बड़े संग्राम स्थल के केन्द्रीय भाग में उपदेश स्वरूप मिलता है, जो वेदान्त-दर्शन का एक सर्वोत्तम भाष्य स्वरूप है- 'भगवद्गीता', इसके प्रत्येक पृष्ठ पर वेदान्त के भावावस्था लक्ष्य को उज्ज्वल रूप में उपदेशित एवं प्रकाशित किया गया है, वह है- ''तीव्र कर्मण्यता के मध्य अनन्त शान्तभाव। चित्त का यह साम्यभाव कभी भंग नहीं होता, स्थिरता कभी नष्ट नहीं होती, वेदान्त का आदर्श यथार्थकर्म अनन्त शान्ति के साथ संयुक्तबद्ध है।''

यदि हम विश्व के किसी भी असाधारण, महान्, प्रसिद्ध व कार्यसिद्धि व्यक्तियों के जीवन का अध्ययन करते हैं तो पाते हैं कि वे अद्भुत रूप से शान्त प्रकृति के थे। मानव जितना अधिक शान्त होता है उतना ही मानव का आत्मकल्याण होता है, कार्य की सर्वाधिक उत्कृष्ट सिद्धि प्राप्त होती है। जीवन अनुभव की वृद्धि पर हम सब स्वयं अनुभूत करते हैं कि कार्य के भीतर आवेग जितना भी कम होगा, उतना ही कार्य उत्कृष्ट होगा, जब मन अत्यन्त शान्त एवं एकाग्र होता है तब हमारी समस्त शक्ति सृजन एवं सत्कार्य में व्यय होती है।

आज का वैश्विक मानव भौतिक संसाधनों में लिप्त अस्थिर चित्त वाला बन गया है। चंचल मन व अशान्ति उसके अन्दर निरन्तर क्रोध, घृणा, कामवासना जैसे अनेक आवेग उत्पन्न कर रही है और इससे आधुनिक मानव अभिभूत होता जा रहा है। हमें ज्ञात है कि जीवन कर्म में सबसे बड़ा कर्मयोगी शान्त, क्षमाशील व स्थिर चित्त वाला ही व्यक्ति हो सकता है लेकिन समसामयिक आधुनिक शिक्षा पद्धति ऐसे गुणों को धारण करने वाले व्यक्तियों का वृहद् स्तर पर निर्माण करने में अपने आपको अक्षम अथवा पूर्ण नहीं पा रही हैं। वेदान्त मानवोचित्त गुणों पर आधारित मानव निर्माण करने पर शिक्षा में अपना बहुमूल्य योगदान प्रदत्त करता है। आज मनुष्य को मशीन नहीं बल्कि मानव गुण धारित तीव्र कर्मण्यता के मध्य अनन्त शान्त भाव से जीवन शिक्षा प्राप्त करनी आवश्यक प्रतीत होती है, जिसे वेदान्त के माध्यम से समस्त मानव जगत के लिए सतत् प्राप्त किया जाता रहा है।

4- वेदान्त तत्वज्ञान- वाह्य एवं आन्तरिक जीवन-सन्तुलन

आज के आधुनिक मानव का व्यापक एवं सूक्ष्म अध्ययन करते हैं तो मानव का वाह्य जीवन सुव्यवस्थित, भौतिक सौन्दर्य से परिपूर्ण, वैभवशाली एवं आकर्षक दिखता है परन्तु उसका आन्तरिक जीवन मनोरोगों से युक्त है तथा इस मनोरोगों में लगातार वृद्धि हो रही है। मानव का भीतरी जीवन बड़ा अद्भुत, अनोखा, अपूर्व एवं अवर्णीय है लेकिन अनुभूतपूर्ण है। आधुनिक वैश्विक सभ्यता में मानव को आन्तरिक प्रकृति का ज्ञान अति अल्प है। मानव ने अनेक शताब्दियों से इस ज्ञान को विस्मृत कर दिया था, लेकिन आन्तरिक जीवन की बाधाओं (मनोरोगों) के कारण स्वरूप आधुनिक ज्ञान-विज्ञान द्वारा अन्वेषण आरम्भ किया जा चुका है जिससे वह पुनः मानव के भीतरी जगत के सत्य को पहचानना प्रारम्भ कर दिया है, आधुनिक विज्ञान एवं वैज्ञानिकों ने मानव के प्रकृति के भीतर के सत्य को उसके बाहरी रूप में वेदान्त की तरह ही पा रहा है। आन्तरिक जीवन का आधुनिक वैश्विक युग में महत्व पहचाना जा चुका है लेकिन इसके परिणाम आज भी काफी अल्प हैं। आधुनिक विज्ञान के अधिकांश ज्ञान वाह्य रूप को अत्यधिक विधिसम्मत अस्तित्व प्रदान करते हैं जो भौतिकशास्त्र में सर्वाधिक, जीवाणुशास्त्र में थोड़ी कठिनाई के साथ बौद्धिक रूप से सहमत, वनस्पतिशास्त्र में अत्यधिक कठिन, जीवशास्त्र में केवल कीड़ों के अध्ययन पर विमुढ़, रीढ़ वाले जन्तुओं में निष्फल एवं मानव अध्ययन में आज भी असफल एवं अपने को वर्णन योग्य नहीं पाता, क्योंकि आन्तरिक अस्तित्व को नकारा नहीं जा सकता, इसे अंतः प्रज्ञा द्वारा अनुभूत किया जा सकता है।

स्वामी विवेकानन्द कहते हैं- ''यूनानी या आधुनिक यूरोप की तरह हमारे पूर्वजों ने भी मन व वाह्य जगत की खोज से जीवन व जीवात्मा की समस्त पवित्र समस्याओं का हल प्राप्त करना चाहा, लेकिन असफल रहे। वे वहीं रूक गऐ कोई अगला चरण नहीं उठाया लेकिन हमारे पूर्वजों ने यह घोषित करने में देर नहीं किया कि इन्द्रियों के द्वारा हल ढूँढ़ने में वे पूर्ण असमर्थ हैं, उन्होंने साहस का परिचय दिया, अगले चरण में मानव की भीतरी प्रकृति पर लौट आए।''[13]

तैत्तिरीय उपनिषद में वर्णित किया गया है-

यातो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह।।[14]

'(सर्वोच्च सत्य वही है) जहाँ से शब्द व इन्द्रियाँ देवबद्ध मन सहित टकराकर वापस आ जाते हैं।'

केनोपनिषद आगे कहता है-

'न तत्र चक्षु गच्छति, न वाक् गच्छति'[15]

'वहाँ न आँखें न वाणी पहुँच सकती हैं।'

स्वामी विवेकानन्द ने इसे स्पष्टता से व्यक्त किया है, ''उनमें अनेक वाक्य हैं जो इन्द्रियों की पूर्ण असमर्थता जताते हैं, किन्तु वे वहाँ ठहरे नहीं, वे मनुष्य की भीतरी प्रकृति में लौट आए, उन्होंने उत्तर अपनी आत्मा से माँगा, वे भीतर की ओर चिन्तन करने लगे। उन्होंने वाह्य प्रकृति को विफल जानकर छोड़ दिया, वहाँ कुछ भी न किया जा सकता था, कोई आशा, कोई उत्तर नहीं मिल सकता था। उन्होंने पाया कि जड़ पदार्थ उन्हें सत्य नहीं दे सकते थे, वे मानव की ज्योतिर्मय आत्मा में वापस आए तथा वहाँ उत्तर पाया।''[16]

दर्शन एवं शिक्षा ने पिछली शताब्दी में प्रकृति की सभी प्रकार की यान्त्रिक व भौतिक व्याख्या को प्रस्तुत किया, जिसके द्वारा मानव को जन्तु बना दिया गया तथा अंततः जन्तुओं एवं मनुष्यों को यन्त्र। लेकिन पिछले कुछ दशकों से भौतिक विद्या ने प्रकृति के भीतरी स्वरूप के सत्य को स्वीकार करना प्रारंभ कर दिया है जिसका वेदान्त विधि सम्मत व्याख्या करता है। यन्त्र अथवा मशीन के विपरीत मानव का भीतरी जीवन होता है, कर्म के वाह्य जगत में होने पर भी भीतरी जगत में कार्य गतिशील होता है जिसे हम देख नहीं सकते। वाह्य जगत के कर्म मनुष्य के अन्तर्जगत पर और अन्तर्जगत के कार्य वाह्य कर्मों पर प्रभाव डालते हैं। प्रत्येक वाह्य कर्म मानव के मन पर अच्छा या खराब छाप छोड़ता है जिसे हम संस्कृत में संस्कार या वासना से सम्बोधित करते हैं। इस सचेतन तथा अचेतन संस्कारों का कुल योग व प्रभाव मानव का चरित्र होता है। शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य तथा जीवन पूर्णता के लिए संस्कारों को भली-भाँति प्रकार से जानना, पहचानना व समझना होगा क्योंकि इसके बोधाभ्यास पश्चात् ही हम स्थिरता व शान्तिपूर्वक वाह्य तथा आन्तरिक जीवन में एक साथ चल सकते हैं।

भारत हजारों वर्ष पूर्व ही जीवन ज्ञान के इस उच्चतम आयाम तक पहुँचा एवं मानव जीवन के गहन अध्ययन में पाया कि देह मन के संसार के पीछे नित्य-शुद्ध, नित्य-मुक्त व नित्य ज्योतिर्मय दिव्य प्रकाश प्रत्येक मनुष्य में है, जिसे 'आत्मा' का नाम दिया, यह सिद्धान्त नहीं, मत नहीं, यह तो सत्य का अनावरण है जिसका अनुभव कोई भी मानव कर सकता है। श्वेताश्वतर उपनिषद कहता है-

यदात्मा तत्वेन तु ब्रह्म तत्त्व दीपोपमेनेहयुक्तं प्रपश्येत्।

अजं धुरवं सर्व तत्त्वे, विशुद्धम ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपापैः।।[17]

'जब स्वनियन्त्रित आध्यात्मिक साधक इसी शरीर में ब्रह्म के सत्य को प्राप्त कर लेता है, आत्म सत्य के द्वारा जो प्रकाश की तरह स्वज्योतिर्मय है, तब अजन्मा नित्य तथा प्रकृति के गुणों से दूर उस दिव्य को जानकर वह सभी पापों से मुक्त हो जाता है।'

वह वैज्ञानिक तकनीक जिसे हमारे पूर्वजों ने सभी प्राणियों में आत्मा के साक्षात्कार के लिए अपनाया, उसका वर्णन कठोपनिषद करता है-

परांचिखनि व्यतृणत् स्वयंभूः तस्मात् पराङ्पश्यति नान्तरात्मन्।

कश्चित् धीरः प्रत्यगात्मान्मैक्षत् आवृत्तचक्षुः अमृतत्वमिच्छन्।।[18]

'स्वयं भू परमात्मा ने मनुष्य, इन्द्रियों व मन को रचा जिनमें बहिगामि प्रवृत्ति का मूल दोष है, अतः वे परम सत्य को बाहर की ओर ढूंढते हैं, भीतर में आत्मा को नहीं, एक बुद्धिमान धीर पुरुष ने नश्वर के पीछे अमरत्व को पाने के लिए अपनी समस्त इन्द्रियों की शक्ति को भीतर की ओर मोड़कर आत्मा को प्राप्त किया।'

कठोपनिषद में इसे योग कहा गया-

यदा पंचवतिपठन्ते ज्ञानानि मनसा सह।[19]

बुद्धिश्च न विचेष्टते तामाहुः परमां गतिं, तां योगमिति मन्यन्ते।।[20]

'जब पाँचों इन्द्रियाँ मन सहित स्थिर हो जाती हैं, बुद्धि भी हिलती नहीं, यही सर्वोच्च अवस्था है, ऋषि इसे ही योग कहते हैं।''

प्रसिद्ध भारतीय ग्रन्थ महाभारत में वर्णित शब्दों के अनुसार-

'अमृतं चैव मृत्युश्च द्वयं देहे प्रतिष्ठितम्।

मृत्युरापद्यते मोहात् सत्येनापद्यते ऽमृतम्।।[21]

'इस देह में अमरत्व व मृत्यु दोनों ही प्रतिष्ठित हैं, मोह के पीछे जाने वाले मृत्यु व सत्य के पीछे जाने वाले अमृत प्राप्त करते हैं।'

धार्मिक दृष्टिकोण से इसे वर्णित करें तो देखते हैं कि आधुनिक वैज्ञानिक उन सभी को चुनौती देते हैं जो सभी धर्म नित्य ईश्वर को सृष्टि से बाहर स्थापित करते हैं, जो परा-प्राकृतिक की अवैज्ञानिक धारणा का आश्रय लेने को बाध्य होती है। इसके उलट धर्म दृष्टिकोण से प्राचीन तत्त्वज्ञान वेदान्त के नित्य अगर ईश्वर को सृष्टि के बाहर स्थापित करने की त्रुटि नहीं करता, बल्कि वेदान्त ऋषियों ने अमर और दिव्य को सृष्टि के अंतरंग में, मानव के भीतर सृष्टि की आत्मा के रूप में स्वयं मानव की आत्मा के रूप में देखा था।

इसे केवल वेदान्त ने ही नहीं बल्कि सभी धर्मों ने यथा-ईसा, सूफी, संत, बुद्ध आदि ने किसी न किसी रूप में स्वीकार किया है। मानव इतिहास में विश्व को बदलने वाली उर्जा स्वत्व के आयाम से ही हमेशा प्रकट हुई है, कर्म करने की दिशा से नहीं।

जिस प्रकार आज अणुविद्या बताती है कि पदार्थ के छोटे से टुकड़े में अनन्त उर्जा छिपी है, उसी प्रकार प्राचीन भारतीय वेदान्त ऋषियों ने मानव जगत को आत्मा के विलक्षण सत्य से अवगत

कराया, जो प्रत्येक मानव के भीतर छिपी अनन्त दिव्य ऊर्जा का स्त्रोत है। यह उसी प्रकार है जिस प्रकार क्रियाशील दृष्टिकोण से मानव के रहस्यमय भीतरी रूप के पास ही उसके जीवित या मृत होने की कुंजी है अर्थात् आंतरिक तनाव एवं विकृतियों की कुंजी आंतरिक शान्ति-शक्ति में ही विद्यमान है। आज के जीवन-दर्शन शिक्षा के लिए नितान्त आवश्यक है कि सत्य की पूर्ण विद्या में प्रकृति की भीतरी व बाहरी रूप की विद्याएँ अपनी एकता सहित पूर्णता में होनी चाहिए। ऐसी पूर्ण दर्शन-विद्या ही हम मानवों को पूर्णतत्व प्रदान करती है। जीवन के विभिन्न विकास क्रम एवं शिक्षा के विभिन्न स्तरों में वेदान्त तत्त्वज्ञान वाह्य एवं आंतरिक जीवन संतुलन के सैद्धान्तिक व व्यावहारिक पाठ्यचर्या में केन्द्रीय स्थान व महत्व दिया जाना अपेक्षित है।

5- वेदान्त जीवन माधुर्य-उत्साह व उच्चता से परिपूर्ण, गतिशील, सजीव एवं शक्तिशाली समन्वय

अत्यन्त प्राचीन भारतीय मानवों ने पूर्ण स्वतन्त्रता के साथ सत्य की खोज आरम्भ किया, उन्होंने आंतरिक जगत के विभिन्न परिणामों का विवरण प्रस्तुत किया, वर्गीकरण किया तथा सिद्धान्तों का निर्माण किया, उनका परीक्षण किया, चुनौतियां दी, पूर्व में स्थापित श्रद्धाओं पर आपत्तियां उठायी गई, किन्हीं का उपहास तो किन्हीं को बिना कष्ट उठाये भयमुक्त होकर त्याग दिया गया। मैक्समूलर के शब्दों में ''वेदान्त फल है : सत्य की निर्भय खोज का ऐसे मानसों द्वारा जिन्हें इस विचार ने कभी विचलित नहीं किया कि उन्हें जनता को रिझाना है अथवा आलोचकों को संतुष्ट करना है।''[22]

इस सत्य की खोज व्यक्ति निरपेक्ष, पूर्वाभिरुचि तथा धारणाओं से मुक्त एवं पूर्णतया वस्तुनिष्ठ और अनासक्त थी, जो तात्त्विक दृष्टि से भी सार्वलौकिक था, जिसकी तार्किकता और आध्यात्मिकता ने उसे विज्ञान और तत्त्वज्ञान, धर्म व नैतिकता का एक सघन व शक्तिशाली संश्लेषण-संमिश्रण का समन्वय बना दिया, जो 'वेदान्त' नाम से आर्विभूत हुआ और मानव को जीवन-दर्शन की सत्य पर आधारित गूढ़ लेकिन व्यावहारिक शिक्षा प्रदत्त किया। जो अपने गतिशील रूप में हर काल, स्थान एवं परिस्थिति में जीवन-शिक्षा प्रदत्त करती रहती है।

यह सत्य केवल धीर-गम्भीर, जटिल-बोझिल, उबाऊ आदि नहीं है बल्कि उत्साह से पूर्ण रोचक प्रमाण एवं वार्तालाप, ललित काव्यांश, सुन्दर रूपक, कल्पनाओं की उड़ान से सम्बद्ध अलंकारों की मोती-माला, आदि विविध विशेषताएं, जो सुंदरता व रोचकता से परिपूर्ण है। यह इसे उत्साह व उच्चता से भरा हुआ गतिशील एवं सजीव तत्त्वज्ञान को चिरकालिक साहित्य बना देती है जो जीवन-ज्ञान की अमूल्य रत्नों से भरी खान है। इन जीवन रत्न रूपी ज्ञान को उत्साह व उच्चता से परिपूर्ण, गतिशील, सजीव एवं शक्तिशाली समन्वयकर्त्ता के रूप में आज भी आत्मसात कर धारण कर सकते हैं जो आधुनिक वैश्विक मानव जीवन की दुविधाओं से मुक्त होने में मार्गदर्शन करता रहेगा एवं जीवन के प्रत्येक क्षण में जीवन माधुर्य को पूर्ण उत्साह व उच्चता से परिपूर्ण गतिशील, सजीव व शक्तिशाली ढंग से समन्वित करेगा।

6. वेदान्त अन्तर्निहित दिव्यता-स्वयं का स्वयं से आत्म साक्षात्कार

मानव विकास के क्रम में अनुकूल नैसर्गिक परिस्थितियों के साथ-साथ विपरित परिस्थितियों की बाधाएं भी आती हैं; मानव इसे संघर्ष, अपने मन व इंद्रियों द्वारा निर्मित शरीर से करता है तथा अपनी श्रेष्ठता का प्रकटीकरण वैयक्तिक एवं सामाजिक तत्वों के आधार पर प्रस्तुत करता है। जिसे वेदान्तिक, मानव को दिव्यत्व रूप में अवतरित मानते हैं और उसके मूलभूत लक्षण हैं-पवित्रता, ज्ञान और मुक्ति। इन दिव्यत्व लक्षणों के द्वारा मानव की अन्तरात्मा क्रमविकास मार्ग पर अग्रसर है, स्वयं का मुक्त रूप से प्रकटीकरण करते हुए भव-बाधाओं को पार कर लेती है और क्रमशः सभ्यता, संस्कृति एवं आध्यात्मिक प्रकाश से युक्त कर लेती है। बुद्ध, ईसा, मुहम्मद जैसे पूर्ण साधकों की तरह हर साधक ज्योतिर्मय दिव्यता को प्राप्त कर सकता है। इस प्रकार वेदान्त की महत्वपूर्ण शिक्षा है- ''मानव की अंतर्निहित दिव्यता का व्यवहार में पूर्णतः प्रकटीकरण।''

वेदान्त मानव के जीवन को पूर्ण समग्रता-'परम सत्य, परम सुन्दर और परम शिव की खोज करने वाले के रूप में' देखता एवं प्रस्तुत करता है। मानव के आन्तरिक जगत में पहले से ही विद्यमान पूर्णत्व का सम्पूर्ण प्रकटीकरण एवं पूर्णतम विकास जैसा लक्ष्य साध्य तभी प्राप्त होगा जब वह स्वयं का स्वयं से आत्म साक्षात्कार करना सीख ले और जीवन का परम लक्ष्य है - आध्यात्मिक आत्मसाक्षात्कार। प्रथमतः यह भौतिक तथा सामाजिक विज्ञानों का उपयुक्त उपयोग कर समाज कल्याण प्रदत्त करता है और अंततः नैतिक तथा धार्मिक साधनाओं द्वारा आध्यात्मिक मुक्ति का मार्ग प्रशस्त करता है। मानव जीवन के सभी स्तर शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, नैतिक, धार्मिक अथवा आध्यात्मिक-मध्यवर्ती गुण विशेष है, लौकिकता एवं धार्मिकता विरोधाभासी न होकर एक ही व्यक्ति की दो अवस्थायें हैं।

आज का आधुनिक वैश्विक मानव परम साध्य के स्थान पर साधनों जैसे-भोजन व वस्त्र, घर व सुरक्षा, बल व लौकिक ज्ञान, राजनीति व कृत्रिम सम्मान आदि को पकड़ रखा है एवं इन साधनों के जकड़नों से मुक्त नहीं हो पा रहा है। साधनों से आबद्ध न होकर, उसके सही उपयोग द्वारा ही मूल परम साध्य मानव में अंतर्निहित दिव्यता का आत्मसाक्षात्कार कर पायेगा।

प्राकृतिक रूप से मानव पापी नहीं है, वह तो अमृतत्व का पुत्र अमृतस्थ पुत्र है[23], दिव्यत्वधारी है और उसकी मुक्ति (लौकिक व पारलौकिक) उसके स्वयं में ही अंतर्निहित है जिसे मानव आत्मसाक्षात्कार द्वारा प्राप्त कर सकता है। आधुनिक समसामयिक

मानव का स्वयं से स्वयं का साक्षात्कार कराने की विद्या व कौशल की नितान्त जरूरत है जिससे अपनी स्वयं की दिव्यता का दर्शन कर सामान्य मानव से श्रेष्ठ देवतुल्य मानव चरित्र को धारण कर सके।

7- वेदान्त सार्वलौकिकता – एक अखण्ड सत्य वस्तु के रूप में स्वीकार्यता

ऋग्वेद ने अपने अर्थपूर्ण शब्दों में एक ही सत्य को व्यक्त किया है : 'एकं सत् विप्रा बहुधा वदन्ति' –'सत्य केवल एक ही है, ज्ञानी लोग उसे विभिन्न नामों से पुकारते हैं।'[24] वेदान्त इस सूत्र वाक्य को ग्रहण करते हुए परमात्मा के अद्वैत तत्वज्ञान की शिक्षा प्रकाशित व प्रचारित करता है तथा मानता है कि भिन्न-भिन्न पंथों द्वारा उस परम सत्य तक पहुँचने की संभावना के अनेकानेक मार्ग हैं। वेदान्त समस्त मार्गों को उनके प्रमाणित सर्वोच्च आध्यात्मिकता के आधार पर आदर देता है तथा स्वीकार्य करने योग्य मानता है।

वेदान्ती दार्शनिक श्री गौड़पाद ने 'माण्डूक्य कारिका' में इस भाव को अत्यन्त सुंदरता से व्यक्त किया है-

अस्पर्श योगो वै नाम सर्व-सत्त्व-सुखो हितः।

अविवादो अविरूद्ध देषितस्तम् नमान्यहम्॥[25]

वेदान्त द्वारा दिखाए गए इस योग को नमन करता हूँ जो सभी भूतमात्रों की एकता का उद्घोष करता है, जो सब प्राणिमात्र के सुख और कल्याण को प्रवर्तित करता है और जो कलह तथा विवाद से मुक्त है।

सत्य-दर्शन को शुद्ध अन्वेषण व गहरी जिज्ञासा से प्रेरित व मार्गदर्शित सामूहिक मानव कल्याण की गहरी व उच्च कामना ने अध्यात्म का परिवर्तन जीवंत धर्म-'सनातन धर्म' में और एक सांसारिक दृष्टिकोण का परिवर्तन सामाजिक तत्वज्ञान में किया। वेदान्त सनातन धर्म के माध्यम से सिखाता है-'वैश्विक स्वीकृति के साथ सहिष्णुता' जिसका आधार है-सूझबूझ, अनुकंपा व समादार और इससे उत्पन्न होता है वैश्विक सामंजस्य तथा सकारात्मक बंधुभाव।

वर्तमान आधुनिक वैश्विक मानव एवं उसका समाज अपनी खण्डित निकृष्टतम श्रेष्ठता को प्रतिस्थापित करने में लगा है। व्यक्ति स्वयं में, परिवार में, समुदाय में, समाज में, राष्ट्र में और अंततः विश्व में अपने आपको विखण्डित किया हुआ है। मानव ने स्थानीय से लेकर वैश्विक समाज को भाषा, संस्कृति, राष्ट्र, जाति, धर्म आदि के नाम पर बँटवारा कर कलह व विवाद को, नित्य नए रूप में अग्नि ज्वाला को धधका कर मानवता को जला रहा है, आधुनिक विश्व ऐसे आतंकों का गढ़ बन गया है, इनकी जड़ें लगातार मजबूत होती जा रही हैं। आज के अधिकांश आधुनिक वैश्विक मानव ने दूसरे मानव का आदर-सम्मान करना छोड़ रहा है, अपने नातेदार व परिवार के सदस्यों के बीच भी सामंजस्य व बंधुभाव का त्याग करता चला आ रहा है और अंततः सूझ-बूझ खोकर और स्वार्थ से वशीभूत होकर स्वयं का भी आदर करना छोड़ दिया है तथा आत्म-सम्मान से समझौता कर बैठा है, अंततः स्वयं और विश्व को अशांत कर रखा है।

आज के आधुनिक वैश्विक मानव को पुनः वेदान्त-दर्शन के जीवन-शिक्षा की प्रदत्त उपहार के रूप में नितांत आवश्यकता है, जो है-शांति और सामंजस्य, तितिक्षा और स्वीकृति-एक अखण्ड सत्य वस्तु के रूप में। यही अखण्डित वेदान्त सत्य ही वैश्विक मानव व उसके समाज को दीपक की ज्योति बन मार्ग दिखा सकता है और मानव की आत्मा को ज्योतिर्मय कर सकता है। एक ज्योति ही दूसरी ज्योति को उत्पन्न करने की शक्ति रखती है, प्रत्येक जीवन ज्योति दिव्य जीवन ज्योति को उत्पन्न करने की शक्ति रखती है, प्रत्येक जीवन ज्योति दिव्य जीवन ज्योति में परिवर्तन कर मानव की अमरता को स्थापित करेगा, ब्रह्माण्ड के प्रत्येक जीव को आपस में सह-सम्बद्ध करते हुए एक अखण्ड सत्य वस्तु के रूप में सार्वलौकिक स्वीकार्यता का मार्ग प्रशस्त करेगा।

शैक्षिक निहितार्थ

आधुनिक वैश्विक समाज एवं उसमें निवास करने वाले नागरिकों को आनन्दमय एवं उद्देश्यपूर्ण जीवन जीने के लिए वेदान्ताधारित शिक्षा के शैक्षिक निहितार्थ कुछ निम्नलिखित हैं-

- वेदान्त का अर्थ केवल शास्त्रीय अध्ययन व उसकी चर्चा मात्र नहीं है अपितु जीवन और उसकी समस्याओं से सम्बन्ध स्थापित करने वाला है। वेदान्त सैद्धान्तिक के साथ-साथ अत्यन्त व्यावहारिक है जो आज भी आधुनिक वैश्विक जीवन में जीवन द्वारा पोषित तथा जीवन का पोषण करने में सहायता करने वाला है।
- पंचमहाभूत (क्षिति, जल, पावक, गगन व समीरा) जीवन प्रकृति की एक तार्किक परिणति है जो वेदान्त और आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टिकोण को अत्यन्त समीप लाता है, लेकिन भौतिक पक्ष पर दोनों के समीप होने के पश्चात् भी जीवन उद्देश्य के प्रति दोनों के दृष्टिकोणों में भिन्नता है। आधुनिक विज्ञान जीवन को केवल एक घटना मानता है और योग्यतम की जीविताता को प्रकृति का स्वभाव मानता है जबकि वेदान्त जीवन को उद्देश्यपूर्ण और अत्यन्त मूल्यवान सत्य के रूप में व्याख्यातीत करता है और यह स्थापित करता है कि प्रकृति के सभी अंग एक-दूसरे के लिए उपयोगी व सह-निर्भर हैं इसलिए सबका होना स्वाभाविक एवं उद्देश्यपूर्ण है।
- वेदान्त की उपादेयता सार्वभौम है, क्योंकि वेदान्त विशिष्ट से लेकर सामान्य जनों तक तथा जीवन के सभी क्षेत्रों व अवस्थाओं में समस्त मानव को समान रूप से उसके सर्वांगीण जीवन-गठन में सहायता प्रदान करता है। वेदान्त की सम्पूर्ण संरचना और प्रक्रिया सार्वभौमिक मूल्यों के प्रति समर्पित है।

- आधुनिक विज्ञान की तरह वेदान्त भी जगत की वास्तविकता को स्वीकार करता है लेकिन जहां आधुनिक विज्ञान प्रकृति की शक्तियों का उपयोग माननीय आकांक्षाओं-उद्देश्यों की पूर्ति में रहता है वही वेदान्त इनका उपयोग मानव के उत्कर्ष हेतु करता है।

- आधुनिक वैश्विक समाज की वर्तमान जीवन-शिक्षा ने आधुनिक मानव को पूर्ण भौतिक व भोगवादी विषय वस्तु से आच्छादित कर रखा है लेकिन हम अनुभूत करते हैं कि मानव को सांसारिक पदार्थों और भोग के विविध साधनों से बहुत ही कम सुख और आनन्द की प्राप्ति होती है, अक्सर अल्प साधन वाला व्यक्ति भौतिक संसाधनों से समृद्ध व्यक्ति की तुलना में सुधी एवं आनन्दित देखने को मिलता है। वेदान्ताधारित ज्ञानमयी क्रिया-कलापों से ही आधुनिक मानव पूर्ण भौतिक व भोगवादी विषय-वस्तु से इतर उच्च व दिव्य मानव मन के आनन्ददायक मनःस्थिति के मध्य संतुलन स्थापित करने हेतु मार्गदर्शित होगा।

- वेदान्त द्वारा प्राकृतिक शक्तियों के स्वभाव, गुण एवं धर्म का चिन्तन अद्भुत व अतुलनीय है, और मुख्यतः उसके केन्द्रिय तत्व - मानव जीवन के स्वभाव, आकांक्षा और कल्याण के सम्बन्ध में अत्यन्त गम्भीर और तार्किक चिन्तन किया है, जो अन्यत्र दुलर्भ है। वेदान्त ज्ञान-दर्शन को आज पुनः आधुनिक वैश्विक जीवन-शिक्षा का केन्द्रीय उद्देश्य निर्धारित कर, उसकी विषयवस्तु के अनुरूप मानव जीवन को श्रेष्ठ, मूल्यवान एवं सत्याधारित लक्ष्यों से युक्त करने की नितान्त आवश्यकता है।

- आधुनिक ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय आधारित ज्ञान के साथ-साथ तथा इससे ऊपर उठकर वेदान्त आत्मतत्व के सारे मार्गों को खोलता है, वे हैं - समग्रता से चारों योग, त्याग व सेवा, कला व विज्ञान, धर्म व आत्यंतिक आध्यात्मिकता तथा आत्यांतिक आध्यात्मिकता से आत्यंतिक क्रियाशीलता तक कर्मरत रहना। साथ ही साथ वेदान्त ज्ञान द्वारा सभी मार्गों का एक साथ अवलम्बन करते हुए एकत्व की ओर अपनी पूर्ण आत्मिक यात्रा लक्ष्य प्राप्त कर सकते हैं।

- प्राकृतिक विज्ञान की तरह वेदान्त धर्म विज्ञान को भी सक्रियता से प्रोत्साहित करता है, पूर्णत्व और संयुअ्न भी करता है। वेदान्त 'सर्वविद्या प्रतिष्ठतः' विज्ञानों का विज्ञान के रूप में स्वयं को समायोजित व स्थापित करता है, इसके साथ ही साथ यह अनुकूलनशीलता व लचीलापन प्रदान कर मानव जीवन और प्रारब्ध पर चिरस्थायी प्रभाव स्थापित कर अमरत्व का मार्ग प्रशस्त करता है।

- आज के वैश्विक मानव समाज के विभिन्न जीवन विसंगतियों व विषमताओं के उलट वेदान्त के चिरकालिक फलों में से एक फल रहा है - 'शांति व सामंजस्य' तथा 'तितिक्षा व स्वीकृति'। एक अन्य फल है - 'मन और विचार पर मुक्तिदायी प्रभाव', इन्हें पाने हेतु तार्किक चिन्तन के कारण सभी ज्ञान वेदान्त की सीमा में हैं, चाहे वह सांसारिक हो या पारलौकिक, भौतिक हो या आध्यत्मिक।

- वेदान्त संदर्भ में 'सा विद्या या विमुक्तये' और 'ऋते ज्ञानान्न मुक्ति' के माध्यम से शिक्षा एक जीवन-मुक्तिदायी उपक्रम है, यह मुक्ति बहुआयामी है। यह भौतिकवाद व इसके विकारों से मुक्ति है, 'मैं - अन्य' के भेद से मुक्ति है और अंततः परमतत्व से एकाकार होने की बाधाओं से मुक्ति है।

- वेदान्त में जीवन-शिक्षा की महिमा का प्रतिपादन करते हुए कहा गया है कि एक सुपात्र के लिए वह 'कल्पलता' की तरह सब कुछ सिद्ध कर देती है परन्तु वास्तविक ज्ञानी को कार्य-क्षम भी होना चाहिए - 'यस्तु क्रियावान पुरुषः स विद्वान' अर्थात् मात्र पुस्तकीय ज्ञान न रखता हो। पात्रता आवश्यक है। पात्रता प्राप्ति पर ही श्रेष्ठ लक्ष्यित जीवन-शिक्षा क्रमशः प्रदत्त किया जाता रहे।

- मानव केवल भौतिक शरीर मात्र नहीं है, उसका आध्यात्मिक स्वरूप भी है। मनुष्य पंचकोशात्मक संरचना है जिसमें अन्नमय कोश, प्राणमय कोश, विज्ञानमय कोश, मनोमय कोश और आनन्दमय कोश सम्मिलित हैं। मानव वस्तुतः चैतन्य स्वरूप है, वेदान्त मार्गदर्शित करता है - 'आत्मानं विद्धि', अपने को जानो। आधुनिक वैश्विक सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी तथा वाह्य प्राकृतिक ज्ञान से आगे बढ़कर स्वयं को जानने की जीवन-शिक्षा प्रदत्त करता है।

शैक्षिक अनुप्रयोग : सुझाव

वेदान्त दर्शन भारतीय दर्शनों का मुकुट-मणि है एवं इसके द्वारा प्रतिपादित शैक्षिक सिद्धान्त एवं व्यवहार नितान्त श्लाघनीय हैं। वेदान्त के शिक्षा सम्बन्धी अमूल्य विचारों का उत्स भारतीय संस्कृति में आज भी विद्यमान है जो आधुनिक वैश्विक समाज को आनन्दमय एवं उद्देश्यपूर्ण जीवन के लिए आधार प्रदान करता रहेगा। वेदान्त दर्शन के उपरोक्त व्याख्या एवं विश्लेषण के आधार पर इसके शैक्षिक अनुप्रयोग हेतु कुछ सुझाव प्रस्तुत किए जा रहे हैं जिससे शिक्षा के मानव केन्द्रित पूर्ण स्वरूप को पुनः स्थापित किया जा सकता है, जो निम्नलिखित है :-

- **शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर वेदान्त-शिक्षा** : मानव विचारों के इतिहास में वेदान्त के अलावा कोई ऐसा दर्शन नहीं है जो मनुष्यत्व से देवत्व की प्राप्ति का भव्य आदर्श हमारे सम्मुख प्रस्तुत करता हो तथा यह लौकिक तथा

पारलौकिक संसार में समन्वय स्थापित करता है। इसके कुछ मुख्य लक्ष्य हैं, 'अहं ब्रह्मास्मि', 'सा विद्या या विमुक्तये' इत्यादि तथा वेदान्त शिक्षा का लौकिक चरमावसान है - ''वसुधैव कुटुम्बकम्' समस्त संसार को अपना कुटुम्ब समझना तथा इस आदर्श के अनुसार चलना। ऐसी मानव कल्याण के लिए प्रतिबद्ध अमृतमयी शिक्षा को विद्यार्थियों को प्रदत्त करने हेतु शिक्षा के तीनों स्तरों क्रमशः प्रारम्भिक शिक्षा, माध्यमिक शिक्षा तथा उच्च शिक्षा में कठिनता के बढ़ते स्तर के आधार पर समाविष्ट किया जा सकता है जिससे हमें शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर इसका अध्ययन कर जीवनोपयोग में सम्मिलित कर सकें।

- **जीवन-अन्तर्निहित पूर्णता की शिक्षा** : वर्तमान प्रचलित शिक्षा विद्यार्थियों को पुस्तकीय ज्ञान को रटने या स्मरण करने पर अत्यधिक बल देती है; वहीं वेदान्त आधारित शिक्षा विद्यार्थियों में पुस्तकीय ज्ञान से परे सृष्टि एवं मानव में अंतर्निहित ज्ञान को प्राप्त करने में मदद करती है एवं मानव के जीवन लक्ष्य को उच्च करते हुए श्रेष्ठत्व प्रदान करती है, यथा - जीवन ध्येय-निर्माण, इच्छा शक्ति विकास, एकाग्रता रहस्य प्राप्ति, मन शक्तियों की पहचान, धर्म-मर्म, मानव कल्याण एवं मानवतावाद, अध्यात्म-विज्ञान सम्बन्ध की समझ, लौकिक-पारलौकिक, ज्ञान-समन्वय, विद्या-अविद्या भेद, व्यक्तित्व विकास के मूल भाव, शक्तिदायी विचारों का वरण, कर्म रहस्य इत्यादि; इनका वरण क्यों? कैसे? कब? कहाँ आदि किया जाए की शिक्षा को प्रगट करती है। अतः वेदान्त को विभिन्न विषयों की शिक्षा के साथ समाहित किया जाए। आधुनिक परिप्रेक्ष्य में वेदान्त के यह विचार शिक्षा की शास्वत उपादेयता को रेखांकित करते हैं जिससे विद्यार्थी अपनी अन्तर्निहित पूर्णता को अभिव्यक्त कर सके।

- **प्राथमिक एवं माध्यमिक स्तर पर वेदान्त शिक्षण** : प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा स्तर पर विद्यार्थियों पर पाठ्यक्रम के बोझ, वेदान्त शिक्षा के समझ की परिपक्वता दृष्टिकोण, औपचारिक शिक्षा की समयावधि आदि की दृष्टि से वेदान्त शिक्षण के लिए विशेष पाठ्यक्रम का भाग नहीं जोड़ते हुए इसके प्रति जागरूकता व रूचि उत्पन्न किया जाना चाहिए। इन स्तरों पर वेदान्त शिक्षण हेतु शिक्षको को अभिनव पाठ्यक्रम द्वारा प्रशिक्षित किया जाना चाहिए। प्रशिक्षित शिक्षकों द्वारा शिक्षार्थियों को विषय के साथ प्रार्थना सभा, खेलकूद कार्यक्रम, राष्ट्रीय पर्व, शिक्षक-अभिभावक बैठक, वाद-विवाद प्रतियोगिता, पाठ्य-सामग्री क्रिया-कलापों इत्यादि में वेदान्त-शिक्षा की मूल भावना से अवगत कराया जा सकता है।

- **उच्च शिक्षा स्तर पर वेदान्त शिक्षण** : उच्च शिक्षा स्तर पर विद्यार्थी की परिपक्वता उसे किसी भी विषय के आधारभूत प्रत्यय को समझने के साथ-साथ उसका विश्लेषण, संश्लेषण, मूल्यांकन एवं सृजन करने में सक्षम बना देती है। निःसंदेह उच्च शिक्षित मानव वेदान्तिक ज्ञान के प्रति अधिक संवेदनशील रहकर मानव की गरिमा को बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है, प्रत्येक मानव स्थानीय स्तर से लेकर वैश्विक सामाजिक जीवन में अलग-अलग भूमिका निभाता है तथा अपना योगदान प्रदत्त करता है। अतः उच्च शिक्षा के विभिन्न पाठ्यक्रमों में वेदान्त शिक्षा को समावेशित किया जाना चाहिए तथा पृथक रूप से एक विषय के रूप में अनिवार्यतः जोड़ा भी जाना चाहिए। उच्च शिक्षा के विभिन्न अनुशासनों यथा - शास्त्रीय ज्ञान, आधुनिक वैज्ञानिक ज्ञान, आधुनिक समाज-विज्ञान, तकनीकी ज्ञान, व्यावसायिक ज्ञान आदि के प्रकृति को दृष्टिगत रखते हुए वेदान्त शिक्षा को सम्मिलित किया जाए, जिससे विद्यार्थी किसी भी पेशे को अपनाते हुए उच्च मानवीय गुणों की महत्ता को समझते हुए धारण कर सकें।

- **वेदान्त-शिक्षा का विभिन्न विषयों के साथ समन्वय** : प्रारम्भिक शिक्षा के प्राथमिक स्तर पर इसे भाषा, गणित एवं पर्यावरणीय शिक्षा के माध्यम से तथा उच्च प्राथमिक स्तर पर सामाजिक विज्ञान को भी सम्मिलित करते हुए वेदान्त शिक्षा को पाठ्यक्रम में स्थान प्रदत्त किया जा सकता है। उदाहरण - भाषा के अंतर्गत गद्य, पद्य, कहानी, लेख इत्यादि में वेदान्तीय व उपनिषदीय ज्ञान को समसामयिक आवश्यकता की दृष्टि से पिरोये जाएं। प्राथमिक स्तर पर ही अंकगणित के सिद्धान्तों का वेदान्त से समन्वय किया जाए एवं उच्च प्राथमिक स्तर पर बीजगणित एवं रेखागणित को वेदान्तीय दृष्टिगत किया जाए। प्राथमिक स्तर पर ब्रह्माण्ड की पर्यावरणीय सौन्दर्य से परिचय तथा उच्च प्राथमिक स्तर पर सामाजिक विज्ञान से अनुकूलित किया जाए। विज्ञान, संगीत, कला, व्यायाम-योग, तर्क व अध्यात्म के विषयों में उच्च प्राथमिक स्तर पर परिचित कराया जाए तथा इन समस्त विषयों के माध्यम से माध्यमिक एवं उच्च माध्यमिक शिक्षा स्तर पर विद्यार्थियों की वेदान्त ज्ञान-समझ को विकसित करते हुए परिपक्वता की तरफ अग्रसर किया जाए, आनन्दमय माध्यम से न कि अतिरिक्त बोझ स्वरूप।

- **वेदान्त-शिक्षण-विधि** : प्राथम्भिक एवं माध्यमिक स्तर की शिक्षण पद्धति में आधुनिक शिक्षण विधियों के साथ-साथ वेदान्तीय शिक्षण विधि यथा-उपासना, स्वाध्याय, सूत्र (श्लोकों की चरणबद्धता), एकाग्रता, तर्क विधि, इन्द्रिय विधि (ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेन्द्रिय व वर्णेन्द्रिय), नवधामुक्ति आदि

को भी सम्मिलित किया जाए एवं पाठ्यपुस्तकों को भी इस साँचे में तैयार किया जाए।

- **वेदान्त-लौकिक एवं पारलौकिक ज्ञान के रूप में** : वेदान्त शिक्षा को प्रत्येक विषय-वस्तु के साथ अत्यन्त सरलता से सम्बद्ध किया जा सकता है चाहे वह सैद्धान्तिक या व्यावहारिक ज्ञान हो, जड़ या चेतन का ज्ञान हो, लौकिक या पार-लौकिक ज्ञान हो, विद्या या अविद्या हो। अतः प्रत्येक स्तर पर पाठ्यक्रम में यथोचित स्थान पर समावेशित किया जा सकता है।

- **वेदान्त शिक्षा – अन्तर्विषयी ज्ञानार्जन के रूप में** : परमतत्व की सर्वातिशायिता, एकता, एकरसता, सनातनता एवं सच्चिदानन्दरूपता को देखना तथा उसका सतत् बोध कराते रहना ही शिक्षा का गन्तव्य है, प्राप्तव्य है। यही अखण्ड ज्ञान है जो शिक्षा का सार सर्वस्य है। उससे स्पष्ट है कि वेदान्त के अनुसार शिक्षा केवल जीविकोपार्जन का ही केवल साधन नहीं है, यह सम्यक्दृष्टि तथा तात्विक ज्ञानार्जन का साधन भी है जो शिक्षा को एकांगी के स्थान पर अंतर्विषयी बनाती है तथा आजीवन प्राप्त करने पर बल देती है। आज के शिक्षा अर्जन में प्रत्येक स्तर यथा - प्रारम्भिक, माध्यमिक एवं उच्च शिक्षा स्तर पर पाठ्यचर्या निर्माण में अंतर विषयी अनुशासन पर सर्वाधिक बल दिया जाए तथा पाठ्यक्रम में उन तत्वों को भी समावेशित किया जाए जो शिक्षार्थी को आजीवन ज्ञानार्जन अर्जित करने का गुण उनके अंदर पैदा कर दे।

- **अध्यापक-शिक्षा के क्षेत्र** : वेदान्त ज्ञान आधारित मननशील शिक्षक (reflective teacher) के निर्माण हेतु सेवापूर्ण अध्यापक शिक्षा के सभी प्रारूपों में सिद्धान्त एवं अभ्यास को दृष्टिगत रखते हुए शिक्षक-शिक्षा के पाठ्यचर्या में महत्वपूर्ण स्थान देते हुए इसके समया-अनुरूप विभिन्न नवीन रीति-नीति, व्यूह रचना, रणनीति, पद्धति, कौशल, शिक्षण-सूत्र, योजना आदि का निर्माण किया जाए; तथा सेवारत शिक्षकों को इस सम्बन्ध में समय-समय पर सुचारू व सुसंगठित रूप में सतत् प्रशिक्षण दिए जाएं ताकि वे प्रोफेशनली योग्य बन सकें एवं केवल मुख से ही नहीं बल्कि वेदान्त शिक्षा को रचित कविताओं, कहानियों, चित्रों, लेखों, डायरी रूपी मौलिक लेखन, संवाद, प्रश्नोत्तर, अनुभूत टिप्पणियों, साझी अभिव्यक्ति आदि के माध्यम से प्रकट कर सकें। साथ ही वेदान्त शिक्षण पद्धतियों को प्रयोग करते हुए गुरु-शिष्य सम्बन्ध में प्यार तथा सम्मान के भाव पर बल दिया जाए और अंततः 'शिक्षार्थी-केन्द्रित शिक्षा' लक्ष्य को अपनाया जाए।

- **अध्यापक-शिक्षा प्रतिष्ठानों हेतु** : अध्यापक शिक्षा के राष्ट्रीय प्रतिष्ठानों को इसके लिए योजनाबद्ध कार्यक्रमों का निर्माण करते हुए इनका क्रियान्वयन सुनिश्चित किया जाना चाहिए। इस वेदान्तीय प्रणाली में अध्यापक को महत्वपूर्ण एवं बहुआयामी स्थान प्रदान करना होगा।

- **विभिन्न शैक्षिक संस्थानों हेतु** – वेदान्त शिक्षा के लिए शैक्षणिक संस्थानों को प्राथमिक स्तर से लेकर उच्च शिक्षा के विभिन्न पाठ्यक्रमों में वेदान्त ज्ञान को स्थान देना चाहिए तथा पाठ्यक्रमों में पहले से ही समाहित ज्ञान में वेदान्त पक्ष को व्यावहारिक रूप में उजागर किया जाना चाहिए और पाठ्य सहगामी तथा सह-सहगामी क्रिया-कलापों से सम्बन्धित कैप्सूल कार्यक्रमों का निर्माण किया जाना चाहिए। शिक्षण संस्थानों को इसके अनुरूप शिक्षकों, प्रशासकों, गैर शैक्षिक कर्मचारियों, नीति-निर्माताओं को समय-समय पर प्रशिक्षित किया जाना चाहिए। राष्ट्रीय स्तर के उच्च स्तरीय संस्थानों को आदर्श या मॉडल के रूप में स्वयं को स्थापित किया जाना चाहिए।

- **सामुदायिक भागीदारी**-वेदान्त-ज्ञान अथाह व अनन्त है, अतः कक्षा में औपचारिकता से हटकर बातचीत शिक्षार्थी के व्यक्तित्व का सम्यक् विकास कर मानव को वैभवशाली, ऐश्वर्यशाली एवं शक्ति सम्पन्न बनाकर स्वयं ही ब्रह्म बना देता है। इसके लिए विद्यालयी शिक्षा के अतिरिक्त अभिभावकों का सहयोग, इस क्षेत्र में कार्य कर रहे गैर-सरकारी संगठन, समाज के ज्ञानवान व उच्च नैतिक व्यक्तित्व, सामाजिक व आध्यात्मिक संस्थाओं का सहयोग शैक्षिक संस्थायें समय-समय पर लेती रहें एवं विद्यार्थियों को प्रोत्साहित करती रहें।

उपसंहार

अत्यन्त प्राचीन होते हुए भी वेदान्त इतिहास के प्रत्येक युगांतर में सर्वदा चैतन्यदायी और नित्यनूतन रहा है जो सम्पूर्ण जगत के चिंतनशील मानवता को आनन्दमय एवं उद्देश्यपूर्ण जीवन-दर्शन का जीवन शिक्षा-संदेश देता रहा है। आज की प्रचलित वैश्विक शिक्षा टेक्नालॉजी पर निर्भर होकर कृत्रिमता की तरफ तीव्रता से अग्रसरित हो रही है, जो मनुष्य को स्वचालित रोबोट बनाने पर जोर देती है तथा अर्थ (धन) लोलुपता आधारित व्यावसायिकता ने मानवता के विभिन्न घटकों की बोली लगाकर विश्व बाजार में नीलाम कर रही है। विकास के नये-नये कीर्तिमान गढ़ने वाले लेकिन मानवता विनाश रूपी अंधकारमय आधुनिक वैश्विक समाज एवं युग को वेदान्त आधारित आनन्दमय एवं उद्देश्यपूर्ण जीवन-दर्शन शिक्षा की नितान्त आवश्यकता है। वेदान्त आधारित विभिन्न विषयवस्तु को समसामयिक आधुनिक वैश्विक शिक्षा में सम्मिलित कर मानव-उत्कर्ष का दीप पुनः प्रज्ज्वलित किया जाना समीचीन होगा। भारत वर्ष की प्राचीनता, दार्शनिकता तथा आध्यात्मिकता को अखिल विश्व के

समृद्ध राष्ट्र भी निःसंकोच होकर स्वीकार करते हैं। यदि भारत पुनः वेदान्त के शैक्षिक विचारों की महत्ता पर चिंतन करके उन्हें शिक्षा के क्षेत्र में समाविष्ट कर सके तो एक उत्कृष्ठ शैक्षिक परिवेश का निर्माण किया जा सकता है, शिक्षा के क्षेत्र में सार्थक क्रांति लायी जा सकती है।

संदर्भ

1. श्रीशंकराचार्य के अनुसार 'वेद' संज्ञा का मूलतः अर्थ है ज्ञान, अनादि और अनन्त, मोक्ष की तरफ ले जाने में सक्षम सभी के द्वारा प्रतीतियोग्य। आध्यात्मिक जगत की सर्वश्रेष्ठ विश्वसनीयता को व्यक्त करने वाले को 'श्रुति' नाम से संज्ञानित किया जाता है। तत्त्वतः अपौरुषेय होने से और व्याप्ति में भी विश्वव्यापी होने के कारण वेदों को 'श्रुति' कहा जाता है।
2. मुख्य उपनिषदों की संख्या दस है : ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुंडक, मांडुक्य, तैत्तिरीय, ऐतरेय, छांदोग्य और वृहदारण्यक।
3. भारतीय दार्शनिक स्वयं अपने धर्म को 'सनातन धर्म' नामक संज्ञा से सम्बोधित करते हैं। 'हिन्दूस्तान', 'हिन्दू' एवं 'हिन्दू धर्म' शब्द बाहरी देशों से, विशेषकर प्राचीन इरानी द्वारा सिन्धु नदी के पूर्व दिशा के देश में रहने वाले लोगों का तथा उनके धर्म का निर्देश करने हेतु से, प्रचलित किए गए। 'हिंद' से उद्गमित यह शब्द संज्ञा मूलतः यूनानी है।
4. वेदान्त सूत्रों में आए उल्लेखों से ज्ञात होता है कि वादरायण से पूर्व भी वेदान्त-दर्शन के अनेक आचार्य हो चुके थे।
5. लाल, रमन बिहारी (2010). शिक्षा के दार्शनिक तथा समाजशास्त्रीय सिद्धान्त, मेरठ : रस्तोगी पब्लिकेशन, पृ0 181
6. ओझा, शंकर दत्त (2006). वेदान्त-दर्शन एवं उसका शैक्षिक निहितार्थ, भारतीय शिक्षा शोध पत्रिका, अर्धवार्षिक शोध पत्रिका, 25-(2), लखनऊ : भारतीय शिक्षा शोध संस्थान, पृ0 71
7. लाल, रमन बिहारी (2010). शिक्षा के दार्शनिक तथा समाजशास्त्रीय सिद्धान्त, मेरठ : रस्तोगी पब्लिकेशन, पृ0 181-182
8. प्रधान, अवधेश, बनर्जी, अनुराधा, सिंह, हीरा, एवं अन्य (सम्पादक). (2017). स्वामी विवेकानन्द की भारत को देन, वाराणसी : पिलग्रीम्स पब्लिशिंग, पृ0 248
9. वही, पृ0 249
10. वही, पृ0 250
11. स्वामी विवेकानन्द (2013). व्यावहारिक जीवन में वेदान्त (सत्रहवां संस्करण), नागपुर : रामकृष्ण मठ, पृ0 26
12. वही, पृ0 27
13. द कम्पलिट वर्क ऑफ स्वामी विवेकानन्द, वाल्यूम-III (आठवां संस्करण), (2016). कलकत्ता : अद्वैत आश्रम, पृ0 330-31
14. तैत्तिरीय उपनिषद-2.4
15. केनोपनिषद-1.3
16. स्वामी विवेकानन्द (2013). व्यावहारिक जीवन में वेदान्त (सत्रहवां संस्करण), नागपुर : रामकृष्ण मठ, पृ0 4
17. श्वेताश्वतर- 2.15
18. कठोपनिषद – 4.1
19. कठोपनिषद – 6.10
20. कठोपनिषद – 6.11
21. महाभारत-शांतिपर्व-12.28
22. मैक्समूलर (1904). श्री लेक्चर्स आन द वेदान्ता फिलास्फी, लन्दन : लान्गमैन, ग्रीन एण्ड क0, पृ0 39
23. श्वेताश्वर उपनिषद – 11.5
24. ऋग्वेद-1.164.46
25. माण्डूक्य कारिका – 4.2

●

सुषिर वाद्य बाँसुरी की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

श्री सतीश कुमार एवं प्रो0 राजेश शाह***

वाद्ययंत्र का इतिहास मानव संस्कृति के इतिहास से प्रारम्भ होता है। केवल वाद्ययंत्र के उपयोग से ही की गई संगीत रचना 'वाद्य संगीत' कहलाती है। वाद्ययंत्र का शैक्षणिक अध्ययन अंग्रेजी में 'ओर्गेनोलॉजी' कहलाता है। वाद्ययंत्र दुनिया के कई आबादी वाले क्षेत्रों में स्वतंत्र रूप से विकसित हुए। हालांकि विभिन्न सभ्यताओं के बीच सम्पर्क के कारण अधिकांश वाद्ययंत्रों का प्रचार-प्रसार एवं रूपान्तरण उनके उत्पत्ति स्थानों से दूर दूर तक हुआ है।

'वाद्य' शब्द की उत्पत्ति संस्कृत भाषा के 'वद्' धातु से हुआ है, जिसका शाब्दिक अर्थ 'बोलना' है। अतः वाद्य से तात्पर्य है ऐसा यंत्र जिससे ध्वनि उत्पन्न हो सके। प्राचीन काल में सुषिर वाद्यों का एक गौरवपूर्ण इतिहास रहा है। वंशी भगवान श्रीकृष्ण को परमप्रिय वाद्य तो था ही इसके साथ-साथ समस्त भारतीय जनमानस को अपनी मधुरता एवं समरसता से अनुप्रमाणित किया है।[1]

सुषिर वर्ग के सबसे प्रमुख वाद्यों में बाँसुरी अपने किसी न किसी रूप में विभिन्न नामों से, मानव-सभ्यता के प्रथम चरण अर्थात प्रागैतिहासिक काल या प्राग्वैदिक काल से ही अपनी उपस्थिति प्रमाणित करती रही है। जब मानव अपनी सभ्यता की नींव रख रहा था, उस काल में भी हड्डी की बनी बाँसुरी के अवशेष अनेक प्राचीनतम स्थलों से प्राप्त हुआ था।

स्लोवेनिया के डिब्जे वेब में पायी गयी सबसे पुरानी बाँसुरी का पता चलता है, जो करीब 40 हजार साल पुराना बताया जाता है, जिसका निर्माण गुफा में रहने वाले एक तरूण भालू की जांध की हड्डी से बनी चार छिद्रो वाली बाँसुरी का संकेत मिलता है।

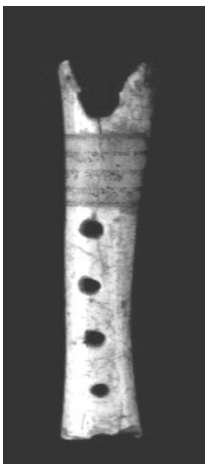

चित्र सं01 : हड्डी से निर्मित बाँसुरी

बाँसुरी अति प्राचीन वाद्ययंत्र है जो ऐतिहासिक दृष्टिकोण से लगभग 35 से 40 हजार साल पुरानी बताई जाती है जर्मनी के 'स्वाबियन उल्म' क्षेत्र में पायी गयी कई बाँसुरीयाँ दर्शाती है कि यूरोप में एक विकसित संगीत परम्परा आधुनिक मानव की उपस्थिति के प्रारम्भिक काल से अस्तित्व में है।

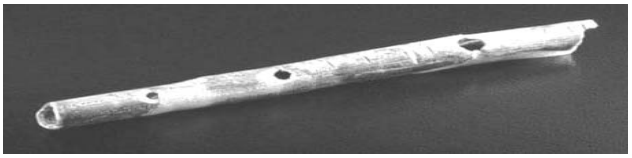

चित्र सं0 2 : हड्डी से निर्मित बाँसुरी

दक्षिणी जर्मन के स्वाबियन उल्म के निकट स्थित (Gei Benklosterle) गुफा में हाथी के दाँत से निर्मित 18.7 से.मी. लम्बी और पाँच छिद्रों वाली बाँसुरी प्राप्त हुई है, जिसकी तिथि 30 से 37 हजार वर्ष पूर्व निश्चित की गई जो सन् 2004 में खोजी गयी थी।

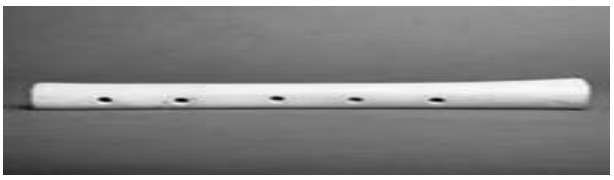

चित्र सं0 3 : हड्डी से दाँत से निर्मित बाँसुरी

वहीं 36 हजार वर्ष पुराने रीड़ की हड्डी से बनी बाँसुरी भी प्राप्त हुई है जो सन् 2004 में खोजी गई थी, तथा दो अन्य हंस हड्डियों से निर्मित बाँसुरी जो एक दशक पहले खुदाई से प्राप्त हुई थी। जर्मनी की इस गुफा से जिनकी तिथि लगभग 36हजार साल पूर्व प्राप्त होती है जो प्राचीनतम ज्ञात वाद्ययंत्रों में से एक है।

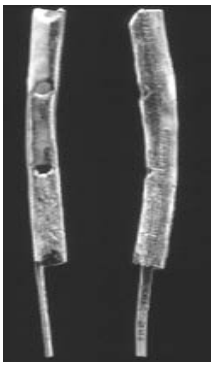

चित्र सं0 4 : हंस की हड्डी से निर्मित बाँसुरी

* असिस्टेंट प्रोफेसर, वाद्य विभाग, संगीत एवं मंच कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

* प्रोफेसर, वाद्य विभाग, संगीत एवं मंच कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

2008 में जर्मनी के 'स्वाबियन उल्म' के पास 'होहेल फेल्स' गुफा में एक और कम से कम 35हजार साल पुरानी बाँसुरी जिसे गिद्ध के पंख की हड्डी से निर्मित बताया गया है, जिसमें पाँच छिद्र और एक वी आकार का मुखपत्र है। खोज में शामिल शोधकर्ताओं ने 'नेचर' नामक जर्नल में अपने निष्कर्षो को अगस्त 2009में अधिकारित तौर पर प्रकाशित किया है। यह खोज इतिहास में किसी भी वाद्ययंत्र की सबसे पुरानी मान्य खोज है।[2]

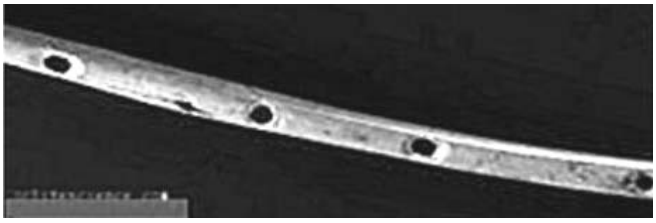

चित्र सं0 5 : गिद्ध के पंख की हड्डी से निर्मित बाँसुरी

जर्मनी के शोधकर्ताओं द्वारा खोजे गये होहेल फोल्स के गुफा सें गिद्ध की हड्डी की बनी बाँसुरी 35हजार साल पुरानी बताई गयी है।

इस वाद्ययंत्र के पुरातात्विक साक्ष्य उर के सुमेराई शहर में शाही कब्रिस्तान के खुदाई से मिलता है, जिसमें पाए गये, वाद्ययंत्रों में नौ लाइअर, दो बीन, एक सिलवर डबल फ्लूट, सिस्ट्रा और झाँझ शामिल है। शाही कब्रिस्तान में खोजे गए रीढ़ की हड्डी से निर्मित बाँसुरी के अनुरूप आवाज वाले सिल्वर पाइप के आधुनिक पाइप के पूर्ववर्ती होने की सम्भावना थी। इस पाइप की बनावट बेलनाकार है जिसके तीनों तरफ छेद है जो वादक को पूर्ण टोन स्केल उत्पन्न करने की अनुमति देता है।

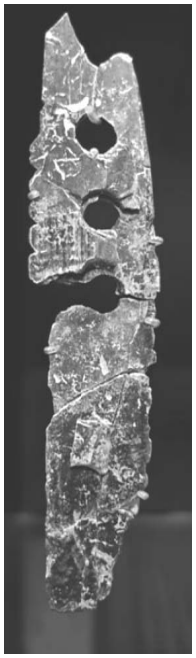

चित्र सं0 6 : रीढ़ की हड्डी से निर्मित बाँसुरी

1920 के दशक में 'लिओनार्ड वूली' द्वारा की गई इन खुदाईयों में वाद्ययंत्रों के नष्ट हो चुके और नष्ट न होने वाले टुकड़ों की खाली जगह मिली है। जिन्हें इस बिखरे हुए टुकड़ों को एक साथ जोड़कर दुबारा बनाने के लिए इसे एक साथ इस्तेमाल किया गया होगा। ये वाद्ययंत्र जिस कब्र से सम्बन्धित थे उस समय तक इन वाद्ययंत्रों का इस्तेमाल सुमेरियन में किया जा रहा था और उनकी समय काल कार्बन डेटिंग विधि के द्वारा 2600 से 2500 BCE के बीच निर्धारित की गयी।[3]

हालांकि अधिकांश इतिहासकारों का मानना है कि वाद्ययंत्र के आविष्कार का एक विशिष्ट समय का निर्धारण कर पाना परिभाषा के व्यक्ति परक होने के कारण असम्भव है, किन्तु वाद्यों में होने वाले निरन्तर विकास ने जटिलता को कम करने का अत्यन्त प्रयास किया है।

चित्र सं0 7

पाश्चात्य देशों में बाँसुरी की उत्पत्ति के सम्बन्ध में एक रोचकपूर्ण मान्यता है, एक समय की बात है की एक बार जंगल से होकर कोई पथिक जा रहा था, जिसे एक मधुर ध्वनि सुनाई दी । वह ध्वनि बहुत ही कर्णप्रिय थी वह जिज्ञासावश उस ध्वनि के निकट जब पहुंचा तो देखा कि एक पेड़ में छिद्र बना हुआ था, जिसे शायद किसी भ्रमर ने छिद्रित किया था। उस छिद्र में जब तीव्र गति से वायु प्रवेश करती थी, तो उससे एक मधुर ध्वनि उत्पन्न होती थी। पथिक के मन में कौतुहल उत्पन्न हुआ और उसने बांस के एक भाग को काटकर उसमें अपनी जरूरत के अनुसार छिद्र स्थापित किया जिसमें फुँकने पर ध्वनि उत्पन्न होने लगी। इस प्रकार बाँसुरी वाद्य की उत्पत्ति बतायी गयी है।[4]

सुप्रसिद्ध पाश्चात्य विद्वान 'एचमैकाले फिजगिबन' ने भी बंशी की उत्पत्ति के सम्बन्ध में लगभग इसी तरह का विचार व्यक्त किया है –

"The origin of the primitive pipe is lost in the mists of antiquity and its early history is extremely difficult to trace. The legendary date of its invention is given in the Parlay chronicle in the Arundelian marbles (now in oxford) as 1506 B.C. It was probably suggested by the whistling of the wind over the tops of the river reeds-'there is music in the signing of a reed."[5]

पाश्चात्य विद्वानों द्वारा की गई कल्पना भारतीयों के लिए नवीन नहीं है सहस्त्रों वर्ष पहले लगभग इस तरह की कल्पना वंशी वाद्य की उत्पत्ति के सम्बन्ध में महाकवि कलिदास अपने ग्रंथ 'रघुवंशम्' में एवं इससे पहले वाल्मीकि जी ने भी अपने ग्रंथ 'रामायण' में कर दी थी।[6]

भारत के प्राचीन सभ्यताओं में जो वाद्य प्रचलित थे उनका साक्ष्य देना आधुनिक समय में लगभग पूरी तरह से असंभव है जिसके कारण इस क्षेत्र में सर्वप्रथम बसे मुंडा और द्रविड़ भाषा बोलने वाली संस्कृतियों को किसी वाद्ययंत्र निर्माण का श्रेय देना असम्भव हो जाता है, बल्कि इस क्षेत्र में वाद्ययंत्र का इतिहास हमारी सबसे पुरानी सभ्यता सिंधु घाटी की सभ्यता से शुरू होती है जो लगभग 3हजार ई0 पूर्व के आस पास उभरी थी। जब सिन्धु घाटी सभ्यता की खुदाई हुई तो अनेकों प्रकार के कलाकृतियों के साथ-साथ विभिन्न प्रकार के खिलौने और सीटियाँ ही वाद्ययंत्रों के निर्माण का एक मात्र मौलिक सबूत है।

'मोहनजोदड़ों' सिन्ध प्रदेश में कराची से लगभग 200 किलोमीटर के दूरी पर सिन्धु नदी के तट पर स्थित है। इस स्थान की खुदाई में तन्त्री युक्त वीणा, बाँसुरी तथा चमड़े के कई प्रकार के वाद्ययंत्र मिले हैं। साथ ही साथ दो नर्तकियों की कांसे की मूर्तियाँ 4.24 इंच ऊंची है तथा दूसरी मूर्ति पहली से आकार में छोटी है और एक नर्तकी की पत्थर की भग्न मूर्ति जिसके बारे में विद्वानों का मत है कि यह मूर्ति नटराज शिव का पूर्व रूप है।[7]

इन अवशेषों से यह पता चलता है कि ईसा से 5 हजार वर्ष पूर्व भारतीय संगीत में पर्याप्त उन्नति हो चुकी थी। सुषिर वाद्यों में वंशी, तंत्री वाद्यों में वीणा, तथा अवनद्य वाद्यों के कई प्रकारों का निर्माण हो चुका था। एक मिट्टी की प्रतिमा से ड्रम के प्रयोग होने का संकेत मिलता है और सिंधु लिपि की जाँच में भी धनुषाकार हार्प के चित्रण का पता चलता है जिनकी शैली सुमेरियन कलाकृतियों के समान थी।

यह खोज भारतीय संस्कृति का अत्यन्त महत्वपूर्ण खोजों में से एक है, जिससे पता चलता है कि सिन्धुघाटी और सुमेरियन संस्कृतियों में आपसी सम्बन्ध बना हुआ था। भारत में प्रारम्भिक सभ्यताओं में बसे मुंडा औ दव्रिड भाषा बोलने वाले द्रविड़ लोगों का जीवन विशेष रूप से जंगल की सभ्यताओं में फलता-फूलता था। इसलिए वे जंगली जीवन व्यतीत करते थे। वे पूर्णरूप से जंगली थे, और उन्हें भोग-विलासिता के साधनों का अभाव रहता था। भौतिक जीवन को सुखमय बनाने के लिए उत्सवों पर शृंगार, हास-परिहास का पूरा सामान प्रायः पशुओं या अन्य जानवरों की हड्डियों से बनाया करते थे। विभिन्न प्रकार के हड्डियों, लकड़ियों, पत्थरों तथा शंङ्खों से निर्मित आभूषण का पहनना आज भी आदिवासियों में परिलक्षित किया जा सकता है। इन सब प्राचीन साक्ष्यों से पता चलता है कि वे लोग हड्डी से निर्मित नालिका के द्वारा वादन कार्य मंगल वाद्य के रूप में कर रहे होगें। इसका साक्ष्य प्रमाण 'डेनमार्क' में ईसा से 3000-2500 वर्ष पूर्व हड्डी से निर्मित बाँसुरी प्राप्त हुई है जो आज भी संग्रहालय में सुरक्षित है।[8]

भारतीय विद्वानों के मत के अनुसार, सुषिर वर्ग के वाद्यों का जन्म घन वाद्यों के पश्चात हुआ है। क्योंकि सबसे पहले आदिमानव ने दो पत्थरों के घर्षण से आग का आविष्कार किया था। उसी प्रकार पत्थर के अनेक औजारों के साथ-साथ मौज मस्ती के परिपेक्ष्य में उन्होंने सबसे पहले दो पत्थरों को आपस में आघात कर उसे ध्वनि निकाला होगा । तब इसके पश्चात् शुषिर जैसे अन्य वाद्यों का निर्माण हुआ होगा। मुख द्वारा सीटी की ध्वनि उत्पन्न करने की क्रिया ही सुषिर वाद्यों की जननी हो सकती है। यहाँ तक की जब मानव विभिन्न संकेतों, हाव-भावों तथा भावव्यजंक ध्वनि (Interjectional Cry) के स्वरों द्वारा अपने विचारों का आदान-प्रदान करता था। मुख द्वारा निष्पादित सीटी की ध्वनि भी इसी भावव्यंजक ध्वनि के स्वरों में निहित थी। तथा इसके पश्चात अपने रूचि के अनुसार वृक्ष के पत्तों तथा काष्ठ के दो टुकड़ों को बांध करके उसे मुख में लगाकर ध्वनि निकालने का प्रयत्न किया होगा, इस प्रकार सुषिर वाद्यों का विकास हुआ।

''क्वचिद् गायन क्वचित् क्रीडंश्चन्चूर्यश्च क्वचित् क्वचित्।
पर्णवाद्यं श्रुतिसुखं वादयश्च क्वचिद् वने॥''[9]

वेद व्यास रचित 'हरिवंश पुराण' में भगवान श्रीकृष्ण के द्वारा पत्तो का बाजा बजाये जाने का उद्धरण मिलता है।

भारतीय संस्कृति एवं पुराणों में भी बाँसुरी हमेशा से आवश्यक अंग रहा है एवं कुछ वृतांतो द्वारा आड़ी बाँसुरी का उद्भव भारत में ही माना जाता है क्योंकि 1500 ई0 पू0 के भारतीय साहित्य में आड़ी बाँसुरी का विस्तार से वर्णन है।

प्राचीनतम प्रचलित आड़ी बाँसुरी परम्परा के अनुसार 'कन्फ्यूशियस' के द्वारा संकलित एवं संपादित जिंग प्रान्त में 'ची' नामक बाँसुरी का वर्णन है। यह हुबेई प्रान्त के सुइज्हों स्थल पर जिंग के 'मारकिस यी' की कब्र में पायी गयी एक और बाँसुरी जो झऊ वंश से सम्बन्धित है जिसका काल 433 ई0पू0 निर्धारित किया गया। यह बांस से बनी हुई बंद छोरो वाली होती थी जिसमें पाँच छिद्र शीर्ष की ओर न होकर दूसरे छोर पर होती थीं।

प्राचीनकालीन मूर्तियों एवं भित्ति चित्रों के अवलोकन से पता चलता है कि सुषिर वाद्य बाँसुरी का प्रयोग आदिम काल से ही चला आ रहा है।

औरंगाबाद (महाराष्ट्रप्रदेश) में स्थित एलोरा गुफा के कन्दरा सं0 21 में रामेश्वर भगवान की विवाह यात्रा के प्रसंग में उनके गणों द्वारा आड़ी बाँसुरी का वादन करते हुए दिखलाया गया है। यह मूर्ति लगभग पांचवी तथा छठी शताब्दी की है।[10]

एलोरा के ही कन्दरा संख्या 29 में रावण द्वारा कैलाश पर्वत उठाने का दृश्य अंकित है। उसके निकट एक पुरूष की आकृति को शंख वादन करते हुए दिखलाया गया है। यह मूर्ति लगभग छठी शताब्दी के पूर्वाद्ध काल का माना जाता है।

अजन्ता (औरंगाबाद महाराष्ट्र) के कन्दरा सं0 7 में एक स्थल पर दो नारी को नृत्य करते हुए दिखलाया गया है जिसके पार्श्व भाग में एक अन्य नारी को आड़ी बाँसुरी का वादन करते हुए दृश्याकंन किया गया है। इस चित्र का काल छठी शताब्दी का उत्तरार्द्ध माना जाता है।

इस चित्र के अवलोकन से यह तथ्य प्रकट होता है कि उस काल की स्त्रियाँ भी आड़ी बाँसुरी का वादन करती थी तथा आड़ी बाँसुरी का उपयोग नृत्य की संगति के लिए भी किया जाता था।[11]

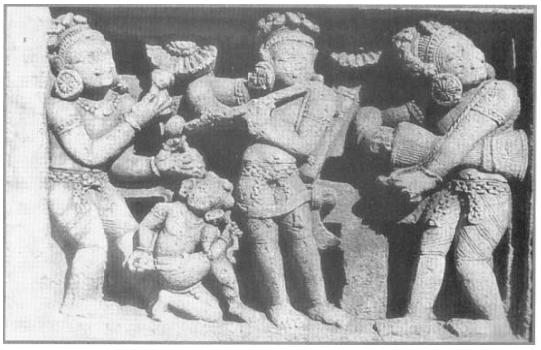

भुवनेश्वर (उड़ीसाप्रदेश) परशुरामेश्वर मन्दिर में आड़ी बाँसुरी बजाते हुए पुरूष का चित्र अंकित है जो सातवीं शताब्दी के काल का माना जाता है।

''इदं यमस्य सादनं देवमानं यदुच्यते

इयमस्य धम्यते नालीरयं गीर्भिः परिष्कृतः''[12]

उपरोक्त श्लोक से इस बात की पुष्टि होती है कि ऋग्वेद में यमराज को प्रसन्न करने के लिए 'नाली' अर्थात 'नाड़ी' वाद्य का वादन किया जाता था। हम जानते है कि यमराज की प्रसन्नता मृत पदार्थो को प्राप्त करने में अधिक रहती है।

अतः यह भी सम्भावित तौर पर कहा जा सकता है की यमराज को प्रसन्न करने के लिए हड्डी की बनी 'नाड़ी' वाद्य का उपयोग होता रहा होगा। यहाँ नाड़ी का अभिप्राय 'वंशी' से है।

लोक संगीत तथा सुगम-संगीत के गायन के समय वंशी, शहनाई, क्लॉरिनेट, सुन्दरी आदि सुषिर वाद्यों पर या तो गाये जाने वाली पंक्ति के धुनों का वादन होता है। या उससे मिलते-जुलते स्वरावलियों का वादन होता है जिससे उस गीत का भाव और भी मुखर उठता है।

भारतीय संगीत में लोकसंगीत हो या शास्त्रीय संगीत इन दोनों में सुषिर वाद्य वंशी का महत्वपूर्ण स्थान प्राचीन काल से आधुनिकाल तक लोक संगीत से शास्त्रीय संगीत के मंच पर सदैव होता रहा है।

सन्दर्भ सूची

1. भारतीय संगीत वाद्य, डॉ0 लालमणि मिश्र, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली-110003, तृतीय संस्करण 2005।
2. The Story of Indian Music and its instruments, p. 86, p.94-95
3. https://www.encyclopedia.com
4. httpd://hi.m.wikipedeia.org.
5. एच0 मैकाले फिजगिबन, The Story of the flute p.2
6. कालिदासकृत 'रघुवंशम्' तृतीय सर्ग
7. भारतीय संगीत का इतिहास, डॉ0 ठाकुर जयदेव सिंह, विश्वविद्यालय प्रकाशन, चौक, वाराणसी, तृतीय संस्करण 2010
8. https://www.oclife science.com
9. हरिवंश पुराण, वि0 प0 अ0 11।
10. एलोरा गुफा के कन्दरा सं0 21
11. अजन्ता के कन्द्रा सं0 7
12. हरिवंश पुराण, वि0 प0 अ0 11।

पर्यावरणीय पुरातत्त्व : अभिलेखों में वर्णित जलवायु के संदर्भ में

रश्मि सिंह एवं सचिन कुमार तिवारी***

पुरामानव समुदाय के पारिस्थितिकी को समझना ही पर्यावरणीय पुरातत्त्व है। इस विधा के अन्तर्गत मानव समुदाय एवं पर्यावरण के जैविक एवं अजैविक तत्त्वों के मध्य सम्बन्धों का तकनीकी रूप से अध्ययन किया जाता है, क्योंकि सांस्कृतिक एवं गैर सांस्कृतिक पर्यावरण के विभिन्न कारकों के अध्ययन का पुरातात्त्विक संदर्भ में महत्त्वपूर्ण स्थान है। पर्यावरणीय पुरातत्त्वविद् अथवा पर्यावरण के इतिहास का अध्ययन करने वाले इतिहासविद् को पर्यावरण एवं मानव के मध्य सम्बन्ध और संघर्ष का अध्ययन दोनों के मध्य अन्योन्याश्रय को समझना होता है। इनके मध्य सम्बन्ध और संघर्ष को समझने हेतु स्रोत का अवलोकन एक महत्त्वपूर्ण साक्ष्य के रूप में आवश्यक है, जिनके आधार पर हम मानव के अतीत से जुड़े पर्यावरणीय तत्त्वों का अध्ययन कर सकते हैं। इन स्रोतों को क्रमशः सापेक्ष एवं निरपेक्ष स्रोतों के रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है।

सापेक्ष अर्थात् सीधे-सीधे भौगोलिक संरचना, प्राकृतिक आपदायें, वनस्पति, जीव-जन्तु इत्यादि स्रोत प्रमुख हैं, जबकि निरपेक्ष स्रोत के अन्तर्गत दो विभाजन करके अध्ययन किया जा सकता है, जो क्रमशः पुरातात्त्विक एवं साहित्यिक साक्ष्य के नाम से जाने जाते हैं। साहित्यिक साक्ष्य अर्थात् वैसे ग्रन्थ जिनमें तत्कालीन पारिस्थितिकी का वर्णन है एवं पुरातात्त्विक साक्ष्य अर्थात् कला, मुद्रा एवं अभिलेख क्योंकि कला, मुद्रा एवं अभिलेख के संदर्भ में जीव-जन्तु, वनस्पति, जलवायु, ग्रहों एवं उपग्रहों का अंकन पाया जाता है। इसके साथ ही साथ उत्खनन में जीव-जन्तुओं की अस्थियाँ, वनस्पतियों के अवशेष भी एक प्रमुख पुरातात्त्विक साक्ष्य हैं। उदाहरणस्वरूप- द्वारिका नगर का जल में समाहित पाया जाना पर्यावरणीय पुरातत्त्व के संदर्भ में सापेक्ष साक्ष्य है, परन्तु इस प्रकार की घटना, जो जलवायु इत्यादि से सम्बन्धित है, को व्यक्त करने वाले कला, साहित्य एवं अभिलेख निरपेक्ष साक्ष्य के अन्तर्गत आयेंगे।

लेख की विषय-वस्तु अभिलेखों में निहित जलवायु को दर्शाना है, अतएव इस लेख में अभिलेख, पर्यावरणीय पुरातत्त्व के एक महत्त्वपूर्ण निरपेक्ष साक्ष्य के साधन के रूप में स्थान रखता है। जहाँ तक अभिलेखों में जलवायु सम्बन्धी सूचनाओं के उल्लेख की बात है तो यह बहुत सीमित है, तथापि प्राप्त जानकारियों के आधार पर इनको चार भागों में बाँटा जा सकता है-

1. अनावृष्टि, 2. अतिवृष्टि, 3. आँधी एवं 4. ऋतुएँ।

अनावृष्टि का उल्लेख हमें 2 अभिलेखों में, अतिवृष्टि एवं आँधी का भी उल्लेख 2-2 लेखों में एवं ऋतुओं का उल्लेख 104 लेखों में मिलता है।

1. अनावृष्टि : अनावृष्टि का अर्थ है, कम वर्षा होना या बिल्कुल ही वर्षा ना होना, जो कि सृष्टि के लिए विनाशकारक है। विशेषतः प्राचीन काल में जबकि अर्थव्यवस्था का मुख्य आधार कृषि थी और कृषि के लिए सिंचाई का मुख्य स्रोत वर्षा ही थी। मौर्यकालीन सोहगौरा कांस्य-फलक-लेख[1] (लगभग तीसरी शती ई. पू.) (चित्र-1) में प्रशासन की ओर से दुर्भिक्ष अर्थात् अनावृष्टि के समय जनहित के लिए किए जाने वाले कार्यों की कुछ झलक हमें मिलती है। इस लेख में कहा गया है कि, ''श्रावस्ती के महामात्रों का मानवाशीति (नामक) शिविर से (यह) आदेश (है) : श्रीमान् वंशग्राम में ये दो तिमंजिले कोष्ठागार (स्थापित हैं)। ये माथुर, चंचु, मोदाम, भल्लक (नामक ग्रामों) में विपत्तिकाल में (अर्थात् दुर्भिक्ष आदि के समय) काम में लाए जाएँ। (सुभिक्षकाल में इन्हें काम में) नहीं लिया जाए।''[2] यह कांस्य-फलक किसी कोष्ठागार से सम्बन्ध रखता है जिसमें दुर्भिक्ष के समय वितरण के लिए अन्न रखा जाता रहा होगा।[3] साथ ही इससे ज्ञात होता है कि आज की तरह मौर्यकाल में भी पूर्वी उत्तर प्रदेश को अकाल और बाढ़ आदि प्राकृतिक प्रकोपों का सामना करना पड़ता था।[4]

चित्र 1 : सोहगौरा कांस्य-फलक-लेख

(स्रोत : https://en.wikipedia.org/wiki/sohgaura_copper_plate_inscription)

* पोस्ट डॉक्टोरल फेलो, प्रा. भा. इ., सं. एवं पुरातत्त्व विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

* * सहायक प्राध्यापक, प्रा. भा. इ., सं. एवं पुरातत्त्व विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

सोहगौरा कांस्य-फलक-लेख की तरह ही बंगलादेश में स्थित महास्थान नामक स्थान से प्राप्त एक खण्डित शिला-फलक[5] (लगभग 300 ई.पू.) (चित्र-2) में भी आपत्तिकाल अर्थात् दुर्भिक्ष के समय अन्न संचित किये जाने वाले कोष्ठागार की चर्चा आयी है। परमेश्वरीलाल गुप्त के अनुसार, ''उसमें जलोत्पात, दैवोत्पात और शुकोत्पात से विनाश का कुछ संकेत जान पड़ता है पर यह स्पष्ट नहीं हो पाता है कि इन अवस्थाओं का सामना करने के लिए कोष्ठागारिक को भण्डार भरकर रखने को कहा गया है अथवा लेनेवालों से किसी प्रकार लिये गये अन्न को लौटाने की बात है।''[6]

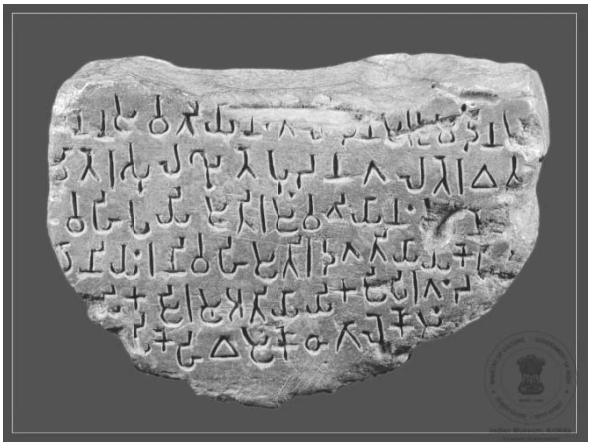

चित्र 2 : महास्थान, शिला-फलक-लेख

(स्त्रोत : राष्ट्रीय संग्रहालय, कलकत्ता)

उपरोक्त दोनों ही लेख दुर्भिक्ष अर्थात् अनावृष्टि के समय कोष्ठागारों में अन्न संचित करने की बात करते हैं। कौटिल्य के अर्थशास्त्र[7] में भी वर्णन है कि राजा दुर्भिक्ष के समय जनपद की रक्षा करे। इस ग्रन्थ में कौटिल्य कहते हैं कि, ''राज्य में दुर्भिक्ष पड़ जाने पर राजा की ओर से बीज और अन्न वितरण करके जनता पर अनुग्रह किया जाये।''[8]

2. अतिवृष्टि : अतिवृष्टि अर्थात् आवश्यकता से अधिक वर्षा होना, जो कि अनावृष्टि के ही समान सृष्टि के लिए विनाशकारक है। यदि हम अभिलेखों में अतिवृष्टि के उल्लेख की बात करें तो मौर्यकालीन अभिलेखों में इसकी सूचना नहीं प्राप्त होती, किन्तु कौटिल्य के अर्थशास्त्र में अतिवृष्टि का उल्लेख कुछ इस प्रकार आया है, ''मन्त्रविद एवं अथर्ववेद के ज्ञाताओं से अतिवृष्टि की शान्ति के लिए जप, होम, यज्ञ आदि अनुष्ठान कराये जायें।''[9]

मौर्योत्तरकाल में अतिवृष्टि के प्रमाण हमें लेखों में मिलने लगते हैं। दूसरी शताब्दी ई. के शक-क्षत्रप नरेश रुद्रदामन के जूनागढ़ अभिलेख[10] में उसके शासनकाल के 72वें वर्ष अर्थात् 150 ई. में अत्यधिक वर्षा के कारण सुदर्शन नामक झील के टूटने का उल्लेख है। इस लेख में वर्णन आया है कि, ''रुद्रदामन के बहत्तरवें राजवर्ष में मार्गशीर्ष महीने के कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा को घनघोर वर्षा हुई, जिससे समस्त पृथ्वी समुद्र के समान प्रतीत होने लगी। फलस्वरूप ऊर्जयत नाम के पर्वत से निकलने वाली सुवर्णसिकता, पलाशिनी प्रभृति नदियों के उमड़े हुए वेग और पर्वत की चोटियों, वृक्षों, तटों, अटारियों, मकानों के ऊपरी तल्लों, दरवाजों और बचाव के लिए बनाये गये ऊँचे स्थानों को विनष्ट कर देने वाले प्रचण्ड पवन से विलोड़ित जल के विक्षेप से, यथोचित उपाय किये जाने पर भी जर्जरित होकर पत्थरों, वृक्षों, झाड़ियों और लताओं के फेंके जाने से क्षुब्ध यह सुदर्शन झील नदी की तलहटी तक उखड़ गयी। (जिसमें) 420 हाथ लम्बी और उतनी ही चौड़ी और 74 हाथ गहरी दरार पड़ जाने के कारण झील का सारा पानी बह गया। फलस्वरूप यह सुदर्शन झील देखने में रेगिस्तान के समान दुर्दर्शन लगने लगी।''[11] इस अभिलेख में सुदर्शन नामक कृत्रिम झील के बाँध के टूट जाने पर शक महाक्षत्रप रुद्रदामन के अमात्य पहलव कुलैप-पुत्र सुविशाख द्वारा उसके पुनर्निर्माण कराये जाने का उल्लेख है।[12]

मौर्योत्तरकाल के बाद हमें गुप्तकालीन नरेश स्कन्दगुप्त के जूनागढ़ लेख, गुप्त संवत् 136, 137, 138 (455, 456, 457 ई.)[13] में अतिवृष्टि के प्रमाण मिलते हैं। इस लेख में उल्लिखित है कि, ''कालक्रम से-गुप्तों के काल में गणना करते हुए, वर्ष एक सौ छत्तीस प्रौष्ठ-पद (मास) के छठे दिन रात्रि में- (अपने) मेघों से ग्रीष्म ऋतु का विदारण करते हुए, बादलों का समय आया, जबकि दीर्घकाल तक अनवरत प्रभूत वर्षा हुयी, जिसके कारण सुदर्शन (झील) एकाएक फूट पड़ा।''[14]

इस प्रकार हम देखते हैं कि स्कन्दगुप्त के समय में चन्द्रगुप्त मौर्य द्वारा निर्मित सुदर्शन झील का बाँध अतिवृष्टि के कारण पुनः टूट गया। परिणामस्वरूप निकटवर्ती क्षेत्र जलमग्न हो गए। उस समय स्कन्दगुप्त द्वारा नियुक्त गिरनार नगर के पुरपति चक्रपालित ने अनुपम साहस दिखाकर और अपार धन व्यय करके सौ हाथ लम्बे और अड़सठ हाथ चौड़े झील के बांध की मरम्मत करवाई।

3. आँधी : आँधी को भी अतिवृष्टि की तरह ही दैवीय आपदा माना जाता है। इसमें चलने वाली तेज हवाएँ साधारण जीवन पर बुरा असर डालती हैं। परन्तु यदि हम अभिलेखों में इसके उल्लेख की बात करें तो यह बहुत ही सीमित है। मौर्योत्तरकाल में कलिंग के चेदि वंशी राजा खारवेल के हाथीगुम्फा अभिलेख[15] (लगभग पहली शती ई. पू.) में आँधी का वर्णन आया है। इस लेख में वर्णित है कि, ''अभिषिक्त (राजा) होने के बाद प्रथम वर्ष में वे तूफान से नष्ट कलिंगनगरी खिबिर के गोपुरों, प्राकारों, मकानों आदि की मरम्मत (प्रतिसंस्कार) कराते हैं, शीतल जलवाले तालाब के बाँध को सुदृढ़ कराते हैं, सभी बगीचों को नये ढंग से सँवरवाते हैं। इसमें वे 35 लाख (मुद्रा) व्यय करते हैं।''[16]

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि खारवेल ने राजा बनने के बाद प्रथम वर्ष में आँधी से क्षतिग्रस्त राजधानी कलिंगनगर का पुनर्निर्माण करवाया। इसके अतिरिक्त उसी वर्ष उसने प्रजा के हित के

लिए शीतल जल के तडाग खुदवाए, उद्यानों को सुधरवाया और इन कार्यों में 35 लाख मुद्राएँ व्यय कीं।[17]

'परम घोर वेगेन वायुना' अर्थात् तेज हवा चलने का साक्ष्य हमें शक-क्षत्रप नरेश रुद्रदामन के जूनागढ़ लेख, वर्ष 72 (150 ई.)[18] में भी मिलता है। यद्यपि इस प्रकार के उल्लेख हमें अलग संदर्भों में अन्य लेखों में भी प्राप्त होते हैं, परन्तु स्पष्ट रूप से आँधी का उल्लेख हाथीगुम्फा लेख के अतिरिक्त अन्य कालों के लेखों में नहीं मिलता।

4. ऋतुएँ : ऋतुएँ प्राकृतिक अवस्थाओं के अनुसार वर्ष का छोटा कालखण्ड है, जिसमें मौसम या जलवायु की दशायें विशिष्ट प्रकार की होती हैं। प्राचीन काल में अभिलेखीय स्रोतों में वर्ष को तीन ऋतुओं- ग्रीष्म, वर्षा और हेमन्त में विभाजित कर उसका प्रयोग तिथि-गणना में करते थे। इस प्रकार की गणना में प्रत्येक ऋतु के अन्तर्गत चार मासों का उल्लेख 1,2,3,4 संख्या द्वारा किया जाता था।[19] परन्तु गुप्तकाल और उसके बाद के कालों में भारत में प्रचलित छः ऋतुओं का उल्लेख अभिलेखों में मिलता है। यद्यपि साहित्य में इनका उल्लेख वैदिक काल से ही किसी न किसी रूप में मिलने लगता है। ये छः ऋतुएँ हैं- ग्रीष्म, वर्षा, शरद, हेमन्त, शिशिर और वसन्त।

पूर्व मध्यकालीन राष्ट्रकूट नरेश अमोघवर्ष प्रथम के संजन ताम्रपत्र-लेख, शक संवत् 793 (871 ई.)[20] में उपर्युक्त सभी ऋतुओं का वर्णन मिलता है। इस लेख में उल्लिखित है कि, ''अमोघवर्ष के शासन में हेमन्त, शिशिर, वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा और शरद ऋतुओं में दुष्काल और व्याधि पैर नहीं रखते थे।''[21]

यदि हम अभिलेखों की बात करें तो उनमें ऋतुओं तथा उनके विभिन्न माह के नामों का उल्लेख हमें दान तथा तिथि-गणना के संदर्भ में मिलता है और साथ ही कुछ अभिलेखों में विभिन्न ऋतुओं में होने वाले जलवायु सम्बन्धी प्राकृतिक परिवर्तन का बड़ा सुन्दर वर्णन मिलता है। लगभग 104 अभिलेखों में किसी न किसी प्रकार से ऋतुओं तथा उनके महीनों की चर्चा आयी है, जबकि साहित्यिक स्रोत ऋतु सम्बन्धी विवरणों से भरे पड़े हैं। भारत में प्रचलित तथा विभिन्न लेखों में आये छः ऋतुओं की विस्तार से चर्चा निम्नलिखित है-

(i) ग्रीष्म ऋतु- ग्रीष्म ऋतु में हिन्दी पंचांग के वैशाख एवं ज्येष्ठ तथा ग्रेगोरियन कैलेण्डर के मई और जून माह आते हैं। इस ऋतु में सूर्य की किरणें अत्यन्त उष्ण होती हैं, जिससे वातावरण का तापमान प्रायः उच्च रहता है। ग्रीष्म की प्रचण्डता का प्रभाव पर्यावरण पर भी पड़े बिना नहीं रहता। इस समय नदी-तालाब सूखने लगते हैं तथा शीतल पवन के स्थान पर गर्म हवायें चलने लगती हैं, जो सभी प्राणियों के लिए कष्टकारी होता है।

यद्यपि अभिलेखों में ग्रीष्म ऋतु का विस्तृत वर्णन नहीं प्राप्त होता है, तथापि पश्चिम भारत के क्षत्रप (प्रथम शती ई. से द्वितीय शती ई. का अन्त) और सातवाहन (प्रथम शती ई. पू. से द्वितीय शती ई. का अन्त) लेखों में तिथि गणना के समय ऋतुओं का नामोल्लेख आया है, जिसे ऋतु-सम्बन्धी तिथि कह सकते हैं। इसका एक मूल कारण यह था कि शक-संवत् से जुड़ी हुई तिथियाँ ऋतु-सम्बन्धी थीं।[22] कई सातवाहन लेखों[23] तथा क्षत्रपों के लेखों[24] में ग्रीष्म ऋतु का उल्लेख आया है।

ग्रीष्म ऋतु से सम्बन्धित वैशाख मास का उल्लेख कार्दमक क्षत्रपवंशी नरेश प्रथम रुद्रसिंह के समय के गुंडा शिलालेख, (शक) वर्ष 103 (181 ई.)[25], प्रथम रुद्रसेन के समय के मूलवासर यष्टिलेख, (शक) वर्ष 122 (200 ई.)[26], कुछ गुप्तकालीन लेखों[27] तथा वलभी के महाराज धरसेन द्वितीय के मालिया ताम्रपत्रांकित-लेख, वर्ष 252 (571 ई.)[28] एवं महासामन्त तथा महाराज समुद्रसेन के निर्मण्ड ताम्रपत्र-लेख, राज्यवर्ष 6[29] (लगभग सातवीं शती ई.) आदि में मिलता है, जबकि ज्येष्ठ मास का उल्लेख पश्चिमी भारत के कार्दमकवंशी क्षत्रप चष्टन के समय के अन्धौ यष्टि-लेख, (शक) वर्ष 11 (89 ई.)[30], कई गुप्तकालीन लेखों[31], वाकाटक नरेश प्रवरसेन द्वितीय के चम्मक ताम्रपत्र-लेख, राज्यवर्ष 18[32] (लगभग 438 ई.) तथा राजा तीवरदेव के राजिम ताम्रपत्र-लेख, राज्यवर्ष 7[33] (लगभग 800 ई.) आदि में मिलता है।

(ii) वर्षा ऋतु- भारत में ग्रीष्म के तुरन्त बाद वर्षा ऋतु का आगमन होता है। इस ऋतु में भारतीय पंचांग के आषाढ़ और श्रावण महीने आते हैं, जिसे ग्रेगोरियन कैलेण्डर का जुलाई और अगस्त का महीना माना जाता है। जिस समय सूर्य की किरणें आर्द्र वायु को लेकर ऊष्मा के बल पर वाष्प बनाकर बरसना प्रारम्भ कर देती हैं, उस काल को वर्षा ऋतु कहते हैं। पर्यावरण के दृष्टिकोण से इस ऋतु का मानव जीवन में बहुत महत्त्व है, क्योंकि वर्षा के बिना जीवन संभव नहीं है। प्राचीन काल में कृषि आधारित अर्थव्यवस्था में सिंचाई के लिए साधारणतया लोग वर्षा पर ही निर्भर रहते थे। यह ऋतु सूखे हुए कुएँ, तालाबों और नदियों को फिर से भरने का कार्य करती है तथा छोटे-छोटे जीव-जन्तु जो गर्मी में जमीन के अन्दर छिप जाते हैं, वे बाहर निकल आते हैं।

गुप्तकालीन नरेश स्कन्दगुप्त के जूनागढ़ लेख, गुप्त संवत् 136, 137, 138 (455, 456, 457 ई.) में उल्लेख मिलता है कि, ''गुप्त संवत् की गणना के अनुसार 136वें संवत्सर के प्रौष्ठपद की षष्ठी तिथि की रात में बादलों द्वारा ग्रीष्म ऋतु को विदीर्ण कर वर्षा ऋतु के आने पर बहुत समय तक घनघोर वर्षा होती रही, फलस्वरूप अचानक सुदर्शन झील टूट गयी।''[34] इस वर्णन में हमें वर्षा ऋतु का पर्यावरण पर पड़ने वाला विनाशकारी रूप दिखायी देता है। इसलिए हम कह सकते हैं कि एक तरफ जहाँ इस ऋतु की जलवायु पर्यावरण एवं मानव जीवन के लिए

जीवनदायिनी है, वहीं दूसरी ओर वर्षा की भयंकरता पर्यावरणीय संतुलन को बिगाड़ती भी है।

कुछ सातवाहन[35] तथा पश्चिमी भारत के क्षहरात क्षत्रपों[36] के अभिलेखों में वर्षा ऋतु का उल्लेख मिलता है। साथ ही इस ऋतु से सम्बन्धित आषाढ़ एवं श्रावण महीनों का विवरण भी कुछ लेखों में मिलता है। आषाढ़ मास का उल्लेख गुप्त नरेश चन्द्रगुप्त द्वितीय के मथुरा, वर्ष 61 (380 ई.)[37] तथा उदयगिरि लेख, वर्ष 82 (401 ई.)[38], बुधगुप्त के दामोदरपुर, वर्ष 163 (482 ई.)[39] तथा एरण लेख, वर्ष 165 (484 ई.)[40] एवं महाराज जयनाथ के कारीतलाई ताम्रपत्रांकित-लेख, वर्ष 174 (493 ई.)[41] में मिलता है, जबकि श्रावण माह का नामोल्लेख हमें पश्चिमी भारत के कार्दमक क्षत्रप नरेश रुद्रदामन प्रथम के काल के खावडा लेख, वर्ष 63[42] (लगभग 141 ई.) तथा कुछ गुप्तकालीन लेखों[43] में मिलता है।

(iii) शरद ऋतु- वर्षा ऋतु के बाद आने वाले शरद ऋतु में हिन्दी के भाद्रपद एवं आश्विन मास आते हैं, जिनकी साम्यता सितम्बर और अक्टूबर महीनों से की जाती है। अभिलेखों में शरद ऋतु के पर्यावरण का उल्लेख नहीं मिलता, यद्यपि इस ऋतु से सम्बन्धित मासों का उल्लेख मिलता है। भाद्रपद माह का उल्लेख कार्दमक क्षत्रप वंशी नरेश रुद्रसेन प्रथम के समय के गढ़ा शिलालेख, (शक) वर्ष 127 (205 ई.)[44], विदर्भ के क्षत्रप नरेश रुद्रसेन के समय के देवनी मोरी के करंडक लेख, (आभीर) संवत् 127[45], गुप्तकालीन राजा स्कन्दगुप्त के जूनागढ़ लेख, गुप्त संवत् 136,137,138 (455, 456, 457 ई.)[46], बुधगुप्त के मथुरा पादासन-लेख, वर्ष 161 (480 ई.)[47] तथा विष्णुगुप्त के दामोदरपुर ताम्रपत्र-लेख, वर्ष 224 (543 ई.)[48] में मिलता है, जबकि आश्विन मास का उल्लेख अभिलेखों में अश्वायुज नाम से गुप्तकालीन नरेश कुमारगुप्त प्रथम के मथुरा बुद्ध-मूर्ति-पीठ लेख, वर्ष 125 (444 ई.)[49], कुमारगुप्त प्रथम के साँची प्रस्तर-लेख, वर्ष 131 (450 ई.)[50] तथा उच्चकल्पवंशी महाराज शर्वनाथ के खोह ताम्रपत्र-लेख, वर्ष 197 (516 ई.)[51] में मिलता है।

महीनों के नाम के साथ-साथ कुछ अभिलेखों में शरद ऋतु का भी नामोल्लेख मिलता है, यथा- वलभी के मैत्रक नरेश शीलादित्य सप्तम का अलीन ताम्रपत्रांकित लेख, वर्ष 447 (766 ई.)[52], महासामन्त तथा महाराज समुद्रसेन का निर्मण्ड ताम्रपत्र-लेख, राज्यवर्ष 6[53] (लगभग सातवीं शती ई.), मौखरी नरेश ईशानवर्मा का हड़हा प्रस्तर-अभिलेख, (विक्रम) वर्ष 611 (553-54 ई.)[54] तथा चन्देल नरेश धंगदेव का खजुराहो अभिलेख, विक्रम संवत् 1011 (954 ई.)[55] आदि।

कुषाण नरेश हुविष्क के मथुरा अभिलेख, वर्ष 28 (106 ई.)[56] में गुर्प्रिय मास का उल्लेख मिलता है। परमेश्वरीलाल गुप्त के अनुसार यह यूनानी (मकदूनी, मेसिडोनियन) मास का नाम है जो मोटे रूप में भारतीय भाद्रपद-आश्विन में पड़ता था।[57]

(iv) हेमन्त ऋतु- हेमन्त ऋतु का प्रारम्भ शरद पूर्णिमा से माना जाता है। इस ऋतु में हिन्दी के कार्तिक एवं मार्गशीर्ष माह आते हैं। ग्रेगोरियन कैलेण्डर से यह लगभग नवम्बर और दिसम्बर का महीना होता है। पर्यावरणीय दृष्टिकोण से इस ऋतु की जलवायु में ठंडी हवायें चलने लगती हैं, जिससे तापमान गिरने लगता है और कोहरे से पूरा वातावरण ढँकने लगता है।

गुप्तकालीन कुमारगुप्त एवं बन्धुवर्मन के मंदसोर अभिलेख, मालव संवत् 493 एवं 529 (436 एवं 472 ई.)[58] में हेमन्त ऋतु के सहस्य मास के शुक्ल पक्ष की त्रयोदशी के दिन सूर्य मंदिर की स्थापना के समय की प्रकृति का बहुत ही सुन्दर वर्णन इस प्रकार हुआ है, ''उस ऋतु में- जो कि मनुष्यों को अपनी प्रियतमाओं से मिलाता है, जो घाटियों में (चमकते हुए) सूर्य की किरणों की उष्णता के कारण सुखकर लगता है, जिसमें मछलियाँ जल में बहुत नीचे रहती हैं, जो (शीत के कारण) चन्द्र-रश्मियों, गृहों के विस्तीर्ण छतों (पर खुली हवा में बैठने), चन्दन ताड़-पत्र के पंखों तथा हारों के भोग से रहित है; जिसमें कमल-पुष्प हिमपात से जल जाते हैं, जो रोध्र तथा पियंगु-वृक्षों तथा कुन्दलताओं के सुविकसित पुष्पों के रस-पान से प्रसन्न होकर गुंजार करते हुए भ्रमरों से मनोहारी लगता है; जिसमें तुषारकणों द्वारा कठोर तथा शीतल बनाए गए वायु-वेग से लवली-वृक्ष तथा नगणा नामक झाड़ियों की शाखाएँ नृत्य सी करती हैं।''[59]

गुप्तों के सामन्त मालवा नरेश विश्ववर्मन के गंगधार प्रस्तर-लेख, वर्ष 480 (423-24 ई.) में ऋतु का सुन्दर वर्णन मिलता है, यथा- ''मनुष्यों के चित्त को सुखी बनाने वाले कार्तिक मास के शुक्ल पक्षीय तेरहवें दिन, नीले कमलों में घिरे हुए, रेणुओं से अरुण वर्ण हुए जलों से युक्त ऋतु में, जबकि काननान्त बन्धूक तथा बाण वृक्षों के पुष्पों से उज्ज्वल है।''[60] संभवतः यहाँ ऋतु से तात्पर्य हेमन्त ऋतु से है, क्योंकि कार्तिक (अक्टूबर-नवम्बर) माह इसी ऋतु में आता है।

एक अन्य लेख हूण शासक मिहिरकुल के ग्वालियर प्रस्तर-लेख, राज्यवर्ष 15 (संभवतः 515-530 ई.) में हेमन्त ऋतु के कार्तिक मास की प्रकृति का वर्णन कुछ इस प्रकार मिलता है, ''उन राजश्रेष्ठ के प्रवर्द्धमान शासनकाल में (तथा) (उनके) पन्द्रहवें वर्ष में; चन्द्र-रश्मियों की मुस्कान से प्रस्फुटित हुई लाल तथा नीली कमलिनियों की सुगन्धि से शीतल तथा सुगन्धित हुए कार्तिक मास के आने पर; जबकि निर्मल चन्द्र प्रकाशित हो रहा है।''[61]

उपर्युक्त अभिलेख में हेमन्त ऋतु की इस प्रकार की व्याख्या से हमें कार्तिक तथा मार्गशीर्ष माह में होने वाले पर्यावरण सम्बन्धी परिवर्तन या जलवायु की जानकारी प्राप्त हो जाती है। यद्यपि प्राचीन साहित्यों में इस ऋतु से सम्बन्धित और भी उल्लेख मिलते हैं, परन्तु अभिलेखों में ऐसे वर्णन सीमित हैं। केवल कुछ अभिलेखों में हमें हेमन्त ऋतु का उल्लेख तिथि गणना के संदर्भ में मिलता है, जैसे-

शक नरेश शोडास के वर्ष 72 (15 ई.) के मथुरा आयाग-पट्ट लेख[62], कुषाण नरेश कनिष्क के सारनाथ बोधिसत्व अभिलेख, वर्ष 3 (81 ई.)[63], वासुदेव के मथुरा जिन-मूर्ति लेख, वर्ष 80 (158 ई.)[64], वाशिष्क के साँची अभिलेख, वर्ष 28 (106 ई.)[65], सातवाहन नरेश वाशिष्ठीपुत्र पुलुमावि के नासिक गुहा-लेख, राज्यवर्ष 2 (132 ई.)[66] तथा अन्य सातवाहन लेख[67]।

हेमन्त ऋतु से सम्बन्धित महीनों का उल्लेख भी हमें कुछ लेखों में मिलता है। कार्तिक मास का वर्णन पश्चिमी भारत के कार्दमक क्षत्रपों के लेखों में भर्तृदामन के समय के मेवासा यष्टिलेख, वर्ष 203 (281 ई.)[68], कुछ गुप्तकालीन लेखों[69], वाकाटक वंशी महारानी प्रभावतीगुप्ता के पूना ताम्रपत्र-लेख, राज्यवर्ष 13[70] (लगभग 408 ई.), वर्द्धन वंशी नरेश हर्ष के बाँसखेड़ा ताम्रपत्र-लेख, हर्ष संवत् 22 (628 ई.)[71] तथा पाण्डुवंशी राजा तीवरदेव के राजिम ताम्रपत्र-लेख, राज्यवर्ष 7[72] (लगभग 800 ई.) आदि में मिलता है। मार्गशीर्ष (अगहन) मास का उल्लेख शक-क्षत्रप नरेश रुद्रदामन के जूनागढ़ लेख, वर्ष 72 (150 ई.)[73], गुप्त नरेश बुधगुप्त के राजघाट (वाराणसी) स्तम्भ-लेख, वर्ष 159 (478 ई.)[74] तथा शरभपुर के राजा महाजयराज के आरंग ताम्रपत्र-लेख[75] (तिथिविहीन) में मिलता है।

(v) शिशिर ऋतु- हेमन्त के बाद आने वाला शिशिर ऋतु पौष एवं माघ महीनों में होता है। अंग्रेजी कैलेण्डर के अनुसार यह जनवरी और फरवरी का महीना होता है। इस ऋतु में कड़ाके की ठण्ड पड़ने लगती है एवं घना कोहरा छाने लगता है। कहा जाता है कि इस ऋतु में प्रकृति पर बुढ़ापा छाने लगता है अर्थात् वृक्षों के पत्ते झड़ने लगते हैं।

यद्यपि अभिलेखों में शिशिर ऋतु का पर्यावरणीय दृष्टि से उल्लेख नहीं मिलता, तथापि इससे सम्बन्धित पौष एवं माघ महीनों के उल्लेख हमें अभिलेखों में मिलते हैं। पौष मास का उल्लेख कुषाण नरेश कनिष्क (द्वितीय) के मथुरा बुद्ध-मूर्ति अभिलेख, वर्ष [1]14 (92 या 192 ई.)[76], गुप्त नरेश कुमारगुप्त प्रथम के मथुरा पाषाण-प्रतिमा-लेख, वर्ष 135 (454 ई.)[77], वैन्यगुप्त के गुणैधर ताम्रपत्र-लेख, वर्ष 188 (507 ई.)[78] तथा महाराज शर्वनाथ के खोह ताम्रपत्र-अभिलेख, वर्ष 214 (533 ई.)[79] आदि में मिलता है। अभिलेखों में माघ मास का उल्लेख गुप्तकाल से मिलना प्रारम्भ होता है और समुद्रगुप्त के नालन्दा ताम्रपत्र-लेख, शासनवर्ष 5[80] (लगभग 340 ई.), कुमारगुप्त प्रथमकालीन बैग्राम ताम्रपत्र-लेख, वर्ष 128 (447 ई.)[81], स्कन्दगुप्त के गढ़वा (पंचम) अभिलेख, वर्ष 148 (467 ई.)[82], बुधगुप्त के पहाड़पुर ताम्रपत्र-लेख, वर्ष 159 (478 ई.)[83], शरभपुर के राजा महासुदेवराज के रायपुर ताम्रपत्र-लेख, वर्ष 10[84] (अनिर्दिष्ट संवत्) तथा महाराज हस्तिन के मझगवां ताम्रपत्र-लेख, वर्ष 191 (510 ई.)[85] में मिलता है।

(vi) वसन्त ऋतु- वसन्त ऋतु में हिन्दी के फाल्गुन और चैत्र महीने आते हैं, जिसकी साम्यता अंग्रेजी के मार्च एवं अप्रैल महीनों से की जाती है। इस ऋतु को सर्वश्रेष्ठ मानते हुए ऋतुओं का राजा कहा गया है। इस समय सर्दी कम हो जाने से मौसम सुहावना हो जाता है एवं वृक्ष, पत्ते एवं पुष्पों से लदकर आह्लादित होते हैं।

अभिलेखों में भी पर्यावरणीय दृष्टि से वसन्त ऋतु के महत्त्व पर प्रकाश पड़ता है। गुप्तकालीन नरेश गोविन्दगुप्त के मंदसोर अभिलेख, मालव संवत् 524 (467 ई.) में वर्णन आया है कि, ''ऐसी ऋतु में जब भौरों के भार से नव-पद्म दबे होते हैं, शाल के वृक्ष रमणीय लगते हैं, जब देशान्तर गये प्रियतम के (विरह के) कारण पत्नियाँ काम-ज्वाला में जलती रहती हैं, जब न उष्ण और न शीतल वायु से कम्पित होते (वृक्षों से) बगीचे में नव-सौन्दर्य प्रस्फुटित होता है, जब कोयल अपनी मत्त करने वाली वाणी आरम्भ करती होती है, जब प्रिया के अधर की तरह लाल दिखायी पड़ने वाली कोमल पत्तियाँ प्रस्फुरित होती हैं।''[86]

गुप्तकालीन कुमारगुप्त एवं बंधुवर्मन के मंदसोर अभिलेख, मालव संवत् 493 तथा 529 (436 तथा 472 ई.) में वसन्त ऋतु अर्थात् तपस्य (फाल्गुन) मास के शुक्ल पक्ष की प्राकृतिक छटा का मनोहारी दृश्य इस प्रकार वर्णित है, ''जब कि पाँच सौ उन्तीस वर्ष व्यतीत हो चुके हैं, तपस्य मास के शुक्ल पक्षीय मनोहारी द्वितीय चान्द्र-दिवस पर, उस ऋतु में- जबकि शिव द्वारा नष्ट-शरीर (कामदेव) अशोक, केतक तथा सिन्दुवार वृक्षों एवं दोलायमान अतिमुक्तक लताओं तथा जंगली कुन्दपादपों में नूतन प्रस्फुटित पुष्पों के साथ एकता स्थापित करते हुए (अपने) शरों (की पाँच संख्या) में वृद्धि कर देता है; जबकि नगणा झाड़ियों की शाखाएँ मधुपान से प्रमुदित भ्रमरों के गुंजन से भर जाता है; (तथा) जबकि सुन्दर तथा प्रचुर रोध्र वृक्ष (अपने) नए प्रस्फुटित पुष्पों के साथ कभी आगे पीछे दोलायमान होते हैं।''[87]

एक अन्य अभिलेख यशोधर्मन तथा विष्णुवर्धन के मंदसोर स्तम्भ-लेख, मालव वर्ष 589 (532 ई.)[88] में कूप के निर्माण के समय के ऋतु का बड़ा मनोहारी उल्लेख किया गया है। इसमें कहा गया है कि, ''उस ऋतु में जिसमें (भगवान) स्मर के शर समान, धीमी तथा कोमल ध्वनियों वाली कोयलों के गीत घर से दूर रहने वाले लोगों के मन को विदीर्ण सा करते हैं, तथा जिसमें भ्रमरों के उड़ने से उत्पन्न (उनके द्वारा वहित) भार के कारण धीमी हुयी गुंजन-ध्वनि जंगलों के बीच पुष्प-पताका वाले (कामदेव) धनुष- जबकि इसकी प्रत्यंचा को स्पन्दित किया जाता है- के टंकार के समान सुनी जाती है; उस ऋतु में जिसमें पुष्पागमन का वह मास आता है जबकि वायु अपने प्रियतमों से कुपित मानिनी स्त्रियों के प्रेमपूर्ण किन्तु मोहसिक्त विचारों को मानों वे नए निकले हुए सुन्दर पल्लव हों-तोड़ने में प्रवृत्त रहता है, उस ऋतु में यह (कूप) बनवाया गया।''[89] फ्लीट[90] महोदय ने इस ऋतु की साम्यता वसन्त ऋतु से की है।

उपर्युक्त आभिलेखिक साक्ष्यों में हमें वसन्त ऋतु में होने वाले जलवायु सम्बन्धी परिवर्तनों का सुन्दर वर्णन मिल जाता है। एक ओर जहाँ इस ऋतु में पेड़-पौधों में नये पत्ते तथा पुष्प आने लगते हैं, वहीं दूसरी ओर प्रकृति की सुन्दरता से सम्पूर्ण जनमानस आनन्द एवं उल्लास से भर जाता है।

वसन्त ऋतु से सम्बन्धित फाल्गुन एवं चैत्र महीनों का उल्लेख हमें अभिलेखों में मिलता है। फाल्गुन महीने का उल्लेख पश्चिमी भारत के कार्दमक क्षत्रपकालीन चष्टन और रुद्रदामन के समय के अन्धौ यष्टिलेख, (शक) वर्ष 52 (130 ई.)[91], गण-जनपद के बढ़वा मौखरी-यूप अभिलेख, कृत संवत् 295 (238 ई.)[92], हूण राजा तोरमाण के एरण से प्राप्त प्रस्तर-वराह-अभिलेख[93] (तिथिविहीन), कुछ गुप्त लेखों[94], वाकाटक नरेश प्रवरसेन द्वितीय के सिवनी ताम्रपत्र-लेख, राज्यवर्ष 18[95] (लगभग 438 ई.) तथा विष्णुवर्धन के विजयगढ़ प्रस्तर-स्तम्भ-लेख, वर्ष 428 (371 ई.)[96] में मिलता है, जबकि पश्चिमी क्षत्रपों में क्षहरात क्षत्रपों के राजा ऋषभदत्त के नासिक लेख[97] (लगभग 119-124 ई.), कार्दमक क्षत्रपवंशी जयदामन के पौत्र के समय के जूनागढ़ शिलालेख[98] (तिथिविहीन), गुप्तकालीन परिव्राजक महाराज हस्तिन के खोह ताम्रपत्र-लेख, वर्ष 163 (482 ई.)[99], महाराज संक्षोभ के खोह ताम्रपत्रांकित-लेख, वर्ष 209 (528 ई.)[100], उच्चकल्पवंशी महाराज जयनाथ के खोह ताम्रपत्रांकित अभिलेख, वर्ष 177 (496 ई.)[101], महाराज शर्वनाथ के खोह ताम्रपत्र-लेख, वर्ष 193 (512 ई.)[102] तथा महानामन के बोधगया लेख, वर्ष 269 (588 ई.)[103] में चैत्र माह का नामोल्लेख है।

निष्कर्ष

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्राचीन भारतीय अभिलेखों (तालिका-1) में प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से जलवायु सम्बन्धी कई सूचनायें उपलब्ध हो जाती हैं। अनावृष्टि के संदर्भ में उससे उत्पन्न संकट के समाधान हेतु अन्न का संचयन एवं वितरण तथा अनुकूल परिस्थितियों में अन्न का भण्डारण निश्चित ही मौर्यकालीन पर्यावरण में कृषि अनुकूल चक्रों के अस्तित्व का संकेत करते हैं। यद्यपि अतिवृष्टि के साक्ष्य हमें पश्चिमी भारत से अधिक प्राप्त होते हैं और वहाँ अतिवृष्टि होने की सूचना देते हैं, तथापि अन्य क्षेत्रों में भी इस तरह की दैवीय आपदा से लोगों को विनाश झेलना पड़ता रहा होगा, लेकिन उसके अभिलेखीय साक्ष्य प्राप्त नहीं होते हैं।

अंततः हम कह सकते हैं कि एक ओर जहाँ अभिलेखों में अनावृष्टि, अतिवृष्टि एवं आँधी के उल्लेख जलवायु या प्रकृति के नकारात्मक पक्ष को दिखाते हैं, वहीं दूसरी ओर विभिन्न ऋतुओं में पर्यावरण में होने वाले सकारात्मक परिवर्तन भी हमें दिखायी देते हैं।

तालिका-1 : काल विशेष के संदर्भ में जारी जलवायु सम्बन्धी अभिलेखों का क्रमवार विवरण

क्रम सं.	जलवायु संदर्भ	लेख प्राप्ति स्थल/नाम	शासक	तिथि/काल	राजवंश	अन्य
1.	अनावृष्टि	सोहगौरा, गोरखपुर (उत्तर प्रदेश)	अज्ञात	लगभग तीसरी शती ई. पू.	अज्ञात	---
		महास्थान, बोगरा (बंगलादेश)	अज्ञात	लगभग 300 ई. पू.	अज्ञात	
2.	अतिवृष्टि	जूनागढ़, सौराष्ट्र (गुजरात)	रुद्रदामन	वर्ष 72 (150 ई.)	कार्दमक क्षत्रप	कार्दमक क्षत्रप या शक क्षत्रप वंश के लेखों की तिथि गणना शक संवत् (78 ई.) के अनुसार की जाती है।
		जूनागढ़, सौराष्ट्र (गुजरात)	स्कन्दगुप्त	गुप्त संवत् 136, 137, 138 (455, 456, 457 ई.)	गुप्त	गुप्त वंश की तिथि गणना का आधार उनके स्वयं के द्वारा चलाया गया गुप्त संवत् (319 ई.) है।
3.	आँधी	हाथीगुम्फा, उदयगिरि पर्वतमाला, भुवनेश्वर (उड़ीसा)	खारवेल	पहली शती ई. पू. (संभावित)	चेदि	---
		जूनागढ़, सौराष्ट्र (गुजरात)	रुद्रदामन	वर्ष 72 (150 ई.)	कार्दमक क्षत्रप	इस लेख में अतिवृष्टि का भी साक्ष्य मिलता है।

4.	ग्रीष्म ऋतु	नासिक (महाराष्ट्र)	गौतमीपुत्र सातकर्णि	राज्यवर्ष 24 (130 ई.)	सातवाहन	---
		नासिक (महाराष्ट्र)	वाशिष्ठीपुत्र पुलुमावि	राज्यवर्ष 6 (136 ई.)	सातवाहन	
		कार्ले, पूना (महाराष्ट्र)	वाशिष्ठीपुत्र पुलुमावि	राज्यवर्ष 7 (137 ई.)	सातवाहन	
		नासिक (महाराष्ट्र)	वाशिष्ठीपुत्र पुलुमावि	राज्यवर्ष 19 (149 ई.)	सातवाहन	
		नासिक (महाराष्ट्र)	वाशिष्ठीपुत्र पुलुमावि	राज्यवर्ष 19 एवं 22 (149 एवं 152 ई.)	सातवाहन	
		कान्हेरी (महाराष्ट्र)	यज्ञ सातकर्णि	राज्यवर्ष 16 (190 ई.)	सातवाहन	
		कान्हेरी (महाराष्ट्र)	यज्ञ सातकर्णि	तिथिविहीन	सातवाहन	
		कान्हेरी (महाराष्ट्र)	माठरीपुत्र शकसेन	राज्यवर्ष 8 (अनिर्दिष्ट संवत्)	सातवाहन	
		अन्धौ, कच्छ (गुजरात)	चष्टन	(शक) वर्ष 11 (89 ई.)	कार्दमक क्षत्रप	
		गुण्डा, जूनागढ़ (गुजरात)	रुद्रसिंह	(शक) वर्ष 103 (181 ई.)	कार्दमक क्षत्रप	
		मूलवासर, सौराष्ट्र (गुजरात)	रुद्रसेन प्रथम	(शक) वर्ष 122 (200 ई.)	कार्दमक क्षत्रप	
		दौलतपुर, कच्छ (गुजरात)	चष्टन	वर्ष 6 (अनिर्दिष्ट संवत्)	विदर्भ के क्षत्रप	
		मल्हारा, अमरावती (महाराष्ट्र)	आदित्यराज	संवत्सर 2 (अनिर्दिष्ट संवत्)	विदर्भ के क्षत्रप	
		नासिक (महाराष्ट्र)	ईश्वरसेन	वर्ष 9 (अनिर्दिष्ट संवत्)	शक क्षत्रप	
		गया (बिहार)	समुद्रगुप्त	राज्यवर्ष 9 (344 ई. लगभग)	गुप्त	कुछ विद्वानों ने इस लेख को संदिग्ध (जाली) माना है।
		कलैकुरी, राजशाही (बंगाल)	कुमारगुप्त प्रथम	गुप्त संवत् 120 (439 ई.)	गुप्त	---
		दामोदरपुर, दीनाजपुर (बंगाल)	कुमारगुप्त प्रथम	गुप्त संवत् 128 (447 ई.)	गुप्त	
		मानकुँवर, प्रयागराज (उत्तर प्रदेश)	कुमारगुप्त प्रथम	गुप्त संवत् 129 (448 ई.)	गुप्त	
		जूनागढ़, सौराष्ट्र (गुजरात)	स्कन्दगुप्त	गुप्त संवत् 136, 137, 138 (455, 456, 457 ई.)	गुप्त	इस लेख से अतिवृष्टि की भी सूचना मिलती है।

		कहाँव, देवरियाँ (उत्तर प्रदेश)	स्कन्दगुप्त	गुप्त संवत् 141 (460 ई.)	गुप्त	---
		सुपिया, रीवाँ (मध्य प्रदेश)	स्कन्दगुप्त	गुप्त संवत् 141 (460 ई.)	गुप्त	
		सारनाथ, वाराणसी (उत्तर प्रदेश)	कुमारगुप्त द्वितीय	गुप्त संवत् 154 (473 ई.)	गुप्त	
		सारनाथ, वाराणसी (उत्तर प्रदेश)	बुधगुप्त	गुप्त संवत् 157 (476 ई.)	गुप्त	
		नन्दपुर, मुँगेर (बिहार)	बुधगुप्त	गुप्त संवत् 169 (488 ई.)	गुप्त	
		चम्मक, अमरावती (महाराष्ट्र)	प्रवरसेन द्वितीय	राज्यवर्ष 18 (लगभग 438 ई.)	वाकाटक	
		मालिया, काठियावाड़ (गुजरात)	धरसेन द्वितीय	वर्ष 252 (571 ई.)	वलभी के मैत्रक	वलभी के मैत्रक वंश के लेखों की तिथि गणना गुप्त संवत् (319 ई.) के आधार पर की जाती है।
		अलीन, खेड़ा (गुजरात)	शीलादित्य सप्तम	वर्ष 447 (766 ई.)	वलभी के मैत्रक	---
		निर्मण्ड, कांगड़ा (पंजाब)	समुद्रसेन	राज्यवर्ष 6 (लगभग सातवीं शती ई.)	अज्ञात	
		राजिम, रायपुर (छत्तीसगढ़)	तीवरदेव	राज्यवर्ष 7 (लगभग 800 ई.)	पाण्डु	
5.	वर्षा ऋतु	नासिक (महाराष्ट्र)	गौतमीपुत्र सातकर्णि	राज्यवर्ष 18 (लगभग 124 ई.)	सातवाहन	---
		कार्ले, पूना (महाराष्ट्र)	गौतमीपुत्र सातकर्णि	राज्यवर्ष 18 (लगभग 124 ई.)	सातवाहन	
		नासिक (महाराष्ट्र)	ऋषभदत्त	वर्ष 41, 42, 45 (119, 120, 123 ई.)	क्षहरात क्षत्रप	इस वंश के लेखों की तिथि गणना शक संवत् (78 ई.) के आधार पर की जाती है।
		नासिक (महाराष्ट्र)	ऋषभदत्त	लगभग 119-124 ई.	क्षहरात क्षत्रप	---
		कार्ले, पूना (महाराष्ट्र)	ऋषभदत्त	लगभग 119-124 ई.	क्षहरात क्षत्रप	
		खावडा, कच्छ (गुजरात)	रुद्रदामन प्रथम	वर्ष 63 (लगभग 141 ई.)	कार्दमक क्षत्रप	
		मथुरा (उत्तर प्रदेश)	चन्दगुप्त द्वितीय	गुप्त संवत् 61 (380 ई.)	गुप्त	
		उदयगिरि (मध्य प्रदेश)	चन्दगुप्त द्वितीय	गुप्त संवत् 82 (401 ई.)	गुप्त	
		मथुरा (उत्तर प्रदेश)	कुमारगुप्त प्रथम	गुप्त संवत् 107 (426 ई.)	गुप्त	

		जूनागढ़, सौराष्ट्र (गुजरात)	स्कन्दगुप्त	गुप्त संवत् 136, 137, 138 (455, 456, 457 ई.)	गुप्त	इस लेख में ग्रीष्म ऋतु के ज्येष्ठ मास का भी उल्लेख मिलता है।
		दामोदरपुर, दीनाजपुर (बंगाल)	बुधगुप्त	गुप्त संवत् 163 (482 ई.)	गुप्त	---
		एरण, सागर (मध्य प्रदेश)	बुधगुप्त	गुप्त संवत् 165 (484 ई.)	गुप्त	
		शंकरपुर, सीधी (मध्य प्रदेश)	बुधगुप्त	गुप्त संवत् 166 (485 ई.)	गुप्त	
		एरण, सागर (मध्य प्रदेश)	भानुगुप्त	गुप्त संवत् 191 (510 ई.)	गुप्त	
		कारीतलाई, जबलपुर (मध्य प्रदेश)	जयनाथ	वर्ष 174 (493 ई.)	उच्चकल्प	इस वंश के लेखों की तिथि गणना भी गुप्त संवत् (319 ई.) के आधार पर की जाती है।
6.	शरद ऋतु	गढ़ा, सौराष्ट्र (गुजरात)	रुद्रसेन प्रथम	(शक) वर्ष 127 (205 ई.)	कार्दमक क्षत्रप	---
		देवनी मोरी, सांबरकांठा (गुजरात)	रुद्रसेन	(आभीर) संवत् 127	अज्ञात	
		मथुरा (उत्तर प्रदेश)	हुविष्क	(शक) वर्ष 28 (106 ई.)	कुषाण	इस वंश के लेखों की तिथि गणना इसी वंश के राजा कनिष्क के द्वारा चलाये गये शक संवत् (78 ई.) से होती है।
		मथुरा (उत्तर प्रदेश)	कुमारगुप्त प्रथम	गुप्त संवत् 125 (444 ई.)	गुप्त	---
		साँची (मध्य प्रदेश)	कुमारगुप्त प्रथम	गुप्त संवत् 131 (450 ई.)	गुप्त	
		जूनागढ़, सौराष्ट्र (गुजरात)	स्कन्दगुप्त	गुप्त संवत् 136, 137, 138 (455, 456, 457 ई.)	गुप्त	इसमें वर्षा ऋतु की भी चर्चा आयी है।
		मथुरा (उत्तर प्रदेश)	बुधगुप्त	गुप्त संवत् 161 (480 ई.)	गुप्त	---
		दामोदरपुर, दीनाजपुर (बंगाल)	विष्णुगुप्त	गुप्त संवत् 224 (543 ई.)	गुप्त	
		हड़हा, बाराबंकी (उत्तर प्रदेश)	ईशानवर्मा	(विक्रम) वर्ष 611 (553-54 ई.)	मौखरी	इनकी तिथि गणना विक्रम संवत् (57 ई. पू.) के आधार पर होती है।

		खोह, सतना (मध्य प्रदेश)	शर्वनाथ	वर्ष 197 (516 ई.)	उच्चकल्प	---
		अलीन, खेड़ा (गुजरात)	शीलादित्य सप्तम	वर्ष 447 (766 ई.)	वलभी के मैत्रक	इस लेख में ग्रीष्म ऋतु की भी चर्चा आयी है।
		निर्मण्ड, कांगड़ा (पंजाब)	समुद्रसेन	राज्यवर्ष 6 (लगभग सातवीं शती ई.)	अज्ञात	इस लेख से ग्रीष्म ऋतु की भी सूचना मिलती है।
		खजुराहो, छतरपुर (मध्य प्रदेश)	धंगदेव	विक्रम संवत् 1011 (954 ई.)	चन्देल	---
7.	हेमन्त ऋतु	मथुरा (उत्तर प्रदेश)	शोडास	वर्ष 72 (15 ई.)	शक	शकों के लेखों की तिथि गणना विक्रम संवत् (57 ई. पू.) के आधार पर की जाती है।
		सारनाथ, वाराणसी (उत्तर प्रदेश)	कनिष्क प्रथम	वर्ष 3 (81 ई.)	कुषाण	---
		साँची (मध्य प्रदेश)	वाशिष्क	(शक) वर्ष 28 (106 ई.)	कुषाण	
		मथुरा (उत्तर प्रदेश)	वासुदेव	(शक) वर्ष 80 (158 ई.)	कुषाण	
		नासिक (महाराष्ट्र)	वाशिष्ठीपुत्र पुलुमावि	राज्यवर्ष 2 (132 ई.)	सातवाहन	
		कार्ले, पूना (महाराष्ट्र)	वाशिष्ठीपुत्र पुलुमावि	राज्यवर्ष 5 (135 ई.)	सातवाहन	
		कार्ले, पूना (महाराष्ट्र)	वाशिष्ठीपुत्र पुलुमावि	राज्यवर्ष 24 (154 ई.)	सातवाहन	
		नाणेघाट (नानाघाट), पूना (महाराष्ट्र)	(स्कन्द) सातकर्णि	राज्यवर्ष 13	सातवाहन	
		नासिक (महाराष्ट्र)	यज्ञ सातकर्णि	राज्यवर्ष 7 (181 ई.)	सातवाहन	
		कान्हेरी (महाराष्ट्र)	(चुटकुलानंद सातकर्णि)	राज्यवर्ष (9)	सातवाहन	
		जूनागढ़, सौराष्ट्र (गुजरात)	रुद्रदामन	वर्ष 72 (150 ई.)	कार्दमक क्षत्रप	
		मेवासा, कच्छ (गुजरात)	भर्तृदामन	वर्ष 203 (281 ई.)	कार्दमक क्षत्रप	
		उदयगिरि (मध्य प्रदेश)	कुमारगुप्त प्रथम	गुप्त संवत् 106 (425 ई.)	गुप्त	
		मंदसोर (मध्य प्रदेश)	कुमारगुप्त प्रथम एवं बन्धुवर्मन	मालव संवत् 493 तथा 529 (436 एवं 472 ई.)	गुप्त	
		करमदाण्डा, फैजाबाद (उत्तर प्रदेश)	कुमारगुप्त प्रथम	गुप्त संवत् 117 (436 ई.)	गुप्त	

		गंगधार (पश्चिमी मालवा)	विश्ववर्मन	वर्ष 480 (423-24 ई.)	मालवा	मालवा क्षेत्र के लेखों की तिथि गणना विक्रम संवत् (57 ई.पू.) में होती है।
		राजघाट, वाराणसी (उत्तर प्रदेश)	बुधगुप्त	गुप्त संवत् 159 (478 ई.)	गुप्त	---
		खोह, सतना (मध्य प्रदेश)	हस्तिन	वर्ष 156 (475 ई.)	परिव्राजक	परिव्राजक महाराज के लेखों की तिथि गणना भी गुप्त संवत् (319 ई.) के आधार पर होती है।
		भूमरा, सतना (मध्य प्रदेश)	हस्तिन तथा शर्वनाथ	तिथिविहीन	परिव्राजक	---
		पूना (महाराष्ट्र)	प्रभावतीगुप्ता	राज्यवर्ष 13 (लगभग 408 ई.)	वाकाटक	
		ग्वालियर (मध्य प्रदेश)	मिहिरकुल	राज्यवर्ष 15 (संभवतः 515-545 ई.)	हूण	
		बाँसखेड़ा, शाहजहाँपुर (उत्तर प्रदेश)	हर्ष	हर्ष संवत् 22 (628 ई.)	वर्द्धन	वर्द्धन वंश के लेखों की तिथि गणना हर्ष द्वारा चलाये गये हर्ष संवत् (606 ई.) से होती है।
		आरंग, रायपुर (छत्तीसगढ़)	महाजयराज	तिथिविहीन	शरभपुर	---
		राजिम, रायपुर (छत्तीसगढ़)	तीवरदेव	राज्यवर्ष 7 (लगभग 800 ई.)	पाण्डु	इस लेख में ग्रीष्म ऋतु के ज्येष्ठ मास का भी उल्लेख मिलता है।
8.	शिशिर ऋतु	मथुरा (उत्तर प्रदेश)	कनिष्क (द्वितीय)	वर्ष 1(14) (92 या 192 ई.)	कुषाण	---
		नालन्दा (बिहार)	समुद्रगुप्त	शासनवर्ष 5 (340 ई. लगभग)	घुप्त	कुछ विद्वान इस लेख को संदिग्ध (जाली) मानते हैं।
		बैग्राम, बोगरा (बंगाल)	कुमारगुप्त प्रथम	गुप्त संवत् 128 (447 ई.)	घुप्त	---
		मथुरा (उत्तर प्रदेश)	कुमारगुप्त प्रथम	गुप्त संवत् 135 (454 ई.)	गुप्त	
		गढ़वा, प्रयागराज (उत्तर प्रदेश)	स्कन्दगुप्त	गुप्त संवत् 148 (467 ई.)	गुप्त	
		पहाड़पुर, राजशाही (बंगाल)	बुधगुप्त	गुप्त संवत् 159 (478 ई.)	गुप्त	
		गुणैधर, त्रिपुरा (बंगाल)	वैन्यगुप्त	गुप्त संवत् 188 (507 ई.)	गुप्त	
		मझगवाँ, सतना (मध्य प्रदेश)	हस्तिन	वर्ष 191 (510 ई.)	परिव्राजक	
		खोह, सतना (मध्य प्रदेश)	शर्वनाथ	वर्ष 214 (533 ई.)	उच्चकल्प	
		रायपुर (छत्तीसगढ़)	महासुदेवराज	वर्ष 10 (अनिर्दिष्ट संवत्)	शरभपुर	

9.	वसन्त ऋतु	नासिक (महाराष्ट्र)	ऋषभदत्त	लगभग 119-124 ई.	क्षहरात क्षत्रप	---
		अन्धौ, कच्छ (गुजरात)	चष्टन और रुद्रदामन प्रथम	(शक) वर्ष 52 (130 ई.)	कार्दमक क्षत्रप	
		जूनागढ़ (गुजरात)	जयदामन का पौत्र	तिथिविहीन	कार्दमक क्षत्रप	
		बढ़वा, कोटा (राजस्थान)	अज्ञात	कृत संवत् 295 (238 ई.)	गण जनपद	विद्वानों के अनुसार कृत, विक्रम संवत् का ही मूल नाम है। इसलिए विक्रम संवत् (57 ई. पू.) के ही आधार पर इस लेख की तिथि निकाली गयी है।
		मंदसोर (मध्य प्रदेश)	कुमारगुप्त प्रथम एवं बन्धुवर्मन	मालव संवत् 493 एवं 529 (436 एवं 472 ई.)	गुप्त	इस लेख में हेमन्त ऋतु की भी चर्चा आयी है।
		दामोदरपुर, दीनाजपुर (बंगाल)	कुमारगुप्त प्रथम	गुप्त संवत् 124 (443 ई.)	गुप्त	---
		इंदौर, बुलन्दशहर (उत्तर प्रदेश)	स्कन्दगुप्त	गुप्त संवत् 146 (465 ई.)	घुप्त	
		मंदसोर (मध्य प्रदेश)	गोविन्दगुप्त	मालव संवत् 524 (467 ई.)	घुप्त	
		दामोदरपुर, दीनाजपुर (बंगाल)	बुधगुप्त	476-494 ई.	घुप्त	
		सिवनी (मध्य प्रदेश)	प्रवरसेन द्वितीय	राज्यवर्ष 18 (लगभग 438 ई.)	वाकाटक	
		खोह, सतना (मध्य प्रदेश)	हस्तिन	वर्ष 163 (482 ई.)	परिव्राजक	
		खोह, सतना (मध्य प्रदेश)	संक्षोभ	वर्ष 209 (528 ई.)	परिव्राजक	
		खोह, सतना (मध्य प्रदेश)	जयनाथ	वर्ष 177 (496 ई.)	उच्चकल्प	
		खोह, सतना (मध्य प्रदेश)	शर्वनाथ	वर्ष 193 (512 ई.)	उच्चकल्प	
		मंदसोर (मध्य प्रदेश)	यशोधर्मन एवं विष्णुवर्धन	मालव वर्ष 589 (532 ई.)	मालवा	
		एरण, सागर (मध्य प्रदेश)	तोरमाण	राज्यवर्ष 1 (संभवतः 500-515 ई.)	हूण	
		विजयगढ़, भरतपुर (राजस्थान)	विष्णुवर्धन	(विक्रम संवत्) वर्ष 428 (371 ई.)	अज्ञात	
		बोधगया (बिहार)	महानामन	वर्ष 269 (588 ई.)	अज्ञात	इस लेख की तिथि गणना गुप्त संवत् (319 ई.) के आधार पर की गयी है।

संदर्भ :

1. जायसवाल, के. पी., 1984, ''दि टेक्स्ट ऑफ दि सोहगौरा प्लेट'', एपिग्राफिया इण्डिका, भाग-22 (1933-34), आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया, नई दिल्ली, पृ. 1-3
2. ''सवतियन महमगन ससने मनवसिति-क- द (।) सिलिमते वसगमे व एते दवे कोठगलनि तिघवनि (।) माथुल-च[च]-मोदम-भलकन छ-ल कतियति अतियायिकय (।) नो गहिग (त) वय (।।''- सोहगौरा कांस्य-फलक-लेख, सरकार, दिनेश चन्द्र, 1965, सेलेक्ट इन्सक्रिप्शन्स, भाग-1, कलकत्ता विश्वविद्यालय, कलकत्ता, पृ. 82-83, पंक्ति 1-4
3. गुप्त, परमेश्वरीलाल, 2011, प्राचीन भारत के प्रमुख अभिलेख, भाग-1, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, पृ. 3
4. गोयल, श्रीराम, 1982, प्राचीन भारतीय अभिलेख-संग्रह, खण्ड-1 (प्राक् गुप्तयुगीन), राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, पृ. 154
5. सरकार, दिनेश चन्द्र, 1965, सेलेक्ट इन्सक्रिप्शन्स, भाग-1, कलकत्ता विश्वविद्यालय, कलकत्ता, पृ. 79-80, पंक्ति 1-7
6. गुप्त, परमेश्वरीलाल, पूर्वोक्त, पृ. 4
7. गैरोला, वाचस्पति (व्याख्याकार), 2011, कौटिलीयम अर्थशास्त्रम्, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, पृ. 356, श्लोक 1
8. ''दुर्भिक्षे राजा बीजभक्तोपग्रह कृत्वाऽनुग्रह कुर्यात्।''- वही, अधिकरण 4, प्रकरण 78, अध्याय 3, पृ. 357, श्लोक 7
9. ''मायायोगविदो वेदविदो वर्षमभिचरेयुः।''- वही, अधिकरण 4, प्रकरण 78, अध्याय 3, पृ. 357, श्लोक 2
10. सरकार, दिनेश चन्द्र, पूर्वोक्त, पृ. 175-180
11. ''रु[द्र] दाम्नो वर्षे द्विसप्ततित [मे] ७०(+)२ मार्गशीर्ष-बहुल-प्र [ति] [पदि].....ः सृष्टवृष्टिना पर्जन्येन एकार्णवभूतायामिव पृथिव्यां कृतायां गिरेरूर्जयतः सुवर्णसिकता-पलाशिनी-प्रभृतीनां नदीनां अतिमात्रोद्वृत्तैर्वेगैः सेतुम [यमा]णानुरूप-प्रतीकारमपि गिरिशिखर-तरु-तटाट्टालकोपत [ल्प]-द्वार-शरणोच्छ्रय-विध्वंसिना युगनिधन-सदृ-श-परम-घोर-वेगेन वायुना प्रमथि [त]-सलिल-विक्षिप्त-जर्ज्जरीकृताव [दी] [र्ण].... [क्षि] प्राश्म-वृक्ष-गुल्म-लताप्रतानं आ नदी [त] लादित्युद्घाटितमासीत् (।) चत्वारि हस्त-शतानि वीशदुत्तराण्यायतेन एतावंत्येव [वि] स्ती [र्णे] न पंचसप्तति-हस्तानवगाढ़ेन भेदेन निस्सृत-सर्व्व-तोयं मरु-धंन्व-कल्पमतिभृशं दु [र्द].....(।)''- रुद्रदामन प्रथम का जूनागढ़ शिलालेख, (शक) वर्ष 72 (150 ई. पू.), वही, पृ. 176-177, पंक्ति 4-8
12. गुप्त, परमेश्वरीलाल, पूर्वोक्त, पृ. 203
13. फ्लीट, जॉन फेथफुल, 1974, भारतीय अभिलेख-संग्रह, गिरिजाशंकर प्रसाद मिश्र (अनु.), खण्ड-3, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, पृ. 75, पंक्ति 15
14. ''क्रमेणाम्बुदकाल आगत् [ ] ि[न्] दाघकालं प्रविदार्य तोयदैः।

    ववर्ष तोयं वहु संततं चिरं सुदर्शनं येन विभेद चात्वरात्। (।।)

    संवत्सराणामधिके शते तु त्रिंशद्भिरन्यैरपि षड्भिरेव।

    रात्रौ दिने प्रौष्ठपदस्य षष्ठे गुप्तकाले गणनां विधाय।(।।)- स्कन्दगुप्त का जूनागढ़ शिलालेख, वर्ष 136, 137 तथा 138, वही, पृ. 75, पंक्ति 15
15. सरकार, दिनेश चन्द्र, पूर्वोक्त, पृ. 214, पंक्ति 3-4
16. ''अभिसितमतो च पधमे वसे वात-विहत-गोपुर-पाकार-निवेसनं पटिसंखारयति कलिंगनगरि खिबी [रं] (।) सितल-तडाग-पाडियो च बंधापयति सवूयान-प[टि] संथपनं च कारयति पनसि(ति) साहि सत-सहसेहि पकतियो च रंजयति(।।)''- खारवेल का हाथीगुम्फा गुहा-अभिलेख, वही, पृ. 214, पंक्ति 3-4
17. गोयल, श्रीराम, पूर्वोक्त, पृ. 386
18. सरकार, दिनेश चन्द्र, पूर्वोक्त, पृ. 177, पंक्ति 7
19. गुप्त, परमेश्वरीलाल, पूर्वोक्त, पृ. 134, पाद टिप्पणी
20. वाजपेयी, कृष्णदत्त, 1992, ऐतिहासिक भारतीय अभिलेख, पब्लिकेशन स्कीम, जयपुर, भारत, पृ. 265-72
21. ''न दधति पदमीतिव्याधिदुष्कालकाले (।)
    हिमशिशिरवसन्तग्रीष्मवर्षाशरत्सु।।''- राष्ट्रकूट अमोघवर्ष प्रथम का संजन ताम्रलेख, वही, पृ. 267, पंक्ति 53-54
22. उपाध्याय, वासुदेव, 1974, गुप्त अभिलेख, बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पटना, पृ. 94
23. मिराशी, वासुदेव विष्णु, 1982, सातवाहनों और पश्चिमी क्षत्रपों का इतिहास और अभिलेख, व्यंकटेश विश्वनाथ द्रविड़ (अनु.), उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, पृ. 30, पंक्ति 7; पृ. 34, पंक्ति 1; पृ. 36, पंक्ति 1; पृ. 40, पंक्ति 1; पृ. 47-48, पंक्ति 2, 4; पृ. 64, पंक्ति 2-3; पृ. 66, पंक्ति 2-3; पृ. 70, पंक्ति 2
24. वही, पृ. 138, पंक्ति 2-3; पृ. 146, पंक्ति 5; गुप्त परमेश्वरीलाल, पूर्वोक्त, पृ. 209, पंक्ति 2-3
25. मिराशी, वासुदेव विष्णु, पूर्वोक्त, पृ. 115-16, पंक्ति 3
26. वही, पृ. 122, पंक्ति 2
27. समुद्रगुप्त का संदिग्ध गया ताम्रपत्र-लेख (वर्ष 9), फ्लीट, जॉन फेथफुल , पूर्वोक्त, पृ. 322, पंक्ति 14; कुमारगुप्त प्रथमकालीन कलैकुरी-सुल्तानपुर ताम्रपत्र-लेख (गुप्त वर्ष 120), सरकार, दिनेश चन्द्र, पूर्वोक्त, पृ. 355, पंक्ति 34; कुमारगुप्त प्रथमकालीन दामोदरपुर ताम्रपत्र-लेख (गुप्त वर्ष 128), वही, पृ. 293, पंक्ति 1; बुधगुप्त का सारनाथ बुद्ध-मूर्ति लेख (गुप्त वर्ष 157), वही, पृ. 331, पंक्ति 1; बुधगुप्तकालीन नन्दपुर ताम्रपत्र-लेख (वर्ष 169), वही, पृ. 384, पंक्ति 19
28. फ्लीट, जॉन फेथफुल, पूर्वोक्त, पृ. 205, पंक्ति 36
29. वही, पृ. 373, पंक्ति 14
30. मिराशी, वासुदेव विष्णु, पूर्वोक्त, पृ. 118-119, पंक्ति 6
31. कुमारगुप्त (प्रथम) का मानकुँवर बुद्ध-प्रतिमा लेख (वर्ष 129), गुप्त, परमेश्वरीलाल, 2008, प्राचीन भारत के प्रमुख अभिलेख, भाग-2, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, पृ. 131, पंक्ति 2; स्कन्दगुप्त की जूनागढ़-प्रशस्ति (वर्ष 136, 137, 138), वही, पृ. 139, पंक्ति 20; स्कन्दगुप्त का कहाँव स्तम्भ-लेख (वर्ष 141), वही, पृ. 146, पंक्ति 4; स्कन्दगुप्त का सुपिया स्तम्भ-लेख (वर्ष 141), वही, पृ. 148, पंक्ति 16; कुमारगुप्त (द्वितीय) का सारनाथ बुद्ध- मूर्ति लेख (वर्ष 154), वही, पृ. 163, पंक्ति 1; शीलादित्य सप्तम का अलीन

ताम्रपत्रांकित लेख (वर्ष 447), फ्लीट, जॉन फेथफुल, पूर्वोक्त, पृ. 222, पंक्ति 78

32. फ्लीट, जॉन फेथफुल, पूर्वोक्त, पृ. 300, पंक्ति 60

33. वही, पृ. 380, पंक्ति 24

34. ''क्रमेणाम्बुदकाल आगत [ ] ि[न्] दाघकालं प्रविदार्य तोयदैः।

ववर्ष तोयं वहु संततं चिरं सुदर्शनं येन विभेद चात्वरात्।

संवत्सराणामधिके शते तु त्रिंशद्भिरन्यैरपि षड्भिरेव।

रात्रौ दिने प्रौष्ठपदस्य षष्ठे गुप्तप्रकाले गणनां विधाय।''- स्कन्दगुप्त का जूनागढ़ शिलालेख, फ्लीट, जॉन फेथफुल, पूर्वोक्त, पृ. 75, पंक्ति 15

35. नासिक की गुफा में गौतमीपुत्र सातकर्णि का लेख (संवत्सर 18), मिराशी, वासुदेव विष्णु, पूर्वोक्त, पृ. 23, पंक्ति 6; कार्ले की गुफा में [गौतमीपुत्र सातकर्णि का] लेख (संवत्सर [18]), वही, पृ. 27, पंक्ति 6

36. नासिक की गुफा में ऋषभदत्त का लेख (वर्ष 41, 42, 45), मिराशी, वासुदेव विष्णु, पूर्वोक्त, पृ. 88, पंक्ति 3; कार्ले की गुफा में ऋषभदत्त का लेख, वही, पृ. 91, पंक्ति 4-5; नासिक की गुफा में ऋषभदत्त का लेख, वही, पृ. 100, पंक्ति 3

37. गुप्त, परमेश्वरीलाल, 2008, प्राचीन भारत के प्रमुख अभिलेख, भाग-2, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, पृ. 35, पंक्ति 4

38. फ्लीट, जॉन फेथफुल, पूर्वोक्त, पृ. 31, पंक्ति 1

39. गुप्त, परमेश्वरीलाल, पूर्वोक्त, पृ. 179, पंक्ति 1

40. वही, पृ. 181, पंक्ति 2

41. फ्लीट, जॉन फेथफुल, पूर्वोक्त, पृ. 146, पंक्ति 21, 24-25

42. मिराशी, वासुदेव विष्णु, पूर्वोक्त, पृ. 108, पंक्ति 4

43. कुमारगुप्त प्रथम का मथुरा जैन-मूर्ति लेख (वर्ष 107), गुप्त, परमेश्वरीलाल, पूर्वोक्त, पृ. 94, पंक्ति 1; बुधगुप्त का शंकरपुर ताम्रपत्र-लेख, वही, पृ. 184, पंक्ति 1; भानुगुप्त का एरण स्तम्भ-लेख (वर्ष 191), वही, पृ. 203, पंक्ति 1

44. मिराशी, वासुदेव विष्णु, पूर्वोक्त, पृ. 123, पंक्ति 1

45. वही, पृ. 149, पंक्ति 2

46. फ्लीट, जॉन फेथफुल, पूर्वोक्त, पृ. 75, पंक्ति 15

47. गुप्त, परमेश्वरीलाल, पूर्वोक्त, पृ. 177, पंक्ति 3

48. वही, पृ. 211, पंक्ति 1

49. गुप्त, परमेश्वरीलाल, पूर्वोक्त, पृ. 122, पंक्ति 1

50. वही, पृ. 132, पंक्ति 11

51. फ्लीट, जॉन फेथफुल, पूर्वोक्त, पृ. 163, पंक्ति 10-11

52. वही, पृ. 217, पंक्ति 36

53. वही, पृ. 372, पंक्ति 4

54. सरकार, दिनेश चन्द्र, पूर्वोक्त, पृ. 389, पंक्ति 20

55. वाजपेयी, कृष्णदत, पूर्वोक्त, पृ. 240, पंक्ति 41

56. गुप्त, परमेश्वरीलाल, 2011, प्राचीन भारत के प्रमुख अभिलेख, भाग-1, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, पृ. 158, पंक्ति 1

57. वही, पृ. 159, पाद टिप्पणी

58. फ्लीट, जॉन फेथफुल, पूर्वोक्त, पृ. 100-103

59. ''रामासनाथ (र) चने दरभास्करांशु वह्निप्रतापसुभगे जललीनमीने।

चन्द्रांशुहर्म्यतल-चन्दनतालवृन्तहारोपभोध (ग) रहिते हिमदग्धपद्मे।।

रोद्भप्रियंगुतरुकुन्दलताविकोशपुष्पासव प्रमु (दिं) द्तालिकलाभिरामे।

काले तुषारकणकर्क्कशशीतबातवेगप्रवृत्तलवलीनगणैकशाखे।।''- कुमारगुप्त तथा बन्धुवर्मन का मंदसोर प्रस्तर-अभिलेख (मालव वर्ष 493 तथा 529), वही, पृ. 102, पंक्ति 17-18

60. ''शुक्ले त्रयोदशदिने भुवि कार्त्तिकस्य मासस्य सर्व्वजनचित्तसुखावहस्य।।

नीलोत्पलप्र [सृतरे] ण्वरुणाम्बुकीर्णो बन्धूकबाणकुसुमोज [ज्] वलकाननान्ते।।''- विश्ववर्मन का गंगधार प्रस्तर-लेख (वर्ष 480), फ्लीट, जॉन फेथफुल, पूर्वोक्त, पृ. 94, पंक्ति 20-21

61. ''[तस्मिन्रा] जनि शासति पृथ्वीं पृथुविमललोचनेऽर्त्तिहरे अभिवर्द्धमानराज्ये पंचदशाब्दे नृपवृषस्य। (।।)

शशिरश्मिहासविकसितकुमुदोत्पलगन्धशीतलामोदे कार्तिकमासे प्राप्त [ ] गगन [पतौ (?) नि]र्म्मले भाति। (।।)''- मिहिरकुल का ग्वालियर प्रस्तर-लेख, फ्लीट, जॉन फेथफुल, पूर्वोक्त, पृ. 198, पंक्ति 4-5

62. गुप्त, परमेश्वरीलाल, पूर्वोक्त, पृ. 133, पंक्ति 2

63. वही, पृ. 141, पंक्ति 1; पृ. 142, पंक्ति 1

64. वही, पृ. 150, पंक्ति 1

65. सरकार, दिनेश चन्द्र, पूर्वोक्त, पृ. 150, पंक्ति 1

66. मिराशी, वासुदेव विष्णु, पूर्वोक्त, पृ. 32, पंक्ति 2

67. वही, पृ. 33, पंक्ति 1; पृ. 51, पंक्ति 1; पृ. 59, पंक्ति 2; पृ. 63, पंक्ति 1; पृ. 81, पंक्ति 1

68. मिराशी, वासुदेव विष्णु, पूर्वोक्त, पृ. 131, पंक्ति 6

69. कुमारगुप्त प्रथम का उदयगिरि गुहा-लेख (वर्ष 106), फ्लीट, जॉन फेथफुल, पूर्वोक्त, पृ. 325, पंक्ति 2; कुमारगुप्त प्रथम का करमदाण्डा लिंग-लेख (वर्ष 117), सरकार, दिनेश चन्द्र, पूर्वोक्त, पृ. 289-90, पंक्ति 4; महाराज हस्तिन का खोह ताम्रपत्र-लेख (वर्ष 156), फ्लीट, जॉन फेथफुल, पूर्वोक्त, पृ. 117, पंक्ति 2; महाराज हस्तिन तथा महाराज सर्वनाथ का भुमरा प्रस्तर-स्तम्भ अभिलेख, फ्लीट, जॉन फेथफुल, पूर्वोक्त, पृ. 137, पंक्ति 8

70. मिराशी, वासुदेव विष्णु, 1964, वाकाटक राजवंश का इतिहास तथा अभिलेख, अजय मित्र शास्त्री (अनु.), तारा पब्लिकेशन्स, वाराणसी, पृ. 138, पंक्ति 14

71. वाजपेयी, कृष्णदत, पूर्वोक्त, पृ. 223, पंक्ति 17

72. फ्लीट, जॉन फेथफुल, पूर्वोक्त, पृ. 381, पंक्ति 36

73. सरकार, दिनेश चन्द्र, पूर्वोक्त, पृ. 176, पंक्ति 5

74. वही, पृ. 332, पंक्ति 1

75. फ्लीट, जॉन फेथफुल, पूर्वोक्त, पृ. 239, पंक्ति 24

76. गुप्त, परमेश्वरीलाल, पूर्वोक्त, पृ. 150, पंक्ति 1

77. गोयल, श्रीराम, 1984, गुप्तकालीन अभिलेख, कुसुमांजलि प्रकाशन, मेरठ, पृ. 193, पंक्ति 1

78. वही, पृ. 308-9, पंक्ति 15, 31

79. फ्लीट, जॉन फेथफुल, पूर्वोक्त, पृ. 167, पंक्ति 28

80. घोष, ए., 1985, ''नालन्दा प्लेट ऑफ समुद्रगुप्त : दि इयर 5'', एपिग्राफिया इण्डिका, भाग-25 (1939-40), ऑर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया, नई दिल्ली, पृ. 52, पंक्ति 10

81. बसाक, राधागोविन्द, 1984, ''बैग्राम कॉपर-प्लेट इन्सक्रिप्शन ऑफ दि (गुप्त) इयर 128'', एपिग्राफिया इण्डिका, भाग 21 (1931-32), ऑर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया, नई दिल्ली, पृ. 81, पंक्ति 5

82. फ्लीट, जॉन फेथफुल, 1970, कॉर्पस इन्सक्रिप्शनम इण्डिकेरम, भाग-3, इण्डोलॉजिकल बुक हाउस, वाराणसी, पृ. 268, पंक्ति 1

83. सरकार, दिनेश चन्द्र, पूर्वोक्त, पृ. 362, पंक्ति 21

84. फ्लीट, जॉन फेथफुल, पूर्वोक्त, पृ. 199, पंक्ति 27

85. वही, पृ. 107-8, पंक्ति 2, 21

86. ''भृङ्गाङ्ग-भारालस-बाल-पद्मे काले प्रपन्ने रमणीय-साले।

गतासु देशान्तरित प्रियासु प्रियासु काम-ज्वलनाहुतित्वम् (।।)

नात्युष्ण-शीतानिल-कम्पितेषु प्रवृत्त-मत्तान्यमृत-स्वनेषु।

प्रियाधरोष्ठारुण-पल्लवेषु नवां वहत्सूपवनेषुकान्तिम् (।।)''- गोविन्दगुप्त का मंदसोर अभिलेख (मालवा संवत 524), गुप्त, परमेश्वरीलाल, 2008, प्राचीन भारत के प्रमुख अभिलेख, भाग-2, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, पृ. 77-78, पंक्ति 11-13

87. ''वत्सरशतेषु पंचसु विशंत्यधिकेषु नवसु चाब्देषु।

यातेष्वभिरम्यतपस्यमासशुक्लद्वितीयायां।। स्पष्टैर शोकतरूकेतकसिंदुवार-लोलातिमुक्तकलतामदयन्तिकानां। पुष्पोद्गमैरभिनवैरधिगम्य नूनमैक्यं विजृंभितशरे हरपू (घू) तदेहे।। मधुपानमुदितमधुकरकुलोपगीतनगनै (णै) कपृथुशाखे।

काले नवकुसुमोद्गमदंतुरकांतप्रचुररोदध्रे।।''- कुमारगुप्त तथा बन्धुवर्मन का मंदसोर प्रस्तर-अभिलेख (मालवा वर्ष 493 तथा 529), फ्लीट, जॉन फेथफुल, पूर्वोक्त, पृ. 103, पंक्ति 21-22

88. फ्लीट, जॉन फेथफुल, 1974, भारतीय अभिलेख-संग्रह, गिरिजाशंकर प्रसाद मिश्र (अनु.), खण्ड-3, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, पृ. 184-192

89. ''यस्मिन्काले कलमृदुगिरां कोकिलानां प्रलापा भिन्दन्तीव स्मरशरनिभाः प्रोषितानां मनांसि। भृङ्गालिनां ध्वनिरनुवनं भारमन्द्रश्च यस्मिन्नाधूतज्यं धनुरिव नदच्छ्यते पुष्पकेतोः।। प्रियतम कुपितानां रामयन्बद्धरांग किसलयमिव मुग्धं मानसं मानिनीनां [।] उपनयति नभस्वान्मानभङ्गाय यस्मिन्कुसुमसमयमासे तत्र निर्म्मापितोऽयम्।।''- यशोधर्मन तथा विष्णुवर्धन का मंदसोर स्तम्भ-लेख (मालव वर्ष 589), वही, पृ. 188, पंक्ति 21-23

90. फ्लीट, जॉन फेथफुल, पूर्वोक्त, पृ. 192, पाद टिप्पणी

91. मिराशी, वासुदेव विष्णु, 1982, सातवाहनों और पश्चिमी क्षत्रपों का इतिहास और अभिलेख, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, पृ. 105, पंक्ति 2; पृ. 106, पंक्ति 2

92. गुप्त, परमेश्वरीलाल, पूर्वोक्त, पृ. 216, पंक्ति 1

93. फ्लीट, जॉन फेथफुल, 1970, कॉर्पस इन्सक्रिप्शनम इण्डिकेरम, भाग-3, इण्डोलॉजिकल बुक हाउस, वाराणसी, पृ. 159, पंक्ति 2

94. कुमारगुप्त प्रथम के काल का दामोदरपुर ताम्रपत्र-लेख (वर्ष 124), सरकार, दिनेश चन्द्र, पूर्वोक्त, पृ. 291, पंक्ति 1; स्कन्दगुप्त का इंदौर ताम्रपत्र-लेख (वर्ष 146), वही, पृ. 319, पंक्ति 4; बुधगुप्तकालीन दामोदरपुर ताम्रपत्र-लेख,वही, पृ. 336, पंक्ति 1

95. फ्लीट, जॉन फेथफुल, पूर्वोक्त, पृ. 246, पंक्ति 18-19

96. वही, पृ. 253, पंक्ति 2

97. मिराशी, वासुदेव विष्णु, पूर्वोक्त, पृ. 93, पंक्ति 8

98. वही, पृ. 120, पंक्ति3

99. फ्लीट, जॉन फेथफुल, 1974, भारतीय अभिलेख-संग्रह, गिरिजाशंकर प्रसाद मिश्र (अनु.), खण्ड-3, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, पृ. 126, पंक्ति 2

100. वही, पृ. 140-41, पंक्ति 2, 24

101. वही, पृ. 151, पंक्ति 21

102. वही, पृ. 157, पंक्ति 29

103. वही, पृ. 354, पंक्ति 14

●

हिन्दी काव्यशास्त्र को आचार्य श्रीपति का प्रदेय

*डॉ0 अनुकूलचंद राय**

आचार्य श्रीपति रीतिकाल के महत्त्वपूर्ण आचार्य हैं। इनके जीवनवृत्त के संबंध में विशेष सामग्री उपलब्ध नहीं है। इसके संबंध में केवल इतना ही ज्ञात है कि ये कालपी नगर के रहने वाले कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे।[1] उनके द्वारा निर्मित कुल सात ग्रंथों का उल्लेख किया जाता है-1. कवि कल्पद्रुम, 2. रस सागर, 3. अनुप्रास विनोद (अनुप्रास कथन), 4. विक्रम विलास, 5. सरोज कलिका, 6. अलंकार गंगा और 7. काव्यसरोज।[2] इन ग्रंथों में अब तक 'काव्यसरोज' एवं 'अनुप्रास कथन' ही उपलब्ध हुए हैं।[3] शेष ग्रंथों में से अधिकांश का पता 'काव्यसरोज' से लगता है। आचार्य श्रीपति का 'काव्यसरोज' उनका प्रौढ़तम काव्यशास्त्रीय ग्रंथ है। इसकी रचना सं0 1777 वि0 सावन कृष्ण 5 बुधवार को हुई थी।[4] 'काव्यसरोज' की प्राप्त प्रति में कुल चौदह दल एवं लगभग साढ़े छह सौ छंद हैं। चौदहवाँ दल लगभग अपूर्ण-सा है। ग्रंथ में रस एवं नायक-नायिका-भेद-निरूपण को छोड़कर प्रायः सभी काव्यांगों का पूर्ण एवं व्यवस्थित विवेचन है। 'काव्यसरोज' के तेरहवें एवं चौदहवें दल में रस की चर्चा है। संभव है, चौहदवें दल की जो अपूर्णता है उसी में नायक-नायिका-भेद की चर्चा रही होगी। 'काव्यसरोज' के प्रथम दल में मंगलाचरण एवं ग्रंथ परिचय के बाद काव्य-स्वरूप, काव्यहेतु एवं काव्य-भेद पर विचार किया गया है। द्वितीय एवं तृतीय दल में शब्दशक्तियों का वर्णन है। इस प्रकरण में बड़ी अव्यवस्था है। उन्होंने इसी प्रकरण में व्यंजना के भेदों के अंतर्गत ध्वनि-भेदों का भी समाहार कर लिया है। चौथे से सातवें दल तक दोष प्रकरण को स्थान मिला है। आठवें और नौवें में काव्यगुणों का वर्णन है। दसवें दल में शब्दालंकारों, ग्यारहवें में अर्थालंकारों एवं बारहवें में उभयालंकारों का वर्णन है। तेरहवें एवं अपूर्ण चौदहवें दल में रस-प्रकरण को स्थान मिला है।

उपलब्ध ग्रंथों में श्रीपति का 'अनुप्रास कथन' (अनुप्रास विनोद) अत्यंत छोटी रचना है। इसकी हस्तलिखित प्रति में कुल तीन पन्ने और तीस छंद हैं। इस ग्रंथ के बारहवें छंद में रीवाँ नरेश अवधूत सिंह (राजत्व काल सं0 1768) के आसपास बताया जाता है, अतः इसका रचना काल सं0 1770 के आसपास निश्चित होता है। इसमें एक छंद ऐसा भी है जो ज्यों का त्यों उनके परवर्ती ग्रंथ 'काव्यसरोज' में प्राप्त है। जो हो, उनके इन दोनों काव्यशास्त्रीय ग्रंथों में उनके आचार्यत्व के साथ ही उनकी कवित्व शक्ति अत्यधिक सराहनीय है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में-''आचार्यत्व के अतिरिक्त कवित्व भी उनमें उच्चकोटि का था। रचना-विवेक उनमें बहुत ही जाग्रत है और रुचि अत्यंत परिमार्जित थी। झूठे शब्दाडंबर के फेर में वे बहुत कम पड़े। अनुप्रास उनकी रचनाओं में बराबर आये हैं, पर उन्होंने अर्थ या भावव्यंजना में बाधा नहीं डाली है। अधिकतर अनुप्रास रसानुकूल वर्ण-विन्यास के रूप में आकर भाषा में कहीं ओज, कहीं माधुर्य घटित करते पाये जाते हैं।''[5]

आचार्य श्रीपति ने विभिन्न काव्यांगों के विवेचन में 'काव्यसरोज' के अंतर्गत काव्य-निरूपण (काव्य स्वरूप, काव्य हेतु एवं काव्य प्रयोजन) के प्रसंग में कुछ ऐसी विशिष्टताओं का संकेत किया है जिनका उल्लेख आवश्यक है। काव्य स्वरूप के संबंध में रीतिकाल के विभिन्न आचार्यों ने आचार्य मम्मट का अनुकरण किया, पर श्रीपति ने लकीर से हटकर काव्य की परिभाषा गुण और अलंकार के साथ ही रस की भी स्थिति को भी अनिवार्य माना-

शब्द अर्थ बिनुदोष गुण अलंकार रसवान

तासों काव्य बखानई श्रीपति परम सुजान।।[6]

संस्कृत काव्यशास्त्र में मम्मट के पूर्व भोजराज ने अपने 'सरस्वती कंठाभरण' ग्रंथ में निर्दोषता, गुणमयता एवं अलंकृति के साथ ही साथ काव्य में रसमयता को भी अनिवार्य तत्व बताया है।[7] भोजराज के ही समान श्रीपति भी रसमयता को काव्य में अनिवार्य तत्व मानते हैं। काव्य भेद के उपस्थापन में श्रीपति ने मम्मट का सहारा लेते हुए काव्य के तीन भेदों की चर्चा की-उत्तम, मध्यम एवं अधम। 8 अधम काव्य के भीतर उन्होंने शब्द चित्र तथा वाच्य चित्र की चर्चा करते हुए दोनों के उदाहरण प्रस्तुत किये और उन्होंने उद्घोष किया कि ऐसे चित्रकाव्य को अधमकोटि की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता, जिसमें गुणीभूत व्यंग्य वर्तमान रहता है-

दुहुँ चित्र में व्यंग्य कहुँ गुणीभूत दरसाय।

मध्यम तासो जानबी अधम कह्यो नहि जाय।।[9]

उन्होंने इस संदर्भ में गुणीभूत व्यंग्ययुक्त वाच्च चित्र का उदाहरण पेश करते हुए यह उदाहरण प्रस्तुत किया-

कानन लौ अखिया ललकै उलकै चित नेकन छाड़ै।

श्रीपति से पुनि साहस को सजकीनी मैं ऐपन आड़ की आड़ै।

गाड़ मैं और गड़ै सो जड़ै पै गड़ै नहि गाड़ उपाय के भाड़े।

तेरे हँसे तिय मो हिय माह गई गड़ि गोल कपोड़ की गाड़ै।।[10]

श्रीपति ऐसे सवैयों को प्रस्तुत कर संस्कृत परंपरा से हट गये हैं। वस्तुतः श्रीपति की यह बहुत बड़ी मौलिकता है और इससे यह

* असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, महात्मा गाँधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी।

भी सुंदर रूप से स्पष्ट हो जाता है कि श्रीपति केवल आचार्य ही नहीं, उच्चकोटि के एक सहृदय कवि थे।

जहाँ तक काव्य हेतुओं का प्रश्न है, श्रीपति ने परंपरा से हटकर तीन काव्य हेतुओं (प्रतिभा, व्युत्पत्ति और अभ्यास) के स्थान पर कुल छह की गणना की-शक्ति, निपुणता, लोकमत, व्युत्पत्ति, अभ्यास और प्रतिभा-

शक्ति निपुणता लोकमत वितपति अरु अभ्यास।

अरु प्रतिभा ते होत है ताको ललित प्रकास॥

आचार्यों ने प्रतिभा और शक्ति को एक ही माना है। इसी प्रकार व्युत्पत्ति के अन्तर्गत निपुणता और लोकमत समाहित हो जाता है। निश्चित रूप से इसे श्रीपति का मौलिक प्रदेय नहीं कहा जा सकता। हाँ, एक बात स्पष्ट है कि उनका काव्य हेतु पूर्ण मौलिक न होते हुए भी स्पष्ट, सुबोध एवं निजी छाप से युक्त है। श्रीपति ने काव्य प्रयोजन के संबंध में कोई स्पष्ट विवेचन नहीं किया है।

शब्दशक्ति विवेचन के क्षेत्र में श्रीपति का कोई ऐसा महत्वपूर्ण योगदान नहीं है जिसे रेखांकित किया जा सके। उन्होंने ध्वनि प्रकरण को कुमारमणि शास्त्री[12] के ही समान शब्दशक्ति वर्णन में ही समाहित कर लिया है। यद्यपि यह मान्य है कि ध्वनि व्यंजना के क्षेत्र की ही वस्तु है, पर उसे ध्वनि न कहकर व्यंग्य कहना, उसके भेदोपभेदों को व्यंग्य भेद कहना और उसकी चर्चा शब्दशक्ति प्रकरण में ही कर देना, किसी संस्कृत आचार्य से संभव न हो सका था। इस प्रकार हिन्दी के इन दोनों आचार्यों का यह दुस्साहस ही नहीं, वरन् ध्वनि के साथ अन्याय भी कहा जायेगा।[13]

श्रीपति का रस प्रकरण अपूर्ण है। 'काव्यसरोज' के कुछ पन्नों में ही उपलब्ध है। उनके 'कविकुलकल्पद्रुम' और 'रससागर' जैसे उच्चकोटि के काव्यशास्त्रीय ग्रंथों का तो आजतक पता ही नहीं चल पाया और यदि 'काव्यसरोज' जैसा ग्रंथ प्राप्त भी हुआ तो वह इस प्रकरण के अधूरेपन के साथ, अतः उसपर कोई भी चर्चा व्यर्थ है। हाँ, जितना अंश मिलता है उस पर भानुमिश्र की 'रसतरंगिणी' का पूर्ण प्रभाव है।[14] श्रीपति के यहाँ नायक-नायिका-भेद चर्चा है ही नहीं।

श्रीपति के 'काव्यसरोज' का दोष प्रकरण अपनी तमाम कमजोरियों के बावजूद अति महत्वपूर्ण है। श्रीपति ने दोष की स्थूल परिभाषा देते हुए उसे कविता का विनाशक तत्व कहा-

जा पदार्थ के दोष तें, आछो कवित नसाइ।

दूषन तासों कहत हैं, श्रीपति पंडित राई॥[15]

उनके अनुसार दोष द्विविध हैं-1- शब्द दोष और अर्थ दोष। शब्द दोष चौदह हैं और अर्थ दोष बारह हैं।16 श्रीपति ने संस्कृत एवं हिन्दी काव्यशास्त्रीय परंपरा से हटकर दोषों के दो ही विभाग किये। उनके इस प्रकरण पर वाग्भट प्रथम एवं केशव मिश्र का प्रभाव अधिक है, मम्मट का कम। उन्होंने मम्मट का अनुकरण केवल उन्हीं स्थानों पर किया, जहाँ उक्त आचार्यों से काम नहीं चल सका है।[17] श्रीपति के अनुसार वे दोष जो मिटते नहीं, यानी अपरिहार्य हैं, महादोष हैं। उनका त्याग अत्यावश्यक है।[18] आचार्य श्रीपति का दोष प्रकरण परंपरा-मुक्त है। श्रीपति का दोष प्रकरण असंगतियों और भ्रांतियों से भरा पड़ा है। असंगतियों के बीच भी कहीं-कहीं काकतालीय न्याय से कुछ प्रयास सराहनीय भी हैं, जैसे- संदिग्ध का लक्षण। संदिग्ध को मम्मटादि ने शब्द दोष के ही अंतर्गत रखा, पर मूलतः उसका आधार अर्थ है, शब्द नहीं। अर्थ पर ध्यान जाने के बाद ही संदिग्धता सामने आती है। इस प्रकार श्रीपति ने इसे अर्थदोष के अंतर्गत रखकर चली आती हुई काव्यशास्त्रीय परंपरा को चुनौती दी है।

श्रीपति ने इस प्रकरण में कहीं-कहीं अपने लक्षणों को अत्यंत सुबोध बनाने का प्रयास किया है। उदाहरणार्थ वर्ण प्रतिकूल का स्वरूप द्रष्टव्य है। मम्मट ने इसका लक्षण 'रसानुगुणत्वं वर्णानां बक्ष्यते तद्विपरीतं प्रतिकूलवर्णम्' देकर इसे लगभग तीन उदाहरणों से पुष्ट किया। श्रीपति ने उन्हीं उदाहरणों का आधार ग्रहण कर वर्ण प्रतिकूल को दो भागों में विभाजित कर दिया-सहज और युक्त।[19] सहज में उन्होंने ऐसी रचना को रखा जिसमें ट वर्गीय परुष वर्ण शृंगार रस के प्रतिकूल स्थिति उत्पन्न कर देते हैं। उनके उक्त वर्ण प्रतिकूल का अभिप्राय शृंगार रस में 'ज्ज' आदि संयुक्ताक्षरों के सद्भाव से है। वर्णप्रतिकूल के ये ही लक्षण रसिक बिहारी को भी मान्य हैं।

श्रीपति के दोष प्रकरण की सबसे बड़ी विशेषता है कि उन्होंने इस प्रकरण में स्वनिर्मित उदाहरणों के साथ ही अपनी पूर्ववर्ती काव्य संपदा का अधिकाधिक उपयोग किया है। उन्होंने केशव, सेनापति, सुंदर कवि एवं मतिराम जैसे प्रसिद्ध कवियों के साथ ही ब्रह्म, जादवराय एवं कासीराम जैसे अज्ञात कवियों की कविताओं में दोष-दर्शन किया। उनकी यह प्रवृत्ति व्यावहारिक आलोचना को गति देती है।

श्रीपति-सम्मत छब्बीस शब्द दोषों और अर्थ दोषों में शिथिल बंध, उपहत, ग्राम (लघुग्राम, महाग्राम और अतिग्राम), भाषाच्युत, संकेतार्थ और दुष्टवाक्य काव्य-दोष के इतिहास में नये नाम हैं जिन नवीन परिकल्पित दोषों का आचार्य श्रीपति ने उपस्थापन किया है उनमें सभी का विस्तारपूर्वक वर्णन इस लघुकाय निबंध में संभव नहीं है। इसलिए यहाँ कुछ ही नवीन दोषों का जिक्रकर यह बताने का प्रयास किया जायेगा कि काव्य-दोष के क्षेत्र में श्रीपति अपनी मैलिकता के लिए रीतिकाल में अग्रगण्य हैं। यहाँ सर्वप्रथम उदाहरण के लिए श्रीपति के उपहत दोष को लिया जा सकता है। इस दोष का श्रीपति ने लक्षण एवं उदाहरण इस प्रकार दिया-

लक्षण- **संधि किये तें कबित में, आखर आवे नाह।**

उपहति सो पहिचानिये, दूषन कविता माँह॥

उदाहरण-**काम कलाधिक राधिका आधिक राति लौ काम की बेलि बनाई।**

कामु से कान्हर सोइ गये कर दे कुच पै रतिकाम की नाई।

ब्रह्म जराइ की मूँदरी मैं नग की अति जोति अनूप सुहाई।

देखन को पिय के तिय के हिय की अँखियाँ जनु बाहेर आई।।[20]

यामें कलाधिक पाठ संधि

संस्कृत आचार्यों ने विसंधि नामक वाक्य दोष की कल्पना करके संधि-असंगति (संधि विरह और विरुद्ध संधि) में ही यह दोष माना। श्रीपति ने हिन्दी भाषा की प्रकृति के अनुकूल यह दोष शब्दों की संधि में ही मान लिया। आगे चलकर जनराज ने भी इस दोष को इन शब्दों में मान्यता दी-

द्वै अख्खर की संधि में, अख्खर छिप्यो जु होय।

अर्थ किये प्रगटत नहीं, दूषन उपहत सोय।।[21]

मम्मट-सम्मत विसंधि दोष को हिन्दी भाषा के प्रतिकूल समझकर ही कुमारमणि जैसे मम्मट के अंधानुयायी आचार्यों ने भी इसे छोड़ दिया, पर श्रीपति ने इसके उलटे रूप में दोष की स्थिति स्वीकार कर हिन्दी की प्रकृति को समझने एवं समझाने का स्तुत्य प्रयास किया है।

श्रीपति का दूसरा दोष 'भाषाच्युत' का लक्षण उदाहरण सहित वर्णन अभीष्ट होगा। 'भाषाच्युत' का लक्षण देते हुए श्रीपति ने कहा है-

लक्षण-**जहाँ एक भाषा नहीं, भाषा च्यूत सो होइ।**

लघु मध्यम गुरु जानिये, त्रिविध कहें कवि लोइ।।[22]

इसमें से प्रथम दो के लक्षण इस प्रकार हैं-लघु भाषाच्युत-

भाषा अंतरवेद की, ब्रजभाषा में देत।

लघु भाषाच्युत सो कहै, चमत्कार हरि लेत।।[23]

मध्यम भाषाच्युत-

ब्रज भाषा के कथन में, सुरभाषा मिलि जाहि।

मध्यम भाषा च्युत वहै है, दूषन कविता माँहि।।[24]

उदाहरण-

जीवन सिंह की सौरभ आनि जबै महकी तन के बल माही।

भूप भजी सिसुता हरनी अस लैन गई अपनी परछाही।

हेम तुला बिच के कट सी तिय चुंब लिया बिच लोह सी आही।

खचि कमान रही मकरध्वज देखि दसा सर छाड़त नाही।।[25]

यामे अस माहि अंतरवेद भाषा।

(2) कनक सलाका ऐसी बलि विदिलाका ऐसी,

भान की कलाका ऐसी नीकी नई नोहरी।[26]

यामें भान की कलाका।

उन्होंने तीसरे-गुरुभाषाच्युत-का लक्षण तो नहीं, पर उदाहरण यह दिया-

ब्रज भाषा लागे भयो, तम जलजात प्रकास।

नखत कुमुद मूँदन लगे, उपजो कोक बिलास।।[27]

यामें तम जलजात प्रकास यह असंमत।

ऊपर विवेचित प्रथम दो-लघुभाषाच्युत तथा मध्यम भाषाच्युत-अपने लक्षणों से पूर्णतः स्पष्ट हैं, पर लक्षण विहीन होने के कारण गुरुभाषाच्युत का स्वरूप स्पष्ट नहीं है। श्रीपति के इस दोष को मम्मट के 'च्युतसंस्कृति व्याकरणलक्षणहीनम्'[28] के समीप नहीं लाया जा सकता। हाँ, यह कह सकते हैं कि श्रीपति ने उस विचारधारा को पल्लवित किया जिसका सूत्रपात कुलपति ने संस्कारहत (च्युतसंस्कृति) के लक्षण-बोलत माँझ विरुद्ध जो संस्कारहत होइ[29] में किया है।

कुल मिलाकर दोष के क्षेत्र में श्रीपति रीतिकाल के सभी आचार्यों से आगे हैं। दोष के क्षेत्र में उनकी नवीन परिकल्पनाएं हिन्दी काव्यशास्त्र के लिए एक नवीन प्रदेय के रूप में देखी जा सकती हैं। उन्होंने ब्रजभाषा की प्रकृति के अनुकूल इन दोषों की परिकल्पनाएं कर, संस्कृत से हटकर हिन्दी काव्यशास्त्र के चिंतन की नींव डाली।

श्रीपति ने 'काव्यसरोज' के गुण निरूपण में प्राचीन परंपरा का अनुगमन किया है उनके अनुसार गुण रस का धर्म है। वह सदा रस में विद्यमान रहता है-

रस अंगी जे धर्म हैं, रहत सदा रसलीन।

ताही सों गुन कहत है, शीपति परम प्रवीन।।[30] **(काव्यसरोज, 8/1)**

श्रीपति के अनुसार गुण दो प्रकार के हैं-(1) शब्दगुण, और (2) अर्थगुण। शब्दगुण दस हैं-औदार्य, प्रसाद, उदास, समता, कांति, समाधि, उक्ति, माधुर्य, सुकुमारता और संक्षिप्त। अर्थ गुण आठ हैं-भव्यकल्प, पर्यायोक्ति, सुधर्मिता, सुशब्दता, अर्थव्यक्ति, अश्लेष, प्रसन्नता और ओज।[31]

श्रीपति ने अपने गुण प्रकरण में संस्कृत आचार्य केशव मिश्र का मुख्य रूप से अनुकरण किया। इसी के साथ उन्होंने अपने पूर्ववर्ती हिन्दी आचार्य पदुमनदास के 'काव्य मंजरी' का भी प्रभाव ग्रहण किया। श्रीपति ने केशव मिश्र-सम्मत गुणों के अतिरिक्त इन गुणों की चर्चा की है-औदार्य, समता, माधुर्य, सुकुमारता, भव्यकल्प, अर्थव्यक्ति, अश्लेष प्रसन्नता और ओज। इनमें से

भव्यकल्प, अश्लेष और प्रसन्नता तो काव्ययुग-क्षेत्र में नवीन नाम हैं, पर अन्य अपरिचित।

उन्होंने तीन नवीन अर्थगुणों की जो चर्चा की है, उनमें उन्होंने भव्यकल्प के दो भेद किये हैं-भावना बोध और शाब्दबोध। उनके अनुसार भावना बोध में शाब्द बोध (अभिधेयार्थ) का समापन हो जाता है एवं शाब्दबोध में उपमान से उपमेय की स्थिति का ज्ञान होता है।[32] उनके भावना बोध का उदाहरण यह है-

काजर छूटि गयो चख को अरु लाली गयी अधरा भी मिटाइकै,
रोम खरे पुलके तन श्रीपति केस रहे मुख पै बगराइ कै॥
बीच ही ते सुकुमारि थकी अति कीन्ह भलो श्रम को उर जाइकै।
नाहि गई वह पापी के पास री आई सखी घर बापी नहाइ कै॥[33]

श्रीपति ने अविवक्षित वाच्यध्वनि के प्रथम भेद अर्थान्तरसंक्रमित वाच्यध्वनि का उदाहरण यह दिया-

चंदन पंक छुट्यो कुल को अरु मेटि गई अधरा की ललाई।
रोम खरे बिथुरी अलकै अँखिया ते गई कजरा की निकाई,
झूठी कहै सब बैन बनाय अन्हाय सरोवर मो ढिग आई।
ह्वा नहि नेक गई सजनी जिहि पापी के पास हौं तोहि पठाई॥[34]

अब यदि इन दोनों उदाहरणों का सम्यक् अवलोकन किया जाय तो इनमें कुछ भी भेद दिखाई नहीं देता। यदि कहीं भेद है तो मात्र शब्दों एवं पंक्तियों के हेर-फेर का। अब प्रश्न यह उठता है कि यदि श्रीपति को गुण-प्रकरण में ही ध्वनि को भी समेटना अभीष्ट है तो उन्होंने ध्वनि के व्यंग्य-प्रकरण को अलग से स्थान क्यों दिया? यदि यही करना था तो दण्डी, वामनादि के समान वे अलंकारवादी या रीतिवादी ही क्यों न रहे? विरोधी सद्धान्तों का यह असफल समन्वय श्रीपति के महत्व को कम कर देता है। यह दूसरी बात है कि सुशब्दत्व, पर्यायोक्ति आदि गुणों के समान इसके भी दोष का भार उनके पूर्ववर्ती आचार्य पदुमनदास पर अधिक है।

आचार्य श्रीपति के भव्यकल्प का दूसरा भेद शाब्द दोष-रूपकातिशयोक्ति अलंकार से भिन्न नहीं है, जैसा कि उनके लक्षण से ही नहीं उदाहरण से भी स्पष्ट है-

ऊपर बैठि निसंक मयंक नचै छवि सो विष खंजन वामें।
बीच अडोल चहूँ दिसि मोहत है दस मानिक के दल तामे।
श्रीपति स्याम मनोरथ मोर नचै चहु धारति केलि कला मे।
कौन अपूरब चंपक बेलि जगे नित हेम सरोरूह जामे॥[35]

यहाँ 'मयंक', 'खंजन' आदि में रूपाकातिशयोक्ति की योजना द्रष्टव्य है। संभवतः इस प्रकार के गुण की स्थापना के ही कारण श्रीपति ने अपने को आक्षेप से बचाये रखने के लिए अलंकारों में अतिशयोक्ति अलंकार का वर्णन नहीं किया, अस्तु।

श्रीपति का दूसरा नवीन गुण अश्लेष है। इसमें उन्होंने पदों की प्रसन्नता एवं परमयुक्तियुक्तता के साथ ही चमत्कार-प्रदर्शन की योजना को भी आवश्यक माना।[36] श्रीपति के इस गुण में भी कोई खास विशेषता नहीं, क्योंकि पदों की प्रसन्नता प्रसाद गुण में तथा परमयुक्तियुक्तता एवं चमत्कार का दर्शन संदेहादि अलंकारों में किया जा सकता है।

श्रीपति-सम्मत प्रसन्नता गुण का प्रमुख लक्षण है-संयुक्त वर्णों का अभाव।[37] स्पष्टतः यह ओज गुण की विपरीत दशा है जिसे वामनादि ने प्रसाद शब्द गुण कहा है।[38] इस प्रकार एक ओर तो श्रीपति ने इसे प्रसाद गुण से अलग मानकर कोई बुद्धिमानी प्रदर्शित नहीं की, दूसरी ओर उसे अर्थगुण के भीतर रखकर अपने अज्ञान का परिचय दिया।

कुल मिलाकर श्रीपति के गुण वर्णन में कोई रेखांकन योग्य विशेषता नहीं है। उनकी नवीन परिकल्पनाएं प्रायः असंगत एवं भ्रांतियुक्त हैं।

श्रीपति ने अलंकार को काव्य का चमत्कारवर्धक तत्व स्वीकार करते हुए उसे तीन भागों में विभाजित किया-शब्द, अर्थ और उभय। उन्होंने इन तीनों भेदों का बड़े विस्तार से वर्णन किया है। उनके इस प्रकरण पर संस्कृत एवं हिन्दी आचार्यों का सम्मिलित प्रभाव है। उन्होंने एक ओर तो दंडी, रूद्रट, केशवमिश्र, मम्मट एवं विश्नाथ का अनुकरण किया और दूसरी ओर केशवदास एवं पदुमनदास का। श्रीपति ने उक्त आचार्यों के ग्रंथों से प्रभाव ग्रहण कर एवं गुरु की कृपा से परम विवेक प्राप्त कर अलंकार विवेचन को एक नयी दिशा में मोड़ने का प्रयास किया-

अलंकार करतान के, दरसे ग्रंथ अनेक।
श्री गुरुदेव प्रताप ते, उपजो परम विवेक॥[39]

श्रीपति ने श्लेष अलंकार को अर्थालंकार के तहत रखते हुए उसके तीन भेद किये हैं-अर्थश्लेष, शब्दश्लेष और उपमाश्लेष।[40] संस्कृत या हिन्दी के किसी भी आचार्य ने इन तीनों भेदों को इस रूप में मान्यता नहीं दी। यह बात दूसरी है कि उनके इन भेदों का स्रोत रुद्रट, भामह एवं दंडी के श्लेष प्रकरण में ढूंढा जा सकता है। श्रीपति ने अनुप्रास के भेदों में वृत्यनुप्रास को स्थान नहीं दिया है, अतः उनके ग्रंथ शब्द वृत्तियों की चर्चा का कोई प्रश्न ही उपस्थित नहीं होता। हिन्दी के अन्य आचार्यों ने वृत्यनुप्रास के ही अन्तर्गत उपनगारिका, परुषा और कोमला वृत्तियों का वर्णन किया है जिनका आधार 'काव्य प्रकाश' है।

श्रीपति का अलंकार प्रकरण आचार्य केशवदास के समान दंडी आदि प्राचीन आलंकारिकों के अनुकरण पर ही प्रस्तुत किया गया है। यहाँ पर यह भी उल्लेख है कि केशवदास के ही समान श्रीपति ने श्री अलंकारों में अपनी मौलिकता का परिचय दिया है। वैसे श्रीपति के अलंकार प्रकरण में गुणों की अपेक्षा अवगुणों की

संख्या अधिक है। श्रीपति के लक्षण कहीं-कहीं अत्यंत दुर्बोध बन गये हैं। कतिपय अलंकारों के विषय में तो कहा जा सकता है कि उन्हें उनके स्वरूप का निर्भ्रांत ज्ञान भी नहीं था। वे अनेक आचार्यों के अनुकरण के मोह में पड़कर किन्हीं-किन्हीं अलंकारों को अज्ञानता के कारण दो बार उपस्थित कर देते हैं। उनका अलंकरण प्रकरण रीतिकाल के अन्य आचार्यों की अपेक्षा अधिक मौलिक होते हुए भी उपादेय नहीं माना जा सकता, क्योंकि उनकी अधिकांश नवीन धारणाएं असंगत, भ्रामक एवं दुर्बोध हैं।

निष्कर्षतः रीतिकाल के प्रमुख विविध काव्यांग निरूपक आचार्यों-केशव, चिंतामणि, पदुमनदास, देव, कुलपति, कुमारमणि, सोमनाथ, भिखारीदास और प्रतापसाहि में आचार्य श्रीपति का स्थान महत्वपूर्ण है। दंडी आदि प्राचीन आचार्यों के अनुकर्ता केशव और पदुमदास की श्रेणी मम्मटादि परवर्ती आचार्यों के अनुकर्ता चिंतामणि आदि से भिन्न ठहरती है। उस श्रेणी में केवल श्रीपति की परिगणना की जा सकती है, क्योंकि उन्होंने मम्मटादि का अनुकरण करते हुए प्राचीन आलंकारिकों का भी अनुकरण किया है। श्रीपति के काव्यांग-निरूपण में तमाम कमजोरियों के बावजूद कुछ ऐसे महत्वपूर्ण बिन्दु हैं जो हिन्दी काव्यशास्त्र को गतिशील बनाने में सहायक हैं। गुण और अलंकार क्षेत्र की नवीन उद्भावनाएँ भले ही पर्याप्त महत्व की अधिकारी नहीं है, पर दोष निरूपण के क्षेत्र में उनका योगदान श्लाघ्य है। इस क्षेत्र में उनकी नवीन परिकल्पनाएँ हिन्दी भाषा की प्रकृति के अनुकूल हिन्दी काव्यशास्त्र की नींव की मजबूत आधार शिला स्थापित कर रही थीं। दोष निरूपण के ही क्षेत्र में यही काम ग्वाल कवि भी कर रहे थे। यही नहीं, रीतिकाल के दूसरे आचार्यों से अलग हटकर इन दोनों आचार्य कवियों ने लक्ष्य रूप में अपनी ही कविताओं को प्रश्रय नहीं दिया, वरन् उस काल के दूसरे महत्वपूर्ण अज्ञात कवियों के काव्य-स्थलों का जमकर प्रयोग किया और हिन्दी में प्रथमबार व्यावहारिक आलोचना को जन्म दिया। आचार्य श्रीपति और ग्वाल दोनों की यह भी विशेषता रही कि वे स्पष्टीकरण के लिए स्थान-स्थान पर गद्य का भी सहारा ले रहे थे। आचार्य श्रीपति मौलिकता की दृष्टि से प्रथम कोटि के आचार्यों में पदुमनदास जैसे आचार्यों से आगे निकल जाते हैं तथा केशव एवं भिखारीदास के समकक्ष हो जाते हैं। यही कारण रहा कि उनकी प्रतिभा से प्रभावित होकर दोष-विवेचन के क्षेत्र में रसिक बिहारी और जनराज ने उनका भरपूर उपयोग किया। कुल मिलाकर यही कहा जा सकता है कि यदि श्रीपति की पद्धति का निर्वाह दूसरे रीतिकाल के आचार्य किये होते तो निश्चित रूप से रीतिकाल में हिन्दी काव्यशास्त्र की एक सुदृढ़ नींव तैयार हो जाती।

संदर्भ सूची

1- सुकवि कालपीनगर को, द्विजमनि शीपति राइ। -काव्यरोज, 1/5।

2- द्रष्टव्य – हिन्दी साहित्य का इतिहास (आचार्य रामचन्द्र शुक्ल), पृ0 271-72 (आठवाँ संस्करण)।

3- 'काव्यसरोज' एवं 'अनुप्रास कथन' की उपलब्धता क्रमशः स्वर्गीय ब्रज किशोर मिश्र (लखनऊ) के निजी पुस्तकालय तथा अनूप संस्कृत ग्रंथालय, बीकानेर से हस्तलिखित प्रति के रूप में प्राप्त हुई जिसकी प्रतिलिपि सम्प्रति प्रो0 रामकुँवर राय (पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, मा0गां0 काशी विद्यापीठ, वाराणसी) के निजी पुस्तकालय में उपलब्ध।

4- संवत मुनि मुनि ससि, सावन सुम बुधवार।

असित पंचमी को लियो, ललित ग्रंथ अवतार।। -काव्यसरोज, 1/4।

5- हिन्दी साहित्य का इतिहास, रामचन्द्र शुक्ल, पृ0 272।

6- काव्य सरोज 1/6।

7- सरस्वती कंठाभरण 1/2।

8- काव्यसरोज 1/7 ।

9- वही, 1/21।

10- वही, 1/20 ।

11- वही, 1/27 ।

12- रसिकरसाल 2/2-4।

13- चिंतामणि, कुलपति एवं श्रीपति का तुलनात्मक अनुशीलन, डॉ0 रामकुँवर राय, पृ0 81।

14- तुलनार्थ द्रष्टव्य-काव्य सरोज 13/4 से 28; रस तरंगिणी, पृ0 7-9, 14, 15, 26।

15- काव्यसरोज 4/1।

16- वही, 4/3-5, 5/2-4।

17- तुलनार्थ द्रष्टव्य-काव्यसरोज, 4/6, 8, 37, 42; 5/6,8, 9, 24, 27, 30; वाग्भटालंकार, 2/10, 18-20; अलंकार शेखर द्वितीय रत्ने प्रथम मरीचि और द्वितीय मरीचि।

18- जे दूषन नहिं मिटत हैं, महादोष ते जान।

ताको परिहार को उचित, कहै महापतिवान् ।।-काव्यसरोज, 7/58।

19- काव्यसरोज 4/64, 65।

20- यामें कलाधिक पाठ संधि।

21- डॉ0 जनार्दनस्वरूप अग्रवाल, हिन्दी में काव्यदोष : एक आलोचनात्मक अध्ययन, पृ0 167 के आधार पर।

22- काव्यसरोज 4/58।

23- वही, 4/59।

24- वही, 4/61।

25- वही, 4/60।

26- वही, 4/62।

27- काव्यसरोज, 4/63।

28- काव्यप्रकाश, पृ0 182।

29- रस रहस्य – 5/19।

30- काव्यसरोज – 8/1

31- वही, 8/3-5; 9/2,31।

32- काव्यसरोज, 9/6-8।

33- वही, 9/7।

34- वही, 3/76।

35- काव्यसरोज 9/9।

36- वही, 9/19।

37- वही, 9/20।

38- काव्यालंकारसूत्रवृत्ति, 3/1/6।

39- काव्यसरोज, 10/33।

40- काव्यसरोज, 11/79।

●

शास्त्रीय संगीत में भक्ति परक बंदिशों का महत्त्व
(पंडित रामाश्रय झा रामरंगङ्ग जी की रचनाओं के सन्दर्भ में)

डॉ0 रामशंकर[*]

भारतीय संस्कृति में अध्यात्म और संगीत का जितना पारस्परिक सम्बन्ध है, उतना अन्य किसी का नहीं, इस कारण हम अध्यात्म और संगीत को भारतीय संस्कृति की जड़े कह सकते हैं। महत्वपूर्ण बात यह भी है कि अध्यात्म और संगीत दोनों के ही प्रयोजन उच्च भावभूमि के स्तर पर एक ही हो जाते हैं, जब कभी दोनों संयुक्त हो जाते हैं तब उनका प्रभाव भी संयुक्त हो जाता है, दोनों का संयुक्त प्रभाव अद्भुत गति ले आता है। सार्थक जीवन वस्तुतः उसी मनुष्य का है जिसने अपने जीवन में अध्यात्म, भक्ति, साहित्य और संगीत को पूरी गंभीरता से जाना, समझा और अपने जीवन में उतारा है। अध्यात्म हमें आत्मा, परमात्मा सम्बंधित सही विचारों से अवगत कराता है। अध्यात्म ही हमें यह बताता है कि परमात्मा की प्राप्ति कैसे संभव है फिर इसके आगे का कार्य दर्शन करता है। दर्शन हमें भक्ति की राह दिखाता है। भक्ति अर्थात् सेवा, आराधना, ईश्वर के प्रति भव्य अनुराग, श्रद्धा आदि है। वस्तुतः ईश्वर के प्रति सम्पूर्ण अनुराग ही भक्ति है। भक्ति के ढंग अलग-अलग हो सकते हैं- जैसे कोई अपने आराध्य का चित्र रखकर भक्ति करता है, तो कोई तपस्या के माध्यम से भक्ति करता है, तो कोई गाकर, भक्ति की अभिव्यक्ति का माध्यम अक्षरों के सार्थक अर्थ को प्रस्तुत शब्द जो लय प्रवाह में प्रस्तुत होते हैं अर्थात् काव्य रूप में ऐसी काव्य रचना में जिसे बिना किसी बाधा के गाया जा सके। ऐसी काव्य रचना को भजन, स्तुति, कीर्तन कहा जाता है। संगीत प्राचीन काल से ही ईश्वर की अराधना एवं भक्ति में प्रमुखता से सहायक रहा है पुराणों में भी भगवान विष्णु ने नारद जी से कहा है कि

''नाहम् वसामि वैकुंठे योगी नाम हृदय न च''

अर्थात ईश्वर का निवास वही है जहां उनके भक्त उनके गुणों का गान करते हैं भारतीय साहित्य में गीत की परंपरा बहुत प्राचीन है सामवेद गान विद्या का ही वेद है।

विषय प्रवेश-

संगीत का ललित कलाओं में प्रमुख स्थान रहा है। भारतीय विद्वानों का मत है कि धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का प्रदायक संगीत है। संगीत कला का भौतिक उत्कर्ष और यश के अलावा आध्यात्मिक सुख, भक्ति व संतोष का भी साधन माना जाता रहा है। संगीत कला को ही हमारे ऋषि-मुनियों नें मोक्ष प्राप्ति का सीधा एवं सरल मार्ग बताया है।

सम्यक प्रकारेण यद्गीयते तत्संगीतम्।

सम्यक प्रकार से अर्थात स्वर, ताल, शुद्ध उच्चारण, हाव-भाव और शुद्ध मुद्रा आदि के साथ जो गाया जाय वह संगीत है। आदि काल से ही भारतीय संगीत मनीषियों ने भक्ति सूचक पदों को अपने संगीत की स्वर लिपि में निबद्ध कर जनमानस के सामने प्रस्तुत किया है विभिन्न रागों में भगवान के भजन निर्गुण एवं उनकी लीलाओं का वर्णन से संबंधित पदों को सहज धुन में निबंध कर जनमानस को संस्कृत और संस्कृति और साहित्य से जोड़े रखा है। ज्ञान और कर्म के समान भक्ति का भी उद्गम स्थल वेद माना गया है। भक्ति संगीत का प्राचीनतम ग्रंथ सामवेद है वेद मंत्रों में ईश्वर के लिए की गई भावुक स्थितियां मिलती हैं यह स्थितियां प्रेम और भक्ति के बिना की गई हो यह असंभव है वेद में प्राप्त इस बीज रूप भक्ति का पल्लवन विभिन्न कालों परंपराओं और संगीत की विभिन्न शैलियों में होता रहा है।

भारतीय संगीत हमारी धरोहर है, आज हमारे देश में प्रचलित शास्त्रीय संगीत की प्रमुख दो धाराएँ विद्यमान है प्रथम हिन्दुस्तानी और द्वितीय कर्नाटकी संगीत। हिन्दुस्तानी संगीत का सीधा सम्बन्ध ध्रुपद, धमार और ख्याल शैली से है। शास्त्रीय संगीत में शास्त्रीय नियमों के अनुसार राग प्रस्तुत किया जाता है, यह प्रस्तुतीकरण ध्रुपद, धमार और ख्याल गायन द्वारा तथा वादक बंदिश द्वारा करता है। बंदिश भारतीय शास्त्रीय संगीत का एक आवश्यक अंग है, केवल बंदिश के माध्यम से हिन्दुस्तानी संगीत की समृद्धशाली परम्परा को आगे आने वाली पीढ़ी तक सुरक्षित रखा जाता है। बंदिशों में राग के स्वर तथा शब्दों का ताल के साथ सामंजस्य होना चाहिए। बंदिश की रचना बहुत महत्वपूर्ण है, बंदिश राग को आकृति प्रदान करता है, जिस प्रकार मूर्ति, भगवद् चित्र आदि को हम ईश्वर का साकार रूप मानते हैं, ठीक उसी प्रकार स्वर, लय, ताल व पद से युक्त बंदिशों को हम राग का साकार रूप मानते हैं।

बंदिश द्वारा विभिन्न रसों की निष्पत्ति होती है। स्वयंराग तो आनन्द स्वरूप है ही लेकिन उस आनन्द में भी है विशेष रस का होना, हमें विभिन्न रसों की बंदिशें प्राप्त होती हैं। कुछ वीर रस या श्रृंगार रस को उद्धृत करनें वाली होती है तथा कुछ रागों में शान्त रस एवं भक्ति से समन्वित रचनाएँ मिलती हैं शास्त्रीय संगीत में भक्ति पर कबंदिशों का गायन बहुत अधिक किया जाता है ।

---

* सहायक आचार्य, गायन विभाग, संगीत एवं मंच कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

भक्तिपरक विभिन्न बंदिशें -

हमारे शास्त्रीय संगीत में (यहां ख्याल शैली के संदर्भ में बात करेंगे) ख्याल शैली के क्षेत्र में ऐसे कई संगीतज्ञ तथा वाग्गेयकारों की एक दीर्घ परम्परा परिलक्षित होती है जिनकी रचनाओं में भक्ति-भाव दर्शित होता है और बंदिश रचना के क्षेत्र में अपना अपूर्व योगदान दिया। संगीत के प्रचार-प्रसार एवं उसको आध्यात्म से जोड़कर लोकानुरंजन बनाने हेतु संगीतज्ञों ने अपना पूर्ण जीवन समर्पित कर दिया। जैस- पं0 भातखण्डे, पं0 विष्णु दिगम्बर पलुस्कर, उ0 फैयाज खाँ, उ0 विलायत हुसैन खाँ, पं0 ओंकार नाथ ठाकुर आदि। संक्षेप में यह कह सकते हैं कि भक्ति से ओत-प्रोत अनेकों ख्याल की बंदिशें उपलब्ध होती हैं। यहाँ पर हम पंडित रामाश्रय झा ''रामरंग'' जी की रचनाओ के सन्दर्भ में चर्चा करेंगे बीसवी शताब्दी के महानायक के रूप में आपने कार्य किया है आपने विभिन्न देवी-देवताओं और प्रसंगों पर आधारित बंदिशे एवं जोड़े की बंदिशे जैसे विलम्बित का भाव जो कहता है उसी के आधार पर दुत ख्याल का सृजन करना बंदिशों को कथानक से जोड़ना, जिसके माध्यम से साधारण श्रोता भी स्वतः उस भाव से जुड़ जाता है।

भारतीय संस्कृति की धरोहर रामचरित मानस को ही आधार बनाकर स्वयं रचना की और उन्हें भावानुकूल रागों में स्वरलिपि बद्ध किया है। यहां कुछ रचनायें प्रस्तुत है-

पं0रामाश्रय झा जी कीबंदिश-

राग- अहीर भैरव, तीनताल

स्थाई- मान ले मोरा मनुवा तुम,

हरि को नाम सुमिर उठि भोरे,

बीतो जात दिना।

अन्तरा- सुमिरन ते तन ताप मिटे तेरो,

'रामरंग' उठि जाग मना,

हितमित संग छिना।।[1] पेज न0 262 अभि0 भाग.1

इस रचना में भक्ति के भाव परिलक्षित हैं। इस बंदिश में कहा गया है कि हे मन! प्रातः काल उठकर ईश्वर का नाम जप ले अन्यथा दिन बीतता जा रहा है, ईश्वर के सुमिरन से तेरे पाप मिट जाएंगे अतः भाई-रिश्तेदारों का संग छोड़कर ईश्वर के नाम को जप।

राग- बिलासखानी तोड़ी, तीनताल

छोटा ख्याल के बोल हैं-

स्थाई- जगदम्बिका अम्बिका, मर्दनि अम्ब शुम्भनिशुम्भ,

गले मुण्ड मालिका।

अन्तरा- दुर्गे भवानी दानी दयानी, सुर नर कीन्हे अभय 'रामरंग'

तेरो ही नाम कालिका।।[1] पेज न0 154 अभि0 भाग.1

प्रस्तुत बंदिश में दुर्गा जी के वीभत्स रूप का वर्णन मिलता है।

शिव भक्ति से ओत प्रोत बंदिश - प्रसंग

राग-सरस्वती सारंग-रूपक (विलम्बित)

स्थाई- कैसे तोहे ब्याहूँ या दुलहा संग।

अन्तरा- भषम रमाये बाघाम्बर, ''रामरंग'' बिराजे सिर मौर भुजंग।।[4]

पेज न0 48 सं. रामा0 भाग.1

पार्वती की माँ मैना का विषाद - प्रसंग

राग-शिवमत भैरव-त्रिताल (मध्यलय)

स्थाई- बौराहे को न दूँगी अपनी दुलारी गिरजा कुमारी राखूँगी घर अपनो।

अन्तरा- एक न मानूंगी सिख काहू की, ''रामरंग'' ब्याहूँ न गिरजा कुमारी राखूंगी घर अपनो।।[4] पेज न0 47 सं0 रामा0 भाग.1

पार्वती जी द्वारा माँ को प्रबोधन - प्रसंग

राग-सरस्वती सारंग-त्रिताल (मध्यलय)

स्थाई- मिटे न मिटाये ए री माँ, विधना लिखे जो भाल अंक।

अन्तरा- या बौराहे को सुर मुनि सेवत, जनम-जनम याको मेरो संग।।[4] पेज न0 49 सं0 रामा0 भाग.1

श्री लक्ष्मण जानकी के साथ श्रीराम का वन के लिए प्रस्थान- प्रसंग

राग-भीमपलासी-त्रिताल (मध्यलय)

स्थाई- अवध तजि लखन सीय रघुराई, चले वन लगे संग नर नारी।

अन्तरा- प्रभु फेरहि पुनि फिरहि प्रेम वश, अवध भयावन लागे,

'रामरंग' प्रभु प्रीत जगे उर जग सुख फीको लागे।।[4]

पेज न0 149 सं0 रामा0 भाग.1

केवट - प्रसंग

राग-चारूकेसी-रूपक (विलम्बित)

स्थाई- हे रघुवर राजा रइया न चढ़ाऊँ तोहे पग धोये बिना।

अन्तरा- पाहन नारि भई राउर पग धूरी लगी,

'रामरंग' तरनी बने घरनी मुनि पग धोये बिना।[4]

पेज न0 150 सं0 रामा0 भाग.1

इस रचना में- जब भगवान राम गंगा के तट पर पहुंचते हैं, और केवट से कहते हैं कि नाव लेआवो और हमें नाव के माध्यम से गंगा के उस पार कर दो लेकिन केवट नकारात्मक उत्तर देता है कि मैं नाव नहीं लाऊँगा और तब तक नहीं लाऊँगा जब तक आपका पैर नहीं पखार लूँगा। क्योकि आपके पैर में यह गुण है कि जिस पत्थर में वो धूरि लगती है वो उड़ जाती है।

गंगा तट उतरने के बाद केवट का उत्तर उतराई न लेने का – प्रसंग

राग-चारूकेसी-एकताल (मध्यलय)

स्थाई- हमरी तुम्हरी राजन जाति पाति केवट की विनती मानिये।

अन्तरा- हम तुम नाथ एक बिरादरी के उतराई देय जात ना बिगाड़िये।।[4] पेज न0 153 सं0 रामा0 भाग.1

इस रचना में- जब भगवान उतराई देने लगते हैं, तो केवट कहता है, कि हे भगवान आप भी केवट हैं और मैं भी केवट हूँ हमारे में और आपमें अन्तर बस इतना ही है कि हम इस गंगा से पार लगाते हैं इसलिए इस गंगा के केवट हैं और आप भवसागर से पार लगाते हैं इसलिये आप भवसागर के केवट हैं। पर काम तो दोनों का एक ही है, जिस प्रकार नाई से न नाई लेत, धोबी को न धोबी देत देके उतराई मेरी जात ना बिगारिये। इसलिए जब हम दोनों केवट है तो उतराई मैं आपसे न लूँगा।

ऐसे ही पूरी रामचरित मानस को भाव मानकर सातों कांड लिखे गयें है जो भारतीय शास्त्रीय संगीत के लिए अमूल निधि है।

गणेश स्तुती सम्बन्धि बंदिश – प्रसंग

राग हंस ध्वनि-त्रिताल

स्थाई- जय जय गणपति देवा गजानन गज कर्ण

जय त्रिशूल धर सुमुख सिद्धि के दाता।

अन्तरा- जय गौरी सुत विघन हरण जय जय विनायक वरदानी

रामरंग जय जय मंगल करन विधाता।।[4]

पेज न0 280 अभि0 भाग.1

इस रचना में- हे गणपति आपकी जय हो। त्रिशूल धारण करने वाले तथा सिद्धियों को दान करने वाले हे गजानन गजकर्ण आपकी जय हो। हे गौरी पुत्र विघ्नों को दूर करने वाले वरदान देने वाले विनायक, आपकी सदा जय हो। सब जगह मंगल ही मंगल करने वाले विधाता, रामरंग आपकी शरण में आपकी जय-जय कर रहे हैं।

कृष्णलीला से ओत - प्रोत बंदिश - प्रसंग

राग - छाया बिहाग

स्थाई- हठ करे काहे लाल ऐसो

धरनी पै आवै कैसे चन्द्र तेरो।

अन्तरा- सुर मुनि जाके पार न पावे ताहि नन्द रानी

तमकि बुझावे 'रामरंग' नेह की रीत है न्यारो।।[2]

पेज न0 293 अभि0 भाग.1

इस रचना में- इस पर यशोदा कहती हैं पर अरे भाई तुम समझते नहीं कहीं पृथ्वी पर भी आकाश का चन्द्रमा आता है। चन्द्रमा जो आकाश में स्थित है वो भला धरती पर क्यूँ आएगा, इस जिद को भला तुम क्यों पकड़े हो। तो सहित्य की रचना करने वाले 'रामरंग' कहते हैं की जिस का पार ब्रह्मा नहीं पाते उसे नन्दरानी गुस्सा करके यानि जान के समझाती हैं और भगवान स्नेह वश ऐसा फंस जाते हैं के वे डांट खाते हैं, लाठी खाते हैं, प्रभु की महिमा ऐसी है के जो भगवान से प्रेम करता है उसके भगवान लाठी भी खाते हैं।

सॉई सम्बधित बंदिश -

राग यमनी बिलावल

स्थाई- सॉई तिहारे नाम की आस लगी

मोहे कर दीजो बेड़ापार ।

अन्तरा- साँचा साहेब तू मेरो सॉई

'रामरंग' की सब लेहो सुधार ।।[1] पेज न0 98 अभि0 भाग.1

इस रचना में - हे सांई मेरा बेड़ा पार कर दीजिए, मुझे तो बस आपके ही नाम की आस है। हे सांई आप ही मेरे सच्चे सांई हैं। रामरंग की सभी बातों को सुधार दीजिए।

गुरु सम्बधित बंदिश -

रागश्री

स्थाई- ग्यान न पावे गुरू बिना ग्यानी, गुरूपद रज अंजन

अंखियन में मन मृग दोष मिटावे।

अंतरा- शिवसनकादि रटे ब्रहदिक, निसि वासर चरनन चित्त लावे,

'रामरंग' हरि गुरू में भेद न,वेद नइत नित गावे।।[5]

राग शास्त्र भाग 2 पेज न 225

इस रचना में – बिना गुरू के चरणों की शरण लिये बिना ज्ञान को कैसे प्राप्त किया जा सकता है। गुरू के पैरों की धूल को अंजन में रखदें तो आँखों के आगे पड़े सभी देष मिट जाते हैं शिवसनकादि एवं ब्रह्मा हर समय गुरू के चरनों में अपने चित्त को लगाते हैं। रामरंग कह रहे हैं कि भगवान और गुरू में भेद नहीं है, वेद भी इसी के गुणगाते हैं।

नीतीबोधक संम्बन्धीत बंदिश -

रागभैरव

स्थायी- माला कर फिरे मनुवां अनत फिरे

सुमिरन की यह बानी नहीं।।

अंतरा- करका मनका डार दे 'रामरंग'

मनका मनका फेर सुरत गही।।[3]

पेज न0 12 अभि0 भाग.4

इस रचना में-कवि कहते है कि भगवान का सुमिरन करने की यह रीति नहीं है यह ढंग नहीं है कि माला तो हाथ से फेर रहा है, और मन कहीं और फिर रहा है। आगे अन्तरे में रामरंग कहते हैं कि, हाथ से माला के दाने को जपना छोड़ो और मन रूपी मन के से उस परमात्मा का ध्यान करो।

नायक - नायिका से सम्बन्धित बंदिश -

राग - हमीर

स्थाई- चुनरिया लादे मोरे सैंया, पीली नीली और

रंग ना लेहों 'रामरंग' रंगी भीगी मोरे सैंया।

अंतरा- चुनरीपहिरतोरेसंग डोलूहरिरसकीरस

बतिया बोलूँ मान ले मोरि कही रे मोरे सैंया।।[3]

पेज न0 188 अभि0 भाग.1

इस रचना में – रचना करने वाला नायिका से कहलवा रहा है कि चुनरिया ला दे पीली नीली रंग वाली नहिं बल्कि रामरंग में रंगी चुनरिया ला दो, और चुनरिया ऐसी हो जो कि रंगी न हो केवल बल्कि भीगी भी हो यानि रामरंग अगर सूख गये तो सब बेकार है इसलिये वो भीगी हमेशा रहे ताकि भगवान का स्मरण बना रहे। चुनरि पहने के भगवान का गुणगान करते हुए उस रस का पान करूँगी, इसलिए मेरा कहा मान और ऐसी चुनरिया ले आओ।

निष्कर्ष-

राग के सम्पूर्ण स्वरूप को निखारने एवं विस्तारित करने के साथ-साथ भक्ति-भाव में प्रवाहित होने एवं श्रोताओ को जोड़ने में बंदिश का जो रहस्यमय योगदान है उस महत्व को केवल प्रदर्शन के द्वारा ही एक सीमा तक प्रस्तुत किया जा सकता है। बंदिशों को रचने एवं राग की प्रस्तुति में उनका क्या महत्व है इसके लेखन के द्वारा नही समझाया जा सकता, यह तो प्रयोगात्मक विषय है, राग हो या राग की बंदिश पहले गायन के द्वारा इनकी प्रस्तुती फिर उसमें निहित संगीत के व्याकरण को बोलकर समझाना यही सांगितिक विवेक है।

भाव किसी भी कला अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम है। अतः जब कलाकार कोई कृति बनाता है और वह जो भी भाव डालना चाहता है वह कृति को देखते ही स्पष्ट हो जाने चाहिए। यह कला का प्रमुख तत्व है। यहाँ पर ख्याल शैली की बंदिशों के माध्यम से पंडित रामाश्रय झा ''रामरंग'' जी की भक्तिपरक बंदिशों को पाठकों एवं विद्वानो के सम्मुख प्रस्तुत किया है आशा है वे हमारे इन विचारों से सहमत होंगे।

सन्दर्भ ग्रन्थसूची –

1- पंडित रामाश्रय झा, अभिनव गीतांजलि भाग 1, पेज नं. 262, 154, 280, 98, संगीत सदन प्रकाशन प्रयाग राज, 2002।

2- पंडित रामाश्रय झा, अभिनव गीतांजलि भाग 4, पेज नं. 293, 12, संगीत सदन प्रकाशन प्रयागराज, 2000।

3- पंडित रामाश्रय झा, अभिनव गीतांजलि भाग 5,पेज नं. 188, संगीत सदन प्रकाशन प्रयागराज, 2001।

4- पंडित रामाश्रय झा, रामरंग संगीत रामायण भाग 1, पेज नं. 49, 49, 47, 149, 150, 53 ल्युमिनस बुक्स वाराणसी।

5- डॉ0 गीता बनर्जी, राग शास्त्र भाग 2 पेज न 225, संगीत सदन प्रकाशन प्रयागराज 2002।

6- बहुत सी सामग्री गुरु मुख से प्राप्त।

●

लोक संगीत मे सुषिर वाद्यों का महत्व

अजीत कुमार एवं डॉ0 के0 ए0 चंचल***

भारत के प्रत्येक प्रदेश की अपनी सांस्कृतिक विशेषताये होती है। जो मुख्यतः वहाँ के लोक संगीत के तथा लोक नाट्य के द्वारा अभिव्यक्त होती है। यही लोक संगीत लोक परम्परा के प्रवाह में गतिशील होकर सदैव हमारे सामने आती है। भारत देश में लोक संगीत और लोक संस्कृति की अमूल्य धरोहर विद्यमान है। भारत की अधिकांशतः जनसंख्या गाँवों में रहती है। सुमित्रानन्द पंत जी के शब्दों में भारत माता ग्रामवासिनी है या यूँ कहें कि भारत की आत्मा गाँवों में रची बसी है। भारत का हृदय गाँवों में ही धड़कता है। उसकी भावना, सुख-दुःख, आशा, अभिलाषा एवं आंकाक्षायें इत्यादी सभी ग्रामवासियों के कंठों से निकलता है और यही जन्म होता है हमारी लोक संस्कृति एवं लोक संगीत का।

लोक सामान्य अर्थ में हम इस तरह से समझ सकते है ''जगत् में नाम एवं रूपमय जो कुछ भी दिखायी देता है, वह लोक है। सरलता, सहजता, निश्छलता लोक के प्रथम गुण तथा स्वभाव है। लोक बनावटी तथा आडम्बर से कोसों दूर है। लोक में किसी तरह का दिखावापन नहीं होता है और इन्हीं कारणों से ही लोक में आनन्द तथा सौन्दर्यता की अनुभूति होती है। लोक में हर व्यक्ति ठीक उसी प्रकार गुंथा है जैसे माला में अलग-अलग फूल, लेकिन जैसे एक फूल से माला नहीं बनती ठीक उसी प्रकार एक व्यक्ति से लोक की संरचना नहीं की जा सकती। अतः बहुत्व अथवा समष्टि लोक की आत्मा है। समष्टि अथवा साधारण जनसमाज या जनमानस ही लोक की असली पहचान है। लोक में सबका, सबके लिए, सब कुछ मिलता है।[1]

नादेन व्यंज्यते वर्णः पदं वर्णात् पदाद्वचः।

वचसो व्यवहारोऽयं, नादाधीनमतो जगत्॥14॥

नाद के योग से वर्णोच्चार (अक्षर-उच्चार) होता है, वर्ण से 'पद' (शब्द) की सिद्धि होती है, 'पद' से भाषा होती है तथा भाषा के होने से ही जगत् के सब व्यवहार चलते है, इससे यह सम्पूर्ण जगत् नादाधीन है।[2]

गायन, वादन तथा नृत्य के संयोग से संगीत की उत्पत्ति मानी गयी है। लोक संगीत मानव हृदय के सरल स्वाभाविक वह उद्गार है जो न जाने कब समाज में स्वतः फूट पड़ते हैं। वह सहजता तथा स्वच्छंदता लिए स्वयं ही प्रकट हो जाती है। लोक संगीत में उस क्षेत्र, देश प्रदेश माटी की सुगन्ध हमें दिखायी पड़ती है। विश्वभर में अनेक जातियाँ, धर्म, भाषायें है और वह सभी अपनी-अपनी विशेषता रखती है। कई तरह का भेद होते हुए भी मानव हृदय के जो भाव सुख-दुख की अनुभूति उसकी स्थिति परिस्थिति, आशा-निराशा एक सी दिखाई देती है। यही स्थितियाँ-परिस्थितियाँ विश्व भर के लोक संगीत में सिसकती, कसकती, मुस्कुराती खिलखिलाती, नाचती-गाती दृष्टिगोचर होती है। लोक संगीत मानव की सभ्यता तथा संस्कृति पर प्रकाश डालते है।[3]

लोक संगीत के संदर्भ में विभिन्न विद्वानों के मत-

डॉ. राधा कृष्णन के अनुसार, ''लोक संगीत द्वारा सामाजिक जीवन का कोष संचित हुआ है। जन साधारण के स्वप्न, आदर्श, उद्देश्य और कल्पना सब कुछ लोक संगीत में ही मुखारित होता है।''

पण्डित जवाहर लाल नेहरू के अनुसार, ''लोक संगीत में हमें उल्लास मिलता है और शिक्षा मिलती है कि जीवन का आनन्द केवल भौतिक पदार्थों की उपलब्धि में ही नहीं है।''

महात्मा गांधी के अनुसार, ''लोक संगीत में चराचर जगत् गाता और नृत्य करता है।''

डॉ. राजेन्द्र प्रसाद के अनुसार, ''आधुनिक जीवन को सुन्दर समृद्ध एवं सम्पन्न बनाने के लिए लोक संगीत सहायक सिद्ध होगा। हृदय की अनुभूतियाँ तरंगित होकर जब बहने लगती हैं तो लोक संगीत का जन्म होता है।''

सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, ''जब गृहदेवियाँ एकत्र होकर पूरे उन्माद के साथ लोक गीत गाती है तब उन्हें सुनकर चराचर के प्राण तरंगित हो उठते है।''

संगीत मार्तण्ड पं0 ओंकारनाथ ठाकुर के अनुसार, ''लोक संगीत के माध्यम से समस्त विश्व में मानवता आत्मीयता और एकता की स्थापना की जा सकती है।

रूक्मिणी देवी अरूण्डल (भरतनाट्यम नृत्यांगना) के अनुसार, ''लोक संगीत ईश्वर प्राप्ति का सुगम साधान है उसकी पहुँच मनुष्य की आत्मा तक है।''

उदय शंकर (नर्तक) के अनुसार, ''लोक जीवन की प्रत्येक दिशा संगीत से व्याप्त है, इसलिए प्रत्येक भारतवासी मुझे संगीतकार दिखाई देता है।''[4]

---

* शोध छात्र, गायन विभाग, संगीत एवं मंच कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

* * निर्देशक, गायन विभाग, संगीत एवं मंच कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

लोक संगीत का उद्भव कब और कैसे हुआ इसकी प्राचीनता के संबंध में अनुमान लगाना कठिन है लोक संगीत का इतिहास उतना ही पुराना है जितना कि मानव सृष्टि का। लोक संगीत को हम गायन, वादन एवं नृत्य के माध्यम से प्रस्तुत करते है। लोक संगीत में वाद्यों की अपनी अलग महत्ता है बिना किसी वाद्य की सहायता लिए हम लोक संगीत को प्रस्तुत नहीं कर सकते है। लोक संगीत में वाद्यों का बहुत बड़ा महत्व है। वाद्य शब्द संस्कृत भाषा के 'वद्' धातु से बना है, जिसका अर्थ है- 'बोलना' अतः वाद्य से तात्पर्य ऐसा यन्त्र जिससे ध्वनि उत्पन्न हो सके। प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल तक समस्त लोक संगीत में वाद्यों की महत्ता सर्वमान्य रही है।[5]

वाद्यों का वर्गीकरण

यह सर्वविदित है कि जब किसी वस्तु की बहुतायत हो जाती है, तभी उसे व्यवहार में सुचारू रूप से संचालन के लिए उसके वर्गीकरण आवश्यकता पड़ती है। भारतीय शास्त्रीय संगीत में सम्पूर्ण वाद्यों को हमारे विद्वानों ने मुख्य रूप से चार भागों में विभाजित किया है। सहस्त्रों वर्ष पूर्व संगीत वाद्यों का विधिवत् वर्गीकरण प्रस्तुत किया गया है।

ततंतन्त्रीगतं ज्ञेयमवनद्धं तु पौष्करम्।

घनंतालस्तुविज्ञेयसुषिरोवंशउच्यते।।2।।

1-तत अर्थात् तन्त्रीयुक्त वाद्य

2- अवनद्ध अर्थात् चर्माबद्ध वाद्य

3- घन अर्थात् काष्ठ, धातु युक्त वाद्य

4- सुषिर अर्थात् वंशादि वाद्य।[6]

इन वाद्यों के प्रकार में सुषिर वाद्यों का प्रयोग लोक संगीत में बहुत ज्यादा होता है या यूं भी कहा जा सकता है कि लोक संगीत में बिना सुषिर वाद्य के प्रयोग से लोक संगीत पूर्ण नहीं होता। प्राचीन काल में सुषिर वाद्यों का एक गौरवपूर्ण इतिहास था भारतीय संगीत के अन्तर्गत चाहे लोक संगीत हो या शास्त्रीय संगीत इन दोनों में सुषिर वाद्य अपना महत्वपूर्ण स्थान रखता है यहाँ तक कि चित्रपट संगीत में भी बिना सुषिर वाद्यों का आश्रय लिए कार्य पूरा नहीं हो सकता। इसी कारण से इन लौकिक संगीतों में वंशी, शहनाई आदि सुषिर वाद्यों को अवश्य ही सम्मिलित किया जाता है। सुषिर वाद्य का अर्थ हवा द्वारा या फूँक से उत्पन्न ध्वनि सुषिर वाद्यों के अन्तर्गत आती है। अतः छिद्रयुक्त या वायू पूरण करके वादन किये जाने वाले संगीत वाद्यों को सुषिर वाद्यों की संज्ञा प्रदान की गई है।[7]

वंशी भगवान् श्रीकृष्ण का परम प्रिय वाद्य तो था ही, इसके साथ ही इसने समस्त भारतीय जन मानस को अपनी मधुरता एवं सरसता से अनुप्राणित किया। वैदिक काल में वंशी को ही आधार स्वर बनाकर वीणा आदि वाद्यों के स्वरों को मिलाया जाता था। साम विधान ब्राह्मण पर जो सायण भाष्य है उसको देखने से इस विषय में तृण मात्र भी सन्देह नहीं रह जाता कि सामवेद का ग्राम अवरोही क्रम का था। साम के स्वर 'निधन प्रकृति' के कहलाते है जिसका अर्थ है कि उसके स्वर स्वभावतः नीचे की ओर उतरते चले आते हैं। **क्रुष्टादय यमा उच्यन्ते ते च उत्तरोत्तरं नीचा भवन्ति।''** अर्थात् क्रुष्ट इत्यादी ही 'यम' कहलाते हैं। वे उत्तरोत्तर नीचे होते है उत्तरोत्तर नीचे होने का तात्पर्य यही है कि स्वर अवरोही क्रम के थे **प्रो0 मुले** ने अपने पुस्तक भारतीय संगीत में कहा कि यह अवरोही क्रम वेणु (बांसुरी) के आधार पर स्थापित हुआ था। नारदीय शिक्षा ने वेणु के द्वारा सामवेद के स्वर स्पष्ट किये गये हैं इसलिए इन चिन्तकों ने यह स्थापना की है कि साम-ग्राम का अवरोही क्रम वेणु के आधार पर निर्धारित हुआ।[8]

बंशी (बांसुरी) के सन्दर्भ में मान्यता है कि एक बार भगवान कृष्ण के सभी सखा और गोपियों ने बांसुरी से कहा कि हम कृष्ण के इतने करीबी है उनकी भक्ति करते है उनका गुणगान करते है उनके पास-पास घुमते रहते हैं लेकिन वे हमें उतना भाव नहीं देते और तुम इतनी साधारण, ना रूप, ना और कुछ? फिर भी भगवान तुम्हें अपने होठों से लगाए रहते है। आखिर तुमने ऐसा कौन सा जादु किया है उन पर? बांसुरी ने हँसकर कहा कि तुम भी मेरी तरह बनो फिर भगवान कृष्ण भी तुम्हें भी अपने करीब रखेंगे। मैं एकदम सीधी हूँ ना कोई गाँठ और ना ही कोई मोड़ या घुमाव है। मैं अंदर से पोली हूँ और उसी पोलेपन से मेरा सारा अहंकार निकल गया। मेरे शरीर के 7 छिद्रों द्वारा काम, क्रोध, लोभ, मायामद, अहंकार सब मैंने बाहर फेंक दिये है। मेरी खुद की कोई आवाज नहीं है मुझमें फूँक मारने पर ही मैं बोलती हूँ। जो जैसी फूँक मारता है, मैं वैसा ही बोलती हूँ। बांसुरी का प्यारा उत्तर सुनकर सभी सखा और गोपियाँ निरुत्तर हो गए। अहंकार रहित शरीर ही श्री हरि की बांसुरी है। यह बात सर्वमान्य हैं कि भगवान कृष्ण और बांसुरी को अलग नहीं देखा जा सकता है।

लोक संगीत में पारस्परिक धुनों से युक्त पदावलियों का प्रयोग होता है, जिसके श्रवण मात्र से प्राकृतिक जीवन की छटाओं का आनन्द प्राप्त होता है। कालक्रम से इनके पदावलियों में परिवर्तन अपरिहार्य हो सकता है, किन्तु इनके पारम्परिक धुनों में नहीं। उनके धुनों का हुबहू नकल सुषिर वाद्यों पर ही विशिष्टतापूवर्क उतारा जा सकता है, अन्य वाद्यों पर नहीं। प्राकृतिक जीवन का सुषिर वाद्यों से घनिष्टतम् सम्बन्ध भी है। सुषिर वाद्यों के उपकरण वंश-काष्ठ आदि प्राकृतिक जीवन में प्रायः सर्वत्र सरलता से सुलभ हो जाते है। वंश की सुलभता के ही कारण चरवाहों के वर्ग द्वारा वंशी वाद्य को अपनाया गया।[9] लोक संगीत में प्रयुक्त होने वाले सुषिर वाद्यों निम्न है-

वंशी- वंशी या बांसुरी का नाम आते ही भगवान् श्री कृष्ण की मूर्ति हमारे सामने आ जाती है। वंशी का जन्म भी उसी समय से माना जाता है। पौराणिक उल्लेखानुसार, वंशी का शरीर शिव एवं

उसके स्वर सरस्वती रूप में उल्लिखित हैं। प्राचीन काल में वंशी, बाँस के अलावा चन्दन की लकड़ी एवं लोहा, सोना, चाँदी आदि धातुओं की भी बनायी जाती थी।[10]

शहनाई- शहनाई मंगल वाद्य के नाम से जान जाता है। सुषिर वाद्यों में शहनाई वाद्य की अलग ही पहचान है। लोक संगीत में इसका बहुता प्रयोग किया जाता है। इस वाद्य का वादन विशेष रूप से विवाह, पुत्र-जन्म आदि विशेष शुभ अवसरों पर होता हैं। इसका निमार्ण सागवान की लकड़ी से होता है जिसके एक किनारे पर मुखपत्री लगाई जाती है एवं दूसरे किनारे पर धातु की कटोरीनुमा प्याला लगा रहता है। इसमें सात, आठ या नौ स्वररन्ध्र होते हैं।

सीधी बाँसुरी-इसका मुखपत्री पर फूँक द्वारा होने से इसकी ध्वनि की तीव्रता बहुत कोमल हो जाती है।

अलगोज़ा- तीन या चार छिद्रों वाली बाँस से बनी बाँसुरी को अलगोजा या मुरली कहते है। अलगोजा प्रायः दो होते हैं। जिन्हें एक साथ मुँह में दबाकर फूँ से बजाया जाता है। दोनों अलगोजे एक दूसरे के पूरक होते है। जानवरों को चराते समय या किसी मेला इत्यादी के अवसर पर अलगोजे की ध्वनि गूँज उठती है, मानो अलगोजा उत्सव का प्रतीक हो।

सिंगी-सिंगी, सींग या श्रृंग एक ही बात है। यह भैंसे और हिरन के सींग का होता है अथवा धातु से बनाया जाता हैं। कंठ से उत्पन्न ध्वनि को दबाकर वायु के सहारे से सिंगी द्वारा वादन करने पर तीन चार स्वर निकल आते हैं। लोक संगीत में सिंगी वादन के द्वारा अलग-अलग अवसरों पर इच्छित प्रभाव उत्पन्न किया जाता है। युद्ध के समय बजने पर इसे 'रण सिंगा' भी कहते हैं।[11]

शंख- यह एक आदि वाद्य है, जिसे प्रकृति के मनुष्य को दिया है। सागर-तल के समुद्री जीव का ढाँचा ही 'शंख' कहलाता है। मन्दिरों में पूजा के समय इसका प्रयोग किया जाता है। शंख का वादन किसी भी शुभ कार्य के प्रारम्भ में किया जाता है।[12]

मसकबीन-यह मूलतः स्काटलैंड का वाद्य है जो अंग्रेजी सेना के माध्यम से भारत में आया। विवाह- शादियों के अवसर पर इसका प्रयोग विशेष रूप से होता है।[13]

बीन-यह सँपेरो का मुख्य वाद्य है, जिसे 'पुंगी' भी कहते हैं। इसकी छोटी तुम्बी में बाँस की दो नलिकाएँ लगी रहती हैं और बजाने वाले हिस्से में कांठ की एक पोली नली रहती है। इसमें तीन या चार सूराख होते है और उन्हीं पर वादन करके सँपरे साँप को झुमाते है।

नफ़ीरी-नफ़ीरी को सहनाई या सुन्दरी भी कहते हैं। यह एक हाथ लम्बी लाल चन्दन की लकड़ी की बनी होती है, जिसमें आठ छेद होते है। इसका मुख चार अँगुल लम्बा होता है, जिसमें हाथी दाँत के पत्ते लगे रहते हैं। इसे मुख में दबाकर फूँक के माध्यम से मधुर स्वर बजाये जाते है।

तुरही- लगभग चार हाथ लम्बी तुरही धातु से बनी होती है, जो प्रायः मांगलिक पर्वों पर बजाई जाती है। इसमें कोई छिद्र नहीं होता केवल हवा फूँककर उसके विभिन्न दबावों से ऊँचे-नीचे स्वरों की उत्पत्ति की जाती है। इसकी आकृतिक अर्धचन्द्राकार रूप में होती है।

नढ़- माता या भैरव का गुणगान करने के लिए इस वाद्य का प्रयोग करते है। मुँह की फूँक द्वारा मशक में पहले पूरी हवा भर ली जाती है, फिर बाँसुरी की तरह उसमें लगी हुई नली के तीन छिद्रों पर अँगुली के संचालन से स्वर पैदा किए जाते है।[5]

सतारा-यह वाद्य मुख्य रूप से जैसलमेर के भाटों द्वारा तथा मरुस्थल प्रदेश की चरवाहा जातियों द्वारा बजाया जाता है। इसमें दो बाँसुरी होती हैं तथा इन दोनों को लगातार एक साथ फूँका जाता है।

टोटो- यह सुरनई के प्रकार का बेलनाकार वाद्य है। इसके निचले भाग में एक तथा ऊपरी भाग में छह छिद्र होते हैं। इसका शेष वर्णन सुरनई के समान ही है।

सुरनई-यह शहनाई के ढंग का लोक वाद्य है एवं इसके कई रूप राजस्थान में प्रचलित हैं। इसके ऊपरी भाग में छह छिद्र होते हैं। खूजर या ताड़ की पत्ती का सरकण्डा इस वाद्य के मुख पर लगाया जाता है। मुख्य रूप से यह भील जाति के जोगियों, राजस्थान के ढोलियों तथा जैसलमेर के लंगाओं द्वारा बजाया जाता है।

पुंगी- इसका सामान्य विवरण मुरला के समान है। इसमें बाँस की दो नलियाँ होती हैं और बाँस के सरकण्डे भी प्रयोग किये जाते हैं। कभी-कभी ध्वनित नली धातु की बनती है तथा वाद्य को ऊपर या नीचे की ओर हिलाकर स्वर निश्चित करने के लिए इसमें यन्त्र भी लगा रहता है। इस वाद्य को गायन तथा नृत्य की संगति के लिए प्रयोग किया जाता है।

मुरला-एक विशिष्ट प्रकार का नलीदार कद्दू जिसमें दो पोली लकड़ियों की नलियाँ फँसी रहती हैं। प्रत्येक नली में एक-एक सरकण्डा लगा रहता है। ये सरकण्डे कंगोरे वृक्ष की पतली लकड़ी के बनते हैं। ध्वनित नली में तीन छिद्र होते हैं, जो मोम की सहायता से निश्चित स्वरों में मिला लिये जाते है। इनको लगातार फूँका जाता है।

भूँगल-यह एक लम्बी नली का होता है, जिसका मुँह टीप के समान होता है। यह पीतल अथवा एलुमिनियम से बनता है तथा दूसरे बिगुल वाद्यों के समान फूँका जाता है। यह मुख्य रूप से मेवाड़ की भवाई जाति द्वारा बजाया जाता है।

नागफनी-यह पीतल की एक साधारण लहरदार नली होती है, जो सर्प के आकार से मिलती-जुलती होती है। इसे दूसरे बिगुल वाद्यों के समान बजाया जाता है।

पेपा-नृत्य तथा गान की संगति के लिए प्रयुक्त होने वाले वाद्य पेपा का प्रयोग असम में किया जाता है। इसका निर्माण दो छोटे समान सींगों से होता है। फूँकने के लिए इसमें विशेष प्रकार की रीड का प्रयोग होता है। इसके एक सींग में वादन के लिए तीन छिद्र तथा दूसरे में चार छिद्र होते है।

हारमोनियम- यह पाश्चात्य वाद्य है। यह एक लकड़ी का बॉक्स नुमा रहता है इसमें रीड लगी रहती है और ऊपर की तरफ पत्ती लगी रहती है। यह वाद्य भी लोक संगीत में अधिक प्रयोग किया जाता है।[14]

प्राचीन काल से ही मनुष्य अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति के लिए गीत, वाद्य और नृत्य को माध्यम बनाता आ रहा है। वाद्य यंत्र समाज देश और काल के अनुसार अपना अलग अस्तित्व और अलग सौन्दर्य रखते है। लोक संगीत में सुषिर वाद्यों का बहुत ही ज्यादा प्रचलन है कारण स्पष्ट है कि यह वाद्य प्रकृति द्वारा दिये गये है जिसे मनुष्य ने अपनी बुद्धि क्षमता के कारण उसे वाद्य का रूप दे दिया है। लोक संगीत में प्रयुक्त सुषिर वाद्यों में किसी तरह का बनावटी पदार्थ नहीं लगाया जाता है। यह पहले से ही प्रकृति ने हमे दे दिया है। किंतु वर्तमान समय में कुछ परिवर्तन हो गया है इन सुषिर वाद्यों में कृत्रिम पदार्थों का प्रयोग किया जा रहा है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची-

1. भारतीय संगीत एक ऐतिहासिक विश्लेषण, प्रो0 स्वतन्त्र शर्मा, अनुभव पब्लिशिंग हाउस, इलाहाबाद पृ0 सं013
2. संगीत-दर्पण,प्रथम तथा द्वितीय अध्याय, अनुवादक पं0 विश्वम्भरनाथ भट्ट, संगीत कार्यालय, हाथरस (उ0प्र0) पृ0 सं09
3. करेन्टजर्नरल, डॉ0 राजवीर कुमार श्रीवास्तव, विशाल भारत संस्थान, वाराणसी पृ0सं0 427
4. भारतीय लोक संगीत, डॉ0 वीणा श्रीवास्तव, राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली पृ0 सं0 6
5. चंदन चौक, डॉ0 विद्यानिवास मिश्र, उत्तर प्रदेश संगीत नाटक अकादमी, पृ0 सं018
6. भारतीय संगीत वाद्य, डॉ0 लालमणि मिश्रा, भारतीय ज्ञानपीठ, लोदी रोड, नई दिल्ली पृ0सं0 214-230
7. शारंगदेवकृत संगीतरत्नाकर, (सरसस्वती व्याख्या और अनुवार सहित) व्याख्या और अनुवादकर्त्री सुभद्रा चौधरी, राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली पृ0 सं0 78
8. भारतीय संगीत का इतिहास, डॉ0 जयदेव सिंह, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी पृ0 सं0 15-26
9. लोक संगीत अंक, डॉ0 लक्ष्मीनारायण गर्ग, संगीत कार्यालय, हाथरस उ0 प्र0 पृ0 सं0 5-7
10. बाँसुरी वादन, डॉ0 आ0 के0 श्रीनिवासन्, पलि्ग्रिम्स पब्लिशिंग, वाराणसी। पृ0 सं013-16
11. भारतीय सुषिर-वाद्यों का इतिहास, डॉ0 राधेश्याम जायसवाल, वाराणसेयसंस्कृतसंस्थानम् जगतगंज, वाराणसी पृ0 स0 40-47
12. उत्तरांचल प्रदेश के लोक गाथा गीत, डॉ0 दिनेश चंद्र बलूनी, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, पृ0 सं0 26-27
13. शिल्पायन संगीत लेखमाला, संतोष कुमार, पृ0 सं0 127-133
14. संगीत विशारद, वसंत, संगीत कार्यालय, हाथरस, पृ0सं0 575-584

●

वैदिक कालीन न्याय व्यवस्था

*डॉ0 विवेक कुमार पाठक**

भारतीय संस्कृति विश्व की प्रथम वरणीय एवं प्राचीनतम संस्कृति है और इस संस्कृति का मूल आधार हैं वेद। वेदों को विश्व के समस्त ज्ञान का कोश कहा जाता है। ज्ञान के विविध क्षेत्रों में वेदों का अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं विशिष्ट स्थान है। विश्व में ज्ञान के प्रकाश की प्रथम किरण वेदों से ही प्रस्फुटित हुई है। वैदिक कालीन साहित्य और संस्कृति का अध्ययन करने से वैदिक शासनतन्त्र में समाज को सुदृढ़ एवं सुव्यवस्थित रखने के लिए आचार-व्यवहार, ऋत, अनुशासनादि को संचालित करने हेतु राज्य के संचालन का तथा तत्कालीन न्याय व्यवस्था का ज्ञान होता है क्योंकि किसी भी राष्ट्र अथवा समाज के निर्माण एवं संचालन में न्याय की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। 'न्याय' के अभाव में कोई भी राष्ट्र एवं समाज व्यवस्थित तथा शान्ति सम्पन्न नहीं रह सकता और इसी कारण 'न्याय' की उचित व्यवस्था न होने पर समुचित विकास की कल्पना नहीं की जा सकती। भारतवर्ष में अति प्राचीन काल से ही भारतीय ऋषि-मनीषियों ने इस दिशा में चिन्तन प्रारम्भ कर दिया था। ऋषियों की चिन्तनधारा की स्पष्ट प्रतीति वेदों एवं वैदिक साहित्य के अवलोकन से होती है। ऋग्वेद को तत्कालीन समाज का संविधान कहा जा सकता है। प्रस्तुत शोध पत्र में वैदिक कालीन न्याय व्यवस्था का अध्ययन अपेक्षित है।

समाज में बढ़ती हुई बुराइयों, पारस्परिक ईर्ष्या-द्वेष एवं संस्कारजन्य दुर्गुणों का साम्राज्य न स्थापित हो जाये, समस्त व्यवस्थायें छिन्न-भिन्न न हो जायें, मर्यादा खण्डित न होने पाये, सत्य का समाज में स्थान बना रहे, अधर्म के भय से धर्म का दम न घुटे इसके लिए प्राचीन भारतीय ऋषि-मुनि, दार्शनिक एवं चिन्तक सतर्क थे। परिणामस्वरूप वैदिक काल में ऋषियों ने समुचित न्याय की व्यवस्था सुनिश्चित की थी। चूँक वैदिक काल में राष्ट्र था, राष्ट्र सभा थी, जनसभा थी, एक सुसंगठित शासनतन्त्र था इसलिए न्यायपालिका अथवा न्याय व्यवस्था का होना भी स्वाभाविक है। यद्यपि वेदों में स्वतन्त्र रूप से न्यायपालिका का एक भी सूक्त अथवा मन्त्र प्राप्त नहीं होता किन्तु वैदिक मन्त्रों के अध्ययन से, तत्कालीन अपराधों एवं दण्ड के प्रकारों सम्बन्धी वर्णनों के अध्ययन से यह सिद्ध होता है कि उस काल में भी न्यायपालिका द्वारा अपराध के आधार पर अपराधी को निर्धारित दण्ड के अनुसार दण्डित किया जाता था।

अथर्ववेद में न्याय शब्द वस्तुतः दण्ड के अर्थ में आया है। अथर्ववेद के अष्टम काण्ड के तृतीय सूक्त में लगभग 15 मन्त्रों में अपराधी के लिए निश्चित विविध दण्डविधानों का विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है।[2] श्री पी0बी0 काणे के अनुसार, वैदिक काल में 'न्याय' शब्द का अर्थ 'धर्म' ग्रहण किया गया है। वैदिक कोश में डॉ0 सूर्यकान्त ने न्याय शब्द का अर्थ 'कर्त्तव्य' लिया है।[3] श्री पी0बी0 काणे तथा डॉ0 सूर्यकान्त दोनों के अनुसार, न्याय शब्द से तात्पर्य कर्त्तव्याकर्त्तव्य ज्ञान और व्यवहार ज्ञान से है। किन्तु न्याय शब्द को धर्म के अर्थ में न केवल संहिताओं में अपितु ब्राह्मण ग्रन्थों, सूत्रादि ग्रन्थों आदि में भी प्रचुरता से लिया गया है। महाभारत शान्ति पर्व में न्याय शब्द को व्यवहार-विषय के अर्थ में लिया गया है।[4] निष्कर्षतः न्याय शब्द का तात्पर्य हुआ कि करणीय एवं अकरणीय कार्यों का ज्ञान रखते हुए अपराधों के आधार पर दण्डनीय व्यक्ति को उचित दण्ड देकर पीड़ित व्यक्ति को न्याय प्रदान करना। यह न्याय अथवा व्यवहार पूर्ण रूप से वेदों अथवा धर्मशास्त्रों के अनुसार होता था। अतः उस काल में न्याय का आश्रय धर्म ही था।

(ii) वेदों में न्यायालय :

वैदिक कालीन राज्य व्यवस्था में प्रजा के अधिकारों की रक्षा करने और न्याय प्रदान करने के लिए न्यायालय की व्यवस्था की गई थी, जिसे 'विदथ' कहा गया है। शब्दकल्पद्रुम कोश में विदथ शब्द की व्युत्पत्ति विद् धातु से बतायी गयी है[5], जिसका अर्थ है सत्य की खोज करना। इस दृष्टि से विदथ वह संस्था थी जिसमें सत्य की खोज की जाती थी। इस प्रकार सत्य के आधार पर न्याय करने वाली संस्था को 'विदथ' कहा जा सकता है। अथर्ववेद में अनेकों स्थानों पर 'विदथ' का उल्लेख प्राप्त होता है।[6] इसे वहाँ धर्मसभा, विद्वानों की सभा अथवा सभ्य लोगों की सभा के रूप में दर्शाया गया है। इससे ज्ञात होता है कि 'विदथ' बहुत प्रचलित सभा थी तथा इसका संगठन व्यापक रूप से था। 'हिन्दू राज्यतन्त्र' नामक पुस्तक में डॉ0 काशी प्रसाद जायसवाल का मत है कि 'विदथ' सर्वसाधारण की सर्वप्रथम और मूल संस्था थी, जिससे सभा, समिति और सेना की सृष्टि हुयी थी। इस प्रकार 'विदथ' का सम्बन्ध नागरिक, सैनिक और धार्मिक तीनों प्रकार के कार्यों के साथ दिखाई देता है।[7] ऋग्वेद में 'विदथ' का वर्णन अनेकों स्थानों पर आया है।[8] ऋग्वैदिक काल में विदथ एक महत्वपूर्ण संस्था थी क्योंकि ऋग्वेद में लगभग 122 स्थलों पर 'विदथ' शब्द का प्रयोग हुआ है। परवर्ती काल में इसका महत्व कुछ कम हो गया, अथर्ववेद में लगभग 22 स्थलों पर तथा यजुर्वेद और ब्राह्मण ग्रन्थों में कुल 31 स्थलों पर 'विदथ' शब्द का वर्णन आया है। वैदिक साहित्य में वर्णित

* एल0एल0एम0, पी-एच0डी0, असिस्टेन्ट प्रोफेसर, विधि संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

सार्वजनिक संस्थाओं में 'विदथ' भी एक महत्वपूर्ण संस्था थी। वह सभा और समिति से पृथक् थी। विदथ न्याय के साथ-साथ विद्या, ज्ञान और यज्ञों से विशेष सम्बन्ध रखती थी इस दृष्टिकोण से 'विदथ' को 'विद्वत् परिषद्' माना जा सकता है। ऐसा वर्णन भी दृष्टिगोचर होता है कि वैदिक यज्ञों से भी इसका विशेष सम्बन्ध था। प्रायः श्रेष्ठ एवं विद्वान् ब्राह्मण ही इसके सदस्य होते थे किन्तु सामान्य जनता भी विदथ में उपस्थित हो सकती थी। कुछ मन्त्रों के अध्ययन से ऐसा ज्ञात होता है कि विदथ में धर्म, विद्या, ब्रह्म, जीव, आत्मा, प्राण, मन, प्रकृति आदि से सम्बन्धित समस्याओं का समाधान किया जाता था। विदथ में इन विषयों पर प्रवचन, वाद-विवाद एवं परस्पर विचार-विनिमय आदि का आयोजन किया जाता था।[9]

(iii) 'विदथ' अथवा न्यायालय :

ऋग्वैदिक मन्त्रों के अनुसार 'विदथ' एक इकाई थी, जहाँ तर्क-वितर्क होता था।[10] यह समाज में वैचारिक निर्देशन देने तथा विधि को सबल बनाने का कार्य करता था।[11] ऋग्वैदिक मन्त्रों के अध्ययन से स्पष्ट प्रतीत होता है कि विदथ एक न्यायालय था, जहाँ अपने अधिकारों की माँग की जाती थी। अथर्ववेद में वर्णन आया है कि विदथ में न्यायाधीश के समक्ष साक्षी को लाया जाता था। जहाँ न्यायाधीश उसके अपराध के अनुसार उसे दण्ड देता था।[12] विदथ में पक्ष-विपक्ष से पूछताछ की जाती थी जहाँ तर्क-वितर्क के समय लोग परस्पर आवेगपूर्ण भाषा का प्रयोग करते थे।[13] विदथ में समस्याओं एवं विधि का प्रतिपादन विद्वतापूर्ण ढंग से किया जाता था क्योंकि समस्याओं पर विचार मन्थन करने वाले एवं निर्णय लेने वाले सुधिजन योग्य एवं विद्वान् होते थे, ऐसा वर्णन ऋग्वेद व अथर्ववेद दोनों में ही प्राप्त होता है।[14] विदथ में लोगों को अपना मत व्यक्त करने का पर्याप्त समय दिया जाता था जिससे वे अपना पक्ष विस्तार से प्रस्तुत कर सकें।[15] विदथ में न्यायाधीश लोग धैर्य से कार्य करते थे और निष्पक्ष न्याय निष्पादित करने का यज्ञ समान महान कार्य करते थे।[16] विदथ के उल्लेखों में लगभग 25 बार सांग्रामिक घटनाओं का उल्लेख है जिसमें इन्द्र को विदथ की शक्तिद्व सुवीरों का स्वामी तथा विदथ में लोगों को लाने वाला कहा गया है।[17] इस प्रकार वैदिक मन्त्रों के अध्ययन से स्पष्ट प्रतीत होता है कि विदथ मुख्यतः न्यायालय का कार्य करता था किन्तु अथर्ववेद में विदथ की भूमिका किञ्चित् धार्मिक निकाय जैसी प्रतीत होती है। यहाँ देवता विदथ के रक्षक माने गये हैं।[18] यहाँ धर्माचार्य न्यायालय का कार्य देखते थे।

अथर्ववेद में विदथ को स्वर्ग प्राप्ति का साधन या माध्यम माना गया है[19] क्योंकि न्यायालय से प्राप्त दण्ड का उपभोग कर लेने से पाप नष्ट हो जाते हैं और मनुष्य स्वर्ग को प्राप्त हो जाता है। ऋग्वेद में 'विदथ' को एक ऐसी इकाई बताया गया है, जहाँ तर्क-वितर्क होने के साथ-साथ समस्त प्रजा को वैचारिक निर्देशन देने तथा विधि को सबल बनाने का कार्य होता था।[20] 'विदथ' में उच्च अधिकारी अथवा न्यायाधीश दूर-दूर से आते थे, जो प्रायः सामन्त या राजा होते थे।[21] ऋग्वैदिक काल में महिलाओं को विदथ में जाने एवं अपना पक्ष (मत) प्रस्तुत करने का अधिकार था जो अथर्ववेद काल में भी यथावत् बना रहा।[22] तत्कालीन न्यायालय में सदस्यों के रूप में महिलाओं की भी परस्पर सहभागिता होती थी और न्यायालयीय निर्णयों में वे भी अपना मत व्यक्त करती थीं।

(iv) न्यायाधीश या न्यायाधिकारी :

ऋग्वैदिक न्यायपालिका में प्रधान न्यायाधीश राजा होता था जो अधिराज था, उसके साथ के उच्चाधिकारी या अन्य न्यायाधीश प्रायः सामन्त या राजा होते थे जो दूर-दूर से आते थे।[23] अथर्ववेद एवं यजुर्वेद में न्यायाधीश को न्यायाधिकारी अथवा 'मध्यमशी' भी कहा गया है।[24] यजुर्वेद तथा तैत्तिरीय संहिता में मध्यमशी को 'मध्यमस्थ' या 'मध्यमेष्ठ' भी कहा गया है।[25] वैदिक काल में न्यायाधीश शारीरिक, मानसिक और बौद्धिक रूप से सुदृढ़, धर्मशास्त्रों के ज्ञाता एवं विविध प्रकार के ज्ञान और गुणों से सम्पन्न होते थे। इन्हें दुष्ट और साधु पुरुष की सही परख होती थी। ये अपने न्याय से सम्बन्धित सभी निर्णय वेदों के अध्ययन और ऋषि-मुनियों की प्रज्ञा के आधार पर ही लेते थे, जिससे अपराधियों को दण्ड मिले और निरपराधों की रक्षा हो। यजुर्वेद में भी न्यायाधीश के लिए विभिन्न गुणों की चर्चा की गयी है यथा- जो यक्ष, शीलवान, कुलसम्पन्न, चतुर, प्रज्ञासम्पन्न, सत्यवादी व धार्मिक हो, न्यायप्रिय हो, धर्मशास्त्रों का ज्ञाता और दण्डनीति में पारंगत हो।[26] वैदिक न्यायाधिकारी अथवा न्यायाधीश के सम्बन्ध में एक स्थान पर वर्णन आया है कि सभी देवताओं के कहने पर प्रजापति ने सोम का रूप, आदित्य के तेज, इन्द्र का पराक्रम, विष्णु की विजय, कुबेर का त्याग एवं यम के दण्ड देने के अधिकार, इन सबको समाहित कर एक ऐसे राजा की सृष्टि की जो न्याय करने एवं अपराधी को दण्ड देने का अधिकारी था। उसे अपने पिता को भी दण्ड देने का अधिकार था। यजुर्वेद में भी राजा के द्वारा ही स्वयं न्यायाधीश का पद ग्रहण करने का उल्लेख मिलता है। अथर्ववेद के अष्टम मण्डल के तृतीय सूक्त में दण्डाधिकारी के सम्बन्ध में स्पष्ट वर्णन प्राप्त होता है। वहाँ दण्डाधिकारी के अनेकानेक विशेषण प्राप्त होते हैं यथा मित्रः, विप्रः, जातवेदः, अथर्ववत्, दिव्यज्योतिः, शुक्रशोचि, शुचिः, पावकः, ईज्यः, प्रथिष्ठः, वाजी, सहस्थः, ब्रह्मसंशितः, अजरः, अमर्त्यः, शर्वा, शिशानः, प्रतीचः, भंगुरावतः, हन्ता, रक्षोहा, आदि।[27]

उपर्युक्त विशेषणों के आधार पर इस सूक्त में दण्डाधिकारी में कुछ विशिष्ट गुण एवं योग्यतायें होनी चाहिये। एक न्यायाधीश अथवा दण्डाधिकारी दुष्टों का नाश करने वाला, ज्ञानी, शान्त, समबुद्धि रखने वाला, गम्भीर, विचारवान, जनता का हित करने वाला, पवित्र विचार वाला, तेजस्वी, श्रेष्ठ कर्म करने वाला, बलवान्, ज्ञान से सुसंस्कृत, स्तुत्य, विशुद्ध व्यवहार वाला, आन्तरिक व बाह्य इन्द्रियों से शुद्ध व पवित्र तथा सभी मनुष्यों से

मित्रवत व्यवहार करने वाला होना चाहिये। इन गुणों से विभूषित मनुष्य के न्यायाधीश बनने पर कभी अन्याय नहीं होगा,[28] इस प्रकार न्यायाधिकारी की स्वतंत्रता एवं निष्पक्षता सुनिश्चित करने का पर्याप्त ध्यान रखा गया था जो आधुनिक न्यायप्रणाली में नैसर्गिक न्याय के अन्तर्गत पक्षपात के विरूद्ध नियम की प्राथमिक अपेक्षा है। ऋग्वेद में न्याय से सम्बन्धित एक अन्य शब्द 'प्रदेष्टा' का भी प्रयोग हुआ है। जिसका शाब्दिक अर्थ है निर्दिष्ट की गयी दिशाओं अर्थात् नियमों का उल्लंघन न करने वाला तथा सदैव नियमों पर चलने वाला।[29] मुनिवर कौटिल्य ने 'प्रदेष्टा' शब्द का प्रयोग विशेष रूप से राज कर्मचारी के लिए किया है जो अनेकानेक कार्य निष्पादित करता है। कुछ विद्वानों ने प्रदेष्टा को न्यायाधीश के प्रतिनिधि के रूप में माना है जो समाहर्त्ता या मजिस्ट्रेट की तरह राजाज्ञा या फैसले की घोषणा करता था। यह राज्य के प्रशासन के विरुद्ध कार्यों को और अत्याचारियों को नियन्त्रण में रखने एवं उन्हें दण्डित करने का कार्य करता था। वैदिक काल में धर्म संकट के समय जिस प्रकार धर्माचार्यों से सलाह ली जाती थी उसी प्रकार न्यायपालिका सम्बन्धी संकट हेतु बृहस्पति को स्मरण किया जाता था। बृहस्पति को वैदिक न्यायपालिका में विधिवेत्ता का दायित्व प्राप्त था। वेदों में संयुक्त खण्डपीठों का भी उल्लेख मिलता है। कभी-कभी जब न्यायाधीश कुछ विवादों में अपना निर्णय देने में अक्षम हो जाता था तो उस स्थिति में वह शासनाध्यक्ष का मत भी ग्रहण करता था इस तथ्य की पुष्टि सम्राट इन्द्र और वरुण के संयुक्त सूक्तों से होती है।[30]

(v) न्याय सम्बन्धी प्रक्रिया :

वेदों में अर्थ, झगड़ा, विवाद या मुकदमे को व्यवहार पद कहा गया है। व्यवहार पद के अन्तर्गत वे विवाद आते हैं जो अभियुक्त या प्रतिवादियों के विरूद्ध वादियों की ओर से न्यायालय में लाये जायें। आपस्तम्ब धर्मसूत्रकार ने व्यवहार पदों का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है।[31] आपस्तम्ब धर्मसूत्र एवं महाभारत के अनुसार व्यवहार पद का अर्थ लेन-देन से है।[32] महाभारत शान्तिपर्व, मनुस्मृति एवं वशिष्ठ स्मृति में व्यवहार पद का अर्थ झगड़ा या मुकद्दमा से है।[33] अग्निपुराण में व्यवहार पद के चार चरणों का उल्लेख मिलता है- तर्क, पक्ष, समर्थन, प्रत्युक्ति एवं निर्णय। इससे स्पष्ट है कि यहाँ भी विवाद को ही व्यवहार पद माना गया है। अतः व्यवहार पद का प्रयोग न्यायालयीन प्रक्रिया या न्यायविधि के अर्थ में ही हुआ है। आचार्य शुक्र ने शुक्रनीति ग्रन्थ में 'व्यवहार पद' की व्याख्या करते हुए कहा है कि ''धर्मशास्त्र एवं आचार के विरुद्ध मार्ग का आश्रय लेकर दूसरों के द्वारा पीड़ित किये जाने पर, यदि कोई राजा के पास अथवा न्यायालय में आवेदन-पत्र देता है तो उसे 'व्यवहार पद' कहते हैं।[34]

किसी भी व्यवहार पद के समाधान में चार मुख्य स्थितियाँ आती हैं- 1. अभियोग 2. उत्तर 3. क्रिया 4. निर्णय। इन्हें न्याय व्यवस्था का चतुष्पाद अथवा न्यायविधि के सम्पादक तत्व भी कहा जाता है। उत्तर वैदिक कालीन विद्वानों में भी इनके भेद एवं नामकरण में भिन्नता है। कुछ स्मृतिकारों ने छः या सात चरणों की भी चर्चा की है। महर्षि याज्ञवल्क्य एवं बृहस्पति ने उक्त चारों चरणों की चर्चा की है।[35] महर्षि नारद ने धर्म व्यवहार, चरित्र एवं राजशासन को चतुष्पाद कहा है।[36] महर्षि कात्यायन ने इसे अभियोग, उत्तर, प्रत्याकलित एवं क्रिया कहा है।[37] वैसे न्याय के साधन में प्रतिज्ञा, उत्तर, संशय, हेतु, परामर्श, प्रमाण एवं निर्णय आदि कई चरण होते हैं। वैदिक काल में न्यायालयों की कोई विधिवत स्थापित प्रक्रिया का स्पष्ट एवं क्रमवार वर्णन तो उपलब्ध नहीं होता है किन्तु न्याय एवं न्यायलयीय प्रक्रिया के आधार स्तम्भ साक्ष्य-साक्षी तथा प्रमाण का उल्लेख विभिन्न स्थानों पर प्राप्त होता है। उत्तर वैदिक काल एवं विशेष रूप से स्मृतिकाल में न्यायालयों में प्रक्रिया सम्बन्धी नियमों की प्रतिपादना हो चुकी थी। स्मृति साहित्य में न्यायालयीन प्रक्रिया विधि का विस्तृत विवेचनप्राप्त होता है। सम्भवतः यह वेदों में न्यायालय सम्बन्धी प्रतीकात्मक संकेतों के आधार पर यत्र-तत्र न्यायालय प्रक्रिया सम्बन्धी पाये जाने वाले नियमों एवं सिद्धान्तों के आधार पर ही विकसित हुयी है क्योंकि स्मृतियों में अधिकतर वेदों में बिखरी हुयी एवं अस्पष्ट विधि को क्रमबद्ध और स्पष्ट करने का कार्य किया गया है।[38] किसी भी व्यवहार का आरम्भ अभियोग से होता है जहाँ वादी अपराधी पर अभियोग लगाता है कि उसने यह व्यवहार पद के योग्य कार्य किया है अथवा मेरे द्वारा किये जाने वाले व्यवहार पद के ये कारण हैं। वैदिक काल में अभियोग प्रमुखतः दो प्रकार के होते थे- हिंसामूलक एवं अर्थमूलक जिनकी तुलना वर्तमान न्याय व्यवस्था में प्रचलित फौजदारी (Criminal) एवं सिविल (Civil) वादों (Cases) से की जा सकती है। न्याय के साधन में दूसरा चरण प्रतिवादी का प्रतिउत्तर होता था जिसमें प्रतिवादी या प्रत्यर्थी अभियोग को निराकृत करने हेतु अपना पक्ष प्रस्तुत करता था। प्रत्यर्थी को अपना पक्ष प्रस्तुत करने के लिए पर्याप्त समय दिया जाता था। ऐसा उल्लेख भी मिलता है कि न्यायाधीश को विवाद पर निर्णय लेने से पूर्व अर्थी या प्रत्यर्थी से एकान्त में बात नहीं करनी चाहिये। इस प्रकार आधुनिक न्याय व्यवस्था में प्रचलित नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों का मूल स्त्रोत वैदिक कालीन न्याय व्यवस्था में ही विद्यमान था। व्यवहार पद के तीसरे चरण की क्रिया के अन्तर्गत न्यायाधीश अथवा राजा वादी एवं प्रतिवादी (अर्थी एवं प्रत्यर्थी) के पारस्परिक आरोपों एवं प्रत्यारोपों तथा स्पष्टीकरण को सुनता था। इसके पश्चात् अवलोकन एवं विचार विनिमय कर निर्णय देता था। ऋग्वेद के एक मन्त्र में अर्थी का अभियोग के लिए न्यायालय या सभा में जाने का स्पष्ट संकेत प्राप्त होता है जहाँ बिना भाई की स्त्री, धन के हिस्से के लिए सभा अर्थात् न्यायालय में जाती है।[39] निरुक्त के एक मन्त्र में सभा अथवा न्यायालय के अर्थ में 'गर्त्त' शब्द आया है। निरुक्तकार के अनुसार 'गर्त्त' सभा के स्थाणु को कहते हैं जिस पर चढ़ने पर सत्यभाषण करना पड़ता है।[40] यह स्थाणु आधुनिक न्यायालय का कठघरा कहा जा सकता है जिसमें खड़े होकर अर्थी, प्रत्यर्थी एवं साक्षी सत्यभाषण करने की शपथ लेकर अपना पक्ष प्रस्तुत करते हैं। यजुर्वेद के एक

मन्त्र पर भाष्यकार महीधर कहते हैं- **''सभादिषु रूद्रदिरूटः कर्त्तव्येति तात्पर्यन।''**[41] अर्थात् सभा और सभागार दोनों को अभियोग के निर्णय में रुद्र के समान उग्र रूप या उग्र दृष्टि रखनी चाहिये। यहाँ उग्र दृष्टि से तात्पर्य सम्भवतः अभियोग का निर्णय करते समय तथा साक्ष्यों एवं साक्षियों का अवलोकन करते समय न्यायाधीशों को पूर्ण सावधानी, सतर्कता, निष्पक्षता एवं कठोरता का व्यवहार करना चाहिये से है।

(vi) साक्ष्य एवं प्रमाण :

न्यायालय की प्रक्रिया के अन्तर्गत किसी भी अभियोग के निर्धारण में साक्ष्य एवं साक्षियों की अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका होती है। वर्तमान न्याय व्यवस्था तो पूर्णरूपेण साक्ष्य एवं साक्षियों के आधार पर ही संचालित हो रही है। वैदिक काल में भी न्यायालयीय प्रक्रिया के अन्तर्गत साक्ष्य एवं साक्षियों पर पर्याप्त ध्यान था। विष्णु धर्मसूत्र में[42] तीन प्रकार के लिखित प्रमाणों, जिन्हें मानुष प्रमाण माना गया है, के विषय में बताया गया है- (1) वह जो राजा या कर्मचारी के समक्ष लिखा जाए। (2) वह जिस पर साक्षी अथवा साक्षियों के हस्ताक्षर हों। (3) वह जो बिना साक्षियों के हस्ताक्षर के हों। यहाँ लेख्य प्रमाण के तीनों भेदों में से प्रथम प्रकार को राजकीय प्रमाण की संज्ञा दी गयी है।

लेख्य प्रमाण के सम्बन्ध में विष्णुधर्मसूत्र[43], नारद स्मृति[44], कात्यायन स्मृति[45] एवं स्मृति चन्द्रिका[46] में कहा गया है कि वही लेख प्रमाण प्रमाणिक माना जाता है जो देश काल एवं लोकाचार के विरुद्ध न हो, जो नियमानुकूल लिखित हो तथा जिसकी भाषा स्पष्ट, सुबोध व संदेहरहित हो। उस लिखित प्रमाण पर पञ्चारूढ़ अर्थात् ऋणी, ऋणदाता, दो-साक्षियों तथा लिपिक के भी हस्ताक्षर होने चाहिये। लिखित प्रमाण के अतिरिक्त तत्कालीन न्याय व्यवस्था में भुक्त या भोग साक्ष्य भी प्रचलन में था। लिखित प्रमाण के वाद-विवाद निर्णय हेतु यह द्वितीय साक्ष्य माना गया है। लिखित, भोग एवं साक्षी इन तीनों मानुष प्रमाणों में से भूमि-विवाद में भोग या दखली को अत्यधिक महत्व दिया जाता था। विष्णु धर्मसूत्र में तीन पीढ़ियों के भोग को चौथी पीढ़ी के लिए स्वामित्व का आधान माना गया है।[47] स्वामित्व हेतु तीन पीढ़ियों द्वारा भोग की आवश्यकता भुक्ति के दीर्घकालीन अवधि होने की अपेक्षा करती है। आधुनिक न्याय व्यवस्था में चिरभोगाधिकार एवं सुखाधिकार वैदिक कालीन न्याय व्यवस्था में भुक्ति या भोग का ही आधुनिक एवं परिवर्धित रूप है।

विवाद का लेख्य प्रमाणों द्वारा समाधान न निकल पाने पर साक्षी को न्यायालय में बुलाया जाता था। साक्षी से तात्पर्य उस व्यक्ति से है जिसने साक्षात् अपने नेत्रों से अपराध होते हुए देखा हो।[48] श्वेताश्वतरोपनिषद् में भी साक्षी शब्द कई बार आया है।[49] वेदों में अग्नि एवं युग्म सूक्तों का निर्माण साक्ष्य के रूप में इंगित है यथा- अग्नि के साथ मरुत, इन्द्र के साथ वरुण वस्तुतः साक्षीभूत ही हैं।[50] उस समय न्यायालय में उपस्थित किये जाने वाले साक्षियों की संख्या पर भी विचार किया गया है। विष्णु धर्मसूत्र में किसी भी विवाद में एक साक्षी का आश्रय लेना उचित नहीं माना गया है।[51] परवर्ती सूत्रकारों ने साक्षियों की संख्या के सम्बन्ध में पृथक्-पृथक् नियम व सिद्धान्त प्रतिपादित किये हैं। विष्णु धर्मसूत्र में कहा गया है कि लोभ, विमोह, भय, आनन्देक्षा, क्रोध, मित्रता, अपरिपक्वता की अवस्था में साक्षी के साक्ष्य बदल सकते हैं क्योंकि यह साक्ष्य मौखिक होता है।[52] राजा को भी साक्षी बनाया जा सकता है।[53] विष्णु धर्मसूत्र के इस मत का अनुसरण बाद के स्मृतिकारों तथा कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में भी किया है।[54] वैदिक काल में न्याय-व्यवस्था में साक्षी द्वारा झूठा साक्ष्य न प्रस्तुत किया जा सके, इसके बारे में पूर्ण सतर्कता एवं सावधानी बरतने का संकेत मिलता है। गौतम धर्मसूत्र के अनुसार प्राङ्विवाक् के समक्ष सत्य कथन करना सबसे श्रेष्ठ माना गया है तथा कहा गया है कि यदि साक्षी घटना को जानते हुए भी साक्ष्य न दे तो वह भी दण्ड का अधिकारी होता है।[55] इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि झूठा साक्ष्य प्रस्तुत करने पर वैदिक काल में भी दण्ड का प्रावधान था। लेख्य साक्ष्य, साक्षी अथवा उपर्युक्त मानुष प्रमाणों के आधार पर विवादों का निर्णय न होने की स्थिति में दिव्य प्रमाण सहायक होते थे। दिव्य प्रमाण के प्रचलन का संकेत ऋग्वेद में प्राप्त होता है।[56] व्यवहारमयूख में दिव्य प्रमाण की परिभाषा करते हुए कहा गया है कि मानुष प्रमाणों से निश्चित न होने पर जो प्रमाण विवाद को तय करता है, उसे दिव्य प्रमाण कहते हैं। ऋग्वेद में उक्थ ऋषि के पुत्र दीर्घतमा ने प्रार्थना की है कि दस गुनी लकड़ियाँ अथवा ईंधन की अग्नि उसे जला न सके, वह नदी जिसमें उसे हाथ-पाँव बाँधकर फेंक दिया गया है, उसे डुबा न सके, इस कथन में अग्नि एवं जल को दिव्य प्रमाण के रूप में देखा जा सकता है।[57] ऋग्वेद में अन्यत्र भी ऐसे संकेत प्राप्त होते हैं। अथर्ववेद में भी दिव्य प्रमाण के प्रचलन का आभास होता है।[58] ताण्ड्यब्राह्मण में एक कथा का उल्लेख है कि वत्स की विमाता ने उसे शूद्रा से उत्पन्न कहा और वत्स ने इसका विरोध करते हुए कहा कि वह ब्राह्मण है। वह अपने कथन की पुष्टि के लिए अग्नि में कूद पड़ा और बिना जले बाहर निकल आया।[59] आचार्य मनु ने भी इस वृत्तान्त की चर्चा की है।[60] छान्दोग्योपनिषद् में भी गर्म कुल्हाड़ी पकड़ने का वृत्तान्त मिलता है।[61] आपस्तम्ब धर्मसूत्र में भी दिव्य प्रमाण की चर्चा की गयी है, जहाँ कहा गया है कि राजा को साक्षियों से प्रश्न करके और दिव्य प्रमाण का आश्रय लेकर दण्ड देना चाहिये।[62] प्रमुख रूप से ऋग्वेद, अथर्ववेद, ताण्ड्यब्राह्मण, छान्दोग्योपनिषद् एवं विष्णु धर्मसूत्र में निम्नलिखित दिव्य प्रमाणों के प्रचलन का संकेत प्राप्त होता है- (1) तुला या घट प्रमाण (2) अग्नि दिव्य प्रमाण (3) जल दिव्य प्रमाण (4) कोष दिव्य प्रमाण (5) विष दिव्य प्रमाण।[63]

दिव्य प्रमाणों के औचित्य की स्वीकार्यता पर आधुनिक समय में संदेह प्रकट किया जा सकता है क्योंकि आलोचकों का मानना है कि अग्नि, जल आदि प्राकृतिक शक्तियाँ हैं जिनके भय से व्यक्ति सत्य बोल सकता है परन्तु क्या इन्हें प्रमाण के रूप में स्वीकार

करना उचित होगा? वैदिक काल में दिव्य प्रमाण का प्रयोग उस स्थिति में किया जाता था जब समस्त मानुष प्रमाण असफल हो जाते थे। ऐसी परिस्थिति में न्याय के निष्पादन के लिए यही एक अन्तिम उपाय शेष था। मेरे विचार से इन विधियों को प्रमाण के रूप में ग्रहण करने के पीछे भारतीय दार्शनिकों का दृष्टिकोण बड़ा ही मनोवैज्ञानिक था। जो व्यक्ति अपराध में लिप्त होता है वह अन्तर्मन में सदैव भयभीत व सशंकित रहता है और इन परीक्षाओं के क्रम में वह कुछ असामान्य आचरण अवश्य करता है और इस प्रकार उसके अपराध या दोष का प्रमाण मिल जाता था। कभी-कभी तो इन परीक्षाओं से भयभीत होकर अपराधी द्वारा परीक्षा प्रारम्भ होने से पूर्व ही अपराध स्वीकार करने की संभावना रहती थी। अतः इन परीक्षाओं को अवैज्ञानिक एवं गलत नहीं माना जा सकता क्योंकि ये मनोवैज्ञानिक तथ्यों पर आधारित थीं। भारतवर्ष के ग्रामीण क्षेत्रों में आज भी इनसे मिलती-जुलती विधियों का प्रयोग सामान्य विवादों के निपटारे में दृष्टिगोचर होता है। ईश्वर, वेद, धर्म, गंगा या संतान आदि की शपथ लेने की परम्परा भी तो इन्हीं दिव्यों का ही एक अंश है। इन परीक्षाओं का तत्कालीन न्याय व्यवस्था में अत्यधिक महत्व था तथा निर्णय करते समय सत्य की खोज में काफी सहायक थी। वैदिक कालीन न्याय व्यवस्था में प्रचलित दिव्य प्रमाणों को पाश्चात्य देशों में भी अपने-अपने ढंग से प्रयोग में लाया गया है। इंग्लैण्ड में तप्त लौह खण्ड को पकड़वाना, खौलते हुए जल या तेल में हाथ डलवाना या अभियुक्त को उसमें डालना आदि प्रयोग होता था। पानी में डुबे रहना निर्दोषिता का एवं तैरते रहना अपराधी होने का प्रमाण माना जाता था।[64] नार्थेपटन के असाईज ने (1176 ई0 में प्रकाशित ग्रन्थ में) डकैती, चोरी, आग लगाने जैसे अपराध के लिए जल के दिव्य प्रयोग का उल्लेख किया है। किन्तु 1215 में इंग्लैण्ड में दिव्य को अवैधानिक घोषित कर दिया गया था, जबकि भारत में 18वीं शताब्दी तक इसका प्रयोग होता रहा है।[65] भारत में सीता की अग्नि परीक्षा एवं प्रहलाद की दहन चेष्टा के दृष्टान्त इसी दिव्य प्रमाण का परिणाम माने जा सकते हैं।

(vii) निष्कर्ष :

वैदिक साहित्य के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि वैदिक कालीन राज्य व्यवस्था में जनमानस को न्याय प्रदान करने हेतु न्यायालय की स्थापना की गयी थी। न्यायालय के रूप में विदथ नामक संस्था सभा एवं समिति से पृथक एवं स्वतंत्र थी। वेदों में न्यायालय के उच्चाधिकारी अथवा न्यायाधीश के विभिन्न गुणों की चर्चा से प्रतीत होता है कि वैदिक काल में भी न्यायाधीश होने के लिए कुछ विशेष योग्यतायें निर्धारित की गयी थीं। न्यायालयीय कार्यवाही के लिए एक सुस्थापित प्रक्रिया का उल्लेख भी प्राप्त होता है जिसमें अभियोग, उत्तर, क्रिया तथा निर्णय को न्याय व्यवस्था का चतुष्पाद माना गया था। न्यायालयीय प्रक्रिया के अन्तर्गत साक्ष्य एवं साक्षियों पर विशेष ध्यान दिया जाता था। साक्ष्यों को लेख्य प्रमाण, भोग अथवा भुक्ति प्रमाण तथा दिव्य प्रमाण आदि प्रकारों में विभाजित कर परिस्थितियों की आवश्यकतानुसार उनका प्रयोग किया जाता था। तत्कालीन न्याय व्यवस्था में इस सम्बन्ध में पूर्ण सतर्कता एवं सावधानी रखी गयी थी कि साक्षी द्वारा झूठा प्रमाण प्रस्तुत न किया जा सके और इसीलिए झूठा साक्ष्य प्रस्तुत करने पर दण्ड का प्रावधान किया गया था। वैदिक काल में जहाँ एक ओर राजा विधि के अनुसार न्याय प्रदान करने के कर्तव्य के अधीन था वहीं दूसरी ओर वह अपराध करने पर स्वयं भी दण्ड के अधीन था जो विधि के शासन की आधुनिक अवधारणा के मूल स्रोत का द्योतक है। न्याय व्यवस्था में दण्ड को सरल बनाने के उद्देश्य से प्रायश्चित, दण्डमुक्ति एवं क्षमा को भी स्थान प्रदान किया गया था। पुरुषों के समान स्त्रियों के लिए भी समान दण्ड व्यवस्था थी। राजा पिता को भी दण्डित कर सकता था। यह सभी व्यवस्थायें 'समानता' तथा 'समान अपराध समान दण्ड' के सिद्धांत को मान्यता प्रदान करती हैं। अतः निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है आधुनिक विकसित एवं व्यवस्थित न्याय व्यवस्था का मूल बीज वैदिक काल में ही विद्यमान था तथा विश्व के विभिन्न देशों की विकसित न्याय व्यवस्था पर वैदिक कालीन न्याय व्यवस्था का प्रभाव स्पष्टतः दृष्टिगोचर होता है। अतः न्याय के क्षेत्र में वेदों का भारत को ही नहीं अपितु सम्पूर्ण विश्व को महान एवं अमूल्य योगदान है। भारत की प्राचीन न्याय व्यवस्था पर अध्ययन एवं शोध आधुनिक न्याय व्यवस्था को और अधिक समृद्ध एवं प्रभावी बनाने में सहायक होगा।

संदर्भ सूची :

1. यजुर्वेद 7.14
2. अथर्ववेद 8.3.1-7, 10, 12, 14, 15, 17, 19, 23
3. डॉ0 सूर्यकान्त, ''वैदिककोश'', चौखम्भा कृष्णादास एकेडमी, 2012, पृ0 214
4. व्यवहारस्तु वेदात्मा भेद प्रत्यय दृश्यते।
   व्यवहारः स्मृतोयश्च स वेदविषयात्मकः।। महाभारत, शान्तिपर्व 121.51.531
5. मैक्डॉनेल और कीथ, ''वैदिक इन्डेक्स'' (डॉ0 रामकुमार राय द्वारा अनुवादित), चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी, 2014, पृ0 296
6. अथर्व0 1.13.4/132.1/5.20.12/8.1.6/17.1.15
7. काशी प्रसाद जायसवाल, ''हिन्दू राज्यतंत्र'' विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2012, पृ0 24
8. ऋग्वेद 1.60.1/3.26.6/3.38.5
9. डॉ0 दिलीप वेदालङ्कार, ''वेदों में मानववाद'', अमर भारती अन्तर्राष्ट्रीय, बड़ोदरा, पृ0 228
10. (क) वयंत इन्द्र विश्वह प्रियासः सुवीरसो विदथमा वदेय।। ऋ0 2.12.15
    (ख) आ ब्रह वदेय विदथे सुवीराः। ऋ0 2.1.16

11. बहवः सूरचक्षसोऽग्नि जिव्हा ऋतावृधः।। ऋ0 7.66.10
12. अथर्व0 8.3.1, 2, 3, 4, 5, 6, 7, 10, 12, 13, 14 में विस्तार से वर्णित
13. एतानि वामश्विना वीर्याणि प्रपूर्त्याणि अयवोवोचन्।
ब्रह्मकृष्वन्तो बृषठायुभ्यां सुवीरा सो विदथ आ वेदन।। ऋ0 1.117.25
14. (क) वही- ऋ0 2.12.15-16/7.66.10/अथ0 8.3 सम्पूर्ण सूक्त
(ख) अमूरो होता व्यसादि विश्वग्निन्द्रो विदयेषु प्रचेताः।। ऋ0 4.6.2
(ग) कविर्न, निष्यं विदथानि साधन वृषा यत् सेकं विषपानो अर्चात्। ऋ0 4.16.3
(घ) विभ्वतष्टो विदथेषु प्रवाच्यो यं देवासोऽवथा स विचर्षार्णि।। ऋ0 4.36.5
15. ये स्तोतृभ्यो गोअग्रामश्वपेशसमग्ने रातिमुपसृजन्ति सूरयः
अस्माच्च ताश्च प्र हि नेषि वस्य आ बृहद्वदेम विदथे सुवीराः।। ऋ0 2.1.16
16. त्वमर्यमा सत्पतिर्यस्य संभुजं त्वमंशो विदथे देव भाजयुः।। ऋ0 2.1.4
17. (क) तं गूर्तयो नेमन्निषः.....अधिक रोह तेजसा।। ऋ0 1.56.2
(ख) इन्द्र याह्युप नः परावतो नायमच्छा विदथानीव सत्पतिरस्तं राजेव सत्पतिः।। ऋ0 1.30.1
18. माध्वी धर्तारा विदथस्य सत्पती तप्तं धर्मं विपतं रोचने दिवः। अथ0 7.73.4
19. यदीमुशन्तमुशतामनु ऋतुमग्निं होतारं विदथाय जीजनन्।। अथ0 18.1.20
20. (क) वयं त इन्द्र विश्वह प्रियासः सुवीरासो विदथमा वदेम।। ऋ0 2.12.15
(ख) बहवः सूरचक्षसोऽग्नि जिह्वा ऋतावृधः।। ऋ0 7.66.10
(ग) ऋ0 3.14.1
21. इन्द्रं याह्युप नः परावतो नायमच्छा विदथानीव सत्पति।। ऋ0 1.30.1
22. (क) आस्थापयन्त युवतिं युवाः शुभे निमिश्ला विदथेषु पज्राम्।
अर्को यद् वो मरूतो हविष्मान् गायद् गाथं सुतसोमो दुवस्यन्।। ऋ0 1.167.6
(ख) गृहान् गच्छ गृहपत्नी यथाऽसो वशिनी त्वं विदथमा वदासि।। अथ0 14.1.20
23. ऋ0 1.130.1
24. क ततो यक्षमं वि बाधस उग्रो मध्यमशीरिव।। अथ0 4.9.4/यजु0 12.86
25. सजातानां मध्यमस्था एधि राजामग्ने विहव्यो दीदिहीह।। यजु0 27.5
26. (क) प्रेदग्ने ज्योतिष्मान् याहि शिवेभिरर्चिभिष्टवम्।
बृहद्भिर्भानुभिर्भासन्मा हिं सीस्तन्वा प्रजाः।। यजु0 12.2
(ख) अक्रन्ददग्नि स्तनयन्निव द्यौः क्षमा.....रोदसी भानुना भात्यन्तः।। यजु0 12.33
27. अथर्ववेद 8.3.1, 2, 3, 6, 20, 21, 22, 25, 26
28. वही
29. दिशः सूर्यो न भिनाति प्रदिष्टा दिवेदिवे हर्यश्वप्रसूताः।। ऋ0 3.30.12
30. ऋ. 1.17/7.82/7.83/7.84/7.85 एवं 8.59
31. आपस्तम्ब धर्मसूत्र- 1.9.24/1.9.25.1-2/1.10.28.15-20/2.10.26.1-9/9.25.4-11/10.27.141
32. आपस्तम्ब धर्मसूत्र- 2.6.16-17
महाभारत उद्योग पर्व- 37/30
33. (क) व्यवहारान्ददृक्षुस्तु ब्राह्मणैः सह पार्थिवः।
मन्त्रज्ञैर्मन्त्रिभिश्चैव विनीतः प्रविशेत्सभाम्।। मनु0 8.1
(ख) राजमन्त्री सदः कार्याणिकुर्याद। द्वयोर्विवादमानर्योने पक्षान्तरं गच्छेत्। यथासनमपराधो ह्यन्ते।। वसिष्ठ स्मृति 16.1
34. स्मृत्याचारव्यपेतेन मार्गेणाधर्षितः परैः।
आवेदयति चेद्राजे व्यवहारपदं हि तत्।। शुक्रनीति 4.5.64-65
35. (क) याज्ञवल्क्यस्मृत 2.8
(ख) धर्मेणव्यवहारेण चरित्रेण नृपाज्ञया।
चतुष्प्रकारोऽभिहितः सन्दिग्धेऽर्थेविनिर्णयः।। स्मृतिचन्द्रिका, पृ 10
36. नारदस्मृति 1.10
37. कात्यायन 31, अपरार्क, पृ0 616 में उद्धृत
38. "हिन्दू लॉ"- पारस दीवान, पृ0 570
39. अभ्रातेव पुंस एति प्रतीची गर्तारूगिव सनये धनानाम्।
जायेव पत्य उशती सुवासा उषा हस्रेव नि रिणीते अप्सः।। ऋ0 1.124.7
40. गर्त्तः सभास्थाणुगृणातेः सत्यसंगरो भवति।। निरुक्त 3.5.1
41. यजु0 16.23 पर उब्बंट महीधर का भाष्य, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली
42. विष्णु धर्मसूत्र 7/12
43. विष्णु धर्मसूत्र 7.6.10
44. नारदस्मृति 4.37
45. कात्यायन स्मृति 360-364
46. स्मृति चन्द्रिका 2, पृ0 70
47. विष्णु धर्मसूत्र 6.187
48. साक्षात् द्रष्टरि संज्ञायाम्। सिद्धान्त कौमुदी 5.2.91 सूत्र
49. एको देवः सर्वभूतेषुगूढः.....साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च।।
श्वेताश्वतरोपनिषद् 6.11

50. अग्निमतरूत ऋग्वेद 1.19/3.26.4-6/5.60.1,7-8/8.103.14/अथर्व0 2.1.19
इन्द्रावरुण = ऋग्वेद 1.17/4.41/4.42.7-10/6.68/7.82/7.83/7.84/7.85 एवं 8.59
51. विष्णु धर्मसूत्र 8.5
52. विष्णु धर्मसूत्र 8.1-4
53. विष्णु धर्मसूत्र 8.11
54. कौटिल्य-अर्थशास्त्र 3.11/मनुस्मृति 8.65/याज्ञवल्क्य स्मृति 2.70.7/नारद स्मृति 4.147-178/कात्यायन स्मृति 360-364
55. गौतम धर्मसूत्र 13.13
56. मा मोमेधो दशतयश्चितो धाक् प्र यदवां बद्धस्त्मनि स्वादति क्षाम् न मा गरन् नद्यो मातृतमा दासा यदीं सुसमुब्धमवाधुः।। ऋ0 1.158.4-5
57. वही, ऋ0 1.158.4-5
58. आ दधामि ते पदं समिद्धे जातवेदसि।
अग्निः शरीरं वेवेष्ट्वसु वागपि गच्छतु।। अर्थ0 2.12.8
59. ताण्ड्यब्राह्मण 14.6.6
60. वत्सस्यस हृदयमिशस्तस्तसयपुराध्रात्रा यवीयसा।
नाग्निर्ददाह रोमापि सत्येन जगतः स्पर्श।। मनुस्मृति 8.116
61. छान्दोग्योपनिषद् 6.16.11
62. आपस्तम्ब धर्मसूत्र 2.11.29.6/2.15.11.3
63. ऋग्वेद 1.158.4-5/अथर्ववेद 2.12.8/ताण्ड्यब्राह्मण 14.6.6/छान्दोग्योपनिषद 6.16.11/विष्णु धर्मसूत्र 4.19, 14.405
64. सर जेम्स फिट्जेम्स स्टीफेन, ''हिस्ट्री ऑफ क्रिमिनल लॉ ऑफ इंग्लैण्ड'', ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, जिल्द 1, 2014, पृ0 78
65. (क) सैमुअल बील, ''बुद्धिस्ट रिकॉर्ड ऑफ द वेस्टर्न वर्ल्ड'', मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 2011, पृ0 84
(ख) ठाकुर प्रसाद शर्मा, ''ह्वेनसांग की भारत यात्रा'', आदर्श हिन्दी पुस्तकालय, इलाहाबाद, 1972, पृ0 172

●

छन्द रामायण में रस योजना

*डॉ0 सुमन तिवारी**

ब्रजभाषा में 'छन्द रामायण' के रचयिता श्री महेश चन्द्र शुक्ल का जन्म उत्तर प्रदेश के आगरा जनपद के नौगांव मदावर में सन् 6 दिसम्बर 1932 में हुआ था। इनके पिता श्री रामाधार शुक्ल एवं माता श्रीमती त्रिवेणी देवी थीं। इनका पैत्रिक गांव 'लखना' इटावा जनपद में है। एम0ए0 तक की शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् शुक्ल जी ग्राम विकास विभाग में राजपत्रित अधिकारी बी0डी0ओ0 के पद पर कार्यरत हो गये। बचपन से ही लेखन कार्य में इनकी विशेष रुचि थी। इसी रुचि के कारण इन्होंने अनेक ग्रंथों की रचनाएँ की हैं। जिसमें छन्द रामायण, हनुमान रामायण, श्रीमद् छन्द भागवत (महाकाव्य) श्रीकृष्ण चरित्र और सुदामा चरित्र (खण्ड काव्य) देश नहीं अपना बांटो, दर्पण, ग्राम्या, श्री अरूणिमा (काव्य संग्रह) ग्राम सेवक (उपन्यास), घाट वाले बाबा (संस्मरण) दरार, रहीम, काका, भत्या, पक्का कागज के अतिरिक्त सोनू मोनू बाल गीत, राष्ट्रीय बाल गीत आदि प्रसिद्ध हैं। सन् 1990 में राजकीय सेना से सेवा निवृत्त होने के पश्चात् अपनी पत्नी श्रीमती शकुन्तला देवी के आग्रह तथा अपने इष्ट देव के आशीर्वाद से ब्रजभाषा में 'छन्द रामायण' की रचना की, जिसे ब्रजभाषा का प्रथम रामायण माना गया। इस रचना के लिए सन् 1994 ई0 में भारत के राष्ट्रपति द्वारा इन्हें 'ब्रज तुलसी' की उपाधि से विभूषित किया गया। देश विदेश के अनेक विद्वानों ने भी छन्द रामायण की भूरि-भूरि प्रशंसा की। इस ग्रंथ के लगभग प्रत्येक छन्द में 'राम' के दर्शन होते हैं। ऐसा माना जाता है कि 'छन्द रामायण' की रचना पूर्ण होने के पश्चात् एक अद्भुत घटना घटित हुई जिसमें, शुक्ल जी के दाहिने हाथ की हथेली पर हस्त रेखाओं के माध्यम से स्वस्तिक का चिह्न तथा बायें हाथ की हथेली में ओम् का चित्र बन गया इतना ही नहीं, हस्त रेखाओं के माध्यम से ही अन्य धर्मों के भी प्रतीक चिन्ह बन गये।[1] शुक्ल जी ने यह रचना 'स्वात्तः सुखाय' की भावना से परिचालित होकर किया इसीलिए यह रचना लोकोत्तर तथा चमत्कार से पूर्ण हो गयी है। राम कथा का रूप विभिन्न वैदिक तथा पौराणिक ग्रंथों में बिखरा हुआ हैं किन्तु, कवियों की प्रेरणा का मूल उत्स वाल्मीकि रामायण तथा तुलसीकृत रामचरित मानस है इन्हीं कथा सूत्रों को अपनी प्रतिभा तथा कारयित्री क्षमता के उद्रेक से कवि नवीनता, मौलिकता तथा नवीन उद्भावनाओं के साथ प्रस्तुत करता है। शुक्ल जी ने तुलसी के रामचरित मानस को आधार बनाकर बालकाण्ड से लेकर राम के जल समाधि तक की कथा को काण्डों में विभक्त कर प्रस्तुत किया है, जिसमें कवि की अपनी मौलिक उद्भावना का समावेश भी है। प्रस्तुत रचना में भावों के मार्मिक प्रसंगों के अतिरिक्त प्रबंधात्मकता, चारित्रिक महत्ता, सांस्कृतिक गरिमा, सरस संवादों की सुन्दर योजना तथा नौ रसों का सुन्दर परिपाक भी है।

काव्यशास्त्र के अन्तर्गत रस की प्रतिष्ठा का आधार भरतमुनि का वह सूत्र रहा है, जिसमें उन्होनें स्पष्ट लिखा है कि विभाव, अनुभाव एवं संचारी भावों के संयोग से रस की निष्पति होती है-

विभावा अनुभावास्तत्कथ्यन्ते व्याभिचारिणः।

व्यक्तः स तैर्विभावाद्यै भावो रसः स्मृतः।।[2]

विभाव, अनुभाव तथा संचारी भावों का वह संयोग स्थायीभाव के साथ ही होता है। भरत के सूत्र में 'संयोग' तथा 'निष्पत्ति' ऐसे शब्द हैं जिनका विश्लेषण अनेक आचार्यों ने अनेक प्रकार से किया है। इस प्रकार रस विषयक प्रतिष्ठित विविध मतों में चार आचार्यों के ही मत मुख्यतः माने गये हैं-

1. भट्टलोल्लट का आरोपवाद (उत्पत्तिवाद)
2. शंकुक का अनुमितिवाद (अनुमानवाद)
3. भट्टनायक का भोगवाद (भुक्तिवाद)
4. अभिनवगुप्त का अभिव्यक्तिवाद

एक वस्तु में दूसरी वस्तु के आरोप के अनुसार रस की प्रतीति को आरोप ज्ञान जन्य माना गया है। भट्लोल्लट ने संयोग शब्द को सम्बंध के अर्थ में स्वीकार कर उसके तीन भेद माने हैं- उत्पाद्योत्पादक भाव, गम्यगमक भाव तथा पोष्यपोषक भाव। इसी प्रकार 'निष्पत्ति' का अभिप्राय उत्पत्ति अभिव्यक्ति एवं पुष्टि है। आचार्य लोल्लट की मान्यता है कि उत्पाद तथा उत्पादक सम्बन्ध के द्वारा भी 'विभाव' रसोत्पत्ति करते हैं। गम्यगमक भाव द्वारा अनुभाव ही रस को अभिव्यक्त कर देते हैं और पोष्य-पोषक, भाव-सम्बन्ध द्वारा व्याभिचारी रस को पुष्ट कर देते हैं। इस प्रकार नट की सफल अनुकृति सामाजिक के चित्त में चमत्कार पूर्ण आनन्द को रस बना देती है।[3] आचार्य शंकुक ने रस विषयक जिस मान्यता की प्रतिष्ठा की है, वह न्यायशास्त्र सम्मत कही जा सकती है। ये भट्टलोल्लट का समर्थन नहीं करते हैं। आचार्य शंकुक के अनुसार निष्पत्ति का अभिप्राय 'अनुमति' या 'अनुमान' है। यहाँ विभाव के अनुमापक तथा रस को अनुमाप्य बताया गया है।[4] आचार्य महानायक ने रस विषयक जो मान्यता प्रकट की है उसे सांख्य सम्मत कहा जा सकता है। उन्होंने काव्य को शब्दात्मक माना है तथा रसबोधक उसकी तीन

* हिन्दी प्रवक्ता, आर्य महिला पी0जी0 कॉलेज, वाराणसी।

क्रियाओं में अभिधा, भावना तथा भोग की प्रतिष्ठा की है। रस का आविर्भाव इन्हीं तीन शक्तियों के कारण ही होता है। रस विषयक जिस सिद्धान्त का प्रतिपादन आचार्य अभिनवगुप्त ने किया है, उसे अभिव्यक्तिवाद कहते हैं। अभिनवगुप्त रस की उत्पत्ति नहीं मानते हैं और वह स्वीकार करते हैं कि वासना की जागरूकता ही रसास्वाद है। इस प्रकार विघ्न रहित प्रतीति से ग्रहीत भाव ही यहाँ रस है। इस विशुद्ध अद्वैत भावना के अनुसार आनन्दमयी प्रतीति को ही रस की संज्ञा दी गयी है। पं0 राज जगन्नाथ ने अभिनव गुप्त की अद्वैत भावना के अनुसार आनन्दमय प्रतीति को तो रस स्वीकार कर लिया, परन्तु, उसे शंकर वेदान्त का जामा पहना दिया। 'रस मीमांसा' के अनुसार किसी के हदय में भाव का व्यक्त होना वस्तुतः उस भाव की अनुभूति के अतिरिक्त और कुछ नहीं है विभाव तथा संचारी भावों के प्रदर्शन द्वारा भाव अनुकृति श्रोता या दर्शक के हदय में रस रूप में उत्पन्न होती है।

उपर्युक्त आचार्यों द्वारा प्रतिपादित रस के इस क्रम में नवरस विश्वनाथ आदि विद्वानों द्वारा स्वीकृत वात्सल्य और वैष्णव आचार्यों द्वारा प्रतिपादित भक्तिरस ये ग्यारहों रस डा0 महेशचन्द्र शुक्ल द्वारा रचित छन्द रामायण में अभिव्यक्त हुए हैं। उनके प्रतिपाद्य विषय के अनुरूप भक्ति रस ही मुख्य है। अन्य रसों की योजना गौण रूप से की गयी है।

1. **भक्ति रस-** भक्ति रस को कुछ आचार्यों ने शान्तरस के अन्तर्गत रखा है तो कुछ आचार्यों के अनुसार यह भाव कोटि के अर्न्तगत आता है। यर्थाथतः भगवत् सम्बंधी यह रस शान्त रस में समाविष्ट नहीं हो सकता है। स्वसत्ता से युक्त यह भक्ति रस अत्यंत व्यापक तथा नित्य अस्तित्व से सम्पन्न है। श्रीमद्भागवत् गीता के श्रीधरी टीका में इसका प्रत्यक्ष विश्लेषण किया गया है। काव्यशास्त्रीय आचार्यों ने आदि महारस स्वीकार करने के पश्चात् भी उसके अंगों की ही मीमांसा की है किन्तु वैष्णव आचार्यों ने उसके सांगोपांग रूप का तात्विक विवेचन प्रस्तुत किया है। वैष्णवरसाचार्यों की दृष्टि में भक्तिरस ही सर्वश्रेष्ठ है। इसी को रस मानकर तथा परमात्मा को रसस्वरूप मानकर डॉ0 महेश चन्द्र शुक्ल ने छन्द रामायण के पदों की रचना की। शुक्लजी भक्तिरस को ही आंगीरस स्वीकार करते हैं। शबरी पर कृपा के अन्तर्गत रचनाकार ने नवधा भक्ति का वर्णन किया है-

सुनु भक्ति प्रथम सतसंग में है, अरू दूसरी भक्तिकथा रस मोरी।
सेवहिं गुरू के पद को तिसरी, करे ध्यान हमार बहोरी- बहोरी।
चौथी विश्वास से मंत्र जपै, अरू पंचम भजन करे मति भोरी।
अधकर्म से दूर रहे छठवीं, करे धर्म के कर्म सदा तजि खोरी।
सप्तम हर जीव में मोहि लखे, अरू सन्तन को मोसेहु बड़ माने।
मिले ताहि में ही संतोष करे, अष्ठम् नहिं देखत दोष बिराने।
नौवी छल हीन सरल डर हो, अरू मोहि को जो अपनो सब जाने।[5]

2. **वीर रस-** कथा प्रसंगों की दृष्टि से छन्द रामायण में वीर रस उपयुक्त रस सहायक सिद्ध होता है क्योंकि नायक राम, प्रतिनायक रावण का वध करके राज्यफल की प्राप्ति करते हैं। इस फल की प्राप्ति धैर्य, कष्ट, दुःख साहस, त्याग और वीरता आदि के फलस्वरूप होती है। बालकाण्ड तथा उत्तरकाण्ड की समस्त कथाओं तथा सम्पूर्ण काव्य में बिखरे हुए श्रोत उपदेश तथा तद्विवेचन को हटा दिया जाय तो छन्द रामायण पूर्ण रूपेण वीर रस प्रधान महाकाव्य सिद्ध होगा, परन्तु शुक्ल जी ने इस रचना का विधान लोकमंगल की भावना से प्रेरित होकर किया है इसीलिए इसमें वीर रस का स्थायीभाव उत्साह की प्रधानता दिखायी देती है। 'लंका काण्ड' के अन्तर्गत राम रावण युद्ध प्रसंग में रावण के द्वारा युध्द क्षेत्र में राम के सम्मुख रावण के उपस्थित होने का वर्णन निम्नांकित है-

भगिनी मम नाक विहीन करी, धननाद सुतहि तुम घेर के मारे।
नहिं जानत हो मोहि रावण हूँ, रण सम्मुख आये हो आज हमारे।
बदले सब आज चुकाइहौं मैं, दोउ राम लखन अब जायेंगे मारे।
इतनो कहि रावण क्रोध भरो, कई बाण उठाय के राम पै मारे।[6]

3. **Ü्रंगार रस-** विभाव, अनुभाव तथा संचारी भाव के संयोग से अभिव्यक्त होने वाला रति स्थायी भाव श्रृंगार रस कहलाता है। इसमें आलम्बन तथा आश्रय नायक- नायिका होते हैं। श्रृंगार के दो भेद माने गये है- संयोग श्रृंगार और वियोग श्रृंगार। छन्द रामायण में श्रृंगार के दोनों पक्षों की अभिव्यञ्जना हुई हैं संयोग श्रृंगार के अन्तर्गत श्रीराम तथा सीता के अलौलिक सौन्दर्य का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि-

तहँ खम्मनि रत्न जड़े इतने, सिग मण्डप माहि भयो उजियारो।
मणि रत्नन में सिय राम दिखे, रति काम मनो उनि रूप सम्हारो।।
सिय तो शशि सी उर राम दिखे, नभ सो रघुनन्दन रूप पियारो।
चहुँ ओर दिखे सिय राम छटा, लखि ताहिं महेश हुँ जीवन बारो।।

'अयोध्या काण्ड' के अन्तर्गत 'राम' 'वन गमन' हेतु पिता से आज्ञा लेने जाते हैं। उस समय राजा दशरथ की वेदना का वर्णन इस प्रकार किया गया है-

श्रीराम चले मुनि वेश धरे, संग में सिय औ लक्ष्मण प्रिय भाई।
पुनि पुनि जननिन कर पांव छुए, पितु पादन में दियो शीश नवाई।।
तब भूप अचेत हो भूमि गिरै, हा रामू पुकारि बड़े बिलखाई।
कही काहे न प्राण गयो अब लौ, अब जासे बड़ो दुःख और का आई।।[7]

4- शान्त रस- 'भक्ति रसायन' और 'शांडिल्य भक्ति सूत्र' में लिखा है कि वैराग्य का कारण द्रुतचित्त की ईश्वरानुरक्ति भक्ति है। छन्द रामायण में भी शान्त रस का वर्णन शुक्ल जी ने किया है। इसका स्थायी भाव निर्वेद है तथा फल मुक्ति प्राप्ति है। वैष्णव, मुक्ति की प्राप्ति नहीं चाहते हैं। वे बार-बार जन्म लेकर सगुण ब्रह्म का अनुराग प्राप्त कर उसकी माधुरी का रसास्वादन करना चाहते हैं। महेशचन्द्र शुक्ल जी ने जहाँ-जहाँ तत्त्व ज्ञान का वर्णन किया, वहां उसका पर्यवसान भक्ति में ही हुआ है। उत्तर काण्ड के अन्तर्गत शान्त रस का उदाहरण द्रष्टव्य है-

जब श्रीराम ने राज कियो, दुख दूर भये सबही हरषाये।
नहि काहु से कोई हु बैर करे, सब छोड़ विषय तन का सुख पाये।
वर्णाश्रम के अनुसार चले, रत धर्म रहें जसवेद बजावे।
सब लोग सुखी, भय शोक नहीं, नहीं काहु को हू त्रय ताप सताये।।

5. रौद्र रस– अनिष्ट या अपमान के सन्दर्भ में उत्पन्न क्रोध रौद्र रस की व्यंजना करता है। डॉ0 महेश चन्द्र शुक्ल ने कई प्रसंगों में रस निष्पादन क्रोध की व्यंजना की है। धनुषभंग प्रसंग में श्रीराम के द्वारा धनुष तोड़ने पर क्रोधित परशुराम का वर्णन निम्नांकित है–

शठ कौन ने ये धनु तोड़ दियो, वाहि शीघ्र समाज से बाहर लाओ।
क्षण माहि कुठार से काटिहौं मैं, वह कौन है शीघ्रहिं मोहि बताओ।।
नहिं तो क्षण में बधिहौं सबको, लिये हाथ कुठार न रोष दिलाओ।
श्रीराम ने जोरि के हाथ तभी, कही नम्र विनीत वचन समझाओ।[8]

धनुषभंग के पश्चात् क्रोध से भरे हुए परशुराम को श्रीराम विनम्रतापूर्वक समझाने का प्रयत्न करते हैं, परन्तु लक्ष्मण की बातों से क्रोधित परशुराम अपना फरसा फटकारते हुए कहते हैं कि-

'जाहि बालक जानि मा मारि रहो, ब्रह्मचारी हूँ और स्वभाव से क्रोधी।'
तुम जानत हो भलि भांति मुझे, मैं हूँ क्षत्रिय वंश का घोर विरोधी।।
अब गाधिसुबन समझाउ तुम्हीं, बचिहै नहिं ये मैं हूँ काल से क्रोधी।।
लक्ष्मण कहि आपहु जानते हो, मिथ्या यशगान को मैं अवरोधी।।[9]

6. करूण रस– प्रिय व्यक्ति या वस्तु के विनष्ट हो जाने पर हृदय में जो विषाद का भाव उत्पन्न होता है वही 'करूण रस' की व्यंजना करता है। दुःख की अनुभूति विप्रलम्भ श्रृंगार में भी होती है, किन्तु वहां करूणात्मक दुःख के साथ भविष्य में पुनः मिलन की भी गुंजाइश रहती है किन्तु करूण रस इसके विपरीत होता है। डॉ0 महेश चन्द्र शुक्ल ने 'रामवनगमन' प्रसंग में करूण रस का वर्णन इस प्रकार किया है–

तुम ही प्राण अधार मेरे, कहि के लक्ष्मण पुनि रोने लगे।
नहि नैकहु अश्रुन धार रूकै, बिलखे कहि है हम दास अभागे॥
तुम्हरे पग को प्रभु सेवक हौं, इनको तजि और नहीं कछु मांगे।
इनमें यदि हो मम भक्ति कहूँ, संग राखि वनावहु मोहि सभागे॥[10]

लंका काण्ड के अन्तर्गत जब लक्ष्मण को शक्ति बाण लगता है तो वह युद्ध भूमि में मूर्छित होकर गिर जाते हैं। इस प्रसंग का वर्णन निम्नांकित है–

मम हेतु सहे तुम कष्ट बड़ो, वन माहि रहे सहि आतप वाता।
निज नारिन को नहिं मोह कियो, तुम छाड़ि दियो अपने पित माता॥
मन मोर दुखी अति व्याकुल है, यही सोचि जगो हमरे प्रिय भ्राता।
तुम बिनु नहिं मोय सुहाय कछू, नहिं जात जियो हमसे प्रिय ताता॥[11]

7. वीभत्स रस– 'जुगुप्सा' वह मनोविकार है जो किसी कुत्सित विषय के दोषदर्शन के कारण उत्पन्न होता है। भक्त कवि शुक्ल जी ने भक्ति के प्रसंग में वैराग्य जागृत करने के लिए भी 'जुगुप्सा' की व्यंजना की है किन्तु वहां पर भक्ति प्रधान है। 'छन्द रामायण' में भक्ति, श्रृंगार, वीर तथा शान्त को छोड़कर रौद्र, शोक, व्यंग और जुगुप्सा आदि रस को गौणीय रूप में वर्णित किया गया है। वीभत्स रस का उत्कृष्टतम निदर्शन युद्ध वर्णन के प्रसंग में मिलता है–

जब रावण ने शर वृष्टि करी, तब राधव बाण अनेक चलाये।
हुई घायल निशचर वृन्द मरे, शर शोषित की तट बन्ध गिराये॥
गिध काक उठाय के मांस उड़े, छीनै, झपटै भुइयै गिर जाये।
शव ऊपर बैठि के गीध बहें, अरू आंतिन खैचि के काग सिहाये॥[12]

प्रस्तुत विवेचना से स्पष्ट हो जाता है कि 'छन्द रामायण' में भक्ति रस ही मुख्य रस है क्योंकि विभिन्न काण्डों की फलश्रुतियां भक्ति रस का ही समर्थन करती हैं। साथ ही इस ग्रन्थ का पर्यवसान भी भक्ति रस में ही हुआ है। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण इस ग्रन्थ के उत्तर काण्ड में काक भुशुण्डि तथा गरूण संवाद में दिखाई देता है–

रघुनायक भक्ति संजीवनी है, सिरधा संग भक्त जु पान करै।
सब मानस रोग मिटै छिन में, उर में प्रभु भक्ति व ज्ञान भरै॥
श्रुति संत पुरातन कहैं सिगरे, सियराम पदाम्बुज नेह करै।
नहि नेकहु कष्ट मिले जग में, रघुनायक कृपा भव पार करै॥[13]

सन्दर्भ ग्रन्थ–

1. छन्द रामायण- महेश चन्द्र शुक्ल, पुस्तक के अंत में दिये गये जीवन परिचय से उद्धृत
2. काव्यप्रकाश 415 कारिका
3. काव्यप्रकाश उल्लास 488.91
4. काव्यप्रकाश पृष्ठ 90
5. छन्द रामायण पृष्ठ 302.303, प्रकाशन, राष्ट्रभाषा संस्थान, उन्नाव।
6. छन्द रामायण पृष्ठ 492, प्रकाशन, राष्ट्रभाषा संस्थान, उन्नाव।
7. छन्द रामायण पृष्ठ 156, प्रकाशन, राष्ट्रभाषा संस्थान, उन्नाव।
8. छन्द रामायण पृष्ठ 344, प्रकाशन, राष्ट्रभाषा संस्थान, उन्नाव।
9. छन्द रामायण पृष्ठ 96, प्रकाशन, राष्ट्रभाषा संस्थान, उन्नाव।
10. छन्द रामायण पृष्ठ 152, प्रकाशन, राष्ट्रभाषा संस्थान, उन्नाव।
11. छन्द रामायण पृष्ठ 452, प्रकाशन, राष्ट्रभाषा संस्थान, उन्नाव।
12. छन्द रामायण पृष्ठ 490, प्रकाशन, राष्ट्रभाषा संस्थान, उन्नाव।
13. छन्द रामायण पृष्ठ 565, प्रकाशन, राष्ट्रभाषा संस्थान, उन्नाव।

●

कबीर की काव्य सर्जनात्मकता और युगबोध

मृत्युञ्जय तिवारी[*] एवं प्रो0 राधेश्याम राय[**]

पन्द्रहवी शताब्दी में कबीर सबसे शक्तिशाली और प्रभावोत्पादक व्यक्ति थे। संयोग से वे ऐसे युग संन्धि के समय उत्पन्न हुए थे, जिसे हम विविध धर्म-साधनाओं और मनोभावनाओं का चौराहा कह सकते हैं। जितने प्रकार के संस्कार पड़ने के रास्ते हैं, वे प्रायः सभी उनके लिए बन्द थे। वे मुसलमान होकर भी असल में मुसलमान नहीं थे। वे हिन्दू होकर भी हिन्दू नहीं थे। वे साधु होकर भी साधु (अगृहस्थ) नही थे। वे वैष्णव होकर भी वैष्णव नहीं थे। वे योगी होकर भी योगी नहीं थे। वे कुछ भगवान की ओर से ही सबसे न्यारे बनाकर भेजे गए थे। वे भगवान के नृसिंहावतार की मानो प्रतिमूर्ति थे। नृसिंह की भाँति नाना असंभव समझी जाने वाली परिस्थितियों के मिलान-बिन्दु पर अवतीर्ण हुए थे। कबीर दास ऐसे मिलन-बिन्दु पर खड़े थे, जहाँ से एक ओर हिन्दुत्व निकल जाता है और दूसरी ओर मुसलमानत्व, जहाँ एक ओर ज्ञान निकल जाता है, दूसरी ओर अशिक्षा, जहाँ एक ओर योगमार्ग निकल जाता है, दूसरी ओर भक्ति मार्ग, जहाँ से एक ओर निर्गुण भावना निकल जाती है, दूसरी ओर सगुण साधना, उसी प्रशस्त चौराहे पर वे खड़े थे। वे दोनों ओर देख सकते थे और परस्पर विरूद्ध दिशा में गए मार्गों के दोष-गुण उन्हें स्पष्ट दिखाई दे जाते थे। यह कबीरदास का भगवत् सौभाग्य था। उन्होंने इसका खूब उपयोग किया।[1]

कबीर मुख्य रूप से भक्त थे। वे उन निरर्थक आचारों को व्यर्थ समझते थे, जो असली बात को ढ़क देते हैं और झूठी बातों को प्राधान्य दे देते हैं। उनके प्रेम के आदर्श सती और शूर हैं। जो प्रेम या भक्ति पद-पद पर भक्त को भावविह्वल कर देती है, मन और बुद्धि का मंथन करके मनुष्य को परवश बना देती है और जो उन्मत्त भावावेश के द्वारा भक्त को हतचेतन बना देती है, वह कबीर को अभीष्ट नहीं। प्रेम के क्षेत्र में वह गलदश्रु भावुकता को कभी बर्दाश्त नहीं करते। बड़ी चीज का मूल्य भी बड़ा होता है। भगवान-जैसे प्रेमी को पाने के लिए भी मनुष्य को बड़े से बड़ा मूल्य चुकाना पड़ता है। और अपने आपको देने से बढ़कर मनुष्य और कौन सा मूल्य चुका सकता है?[2]

यह तो घरू है प्रेम का खाला का घरू नाहिं।

सीस उतारे भुई धरे, सो पइढे इहि माहिं॥

इसी अनाविल आत्म-समर्पणा ने कबीर की रचनाओं को श्रेष्ठ बना दिया है। संसार में जहाँ कहीं भी यह रचना गई है, वहीं इसने लोगों को प्रभावित किया है। सहज सत्य को सहज ढंग से वर्णन करने में कबीरदास अपना प्रतिद्वद्वी नहीं जानते। वे मनुष्य बुद्धि को व्याहत करने वाली सभी वस्तुओं को अस्वीकार करने का अपार साहस लेकर अवतीर्ण हुए थे। पड़ित, शेख, मुनि, पीर, औलिया, कुरान, पुरान, रोज़ा, नमाज़, एकादशी, मंदिर और मस्जिद उन दिनों मनुष्य चित्त को अभिभूत कर बैढे थे, परन्तु वे कबीरदास का मार्ग न रोक सके। इसलिए कबीर अपने युग के सबसे बड़े क्रान्तदर्शी थे।

कबीर को सही अर्थों में समझने के लिए इस राजनीतिक सामाजिक स्थिति के अतिरिक्त भारतीय चिन्तन की परम्परा को भी समझना आवश्यक है। उन्होंने जो कुछ कहा है, वह सहस्त्रों वर्षों के आध्यात्मिक-चिंतन का प्रतिफलन है। उपनिषद् उसके मूल स्त्रोत है। तत्वज्ञ ऋषियों द्वारा आत्मा, परमात्मा, मोक्ष, सृष्टि, माया आदि के सम्बन्ध में जो गूढ़ चिन्तन हुआ, उपनिषद् उसी के अक्षय कोश हैं। आगे चलकर बौद्ध सिद्धों, नाथ योगियों और जैनमार्गी कवियों द्वारा उसी परम्परा को आगे बढ़ाया गया। डॉ0 पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल के शब्दों में, ''भारतीय जीवन में संचार करने वाली आध्यात्मिक प्रवृत्ति की इस धारा के उद्गम अत्यन्त प्राचीनता के कुहरे में छिपे हुए हैं। युग-युगान्तर को पार करती हुई यह अबाध रूप से बहती चली आ रही है। प्रवाह भूमि के अनुरूप कभी सिमटती, कभी फैलती, कभी बालुका में विलीन होती और फिर प्रकट होती हुई वह अनेक रूप अवश्य धारण करती आई है, परन्तु इसका प्रवाह कभी बन्द नहीं हुआ है।''[3]

मध्यकालीन हिन्दी संत कवियों के आचार-विचार, उनका अक्खड़पन और खंडन-मंडन की वृत्ति आदि सभी कुछ परम्परागत है। कबीर ने हिन्दू विधि-विधानों का जो खण्डन किया है। अथवा बाह्यचार पर अत्यन्त निर्ममतापूर्वक प्रहार किया है, वह न तो उनका मुसलमानी जोश था और न प्रच्छन्न रूप से इस्लाम-प्रचार की भावना की उपज। उन्होंने जो कुछ कहा है उसकी लम्बी परम्परा थी। पुस्तकीय ज्ञान के प्रति उपेक्षा, जाति-पाँति का विरोध, बाह्यचार के प्रति अनास्था, धार्मिक कट्टरता एवं दुराग्रह के प्रति आक्रोश की भावना, समरसी भाव से स्व-संवेदन ज्ञान पर जोर, चित्त शुद्धि पर बल आदि केवल कबीर के मस्तिष्क उपज नहीं थीं। आचार्य हजारीप्रसार द्विवेदी ने ठीक ही लिखा कि-''निर्गुण मतवादी संतों के केवल उग्र विचार ही भारतीय नहीं हैं, उनकी समस्त रीति-नीति, साधना, वक्तव्य वस्तु के उपस्थापन की प्रणाली, छन्द और भाषा पुराने भारतीय आचार्यों की देन है।''

---

* शोध छात्र, हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

* * प्रोफेसर, (से0नि0), हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

कबीर का प्रमुख साहित्य तीन रूपों में विभक्त है- रमैनी, साखी और सबद या पद। प्रायः यह माना जाता है कि रमैनी में जगत, साखी में जीव और सबद में ब्रह्म-सम्बधी विचार हैं। 'रमैनी' शब्द का प्रयोग तीन अर्थों में हुआ है 1. जिसमें संसार में जीवों के रमण का विवेचन हुआ 2. परमतत्व में रमण करने वाली 3. एक छन्द विशेष जिसके प्रत्येक चरण में सोलह मात्राएँ होती हैं। रमैनी में मुख्य रूप से सृष्टि और जीव तथा जगत की स्थिति पर विचार किया गया है। इसमें मुख्य रूप से चौपाई-दोहा छन्दों का प्रयोग हुआ है। कितनी चौपाइयों के बाद दोहा-छन्द रखा जाय, इसका कोई निश्चित क्रम नहीं है। दाऊद (चंदायन) के बाद कबीर हिन्दी के दूसरे कवि हैं, जिन्होंने 'रमैनी' में चौपाई-दोहा छन्द का विधान किया है। इसी पद्धति को आगे चलकर अन्य सूफी कवियों और तुलसी ने 'मानस' में अपनाया है। कबीर ने एक स्थान पर कहा है कि शब्द ही माया है। शब्द का तात्पर्य है-परावाक्। माया में जीव की प्राप्ति उपजी और उसने माया करने का निश्चय किया-

अद्बुद रूप जाति की बानी।

उपजी प्रीति रमैनी ढानी॥

'साखी' शब्द संस्कृत के साक्षी का तद्भव है। साक्षी का अर्थ होता है- गवाह 'गवाही' के लिए संस्कृत में 'साक्ष्य' शब्द है। साक्षी वह है जिसने स्वयं अपनी आंखों से तथ्य देखा हो। साक्ष्य का अर्थ है-आँख से देखे हुए तथ्य का वर्णन। हिन्दी में साखी शब्द 'साक्षी' और 'साक्ष्य' अर्थात् 'गवाह' और 'गवाही' दोनों अर्थों में प्रयुक्त हुआ है।

कबीर ने अपने इन उक्तियों का शीर्षक 'साखी' इसलिए दिया है क्योंकि उन्होंने इनमें वर्णित तथ्यों का स्वयं साक्षात्कार किया है। उन्होंने किसी दूसरे से सुनकर अथवा दूसरे ग्रन्थों में उपलब्ध बात नहीं कही है। 'साखी' शब्द को हम चाहे 'गवाह' के अर्थ में ले या 'गवाही' के अर्थ में इससे भाव में कोई अन्तर नहीं आता। भाव केवल यही है कि स्वसंवेद्य, स्वानुभूत आध्यात्मिक तथ्यों अथवा ज्ञान का वर्णन जिसमें किया गया है, उसे 'साखी' कहते है।

कबीर ने 'सबद' का प्रयोग दो भावों को ध्यान में रखकर किया है- एक तो परमतत्व के अर्थ में और दूसरे पद के अर्थ में।

'रमैनी', 'साखी' और 'सबद' के अतिरिक्त कबीर के नाम से कहरा, बसत, बेलि, बिरहुली, चांचरि, हिंडालो, चौतीसा, विप्रमतीसी आदि अन्य काव्य रूपों में लिखा साहित्य भी पाया जाता है।[4]

अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' ने 'कबीर-वचनावली' का सम्पादन 1916 ई0 में किया। उन्होंने 'बीजक', 'चौरासी अंग की साखी', 'कबीर शब्दावली' और 'साखी संग्रह' तथा 'आदिग्रथ' आदि के आधार पर अपना संग्रह प्रस्तुत किया। उन्होंने भूमिका में लिखा है- ''मुझे कबीर साहब के मौलिक ग्रन्थों में से केवल दो ग्रन्थ मिले, एक 'बीजक' और दूसरा 'चौरासी अंग की साखी'। इनके अतिरिक्त बेल वेडिया प्रेस की छपी 'कबीर शब्दावली' चार भाग, 'ज्ञान गुदड़ी' व रेखते और 'साखी संग्रह' नाम की पुस्तके भी हस्तगत हुईं। बेलवेडियर प्रेस के स्वामी 'राधास्वामी मत' के है। इसलिए कबीर साहब को अपना आदि आचार्य मानते हैं, इस प्रेस की छपी पुस्तकों के बहुत कुछ प्रामाणिक होने की आशा है। उन्होंने भूमिका में इस बात को भी प्रकट किया है। गुरू नानक सम्प्रदाय के 'आदिग्रन्थ' में भी कबीर साहब के बहुत से शब्द और साखियाँ संग्रहित है।

कबीर दास जी के दोहे और पदों के विभिन्न उदाहरणों द्वारा श्यामसुन्दर दास ने उनके लौकिक आचरणों, जैसे- जाति-पाँति, छुआछूत, भेदभाव आदि के विषय में उनके समाजसुधारक विचारों को प्रस्तुत किया है। जन्म से ही कोई द्विज या शूद्र अथवा हिन्दू या मुसलमान नही हो सकता। इसकी कबीर ने कितने सीधे किन्तु मन में जम जाने वाले ढंग से कहा है-

जौ तूँ बाँभन जाया। तौ आन वाट ह्वै क्यों नहि आया।

जौ तूँ तुरक तुरकनी जाया। तौ भीतर खतना क्यों न कराया॥

कबीर ने मुसमालन फकीरों का सत्संग किया था इसका उल्लेख उन्होंने किया है। वे झूँसी, जौनपुर, मणिकपुर आदि गये थे जो मुसलमान फकीरो में प्रसिद्ध स्थान थे।

मानिकपुर हि कबीर बसेरी। मदहति सुनी तकि केरी।

ऊजी सुनी जौनपुर थाना। झूँसी सुनि पीरन के नामा॥

पर सब बातों का संचय करके भी अपने स्वभावानुसार वे किसी को ज्ञानी या बड़ा मानने को तैयार नही थे। सब को अपना ही वचन मानने को कहते थे-

शेख अकरदीं सरकदीं तुम मानहु वचन हमार।

आदि अंत और जुग पुग देखहु दीठि पसारि॥

आरम्भ से ही कबीर हिन्दू भाव की उपासना की ओर आकर्षित हो रहे थे। अतः उन दिनों जबकि रामानन्द जी की बड़ी धूम थी, अवश्य वे उनके सत्संग में भी सम्मिलित होते रहे होंगे। जैसा आगे कहा जायेगा, रामानुज की शिष्य परम्परा में होते हुए भी रामानंद जी भक्ति का एक अलग उदार मार्ग निकाल रहे थे जिसमें जाति-पाँति का भेद और खान पान का आचार दूर कर दिया गया था। अतः इसमें कोई संदेह नहीं कि कबीर को राम नाम रामानंद जी से ही प्राप्त हुआ। पर आगे चलकर कबीर के 'राम' रामानंद के 'राम' से भिन्न हो गये। अतः कबीर को वैष्णव सम्प्रदाय के अन्तर्गत नहीं ले सकते। कबीर ने दूर-दूर तक देशाटन किया, हठयोगियों तथा सूफी मुसलमान फकीरो का भी सत्संग किया। अतः उनकी प्रवृत्ति निर्गुण उपासना कि ओर दृढ़ हुई। अद्वैतवाद के स्थूल रूप का कुछ परिज्ञान उन्हें रामानंन्द जी के सत्संग से पहले ही था। फल यह हुआ कि कबीर के राम धनुर्धर साकार राम नहीं रह गये, वे ब्रह्म से पर्याय हुए-

दसरथ सुत तिहुँ लोक बखाना।

राम नाम का मरम है आना।।[5]

सारांश यह कि जो ब्रह्म हिन्दुओं की विचार पद्धति में ज्ञान मार्ग का एक निरूपण था उसी को कबीर ने सूफियों के ढ़र्रे पर उपासना का ही विषय नहीं, प्रेम का भी विषय बनाया और उपासना का ही विषय नहीं, प्रेम का भी विषय बनाया और उसकी प्राप्ति के लिए हठयोगियों की साधना का समर्थन किया। इस प्रकार उन्होंने भारतीय ब्रह्मवाद के साथ सूफियों के भावात्मक रहस्वाद, हठयोगियों के साधनात्मक रहस्यवाद और वैष्णवों के अहिंसावाद तथा प्रपत्तिवाद का मेल करके अपना पथ खड़ा किया। उनकी बानी में ये सब अवयव स्पष्ट लक्षित होते है।

यद्यपि कबीर की बानी निर्गुण बानी कहलाती है पर उपासना क्षेत्र में ब्रह्म निर्गुण नही बना रह सकता। सेव्य-सेवक-भाव की स्वामी में कृपा, क्षमा, औदार्य आदि गुणों का आरोप हो ही जाता है। इसीलिए कबीर के वचनों में कहीं तो निरूपाधि निर्गुण ब्रह्मसत्ता का संकेत मिलता है, जैसे-

पंडित मिथ्या करहु बिचारा। ना वह सृष्टि न सिरजनहारा।

जोति सरूप काल नहिं उहँवाँ, बचन न आहि सरीरा।।

थूल अथूल पवन नहिं पावक, रवि ससि धरनि न नीरा।।

और कहीं सर्ववाद की झलक मिलती है, जैसे-

आपुहि देवा आपुहि पाती। आपुहि कुल आपुहि है जाती।।

और कहीं सोपाधि ईश्वर की जैसे-

साँई के सब जीव हैं कीरी कुंजर दोय।

सारांश यह है कि कबीर में ज्ञानमार्ग की जहाँ तक बातें हैं वे सब हिन्दू शास्त्रों की है जिनका संचय उन्होंने रामानन्द जी के उपदेशों से किया। माया, जीव, ब्रह्मा, तत्वमसि आठ मैथुन (अष्टमैथुन), त्रिकुटी, छह रिपु इत्यादि शब्दों का परिचय उन्हें अध्ययन द्वारा सत्संग द्वारा ही हुआ। क्योंकि वे, जैसा कि प्रसिद्ध है, कुछ पढ़े लिखे न थे। उपनिषद् की ब्रह्मविद्या के सम्बन्ध में वे कहते हैं-

तत्वमसी इनके उपदेसा। ई उपनीसद कहैं संदेसा।।

जागबलिक और जनक सँबादा। दत्तात्रेय वहै रस स्वादा।।[6]

यहीं तक नहीं, वेदांतियों के कनक-कुंडल न्याय आदि का व्यवहार भी इनके वचनों में मिलता है-

गहना एक कनक तें गहना, इन महं भाव न दूजा।

कहन सुनन को दुइ करि थापिन, इक निमाज, इक पूजा।।

इसी प्रकार उन्होंने हठयोगियों के साधनात्मक रहस्यवाद के कुछ सांकेतिक शब्दों (जैसे, चंद सूर, नाद, बिन्दु, अमृत, औधा, कुंआ) को लेकर उदभुत रूपक बांधे हैं जो सामान्य जनता की बुद्धि पर पूरा आतंक जमाते हैं, जैसे-

सूर समाना चंद में दूहूँ किया घर एक।

मन का चिंता तब भया कछू पूरबिला लेख।।

आकासे मुखि औंधा कुआँ पाताले पनिहारि।

ताका पाणी को हंसा पीवै बिरला आदि बिचारि।।

अतः कबीर अपने स्त्रोताओं पर यह अच्छी तरह भासित करना चाहते थे कि हमने, ब्रह्मा का साक्षात्कार कर लिया है, इसी से वे प्रभाव डालने के लिए बड़ी लम्बी-चौड़ी गार्वोक्तियाँ भी कभी-कभी कहते थे। कबीर ने मगहर में जाकर शरीर त्याग किया जहाँ इनकी समाधि अब तक बनी है। इस प्रकार कबीर के काव्य की प्रासंगिकता और महानता आज भी विद्यमान है।

सन्दर्भ ग्रन्थ-

1. हिन्दी साहित्य : उद्भव और विकास, हजारी प्रसाद द्विवेदी पृ0सं0 75 राजकमल प्रकाशन प्रा0लि0 1बी0, नई दिल्ली
2. हिन्दी साहित्य : उद्भव और विकास, हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ0सं0 79, राजकमल प्रकाशन, प्रा0लि0 1बी0, नई दिल्ली
3. हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय, पृ0सं0 01, डॉ0पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल प्रकाशन- लखनऊ विश्वविद्यालय
4. कबीर बीजक, भूमिका, पृ0सं0 09,
5. हिन्दी साहित्य का इतिहास, रामचन्द्रशुक्ल, पृ0सं0 66, विजय प्रकाशन मंन्दिर, वाराणसी-1
6. हिन्दी साहित्य का इतिहास, रामचन्द्रशुक्ल पृ0सं0 67, विजय प्रकाशन मंन्दिर, वाराणसी-1

●

नास्तिकदर्शनेषु प्रमाणमीमांसा

चक्रपाणि ओझा एवं प्रो0 श्री—ष्ण त्रिपाठी***

प्रमाणं तावद्धि तत्त्वसिद्धौ उपयुज्यते। प्रमाणं विना तत्वस्य सिद्धिः कथमपि कर्तुं न शक्यते। अतएव प्रमाणानाम् महत्वं विद्यते। तथैवोक्तं ईश्वरकृष्णेन ''प्रमेयसिद्धिः प्रमाणाद्धि।''[1] तथैव अन्यत्रापि उक्तं ''लक्षणप्रमाणाभ्यामेव वस्तुसिद्धिः, नान्यथा मानाधिना मेयसिद्धिर्मान सिद्धिश्च लक्षणात्''[2] प्रमाणस्य च लक्षणं प्रमीयते अनेन इति प्रमाणम् इति व्युत्पत्या प्रमाकरणं प्रमाणम्। तानि च प्रमाणानि सर्वशास्त्रेषु विविदितानि, तत्र तावत् नास्तिकदर्शनेषु अभ्युपगतानां प्रमाणानाम् विचारः प्रस्तूयते। नास्तिकेषु यत् प्रथमं चार्वाकदर्शनं तत्र एकैव प्रमाणं स्वीकृतं, तच्च प्रत्यक्षप्रमाणम्। तद्धि इन्द्रियम्, इन्द्रियार्थसन्निकर्षोत्पन्नज्ञानं प्रति कारणम्। तानि प्रत्यक्षप्रमाणभूतानि इन्द्रियाणि पञ्च श्रोत्रत्वक्चक्षुर्जिह्वाघ्राणाख्यानि सुखदुःखानां अनुभवोऽपि पञ्चेन्द्रियेषु आधारितः। पञ्च इन्द्रियजन्यप्रत्यक्षद्वारैव प्रमाणभूतवस्तुसिध्यति। अतएव एतन्मते प्रत्यक्षप्रमाणसिद्धानि पृथिव्यप्तेजोवायवः इति चत्वारि तत्वानि।

जैनदर्शने प्रमाणं द्विविधं प्रत्यक्षं परोक्षं च तत्र च प्रमाणं नाम ज्ञानं[3] इति आचार्योमास्वातिना उक्तं तत्र च सन्तुष्टाः आचार्यसम्मतभद्राः प्रमाणं स्वपरावभासिनबाधविवर्जितं[4] इत्याहुः, अर्थात् यत स्वपरप्रकाशी निर्दोषज्ञान् तत् प्रमाणं तदनन्तरं आगताः अकलंकाचार्याः बाधिविवर्जितं इत्यादि लक्षणं अस्वीकुर्वाणाः नूतनं लक्षणं आश्चयन्, तच्च प्रमाणभवसम्वादिज्ञानवधिगतार्थ लक्षत्वात्।[5] तदुत्तरभाविनः ये आचार्याः तेषां मतं आचार्य सिद्धसेनसम्मतभद्राभ्याम् प्रदर्शितलक्षणसदृशानि एव लक्षणानि सन्ति किन्तु शब्दभेदो विद्यते यथा सम्मतभद्रेण अवभास इति पदं प्रयुक्तं एतैश्च व्यवसाय इति पदं अथवा निर्णीत इति पदं प्रयुक्तं एतैश्च व्यवसाय इति पदं अथवा निर्णीत इति पदं योजितम्। आचार्यविद्यानन्दः स्वपरव्यवसायिज्ञानं प्रमाणं[6] इति वक्ति। हेमचन्द्राचार्यस्तु स्वं बाधविवर्जितं अनधिगतं अपूर्वञ्च इत्यादीनि पदान्यपहाय सम्यग् अर्थनिर्णयः प्रमाणं[7] इति लक्षणं अकरोत्। आचर्यतुलसी यथार्थज्ञानं प्रमाणं इति अगदत्। जैनशास्त्रे ये द्वे प्रमाणे स्तः प्रत्यक्षं परोक्षं च। तत्र आद्यं यत् प्रत्यक्षं तस्य लक्षणं ''आत्मनः भव्यमानं ज्ञानं प्रत्यक्षप्रमाणं सर्वदार्शनिकाः अक्षपदघटितप्रत्यक्षस्य लक्षणं कुर्वन्ति नात्मपदघटितम् अत्र तु आत्मपदघटितम् प्रत्यक्षस्य लक्षणं। अत्रापि केचन जैनदार्शनिकाः अन्यदर्शनैः सह लक्षणसमन्वयार्थं लक्षणे परिवर्तनं कुर्वन्ति। विशदज्ञानं प्रत्यक्षं, तच्च द्विविधं पारमार्थिकप्रत्यक्षं सांव्यवहारिकप्रत्यक्षञ्च, तत्र समाश्रयणाकलंकाभ्याम् सांव्यवहारिकप्रत्यक्षरूपेण इन्द्रियप्रत्यक्षं प्रतिष्ठापितं तथैव आगमिकेन दार्शनिकेन च सह समन्वयः सम्पादितः। जैनशास्त्रान्तर्गतं यत् प्रथमं प्रमाणं प्रत्यक्षं तत्रापि यत् पारमार्थिकप्रत्यक्षं तद्धि इन्द्रियादिप्रमाणनिरपेक्षसाक्षात् आत्मनः जायमानं ज्ञानं पारमार्थिकप्रत्यक्षं इत्युच्यते, एतत् च त्रिविधं अवधिज्ञानं मनः पर्यवज्ञानं केवलज्ञानं च इति। जैनदर्शने द्वितीयं प्रमाणं परोक्षं तच्च पञ्चविधं स्मृतिप्रत्यक्षभिज्ञातर्कानुमानागमभेदात्। तत्र ''संस्कारजन्यज्ञानं स्मृतिः'' तत् प्रमाणरूपेण अभ्युपैति। यतोहि स्मृत्यधीनोधिकांशतः व्यवहारो भवति। यथा गतदिवसे जलं पीतं तत् पानेन तृप्तिः जाता इति स्मृत्वा आद्याप्यहं जलपानं करिष्ये चेत् तृप्तिर्भविष्यति इति चिन्तयित्वा जलपानाय प्रवर्तते इति स्मृतेः व्यवहारसाधनत्वात् प्रमाणं इति वदन्ति। यतोहि प्रमाणं नाम व्यवहारसाधनम्। किन्तु अन्ये दार्शनिकाः स्मृतेः प्रमाणत्वं स्वीकुर्वन्ति। द्वितीयं प्रमाणं प्रत्यभिज्ञाप्रमाणं इन्द्रियसन्निकर्षसंस्कारोभयजन्यं ज्ञानं प्रत्यभिज्ञा, स्मृतेः कारणं केवलं प्रत्यक्षं, प्रत्यभिज्ञायास्तु प्रत्यक्षं स्मृतिश्च इति द्वे, स्मृतेः स्वरूपं तद्रचितं इति प्रत्यभिज्ञायाश्च तदेतद्रजतं इति, प्रत्यभिज्ञायाः विषयश्च प्रत्यक्षप्रमाणेन गृह्यत्वात् इदं इति शब्दप्रयोगः। जैनभिन्नाः दार्शनिकाः प्रत्यभिज्ञां प्रमात्वेन स्वीकुर्वन्ति न तु प्रमाणत्वेन। तर्कः तृतीयं परोक्षप्रमाणं, तच्च अन्वयव्यतिरेकयोः निर्णयः, तथाहि यत्र यत्र धूमः तत्र तत्र वह्निः इति अन्वयः अर्थात् यत्र हेतुः तत्र साध्यं इति। व्यतिरेकश्च। यत्र साध्याभावः तत्र हेत्वभावः, यथा यत्र वह्नभाव तत्र धूमाभावः। अनुमानं चतुर्थं परोक्षप्रमाणम् अनु = पश्चात् मानं = ज्ञानं अर्थात् प्रत्यक्षप्रमाणानन्तरं व्याप्त्यादिना जायमानं यत् ज्ञानं तदनुमानम्। आगमः पञ्चमं परोक्षप्रमाणं आगमो नाम यथार्थवक्तृप्रोक्तं वाक्यं, स च आगमः द्विविधः-लौकिकागमो लोकोत्तरागमश्च लौकिकविषयविषयकयथार्थज्ञानवत् वक्तृप्रयुक्तशब्दः, लोकोत्तरागमश्च आत्मकर्म-पुनर्जन्मादिविषयकयथार्थज्ञानवत् महापुरुषप्रयुक्तशब्द इति जैनदर्शनप्रमाणसमीक्षा।

बौद्धास्तु प्रमाणद्वयं अभ्युपगच्छन्ति एकं प्रत्यक्षमपरञ्चानुमानं तन्मते विसंवादरहितं यद् ज्ञानं तत् प्रमाणं इति। तथाचोक्तं प्रमाणवार्तिके ''अविसंवादिज्ञानं प्रमाणम्''[8] एतन्मते अज्ञानं अर्थात् ज्ञानभिन्नं इन्द्रियसन्निकर्षादि न प्रमाणं स्यात्, अत उक्तं अविसंवादि इति। तथा च अविसंवादित्वे सति ज्ञानत्वं प्रमाणस्य लक्षणं विसंवादनम् विसंवादः इति भावव्युत्पत्या विसंवादशब्दस्य वचनम् अर्थः, तदस्ति अस्मिन् इति विसंवादि। न विसंवादि अविसंवादि। विसंवादनशून्यमित्यर्थः। उक्तञ्च अविसंवादनशब्दनिरुक्तिकाले अर्थक्रियास्थितिः अविसंवादनम्। अर्थात् यथोपदर्शितार्थस्य क्रियायास्थितिः = प्रमाणयोग्यता एव अविसंवादनम्[9] अतः यस्माद् ज्ञानात् अर्थं परिच्छिद्यापि पुरुषः न प्रवर्तते, प्रवृत्तो वा कुतश्चित

* शोधच्छात्र, वैदिक दर्शन विभाग, संस्कृत विद्या धर्म विज्ञान संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

* * प्रोफेसर, विभागाध्यक्ष, वैदिक दर्शन विभाग, संस्कृत विद्या धर्म विज्ञान संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

प्रतिबन्धादेरर्थक्रियां नाधिगच्छति तदपि प्रमाणमेव प्रमाणयोग्यता लक्षणस्य विसंवादस्य सत्वात्। तनु सा एव प्रमाणयोग्यता अर्थक्रियाप्राप्तावसत्यां कथं निश्चियते? इत चेत् न यत् तावद्सकृतव्यवहाराभ्यासात् दर्शनमात्रेणोलक्षितश्रमविवित्तस्वदपविशेषं साधनाध्यक्षं तस्य स्वत एव प्रमाणयोग्यतानिश्चयः कृत्रिमाकृत्रिममणिरुप्यादि तत्वनिश्चयवत्। अनुमानस्य च साध्यप्रतिबद्धजन्मनो त्वभिचारशंकाविरहात्। अर्थक्रियानिर्भासन्तु प्रत्यक्षं स्वत एवार्थक्रियानुभवात्मकम् तत्र परार्थक्रियानापेक्षत इति तदपि स्वतो निश्चित प्रामाण्यम्। अत एवार्थक्रियापरम्परानुसरणादनवस्थादोषोऽपि दुर्धरेव, यत्वनभ्यस्थदशायाम् संदिग्धप्रामाण्यम्, उत्पत्तौ तस्यार्थक्रियाज्ञानात्, अनुमानाद्वा प्रामाण्यं निश्चियते।

द्वयोः प्रमाणयोः मध्ये- प्रत्यक्षानुमानयो मध्ये यत् प्रत्यक्षं तत् कल्पनायाः अपोढं अर्थात् कल्पनार्थरहितं इति ज्ञातव्यम्।

तथा उक्तं-

कल्पनापोढमभ्रान्तं प्रत्यक्षं निर्विकल्पकम्।

विकल्पो वस्तुनिर्भासादसंवादादुपप्लवः॥[10]

तच्च प्रत्यक्षेण स्वसंवेदनेनैव सिध्यति कल्पनारहितस्य अर्थस्य रूपस्य संवेदनस्यापरोक्षत्वात्। यदि तु अस्य कल्पनास्वभावत्वं स्वीक्रियेत तर्हि तथैव प्रकाश्येत् विकल्पस्यापेक्षत्वात्।

तदुक्तं-

प्रत्यक्षं कल्पनापोढं प्रत्यक्षेणैव सिद्धयति।

प्रत्यात्मवेद्यः सर्वेषां विकल्पो नामसंश्रयः॥[11]

प्रत्यक्षं चतुर्विधं इन्द्रियप्रत्यक्षं, मानसप्रत्यक्षं, स्वसंवेदनप्रत्यक्षं योगिज्ञानप्रत्यक्षञ्चेति। तत्र आद्यं इन्द्रियप्रत्यक्षं द्वयाधीनजन्मविषयेन्द्रियोत्पत्तिः तद्विन्द्रियज्ञानं इन्द्रियेणोच्यते प्रत्यक्षम् इति। प्रतिगतं अक्षं इति प्रत्यक्षं इन्द्रियाश्रितं इति अर्थात् इन्द्रियाश्रितं ज्ञानं प्रत्यक्षं मानसञ्च यथाधिगतविषयत्वेपि कल्पनापोढमभ्रान्तं मानसं प्रत्यक्षम्। स्वसंवेदनं तु रागद्वेषसुखादीनां सर्वचित्तचैतानं आत्मसंवेदनम् प्रत्यक्षम्। योगिज्ञानप्रत्यक्षं तु योगिनाथं भावनामयं भावनाहेतुकं तद् ज्ञानं सत्यस्वरूपविषयत्वेन् विधूतकल्पनाजालं स्पष्टं विशदज्ञेयाकार अवभासते।

संदर्भ सूची :

1. सांख्यकारिका 4
2. अर्थसंग्रहः, प्रकाशन चौखम्बा सुरभारती, पृ0 6
3. तत्त्वार्थसूत्र
4. आप्तमीमांसा
5. प्रमाणसंग्रहसवृत्ति
6. प्रमाणपरीक्षा
7. प्रमाणमीमांसा
8. प्रमाणवार्तिकम्, पृ0 3
9. अविसंवादनस्य योग्यत्वरूपकत्वात्
10. सर्वदर्शनसंग्रह
11. प्रमाणवार्तिकम्, कारिकासंख्या- 123, पृ0 138

●

संस्कृत-साहित्ये काशी

*डॉ. पवनकुमार शास्त्री**

काशी विश्वस्य प्राचीनतमा नगरी। वैदिकवाङ्मयादारभ्यार्वाचीनासु सर्वासु साहित्यविधासु सर्वत्र काश्या नामरूपगुणशीलादीनां महत्त्वं प्राप्यते। मुक्तिमही (मुक्तिदातृ) तिख्यातायाता अस्या नगर्यास्त्रिलोकादुपरि स्थितिरत्र प्रवहमानाया गङ्गाया उत्तरवाहिनीत्वं, काशीपुराधीश्वर्योरन्नपूर्णाविश्वनाथयोरद्भुतं चरितं, काशीनिवासिनामनुपमा दिनचर्या, वाग्व्यवहारादयश्च लोके प्रसिद्धास्सन्ति। विषयेऽस्मिन् बहवो रोचकानि आख्याकानिः प्राप्यन्ते। अत्र संस्कृतसाहित्येषूल्लिखितानां काशीविषयकानामुल्लेखानामेकं संक्षिप्तं विश्लेषणं प्रस्तूयते-

वाल्मीकीयरामायणं संस्कृतसाहित्यस्यादिकाव्यम्। अत्रादिकविना वाल्मीकिना किष्किन्धातः पूर्वस्यां दिग्भागे काश्याः स्थितिर्वर्णिताऽस्ति। रामायणस्य किष्किन्धाकाण्डे वानरराजः सुग्रीवः सीतान्वेषणार्थं पूर्वस्यां दिशि प्रस्थिताय 'विनते'- तिनामयूथपतय आदिशति यत् स काश्यामपि सीतामन्विषयतु-

नदीं भागीरथीं रम्यां सरयूं कौशिकीं तथा।

कालिन्दीं यमुनां रम्यां यामुनं च महागिरिम्॥

सरस्वतीं च सिन्धुं च शोणं मणिनिभोदकम्।

महीं कालमहीं चापि शैलकाननशोभिताम्॥

ब्रह्ममालान् विदेहांश्च मालवान् काशिकोशलान्॥

(वा. रा.4/40/20-22)

महाभारतस्य वनोद्योगभीष्मादिषु पर्वषु काशीविषयका नाना सन्दर्भाः प्राप्यन्ते। येषु भीष्मेन सम्पादितं काशिराजस्याम्बादीनां तिसृणां कन्यानामपहरणवृत्तान्तं प्रसिद्धमस्ति। श्रीमद्भागवतमहापुराणे काशिराजेन सह श्रीकृष्णस्य युद्धवृत्तान्तमुल्लिखितमस्ति?

शास्त्रेषु काश्या आधिभौतिकमाध्यात्मिकञ्च स्वरूपद्वयमुल्लिखितमस्ति। अस्या आधिभौतिकं स्वरूपमस्माकं समक्षं समुपतिष्ठत्येव। आध्यात्मिकं स्वरूपमुपनिषत्सु दर्शितमस्ति। तदनुसारं भ्रूमध्ये अविमुक्तकाश्याः स्थितिर्भवति। श्रीमद्भगवद्गीतायां काश्या आधिभौतिकमाध्यात्मिकञ्च स्वरूपद्वयं वर्णितमस्ति। अत्र प्रथमेऽध्याये पाण्डव-पक्षतः काशिराजस्य युद्धार्थमुपस्थितिः काश्या आधिभौतिकं रूपं दर्शयति-

धृष्टकेतुश्चेकितानः काशिराजश्च वीर्यवान्।

(श्रीमद्भगवद्गीतायां दुर्योधनोक्तिः1/5)

गीताया पञ्चमाष्टमयोरध्याययोर्भणितेषु भगवद्वाक्येषूपनिषदुक्ता 'भ्रूमध्यस्थिताऽविमुक्तकाशी' काश्या आध्यात्मिकं स्वरूपं प्रस्तौति-

स्पर्शान्कृत्वा बहिर्बाह्यांश्चक्षुश्चैवान्तरे भ्रुवोः।

प्राणापानौ समौ कृत्वा नासाभ्यन्तरचारिणौ॥

यतेन्द्रियमनोबुद्धिर्मुनिर्मोक्षपरायणः ।

विगतेच्छाभयक्रोधो यः सदा मुक्त एव सः॥

(श्रीमद्भगवद्गीता 5/27-28)

प्रयाणकाले मनसाचलेन भक्त्या युक्तो योगबलेन चैव।

भ्रुवोर्मध्ये प्राणमावेश्य सम्यक् स तं परं पुरुषमुपैति दिव्यम्॥

(गीता 8/10)

युगानुरूपं वैदिकवाङ्मयं सम्पाद्य, महाभारतपुराणादीन् विरचय्य च काश्यामागतेन महर्षिणा वेदव्यासेन काश्याः महत्त्वमनेन प्रकारेण वर्णितम्- 'सर्वान्नाशान् परनिन्दाञ्च परित्यज्य, पापकर्मषु रतिं विहाय, समाधिस्थीभूय हृत्कमले प्रकाशितं काशीशं विश्वनाथं भजेदिति'-

आशां विहाय परिहृत्य परस्य निन्दां, पापे रतिं च सुनिवार्य मनः समाधौ।

आदाय हृत्कमलमध्यगतं परेशं, वाराणसीपुरपतिं भज विश्वनाथम्॥[1]

गुरुदेवेन गोविन्दभगवत्पादेनादिष्टो जगद्गुरुशङ्कराचार्यभगवत्पादः(आद्यः) काश्यामागत्येमां 'निजबोधरूपेति' कथयति। अत्र मणिकर्णिकाघट्टे निवासकाले एवाचार्येण व्यासप्रसादादायुष्यवृद्धिः सम्प्राप्ता अत्रैव दशाश्वमेधघट्टे जगद्गुरुभिः शङ्कराचार्यभगवत्पादैर्दिग्विजययात्रार्थं सङ्कल्पो गृहीतः। शङ्करदिग्विजयादिषु ग्रन्थेषु भवतः काशीवासस्योल्लेखो विस्तरेण प्राप्यते।

काश्या महत्त्वं निरूपयता शङ्कराचार्येण भणितमासीत् - 'यत्र मनसश्चाञ्चल्यं समाप्तिं गच्छति',परमशान्तिञ्च प्राप्नोति,यत्र तीर्थानां साम्राज्ञी मणिकर्णिकाऽस्ति यत्र विमला ज्ञानगङ्गा चिरकालादेव प्रवहति, यत्र शरीरत्यागेऽपि मुक्तिः सुनिश्चिताऽस्ति।

---

* लेखक 'शास्त्रचूडामणि विद्वान', वरिष्ठ साहित्यकार एवं साहित्यविद्यावारिधि हैं। अध्यक्ष-साहित्य संगीत परिषद्, काशी।

एवं स्वर्गादपि सुखदायिनी, ढुंढिभैरवादिभिर्मण्डिताऽतिश्रेष्ठा विश्वनाथनगरीयं काशी पूर्वजन्मार्जितेन पुण्यातिशयेनैव लभ्यते-

मनोनिवृत्तिः परमोपशान्तिः सा तीर्थवर्या मणिकर्णिका च।

ज्ञानप्रवाहा विमलादिगङ्गा सा काशिकाऽहं निजबोधरूपा॥

(काशीपञ्चकम्)

यत्र देहपतनेऽपि देहिनां मुक्तिरेव भवतीति निश्चितम्।

पूर्वपुण्यनिचयेन लभ्यते विश्वनाथनगरी गरीयसी॥

(विश्वनाथनगरी स्तुति)

स्वर्गतः सुखकरी दिवौकसां शैलराजतनयातिवल्लभा।

ढुण्ढिभैरवविदारिता शुभा विश्वनाथनगरी गरीयसी॥

(विश्वनाथनगरी स्तुति)

आद्यजगद्गुरुर्भणतिः यत् काश्यामेव सर्वं प्रकाशते, काशी एव सर्वप्रकाशिका। आत्मप्रकाशस्वरूपेयं काशी येन ज्ञाता तेनैव वस्तुतः काशी सम्प्राप्ता -

काश्यां हि काशते काशी, काशी सर्वप्रकाशिका।

सा काशी विदिता येन, तेन प्राप्ता हि काशिका॥

(काशीपञ्चकम्)

काश्यामाद्यजगद्गुरुणा सशक्तिकस्य भगवतो विश्वनाथस्य साक्षाद्दर्शनं सम्प्राप्तमासीत्। भवता भगवतो विश्वनाथस्यान्नपूर्णायाः मणिकर्णिकायाः गङ्गायाश्च (प्रायः सर्वेषामेवदेवानां)[2] स्तुतिः कृता। आसु स्तुतिषु आचार्यप्रवरस्योद्दात्तभावनाया दर्शनं भवति[1] तद्यथा-

सानन्दमानन्दवने वसन्तमानन्दकन्दं हततापवृन्दम्।

वाराणसीनाथमनाथनाथं श्रीविश्वनाथं शरणं प्रपद्ये॥'

(द्वादशज्योतिर्लिंगस्तोत्रम्)

अन्नपूर्णे सदापूर्णे शङ्करप्राणवल्लभे!।

ज्ञानवैराग्यसिद्ध्यर्थं भिक्षां देहि च पार्वति!॥

(अन्नपूर्णास्तोत्रम्)

जगद्गुरुशङ्कराचार्यो भगवत्पादः काशीवैशिष्ट्यमनेन प्रकारेण प्रस्तौति-

स्वर्लोकस्तुलितः सहैव विबुधैः काश्या समं ब्रह्मणा,

काशी क्षोणिततले स्थिता गुरुतरा स्वर्गो लघुः खे गतः॥

(मणिकर्णिकाष्टकस्तोत्रम्)

काश्या प्रभावितो जगद्गुरुशङ्कराचार्यः श्रीअन्नपूर्णास्तोत्रे पार्वतीं 'मातरं', महेश्वरं 'पितरं', शिवभक्तांश्च 'बान्धवान्' इति मन्यते। तेन महाभागेन भगवद्भजनाद्विमुखानां काशीनिवासिनामाडम्बरालस्यादीनां दुर्गुणानां विरोधोऽपि विधीयते एवम्-

माता च पार्वती देवी पिता देवो महेश्वरः।

बान्धवाः शिवभक्ताश्च स्वदेशो भुवनत्रयम्॥

(श्रीअन्नपूर्णास्तोत्र)

जटिलो मुण्डी लुञ्चितकेशः काषायाम्बरबहुकृतवेषः।

पश्यन्नपि च न पश्यति लोको ह्युदरनिमित्तं बहुकृतशोकः॥

भज गोविन्दं, भज गोविन्दं, गोविन्दं भज मूढमते ।

संप्राप्ते सन्निहिते मरणे नहि नहि रक्षति डुकृञ्करणे॥

(चर्पटपञ्जरिकास्तोत्रम्)

एकेन पश्चात्वर्त्तिना शङ्कराचार्येण शिवस्य जगदीशत्वं निरूपयनन्नपूर्णा-विश्वनाथयोर्दाम्पत्यसम्बधः निरूपितः। देव्यपराधक्षमापनस्तोत्रे सः भणति-

चिताभष्मालेपो गरलमशनं दिक्पटधरो, जटाधारी कण्ठे भुजगपतिहारी पशुपतिः॥

कपाली भूतेशो भजति जगदीशैकपदवीं, भवानि! त्वत्पाणिग्रहणपरिपाटीफलमिदम्॥

...कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति।

(देव्यपराधक्षमापनस्तोत्रे)

संस्कृतभाषाया नाटककारो भासस्तत्कालीनं काशिराजं (स्वस्य नाटके अविमारके) वैरन्त्यनगरस्य नृपतेर्भगिनीपतिरिति वर्णयति। अत्र काशिराजेन नाटकस्य नायिकया कुरङ्ग्या सह निजपुत्रस्य विवाहार्थं तस्याः पितुः कुन्तिभोजसमीपे प्रस्तावः प्रेषित इति संलापः प्राप्यते।

'इदानीं तु काशिराजेन पुत्रस्य कारणाद् दूतः प्रेषितः।'

(अविमारकम् अं.1पृ.21)

कविकुलगुरुणा कालिदासेन विरचिते विक्रमोर्वशीये नाटके नायकस्य पुरुरवसः पट्टमहिषी काशिराजदुहितेति। व्रतोपवासेष्वास्थावतीयं काशिराजतनया नाटकस्य कथायामद्भुतमौदार्यं दर्शयति। इयं निजपतिं प्रसादनार्थं तस्य (पत्युः) समागमप्रणयिन्या कयाऽपि स्त्रिया सह (सपत्नीभावं विहाय) प्रीतिबन्धं स्थापयितुं प्रतिज्ञां करोति-

देवी-'अद्य प्रभृति यां स्त्रियमार्यपुत्रः प्रार्थयते या चार्यपुत्रस्य समागमप्रणयिनी, तया सह मया प्रीतिबन्धेन वर्त्तितव्यमिति।'

(विक्रमोर्वशीयम् अङ्क-3/121)

काश्यां मरणान्मुक्तिरिति पुराणवाक्यमनुसृत्य मोक्षाभिलाषिणा काश्मीरप्रान्तस्य राज्ञा मातृगुप्तेन सन्न्यासवृत्तिमधिगृह्य काश्यां न्युषितमिति राजतरङ्गिण्यां कल्हणोक्तिः-

अथ वाराणसीं गत्वा धृतकाषायसंग्रहः।

सर्वं सन्यस्य सुकृती मातृगुप्तोऽभवद्यतिः॥

(राजतरंगिणी 3/125)

संस्कृतभाषायां लिखितायां 'महावस्त्विति' बौद्धकृतौ सारनाथस्य ऋषिपत्तनस्य कथा प्राप्यते। काव्ये बुद्धचरितेऽश्वघोषेन काश्यां गौतमबुद्धस्यागमनमुपदेशदानाञ्च वर्णनमस्ति। त्रिस्थलीसेतु-वीरमित्रोदय-कुट्टिनीमतमित्यादिषु निबन्धग्रन्थेस्वपि काशीविवरणं प्राप्यते। त्रयोदश्यां शताब्दौ काश्यामुषितेन कविकान्तसरस्वतीमहोदयेन विश्वादर्शनामक एको धर्मशास्त्रस्य विशालग्रन्थो विरचितः। अस्मिन् भवता काशीस्थं विश्वनाथशिवलिङ्गं गङ्गाजलञ्चामृतोपममुद्घोषितम्-

गाङ्गं यत्रामृतं पुण्यं लिङ्गं यत्रामृतं स्थितम्.....।

वेंकटाध्वरिमहोदयस्य 'विश्वगुणादर्शचम्पू' नामधेयं चम्पूकाव्यं संस्कृतभाषाया उत्कृष्टं काव्यमिति मन्यते। इदमेकं यात्रावृत्तान्तमस्ति। अस्मिन् चम्पूकाव्ये रचनाकारः भारतवर्षस्य प्रमुखानां नगराणां वर्णनं करोति। विश्वावसुः कृशानुश्च नामधेयौ द्वौ गन्धर्वौ अस्य चम्पूकाव्यस्य प्रमुखपात्रे स्तः। आकाशमार्गतो नगराण्यवलोकयन्तौ यौ तेषां गुणदोषान् परस्परं विचारयतः। अनयोर्विश्वावसुर्गुणग्राह्योऽस्ति कृशासुश्च द्रान्वेष्यस्ति। अनयोर्वार्त्तया वेंकटाध्वरिमहोदयः (विंशतिश्लोकेषु किञ्चिद् गद्येष्वपि) काश्या गुणदोषाणां सुरुचिपूर्णं वर्णनं करोति। विश्वावसुर्भणति 'शिवस्य भाले विराजितस्य चन्द्रस्य ज्योत्स्नया सर्वदा प्रकाशितायामस्यां नगर्यां तमः कदापि न वसति।' 'कृशानुर्विरोधं करोति यत् काशिनिवासिनो भोजनभट्टा विलासिनश्च सन्ति।' 'विश्वावसुः पुनः प्रतिवादं करोति- यदत्राद्यापि श्रुतिसम्मतेषु पथेषु गतिशीला जना निवसन्ति।'-

विश्वावसुः- (इति बद्धाञ्जलिरग्रतोऽवलोक्य सानन्दम्) -

काशी स काशी भवदिन्द्रगेहा सौधाग्रभागा बहुसप्तिनागा

इन्धे मयूखैरियमन्धकारव्युत्पत्तिशून्या शिवशेखरेन्दोः॥[3]

1907 तमे खीष्टाब्दे प्रकाशितं महामहोपाध्याय पं.गङ्गाधरशास्त्रिविरचितं 'अलिविलासिसंलापे'ति नाम संस्कृतकाव्यं विंशतितमायाः शताब्द्याः श्रेष्ठतरं काव्यमस्ति। काव्येऽस्मिन् श्रीशास्त्रिमहोदयैर्वर्णितमस्ति यत् काश्या पूर्वीतटं बालुकमा निर्मित्तं नास्ति। इयं तु रजतनिर्मितमस्ति। अत्र मुक्तिकामनया देवा अपि पथिकत्वेन भ्रमन्ति। अस्या धुर्यां गङ्गा निजोर्मिभिर्नृत्यति। अत्र निवासकर्त्तृणां धर्मशास्त्रज्ञानां वाणी शारदाऽपि विधिवाक्यं मत्वाऽनुसरति-

सितं न खलु सैकतं लसति राजतीयं स्थली...।

2-इयं शमनयातना विधिशतापवादो ध्रुवं, सहर्षमिह जाह्नवीधुरि च नृत्यतीवोर्मिभिः।

इहाश्रयति भारती विधिधियैव शिष्टान् द्विजान्, इहध्वजविधूननैरिव निवार्यते संसृतिः॥

भगवतो लक्ष्मीनृसिंहस्य भक्तः पं0महीधरः काश्यां कालभैरवमन्दिरसमीपे निवसति स्म। भवता 'मन्त्रमहोदधौ' नाम निजग्रन्थे श्रीलक्ष्मीनृसिंहसहितं काशीस्थमन्येषामपि देवानां स्मरणं कृतस्ति-

विश्वेशो गिरिजा बिन्दुमाधवो मणिकर्णिका ।

भैरवो जाह्नवी दण्डपाणिर्मे तन्वतां शिवम्॥

(मन्त्रमहोदधि'30)

साहित्यशिरोमणिः पण्डितराजो जगन्नाथो 'रसगङ्गाधर' इति निजालङ्कारशास्त्रीये-ग्रन्थे काश्यां प्रवहमानां गङ्गां प्रशंसति-

नगेभ्यो यान्तीनां कथय तटिनीनां कतमया,

पुराणां संहर्त्तुः सुरधुनि कपर्दोऽधिरुरुहे।

कया च श्रीभर्त्तुः पदकमलप्रक्षालिसलिलै-

स्तुलालेशो यस्यां तव जननि दीयेत कविभिः॥

(रसगङ्गा अं.पृ. 348)

ऐतिहासिकं तथ्यमस्ति यत्पण्डितराजेन जगन्नाथेन यवनकन्यया सह विवाहः कृतः। अनेन रुष्टस्तत्कालीनो विद्वत्समाजस्तं तिरस्कृतवान्। दुःखितः पण्डितराजः काश्यामागतः। इह उत्तरवाहिन्या गङ्गायास्तटवर्तिनि पञ्चगङ्गेति नामधेये घट्टे गङ्गाजलधारया द्विपञ्चाशत्सोपानोपरि उपविश्य गङ्गायाः पावनकर्त्तृणां लहरीणां स्तुतिं कर्तुमारब्धवान्। तेन गङ्गया विनयः कृतः। हे मातः! भवती मां निजक्रोडे गृहीत्वा पवित्रं कुरु। गङ्गा पण्डितराजस्य द्विपञ्चाशद् श्लोकवतीं गङ्गालहरीति नामधेयां स्तुतिं श्रुत्वा स्वयं घट्टस्य सोपानानि समारुह्य तयोस्समीपमागतवती, तथा च पण्डितराजं निजलहरीष्वनुगोप्य आत्मसात् कृतवती। काश्यामद्यापि गङ्गादशहरापर्वणि गङ्गालहरीति नामधेया स्तुतिरियं सश्रद्धया पठन्तिजनाः-

समृद्धं सौभाग्यं सकलवसुधायाः किमपि तन्

महैश्वर्यं लीलाजनितजगतः खण्डपरशोः।

श्रुतीनां सर्वस्वं सुकृतमथ मूर्तं सुमनसां।

सुधासाम्राज्यं ते सलिलमशिवं नः शमयतु॥

प्रभाते स्नान्तीनां नृपतिरमणीनां कुचतटी-

गतो यावन्मातर्मिलति तव तोयैर्मृगमदः।

मृगास्तावद्वैमानिकशतसहस्रैः परिवृताः,

विशन्ति स्वच्छन्दं विमलवपुषो नन्दनवनम्॥'

विभूषिताऽनङ्गरिपूत्तमाङ्गा सद्यः कृताऽनेकजनार्तिभङ्गा।

मनोहरोत्तुङ्गचलत्तरङ्गा गङ्गा ममाङ्गान्यमलीकरोतु॥

(गङ्गालहरी श्लोक 1,7 और अन्तिम)

संस्कृतवाङ्मयस्य प्रकाण्डविद्वान् पं0 नारायणशास्त्रिखिस्ते महोदयाः काश्यां सारस्वतसाधनायां संलग्नानां पण्डितानां वर्णनमनेन प्रकारेण कुर्वन्ति-

गङ्गातीरतरङ्गसङ्गमवशात् पूतान्तरैर्गौरवं, प्राप्तैः फुल्लसरोजसौरभवहैः वातैः सदापावितम्।

वैरिञ्चं भवनं विहाय सरसामत्रैव वाग्देवताम र्षिभिर्बुधवरैरापूरितं सर्वतः॥

देववाण्या संस्कृतस्य प्रचारार्थं निजजीवनसर्वस्वं समर्पितेन, देवरिया-जनपदतः काश्यामागत्येयं निजकर्मभूमिर्निर्मितवता, प्रातस्मरणीयेन विद्वत्प्रवरेण '**अद्यापी**ति' निजसंस्मरणीयग्रन्थे काशीवासिनां सौमनस्यपूर्णं निश्छलं व्यवहारमातिथ्यपरम्परादिकं विस्तरेण वर्णितमस्ति। तेन महाभागेन निजसमकालीनानां पं0मदनमोहन-मालवीय- पं0राजेश्वरशास्त्रीद्रविड़- काशिनरेशो डॉ. विभूतिनारायणसिंहजूदेवमहाराजा- श्रीमहेशप्रसादः (तत्कालीनो जिलाधीशः) प्रभृतीनां सम्बन्धे स्वानुभवं विलिखितमासीत् । श्रीद्विवेदिमहोदयाः काश्यामेव निवसतां पं0 बलदेवउपाध्यायमहोदयानां धर्मपत्न्या श्रीमत्या शिवमुनिना देव्या दत्तं 'संस्कृतवाला बाब्विति सम्बोधनपदं श्रुत्वा आह्लादाति-शयमनुभवन्ति स्म-

येनाऽभवन् सहजभोजनपानवार्तालापाः कुटुम्बिसदृशा बहुवर्षकालम्।

अद्याप्यकृत्रिमवचोव्यवहारभाजां मूर्तिं स्मरामि सुहृदामवधेशनाम्नाम्॥

या नाम वृद्धमपि मां वदति स्म 'बाबू', सस्नेहमादृतवती बहुखाद्यपेयैः।

अद्याप्यहं शिवमुनीत्यभिधानधन्यां नो तादृशीं सहृदयामलभे कदाचित्॥

(अद्यापि)

हिन्दीभाषयाः संस्कृतभाषायाश्च मूर्धन्यैः विद्वद्भिः पं0विद्यानिवासमिश्रमहोदयैर्हिन्दीभाषाया यां लिखिते ललितनिबन्धे काश्याः वैशिष्ट्यमनेन प्रकारेण वर्णितमस्ति-

'काशी भुक्ति, मुक्ति और सिद्धि सबका परिहार करने वाली नगरी है। इसलिये यहाँ मरने का अर्थ जीवन की अछोर अनन्तता में सात्म होना है, मरना नहीं है। जीवन की लीला को समेटना है, पर समेटकर उसे अनन्तता का कण बनाना है।...कैसे कहें कि काशी मरने की नगरी है। जीने का स्वाद काशी जानती है, मरने को नकारना काशी जानती है, अमरता को भी ठेंगा दिखाना काशी जानती है।'

संस्कृतसाहित्यस्यानेकैर्विद्वद्भिः काश्यां निज निवास (प्रवासे वा) कालीना अनुभवा लिपिबद्धाः कृताः। यासु केचित्प्रकाशितास्सन्ति केचित्त्विदानीमपि तेषां विदुषां दैनन्दिनीषु सुगुप्तास्सन्ति। पं0गोपीनाथ कविराजः, डॉ0कपिलदेव पाण्डेयः, डॉ0राजेन्द्रप्रसादपाण्डेयः, प्रो0शिवजीउपाध्यायः, प्रो0रेवाप्रसादद्विवेदी, प्रो0भागीरथप्रसादत्रिपाठी, प्रो0राधावल्लभ त्रिपाठी, प्रो0 श्रीनिवासरथः, प्रो0 गङ्गाधरपण्डा, प्रो0 प्रभुनाथद्विवेदी, प्रो0राजारामशुक्लः, प्रो0 हरिप्रसादोऽधिकारी, प्रो0 रामपूजनपाण्डेयः, प्रो0अभिराजराजेन्द्र मिश्रः, डॉ0 कमलापाण्डेया, डॉ0 धर्मदत्तचतुर्वेदी, डॉ. पवन कुमार शास्त्री प्रभृतिभिर्विद्वद्भिः स्वानुभवा विलिखितास्सन्ति। सर्वेषामेव नामोल्लेखं विचाराणाञ्च प्रस्तुतिरत्रासम्भवा। मात्र त्रयाणामेव महानुभावानामनुभवान् प्रस्तूय निबन्धस्यास्य समापनं करोमि।

प्रो0रेवाप्रसादद्विवेदि महोदयैः 'स्वातंत्र्यसम्भवमिति' नामधेये निजमहाकाव्ये लिखितमस्ति यदियं काशी मुक्तेः विश्वविद्यालयोऽस्ति-

छात्रालयीभूतसमस्तगेहा विद्यालयायन्ति हि यत्र रथ्याः।

काशी न सा कापि पुरी, पुराणः स विश्वविद्यालय एव मुक्तेः।...

अत्रास्ति विश्वेश्वर एव राजा माताऽन्नपूर्णैव हि यस्य कोषः।

उत्कर्षसीमा खलु साऽस्यराज्ये कोषः स्वयं यद् वृणुतेऽत्र भिक्षुम्॥

प्रो.श्रीनिवासरथमहोदयो निजगुरोः पं0बलदेवउपाध्यायस्य स्मृतौ बलदेव-चरितमिति नामधेयमेकं काव्यं रचितवान्। तस्मिन्ननेन महोदयेन काशीहिन्दूविश्वविद्यालय-सहितं काश्या बहूनां पावनस्थलानां चित्रणं कृतमस्ति। अयं भणति पृथिव्यां नास्ति कोऽपि भारतीयो यस्य मनः 'काशी' नाम श्रुत्वा नोच्छलति। अत्र प्रभाते प्रवहमानायां गङ्गायां पतिता रविरश्मय अद्भुतं दृश्यं जनयन्ति-

नास्त्येकोऽपि भुवि भारतदेशवासी, चित्तस्य दीपयति यस्य रुचिं न काशी॥

काश्यां सदैव हृदयङ्गममम्बु गाङ्गं, स्नानार्थिनां करपुटैः प्रहितं प्रभाते॥

अङ्गीकरोति लहरीषु परःसहस्रमूर्तिसहस्रकरणः स्वयमर्घ्यमेत्य॥

(बलदेवचरितम् 4/1-5)

काश्या बनारसीशाटिकाया लोकप्रियत्वविषये रथमहोदया उत्प्रेक्षां कुर्वन्ति- 'यदेवं भाति कृत्तिवाससा शिवेन पार्वत्यै परिधापयितुमत्र स्वयं निजहस्तेनेमा विरचिता आसन्। तस्मादेवाद्यापि सकलस्य विश्वस्य सुन्दर्य अस्मानाकृष्यन्ति'-

शैलाधिराजतनयापरिधानयोग्यं, वासः ससर्ज किमिहैव स कृत्तिवासाः।

वाराणसीत्यनुदिशं प्रमदामनांसि शाटी समुत्सुकतया तरली करोति॥

(तत्रैव)

काश्यां सम्पूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालयस्य कुलपतिपदमलंकर्त्ता संस्कृत-साहित्यस्य मूर्धन्येन विदुषा प्रो0अभिराजराजेन्द्रमिश्रमहोदयेन स्वस्य 'वेत्सि त्वमेकः' 'नमामि शशिशेखरम्', 'श्रीकालभैरवमहं द्रुतमावाहयामि', 'जय जय शिवगौरि जननी जय गङ्गे' त्यादिषु निजकवितासु काश्या बह्व्यश्छवयोऽङ्किताः। भवता 'चर्चरी'ति शीर्षके निजकाव्यसंग्रहस्य कवितायामेकस्यां भगवतो विश्वनाथस्याहर्निशं जागर्तिकारणमनेनप्रकारेण वर्णितमस्ति-

रक्षेन्नो वा प्रमत्तः स्वनगरपरिधि भैरवो दुर्गपालः,
भार्या वा भोजयेन्नासे पथि पथि नितरामन्नपानैर्दरिद्रान् ॥
गङ्गेयं दृष्टमात्रा दुरितमिह हरेन्नोऽथवा पापभाजा-
मेवं चिंतावतानेः स्वपिति न तनुके विश्वनाथेन्न काश्याम्॥

(चर्चरी पृ. 14)

सन्दर्भ ग्रन्थाः –

- वाल्मीकीय रामायणम्
- महाभारत
- श्रीमद्भगवद्गीता
- शंकराचार्य साहित्य/स्तोत्रादिः
- अविमारकम्
- काशी : नगरी एक रूप अनेक
- मणिकर्णिकाष्टकस्तोत्रम्
- राजतरंगिणी
- मंत्रमहोदधिः
- चर्पटपञ्जरिकास्तोत्रम्
- गंगालहरी
- रसगंगाधरः आदि।

1- विस्तृत विवरण हेतु देखें इन पङ्क्तियों के लेखक का निबन्ध संग्रह 'भारतीय संस्कृति एक खोज'।

2- गङ्गे त्रैलोक्यसारे सकलसुरवधूधौतविस्तीर्णतोये।
पूर्णब्रह्मस्वरूपे हरिचरणरजोहारिणी स्वर्गमार्गे ।
देवि! सुरेश्वरि! भगवति! गङ्गे! त्रिभुवनतारिणि तरलतरङ्गे।
शङ्करमौलिविहारिणि विमले मम मतिरास्तां तव पदकमले। (श्रीगङ्गाष्टकम् एवं श्रीगङ्गास्तोत्रम्)
नित्यानन्दकरी वराभयकरी सौन्दर्यरत्नाकरी, निर्धूताखिल घोरपावनकरी प्रत्यक्षमाहेश्वरी।।
प्रालेयाचलवंशपावनकरी काशीपुराधीश्वरी, भिक्षां देहि कृपावलम्बनकरी मातान्नपूर्णेश्वरी।। (श्रीअन्नपूर्णास्तोत्र)

3- कृशानुः - 'वयस्य! किमेषापि तव स्तवास्पदम् ?
पश्य ये मिष्ठान्नभुजो गजोत्तमहयारोहाः सुगेहान्तरे,मत्ताभिर्महिलाभिरत्र विहरन्त्यामुक्तमुक्तास्रजः।
ते घोरास्थिधरा विराजदनडुद्वाहा विषाहारिणो,नर्तिष्यन्त्यवशाः श्मशाननिलया नीचैः पिशाचैः समम्।।
विश्वावसुः-अनिपुणधिषण गुणमपि किमिति दोषीकरोति।
यदेतन्नगरवासिना भोगिनाऽपि योगिनामप्राप्यं शिवसारूप्यमाप्यते।
अत्र देहमपवित्रमपास्यन्नच्छमृच्छति वपुः किल यस्य।
लोचने शुचिरवाप्तनिटाले मस्तके हरिपदाम्बुजटाले। अदः पुरवासिनामन्याप्येषा धन्यता।

●

शब्दशास्त्रीयपारिभाषिकशब्दविश्लेषणम्

*डॉ. रमाकान्त पाण्डेयः**

शब्दशास्त्रे बहवस्तादृशाः शब्दाः समुपलभ्यन्ते येषां कश्चनपारिभाषिको विशिष्टश्चार्थो विद्यते। यं विना तत्तद्स्थलीयग्रन्थो नैव सङ्गच्छते न वा बुद्धयारूढो भवति। तस्मात् तत्तच्छब्दानां तादृशोऽर्थ अवश्यमेव स्वीकर्तव्यः। तत्र क्रमशो निरूप्यते- **'जरायाः जरसन्यतरस्याम्'**[1] इति सूत्रस्य परिष्कृतार्थनिरूपणप्रसङ्गे बहुभिराचार्यैः प्रत्यपादि। जराशब्दान्तं यदङ्गं तदवयवो यो निर्दिश्यमानस्तस्य स्थाने 'जरस्'-इति आदेशों भवति। अत्रार्थे पारिभाषिकं पदं निर्दिश्यमानमिति, तस्य केवलं समान्यतयोच्चार्यमाणमर्थो वा, अन्यः पारिभाषिक इति विचारप्रसङ्गे नागेशोक्तमेकं परिभाषावाक्यं स्मृतावागच्छति, तद्यथा-

'निर्दिश्यमानस्यादेशाः भवन्ति'[2] अत्र पूर्वोक्तमेव पदमागतं। तस्यायं भावः तत्तत्सूत्रविहितादेशाः निर्दिश्यमानस्यैव भवन्ति। अत एव जरसादेशो ''जरा'' इत्यस्यैव भवति न समुदायभूतार्गस्येति। समुदायप्राप्तकार्यव्यावर्तकतया निर्दिश्यमानपदार्थ अङ्गीक्रियते नागेशभट्टैः। पारिभाषिकपदार्थनिरूपणात् पूर्वं परिभाषावाक्ये बीजं निरूपयति तन्निरूपणेनैव अत्र पारिभाषिकार्थः प्राप्स्यते। **''षष्ठी स्थानेयोगा''**[3] सूत्रस्यास्यावृत्तिः क्रियते। अथ च षष्ठीपदस्य प्रत्ययमात्रबोधकतया तस्य तदन्तपरता, यस्यार्थः षष्ठ्यन्तमिति अत्र चातद्गुणसविज्ञानो बहुब्रीहेः सत्वात् षष्ठयन्तपदस्य षष्ठीप्रकृतिरित्यर्थः। यतः, सेति पदद्वयमध्याह्रियते तथा च यतः षष्ठी, सा षष्ठीप्रकृतिः, स्थानेन= तत्पदार्थानुयोगिकसम्बन्ध-विशेषेन युज्यत इत्यर्थः। उच्चार्यमाणमन्तरा शब्द अर्थप्रतिपादको न भवतीति कृत्वा उच्चार्यमाणषष्ठीप्रकृतिरेव निर्दिश्यमानपदार्थ इति शाब्दिकोऽर्थः।

पारिभाषिकार्थस्तु- षष्ठीप्रकृतिजन्यप्राथमिकोपास्थितिविषयत्वं निर्दिश्यमानत्वमिति। प्राथमिकत्वं यल्लक्षणघटकं तदपि-पारिभाषिकमेव तच्च शास्त्रान्तरासहकृतत्वम्।

तथा च लक्षणस्वरूपं षष्ठीप्रकृतिजन्यशास्त्रान्तरासहकृदुपस्थितविषयत्वमिति।

लक्षणसमन्वयः-

जरायाः जरसन्यतरस्यां सूत्रघटकजराशब्देनोपस्थितिद्वयी भवति। जराशब्दजन्य-जरेत्याकारिकानुपूर्वीरूपा येन विधिस्तदन्तस्येति साह्वेन जराशब्दान्ततया निर्जरेत्यस्य च, तत्र **समुदायस्य निर्जर''**[4] इत्यस्य द्वितीयोपस्थितिस्तद्विषयीभूतस्यार्थस्य न निर्दिश्यमानता अपितु ''जरा'' इत्याकारिकानुपूर्विरूपार्थस्यैव निर्दिश्यमानत्वं, तस्मात् तस्यैव 'जरस्' इत्यादेशो भवति न ''निर्जर'' इति समुदायस्येति। अत्रलक्षणे प्राथमिकत्वादिनिवेशरूपगौरवमभिलक्ष्ययाशङ्कते- यल्लाघवात् उच्चार्यमाणषष्ठीप्रकृतिवृत्तिश्रावणप्रत्यक्षविषयतावच्छेदकधर्मावच्छिन्नत्वं निर्दिश्य-मानत्वमङ्गीकार्यं न गुरुभूतं पूर्वोक्तलक्षणमिति। तथा सति उच्चार्यमाणषष्ठीप्रकृतिसूत्रस्थजरेति तद्वृत्तिश्रावणप्रत्यक्षविषयतावच्छेदको धर्मः जराशब्दत्वरूपः, तदवच्छिन्नः यथा सूत्रस्थस्य जराशब्दस्येव लक्ष्यस्थजराशब्दोऽपि इति तस्यनिर्दिश्यमानतया जरसादेशो सिध्यत्येव, तदर्थं प्राथमिकत्वादिघटितलक्षणं नाङ्गीकर्तव्यमित्याक्षेपः। तथा लक्षणस्वीकारे हयवरट् सूत्रे वृक्षस्तत्रेत्यादौ निर्दिश्यमानपरिभाषया वारणपरं भाष्यमसङ्गतं स्यात्। तथाहि **''विसर्जनीयस्य सः''**[5] इति सूत्रे पदस्येत्यधिकारसत्त्वेन तद्विशेष्यकविसर्जनीयपदे तदन्तविधेः सत्त्वात् ''विसर्जनीयान्तं यत् पदं तदवयवनिर्दिश्यमानस्य स्थाने सकारो भवति इति सूत्रार्थो भवति। तथा च वृक्षस्तत्र इत्यादौ विसर्गान्तं पदं वृक्ष इति समुदायः तस्य स्थाने सकारः प्राप्तस्तद्वारणाय निर्दिश्यमानपरिभाषासंचारो भाष्यकृता कृतः। यदि स्ववृत्तिश्रावणप्रत्यक्ष-विषयतावच्छेदकेत्यादिपारिभाषिकलक्षणस्वीक्रियते तदाऽत्र स्वं सूत्रघटकषष्ठीप्रकृतिः विसर्जनीयेति तद्वृत्तिश्रावणप्रत्यक्षविषयतावच्छेदको धर्मः विसर्जनीयशब्दत्वरूपस्तद्धर्मावच्छिन्नः वृक्षघटकबिन्दुद्वयं नास्ति। तस्मात् निर्दिश्यमानत्वाभावात् समुदायस्य सकारादेश; प्राप्त एव। तथा च निर्दिश्यमानपरिभाषया वारणपरभाष्यासङ्गतिः स्पष्टैव, अतः प्राथमिकत्वादिघटितलक्षणं स्वीकर्तव्यमेवेति भावः।

षष्ठीप्रकृतिजन्यप्राथमिकत्वोपस्थितिविषयत्वं निर्दिश्यमानत्वमिति लक्षणे दोषमुद्भावयति त्यमतिक्रान्त इति, अतित्यदित्यत्र प्रथमाविभक्तौ. **''तदोः सः सावित''**[6] सूत्रेण यथा त्यादिघटकान्त्यभिन्नस्य तकारस्य सकारस्तथैवोपसर्गघटकतकारस्यान्त्यभिन्नतया सत्यवापत्तिरित्युभयत्रनिर्दिश्यमानत्वात्। सूत्रार्थस्तु-

त्यदाद्यन्तं यदङ्गं तदवयवस्य तदोः सत्वं स्यादिति, अत्र त्यदादेरित्यस्य स्थानपदार्थेऽन्वयो वक्तुमशक्यः, तदोरित्यस्यानन्वयापत्तेः सत्त्वात्। तस्मात् तदोरित्यस्यैव स्थानपदार्थेऽन्वयस्तथा चोभयविधस्य तकारस्य सत्वापत्तिः। यद्यत्र निर्दिश्यमानत्वं विचार्यते, तदा तद् इति षष्ठीप्रकृतिसः एव निर्दिश्यमानः एतावता परिभाषा संचारेऽपि दोषस्य तादवस्थ्यम्। एतद्दोषवारणाय मूलग्रन्थे श्रीमता नागेशभट्टेन प्रोक्तं निर्दिश्यमानावयवरूपमेव वा।

अत्र कल्पे निर्दिश्यमानस्य न स्थानपदार्थेन सह सम्बन्ध, अपितु निर्दिश्यमानावयवस्य स्थानेन सह सम्बन्धः। तथा च न त्यदादिपदीय निर्दिश्यमानो गृह्यते न त्वङ्गपदीयाव्यावर्तकत्वात् न वा

* एसोसियेट् प्रोफेसरः, व्याकरणविभागः, संस्कृतविद्याधर्मविज्ञानसङ्कायः, काशीहिन्दूविश्वविद्यालयः, वाराणसी।

तद्पदीयनिर्दिश्यमानः फलाभावाच्च तस्मात् त्यदादिपदीय एव निर्दिश्यमानो ग्रहीतव्यः, तथा च सूत्रार्थो भवति-

त्यदाद्यन्तं यदङ्गं तदवयवत्यदादिपदीयनिर्दिश्यमानो योऽन्तः तकार दकारश्च तयोः, सकारो भवति, एवं रीत्या न दोषः।

यद्वा-

एतद्दोषवारणाय भूतिकारेण पक्षान्तरमुपन्यस्तं तद्यथा-

अयम्भावः-

सर्वा[7] अपि सूत्रघटकषष्ठीप्रकृतयः साक्षात् स्वावयवमात्रघटितपरम्परया स्थानपदार्थेन युज्यन्त इति सूत्रार्थात् त्यदादीनाम् इत्यस्यर्थः स्थानपदार्थे स्वावयवमात्रघटितपरम्परायान्वयेन उपसर्गतकारस्य सत्वे तद् बाधान्न दोषः। अत्र ग्रन्थे सूत्रार्थाद् इति पदमागतं विद्यते, तस्मात् कस्य सूत्रस्यायमर्थः इति विज्ञेयम्। आवृत्तिभूतषष्ठी स्थानेयोगेति सूत्रस्यार्थ इति- सर्वा अपि... अर्थात् परिभाषायामयमर्थ इति विधिसूत्रघटकसर्वासां षष्ठीप्रकृतीनामन्वयः साक्षात् परम्परया स्थानपदार्थेन सह भवति।

प्रकृते तदोः साविति सूत्रे षष्ठीप्रकृतयः त्यादादीनामिति, तदोरिति, अङ्गस्येति च। तत्र तदोरित्यस्य स्वविषयत्वेनेति साक्षात्सम्बन्धेन स्थानपदार्थेनान्वयः, यथाऽवयवः ज्ञानविषयस्तथैव तदवयवघटितोऽपि ज्ञानविषयः त एव स्व त्यदादिस्तदवयवस्तकारादिस्तविषयत्वं एवं रीत्या समुदायस्य त्यदादेरप्यन्वय बधान्न सत्यमिति भावः। अवयवयघटिततया समुदायेऽपि ज्ञानविष्य इति भूते हार्दम।

किञ्च परम्परासम्बन्धेन स्वायवविषयकत्वरूपसम्बन्धः स्वीक्रियेत तदाऽपि न क्षतिः स्यात् ग्रन्थश्च सुकरः स्यात्। अङ्गपदीयषष्ठीप्रकृतिमादायनिर्दिश्य मानविचारो न कर्तव्य इति कृत्वाङ्गस्य ग्रहणं न कृतं मया यतोऽहि यथा धातुपदांशे प्रवृत्तौ धात्वन्तरस्य व्यावृत्तिस्तथाङ्गांशे प्रवृत्तौ, अङ्गान्तरस्य व्यावर्त्यासम्भवेन तदप्राप्तेः। एतन्मूलकमेव निर्दिश्यमानत्वलक्षणे षष्ठीप्रकृतिपदेन, अङ्गरूपपदरूपप्रकृतिभिन्नैव प्रकृतिर्गृह्यत इति भावः। निष्कृष्टतया निर्दिश्यमानलक्षणमिदमेव भवति- षष्ठीप्रकृतिजन्य प्राथमिकोपस्थितविषयत्वमिति, अत्र लक्षणे प्राथमिकत्वनिवेशे, माली भवति, शाली भवति इत्यादिप्रयोगाणामपि सिद्धिः स्यात्। तथाहि न माला अमाला, अमाला माला सम्पद्यत इति माली अत्र विग्रहे मालाशब्दात् अभूततद्भावे च्विप्रत्ययस्तस्य सर्वापहारिलोपः, एवञ्च माला भवति इत्यादौ ''**अस्य च्वौ**''[8] इति सूत्रेण मालाघटकाकारस्य ईत्वं करणीयं भवति, तच्च न स्यात् निर्दिश्यमानत्वाभावात् दीर्घाकारस्य अणुदित् सूत्रसहकृदुपस्थितविषयत्वाच्चेति। चकारोऽत्र हेत्वर्थकः।

अत्र सन्दर्भे ग्रन्थकारेण समाधानऽक्ष्यं दत्तम्। प्रथमन्तु-जातिपक्षः अतएवाह- ''**जातिपक्षे दोषभावात्**''[9] तस्येदं तात्पर्यं यत् पदानां जातौ शक्तिस्तथा च ''**अस्य च्वौ**''[10] इत्यादौ अकारस्यात्वाच्छेदेन सर्वत्राकारे शक्तिः। तेनैवात्वेन अकारमात्रस्य बोधो भविष्यति। व्यक्तिबोधस्त्वमक्षेपादिना। व्यक्तिपक्षे, अकारेण ह्रस्वाकारव्यक्तेरेव बोधो भविष्यति व्यक्त्यन्तरस्य बोधस्तु अणुदित् सूत्रसाध्येन। तथा चात्र पक्षे पूर्वोक्तदोषः स्यात्। व्यक्तिपक्षे अणुदित्सूत्रग्रहीतानां निर्दिश्यमानत्वमेव। अत्र बीजन्तु ''न भूसुधियोः'' इति यणनिषेधविधायकं सूत्रम्। भूसुधीघटकदीर्घयोः अणुदित्सूत्रसहकारेणैवोपस्थितिविषयत्वेन निर्दिश्यमानत्वाभावाद्यणोऽप्राप्तेस्तदा निषेधवैय्यर्थ्यं स्यात्।

यद्वा- निर्दिश्यमानलक्षणप्राथमिकत्वलक्षणे अणुदि्वत् शास्त्रातिरिक्तशास्त्रं गृह्यते, तदपि न दोषः। एवमेवान्यत्रापि तत्तच्छास्त्रभिन्नत्वं बोध्यम्।

निर्दिश्यमानस्य प्रथमलक्षणं विचार्य परिष्कृत्य च द्वितीयलक्षणं विचार्य पूर्वोक्तलक्षणे तत्तत्तदशास्त्रातिरिक्तसङ्कोचे महद्गौरवमतः किमपि लघुभूतं लक्षणं करणीयम्।

यदागमपरिभाषासहकारेणोपस्थितविषयत्वाभावे सति येन विधिरितिशास्त्रासहकारको-परिस्थितिविषयत्वं निर्दिश्यमानत्वम्। द्वितीयलक्षणमपि रुचिकरं नास्ति। यतोऽहि इतोऽपि लघुभूतं लक्षणं कल्पयितुं शक्यम्। अतः पूर्वोक्तलक्षणे, फलमुरवगौरवं न दोषाय भवति, अपितु देवानञ्चतीति, देवद्रयङ् इत्यादौ विष्वगदेवयोः इति सूत्रेणाद्रयादेशो न स्यात्। देवीमुपपदे अञ्चू धातोः क्विन् प्रत्यये तस्य लोपे ततः सुविभक्तौ ''**अनिदितां हल उपधायाः क्ङिति**''[11] इति नलोपे प्राप्ते ''**नाञ्चेः पूजायाम्**''[12] इत्यनेन निषेधे चकारस्य संयोगान्तलोपे समासे च कृते देवी+अन् इति स्थिते विष्वग्देवयोः इत्यनेन टेरद्रयादेशः करणीयः स न सम्भवति, सूत्रघटकषष्ठीप्रकृतिदेवशब्देन देवीत्यस्य लिङ्विशिष्टपरिभाषयोपस्थितिविषयत्वेन द्वितीयोपस्थितेः सत्वात्। अतः प्राथमिकत्वघटितलक्षणं करणीयं तच्चेत्थम्।

तृतीयंलक्षणम्-

षष्ठीप्रकृतिविशिष्टत्वं निर्दिश्यमानत्वं वैशिष्ट्यं च स्वजन्योपस्थितविषयत्वस्वजन्यो-
पस्थितविषयपूर्ववर्णाघटित्वैतदुभयसम्बन्धेन।

समन्वयः-

स्वपदेन षष्ठीप्रकृतिः जरा इति तज्जन्योपस्थितिविषयत्वं जरा शब्दे पुनः तज्जन्योपस्थितिविषयः जरोति तत्पूर्ववर्णः रेफ इति तद्घटितत्वं निर्जर इति अघटित्वं जरा इति तस्मात् जराशब्दस्यैव निर्दिश्यमानत्वम्। तस्यैव जरसादेशः-

अत्र उदस्थात् जराजरसो इत्यादौ न दोषः। यतो हि स्वविशिष्टवर्णः पूर्वजराघटकाकारस्तदघटितोत्तरजरेति तस्यैव निर्दिश्यमानत्वम्। पूर्वजरघटितत्वेन समुदायस्य च घटितत्वात् न निर्दिश्यमानत्वमिति भावः। लक्षणमिदमपरे न सहन्ते स जूः सजूर्भ्याम् जरसोजरसौ इत्यादौ सत्वात्। सजुषः सजूरिति स दोषस्य सजुः

सजूस्ताभ्यां सजु सजूभ्र्याम्। एवमेव जरयोः जरेत्यत्रालुकि समासः षष्ठ्या आक्रोशे इति सूत्रेण। जरापदजन्योपस्थितिविषयतोभयत्र सत्वेऽपि, स्वजन्योपस्थितिविषयपूर्ववर्णः पूर्वसजुषघटषकारः तथैव जरा ओस जरा ओस जरा सु तथैव उपस्थितविषयपूर्व वर्णः पूर्वजराघटकाकारस्तद्घटितत्वं पूर्वसजुष्करे एवं पूर्वजराशब्दे च, तस्मात् पूर्वस्य सजुष्जराशब्दस्य च न निर्दिश्यमानत्वं, तथापि रुत्वजरसादेशानापत्तिस्तस्मात् लक्षणान्तरमङ्गीकार्यम्।

चतुथलक्षणम्-

''**षष्ठीप्रकृतिविशिष्टत्वं निर्दिश्यमानत्वम्**'' तत्र वैशिष्टय स्वजन्यशाब्दबोधीय-विषयताश्रयत्वं स्वजन्यशाब्दबोधीयविषयताश्रयाघटितत्वोभयसम्बन्धेन। तत्र प्रथमः सम्बन्धो जरापदीयनिर्दिश्यमानत्वस्य रामशब्दादौ वारणाय द्वितीयसम्बन्धस्तु निर्जर इति समुदायस्यादेशवारणाय अत्रावधेयम्- शाब्दबोधीयोपस्थितिविषयतयोः परस्परं भेदो भवति उपस्थितविषयता विशेष्य-विशेषणपदार्थाभ्यां सङ्कुचिता न भवति शाब्दबोधीयविषयता तु तत्सङ्कुचितैव। यथा-

नीलो घटः इत्यादौ घटेन सङ्कोचात् नीलत्वावच्छिन्नशाब्दबोधीयविषयता नीलघटादावेव न तु नीलपदादौ। विशेषणेन सङ्कोचात् पटत्वावच्छिन्ना विषयता नीलपटे एव तिष्ठति न पीतपटे। इति विवेकः।

समन्वयस्तु जरापदजन्यशाब्दबोधीयविषयताश्रयत्वमुभयत्र, जराशब्दे, निर्जरशदश्च वर्तते, किन्तु समुदायस्य जरापदीयशाब्दबोधविषयताश्रयघटितत्वेन न तस्य निर्दिश्यमानत्वमतः समुदायस्य जरसादेशो न भवति। उदस्थात् इत्यत्रास्थाशब्दस्य स्थापदीयशाब्दविषयताश्रय-घटितत्वेन न आस्था इत्यस्य निर्दिश्यमानत्वमिति। स्था इत्यस्य निर्दिश्यमानत्वेऽपि उदः पारत्वाभावान्नपूर्व।

जराजरसोः इत्यत्र जरापदजन्यशाब्दबोधीयविषयतापूर्वजराशब्दे नास्ति। अजादि-विभक्त्यव्यवहितपूर्वत्वविशिष्टाभावात् अतः पूर्वजराशब्दे प्रथम एव सम्बन्धो न गतः। द्वितीयजराशब्दे जरापदजन्यशाब्दबोधीयविषयताश्रयताऽपि भिद्येत् एवं शाब्दबोधीयविषयताश्रयत्वे यो जराजरासमुदायस्तदघटितः। अतः अत्रोत्तरजराशब्दे सम्बन्धद्वयस्य सत्वात् तस्यैव निर्दिश्यमानत्वं यद्यपि पूर्वजराशब्दोऽपि समुदायाघटितस्तस्यापि प्रथमसम्बन्धस्याभावान्ननिर्दिश्यमानत्वमितिकृत्वा न पूर्वस्य न वा समुदायस्य जरसादेश इति।

सजूःसजूभ्र्याम्-

इत्यत्र सजुष्शब्दजन्यपदत्वविशिष्टसजुष्शब्दस्य शाब्दबोधविषयतापूर्वसजुष्शब्दे तथोत्तरे सजुष्शब्देऽपि विद्यते। विषयताश्रयाघटितत्वमपि पूर्वत्रोत्तरत्रापि, यतोहि पूर्वेणोत्तराघटितः उत्तरेण च पूर्वघटित; अतोरूभयोरघटितत्वं, तस्मादुभयत्र निर्दिश्यमानत्वसत्वात् भवति सत्वकार्यम्।

जरसो जरसौ-

अत्रालुक्समासो जापदजन्यशाब्दबोधीयविषयतोभयत्र तिष्ठति, तद्घटितत्वमप्युभयत्र- समुदायस्य तद्घटित्वेन न निर्दिश्यमानत्वं किन्तु पूर्वत्र परत्रोभयस्थले निर्दिश्यमानत्वस्य सत्वात् जरसादेशः।

पञ्चमंलक्षणम्-

अत्र लक्षणे ''स्नात्वाकालक'' इत्यादौ क्त्वो ल्यबापत्तिः। यतो ह्यत्र मयूरव्यंसकादयश्चेत्यनेन सूत्रेण[13] अनञ्पूर्वसमासघटकस्य क्त्वो ल्यप् स्यात् इत्यर्थे केन सूत्रेणानञ्पूर्वकसमासघटकत्वेन स्यानात्वाकालघटक क्त्वो ल्यबापत्तिः। क्त्वापदप्रयोज्यशाब्द-विषयतायाः सत्वेन तदघटितत्वेन च निर्दिश्यमानत्वस्य सत्वात्। भाष्योक्तनिपातनादिति हेतुना तदवारणेऽपि स्नात्वाकालकीकृत्य'' इत्यत्र पूर्वक्त्वाशब्दस्य ल्यापत्तिर्दुर्वारिति। निर्दिश्यमानतोभयत्रापि सत्वात्। न च निपातनादेव तदभाव इति वाच्यम्, स्नात्वाकालकैतत्-समासनिमित्तकल्यपः निपातनात् वारणसम्भवेऽपि, स्नात्वाकालकीकृत्यैतविशिष्टसमास-निमित्तकस्य ल्यपः वारणासम्भवात्। ''तत्र बीजं भाष्यम्''- तद्यथा प्रवाहणस्यापत्यं प्रावाहणेयः शुभ्रादिभ्यश्चेति ढक् प्रवाहणस्य ढे इत्यर्थेन पूर्वपदस्य वा वृद्धिः। प्रवाहणेयस्यापत्यं प्रावाहणेयिः। अत्रेञ् प्रत्ययः। प्रवाहणस्य ढे इति सूत्रं वृद्धेर्बाधकमिति प्रश्ने भाष्यकृतोत्तरितं यत् ढक् प्रत्ययनिमित्तकवृद्धेरेव बाधकम् न इञ् प्रत्ययनिमित्यकवृद्धेः न च मयूरव्यंसकादश्चैतत् सूत्रघटकचकारेणैतत् सत्रेण समस्तपदानां समासान्तरे प्रवेशाभाव इति ज्ञापनादुक्तप्रयोगासम्भव इति वाच्यम् अत एव परमो मयूरयंसक इत्यसमस्तेमेव, चकारज्ञापितार्थस्यानित्यत्वेन स्नात्वाकालकेत्यस्य गतिसमासे प्रवेशात् दोषस्य तादवस्थ्यात्। अन्यथा प्रत्ययमात्रग्रहणे चक्षुमात्रग्राह्य इत्यादिप्रयोगाः स्युः अनेन स्नात्वाकालकीकृत्येत्यादौ समासघटकत्वेन पूर्वक्त्वो ल्यबापत्तिर्दुर्वारा अत्रत्यदोषवारणाय श्रीमता भूतिकारेण तत्रत्यं भाष्यं मनसिकृत्योत्तरं दत्तम्, किन्तु अत्रत्याभूतिरत्यन्तं क्लिष्टा विद्यते, यथापरम्परमेव समन्वयितं शक्यं नान्यथा तत्रादौ भाष्यमुपन्यस्ते येन भूतिरागच्छेत्। तथाहि तत्र हि स्नात्वाकालकादीनां वक्तव्यः न वक्तव्यः, क्त्वान्तनिर्देशात् सिद्धम्, समासनिपातनद्वा इत्युक्तम्। अयं भावः भाष्यं स्नात्वाकालकः इति लक्ष्यमुद्दिश्य प्रवृत्तम्। एतस्यैव प्रयोगस्य दोषवारणाय, समाधानद्वयं दत्तं भाष्ये। प्रथमं क्त्वान्तनिर्देशात् द्वितीयं निपातनाद्वा। भूतिकारेण स्नात्वाकालकः इत्यत्र निपातनात् इति द्वितीयेन समाधानेन समाहितम्। क्त्वान्तनिर्देशादित्यस्य समाधानस्याशयः क इति। यतो हि तदन्तविधिः कथं भविष्यति यदि क्त्वः षष्ठ्यन्तपदं समासे इत्यत्र विशेषणं स्याद् तदाऽपि विभिन्नविभक्तित्वात् तदन्तविधिर्न प्राप्तः स्यात्। अतोऽत्र विचार्यम्। एतत् भाष्यं योजयितुं महान् वैयाकरणः कैयटोऽपि प्रयतते। समासे हि निर्धारणे सप्तमी, सामान्यापेक्षं चैकवचनम्। अथवा छान्दसं

बहुवचनस्य स्थाने। निर्धारणञ्च समानजतीयस्य भवति। क्त्वान्तः समासो गृह्यते। तथासत्यमर्थो भवति समासेष्वनञ्पूर्वेषु क्त्वान्तस्य समासस्य ल्यब् भवति। स च निर्दिश्यमानस्यैव।

निष्कर्षः-

कैयटोऽयं स्नात्वाकालकमाश्रित्यैव प्रवर्तते, यतो हि क्त्वान्तरसमासो नास्ति। किन्तु स्नात्वाकालकीकृत्येत्यादौ समासेषु क्त्वान्तः समासोऽयं सत्वादुभत्र क्त्वो ल्यबापत्तिः। तस्मादेतत् दोषवारणायात्र कैयटो नैव समर्थ इति निष्कर्षः।

नागेशास्तु-

उद्योतकारस्तदन्तविध्यर्थं यो हि उपायः प्रादर्शयत् स अवश्यं प्रशस्य इति तद्यथा- समास इति षष्ठ्यर्थे सप्तमीति वक्तुं शक्यम्।

तदन्तविधौ-

क्त्वान्तसमासघटकक्त्वो ल्यबिति। अत्रपक्षेऽपि दोषवारणं दुःशकमेव, यतो हि उभयत्रापि निर्दिश्यमानस्य सत्वात्।

पाद टिप्पणी :

1. पा0सू0- 7/2/10
2. परिभाषा- 12, परिभाषेन्दुशेखरः, पृ0 80
3. पा0सू0- 1/1/49
4. पा0सू0- 7/2/101
5. पा0सू0
6. पा0सू0
7. भूतिटीका, पृ0 61
8. परिभाषेन्दुशेखरः, पृ0 68
9. पा0सू0
10. पा0सू0
11. पा0सू0
12. पा0सू0
13. पा0सू0

●

काव्यप्रकाशदिशा रसविमर्शः

नवीन पन्त[*] एवं डॉ0 मिताली देव[**]

साहित्यशास्त्रे विद्यमानेषु प्रधानभूततत्त्वेषु प्रामुख्यं भजति रसः। अस्य वैशिष्टयं न केवलं भरतादयः रसवादिनः आचार्याः प्रतिपादयन्ति, अपितु आनन्दवर्धनादयः ध्वनिवादिनः आचार्याः अपि वैशद्यन्येन रसतत्त्वं वर्णयन्ति। तथाहि प्रतीयमानस्य त्रैविध्यं प्रतिपादयन्तः श्रीआनन्दवर्धनाचार्याः रसध्वनिमेव काव्यात्मत्वेन स्वीकुर्वन्ति। तथोक्तं ध्वन्यालोके-

काव्यस्यात्मा स एवार्थस्तथा चादिकवेः पुरा।

क्रौञ्चद्वन्द्ववियोगोत्थः शोकः श्लोकत्वमागतः॥[1]

अर्थात् काव्यास्यात्मा रसध्वनिरेव, न तु वस्त्वलङ्कारध्वनी। अस्यैवाभिप्रायं लोचने प्रतिपादयन्ति अभिनवगुप्तपादाचार्याः-

तेन रस एव वस्तुत आत्मा, वस्त्वलङ्कारध्वनी तु सर्वथा रसं प्रति पर्यवस्येते इति वाच्यादुत्कृष्टौ तावित्यभिप्रायेण 'ध्वनिः काव्यस्यात्मा' इति सामान्येनोक्तम् ।[2]

आनन्दवर्धनाचार्यप्रतिपादितसरणिमाश्रित्य ध्वनिवादिना मम्मटाचार्येण काव्यप्रकाशे रसस्य सर्वथा ध्वनित्वं स्वीकृत्य वाच्यत्वञ्च निराकृत्य विस्तरेण रसविषयकसिद्धान्ताः विवेचिताः। प्रबन्धेऽस्मिन् तेषामेव सिद्धान्तानां निरुपणं सङ्क्षेपेण करिष्यामः।

1. तत्र रसादिध्वनेरभिधानविषये आचार्यमम्मटस्य मतमस्ति यत् रसादिः (आदिना भावरसाभासादीनां सङ्ग्रहः) नास्ति अक्रमव्यङ्ग्यः, अपितु अलक्ष्यक्रमव्यङ्ग्यः, तस्य विभावादिभिः लक्षितत्वात् । यथोक्तं काव्यप्रकाशे-

'कोऽप्यलक्ष्यक्रमव्यङ्ग्यो लक्ष्यव्यङ्ग्यक्रमः परः।

अलक्ष्येति। न खलु विभावानुभावव्यभिचारिण एव रसः, अपि तु रसस्तैरित्यस्ति क्रमः। स तु लाघवान्न लक्ष्यते।'[3]

अर्थात् ये तु रसादीनां कृते अक्रमव्यङ्ग्यः इति सिद्धान्तं स्वीकुर्वन्ति, तन्नास्ति समीचीनम्, यतो हि विभावादीनामनन्तरं रसप्रतीतिर्जायते। अतः तत्र अस्त्येव क्रमः, परञ्च सः क्रमः लाघवात् न प्रतीयते। अतः रसादिध्वनिः नास्ति अक्रमव्यङ्ग्यः, अपितु अलक्ष्यक्रमव्यङ्ग्य इति।

2. रसादीनां प्राधान्याप्राधान्यविवेचने आचार्यमम्मटस्य मतमस्ति यद्यत्र रसादिः प्रधानतया स्थितः, तत्र सोऽलङ्कार्यः, यथा शून्यं वासगृहमित्यादौ। परञ्च यत्र रसादिरङ्गभूतः, तादृशि गुणीभूतव्यङ्ग्ये सोऽलङ्कारः, यथा-अयं स रसनोत्कर्षीत्यादौ। यथोक्तं मम्मटेन-

'प्रधानतया यत्र स्थितो रसादिस्तत्रालंकार्यः, यथोदाहरिष्यते। अन्यत्र तु प्राधान्ये वाक्यार्थे यत्राङ्गभूतो रसादिस्तत्र गुणीभूतव्यङ्ग्ये रसवत्प्रेयऊर्जस्विसमाहितादयोऽलंकाराः।'[4]

3. आचार्यमम्मटस्य मते व्यञ्जनाख्यवृत्त्या प्रतिपादितः प्रक्रंस्यमानः अविच्छिन्नप्रवाहः चित्तवृत्तिविशेष एव रसः। अर्थात् चित्ते नित्यस्थितः अनभिव्यक्तः रत्यादिः स्थायी विभावाद्यैः सह व्यञ्जनाख्यवृत्त्या प्रतिपादितः सन् रसपदेन उच्यते। यथोक्तमाचार्येण-

''कारणान्यथकार्याणि सहकारीणि यानि च।

रत्यादेः स्थायिनो लोके तानि चेन्नाट्यकाव्ययोः॥

विभावा अनुभावास्तत् कथ्यन्ते व्यभिचारिणः।

व्यक्तः स तैर्विभावाद्यैः स्थायी भावो रसः स्मृतः॥''[5]

अर्थात् स्थायिनः रत्यादेः लोके यानि कारणानि अथ कार्याणि सहकाराणि च तानि नाट्यकाव्ययोः चेत् तत् विभावा अनुभावा व्यभिचारिणः कथ्यन्ते। तैर्विभावाद्यैर्व्यक्तः स्थायिभावः रस स्मृतः। अत आचार्यस्य मते विभावाद्यैः अभिव्यक्तः स्थायी एव रसः। परञ्च पण्डितराजजगन्नाथस्य मते 'रसो वै सः'[6] इत्यादिश्रुतिस्वारस्येन रत्याद्यवच्छिन्ना भग्नावरणा चिदेव रसः। यथोक्तं रसगङ्गाधरे-

'इत्थं चाभिनवगुप्तमम्मटभट्टादिग्रन्थस्वारस्येन भग्नावरणाचिद्विशिष्टो रत्यादिः स्थायीभावो रसः इति स्थितम् । वस्तुतस्तु वक्ष्यमाणश्रुतिस्वारस्येन रत्याद्यवच्छिन्ना भग्नावरण चिदेव रसः। सर्वथैव चास्या विशिष्टात्मनो विशेषणं विशेष्यं वा चिदंशमादाय नित्यत्वं स्वप्रकाशत्वं च सिद्धम् ।'[7]

अर्थात् मम्मटाचार्यस्य मते भग्नावरणाचिद्विशिष्टा रत्यादिः रसः। अतः अत्र भग्नावरणाचिद् रत्यादेः विशेषणं, रत्यादिः च विशेष्यम् । परञ्च पण्डितराजस्य मते रत्याद्यवच्छिन्ना भग्नावरणचिदेव रसः। अतः आचार्यस्यास्य मते रत्यादिः विशेषणं, भग्नावरणाचिद् च विशेष्यम्। उभयोर्मते चिदंशमादाय रसस्य नित्यत्वं तु सामान्यमेव, केवलं भेदस्तु एकत्र विशेषणत्वेन, एकत्र विशेष्यत्वेन च।

---

* शोध छात्र, संस्कृत विभाग, कला संङ्काय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

* * प्रोफेसर, संस्कृत संभाग, महिला महाविद्यालय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

4. रसस्य अलौकिकतायां रसनिष्पत्तिप्रक्रियायाञ्च मम्मटाचार्येण अभिनवगुप्तप्रतिपादितानां सिद्धान्तानां समर्थनं कृतम्। तत्र आचार्येण रसविषयकभरतसूत्रस्य व्याख्यायां चत्वारि मतानि उपस्थितानि। तत्र प्रथमः भट्टलोल्लटस्य उत्पत्तिवादः, द्वितीयः श्रीशङ्कुकस्य अनुमितिवादः, तृतीयः भट्टनायकस्य भुक्तिवादः तथा चान्तिमः श्रीमदाचार्याभिनवगुप्तपादानाम् अभिव्यक्तिवादः। अत्र मम्मटाचार्येण अभिनवगुप्तस्य कृते 'श्रीमदाचार्याभिनवगुप्तपादानाम्' इति बहुवचनान्तप्रयोगः कृतः। अतः टीकाकाराः वदन्ति यत् बहुवचनप्रयोगाद् मतमिदं मम्मटसम्मतम् । यथोक्तं भट्टवामनाचार्येण-

''पादा इति। बहुवचनश्रीपदाचार्यपदैः स्वसंमतत्वमुक्तम् ।''[8]

5. तत्र **'विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः'** इतिभरतसूत्रे रसनिष्पत्त्यर्थं दण्डचक्रादिन्यायेन विभावादीनां संभूयैव कारणता अथवा तृणारणिमणिन्यायेनैकैकस्य कारणता वर्तते इत्येतद्विषयकव्याख्यानस्य स्फोरणं मम्मटाचार्येण सोदाहरणं कृतम् । आचार्यानुसारेण विभावादीनां संभूयैव कारणत्वं, न तु एकैकस्य। अतः भरतमुनिना सूत्रे विभावादयः मिलिताः निर्दिष्टाः। अन्यथा व्याघ्रादीनां विभावानां भयानक इव वीरादिष्वपि सत्त्वे अनुभावादीनामभावे रसस्य निश्चयं न भवितुमर्हति। एवञ्च यत्र श्लोके केवलं विभावाः वर्णिताः, तत्र तैरेव विभावैः तदनुकूलानुभावादीनामाक्षेपो जायते। अतः एते विभावादयः सूत्रे द्वन्द्वत्वेनैव स्थिताः। तथोक्तं काव्यप्रकाशे-

''व्याघ्रादयो विभावाः भयानकस्येव वीराद्भुतरौद्राणाम्, अश्रुपातादयोऽनुभावाः शृङ्गारस्येव करुणभयानकयोः, चिन्तादयो व्यभिचारिणः शृङ्गारस्येव वीरकरुणभयानकानामिति पृथगनैकान्तिकत्वात् सूत्रे मिलिताः निर्दिष्टाः।''[9]

'यद्यपि

विभावानामनुभावानामौत्सुक्यव्रीडाहर्षकोपासूयाप्रसादानां च व्यभिचारिणां केवलानामत्र (परिमृदितमृणाली० इत्यादिषु) स्थितिः, तथाप्येतेषामसाधारणत्वमित्यन्यतमद्वयाक्षेपकत्वे सति नानैकान्तिकत्वमिति।'[10]

6. शान्तरसस्य स्थायिभावविषये आचार्यमम्मटस्य मतमस्ति यत् शान्तरसस्य स्थायिभावः निर्वेदः। यथोक्तं तेन-

'''निर्वेदस्थायिभावोऽस्ति शान्तोऽपि नवमो रसः।''[11]

पण्डितराजजगन्नाथस्यापि मते शान्तरसस्य स्थायिभावः निर्वेद एव-

''रतिः शोकश्च निर्वेदक्रोधोत्साहाश्च विस्मयः।

हासो भयं जुगुप्सा च स्थायिभावाः क्रमादमी।''[12]

परञ्च भरतविश्वनाथादीनां मते शान्तरसस्य स्थायिभावः शमः। यथोक्तं विश्वनाथेन-

''शान्तः शमः स्थायिभाव उत्तमप्रकृतिर्मतः।''[13]

7. शृङ्गारादीनां रसानां लक्षणं तु काव्यप्रकाशे मम्मटाचार्येण नैव प्रदर्शितं तथा च शृङ्गाररसमतिरिच्य हास्यादीनां प्रभेदमपि नैवोपदर्शितम्। अतः रसानां प्रभेदविषये मम्मटाचार्यस्य कः सिद्धान्त इति वक्तुं न शक्ये। अतश्च तत्र केवलमेव विप्रलम्भशृङ्गारस्य प्रभेदविषये एव विश्वनाथस्य मम्मटाचार्येण सह मतभेदः परिलक्ष्यते। मम्मटाचार्याः विप्रलम्भशृङ्गारस्य पञ्चभेदाः प्रतिपादयन्ति-

'अपरस्तु अभिलाषविरहेर्ष्याप्रवासशापहेतुक इति पञ्चविधः।'[14]

परञ्च विश्वनाथाचार्याः साहित्यदर्पणे विप्रलम्भस्य चत्वारः भेदा एव स्वीकुर्वन्ति-

'स च पूर्वरागमानप्रवासकरुणात्मकश्चतुर्धा स्यात् ।'[15]

8. रसादेर्व्यङ्ग्यत्वे आचार्यमम्मटस्य सिद्धान्तोऽस्ति यत् रसादिः कदाचिदपि वाच्यो न भवति, स तु सर्वथैव व्यङ्ग्यो भवति, अन्यथा 'शृङ्गार' इति कथनमात्रणैव शृङ्गाररसस्य अनुभूतिर्जायते, परञ्च अनुभूतिरियं नैव सम्भवति। अतः रसादिलक्षणस्त्वर्थः नैव वाच्य इति मम्मटस्य सिद्धान्तः। यथोक्तमाचार्येण-

''रसादिलक्षणस्त्वर्थः स्वप्नेऽपि न वाच्यः। स हि रसादिशब्देन शृङ्गारादिशब्देन वाऽभिधेयेत। न चाभिधीयते। तत्प्रयोगेऽपि विभावाद्यप्रयोगे तस्याप्रतिपत्तेस्तदप्रयोगेऽपि विभावादिप्रयोगे तस्य प्रतिपत्तेश्चेत्यन्वयव्यतिरेकाभ्यां विभावाद्यभिधानद्वारेणैव प्रतीयते इति निश्चीयते। तेनासौ व्यङ्ग्य एव।''[16]

इत्थं मम्मटाचार्येण काव्यप्रकाशे विस्तरेण रसविषयकसिद्धान्ताः प्रतिपादिताः। अत्र तु तेषां सङ्क्षेपेण निरुपणं विहितम् ।

पाद टिप्पणी :

1. आनन्दवर्धनः, ध्वन्यालोकः (अभिनवगुप्तकृतलोचनसहितः), चौखम्भासुरभारतीप्रकाशनम्, वाराणसी।
2. मम्मटः, काव्यप्रकाशः (झलकीकरबालबोधिनीसनाथितः), परिमलप्रकाशनम्, दिल्ली
3. मम्मटः, काव्यप्रकाशः (श्रीनिवासकृतकृतहिन्दीव्याख्यासहितः), साहित्यभण्डारः, मेरठ।
4. विश्वनाथः, साहित्यदर्पणः (सत्यव्रतसिंहकृतशशिकलाहिन्दीव्याख्यासहितः), चौखम्भाविद्याभवनम्, वाराणसी
5. पण्डितराजजगन्नाथः, रसगङ्गाधरः (नागेशभट्टकृतगुरुमर्मप्रकाशव्याख्यासनाथितः), सम्पूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालयः, वाराणसी।
6. तैत्तरीयोपनिषद् (शाङ्करभाष्यसंयुक्तः), गीताप्रेस, गोरखपुरम् ।

सन्दर्भग्रन्थसूची –

1. ध्वन्यालोकः, कारिका सं0 05, पृ0 86
2. ध्वन्यालोकः, कारिका सं0 05, लोचनटीका, पृ0 86
3. काव्यप्रकाशः, चतुर्थोल्लासः, कारिका सं0, 25, पृ0 84
4. काव्यप्रकाशः, चतुर्थोल्लासः, कारिका सं0 26, वृत्तिभागः, पृ0 84
5. काव्यप्रकाशः, चतुर्थोल्लासः, कारिका सं0 26-27, वृत्तिभागः, पृ0 86
6. तैत्तिरीयोपनिषद्, ब्रह्मानन्दवल्ली।
7. रसगङ्गाधरः, प्रथमाननम्, रसनिरुपणम्, पृ0 38
8. काव्यप्रकाशः, चतुर्थोल्लासः, वामनीटीका, पृ0सं0 95
9. काव्यप्रकाशः, चतुर्थोल्लासः, पृ0 95
10. काव्यप्रकाशः, चतुर्थोल्लासः, पृ0 98
11. काव्यप्रकाशः, चतुर्थोल्लासः, पृ0 117
12. रसगङ्गाधरः, प्रथमाननम्, रसनिरुपणम् , पृ0 52
13. साहित्यदर्पणः, तृतीयपरिच्छेदः, पृ0 263
14. काव्यप्रकाशः, चतुर्थोल्लासः, पृ0 95
15. साहित्यदर्पणः, तृतीयपरिच्छेदः, पृ0 232
16. काव्यप्रकाशः, पञ्चमोल्लासः, पृ0 238

●

वैष्णवागमस्य स्वरूपविमर्शः

प्रो० शीतला प्रसाद पाण्डेयः एवं लेखनाथपौड्यालः***

अत्र वैष्णवागमानामुद्भवविकासयोः प्राच्य-पाश्चात्यमतानि समन्वयपूर्वकं पर्यालोच्य संक्षेपतः भागवतसात्त्वतपाञ्चरात्रसम्प्रदायानामैतिहासिकदृष्ट्या विमर्शो विधीयते। विष्णोर्विविधरूपगुणसंज्ञादीन् विवेच्य विषयीकुर्वन् वैष्णवदर्शनं लब्धवृत्त्यस्ति। अतः कालक्रमेण विष्णोरुपासनाया विकासेन सह वैष्णवानां साहित्यमपि विपुलतामलभत।

विवेच्यतत्त्वानि धीविषयीविधाय तानि सारवन्ति सम्पादयितुमावश्यकं प्रतिभाति यद् विष्णुसम्बन्धिनां संहितानामुपासनासाहित्ये प्रागवस्थायां किं स्वरूप-मासीत्? या विष्णुसम्बन्धिव्यः इमाः संहिता वर्तन्ते तासां विष्णोरुपासनासाहित्ये प्राक् स्वरूपं कीदृश-मासीत्? तत्र कस्मिन् काले प्रकारेण परिवर्तनमभूत्? विकसितव्यापकप्रमाणप्रतिपन्नव्यापकविष्णूपासन-परम्परायाः कीदृशमैतिहासिकतातम्यं परिलक्ष्यते? इत्यत्र विचारः क्रियेयेति।

विष्णूपासका एव सात्त्वतपाञ्चरात्रभागवते-त्यादिसंज्ञाभिः समलङ्कृताः। सुदीर्घकालादेव विष्णू-पासनपरम्परा भारतीये वाङ्मये दरीदृश्यते। कालक्रमेण विष्णुभक्तौ विविधानि परिवर्तनानि समजायन्त। आदिग्रन्थऋग्वेदे विष्णुसम्बद्धा बहवो मन्त्रा उपलभ्यन्ते—

इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम्।

द्वे इदस्य क्रमणे स्वर्दृशोऽभिखय मर्त्यो भुरण्यति।

तृतीयमस्य नकिरा दधर्षति वयश्चन पतयन्तः पतत्रिणः।।

तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः। दिवीव चक्षुराततम्।।[1]

ब्राह्मणग्रन्थेषु विष्णोः पर्याप्तं वर्णनं लभ्यते। वेदवर्णितविष्णुशक्तेरुत्तरोत्तरं विकासोऽपि ब्राह्मग्रगन्थेषु वर्णितः। शतपथब्राह्मणे यज्ञनिष्ठादृष्ट्या विष्णुरग्रणीः प्रमाणितः तथा विष्णोरलौकिकीनां चमत्कारपूर्णानां कथानामपि बहुशश्चर्चाः कृताः। पञ्चरात्रस्य महिमा एतावान् विद्यते यत् —

एकमेकं सांख्ययोगवेदारण्यकमेव च।

परस्पराङ्गान्येतानि पञ्चरात्रं च कथ्यते।।[2]

वैदिककाले यथा यथा बुद्धिवादिज्ञान-प्रधानोपासनापद्धतिराहित्यमभवत्तथा तथा हृदयपक्षस्य बाहुल्यं जातम्। तथैव क्रमशो विष्णोरर्चनापूजादयोऽपि प्रचुरतामभजन्, तथा स (विष्णुः) प्रमुखदेवस्वरूपे प्रतिष्ठापितः।

उपनिषत्साहित्ये विष्णोः परं धामैव सर्वोत्तमं स्थानं प्रमाणप्रतिपन्नमिति स्वीकृत्य जगतः पाकलरूपे स कल्पितः। यथा—

विज्ञानसारथिर्यस्तु मनः प्रग्रहवान्नरः।

सोऽध्वनः परमाप्नोति तद्विष्णोः परमं पदम्।।[1]

विष्णुर्यस्मिन् रूपे संहितासु वर्णितस्तदेव रूपमधिकं तथा भास्वरं विरचय्य वर्णयितुमारब्धम्। यानि विशेषणानि पूर्वमिन्द्राय प्रयुञ्जतेस्म, तान्यधुना विष्णुप्रशंसायां प्रयुक्तान्यभूवन्। यथा-हरिः, केशवः, वासुदेवः, वृष्णीपतिः, वृष्णाः, ऋषभ इत्यादयः शब्दाः पूर्वमिन्द्राय प्रयुक्ताः भवन्ति स्म, आहोस्वित् तत्सम्बद्ध-पदार्थप्रतीतिप्रतिपादिका आसन् ; त एव कालक्रमेण विष्णोर्विबुधोपाधीनां तथा नाम्नामाधारा अजायन्त। विष्णुमहत्वाभिव्यञ्जका व्युत्पत्तिलभ्यार्था अपि प्रसङ्गतोऽपेक्षिताः। यथा—यास्काचार्यविरचितनिरुक्ते प्रतिपादितम्—"अथ यद् विषितो भवति, तद् विष्णुर्भवति। विष्णुर्विशतेर्वा व्यश्नोतेर्वा व्यश्नोतेर्वा" इति। भगवता दुर्गाचार्येण- "यदा रश्मिभिरतिशयेनायं व्याप्तो व्याप्नोति वा रश्मिरयं सर्वम्। तद्विष्णुरादित्यो भवति" इत्येवं विष्णुशब्दस्य निर्वचनमकारि। वेवेष्टि व्याप्नोति चराचरं जगत् स विष्णुरित्यनया व्युत्पत्त्याऽपि विष्णोर्विशिष्टं माहात्म्यमभिव्यज्यते।

विष्णोरुपर्युक्तं स्वरूपं तथा व्यक्तित्वं मनोहार्यनुरञ्जकं तथा व्यापकं विधाय ग्राह्यं कर्तुं स नराकाराकारितरूपे विमर्शितः (दृष्टः)। एवं विष्णुरेव नारायणशब्देनाभिहितः। नारायणशब्दोऽपि वैष्णवे धर्मे उपास्यरूपेण स्वीकृतः। मनुस्मृतौ—

आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः।

ता यदस्यायनं पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः।। –मनुस्मृति 1/10

इति कथनेन क्षीरशायिविष्णुना नारायण-शब्दसाम्यं प्रदर्शितम्। महाभारतेऽपि विष्णुर्नारायणरूपेण वर्णितः। अनेन प्रकारेण विष्णुभक्तेः प्राचीनता, विष्णुशब्दस्य नारायणशब्दसमानार्थता च द्योत्यते।

वैष्णवधर्मस्य सर्वप्राचीनं नाम भागवतधर्म आसीत्। भागवतशब्दः पाञ्चरात्रस्य नामान्तरम्। कियान् प्राचीनो भागवतसम्प्रदाय इति विषयस्यावश्यक-सामग्र्यभावाद् निश्चितरूपेण विवेचनं दुस्तरं वर्तते, तथापि यथोपलब्धसामग्रीमेवोररीकृत्य किञ्चित् प्रकाश्यते। सर्वप्रथममस्य विवेचनं महाभारतस्य नारायणीयोपाख्याने लभ्यते। पाणिनीयाष्टाध्यायीभाष्यप्रणेता भगवता पतञ्जलिनाऽपि कृष्णरूपावतीर्णस्य विष्णोः कंसवध-

* प्रोफेसरः, धर्मागमविभागः, एस0वी0डी0वी0, काशीहिन्दूविश्वविद्यालयः, वाराणसी।

* * शोधच्छात्रः, धर्मागमविभागः, एस0वी0डी0वी0, काशीहिन्दूविश्वविद्यालयः, वाराणसी।

बलिबन्धननामकयोर्नाटकयोरुल्लेखः कृतः, येन दैत्यराजबलेः पातालप्रेषणस्य कंसवधस्यापि च पुष्टिर्जायते।

विदुषां मतानुसारेण पतञ्जलेराविर्भावकालः विक्रमसंवत्सरपूर्वतृतीयशतकमस्ति। एतेनेदमपि सिद्ध्यति यत् तृतीये शतके भागवतसम्प्रदायाभ्युदयः सञ्जातः।

महाभारतस्य शान्तिपर्वानुसारमिदं सिद्ध्यति यदयं सात्त्वतोऽथवा भागवतो धर्मो वासुदेवकृष्णेनार्जुनं प्रत्युपदिष्टः। अतो भागवतधर्मस्याद्योपदेशके कृष्णे भगवति वासुदेव ऐतिहासिकदृष्टया विचारणमस्योद्भव-विकासादिज्ञानप्रकाशनाय सङ्गतं प्रतीयते।

वैदिकसाहित्ये संहितासु, ब्राह्मणग्रन्थेषु, उपनिषत्सु वा वासुदेवस्योल्लेखो नोपलभ्यते। किन्तु तैत्तिरीयारण्यकदशमप्रपाठकेऽयं विष्णुक्देवः व्यवहृतोऽस्ति। डॉ0 राजेन्द्रलालमित्रमतेऽस्य रचना पश्चाद्भूत्, अतो वासुदेवोल्लेखसम्बन्धिवर्णनमिदं परिशिष्टमेवास्ति। वासुदेववर्णनञ्च तत्रैवं प्रकारेणास्ति, यथा—''नारायणाय विद्महे, वासुदेवाय धीमहि, तन्नो विष्णुः प्रचोदयात्'' तैत्तिरीय-आरण्यकः दशमप्रपाठकः।।[5] इति।

भारतीयदार्शनिकसम्प्रदायानां लब्धप्रतिष्ठान्वेषका डॉ0 कीथमहोदया आरण्यकरचनासमयः ई0 पूर्वं तृतीयं शतकमिति स्वीकुर्वते। अतस्तृतीयशतकावधि विष्णुवासुदेवयोरैक्यं प्रतीयते। महाभारतस्य विविधस्थलेषु प्रयुक्तोऽयं वासुदेवशब्दो विष्णुशब्देनाधिकं साम्यं भवति। तत्रैकस्थले उट्टङ्कितमस्ति यद् मया लोकोत्तरज्योतिषा तथा सर्वं कर्तुं पटीयसः मम मायाख्यया शक्त्या चराचरं सञ्छादितमस्ति। यथा—

इत्यादौ महाभारतस्य तस्मिन्नेव प्रसङ्गे इदमपि वर्णितं यदहं रविरश्मिरूपे निखिलं जगत् संछादयामि, तथाऽहमेव सर्वप्राणिनामधिवासत्वाद् वासुदेवोऽस्मि। पतञ्जलेस्तथा वैष्णवमतीयपाद्मतन्त्र्यानुसारमेवंविधस्य वासुदेवद्वयस्य चर्चा अस्ति, ययोरेको वृष्णिकुलोद्भ-वस्तथाऽपरः क्षत्रिय आसीत्।

वासुदेवस्य वृष्णिकुलोद्भवप्रसङ्गो महाभारतस्य विशिष्टांशभूतया श्रीमद्भवद्गीतयाऽपि सिद्ध्यति। यत्र ''वृष्णीनां वासुदेवोऽस्मि''[6] इति वाक्येन प्रतिपादतिमस्ति। कौटिल्यार्थशास्त्रे वृष्णिकुलचर्यया सह कृष्णीनां कस्यापि संघस्य वर्णनमप्युपलभ्यते, तथा द्वैपायनविरुद्धाचरणेन नाशस्याप्युल्लेखोऽस्ति।

प्रसिद्धानां बौद्धानां घटजातके वासुदेवो मथुराप्रान्त-स्योत्तरीयभागे शासनं कुर्वतां राज्ञां राजवंशस्य सन्तति-रूपेण स्वीकृतः।

महाभारतीयभीष्मपर्वणः पञ्चषष्टितमेऽध्याये ब्रह्मदेवेन पुरुषपरमेश्वरस्य स्तुतिमकारि। तथोक्तं च यद् भवान् यादववंशेऽवतरतु। पुरुषपरमेश्वरस्तत्र 'वासुदेवः' इति सम्बोधनपदेनाभिहितः। उक्तं च यद् भवानेव संकर्षरूपेणावतीर्य स्वकीयं प्रद्युम्नाख्यं तनयमप्रकटयत्, तथा प्रद्युम्नाद् विष्णुस्वरूपादनिरुद्धं जनयामास, येनायमुत्पादितः। अतस्तदेव रूपं स्वीकृत्य पुनः कृपया मनुष्ययोनावायातु। शान्तिपर्वणः पञ्चषष्टितमाध्यायस्य प्रारम्भ एवोल्लिखितं यत् प्रजापतिना परमेश्वरो मानवयोनौ वासुदेवरूपेणागमनाय प्रार्थितः। पुनस्तस्मिन्नध्याये आद्यन्तावधि परमेश्वरस्थाने वासुदेवशब्द एव व्यवहृतः।

अस्मिन् विषये वैष्णवदर्शनस्य प्रामाणिका अन्वेषका भण्डारकरमहोदया एवं विचारयति यद् वासुदेवेन भक्तिसम्प्रदायस्याधिष्ठात्रा भाव्यम्। प्रथमे युगेऽपि स सङ्कर्षणानुरुद्धप्रद्युम्नैः सह आसीदित्यस्या-प्याभासो महाभारतीयोल्लेखेन प्राप्यते। वासुदेवस्य धर्मप्रवर्तकत्वं पाणिनेरेकेन सूत्रेणापि ज्ञायते, यत्रास्य सम्प्रदायानुयायिनो वासुदेवपदेनाभिहिताः। यथा—''वासुदेवार्जुनाभ्यां वुन्'' इति।

सूत्रस्यास्योपरि भाष्यं विरचय्य भगवता पतञ्जलिनाऽपीदं दृढीकृतम्। एवमन्यस्मिन् ''ऋष्यन्धक-वृष्णिकुरुभ्यश्च'' इति तथा क्रमशो वसुदेवबलदेवशब्दाभ्यां निष्पन्ने स्तः। शतपथब्राह्मणेऽप्येकत्र स्थाने वार्ष्णेय-शब्दप्रयोगोऽस्ति, येन वृष्णिवंशप्राचीनत्वं ज्ञातुं शक्यते।

महाभारतस्यादिपर्वणि एकत्रायातमस्ति यत् पार्थोऽथवा अर्जुनः सात्त्वतान् लोभिनो नावगच्छन्ति, तथा तस्मिन्नेव पर्वण्य वासुदेव एव सात्त्वतसंज्ञया-ऽभिहितः। एवं च वासुदेवासात्त्वतशब्दयोः साम्यं प्रकटितं भवति। विष्णुपुराणे—वृषस्य पुत्रो मधुरोऽभवत्। तस्यापि वृष्णिप्रमुखं पुत्रशतमासीत्, यतो वृष्णिसंज्ञामेतद् गोत्रमवाप। यादवश्च यदुनामप्रत्यक्षणादिति पुनर्विष्णु-पुराणेऽन्यतमे प्रसङ्गे यदुकुलस्य मर्यादा लौकिकैश्वर्य-वर्णनप्रसङ्गे कथिताऽस्ति यद् यदुकुले अंशनाम्नी एका व्यक्तिरभूद् यस्याः सुतः सात्वतसंज्ञया प्रख्यातः, तथा तेनैव कारणेन सात्त्वते तद्वंशीयाः सात्त्वतपदवाच्या अभूवन्।

भागवतमहापुराणेनाऽपि तस्य वासुदेवस्य परमेश्वररूपेण पूजनं सिद्ध्यति। भागवते वासुदेवः सत्त्वतर्षभाख्ययाऽपि ख्यातः। सात्त्वतशब्दप्रयोग ऐतरेयब्राह्मणेऽप्युपलभ्यते, यथा—''एतस्यां दक्षिणस्यां दिशि ये के च सात्त्वता राजानो भोग्यायैव तेऽभिषिच्यन्ते भोगेत्येनानाभिषिक्तान् आचक्षे'' ऐतरेयब्राह्मणम्-8.3.14[7] इति।

तन्त्रशास्त्रस्य कथनानुसारं भाण्डारकरमहोदयाः सात्त्वतशब्दं वृष्णिवंशपर्यायस्वरूपेव स्वीकुर्वन्ति। तेषामिदं मतमस्ति यत् सात्त्वतानां वृष्णिवंशसम्बद्ध एकोऽन्य एव संप्रदाय आसीद् यस्मिन् वासुदेवप्रद्युम्नसंकर्षणा-नुरुद्धाः प्रादुरभवन्। तेषु वासुदेवं जनाः परमात्मबुद्ध्या पूजयन्ति स्म। वाजसनेयसंहितायामपि प्राप्यते—

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्।

तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय।।[8]

सात्त्वतधर्मः सूर्यद्वारा प्रवर्तित इति महाभारते प्रतिपादितमस्ति। शतपथब्राह्मणे सात्वतशब्दोऽपि वार्ष्णेयशब्द इव प्रयुक्तः। पाराशरभट्टेन सात्त्वतशब्दो भागवतस्य पर्यायरूपेण स्वीकृतः। यथा—सातयति

सुखयति आश्रितानिति सातः परमात्मा, स एषामस्तीति वा सात्त्वताः सात्त्वन्तो वा महाभागवताः'' इति एवं सात्त्वतवार्ष्णेययोरुभयोः शब्दयोः प्राचीनत्वं तथा समर्थताऽपि प्रमाणीभवतः। महाभारतस्य नारायणीया-ख्याने यत्र वासुदेवधर्मो व्याख्यातस्तत्र कथितं यत् सङ्कर्षणाो वासुदेवस्यापरं रूपं तथा सर्वजनप्रतिनिधित्वञ्च प्रतिपादयति। संकषर्णाद् अर्थाद् मनसः प्रद्युम्नोत्पत्तिर्जायते, प्रद्युम्नादनिरुद्धोऽहङ्कारस्वरूपः प्रादुर्भवति। इमे चत्वारो वासुदेवप्रतिमाभूताः सन्ति। देवादिकं निखिलं जगद्- नारायणादुत्पन्नं भूत्वा पुनर्नारायण एव लीयते। प्रकारेणानेन वासुदेनारायणशब्दयोर्बहुविधं साम्यं सिद्धयति। कतिपयैरुल्लेखैः प्रमाणीभवति यत् खिष्टाब्दात् पूर्वं द्वितीये शतके वासुदेवातिरिक्तं सङ्कर्षणबल-देवाप्युपास्यभूतावास्ताम्। इदं दृढीकर्तुं 2/2/34 पाणिनीसूत्रे भाष्यं द्रष्टव्यमस्ति। किन्तु महाभारतस्य नारायणीयाख्यानके वासुदेवः परमात्मरूपे सङ्कर्षणो जीवरूपे वर्णितः। तत्त्वतो विचारे कृते इदं स्पष्टं प्रतीयते यद् वासुदेवसङ्कर्षणयोः पूज्यत्व एवास्माभिः सर्वप्रथमां पाञ्चरात्राणां व्यूहवादस्य बीजभूतं तत्त्वं समवलोक्यते।

भागवतधर्मस्य सात्त्वतधर्मस्य पाञ्चरात्रधर्मस्य वा आदिनाम वासुदेवधर्मोऽथवा वासुदेवोपासना आसीत्। तृतीये शतके भागवतसंज्ञा तु प्रसिद्धप्राया एवासीत्। खिष्टाब्दस्य पूर्वाभ्यां तृतीयपचतुर्थशताब्यां प्रथम-शतकावधि वासुदेवोपासनाया विविधानि प्रमाणानि पुरातत्वप्राचीनसाहित्यादिषूपलभ्यन्ते।

अर्हतां वासुदेवबलदेवावपि स्तः, तथा अरिष्टनेमिवासुदेवसम्बन्धिन्यश्चर्चाः प्राचीनजैनसाहित्ये भृशमुपलभ्यन्ते। बौद्धजातके (घटमहामग्गादौ) वासुदेवकथा वर्णिता। तन्त्रशास्त्रस्य नैकेषु ग्रन्थेषु समुपलभ्यते यत्—

बौद्धसाहित्यस्य चुल्लनिद्देशग्रन्थे आजीवक-निगण्ठजटिलवासुदेवादिभिः श्रावकैः सह वसुदेवपूजकानां वासुदेवानामप्युल्लेखो लभ्यते। यस्याधारेणास्य सम्प्रदायस्य स्थितिः खिष्टाब्दात् पूर्वं तृतीये चतुर्थे वा शतक आसीदिति निश्चीयते। खिष्टाब्दात् शतद्वयवर्षपूर्वं वेसनगरे स्थितस्यैकस्य शिलालेखस्यानुसारं विक्टेरियाया राजदूतेन हेलियोडोरसेन देवाधिदेववासुदेव-प्रतिष्ठायामेकं गरुडस्तम्भं निरमायि। स आत्मानं भागवतसंज्ञया समलङ्करोति स्म। इति कथनं प्रसिद्धमस्ति तन्त्रशास्त्रे। ईश्वरसंहितायां प्रकथ्यते—

मोक्षायनाय वै पन्था एतदन्यो न विद्यते।

तस्मादेकायनं नाम प्रविदन्ति मनीषिणः।।[10]

खिष्टाब्दात् पूर्वं प्रथमे शतके नानाघाटीय-गुहाभिलेखेऽन्यदेवैः सह सङ्कर्षणवासुदेवयोरप्युल्लेखो लभ्यते। अस्यैव शतकस्यैकः शिलालेखो घोसुण्डी स्थानमिदं राजस्थानप्रदेशे विद्यते नामके स्थाने प्राप्यते, यस्मिन्नश्वमेधवेलायामितिहास-प्रसिद्धकण्ववंशीयनृपतिना वासुदेवसङ्कर्षणयोर्देवायतननिर्माणाय पूजाशिलाप्राकार-रचनाया अप्युल्लेखोऽस्ति। एवं ज्ञायते यदयं सम्प्रदायोऽतीव प्राचीनः, तथा स एव कालक्रमेणानेक-दृष्टिभिरवलोकितः।

उपर्युक्तलेखेनेदमप्यायातं यद् वैष्णव-सम्प्रदायानामुद्भवविकासयोरेव वैष्णावागमानामुद्भव-विकासावपि सन्निहितौ स्तः।

साम्प्रतं पाञ्चरात्रधर्मापाञ्चरात्रसंहितादीनां विचारः क्रियते। भागवतस्याथवा सात्त्वतधर्मस्यातिविकसितं रूपं पाञ्चरात्रधर्म एवोलभ्यते, यः खिष्टाब्दात् पूर्वं तृतीय-शतकात् प्रचलित आसीत्। तस्मिन् विविधानां भ्रान्तीनां निराकरणं नानातन्त्रसंहितादीनामाधारेण कृतमासीत्। विष्णुतन्त्रसंहितायां प्रोच्यते—

श्रुतिमूलानि तान्येव पाञ्चरात्राणि पङ्कजः।[11]

महाभारतस्य नारायणीयोपाख्याने (शान्तिपर्वणि) सर्वप्रथममस्य सिद्धान्तानां वर्णनं लभ्यते। महर्षिनारदो यदा पाञ्चरात्रतत्त्वजिज्ञासुरभवत् तदा श्वेतद्वीपं गत्वा नारायणर्षेरस्य ज्ञानमवाप, तथा स एवास्य प्रचारमकरोत्। एवमस्यादिप्रवर्तको नारायणर्षिरेव प्रतीयते। पाञ्चरात्री-ग्रन्थेष्विमं वेदसम्मतं साधयितुं विविधास्तर्काः स्थापिताः। सम्बन्धमप्यस्य वेदस्यैकया शाखयाऽस्ति। ''एष ऐकायनो वेदः प्रख्यातः सर्वतो भुवि'' (1!43) इत्यनेन ईश्वरसंहितायावचनेनाप्यस्य पुष्टिः कृता। जयाख्यसंहितायामपि प्रमाणमुपलभ्यते—

काण्वीं शाखामधीयानावौपगायनकौशिकौ।

प्रपत्तिशास्त्रनिष्णातौ स्वनिष्ठानिष्ठितावुभौ।।[12]

दशमशतकोत्पन्नेनोत्पलाचार्येणाऽपि स्पन्द-प्रदीपिकायां पाञ्चरात्रसंहितानां तथा पाञ्चरात्रोपनिषदां विविधान्युदाहरणान्युपनिबद्धानि। पाञ्चरात्रश्रुतिः, पाञ्चरात्रसंहिता तथा पाञ्चरात्रोपनिषद् इत्येवं त्रयो विभागा दशमशतकावधि सञ्जाता आसन्। श्रुतिष्वपि पाञ्चरात्रमुख्यसिद्धान्ताः प्रतिपादिताः प्रतीयन्ते।

शतपथब्राह्मणे पाञ्चरात्रसत्रस्योल्लेखः प्राप्यते, यस्याऽनुसारं समस्तप्राणिष्वाधिपत्यस्थापनाय नारायणेन पञ्चदिनाभ्यन्तरे इदं सम्पादितम्। वेदान्तदेशिकप्रणीत-पाञ्चरात्ररक्षायाम्,एवं भट्टारकेवदोत्तमविरचिततन्त्रशुद्धख्ये ग्रन्थरत्ने पाञ्चरात्रधर्मस्य तलस्पर्शनी मीमांसासमुपलभ्यते। पञ्चरात्राणां विषये तेषां प्रामाणिकता तत्रभवता रामानुजाचार्येण वेदवदेव स्वीकृता। यथा—

सांख्यं योगः पाञ्चरात्रं वेदाः पाशुपतं तथा।

आत्मप्रमाणान्येतानि न हन्तव्यानि हेतुभिः।।[13]

संदर्भः-

1. ऋग्वेदः 1/22/17।
2. तन्त्रालोकः।
3. कठोपनिषत् 3/9।
4. मनुस्मृतिः 1/10
5. तैत्तिरीय-आरण्यकः दशमप्रपाठकः।

6. श्रीमद्भगवद्गीता 10/37
7. ऐतरेयब्राह्मणम् - 8.3.14
8. वाजसनेयसंहिता-31.18
9. अल्पाच्तरम्
10. ईश्वरसंहिता 1/18
11. विष्णुतन्त्रसंहिता 1/36
12. जयाख्यसंहिता 1/109
13. तन्त्रालोकः 35

●

UNDERSTANDING YOGA IN ADVAITA TRADITION: AN ANALYTICAL AND COMPARATIVE STUDY

SHALINI ARORA* AND PROF. S. P. PANDEY**

Yoga in modern society is a term which is widely used and least understood. Its connotation in modern days is physical exercises or physical well-being. While originally, it is meditation, a connotation of Spiritual well-being. Vyasa in his commentary on Yoga Sūtra explains the meaning of Yoga as *Samādhi* i.e. Concentration'*Yogah Samādhih*'[1]. Therefore, Yoga is a meditational technique for Self-realization. In ancient times, it has been accepted extensively by Philosophical schools to reach the *summum bonum* of life. The technique used by different schools is apparently similar but the Philosophy behind it differs slightly. This difference in Philosophy brings a new approach and the intention to perform these techniques. To understand this difference is important as intention plays an important role when it comes to the spiritual goal. The difference of approach between them is not to criticize or let the other school down neither it makes one higher from another. This difference comes due to difference in the philosophy of each school and its way to see the reality. In this paper, the philosophy of the two most ancient Schools will be glossed viz. Advaita Vedānta and Patañjali Yoga. Firstly, Yoga will be analyzed from the Advaitic view point and then there will be a comparison of Patañjali Yoga with the former.

WHAT IS YOGA?

Yoga has many aspects, as a philosophy, physical technique, meditational technique, etc. Yoga also depicts the path to renunciation and on this basis, it is divided into *Jñāna* Yoga, *Bhakti* Yoga, *karma* Yoga and *Rāja* Yoga. Another aspect of Yoga is its approach to reality which has two main ways, viz. *Vivekaja Mārga* (the path of discrimination or distinction) and *Yogaja Mārga* (the path of integration or union). The *Yogaja Mārga* is adopted by Śaivāgama. It is the union of the individual Soul with the Universal Soul or Bhairava. ***Vijñāna Bhairava Tantra*** which belongs to this sect explains 112 types of Yoga or meditational technique which are mainly the centering technique or the technique of *Dhāraṇā*. Patanjala Yoga and Śaṅkara Vedānta have adopted the *Vivekaja Mārga*. *Viveka* means discrimination of Ātman or self from the *Māyā* or in other word as put by Yoga Philosophy, it is the isolation of *Puruṣa* from *Prakṛti*.[2]

YOGA IN ADVAITA TRADITION

Advaita Vedānta is one of the ancient Philosophical schools of Indian Philosophy. Yoga has its root from very ancient times in this tradition and has been practiced and taught by many Advaitic Scholars. The main aim or goal of Advaita Vedānta is Self-Realization, the realization of the Self, that it is none another than Brahman itself. Advaita has three steps process of realization viz. *Śravaṇa, Manana* and *Nididhyāsana*. Where *Śravaṇa* means listening to the words of *Guru* or reading the Vedas, *Manana* means to understand or reflect upon what has been learned by *Śravaṇa* and the third step *Nididhyāsana* involves dwelling in that truth all the time by meditating upon it. Yoga belongs to this third process in Advaita Vedāntic tradition. Here, the term Yoga depicts the meditational technique. The technique through which, one leads to Self-realization.

Some of the texts of Advaita tradition which discusses about Yoga are, ***Yoga-Vāsiṣṭha*** and ***Yoga Yājñavalkya***. ***Yoga-Vāsiṣṭha***is a philosophical treaty of Advaita tradition. It is ascribed to Vālmīki and it discusses Yoga as a meditational technique to liberation. Whereas, ***Yoga Yājñavalkya*** is the dialogue between Yājñavalkya and Gārgī on Yoga. It doesn't only talk about the *Jñāna* Yoga but also *Karma* and *Bhakti* Yoga. The eight steps mentioned in this text are very similar in names with the eight limbs of Patañjali ***Yoga Sūtra***, but have different explanation. An example for it being different from ***Yoga Sūtra*** can be seen in the first limb itself i.e. *Yama*. *Yama* in ***Yoga Sūtra*** has five sub parts while this text has ten viz.

* Research Scholar, Deptt. of Philosophy and Religion, Banaras Hindu University.
** Professor, Deptt. of Philosophy and Religion, Banaras Hindu University.

Ahiṁsā, *Satya*, *Asteya*, *Brahmacarya*, *Dayā*, *Ārjava*, *Kṣamā*, *Dhriti*, *Mitāhāra*, and *Śauca*. Similarly, other steps are also stated differently.

Ādi Śaṅkarācārya, the great Advaitic Philosopher, who has written commentaries on so many texts, have also commented upon the most celebrated work on Yoga, the Patañjali ***Yoga Sūtra***. His work was lost and therefore a bit controversial but he is the second scholar after Vyāsa to write commentary on this work. 'It was based on the single surviving manuscript which had to be re-arranged and considerably edited. This was done with great learning and patience by two pandits: P. S. Rama Sastri and S. R. Krishnamurti Sastri. Their judgement was that it was the genuine lost work of Śaṅkara.'[3] Although Śaṅkarācārya has contradicted some of the Philosophical theories of ***Yoga Sūtra*** but he has given immense importance to the meditational technique or the eight limb Yoga. Śaṅkarācārya puts knowledge at the top-most position and hence can be safely called as the *Jñāna Yogi*. Also, he has a non-dualistic or Advaitic approach to everything and Yoga is no exception. In his work '***Aparokṣānubhūti***' he states fifteen steps to Self-Realization. These fifteen steps are the meditational technique through which one can attain the highest Knowledge.

THE FIFTEEN STEPS TO SELF–REALIZATION

The fifteen steps stated by Śaṅkarācārya in ***Aparokṣānubhūti*** are *Yama*, *Niyama*, *Tyāga*, *Maunaṁ*, *Deśa*, *kāla*, *Āsana*, *Mūlabandha*, *Dehasāmya*, *Dṛksthiti*, *Prāṇasaṃyama*, *Pratyāhāra*, *Dhāraṇā, Ātmadhyānam*, *Samādhi*. The terms are taken from the different sections of Yoga and eight of them directly taken from the Patañjala Yoga. Though the terms are same, Śaṅkarācārya explains each of them in his own Advaitic way. These steps are to be followed and practiced for a long period of time by those who want to attain the ultimate goal of life. Let us see what specialty lies in Śaṅkara's interpretation of these fifteen steps of Yoga.

1. Yama

Yama means the control of senses. Śaṅkarācārya has stated *Yama* as the restraint of all the senses by means of knowledge such as 'All this is Brahman'.

Here, the aspirant reflects upon the fact, all which is seen is he himself i.e. Brahman and there is nothing in the world to which the senses will go and to indulge in. Therefore, he should be content within him. There is nothing new to which he can go and enjoy or get content with. The very first verse of ***Īśa Upaniṣad*** states, "*īśāvāsyamidaṃ sarvaṃ yatkiñca jagatyāṃ jagat |tena tyaktena bhuñjīthā mā gṛdhaḥ kasyasviddhanam||*" i.e. everything which is there on this earth must be enveloped by the God (Self). One must enjoy or support himself with this renunciation and not covet anybody's wealth.

2. Niyama

Niyama is the control of the mind. Śaṅkarācārya defines it as the continuous flow of only one thought excluding all other thoughts. This '*Sajātīya vṛtti pravāh*', the continuous flow of one thought, 'I am Brahman' is truly the supreme bliss and practiced by the wise all the time.

The aspirant gives up the thoughts of being a body or mind or senses and dwells upon only one thought 'I am Brahman'. The centering of the Self as Brahman is productive of the greatest bliss. When one is centered in its real nature, it is in the state of the Supreme Bliss.

3. Tyāga

Tyāga is renunciation. Śaṅkarācārya explains *Tyāga* as the abundance of the illusory universe by realizing it as the Ātman, the all conscious which alone is real. *Tyāga* is honored by the great as it is of the nature of immediate liberation. Seeing everything as nothing else but the all conscious Ātman which is Brahman, one renounces itself from all covet and greed and renounce this universe. All this we see in this universe is the names and the forms, just the appearance. What is real is consciousness alone. One of the famous examples is of clay and the pot. There is nothing like pot, it is just the name and form, what is real is clay. Thus, cutting down all the attachments from this world knowing the truth that everything is just the reflection of the Self is renunciation '*Tyāga*'.

4. Maunaṁ

Maunaṁ means Silence. Here, Silence is Brahman. Śaṅkarācārya writes it as 'the wise should always be one with that Silence, wherefrom words together with the mind turns back without reaching it, but which is attainable by the *Yogins*.'[4] The words can neither describe the reality nor the phenomenal world of plurality. In ***Māṇḍūkya Upaniṣad***, seventh verse, a series of pointers has been given to the Atman from

which one is 'Silence'. In ***Dakṣināmūrti Stotram***, Śaṅkarācārya has written '...He taught them with 'Silence' and the doubts of the disciples were all dispelled.'[5] i.e., the guru is silent and his silence is the explanation by which the doubts of the disciples have been dispelled.

Silence is also important from the Yogic or meditational point of view as so much of Psychic energy is wasted while speaking. It does not only exhaust the energy but also effects the thought process as what we speak keeps on dwelling in our mind and affect the meditation. The silence which is stated here is not merely the shutting of the mouth; it is '*Sahajaṃ*', the natural Silence, which is Brahman.

5. Deśa

Deśa which means Space is defined by Śaṅkarācārya as 'Solitude'. It is that space wherein there was no universe in the beginning, or the end or even in the middle, it is that whereby it pervades all the time. That Solitude is Brahman which is one alone without the second. The state of perfection is reached when one realizes himself as Brahman and sees nothing apart from him, the whole universe becomes one with him.

From the preliminary or the meditational point of view also it is important because the vibration differs with the place (*deśa*) which affects the thought process of the mind. The places with positive vibrations are helpful in concentration while those places which have disturbing vibration, do not let the aspirer to concentrate the mind for meditation.

6. Kāla

Kāla means time. As the step of meditational technique, *Kāla* is the source of things, from which everything is born. Śaṅkarācārya says Brahman is the real time as it brings out into existence everything in the twinkling of an eye, all beings from Brahmā downwards. It is the indivisible bliss, the non–dual Brahman that is the real time.

Again, in meditation as well, time plays an important role. There are some specific time periods or phases in a day which helps the process of meditation, which is favorable for the concentration.

7. Āsana

Āsana literally translates into the posture. Śaṅkarācārya states about the best posture suitable for meditation as the one which helps in concentrating on Brahman without giving any pain or unhappiness. That is the real posture in which the mediation of Brahman flows spontaneously and can be done unceasingly.

Continuing the topic of *Āsana*, Śaṅkarācārya states about *Siddhāsana*. It is that in which everything is established, which is the origin and the support of everything (whole universe). That, where the perfected ones sit, it is the Brahman. Those who are enlightened ones sit in Brahman i.e. in the awareness 'I am Brahman'.

8. Mūlabandha

Mūlabandha means restraining root. Here, Brahman is the restraining root of everything. He is the root of all the existence. In the first verse of fifteenth chapter of ***Bhagawadgītā*** as well, Brahman is called as the *Mūlam*[6]. It states, the entire universe is the tree whose root is above i.e. subtle. The restrain of the mind is based on this *Mūlabandha*, Brahman. By restraining one's mind upon this inner state and letting it merge therein, is to reach the state of total awakening. Śaṅkarācārya says, this should be adopted by all the seekers of knowledge as it is fit for them.

9. Dehasāmya

Dehasāmya means the equipoise of limbs or the body. Śaṅkarācārya states the real equipoise to be the absorption in the uniform Brahman. 'Merging into the homogenous mass of pure Consciousness (Brahman) is known as the 'holding steady' of the body.'[7]

10. Dṛksthiti

Dṛksthiti means the firmness of Vision. Śaṅkarācārya calls that to be the noblest vision which sees everything as Brahman. When the ordinary vision is converted into one of knowledge, one sees everything, the whole world as Brahman. For such vision, there is no distinction between the small or large, rich or poor, mine or yours, etc. it sees everything equally as Brahman itself.

Another way given by Śaṅkarācārya for practicing *Dṛksthiti* is, directing one's vision on 'That' alone, where all the distinction of seer sight and the seen ceases. 'That' is Brahman, the pure Consciousness wherein all the distinction ceases.

11. Prāṇāyāma

The control of the vital forces is *Prāṇāyāma*. Śaṅkarācārya explains it to be the restrain of all the

modifications of mind by regarding all mental states to be Brahman alone. That is, to establish in the fact that everything that arises in one's awareness is Brahman.

Śaṅkarācārya holds that breathe is completely dependent on the mind. Dwelling in Brahman is *Prāṇāyāma*. He explains *Prāṇāyāma* by giving the Advaitic meaning of the three terms of the process of inhalation, exhalation and restrain of breath viz. *Pūraka*, *Recaka* and *Kumbhak*. He says *Recaka* is the breathing out (the negation) of the phenomenal world, *Pūraka* is the thought of 'I am Brahman' i.e. dwelling upon Brahman and *Kumbhak* is the steadiness of this thought. Therefore, understanding the falsity of this phenomenal world and dwelling upon the thought 'I am Brahman' is *Prāṇāyāma*.

12. Pratyāhāra

Pratyāhāra means the withdrawal of the mind. Śaṅkarācārya states it as the absorption of the mind in the supreme Consciousness. When one withdraws his mind from all the duality of this world of objects, and absorbs it into the Brahman i.e., sees everything as Brahmana alone, without any duality, that is *Pratyāhāra.* It is based on object, whatever is seen is Brahman.

13. Dhāraṇā

Dhāraṇā is Concentration. Concentrating one's mind in Brahman alone is *Dhāraṇā*. When mind is completely absorbed into the Brahman, when it sees Brahman wherever it goes, that is *Dhāraṇā*, according to Śaṅkarācārya. Discarding all the *nāma* (name), *rūpa* (form) and *vyavahāra* (transaction) of the world which is imposed by the ignorance and seeing only Brahman everywhere is the real concentration. *Dhāraṇā* is based on space i.e. Brahman is everywhere. Wherever mind goes, it is Brahman.

14. Dhyāna

Dhyāna means meditation. Staying with the thought 'I am Brahman', without any support, is *Dhyāna,* as explained by Śaṅkarācārya. Here, 'support' implies the image or *mantra* or text on which one meditates. When one does not need any support to stabilize into Brahman, it is *Dhyāna*.

The technique starts by using an object as a support to realize itself as the illuminator or the knower. When this support is no more needed and one is steady on this thought of being the illuminator, the Brahman, it is *Dhyāna*. This *Dhyāna* 'I am Brahman' is productive of supreme bliss. *Dhyāna* is based on time, when one sees every time Brahman alone, it is *Dhyāna*.

15. Samādhi

Samādhi is the complete absorption. 'The complete absorption or forgetfulness of all the thoughts by first making it changeless and then identifying it with Brahman is Called *Samādhi* known also as knowledge.'[8] Śaṅkarācārya clears out *Samādhi* to be the state of knowledge and not to be confused with the state of unconsciousness. Mind is not completely absent from all the thoughts, instead, it is steady in one thought alone i.e. of Brahman, the pure Consciousness. *Samādhi* is the state where all the modifications of mind are ceased and only one remain, 'I am Brahman'. It is the state of complete or highest knowledge.

COMPARISON WITH PATAÑJALI'S *AṢṬĀNGA* YOGA

Śaṅkarācārya has taken terms from the *Aṣtānga* Yoga (eight–limb Yoga) mentioned in the Patañjali Yoga Sūtra. But he has explained them from the Advaitic point of view. Here, a brief comparison is done between these two and the similarities and differences are stated for the better understanding of the relation between the two.

A. Similarities

Terms: The similarity which is very much evident is the names or the terms used. Eight out of fifteen steps have been termed in Śaṅkarācārya's Vedantic Yoga from Patañjali Yoga Sutra viz. *Yama*, *Niyama*, *Āsana*, *Prāṇāyāma*, *Pratyāhāra*, *Dhāraṇā*, *Dhyāna* and *Samādhi*.

Objectives: Some of the objectives of both the meditational techniques are very much the same which are restraint of the senses, Control of the mind, concentration and attainment of the liberation.

B. Differences

Number of Steps: Śaṅkarācārya has added new steps into his techniques and the total number of steps becomes fifteen instead of eight as stated by Patañjali. These fifteen steps are given as they are the techniques which give fifteen different ways for conceiving of or thinking of establishing oneself in Brahman.

Meaning of the similar terms: The similar terms in the two meditational techniques have been used differently by Patañjali and Śaṅkarācārya. The difference can be stated as follows–

Steps	Patañjali Yoga	Advaita Vedāntic Yoga
Yama	Control of the senses as the five vows of Ahiṃsā, Satya, etc.	Restrain of senses with the Knowledge 'All this is Brahman'
Niyama	The five observances like Śauca, Swādhyāya, etc.	Continuous flow of only one thought 'I am Brahman'
Āsana	Suitable posture for meditation which does not give pain	To sit in the pure bliss which is Brahman itself
Prāṇāyāma	Control of breath or the motion of inhalation and exhalation	Breathing out of the phenomenal world, taking in the thought 'I am Brahman' and steadiness of this thought
Pratyāhāra	Withdrawal of mind from the sense objects	Seeing all as Brahman itself
Dhāraṇā	Concentrating mind at one particular object	Seeing Brahman everywhere, wherever the mind goes
Dhyāna	An unbroken flow of thought in one object	Meditating on only one thought 'I am Brahman' without the support of any object or text
Samādhi	The complete absorption of mind	Knowledge, Self-realization

Philosophical Approach: Patañjali Yoga is a practical technique where one sits down restraining the mind and controlling the senses, in a correct posture, to reach the state of *Samādhi,* which is the state of complete absorption of all the *vṛtti* (thoughts). Here, the *Yogi* cut down from the world and drawbacks all the senses from the worldly objects.

Śaṅkarācārya has the Advaitic approach to the things and makes the technique not only the practice but a living philosophy. The techniques are not limited to the time when one is meditating sitting in a particular position instead it is meditating on Brahman all the time, everywhere and seeing everything as Brahman itself. Here, the mind is not controlled to go to the objects and see them. The technique is to see everything, each object as Brahman alone.

Also, the Patnajali Yoga is action oriented while, the one stated by Śaṅkarācārya is knowledge oriented.

Final Result: The final result i.e. *Samādhi* in Patañjali Yoga is the absorption of all the *vṛtti* i.e. all the thoughts. In Śaṅkarācārya Yoga, *Samādhi* is the establishment of only one thought i.e. 'I am Brahman'. It is the Self-realization. It is the state of knowledge which is the ultimate knowledge, Brahman.

CONCLUSION

Yoga in Advaita Vedānta can be called as the merge of the *Rāja* Yoga with Jñāna Yoga. The steps of *Rāja* Yoga have been explained by Śaṅkarācārya in the light of knowledge of non–dualism. The explanation of the terms of Patañjali Yoga is done differently by Śaṅkarācārya not to criticize or contradict the former but to establish the Advaitic knowledge in each step of the practice. If seen from the larger perspective, these explanations can be helpful to understand the depth of some of the steps of Patañjala Yoga. As in the case of *Prāṇāyāma*, the technique is not just to control the breath but also to control the thoughts in the mind with each breath. Also, the additional steps can further explain the technique and work as a connecting link to the next step of the eight limbs, for example the addition of *Deśa* and *Kāla* before *Āsana* can act as the helping link for the Yogi to understand the importance of place and time in meditation. The Yogi can take the benefit of the suitable time and place by understanding about the phases of day which have higher spiritual vibration and places suitable for meditation. Yoga is a technique which needs persistent practice whether it is the one given by Patañjali or Śaṅkarācārya. Therefore, the fifteen steps stated above, need to be practiced by the aspirant of the truth for a long period of time to establish himself in that knowledge. Once the Yogi succeeds in this, he attains *Samādhi* which is the highest knowledge.

References

1. Swami Hariharananda Aranya, "*Yoga Philosophy of Patañjali with Bhāsvatī*" (Calcutta: Calcutta University Press, 2012) p.1.
2. Jaideva Singh, "Introduction to *Vijñāna Bhairava*" (Delhi: Motilal Banarasidass, 1981), p. ix.
3. Trevor Leggette, *The Complete Commentary by Śaṅkara on Yoga Sūtra-s* (Great Britain: Doetesios Printers Limited, 1990), pp.4-5.
4. *Aparokṣānubhūti*, verse 107.

   '*yato vāco nivartante aprāpya manasā saha, yanmaunaṁ yogibhirgamyaṁ tadbhvetsarvadā budhaḥ*.'

   Cf. Śaṅkarācārya, *Aparokṣānubhūti*, Translated by Swami Vimuktananda (Kolkata: Advaita Ashrama Publication Department, 2015).
5. *Śri Dakṣināmūrti Stotram*, meditation verse III.

   '*citram vaṭa-tarormūle vṛddhāḥ śiṣyā gururyuvā, gurostu maunaṁ vyākhyānaṁ śiṣyāstu chinna-saṁśayāḥ*.'

   Cf. Śaṅkarācārya, *Śri Dakṣināmūrti Stotram*, Translated by Swami Chinmayananda (Mumbai: Chinmaya Prakashan, 2016).
6. *Śrīmad Bhagawadgītā*, chapter 15, verse I.

   '*ūrdhva-mūlam adhaḥ-śākham aśvatthaṁ prāhur avyayam, chhandānsi yasya parṇāni yas taṁ veda sa veda-vit*.'

   Cf. *Śrīmad Bhagawadgītā*. Translated by Tridandi Gosvami (Calcutta: Gaudiya Mission, 1990).
7. *Aparokṣānubhūti*, verse 115.

   '*aṅgānāṁ samatāṁ vidyātsame brahmaṇi līyate, no cennaiva samānatvamṛjutvaṁ śuṣkavṛkṣavat*.'
8. *Aparokṣānubhūti'*, verse 124. '*nirvikāratayā vṛttyā brahmākāratayā punaḥ, vṛttivismaraṇaṁ samyak samādhirñjñakaḥ*.'

●

DONYI-POLOISM: AN INDIGENOUS RELIGION OF TANI GROUPS OF ARUNACHAL PRADESH, INDIA

KIRAN KUMARI*

Arunachal Pradesh, "the land of dawn lit," earlier known as the North East Frontier Agency (NEFA) is bounded by Bhutan to the West, bordered with the China and Tibet to the north and north-east, Myanmar [Burma] to the south-east and Assam in the south covers an area of 83,743 km^2. Arunachal Pradesh was not a state until 1987, maintain its separate entity since time immemorial. There are twenty-six major tribes in Arunachal, and over a hundred sub-tribes[1]. Each tribe or sub-tribe had evolved their own living style, belief, faith, folklores and festivities. Till recently, some of them are living in partial isolation, not recognised and have not been given the status of tribal in the state. It is a state of great diversity in respect of culture and traditions. Even today their traditions and customs are very much alive.

Arunachal Pradesh can be sketched into three geo-cultural zones they are Tibetan and Tibetan Buddhist group in the west and north; animist groups in the centre and Theraveda Buddhists, Burmese- and Naga- related groups in the east / southeast[2]. Culturally, the state can be divided into three zones: the western sections where the people are followers of Mahayana Buddhism, the eastern section that has Hinyana Buddhists in addition to some Vaishnavites and the central zone which has five large tribes following an indigenous faith called *Donyi-Poloism*. These five tribes call themselves the Tani group[3].

On the basis of traditional religion, the people of state can be divided into two broad groups that is, the Bodic group (Buddhist) and the non-Bodic group (non-Buddhist). The Bodic group is again sub-divided into Hinayan cult and Mahayana cult. The tribes like Monpa, Sherdukpen, Memba, Kamba follow Mahayan cult while Khamti, Singphos follow Hinayana cult. The Bodic group can also be divided into sub group that is the worshippers of *Donyi-Polo* and the worshippers of other distinct indigenous religion. The Tani group of tribes profess *Donyi-Polo* as an indigenous religion. The Tani group includes Adi (Galo, PadamPasi, Minyong, Bori, Boker, Rambo, Milang), Apatani, Nyishi, Tagin and so called Hill Miris and the Plain Tribes like Mishing. The other sub group includes Mishmi, Aka, Miji, Khowa, Tangsa, Nocte, Wancho, Yobin but they don't subscribe the notion of Abo Tani as forefather. However, with the intrusion of other institutionalized religions especially the Christianity and the Hinduism, many people within the tribe have either embraced or got influenced by these religions[4].

Verrier Elwin was of the opinion that the indigenous religion of Arunachal Pradesh is largely the outcome of beliefs of their myths. Elwin in his study on religion among the tribes of North East Frontier in the Nineteenth century used to collect wide variety of myths[5]. Thus, the mythology, unwritten sacred statements, experiences make believe pattern more stronger, and for the tribal believers faith makes the unseen real and they respond to *Donyi-Polo* by means of faith. It is faith, which provides the tribes about the existence and principles of *Donyi-Polo*.

The conversion to Christianity resulted in the declining of indigenous beliefs and practices. In order to protect, preserve, promote and to document their indigenous religious beliefs and practices, a new reformist movements such as "*Donyi-Poloism*" was initiated among the Tani group of tribes. *Donyi* and *Polo* literally mean "*Sun*" and "*Moon*," which the Tani group, such as the Adi, Nyishi, Apatani, Tagin, and Galo, worship for prosperity, fertility, and protection from calamities. They believe that there is an unseen supreme power of the universe which is the source of heavenly objects like sun, moon, stars, earth as well as the source of organic ingredients of life like air, water, fire, earth and space. This omnipotent, omniscient and omnipresent Supreme Being is called *Donyi-Polo* (Sun and Moon)[6]. In other words, faith on the Supreme Power, the God, that is manifested in the form of the sun and the moon and the practices associated with worship of this absolute power is called *Donyi-Polo*[7].

* Professor, Deptt. of Geography, Rajiv Gandhi University, Rono Hills, Doimukh-791112, Arunachal Pradesh.

Among the Tani groups, the Adis were the first to formalize *Donyi-Polo* as their indigenous religion. The *Donyi-Polo* movement, was started initially on 28th August 1968 by the Adis to institutionalize their indigenous religion, with a meeting of Adi intellectuals at Aalo, West Siang district, to consider forming a larger entity by combining the Adi and the Galo tribes of Arunachal Pradesh[8]. Late Talom Rukbo, was the founder of the *Donyi-Polo* movement and his mission was to protect and promote Arunachal cultural and religious identity. The first *Donyi-Polo Day* was celebrated at the Solung ground, Pasighat on 31st December 1993. Since, then the people of Arunachal have been observing the 31st December as 'Donyi-Polo Day' every year. In reinforcing Donyi-Polo institution, Rukbo authored two basic informative booklets - *Directive Principles of Donyipolo Yelam Kebang* and *Donyipoloism through Question and answers*; formulating code of conducts and doctrinal frame. In greater propensity, the Tani groups founded cultural societies such as Tani Jagriti Foundation (TJF), Donyipolo Youth Federation (DYF) and DPYK at Pasighat with the goal of restoring dying out rituals, prayers and hymns[9].

Traditionally the *Donyi* (sun) is regarded as female and *Polo* is treated as male, in another words they can be called as a couple. *Donyi-Polo* is a prominent mythological figure among the Tani groups. According to Rukbo, this symbolizes the scientific proof of Supreme Power: that without light and dark it is impossible to live on this earth. The myth regarding the origin and the role of *Donyi-Polo* narrates the presence of two powerful suns in the universe. At that time both the suns used to rise and set one after another giving light to the universe round the clock. There was no night-time for rest or sleep. The land became dry and the vegetation also started to dry up. The living creature including the man found it difficult to live on or survive. Finally, the elders of the society met and decided to shoot down one of the suns. The task of shooting down the sun was entrusted to *Etung Tikling* (a great and skilled archer). *Etung Tickling* performed the feat of bringing down the sun. But the other sun became very angry at the act of *Etung Tikling*. To the dismay of the people the sun disappeared, causing great hardships to them. Then they went on pleading with the sun to rise. At last, the sun agreed to rise on the condition that he might take away the lives of a few beings on the earth. The sun started to rise and the human being started to die. The sun that was shot down also started to rise as the moon[10]. According to Rukbo, this symbolizes the scientific proof of Supreme Power: that without light and dark it is impossible to live on this earth. The Sun-Moon myth is one of the distinctive stories of the regional oral tradition in Central Arunachal Pradesh became the 'inspiration for a reinvention of religion'.

The influence of *Donyi-Poloism* subsequently outspread to Papumpare with centres at Itanagar and Naharlagun; centrally among the Apatanis and neighbouring Nyishis of Lower Subansiri and Tagins and Galos of Upper Subansiri district. Towards eastern and south-eastern stretch, the spiritual revival marked parallel with other indigenous faith movements like *Intayaism*of Idu-Mishmis in Dibang and Lower Dibang Valley; *Mataism* of Miju-Mishmis and *Jab-Malo* of Digaru-Mishmis in Lohit and Anjaw and *Rangfraism* of Tangsa in Changlang district. At the peak of reformatory process, expression of similar religious movements echoed among the Tani groups to adapt new religious framework within specific heritage by devising sacred texts, iconography and worship systems[11].

These movements have tried to institutionalize tribal religion by inventing images of gods and goddesses, constructing temples, and textualizing religious chants or oral traditions in a manner very similar to that of Hinduism[12]. The traditional way of thinking is that Donyi-Polo is the eyes of human conscience. In fact, the right conscience guides a man all the time and so, the generally abstain themselves from committing crime or wrong. Radiating and reflecting warming rays and kindly light through the sun and the moon, *Donyi-Polo* teaches human beings to be kind, compassionate, selfless and loving in conduct. Physical existence of the sun, the moon, the earth, the stars and the meteors are a truth. It shines all the time. No power in the universe can destroy the truth. It is a unique and absolute in itself. Donyi-Polo is the purest of the pure, wisest of the wise and greatest of the great. Being so, it reins the intellectual sky of the tribe supreme[13]. The Tani group of people explain all natural phenomenon as well as the link between this world and the supreme through their belief. Their belief dictates their understanding of life and its principles and their reactions there upon.

Conclusion

Thus from the above discussion it is ascertain that 'Tani groups' have been practicing their

indigenous religion since the time immemorial and never endorsed any specific shrine for worship. They solely gratified on rituals and incantations performed by priests and associated sacrificial acts. But due to the lack of recognition of their religion, missionary activities of Christian and Hindu and globalization compelled them to pursue significant structural changes in their religious domains to safeguard cultural identity. *Donyi-Polo* is an ongoing movement and an alternate strategy of institutionalizing to safeguard the lost traditional belief system and to fight against conversion in new religious order by Tani groups. For them believing in *Donyi-Polo* religion is to live in perfect harmony with external cosmic nature everywhere and internal peace and self-generating for eternal and universal character.

References

1. Katiyar, Preens (2017). "How Churches in Arunachal Pradesh Are Facing Resistance over Conversion of Trials," *Economic Times*, November 19, https://economictimes.indiatimes.com/news/politics-and-nation/how-churches-in-arunachal-pradesh-are-facing-resistance-over-conversion-of-tribals/articleshow/61703687.cms.
2. Blackburn, Stuart (2008). *Himalayan Tribal Tales: Oral Tradition and Culture in Apatani Valley*, Koninklijike Brill NV, Leiden, The Netherlands, p. 27
3. Regunathan, Sudhamahi (1999). Sunshine on Faith: Life and Belief in some Arunachal Communities, *India International Centre Quarterly, summer*, Vol. 26 (2), pp. 138-147.
4. Rikam, Nadam Tadar (2005). *Emerging Religious Identities of Arunachal Pradesh: A Study of Nyishi Tribe*, Mittal Publication, New Delhi, pp. 127–128.
5. Verrier Elwin (1959). *India's North East Frontier in the Nineteenth Century*, London
6. Borang, Gindu (2013). *Changing Social and Cultural Institution of the Adi (Padam) of Arunachal Pradesh*, Itanagar, p. 149.
7. Mibang, Tamo, (1999). Relevance of Indigenous Religion, *Arunachal University Research Journal*, Vol.2, p.8.
8. Dawar, J.L. (2004). Religious Conversion and Contending Responses – A Study among the Adis of Arunachal Pradesh. In: TamoMibang and Sarit Kumar Chaudhuri (eds), *Understanding Tribal Religion*. New Delhi: Mittal Publication, pp. 159-171.
9. Rukbo, Talom (1998). Donyi-Polo Faith and Practice of the Adis In: Tamo Mibang and Sarit Kumar Chaudhuri (eds), *Indigenous Faith and Practices of the Tribes of Arunachal Pradesh*, Itanagar, Himalayan Publishers, pp. 147-153
10. Mibang, Tamo (1996). *Social Change in Arunachal Pradesh: The Minyongs* (1947-1981), Omson Publications, New Delhi, p.5.
11. Schied, C.S. (2015). Talom Rukbo and the Donyi-Polo Yelam Kebang: Restructuring Adi Religious Practices in Arunachal Pradesh, *Internationals Asian Forum: International Quarterly for Asian Studies*, 46 (1-2): 127-48
12. Chaudhuri, Sarit Kumar (2013). The Institutionalization of Tribal Religion: Recasting the Donyi-Polo Movement in Arunachal Pradesh, *Asian Ethnology*, Vol. 72, No.2, Performing Identity Politics and Culture in Northeast India and Beyond, pp. 259-277.
13. Rikam, Nadam Tadar (2005). *Emerging Religious Identities of Arunachal Pradesh: A Study of Nyishi Tribe*, Mittal Publication, New Delhi, pp. 127–128.

●

AN EQUIPOISE IN HUMAN LIFE: SCANNING THROUGH NEW-FANGLED LOCUS IN LAWRENCE'S PSYCHOANALYSIS AND UNCONSCIOUS

DR. PRAVEEN KUMAR ANSHUMAN * AND PROF. JAI SHANKAR JHA**

God has always been the focal axis of humanity since time immemorial. But, he does not seem to be an object of human search, rather say, what is opined in Fredrick Nietzsche's words, that is, 'God is dead'[i] reflects the same. It may appear to be fallaciously true as no other species seem to bother about any such kind of search that inadvertently takes their beingness heading unremittingly towards the 'other' in multitudinous fabrics. Jean Paul Satre seems very significantly to say somewhere ***'L'enfer, c'est les autres'*** i.e. 'hell is the other people'[ii]. But this is pertinent to discern the fact that human life is a composite of very many concerns pertaining to all and everything that surprisingly exclude its very own gamut, say an ambit ora territory. So, there are expositions and propositions countering or getting countered about what human life is all about and what its goal is supposed to be.

There is no end to what could be imagined or has already been contemplated and could be cogitated more in future. But one thing is certain that human beings have not been able to achieve what they feel like getting at in their entire search in life, yet through countless ways via turning the world into the most complex cobweb, say 'turning and turning into the widening gyre'[iii]. All civilization, culture and scientific advancement are just to posit the very central demands of the human life i.e. bliss, balance and benediction.

In the series of human researches, the carnal appetite is the most subtle that releases transitory experience of the said demands. Rest, man does not seem to give solace through anything s/he seeks and finds in life. Human beings have tried to attain to the experiences of ecstasy and equilibrium via different tracks like worshiping Gods, getting addicted to drugs, involving into politics, philosophizing emancipatory thoughts, spreading education, orchestrating nuptial knot and what not. But all that they do is nothing but to give oneself only a digressed track to move on, drifting one's consciousness from 'oneself'. And, in that very way of having gone astray, one has a momentary feeling of being at 'home'. But it is worth remembering that it remains always a momentary phenomenon though executed with an intention of having it forever.

The appearance of Lawrence's first novel, *The White Peacock* (1911), launched him into a writing career. His novel *Sons and Lovers appeared* (1913) was based on his childhood. In 1914, Lawrence married Frieda von Richthofen and travelled with her in several countries. *The Rainbow* (1915) was about two sisters growing up in the north of England[iv]. He started to write *The Lost Girl* in Italy. Some other novels from the 1920s include *Women in Love* (1920), a sequel to *The Rainbow*. He dropped the novel writing for some years and rewrote the story in an old Sicilian farmhouse near Taormina in 1920. Tremendously prolific, his works were often uneven in quality, and he was a continual source of controversy, often involved in widely-publicized censorship cases, most famously for his novel *Lady Chatterley's Lover* (1928)[v]. *Aaron's Rod* (1922) expresses the influence of Frederic Nietzsche, and in *Kangaroo* (1923) his own idea of a 'superman' finds a display. *The Plumed Serpent* (1926) was a vivid evocation of Mexico and its ancient Aztec religion. *The Man Who Died* (1929) is a bold story of Christ's Resurrection. Lawrence's non-fictional works include *Movements in European History* (1921) and *Studies in Classic American Literature* (1923). Among all these very works, *Psychoanalysis and the Unconscious* (1922) stepped in between and has not been in the limelight so much in comparison with other works though the book contains those jewels that even the field of psychoanalysis would become envious of.

Lawrence propounds very schematically in concretized manner the paths where human beings can find peace, tranquility and harmony, the very essence of everybody's life. In his book

* Assistant Professor, Deptt. of English, Kirori Mal College, University of Delhi.
** Professor, Deptt. of English, Banaras Hindu University.

Psychoanalysis and the Unconscious, he says: "Education can never become a serious science until the human psyche is properly understood. And the human psyche cannot begin to be understood until we enter the dark continent of the unconscious"[vi].(32)

The Dark Continent of the Unconscious is a territory groping into which may reveal or rather has revealed certain podium of discerning human consciousness. Here the ambit of psychoanalysis which troops into dissecting the psychic landscape in a systematically overcoming arithmetic commences, and brings forth dormant realities to get overtly acknowledged. Psychoanalytic theories were, as we know, developed by the Austrian, Sigmund Freud (1856-1939) whose major ideas include the notion of unconscious, the idea of repression and a process of sublimation. Later on, 'the model of psyche, dividing it into ego, the super-ego, and the id', 'roughly corresponding to, respectively the consciousness, the conscience, and the unconscious'[vii], was suggested.

Freud has given the concept of Oedipal complex[viii], the infant's relationship with the mother; his libidinal theory has 'three stages of focus, the oral, the anal and the phallic. The libido in the individual is part of a more generalized drive which the later Freud called Eros (the Greek word for 'love'), which roughly means the life instinct, the opposite of which is Thanatos[ix] (the Greek word for 'death'), which roughly means the death instinct, a controversial notion, in fact.' While getting cured by a psychoanalyst, he has also given some key terms like transference (emotions redirected towards the analyst), projection (negative aspect considered to belong to others), defense mechanism (avoidance of catastrophic cognition), screen memory (obliteration of inconsequential memory), and Freudian slips (parapraxis: repressed desires finding an outlet). On his project on dream world of human beings, he theorized many of which displacement (one person represented by the other), and condensation (numbers of items in one single image of the dream) are of the major significance.

Heading beyond what Freud has proposed, the study of psychoanalysis has produced so many scholars who have changed the very face of human life. In the series, we can grabble into different theories being propounded by different scholars—objective relational theory of John Frosch, Otto Kernberg, Salman Akhtar; the theory of the self of Sheldon Bach; separation-individuation of Peter Blos; self-psychology of Heinz Kohut, structural theory of Lacan, interpersonal psychoanalysis of Harry Stack Sullivan, MD; modern psychoanalysis of Hyman Spotnitz; relational psychoanalysis of Jessica Benjamin and Fonagy Target, inter-subjective psychoanalysis of George E. Atwood and Robert Stolorow and many more.

With all the efforts, what psychoanalysis has tried to do is to give explanation to every human error and unsuitability of surviving in the best possible way. But, going beyond the circumscribed precincts, D. H. Lawrence being a man of passion, instincts and primitive fabrics, has dug out many more equations which may sometimes appear to be contradictorily iconoclastic, but they are the very tenets that come out concretizing human life in perfect equity, equipoise and equilibrium.

Among many of his works as cited above, *Psychoanalysis and the Unconscious* is not like popular works of a fiction, novel, poem, or short story. This book is a non-fictional feat of his thought reflection, a reflection of his remarkable comprehension and contemplation in consonance as well as dissonance with the development made in the fields of Psychology, Psychoanalysis and Psychodynamics. D. H. Lawrence discovers keys of happiness common to all the human beings. He has very systematically discussed each segment of human body and the inner world of feelings and emotions and how human beings inadvertently fail to achieve what they wish to, and when the balance is lost, it is very rarely known to them. The explanation he gives is so dynamically informative that it seems only a man of deeper consciousness can be aware of the certain dimensions he has expounded.

Psychoanalysis in the 20th century becomes a great breakthrough. Now, the 17th century characteristics of a protagonist in a novel or piece of work (of an art) did not remain the same. Its strictures abruptly diluted and as a result walls were broken down and the one behind the mask who was diametrically discordant and opposite comes at the forefront making it difficult for people to believe that this is what the human beings are.

Human beings have created so many things; one of the most significant things out of them is society and civilization. And both these institutions continue

existing on the altar of natural human longings and demands in human life. If human beings demand love, it speaks of love within a circumscribed periphery; if human beings demand the carnal appetite to be fulfilled, it covers up the instinctual pangs with the idea of celibacy or moral virtues and if human beings interrogate about life and existence, it offers them with the books on theosophy and words comprising religious verbosity.

Psychoanalysis disrupts all that is called morality. The chief motif of establishing moral values is to avoid chaos from human life, but, consequently what results is the pervert mode of human life which apparently looks very healthy but, from the inside, the worst of the worst happens. Lawrence says that now it was not the question of bringing some new moral values to be fabricated but it is now a question of the life and death of all morality. While bringing out equation of equilibrium to human life, he takes one by one to every segment where human life is stuck and which only can transform its life. He blows down morality of the society, exploring its relation with the new field of psychology by putting threads going against itself, disclosing incest motives falling against all idealistic notions, repositioning consciousness erupting out of unconsciousness, theorizing child's innate relationship with the mother, discovering centers of concord between a lover and the beloved, and establishing human relations with the unconscious.

We know that Freudian therapeutic study brings out the repressed materials stored in the unconsciousness to the limelight or to the conscious state. It is when they are brought to consciousness, they are relieved off them because they are encountered consciously. And then it is thought that the human life will be at ease. But unfortunately it is not so. Lawrence in this regard says: "Our complexes are not just mere interlocking in the mechanism of the psyche…even the psyche depends on a certain organic, mechanistic activity, even as life depends on the mechanistic organism of the body.[x]" (10)

It becomes now a problematic issue for *psychoanalysts as to whether accept* incest-craving a part normal sexuality of man which is just normal though repressed one because of moral and biological fear. And once it is accepted so, it requires all its repression to be removed. Neurosis and insanity are wrong; they are the products of the repression and inhibitions. So inhibition of incest-craving too is wrong. Lawrence is of the opinion that there should be no problem in acquiescing incest craving as of now sexual marriages are accepted. There must have been a time when sex would have been a reality but not marriages. Marriage appeared after a long time when humanity starts descending into units and groups. So society pondered about sex to be socialized by way of nuptial knots and then they orchestrated certain strictures to be followed in its way with the intention of having a systematic society. But this very way becomes the very root cause for all the modern neurosis and madness.

It gives way to understanding the actual nature of unconsciousness. But in this way, on the path of unconsciousness *always is found the idealism* as an impediment. And in this respect, H. L. Mencken in his book *A Book of Burlesque* writes that an idealist is one who, on noticing that a rose smells better than a cabbage, concludes that it makes a better soup. George Carlin says, "Scratch any cynic and you will find a disappointed idealist.[xi]" But so far as the unconsciousness is concerned, Lawrence is of the opinion that the first bubbling life in us i.e. unconsciousness comes into existence when we start forming in our mother's womb, which is innocent of any mentality alteration. And this segment, if not understood is going to create nuances in human life, and there shall always be disparity and dissonance.

But this unconscious unlike Jung has been a strange phenomenon, that's why its world is mystified. Sigmund Freud has very significantly stated that, when properly speaking, the unconscious is the real psychic; its inner nature is just as unknown to us as the reality of the external world, and it is just as imperfectly reported to us through the data of consciousness as is the external world through the indications of our sensory organs[xii].

But Lawrence expounds the actual nature of unconsciousness in a very syllogistic manner. He says that the beginning of life is the beginning of an individual. Or rather the beginning of an individual is the beginning of life. Life takes its first tangible shape and structure only when an individual is born. Before it, life that existed remains existent just like the electricity. In this way, we can say that life and individual are inseparable entity. Despite this aspect, there is nonetheless something which is particular to the individual itself. 'The nature of the infant does not

follow from the nature of parents. There is in the nature of the infant that which is utterly unknown in the nature of the parents.' This unknown is a mystery. According to Lawrence, this unknown is the individual; this unknown is the soul.

D. H. Lawrence is very pertinent that he does not dwell himself onto slipping spots. He escapes very shrewdly and meticulously and endeavors at elucidating the fabrics that come under the periphery of human logical understanding. So the unconscious is that essential unique nature, which is, by its very nature, un-analyzable, indefinable, unconceivable. It cannot be conceived; it can only be experienced, in every single stance. Being inconceivable, we call it unconscious. This is experienced through direct encounter. As we know that all the best parts of knowledge are inconceivable. There are so many things in life which we can know but cannot explain. Knowledge is always a matter of whole experience. The Indian mystic, J. Krishnamurti, describes in a public talk in Madras in 1965-66: "When we observe – without reading psychologists, the Freuds, the Jungs, and all the rest of the modern philosophers and psychologists – we know what the unconscious is: the radical residue, the experience of the race the social conditions, the environment, the tradition, the culture – culture being political, religious, educational – which are all deeply embedded in the unconscious."[xiii]

Lawrence here opines that this unconscious is very creative. It registers itself in all its manifestations, its unfolding incarnations, all its processes and its unaccountable evolutions. It is beyond all cause-and-effect equation because the individual unit of unconscious arises by pure creation, by a process which takes place outside the field of mental comprehension, where mentality, which is definitely limited, cannot and does not exist. But it starts following the laws of cause-and-effect when it is realized. Unconscious is all the time moving forward beyond the range of its own fixed laws and habits. Lawrence suggests that it is no good trying to superimpose an ideal nature upon unconscious. We have to try to recognize its true nature and then leave the unconscious itself to prompt a new movement and new beginning—the creative progress.

When, instead of restricting unconscious within the ideal limits which definitely rupture the true movement, we accept the presence of its integrity to be experienced in ourselves and its first herald unfolding itself habitually. Then we can scientifically determine its laws and processes and live our life in spontaneity than being directed with dead machine-principles of ideas and ideals. This is not that one will be unscientific in following the inner arithmetic of the unconscious, rather, one that will be supra-scientific, an approach that encompasses not only that which is understandable rationally but also that which is left from one's *rational grip.* It is only when science abandons its intellectualist position and embraces the old religious faculty and by doing this, it does not become less scientific but, so to say, complete in acquiring knowledge itself.

Lawrence says that the location of this center remains beneath the burning influx of the navel from the first fertilized nucleus to that of an adult one. As primal affective center, it lies within the solar plexus of the nervous system (20)[xiv]. What we understand here is that the first rupture in making life *continue* happens at this very center of navel. The first scar, the first jerk of individuality, begins to extricate just from here only. The way mother now feels and experiences is greater than any philosopher's intellectual gymnastics with reference to the understanding of both unison and separation as a process simultaneously happening together. From this axis of solar plexus, the child seeks to revive the old connection by way of seeking breast which it knows to reach automatically on its own from the great mind of the abdomen and gets propelled by the vital magnetism. It is recovery of the prenatal state.

As the flux between mother and child is not a sweet unison, there starts a widening gap extricating itself into single, separate, independent existence. In sucking the breast, the child feels a new power and its exclusive identity. Now the other center is awake—the first scream of ego, the scream of asserted isolation. And it is now a revolt from union. Though it affects mother but that is the way the child is going to have sustenance in life. This primal unconscious pulses in its circuits between mother and the child: love and wrath, cleaving and repulsion, inglutination and excrementation. And then in the world on this natural scheme of life is imposed an ideal behavior which can only derange and derail the life-flow of those connected with us. Disturbing it on one side is to disturb on the other pole as well. Moving on to the child's bond with the mother, an American writer Amy Tan working on mother-daughter and Chinese-American experiences writes: "What do you think was

the first sound to become a word, a meaning? I imagined two people without words, unable to speak to each other. I imagined the need: The colour of the sky that meant 'storm.'"[xv]

D. H. Lawrence further brings some more points relating to the child's interconnection with the outer universe. It has perhaps rightly been said that the blessed are the people who are like children, for theirs is the Kingdom of God. The paradise which is lost in everyone's life can be regained. But when was it experienced on the first hand? Certainly, it was experienced when the child was in the womb. The womb was the paradise. When a child is born, it has to go through what extrinsic life offers but the circle will only be complete when it has come back home; it has got again rooted into its first stage where it was connected with the mother, the outer cosmos. When the one regains the innocence of a child, only then one can feel saturation, peace and contentment. This is why yoga and meditations make an effort to let one's consciousness down in the valley of solar plexus or the hara point.

The whole cycle inside the corporeal structure of a child and its mother functions like an electric circuit unlike any cerebrally condescended element like ego which belongs to the conscious or mental-subjective self because there contains nothing ideal, noting in the least conceptual, hence nothing personal and so no personality. The primal awareness in a child in communion with the mother is not of itself desiring her but of her as she is in herself. This is the first great acquisition of primal objective knowledge, the objective content of the unconscious which we call the treasure of the heart. It is a dwelling of the child's unconscious within the form of the mother, gathering of a pure eternal impression. So the soul stores itself with dynamic treasures; it verily builds up its own tissue of such treasure; the tissue of the developing body; and each cell stored with creative dynamic content. Among many centers in the body, the nipples in the breast, both in man and woman serve primarily as poles of vital conscious effluence and connection. Lawrence says that the common mass is not aware that the nipples are like fountains leaping into the universe or like little lamps irradiating the contiguous world to the soul in quest.

Gradually, we see child while sucking the milk from the mother's breast gives way to little hands to move, touch, wave, grasp. So, eyes and hands are awake from the center of the breast. Ears and feet move deep from the lower center—the recipient ears imbibing vibrations and the feet getting controlled from the powerful lower ganglia of the spine. In this way, wholeness is established within the individual. Afterwards the child now can be alone, independent and a separate entity. But now the journey with reference to the extrinsic world begins. The function of the upper complimentary centers is to give love experience between two individuals. In this respect, the eminent American writer McCullers in his book *Collected Stories of Carson McCullers* writes:"First of all, love is a joint experience between two persons — but the fact that it is a joint experience does not mean that it is a similar experience to the two people involved.[xvi]"(253)

Very true are these words for the kind of communion which is generally seen in the world. The fallacy lies somewhere within the individual's inner centers if seen through Lawrence's prism. The mystery of the creative opposition exists all the time between the two planes, and this unison in opposition between the two planes forms the first complete fields of consciousness. Within the individual, the polarity is twofold but in a relationship, it becomes eightfold.

Lawrence in his book says that the sun of creative activity bean arises from the breast center, the heart of supreme man; it is the source of light—the loving heart, the sacred heart standing against the devouring darkness of the lower man, devouring whirlpool beneath the navel. Solar plexus is the first and main clue to the great alimentary sexual activity in man while cardiac plexus is the first and main clue to the respiratory system and the active productive manifestations. Mouths and nostrils are the gateway to each great centre. From the breast flows the devotional, self-outpouring of love, self-devoting love while from the strong ganglion on the shoulders of the lymphatic zone moves forth the negative circuit or a separating force bringing back the objective apprehension in mental sense. On both planes of love, upper and lower, the two modes must act complimentary to one another, the sympathetic and the separatist.

As the individual psyche is divided, against it divides the world against itself and an unthinkable progress of calamity ensues unless there is reconciliation, Lawrence seems to opine that the goal of life is coming to this perfecting state of being. And

this is possible only when there is tremendous interchange of love from all the four great poles of the first, basic field of consciousness. The combinatorial gamut should comprise the twofold passionate flux of sympathetic love, subjective-abdominal and objective-devotional both and the two fold passionate circuit of separatist realization, the lower, the vital self-realization and the upper, intense realization of the other or recognition of the abysmal otherness. To stress any one mode, anyone interchange, is to hinder all and cause corruption and imbalance to human life in the end. So, in Lawrence's newfangled and innovative scheme of realizing human fabrics, perhaps an equilibrium and equipoise could be attained in human life which can extinguish all human longings and dissatisfaction and bring solace and tranquility in one ambit.

References:

1. Spinks, Lee, "Fredrick Nietzsche", Routledge Publications, London. 2003, p. 118.
2. Satre, Jean Paul. http://www.brainyquote.com/quotes/authors/j/jeanpaul_sartre.html. Accessed on 18 July 2015.
3. Jeffares, A. Norman. "A Commentary on the Collected Poems of W. B. Yeats". Palgrave Macmillan, London,1968, p. 210
4. Gascoigne, Bamber. "Books and Writers." https://widernet.org/pocketlibrary/mep/eglibrary/www.kirjasto.sci.fi/dhlawren.html. Accessed on 19 July 2021.
5. Lawrence, D. H. "D. H. Lawrence 1885-1930." https://poets.org/poet/d-h-lawrence. Accessed on 19 July 2021.
6. Lawrence, D. H. "Psychoanalysis of the Conscious and the Fantasia of the Unconscious". The Cambridge Edition of the Works of D.H. Lawrence. ed. Bruce Steele. Cambridge University Press, UK, p. 32.
7. Barry, Peter. *Beginning Theory: An Introduction to Literary and Cultural Theory.*Viva Books Private Limited, 2009,p. 93.
8. Cherry, Kendra. "The Oedipal Complex in Children. "Accessed from https://www.verywellmind.com/what-is-an-oedipal-complex-2795403. Accessed on 19 July 2021.
9. Freud, Sigmund. "Psychoanalytical Analysis of Tsotsi."https://www.studymode.com/essays/Psychoanalytical-Analysis-Of-Tsotsi-66872737.html. Accessed on 22 July 2021.
10. Lawrence, D. H. "Psychoanalysis of the Conscious and the Fantasia of the Unconscious". The Cambridge Edition of the Works of D.H. Lawrence. ed. Bruce Steele. Cambridge University Press, UK, p. 10.
11. Carlin, George. https://www.psychologytoday.com/us/blog/evolution-the-self/201802/are-you-cynical-idealist. Accessed on dated 05 July, 2021.
12. Freud, Sigmund. "Five Paradigms and their Convergences." Guilford Publications, New York, 2003, p. 25.
13. Krishnamurti, Jiddu. http://www.krishnamurtiaustralia.org/articles/unconscious%20mind.htm. Accessed on 18 July 2021.
14. Lawrence, D. H. "Psychoanalysis of the Conscious and the Fantasia of the Unconscious". The Cambridge Edition of the Works of D.H. Lawrence. ed. Bruce Steele. Cambridge University Press, UK, p. 20.
15. Tan, Amy. https://www.goodreads.com/author/quotes/5246.Amy_Tan. Accessed on dated 09 July, 2015.
16. McCullers, Carson. "Collected Stories of Carson McCullers". Mariner Books, USA, 1998, p. 253

MICROFINANCE TO PROMOTING LADY ENTREPRENEURSHIP IN INDIA: PROBLEMS AND REMEDIAL MEASURES

DR. AMIT AGRAWAL * AND DR. ABHISHEK KUMAR SINGH**

Micro finance is not a magic lamp for poverty alleviation, which should be rubbed to end poverty. Micro finance is a system of providing loans using which the poor lady/female can meet her minimum needs. Microcredit, Self Help Group (SHG), livelihood services, income generating activities and marketing of products and services are crucial factors for chartering the course from the microfinance to livelihood promotion to thousands of lady/females from marginalizes section of society. The main objective of this research is to study the relevance of self-help groups/NGOs in the field of research in the context of economic and entrepreneurship development of lady/female by micro-steady. The economic status and participation of women in the designated area will be assessed. The study highlights the main challenges and problems faced by lady/female entrepreneurs. Educational qualification, family income, loan extension, loan repayment capacity, need for self-help groups, NGOs etc. in microfinancing; The factors influencing various aspects of lady/female entrepreneurship have been analyzed. The research was conducted at the PAHAL due to the oldest practioner of microfinance in Uttarakhand. The researcher uses both original andnon-primary data to analyze the effect of microfinance. Data was derived from a questionnaire survey a sample 200 lady/female clients of PAHAL. The Researcher has used MS Excel for analysis purpose.

KEYWORDS: Entrepreneur, Income, PAHAL, Microfinance and Lady/female.

Women play an important role in strengthening the economic condition of the country. Through his representative the political system in the country becomes more sensitive. Socialism develops in the country. Lady/female entrepreneurs are constantly stirring up a positive revolution of sorts. The gender-focused Global Entrepreneurship Survey[1] states that India's rank is low in lady's entrepreneurship development and status, which shows its pathetic condition or weakness in India. Due to the difference between the urban and rural [2]Environment, there is a difference in the conditions of women entrepreneurship[3], where the discrimination on the basis of gender is clearly visible. Internationally recognized women can be counted on some fingers of India. Some women of Indian origin are making a name for themselves in the field of entrepreneurship at the international level. Entrepreneurship is considered to be the main important factor contributing to the development change of society and nation. Lady/female's empowerment means change in the status of lady/female in diverse areas of life or in all disciplines social, economic, political, cultural etc. And the decision-making of lady/female is by partnership. It determines the role lady/female play in important decisions outside their family and home. Some factors play avital role in empowering lady/female such as education, health, sanitation, ownership of assets, skills, training, technological knowledge, etc. Lady/female's empowerment is also considered as representation in politics, administration, economy, trade-commerce etc. Lady/female[8] Empowerment includes a sense of security, maternal mortality, and reduction in infant mortality, etc.

Traditionally,[4] is a systematic method of providing credit in a microscopic manner. One who needs microfinance is able to use various financial products available in the market to be risk-averse and be able to protect him from other risks. In some states of the country, the self-help group has developed a vital role in the development of micro finance institutions and has been sufficient for the development and facilities in this sector by the government, Non-Governmental Organizations (NGOs) and banking institutions during the last two decades. Work has been done. The sole purpose of all this is to provide financial facilities to the poor of the

* Assistant Professor (Commerce) Government Degree College, Raza Nagar, Rampur (U.P.)
** Assistant Professor, University of Delhi - 110019

country. The NGO has played a crucial role in micro finance sector as Self-Help Promotion Institutions (SHPI), playing the role of organizing, nurturing and linking self-help groups with banks. Capital collected from loans and savings by poor lady/female helps to convert market challenges into opportunities. Formal lending institutions lend very little money to the poor; hence micro finance is being promoted. Several studies have revealed the fact that the management and use of micro finance by lady/female has helped a lot in poverty alleviation. The study is an analysis of a micro case research of a small finance institute in Uttarakhand. Also, how this institution is helpful in capacity development of lady/female, the name of the institute is - 'PAHAL'.

PAHAL[5] is a voluntary organization established in 1988 with the objective of social welfare, environmental protection and rural development. PAHAL started Micro Finance in Uttarakhand in 1994 and has so far formed more than 500 self-help groups. The initiative is using the SHG tool of micro saving and micro financing. Since February 2007, we have started microfinance directly to SHG under the aegis of PAHAL Community Microfinance Services. & We have provided 115 micro credits to our member in collaboration with NMDFC, ICICI Bank, The Nainital Bank ltd. & SIDBI and Uttarakhand Micro Fin. Earlier we have worked on the SHG bank linkage model and have arranged over 2 crore liquidities from SBI, NA KG Bank and other banks. Pahal is a stand-alone partner and micro credit campaign USA, one of the two reputed international micro credit institutions. These groups are also being used for social mobilization. PAHAL has been awarded the Micro Finance Process Excellence Award-2005 and Micro Finance Continuous Process Excellence Award-2006.

PAHAL supported by SHG named SURABHI SHG is the best performing Uttarakhand is selected as the SHG. PAHAL has been facilitated by the Honorable Chief Minister of Uttarakhand Shri Narayan Dutt Tiwari and Bhartiya State Bank, Dehradun Region for the remarkable micro finance services to the deprived class of the Indian society. It is extremely that special achievement has been paid for income generation, and livelihood support activities in this area for the sustainable development of the deprived class of the society.

Table – 01 PAHAL Micro Finance at a glance

(Under the aegis of "PAHAL Community Micro finance Services" 2008)

Total SHGs (No) ↓	Members Of SHG ↓	Lady/female member ↓	Financed SHGs ↓	Bank Financed to SHGs (Rs) ↓
387	4292	4136	332	134 Lakh

Saving of SHGs ↓	Internal Loaning to SHG ↓	Direct loaning to SHG PAHAL Members ↓	Total Out Standing Loan Portfolio ↓	Total No of Branches ↓
Rs. 117 Lakh	Rs. 153 Lakh	Rs. 61 Lakh	Rs. 39 Lakh	7

Total No of Districts covers ↓	Total no of staff ↓	Bank/FI Loan Sanctioned to PAHAL for landing ↓	Banks/FIs Loan Disbursed to PAHAL for landing ↓	Total no of MFI/Banks Partners ↓
5 (Nainital, Udham Singh Nagar, Uttarkashi, Rampur, Moradabad)	25	Rs. 110 Lakh	75 Lakh	2 NMDFC, 4 (NMDFC, ICICI Bank, The Nainital Bank Ltd, and SIDBI

Sources: Self Survey

MEDP PROGRAM

Earlier, PAHAL has run selected rural [6]Entrepreneurship development programs to increase the capacity of unemployed youth with the support of NABARD. This year we have organized Micro Enterprise Development Program for our SHG members. NABARD Dehradun Regional Office Has approved this program and we have provided food training and embroidery skills training to 50 beneficiaries from various SHG Health and Pulse Polio Campaign / Immunization awareness.

SHG FORMATION

PAHAL NGO has promoted 387 SHG (Self Help Groups) and Credit linked 325 members in the following districts in Uttarakhand and Uttar Pradesh:

1. Semi urban of Kathgodam & Haldwani (Nainital)
2. Rural of Haldwani, Kotabagh & Jeolikote (Nainital)
3. Semi urban of Jaspur (U.S.Nagar)
4. Purala Block & Naogaon Block (Uttarkashi)
5. Rampur (slum area).

About Rs.400 lakh ((1000000$)) has been mobilized as saving, internal landing, and bank credit. These groups are being used for social Mobilization also.

REVIEW OF RESEARCH LITERATURE

A review of the research literature of a problem not only creates a general background for that topic, but also determines the direction of further research to be done. Research studies focused on self-help groups, NGOs, measure lady/female empowerment and small finance lady/female development among their various dimensions. The study reviews the economic side of self-help groups in social side.

Ashok's. Pokhriyal, Rekha Rani, Jaya Uniyal (2014) noted in their study that working lady/female contribute to the per capita income or national income of the country and maintain the sustainable livelihood of families and communities worldwide. As they face many socio-cultural perspectives, legal constraints, lack of education and personal difficulties. Traditionally, ladies have been marginalized in societies. They are rarely economically or financially independent and. They often remain the more vulnerable and shy members of society. In worldwide 70% ladies are poor. Yet they have no access facilities to credit facilities and more financial products and services. Therefore, microfinance often targets lady/female. Microfinance is an important tool to empower lady/female from poor households.

Lady/female's labor and its participation in the economy are very important. A large part of the total national product in the country is produced by lady/female. ‘Lady/female have a relentless contribution in all areas of production. Whether we talk about agriculture and rural employment or whether we do infrastructure in the metros, rural lady/female are contributing to the [7]Economic development through their blood and sweat. In Indian economy, the category of employment provided to lady/female workers is of marginal work, they get work for short periods. Without linking lady/female to the mainstream of development, economic, social and political development of a society, state and country cannot be imagined. The dream of a strong India cannot be fulfilled without empowering half the lady/female of India's total population, especially without empowering the 'rural woman'.

Lady/female's self-help groups are groups of 10 to 20 lady/female of equal stature, whose members can voluntarily obtain membership and start economic activities such as savings and credit based on principles such as mutual cooperation and unity. Micro finance means providing small loans (small loans) to very poor people for their small-scale industries or any other useful work. Over a period of time, we have realized that poorer and poorer people are not able to access traditional formal financial institutions easily and there is require to diversify into financial products, hence a lot under credit (credit, savings, insurance etc.) facilities are included. Grameen Bank of Bangladesh (Bangladesh's leading Nobel Prize micro-finance institution and its founder, Mohammad Yunus) has made a significant recognition with its contribution to micro finance globally.

Poverty is multidimensional. Micro finance helps fight many dimensions of poverty by making access to micro financial services easier. Experience shows that microfinance helps the poor to improve their economic condition, improve their industry and avoid external problems. Self-employment can create a meaningful medium in helping the poor, especially lady/female. For example, the income from industry

not only benefits the industry, but also increases the income of the family, and increasing the income of the family improves food security, education of children, etc. Furthermore, when socially lonely lady/female work with formal institutions, they also gain confidence and are empowered.

Muppavarapu Venkayya Naidu (Indian Vice President), has mentioned. Of this, 27.6 lakh are lady/female, with 13.3% of lady/female entrepreneurs working in the agricultural sector, while 5.29 million lady/female, who work more than 65% in the non-agricultural sector. The average employment in lady/female-owned enterprises is 1.67 scanty.

India is among the youngest population share countries in the whole world with a total population of more than 54 percent of people under 25 years. Our youth should become educated and fit for jobs in the twenty-first century.

Less than 5 % people working in us get formal skills training so that they can become fit and do jobs. Rural population (% of total population) in India was [8]Reported at 65.07 % in 2020, according to the World Bank collection of development indicators, due to which the number of these young people who are employed is increasing.

Microfinance aims to bring the poorest of the society up. Banks have also set up to provide capital for small jobs. Banks have also put forward their expansion plans to provide micro financial assistance from rickshaw to paan. Not only government and private but also foreign banks are growing micro loan business. Punjab National Bank, ICICI Bank, HSBC Bank and other have put their plans into action. Microfinance aims to bring the poorest of the society up. For SHGs of people are made and then they are given a loan. Professionals of the profession give loans to the borrowers by providing them professional training and prepare them to work and earn. Their work is constantly reviewed and diagnosed in case of any problem. The opportunity to work for such a means is given. For the last few years, the business of very small loans, i.e., microfinance business, has been growing at a rate of about forty percent annually. Under microfinance, jewelry, land etc. are not kept as mortgages as a guarantee of loan. In this, it is necessary to form a group of borrowers. At a time when large financial institutions were seen faltering in the world, at the common time the business of lending very small loans was increasing rapidly. Small loans can be worth a thousand rupees, it can be of five thousand rupees. Their repayment can be weekly or monthly. Under microfinance, banks give small amounts of loans to those who start their jobs with less capital. This type of loan does not involve much paperwork. This loan is given to rickshaws, vegetable people, small shopkeepers etc. and the amount is withdrawn from them in installments. These installments can be daily or monthly. In most cases banks run such schemes through NGOs. There are about five crore five lakh borrowers in the microfinance sector, but the defaulters are negligible. The mainstream financial sector was not yet eyeing the borrowers for running a small tea shop from a street vendor. But its success in Bangladesh turned the eyes of the world towards this. Faced with the entire crisis, those banks proved to be more efficient, which have given large amount to the microfinance sector. Actually, very small loan lenders do not default because their existence depends on it. They say that the debt behavior of people living in extreme poverty is special.

There are two models in this business - one is microfinance institutions and the other self-help groups. Microfinance institutions raise money from all kinds of sources. They also bring it from banks and forward it to people from low-income group. The loan is usually given to the group. The group further gives its members. A nexus of NGOs, governments and banks also provides small loans. Apart from these, independent and specialist microfinance institutions also provide loans directly. Microfinance institutions claim to advance the agenda of financial inclusion by lending to mainstream financial institutions from which the poor do not get loans. Self-help groups also bring money from banks, microfinance institutions. Apart from this, self-help groups also have their own savings, which are useful for further lending. The interest of banks has increased in this business. Apart from lower default rates, there is immense potential in this business. The number of poor is much higher than the rich. In a country where a population of 36 Crores is settling on twenty-thirty rupees per day, there will surely be a huge number of small borrowers. This model is assisted by the NABARD (National Bank for Agricultural and Rural Development).

Why is microfinance successful? Actually, where legal technical bail fails, there is social pressure. Since loans in microfinance are given to the group, the group is further passed on to the members; hence the

responsibility lies with the group. The borrowing members of the group do not dare to leave the alien group. He is not afraid of microfinance instead of traditional banking, but is afraid of the society in which he lives. So, banks should learn from microfinance business that not every client is treated equally. The second fact is that even the poor and uneducated man now understands financial issues very well. Only then, successful microfinance in South India is now giving better results in the states of North India. The third thing is that the financial needs are different for every region, so the methods for the same will be out there accordingly. Here banks have to understand things from below and bring them up. However, microfinance will succeed only when there is an emphasis on skill development.

METHODOLOGY

Study Hypotheses

The study hypotheses for research are as follows -

Among the various aspects of NGO, self-help groups focused on 'Lady/female Empowerment' and Small Finance will develop the spirit of lady/female development and the scope of information towards the lady/female development and welfare schemes run by the government will increase.

STUDY AREA

5 districts have been selected under the research title "*Study of the microfinance to promoting lady/female entrepreneurship in India: Problems and remedial measures*".

Research Methodology

Research Title: Study of the microfinance to promoting lady/female entrepreneurship in India: Problems and remedial measures, An Analytical Study of Role in Economic and Social Strengthening (Empowerment) of [9]Rural Lady/female, Member of Lady/female Self-Help Groups. The basis of selection of 08-08 lady/female self-help groups selected in 5 districts by daily pattern is their geographical area. 5–5 members of each group i.e., 200 members from each district have been selected for study. Under Economic Empowerment, primary scores have been collected on savings made by member groups, loan amount, source of loan, utilization of loan, repayment of loans, employment, involvement in economic activities, income and expenditure points. Similarly, in 5 districts, data related to awareness of government schemes related to social participation and lady/female development under lady/female empowerment has been collected primarily. Primary contacts have been collected by making personal contact through 'Schedule'. The collected data has been classified and tabulated according to the objective. The secondary score is taken from the published 'District Statistics Handbook-2018' and other published information.

RESULTS AND DISCUSSION

Objectives of the study

To what extent are NGOs, micro finance, lady/female self-help groups under the empowerment of lady/female? The major objectives of the research work are set out as follows-

1) To analyze the economic status, social trends of lady/female in the study area.
2) To find out the status of lady/female self-help groups in the study area and to evaluate the participation of lady/female in economic activities.
3) To know the economic strengthening of member lady/female by NGO, micro finance, lady/female self-help groups in the study area.
4) To find out the effects of awareness and social strengthening of lady/female members through NGO, micro finance, lady/female self-help groups in the study area.
5) To explore the problems of NGO, micro finance, lady/female self-help groups in the study area.

Findings and Discussion

1) Through NGO and self-help group movements, lady/female also developed leadership qualities, which enabled them to bring out the talk of the group. The best example of lady/female empowerment is that these lady/females started questioning their officers.
2) Lady/female who were uneducated and ignorant at one time, after joining self-help group, have become aware of their employment, self-employment and small finance family planning. NGOs have become more sensitive to the mission and to other economic social issues. Some members of the study were of the opinion that the training system is not good. Some believed that market facilities are not satisfactory; as a result, they are having difficulty selling their products.

3) She became aware of her power due to interference of NGO and government programs etc. The 'austerity' on which the self-help group is based inspired its members to save some of their income.

The main findings of this research study are the following:

Barriers in development of lady/female empowerment through NGO/SHG: Conflicts between work and domestic commitments also prevent lady/female's family obligations to become successful. "While entrepreneurship in under-developing, developing, developed country being the primary responsibility for children, households and older dependent family members, some lady/female can devote all their time and energy to their occupation" (Starcher, 1996). Although lady/female self-help groups are doing a great job, in the Indian perspective, lady/female face more difficulties than men in organizing themselves as groups and developing an enterprise such as-

(A) ***Limitations on the mobility of lady/female*** - Due to the male dominated society in India, the life of lady/female is often limited in the walls of the house. Therefore, in the event of being organized as self-help groups outside the home, they face many social constraints. Likewise, where men can work delay into the late night, the working hours for lady/female are limited due to many reasons. Even when lady/female are organized as groups, they need bankers, non-governmental organizations, to pursue their enterprise one has to interact with intermediaries etc. for their products wherein boundaries are often put by family members.

(B) ***Social sanctions*** - Lady/female self-help groups have to seek men's help to promote the products of their enterprise and to take them to the cities. As a result, despite working in groups, lady/female are unable to fully believe in themselves and begin to consider dependence on men as the reality of their lives.

(C) ***Negative attitude of bankers*** - When lady/female as members of self-help groups approach banks for loans etc., their curiosity and doubts are high due to lack of prior experience but positive towards this situation from bankers and sympathetic behavior is not done which reduces the morale of the female groups. Traditionally, only male customers in banks have more numbers. What happens in India and lady/female have been deprived of banking services in a way.

(D) ***Administrative Constraints*** - Lady/female groups face many hurdles due to complexities, corruption, bribery, administrative stereotypes, malevolent mentality etc. in contacting government institutions. Due to which the lady/female groups are not able to take advantage of many incentive schemes being run by the government for self-help groups or they have to face more challenges.

(Macro finance) (% of respondent acceptance)

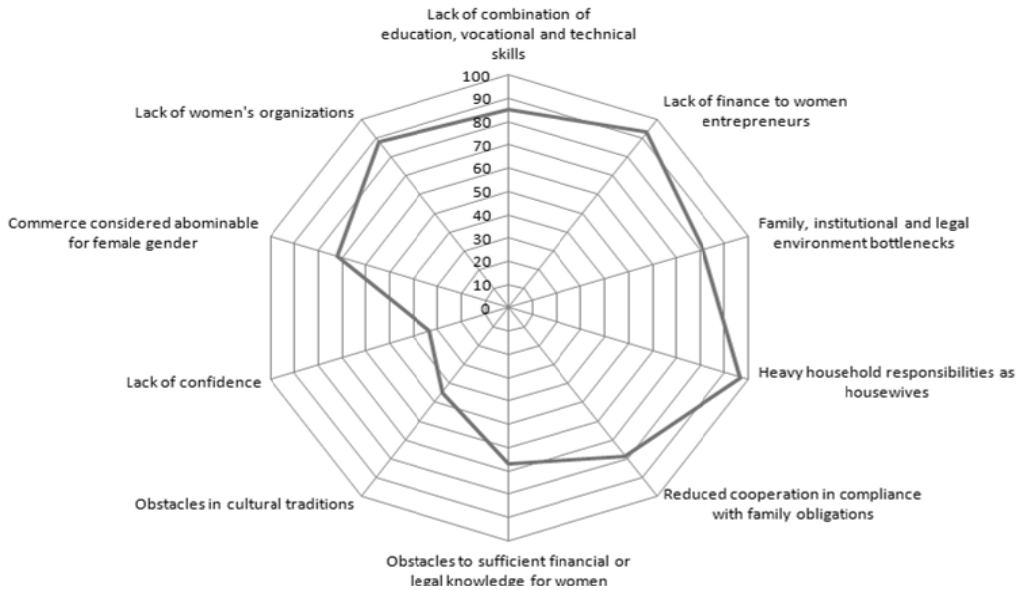

Fig.-01 Barriers to the development of lady/female empowerment through NGOs/SHG

Sources: Self Survey

Educational Qualification (E.Q.) of Lady/female Respondents

(% of E.Q. on lady/female respondents)

Table - 02

	Nainital	U.S.Nagar	Uttarkashi	Moradabad	Rampur	Total
No Formal Education	12.50 %	15.00 %	15.00 %	10.00 %	07.50 %	12.00%
Primary School	17.50 %	22.50 %	12.50 %	32.50 %	42.50 %	25.50%
High School	22.50 %	25.00 %	20.00 %	27.50 %	30.00 %	25.00%
Intermediate	17.50 %	15.00 %	22.50 %	15.00 %	10.00 %	16.00%
Bachelor Degree	15.00 %	10.00 %	20.00 %	07.50 %	05.00 %	11.50%
Master's Degree	07.50 %	05.00 %	05.00 %	02.50 %	02.50 %	04.50%
Diploma Holder	07.50 %	07.50 %	05.00 %	05.00 %	02.50 %	05.50%
Total Respondents	40	40	40	40	40	200

Sources: Self Survey

On the base of Table - 02 analysis, 12.00% of the microfinance beneficiary's entrepreneurs have no formal education, 25.50 % are educated till primary school, 05.50 % are diploma holders, 25.00% are High School, 16.00% are Intermediate 11.50 % have a Graduate degree and 4.50 % have masters' degree.

House Hold Income and The Amount of Loan Applied by The Surveyed Respondents

Table - 03

Income range of the family	Frequency	%	Loan range of the family	Frequency	%
Below Rs. 50000	38	19	less than Rs 10,000	23	11.50
Rs.50001 to Rs.100000	74	37	Rs.10,001 to Rs 20,000	44	22.00
Rs.100001 to Rs. 200000	64	32	Rs.20,001 to Rs.30,000	72	36.00
Rs. 200001 to Rs. 300000	18	09	Rs.30,001 to Rs.40,000	47	23.50
Rs. 300001 and above	06	03	Rs. 40001 and above	14	07.00

Sources: Self Survey

On the base of Table - 03 analyses, 19 % have income below Rs.50000 per annum. 37 % have income between Rs.50001 to 100000; 32 % have income between Rs.1,00,001 to Rs. 2,00,000, 09% have income ranging between Rs.2,00,001 to 3,00,000 and 3 % of the female respondents have income above Rs.3,00,001 on annual basis. 11.50 % have applied for a loan of Rs. less than Rs.10000 22.00 % applied for a loan amount between Rs.10001 and 20,000. 36.00 % wanted to avail a loan amount of Rs.20,001 to Rs.30,000 and 23.50 % applied for a loan of Rs.30,001 to Rs.40,000 and 14.00 % applied for a loan of Rs.40,001 and above.

The loan repayment capacity of the lady/female entrepreneurs depends upon a number of factors. Based on literature reviewed, 10 factors have been analyzed and identified as shown in table 4 below.

Repayment Capacity

Table - 04

Factors	%	Factors	%
Knowledge of the Market	19	Financial Knowledge	11
Training/Skill development	13	Support from Family	05
Group members support	06	Working Attitude	14
Education Qualification	09	Communication Skills	17
Area of Working (Rural/Urban)	02	Health	04

On the base of Table - 04 analyses, the majority (19%) of respondents have expressed that the knowledge of markets is very important and determines one's loan repayment ability. Communication Skills is opted as second reason by 17% of the respondents. Training and skill development is opted as another reason by 13% of the respondents. 05 % feel support from family and 06 % Group members support is most important and their loan repayment capacity depends on the same. 11% of respondents have expressed that financial knowledge determines their loan repayment capacity.

TOP 15 POINT THE NEEDS OF NGOS, SHGS, AND MICRO FINANCE (INCLUDING INSTITUTIONS)

The objective of the Small Finance Institutions is to provide loans to start small enterprises associated with various agricultural or non-agricultural activities undertaken by the poor in rural suburban and urban areas. These institutions provide loans and financial services etc. to the poor to enable them to improve their standard of income and living. The needs and objectives of NGOs, self-help groups, and micro finance (including institutions) are as follows:

1. To create economic activities based on available natural available resources and market structures.
2. Eradication of poverty to make poor self-reliant
3. To induce self-employment and to create self-employment slogans
4. Raising income and standard of living
5. Preventing migration of rural people to the cities
6. To provide timely credit and credit facility
7. Aggregation of resources available in rural areas by promoting them
8. Use of resources available for collective benefit / individual interest.
9. To increase mutual support among group members.
10. Reducing the cost of small finance.
11. Extending services in villages.
12. Various objectives of the government are fulfilled so that the government schemes implemented should be monitored.
13. Seth's moneylenders free from the net and bring them within the scope of institutional banking facilities
14. Creating a financial plan to create economic activities on the foundation basis of market structures
15. Making poor people self-motivated by encouraging them to saving.

TOP 15 FACTORS INFLUENCING THE ASPECT OF LADY/FEMALE EMPOWERMENT BY NGOS, MICRO FINANCE INSTITUTIONS AND SELF-HELP GROUPS:

1. Female uplift
2. Physical Elements
3. Social elements
4. Economic elements
5. Institutional Elements
6. Result of lady/female participation
7. Increase in Household Income (Micro Finance)

8. Food Safety
9. Poverty prevention
10. Lady/female participation (including political participation)
11. Participation in decision making process
12. Participation in micro finance planning and policy implementation
13. Productive activities training
14. Autonomy, independence, self-reliance, self-employment
15. Psychological Development.

Conclusion

Today India occupies a paramount position in the field of self-help groups run by lady/female around the world, but the political, social, cultural, economic and administrative circumstances of our country pose many challenges in the mobility, feasibility and feasibility of lady/female groups. Lady/female organizations, NGOs, non-government organizations, government agencies, etc. are working to reduce these challenges. As a finding or result, the activism of lady/female groups and participation in [10]Socio-economic life and empowerment of lady/female are taking place in real ways. The entry of basic banking services is required for inclusive growth and NGOs will certainly help in this direction through micro financing activities within the constraints of commercial banks for operations in rural areas. Pahal NGOs provide micro loans to low-income people and rural people living in remote areas. Pahal NGOs provide loans to rural areas in innovative ways from their loan funds. Pahal NGO provides credit to the members at the lowest cost by developing credit and savings products and implementing them in a profitable manner as compared to the bank. Pahal creates loan corpus in its own right for lending to its members. Take loans from financial markets for lending. SHGs, where most groups are linked with the help of non-governmental organizations that provide financial services and specialized training, are more likely to positively affect female empowerment. If lady/female's empowerment is to be pursued as a serious objective by SHG programs in particular and the larger micro-assonance community in general, there is a require to emphasize greater and more [11]sustainable empowerment on training, education and awareness generation.

SCOPE FOR FUTURE STUDY

The study is conducted on a small sample of 200 respondents collected in the Nainital, Udham Singh Nagar and Uttarkashi district of Uttarakhand and Moradabad and Rampur district of Uttar Pradesh. The findings are founded on the responses of the sampled respondents. The role of NGOs, Self Help Group and micro finance is not highlighted as the response is collected directly from the [12]beneficiaries. The opinions of female respondents are subject to prevailing conditions which may be varying from any time. The finding of the research where data is self-collected is based on people's response at face value. The different challenges identified can provide vital inputs to decision makers. This study can be replicated with a larger sample size in a different geographic region including same or other variables.

REFERENCE

1. https://www.gemconsortium.org/file/open?fileId=50405.
2. https://www.facebook.com/pahalkathgodam/
3. Yunus, M. and Jolis, A., (1998). Banker to the poor: the autobiography of Muhammad Yunus. Aurum.
4. Arya, Kian., Ansari, M.A. (2016) Micro Enterprise: Way for development rural women entrepreneurship in Uttarakhand (India).International Journal of Applied and Pure Science and Agriculture, Vol II, Issue 5.
5. Campion, Anita and Sahra Helpern (2001): Automating Microfinance, Occasional Paper No.5, Microfinance Network, Washington, DC.
6. Delhi-Harris, Sam, (2002): State of the Microcredit Summit Campaign Report, http://www.microcreditsummit.org/pubs/reports/soc r / 2002 / socr02_en.pdf.
7. Fouillet C. and Augsburg B. (2007). "Spread of the Self-Help Groups Banking Linkage Programme in India", International Conference on Rural Finance Research: Moving Results, held by FAO and IFAD, Rome, March 19-21
8. Freedom from hunger, (2003): Web site information: http://www.ffhtechnical.org
9. Owens, John and Anita Campion, (2003): MABS: A Sustainable Approach to Rural Finance, Micro Banking Bulletin, Issue Number 7, Washington, DC.
10. Schumpeter, J.A. (1934) The Theory of Economic Development. Cambridge, Mass.: Harvard UniversityPress.
11. Shah, H. (2013). Creating an Enabling Environment for women's Entrepreneurship in India (Development Papers, 1304). United Nations Economic and Social Commission for Asia and the Pacific,
12. Sharma, Priyanka (2013). Women Entrepreneurship Development in India, Global Journal of Management and Business studies, Vol III, Issue 4.

SCHOLARS' PERCEPTION TOWARDS OPEN ACCESS RESOURCES: A SURVEY

DR. P. S. RAJPUT*

Today in 21st century, the free flow of scholarly contents and information is one of the basic principles to bridge the knowledge gaps between privileged and under privileged society. The Open Access (OA) initiatives are emerged as a revolutionary movement that promotes free access to scholarly publications over the Internet. It removes the price and permission barriers and ensures the widest possible dissemination of open access resources and digital research outputs.[1] The OA movement in academic libraries has gained momentum nowadays.[2] The developed countries initiated Open Access and marked three remarkable declarations known as Budapest Open Access Initiative (BOAI) in 2002, Bethesda statement in June 2003 (www.earlham.edu/~peters/fos/bethesda.htm)[3], and the Berlin declaration in October 2003 and since then the issue is spreading through the world and many developing countries including India have joined the effort.[4] The Budapest Open Access (2002)[5] Initiative defines open access as "free availability on the internet, permitting users to read, download, copy, distribute, print, search, or link to the full texts of these articles, crawl them for indexing, pass them as data to software, or use them for any other lawful purpose, without financial, legal or technical barriers other than those inseparable from gaining access to the internet itself."

Open access publishing is a free online access of available scholarly communication that can be defined as open domain, meaning publicly supported research information, and open access, so that it is copyrighted to be freely available scholarly material.[6] Peter Suber defines Open Access as "Open access to scientific articles means online access without charge to readers or libraries. Committing to open access means dispensing with the financial, technical and legal barriers that are designed to limit access to scientific research articles to paying customers.[7] Bjork (2004)[8] defines OA as that a reader of a scientific publication can read it over the internet, print it out and even further distribute it for non-commercial purposes without any payments or restrictions. **Open Access means that electronic scholarly articles are available freely at the point of use.[9]** Open Access (OA) is an innovative form of scholarly communication within the digital environment aimed at achievement of universal access to information and knowledge.[10]

Hence the open access resources are freely available online digital contents, scholarly communications, research journals, research findings and research output, which researchers publish without any personal financial interest

LITERATURE SURVEY

The available literature on various aspects of open access resources was investigated to determine the main contours of what has been written on the subject. Some of the authentic literature includes the study carried out by Shajitha and Abdul Majeed (2019)[11] where they discussed the content recruitment nature of faculty members in an institutional repository (IR). In order to carry out the study, a voluntary survey was conducted among faculty members. They showed high awareness and satisfaction about IR, and the highly significant relationship was observed between awareness and satisfaction. The next study referred was by Bala and et.al. (2018)[12] they portrayed the awareness of Open Access Resources among the Researchers of Punjab Agricultural University, Ludhiana. It has been discovered that these examination articles, postulations and digital books are broadly utilized open access assets for course and research work. Preparing and online instructional exercises can be useful in defeating the issues looked by the analysts in utilizing OAR's. This study also unveiled that 86.75% of the researchers were aware of citing the used information from the open access resources. Ashraf and Haneefa (2017)[13] studied the scholarly use of open access resources by research scholars in University of

* Assistant Professor & In-Charge Head, Deptt. of Library & Information Science, Mohanlal Sukhadia University, Udaipur, Rajasthan.

Calicut. It has been found that research scholars are apprised of open access scholarly communication. Research scholar's prevalent with open access search engines and ETD'S, and also majority of them prefer Google scholar and Shodhganga. For research purpose open access is considered as the main platform. It also has been found that lack of guidance, support and lack of awareness is found as the main hurtle in use of open access resources. Sivakumaran (2016)[14] conducted a study on awareness of open access resources among LIS professions. He concluded that various tools are helpful to create awareness on open access resources among the librarians working in engineering, education, arts and science institutions in Tamil Nadu. The study has revealed that the respondents are apprised of DOAJ, NPTEL, J-Gate, Journals published by the Indian academy of sciences and also it has been evaluated that LIS professionals were also certified with features available in the open access resources. Kassahun and Nsala (2015)[15], observed that library users, especially students do not use the open access resources that are available. This research seeks the familiarity of librarians with the resources and the usage of these as reference sources.

OBJECTIVES OF THE STUDY

The objectives of the study are:

1. To recognize the faculty wise scholars using open access resources.
2. To know the use of open access resources like Institutional repositories, theses and dissertations, Courseware and Databases.
3. To identify the overall use of the open access resources by the scholars.
4. To explore the maximum utilized open access resources by the scholars of Mohanlal Sukhadia University.

HYPOTHESIS

Following are the hypotheses to be tested to verify the study.

H_{01}: There is no significant difference between faculties with regard to their use of institutional repositories.

H_{02}: There is no significant difference between faculties with regard to their use of theses and dissertations.

H_{03}: There is no significant difference between respondents with regard to their use of databases.

METHODOLOGY ADOPTED

To collect the data a well-structure questionnaire was designed and distributed among the research scholars of three faculties i.e. Faculty of Sciences, Faculty of Social Sciences and Faculty of Management, Mohanlal Sukhadia University, Udaipur, Rajasthan. 500 questionnaires were distributed and 469 duly filled questionnaires were received. Thus the percentage of response is 93.8%. The data from the questionnaires was analyzed and interpreted using SPSS version 21.

ANALYSIS AND INTERPRETATION OF DATA

Table 1: General Information

Gender	No. of Respondents	Percentage
Male	301	64.17
Female	168	35.82
Total	**469**	**100.00**

Table 1 shows that 64.17% are male respondents and 35.82% are female respondents under three faculties.

Table 2: Faculty-wise Categories of the Respondents

Faculties	No. of Respondents N=469)	Percentage
Faculty of Sciences	163	34.75
Faculty of Social Sciences	155	33.04
Faculty of Management	151	32.19

Table 2 shows that 34.75% of the respondents are from faculty of sciences, 33.04% faculty of social sciences and 32.19% from faculty of management.

Table 3: Use of Open Access Resources by the Respondents

Open Access Journals	No. of Respondents N=469)	Percentage
Not used	55	11.72
Rarely used	116	24.73
Moderately used	108	23.02
Highly used	190	40.51
Institutional Repositories		
Not used	08	1.70
Rarely used	67	14.28
Moderately used	194	41.36
Highly used	200	42.64
Theses and Dissertations		
Not used	02	0.42
Rarely used	32	6.82
Moderately used	167	35.60
Highly used	268	57.14
Courseware		
Not used	102	21.74
Rarely used	130	27.71
Moderately used	121	25.79
Highly used	116	24.73
Open Access Databases		
Not used	17	3.62
Rarely used	26	5.54
Moderately used	207	44.13
Highly used	219	46.69
Overall use of Open Access Resources		
Not used	35	7.46
Rarely used	147	31.34
Moderately used	138	29.42
Highly used	149	31.76

Table 3 reveals the perception regarding the use of open access resources available online on Internet free of cost. In open access journals 40.51% of the respondents use open access journals highly. Majority of 24.73% respondents use rarely, 23.02% moderately and 11.72% do not use. In institutional repositories, 42.64% of the respondents highly use these resources and 41.36% use moderately. Only 1.70% of the respondents do not use institutional repositories. In the theses and dissertation open access resources 57.14% use highly, 35.60% moderately and 6.82% use rarely. Under courseware 27.71% of the respondents use rarely, similarly 25.79% use moderately. Near about half of the respondents i.e. 46.69% prefer open access databases highly and 44.13% moderately. In the overall use of open access resources 31.76% of the respondents highly use and 7.46% do not access these resources.

TESTING OF HYPOTHESIS

$H_{01:}$ *There is no significant difference between faculties with regard to their use of institutional repositories.*

ANOVA					
Faculty	**Sum of Squares**	**df**	**Mean Square**	**F**	**Sig.**
Between Groups	5.387	3	1.796	2.708	.045
Within Groups	308.306	465	.663		
Total	**313.693**	**468**			

As per above table calculated significant value is 0.045 at 95% level of confidence which is lower than p-value i.e. 0.05 which is strong evidence to reject null hypothesis. It is found that there is a significant difference between faculties with regard to their use of institutional repositories open access resources.

$H_{02:}$ There is no significant difference between faculties with regard to their use of theses and dissertations.

ANOVA					
Faculty	**Sum of Squares**	**df**	**Mean Square**	**F**	**Sig.**
Between Groups	2.792	3	.931	1.392	.245
Within Groups	310.901	465	.669		
Total	**313.693**	**468**			

The above table depicts that calculated significant value is 0.245 at 95% level of confidence which is higher than p-value i.e. 0.05 which is strong evidence to accept null hypothesis. It can be concluded that the above hypothesis has been proved.

$H_{03:}$ There is no significant difference between respondents with regard to their use of databases.

ANOVA					
Faculty	**Sum of Squares**	**df**	**Mean Square**	**F**	**Sig.**
Between Groups	2.279	3	.760	1.134	.335
Within Groups	311.414	465	.670		
Total	**313.693**	**468**			

It is seen in the table that calculated significant value is 0.335 at 95% level of confidence which is higher than p-value i.e. 0.05 which is strong evidence to accept null hypothesis. Therefore, it can be concluded that there is a significant no difference between faculties with regard to their use of databases.

MAJOR FINDINGS

- Maximum respondents are males 301 (64.17%).
- Majority of the respondents are from faculty of sciences i.e. 163 (34.75%).
- Most of the respondents use open access resources highly.
- 40.51% of the respondents use open access journals highly and one fourth of the respondents use them moderately.
- 42.64% of the respondents use institutional repositories highly and 41.36% moderately.
- More than half i.e. 57.14% use theses and dissertations open access resources highly, 35.60% moderately and 6.82% use rarely.

- Near about half of the respondents (46.69%) prefer open access databases.
- Majority of 34.11% respondents use the overall open access resources highly and 7.46% of respondents do not access these resources.

CONCLUSION

The present study depicts scholars' perception towards open access resources in Mohanlal Sukhadia University, Udaipur, Rajasthan, India. No doubt open access resources are very popular among the research scholars and they are quite aware in utilizing such free available resources. Therefore the study recommends that the libraries of Mohanlal Sukhadia University should organize orientations and short time training on open access resources to enhance users awareness and update their knowledge of open access resources.

Such types of programs will promote and increase the accessibility and usage of open access resources. Based on the good results of accessibility of open access resources it is also recommended that University administration should promote awareness about open access resources and improve information literacy skills of faculty through workshops, invited lectures, meetings and conferences for more utility.

REFERENCES

1. Keisham, Sangeeta and Sophiarani, Soubam (2008). Open Access Journal and Open Access Initiatives In India. *6th Convention PLANNER,* 205-2016.
2. Sarah Potvin. (2013). The Principle and the Pragmatist: On Conflict and Coalescence for Librarian Engagement with Open Access Initiatives. *Journal of Academic Librarianship*, 39(1), 67-75.
3. Bethesda Statement (2003). Open Access Publishing. Available at www.earlham.edu/~peters/fos/bethesda.htm (Accessed March 11, 2020)
4. Bist, Rajender Singh and Mohanty, V Patnaik (2006). Open Access Movement and Open Access Initiatives in India. *4th Convention PLANNER,* 236-246.
5. Budapest Statement (2002). BOAI15: The Budapest Open Access Initiative. Available at https://www.budapestopenaccessinitiative.org/boai15-1(Accessed February 10, 2020)
6. Rajashekar, T.B. Open-Access Initiatives in India. National Centre for Science Information, India. 154-157. Available at http://eprints.iisc.ac.in/2502/1/154-157.pdf (Accessed February 10, 2020)
7. Suber, Peter. (2002). Open access to the scientific journal literature. *Journal of Biology,* 1(1),1-3. Available at http://jbiol.com/content/pdf/1475-4924-1-3.pdf (Accessed March 15, 2020)
8. Bjork, Christopher (2004). Open Access To Scientific Publications: An Analysis of The Barriers to Change. Available at http://informationr.net/ir/9-2/paper/70.html (Accessed February 10, 2020)
9. Jeffery, Kieth (2004). Open Access: An Introduction. Available at https://www.ercim.eu/publication/Ercim_News/enw64/jeffery.html (Aaccessed February 16, 2020)
10. Uddin, Md. Nazim, Koehlmoos, Tracey, Lynn Pérez, and Hossain, Shaikh A Shahed. (2014). Bangladesh: An Overview of Open Access (OA) Initiatives. *Library Philosophy and Practice (e-journal),* 1101.
11. Shajitha, C and Abdul Majeed K.C. (2019). Faculty Perceptions towards Institutional Repository at Cochin University of Science and Technology, India: A Case Study. *DESIDOC Journal of Library & Information Technology*, 39(5), 207-214.
12. Bala, Suniti e.tal. (2018). Awareness of Open Access Resources among the Researchers of Punjab Agricultural University, Ludhiana. *International Journal of Library Information Network and Knowledge,* 3(1), 139-145.
13. Ashraf and Haneefa, Mohamed (2017). Scholarly Use of Open Access Resources by Research Scholars in University of Calicut. *National Conference on Digital Libraries, Library Automation and Open Courseware,* 237-249.
14. Sivakumaran, K. S. (2016). Awareness of Open Access Resources (OAR) Among LIS Professionals: A Comparative Study. *New Library World*, *116*(1/2), 94-103.
15. Kassahun, Kelemwork and Nsala, Chatiwa (2015). The Awareness of Academic Librarians towards Open Access Resources to Support Reference Services: A Case of Private Institutions of Higher Learning in Gaborone, Botswana. *Satellite Meeting: Reference and Information Services, IFLA-WLIC*, 1-12.

●

DR. AMBEDKAR'S VIEWS ON RELIGIOUS EDUCATION

DR. PRAMOD KUMAR * AND DR. O. P. SONI**

Many educational philsophers have not expressed their views on religion because it may hurt religious feelings of others. This may create a trouble for them also. But, Ambedkar acted to the contrary and the result was that he became one of the most controversial figures in Hindu society. He had to face criticism but he did not mind it. He said, "My philosophy has a mission. I have to do the work of conversion: for, I have to make the followers of triguna theory to give it up and accept mine. Indians today are governed by two different ideologies. Their political ideal set out in the preamble to the constitution affirms a life of liberty, equality and fraternity. Their social ideal embodied in their religion denies them.''[1] Ambedkar did not believe in the existence of God or prophets. He was a social philosopher and wanted to reform Indian society so that it may be based on the principles of liberty, equality and fraternity, but he did not borrow these principles from French Revolution. He said, "Let no one, however, say that I have borrowed my philosophy from the French Revolution. I have not. My philosophy has roots in religion and not in political science. I have derived them from the teachings of my master, the Buddha. In his philosophy, liberty and equality had a place : but he added that unlimited liberty destroyed equality and absolute equality left no room for liberty. In his philosophy, law had a place only as a safeguard against the breaches of liberty and equality, but he did not believe that law can be a guarantee for breaches of liberty or equality. He gave the highest place to fraternity as the only real safeguard against the denial of liberty or equality or fraternity which was another name for brotherhood or humanity, which was again another name for religion."[2]

Ambedkar's Philosophy of Religion :-

Ambedkar believed that material comfort was not a solution for all human ills. Religion to him was the driving force for human activities. He has emphasized the importance of religion in the following words – "Some people think that religion is not essential to society. I do not hold this view. I consider the foundations of religion to be essential to life and practices of society."[3] Religions have their creed, church has code of conduct. They have some sacred books. Their principles are thought to be unquestionable and beyond man's understanding. They enslaved man. Ambedkar opposed this type of religious salvary and was of the opinion that salvery is an antithesis of a religious society. To him, religion was for the service of man and not vice-virsa. He said, "The religion which descriminates between two followers is partial and the religion which treats crores of its adherents worse than dogs and criminals and inflicts upon them insufferable disabilities is no religion at all. Religion is not the appellation for such an unjust order."[4] Thus, Ambedkar linked religion with the good life and social well-being of the people. Realizing the importance of religion, he said, "Religion as a social force cannot be ignored." Religion has been aptly described by Herbert Spencer as, ''the weft which everywhere crosses the warp of history. This is true of every society."[5]

Ambedkar regarded philosophy of religion as a normative and a descriptive study. He does not think that there can be such a thing as a general philosophy of religion. According to him, "To me there is no philosophy of religion. There is a philosophy of a religion."[6] He has defined religion as, "The propounding of an ideal scheme of divine governnance the aim and object of which is to make the social order in which men live a moral order."[7] Ambedkar differs from the traditional thesis of religion namely, (1) The existence of God, (2) God's providential government of the universe and (3) God's moral government of mankind. In Ambedkar's opinion the religion of a savage society differs from that of the modern society in the following ways :–

1. In the religion of a savage society there is no trace of the idea of God. In a civilized society God comes in as a scheme of religion.

* Assistant Professor, Kisan P.G. Coolege, Bahraich.
** Associate Professor, Kisan P.G. Coolege, Bahraich.

2. In the religiion of a savage society there is no bond between morality and religion. In a civilized society morality becomes sancitified by religion. Ambedkar has propounded a theory of religious revolution according to which religions of savage and civilized societies differ. This was the first theory of its kind in religious revolution. In the second stage of revolution, religion was more powerful and divided the religion of antique society from that of the modern society due to the differences in the conception regarding the relations between God, society and man.

According to him, the first point of difference relates to the composition of the society, "In ancient society men and their gods formed a social and political as well as a religious whole. Religion was founded on kinship between the God and his worshippers. Modern society has eliminated God from its composition. It consists of men only."[8]

The second point of difference between antique and modern society relates to the bond between God and society, "The God of the antique society was an exclusive God. God was owned by and bound to one singly community."[9] But modern society conceives that there could be universal God, the God of all: "Antique society never could conceive that there was any such thing as humanity in general."[10]

The third point of difference between the ancient and the modern society is regarding their concepts about the fatherhood of God. According to Ambedkar, "In the antique society God was the father of his people but the basis of this conception of fatherhood was deemed to be physical."[11] He further said, "In modern society the idea of divine fatherhood has become entirely dissociated from the physical basis of natural farhterhood. In its place man is conceived to be created in the image of God, he is not deemed to be be gotten by God."[12] This difference in the conception of God in the modern society made it possible for God to be conceived of as a source of absolute good and absolute virtue.

The fourth point of difference, according to Ambedkar relates to the part played by religion when a change of nationality takes place. "In the antique world there could be no change of nationality unless it was acompanied by a change of Religion. In modern society abandonment of religion or acceptance of another is not necessary for social fusion."[13]

The fifth point of difference, according to Ambedkar relates to the necessity of knowledge as to the nature of God as part of religion. "From the antique point of view, indeed the question what the God's are in themselves is not a religious but a speculative one, what is requisite to religion is a practical acquaintance with the rules on which the deity acts and on which he expects his worshippers to frame their conduct – what in 2 kings XVII. 26 is called the "manner" or rather the "customary law" (misphat) of the God of the land. This is true even of the religion of Israel. When the prophets speak of the knowledge of the laws and principles of his government in Israel, and a summary expression for religion as a whole is 'the knowledge and fear of Jehovah,' i.e. the knowledge of what Jehovah prescribes, combined with a reverent obedience. An extreme scepticism towards all religious speculation is recommended in the *Book of Ecclesiastes* as the proper attitude of piety, for no amount of discussion can carry a man beyond the plain rule to 'fear God and keep his commandments.' This counsel the author puts into the mouth of Solomon, and so represents it, not unjustly, as summing up the old view of religion, which in more modern days had unfortunately begun to be undermined."[14]

The sixth point of difference relates to the place of belief in religion. In ancient society : "Ritual and practical usages were, strictly speaking, the sum total of ancient religions. Religion in primitive times was not a system of belief with practical applications, it was a body of fixed traditional practices, to which every member of society conformed as a matter of courage. Men would not be men if they agreed to do certain things without having a reason for their action, but in ancient religion the reason was not first formulated as a doctrine and then expressed in practice, but conversely, practice preceded doctrinal theory. Men form general rule of conduct before they begin to express general principles in words."[15]

The seventh point of difference relates to the place of individual conviction in religion: "To us moderns religion is above all a matter of individual conviction and reasoned belief, but to the ancients it was a part of the citizen's public life, reduced to fixed forms, which he was not bound to understand and was not at liberty to criticise or to neglect. Religious non-conformity was an offence against the state, for if sacred tradition was tampered with the bases of society were undermined, and the favour of the Gods was

forfeited. But so long as the prescribed forms were duly observed, a man was recognised as truly pious, and no one asked how his religion was rooted in his heart or affected his reason. Like political duty, of which indeed it was a part, religion was entirely comprehended in the observance of certain fixed rules of outward conduct."[16]

The last point of difference, according to Ambedkar pertains to the relation of God to society and man, of society to man in the matter of God's providence. The faith of ancient world desired of God's blessing the earthly life, not spritual but carnal things. The second characteristic of ancient world was that religion was the affair of the community. God was not concerned with the welfare of every individual. He was free to help man in his civic life but would not help him in matters that were against the interest of the community as a whole. God in ancient world society was not conecrned with the individual's welfare and God was bound to the society. The benefits expected of God were of a public character. The misery of man was considered as a proof of wrong deeds. God was also not concerned with the conflict between individuals and between a society and an individual. Ambedkar further observes, "man in the antique world did not call upon his maker to be righteous to him."[17] Ambedkar has concluded that there were two religious revolutions. One was an external revolution which was a revolt of science against the extra territorial jurisdiction assumed by religion over a field which did not belong. The other was internal revolution which was a real revolution and involved a constitutional change. It is related with the changes in religion as a scheme of divine governnance for human society. He has further concluded that due to this internal revolution the following changes occurred in religion.

1. God has ceased to be a member of a community. Thereby he has become impartial.
2. God has ceased to be the Father of Man in the physical sense of the word. He has become the creator of the universe. Due to this change it has become possible to hold that God is good.
3. Man has ceased to be a blind worshipper of God doing nothing but obeying his commands.

As a consequence Ambedkar concluded, "Man has become a responsible person required to justify his belief in God's commandments by his conviction. By this revolution God has ceased to be merely the protector of society and social interests in gross have ceased to be the centre of the divine order. Society and man have changed places as centres of this divine order. It is man who has become the centre of it.[18] Thus, Ambedkar proposed that there should be a norm for evaluating the philosophy of a religion. According to him the norm or the criterion, for judging right and wrong in the antique society was utility while the norm or the criterion for judging right and wrong in the modern society is justice. He viewed religious revolution not as a revolution in the religious organisation of the society resulting as the shiftings of the centre from the society to the individual, it was the revolution in the norms. He is convinced that justice as a critierion is appropriate to the modern World in which individual being the end, the moral good is supposed to be something which does justice to the individual.

Freud, Darwin, Marx and Russell expressed anti religious views. They have rejected the social role of religion and the existence of transcendental realities. Whitehed, Radhakrishnan, M. Aurobindo, Swamy Vivekanand etc. regarded religion as the supermost and most sublime element of our culture. Ambedkar expressed similar views but rejected transcendental realities from the domain of religion. He viewed religion as a scheme of divine governance which is both ideal and real and has a full operative force. It is for social well being of the people.

According to Ambedkar, the word religion is an indefinite word with no fixed meaning. It is a revolutionary concept. It has passed through many stages. The concept of each stage is called religion though the concept of one stage is totally different from the concepts of other stages. In the first stage religion was identified with magic to control the natural phenomenon. In the second stage it was identified with beliefs, rituals, ceremonies, prayers and sacrifices. In this stage religion assumed that there exist some power which causes natural phenomenon which man did not know and could not understand. Later on this power was called God or the creator. In the third stage religion assumed that God created this world and also man. In this stage it was also assumed that man has a soul and the soul is eternal and is accountable to God for his actions in the world. Thus, according to Ambedkar, religion connotes – "Belief in God, belief in soul, worship of God, curing of the

erring soul, propitiating God by prayers, ceremonies, sacrifices etc."[19]

Ambedkar was of the opinion that religion is personal and it should not play a role in public life. He has proposed an anologous term Dhamma for religion but it has totally a different meaning.

Dhamma is social and the basic root of morality. It is a social necessity. It is a basis of equality, liberty and fraternity. Ambedkar believed that Buddha's concept of Dhamma should find a place in society and education. According to Ambedkar Dhamma consists of Prajna and Karuna. Prajna is understanding and Karuna is love.

Conclusion :-

Ambedkar was of the view that for the betterment of human society there should be harmony between the principles of religions and law of the land. He was also of the opinion that no individual should be compelled to pay taxes for the use of other religious community. In Ambedkar's scheme of social and political life there was no scope for religious coercion either by community or state. He was committed to the principle of secularism. For regulating moral conducts of human beings he evolved and interprated the concept of Dhamma which may find a place in any scheme of education.

References :-

1. Ambedkar, B.R. All India Radio Broad cast of Speech on October 3, 1954.
2. Ibid.
3. Kuber, W.N. *A Critical Study of Dr. Ambedkar*. People publishing House, New Delhi, 1973, p. 75.
4. Ibid. p. 75-76.
5. Ambedkar, B.R. *Dr. Babasaheb Ambedkar : Writing and Speeches*, published by Education Department, Government of Maharashtra, 1987, Vol-3, p. 23.
6. Ibid., p. 8.
7. Ibid., p. 6.
8. Ibid., p. 14.
9. Ibid., p. 14.
10. Ibid., p. 15.
11. Ibid., p. 15.
12. Ibid., p. 16.
13. Ibid., p. 16-17.
14. Ibid., p. 17-18.
15. Ibid., p. 18.
16. Ibid., p. 18-19.
17. Ibid., p. 21.
18. Ibid., p. 21.
19. Ibid., 1992, Vol-11, p. 316.

●

WH MORELAND'S STUDY IN HISTORIOGRAPHY OF MEDIEVAL INDIAN ECONOMY

DR. ANJALI YADAV*

William Harrison Moreland may be looked upon as the last important British administrator-historian of India, who inaugurated economic historiography of India. He was born in 1868 A.D. in Northern Ireland, educated at Trinity College, Cambridge, served India as the Director of Land records and Agriculture in U.P. and retired from the I.C.S. in 1914A.D.. He took lead in Land Settlements,[1] because of his training and service tenure in the field of Agrarian reforms and settlement. In order to understand the analyses and suggest reforms in bringing Agrarian Management, he tried to rebuild the agrarian system.

Moreland's work was totally focused on the primacy of the economic aspects in history and in his writing he always focused his attention on the production and distribution of wealth. The main subject matter of his essays is to examine the methods by which the state's share of the peasant's produce was assessed and collected. Moreland's subsequent writings emphasized that economic forces are at the heart of history and in Indian agriculture, and the revenue derived from it, is the major economic factor[2].

Moreland wrote two books while in the civil service, handbooks on agriculture and revenue administration in U.P. Two things are worth mentioning about them as background to his later historical writings in his growing awareness of the historical background of local administrative customs. In his first book he referred to the existence and importance of historical records; in second work, he also spoke freely from his experience on the problems that officials found in the field, and suggested how these problems might be met. This habit of commenting on difficulties in the course of his work persisted in Moreland's later scholarly writing.[3] In these books, he did not see any discontinuity between traditional and British India's agriculture and land revenue, as did the other British historians. There was no discontinuity because he held that the revenue system in ancient India was adopted continually first by the Muslim rulers and then by the English.[4] Indian economy largely remained a barter economy unaccustomed to capital as a growing mobile factor of production. The distinct role of the British in India was to act as impersonal agents of economic change. Moreland was conscious of the fact that even after a century of British rule the Indian economy was still so primitive that it was in the barter stage, where wages were paid in grain, rents were collected in kind and salt was exchanged for some other merchandise. He felt that in India the agriculture and revenue departments were so important that all other departments were merely auxiliary to them.

Moreland first work was *The Agriculture of the United Provinces* (1904) and the second, *The Revenue Administration of the United Provinces* (1911), *Akbar's Land Revenue System* (1918), *India at the Death of Akbar* (1920), *From Akbar to Aurangzeb* and *The Agrarian system of Moslem India* (1929). His one more work which he has written is "Introduction to Economics for Indian Students" in this he has designated the primacy of economics on human life. He suggests for India a controlled economy where the state regulates all production, consumption and distribution. Moreland judged the prosperity of a country by two factors. One is whether any encouragement for production exists or not and the other, whether equitable distribution of wealth is possible in that society or not.

Although Moreland has written various books but the work on which focus is laid here is "The Agrarian system of Moslem India" which appeared in 1920. It is free from political warfare, invidious comparisons and any overt casting of moral balances.[5]

According to Moreland Turkish conquerors did not impose foreign system on their Indian subjects: the observed continuity of institutions shows that they took over portions, at least of the system which they found in operation and adopted it as time went on, to meet changing needs. Further, we find that during Sultanate period "Produce" is used in its natural

* Assistant Professor, History Section, MMV, Banaras Hindu University

meaning as the gross yield of the land, without deducting anything on account of the cost of production. From Ancient period onward it was a conception that the duty of the peasants is to till the soil, and pay a share of their produce to the state; so far as private rights or claims were recognized they were subordinate to this fundamental obligation.

Further, in fourteenth century we find that Agrarian system was in harmony with the law of Islam and also with the sacred law of Hinduism and the relation between a chief and his peasants was not affected by the establishment of Muslim rule, except in so far as more money might have to be raised in order to pay the revenue; inside the villages the established agrarian system would continue to function. As per Moreland no significant change occurred in the agrarian system of the Delhi Kingdom earlier than Allauddin Khalji. We see that the peasantry was supporting the kingdom by the revenue they generated but we are told nothing of the methods by which the revenue was assessed and collected. In 13th century as in later times, the peasants were content to acquiesce in arrangements made over their heads, and pay the revenue to anyone who claimed it with authority. Throughout the century the old agrarian system continued to function under the established chief and that their methods were followed in the areas where Muslims were in direct contact with peasants.

According to Moreland, Balban had grasped the main principles of rural economy in an Indian peasant-state, at a period when the environment afforded little scope for individual advance; he aimed at a peaceful and contented peasantry; raising ample produce and paying a reasonable revenue and he saw that it was the king's duty to direct the administration with this object in view, while further he said that the changes made by Allauddin Khalji in the agrarian system did not arise from any economic motive but were inspired solely by political and military consideration. Internal as well as external security was the priority of his policy and he wanted to accumulate surplus of the producer's into the treasury.

The Tughluq Dynasty’s main motive was to extend the area of cultivation thus farming and assignment were regarded as the most prominent agrarian institution of the reign.

Firoz Shah Tughluq as well as Ghiyas-ud-din Tughluq adopted sharing as the method of assessment we find that the apportionments and excess demands and crop-failures and conjectural assessment were entirely abolished by Firoz Shah Tughluq. Peasants were to pay a share of their produce and nothing more; there is nothing to show whether the payment was to be made in cash or in grain[6]. Moreland further writes that the Assignee must have been more important to the peasants than the Governor, Firoz relied largely on the Assignment system.[7] The salaries of his officers were fixed in cash on what appears to be an exceedingly liberal scale and the corresponding amount of revenue was assigned to them, while the practice of assigning villages to individual troopers was revived. Moreland gave technical term valuation to the wide extension of the practice of assignment. At the outset of his reign, Firoz ordered a new valuation to be prepared. The work took six years[8] and the total came to 5/4 krors of tankas. This is the first actual record of a General valuation which Moreland found in the chronicles[9].

As we move towards Sayyid and Lodi dynasties we find that the kingdom was now small and within its reduced limits, the royal authority was weak; the Hindu Chiefs tried to become independent. Moreland found no contemporary authority for the Lodi dynasty. Few records[10] indicate that during this period the Assignment was the most important agrarian institution and that it had now taken the form which is familiar in the Mughal period (i.e., the assignee was bound not merely to loyalty and personal service, but to the maintenance, out of the assigned Income, of a body of troops available for the king's needs). So it was probable that the great bulk of the kingdom was administered through assignees rather than salaried officials.[11] We find that during Sikandar's time the assignee was allowed to keep any excess over the nominal valuation which he could secure from his assignment. Before the reign of Sher Shah the revenue-Demand was ordinarily fixed for a village or a pargana as a whole and not on the individual peasants. Under Sher Shah Hindustan passed from sharing and measurement;[12] which was imposed practically on the whole of his dominions. We know from the Ain[13] that Sher Shah adopted the unit of measurement from Sikandar Lodi and we also find this unit continued till the time of Akbar. Moreland also found that whatever the units, the suitability of the rates must be judged, firstly by the standards of yields and secondly by the area over which they were applied.[14]

Thus we can say that the establishment of Mughal Empire brings about various changes in the administration of Indian empire and the immediate effect of a conquest would be to replace some assignee by others, to give the Ministry a new master, whose orders would be carried out when they were received. Sher Shah[15] on the basis of claiming for the state one third of the average produce, stated in grain, with rates fixed in cash for few crops only. Under Akbar the actual demand was made in all bases in cash. The grain-rates being commuted on the basis of current prices. The only reasonable inference is that the uniform grain-demand fixed by the schedule in force was commuted by a single price-list, probably based on the rates prevailing in the Imperial camp. As per *Ain*, demand rates on all crops were fixed in cash, not in grain, so that the need for seasonal commutation was obviated but as per Moreland's[16] reading the rates adopted were the average of those which had been fixed for the previous ten years, the period during which the *Qanungoo*-rates had been in force. Thus the theoretical basis of the revenue-demand was one-third of the average produce that remained intact; the changes made were matters of administration; determining only the methods by which the demand was calculated.

Assignment system which was in force during Akbar's period was different from that which had been prevailing earlier in the century. From the 25th year onwards the Assignment became normal feature of the agrarian system of the empire as a whole and till seventeenth century we find that payment by assignment was the rule of the Mughal agrarian system and payment from the treasury was exceptional.

Moreland opines that in Jahangir period we find that he neglected the administration so fraud became extant and at last the annual income from the reserved tracts fell to 50 lakhs of rupees, while the annual expenditure was 150 lakhs and the accumulated treasure was drawn on for large sums, whereas Shahjahan on his accession put the finances on a sound basis: he reserved tracts calculated to yield 150 lakhs as income, fixed the normal expenditure at 100 lakhs and had thus a large recurring balance for emergencies.[17] Aurangzeb tried to endeavor, to maintain the balance between income and expenditure, but his long wars in the Deccan were ruinous and at his death only 10 or 12 krors of rupees were left in the treasury. Aurangzeb fixed half of the produce as per the provisions of Islamic Law throughout the whole empire. So we can see that the basis of the revenue-demand was now higher than under Akbar, his standard of one-third of the produce had become the minimum, while more could be claimed, up to a maximum of one-half.[18]

In some villages where the peasants were poor, sharing was practiced, at rates adopted to the local conditions, "One-half, one-third, two-fifth or more or less" but Group assessment was the regular rule. The Demand on the individual peasants was thus ordinarily left to be fixed by the headmen and, as usually, we find that in the official view, "the burden of the strong tended to fall on the weak". Moreland observed that contract holdings were quite common in some regions at the opening of the British period. May be this contract holding existed during Aurangzeb time or they had come into existence during the eighteenth century.

We cannot deny that Moreland was par-excellent an economic historian and he developed the technique of historical research, he always remained eager to find such material as would suit his predilections and imperialist outlook. Moreland's technique of historical research was circumscribed by his narrow concept of interpretation. That Moreland had vast revenue experience of modern times was proved as a partial handicap, as in the interpretation of the ambiguous passages he was greatly tempted to rely on imagination for example he took *Ain's* area figures to represent the entire cropped area and concluded that since its time there had been a fivefold increase in the cultivated area in the *Ghaghara-Ganga Doab* and a 17-fold possibly a 40 fold increase in the trans-Ghaghara tract.[19] On the other hand we see that while interpreting *jamadehsala* (Ten year Settlement) Moreland considers that the word *jama* in the passage does not stand for an assessed demand but refers only to the problem of the fixation of new valuation[20]. He does not consider the possibility of reading *jama* both as valuation and an assessed demand; this shows an example of over confidence on the part of a revenue expert who takes liberty with the technique of historical research.

He did not understand the varying nature of the land tenures in the *Zamindari* and the *riayati* villages during the Mughal age.[21] He lacks clear understanding of the working of the Mughal revenue administration and the role of the landed intermediaries during the Mughal age. His worst error was the conformation to the traditional threefold division of the Mughal

territories into *Khalisa, Jagir* and the semi-independent or autonomous chieftainships.

Moreland failed to realize the changes in the position and the internal revenue organisation of the territories of the Hindu Chiefs which had occurred during the Mughal age. Further we see that Moreland's reliance on the testimony of foreign travelers for an account of the life of the peasantry is partial.[22]As we see that the foreign travelers did not understand the concept of the land ownership in India and found institutional differences with their own countries.

REFERENCES:

1. J.B. Harison, Notes on W.H. Moreland as Historian in C.H. Philips, p.310.
2. C.H. Philips, Historian of India, Pakistan and Ceylon, London Oxford University press, 1965, p.312.
3. Margaret H. case, The Historical craftship of W.H. Moreland, The Indian Economic and Social History Review, July 1965.
4. W.H. Moreland, The Agrarian system of Moslem India, Munshiram Manoharlal publication, p.12
5. Ibid, p.17
6. Ibid, p.55
7. Ibid
8. Afif, Tarikh-i-Firozshahi, p. 57
9. W.H. Moreland, The Agrarian system of Moslem India, Munshiram Manoharlal publication, p.57
10. Elliot and Dowson, History of India as told by its own Historians, vol.V, p.308
11. W.H. Moreland, The Agrarian system of Moslem India, Munshiram Manoharlal publication, p.68
12. Ain-i-Akbari(i), p.296
13. Ibid
14. W.H. Moreland, The Agrarian system of Moslem India, Munshiram Manoharlal publication, p.77
15. Ain-i-Akbari(i), pp.297, 347
16. Ibid
17. W.H. Moreland, The Agrarian system of Moslem India, Munshiram Manoharlal publication, p.126
18. Ibid
19. Irfan Habib, The Economic History of Medieval India, Pearson publication, 2011,p.12
20. W.H. Moreland, The Agrarian system of Moslem India, Munshiram Manoharlal publication, pp.248-49,251-54.
21. Mohibbul Hasan, Nature of Dehat-i-Taaluqa and the Evolution of the Taaluqdari system during the Mughal age, The Indian Economic and Social History Review, vol.II No.2.April,1965
22. Brij Narain, Indian Economic Life, Lahore,1929, pp.1-54.

●

DEFERRING SOLUTIONS: A CRITICAL STUDY OF MAHESH DATTANI'S FINAL SOLUTIONS

DR. SANTOSH KUMAR * AND VIRENDRA KUMAR SINGH**

A multi-dimensional personality Mahesh Dattani is an Indian theatre director, actor, writer, teacher and dancer. Since his childhood Tennessee Williams and Arthur Miller have been his favourite playwrights. He was chiefly influenced by a contemporary Gujarati playwright Madhu Rye for his excellent portrayal of the aspirations and ideals of the Gujarati middle class and its hypocrisies. Vijay Tendulakr's complex portrayal of women characters along with a severe criticism of hypocritical society also appears to have influenced him. "Dealing with compelling issues rooted in his milieu, he has dispelled the perception about English theatre being just gratuitous fizz. His audiences have been large and responsive, both to the spectacle and the language."[1]

A winner of Sahitya Akademi Award, Dattani does not write on conventional subjects. He rather explores the mean, murky and unpleasant aspects of human life.[2] Dattani handles the contemporary issues in the contemporary setting. The analysis of his plays reveals an ongoing shift in contemporary urban Indian culture. The issues of sexuality, gender discrimination, child sexual abuse, communalism, etc. that he deals with in his plays are rooted in the Indian context which is constantly changing with the passage of time. Most of his characters belong to the upper middle class of urban India. His characters struggle for some kind of freedom and happiness under the burden of tradition, cultural constructions and repressed desires. His plays focus on the marginalized and neglected groups of society (minorities, women, gays), people who are considered misfit and inferior in a hypocritical, double-standard society. He undermines the socio-cultural constructions and stereotypes in order to present an invigorating social critique. Theatre director Erin Mee makes it clear in 'A Note on the Play (*Tara*)':

In his plays, Dattani takes on what he calls the 'invisible issues' of Indian society… By pulling taboo subjects out from under the rug and placing them on stage for public discussion, Dattani challenges the constructions of 'India' and 'Indian' as they have traditionally been defined in modern theatre.[1]The calm and innocuous looking social system, that seems to run so smoothly, actually hides in its womb the reverberations and signs of its rupture. Dattani's plays remove the façade of the so-called civilized society and expose its ugly and murky aspects.[3]

A close analysis of Dattani's plays reveals his dramatic art and technique. He weaves dramatic structures in order to create an objective and panoramic reality on the stage and allows the dramatic form to hint at possibilities that are contextually alive.[4] He is adept in creating a dramatic situation where it becomes very easy for him to make his thematic meaning (message) clear. In *Final Solutions* he creates an appropriate dramatic situation to reveal the prejudices, hidden malice and unacknowledged biases of the characters by dropping two Muslim characters Javed and Bobby in the household of a typical Hindu at the most critical hour. Besides, Dattani uses other devices too to achieve the required dramatic effect. The shifts in time and situations have been illustrated through a multi-level stage. The cross fading of the lights plays a vital role in transferring the dramatic space from one time and place to another. The main action is in the present and takes place in the house of Ramnik Gandhi. The name 'Gandhi' is significant, as it turns out to be a mock representation of the justice and non-violence associated with it.

In the present paper we will be dealing with Mahesh Dattani's seminal play *Final Solutions* and its main theme communalism. Communalism is a difficult theme to handle because the writer should appear to be even-handed; favouring neither Hindus nor Muslims, he is expected to maintain a balance between them.[5]

Communalism does not necessarily mean religious communalism and religious communalism does not always mean communal violence.

∗ Assistant Professor, Lalit Narayan Tirhut College, B.R.A. Bihar University Muzaffarpur
∗∗ Assistant Professor, Deptt. of English, Banaras Hindu University

Communalism can be defined as a homogeneous group of people with common interests, perceptions and fears. As Bipan Chandra difines it. "Communalism is an ideology and to some extent politics organised around that ideology… The word ideology is not used in the sense in which Marx used it, but to mean a belief system- a belief system based on certain assumptions regarding society, economy and polity"[6]

But the prevalent notion of communalism is not something which has evolved with the course of time on its own, it is a social construct, manipulated by some or other groups of people in every age of the evolving history; these include manipulation of facts and distortion of history:

"The historian's relevance to the analysis of communalism begins with indicating the may in which history is distorted by communal propaganda. When a deliberate selection is made from the past of particular personalities who are then projected as heroes, such as Rana Pratap, Shivaji and Guru Govind Singh, all of whom belonged to the Hindu fold and were known to be hostile to the Muslims, the intention is to propagate antagonism against the Muslims in the present day. There are other personalities historically far more important such as Asoka and Akbar whose message to Indian society was different and they are therefore ignored in communal propaganda."[7]

"…In early medieval times in south India we hear of open hostilities between the Jainas and the Shaivites, and according to tradition as many as 8,000 Jainas were impaled at the stake. More instances of this type can be multiplied to show that when it involved power and self the members of the Hindu ruling class proved to be as ferocious as those of the Muslim ruling class. On the other hand, there are also numerous instances of tolerance on the part of both the Hindu rulers and Muslim rulers, not to speak of the ordinary masses of both the communities. Therefore, it would be wrong to paint the Muslim rulers as cruel and the Hindu rulers as kind and tolerant. But unfortunately, such images are being built by Hindu communalists and Muslim fundamentalists try to catch up with them." [8]

In the present context, communalism is not a neutral term, it is redolent with several warring meanings thereby making it a burring problem. Gandhi believed that communalism was not only anti-national but also anti-Hinduism and anti-Islam because it is annihilating in nature and would destroy any religion. He often argued that communalists and their intolerant actions were self-annihilating. For example, he said at an RSS rally on 16 September 1947, "If the Hindus felt that in India there was no place for anyone else except the Hindus and if non-Hindus, especially Muslims, wished to live here, they had to live as the slaves of the Hindus, they would kill Hinduism. Similarly if Pakistan believed that in Pakistan only the Muslims had a rightful place and the non-Muslims had to live there on sufferance and as their slaves, it would be the death-knell of Islam."[9] Similarly, referring in November 1947 to the destruction and desecration of mosques in India and temples in Pakistan, he said that any such act can only destroy religion, whether it is Hinduism, Sikhism or Islam.

Final Solutions, Dattani's most celebrated work, is considered to be a turning point in his career as a playwright. In the play, he attempts to pose the difficult questions against communalism whose history dates back to colonial days and which culminated into the Partition of India in 1947. Although the history of post-colonial India continues to reflect the stories of intermittent communal tensions between the Hindus and the Muslims, yet there can be no denying the fact that the two communities have largely lived peacefully with their differences and animosities. *Final Solutions* deals with one of the most burning issues of contemporary India and the world i.e. the sensitive issue of communalism. Partition of India is one of the major examples of communal conflict. Even after Partition Indian population is chiefly built of Muslims and Hindus and these two communities have often misunderstood or have been made to misunderstand each other at critical hours and nurtured hatred and disbelief on the basis of religion, ethnicity and culture. Demolition of the Babri Masjid in 1992, Mubmai Serial Blasts in 1993 and Gujarat Violence in 2002 are some of the examples of communal hatred in India. Today almost the whole world is diseased with the infective and fatal germs of communalism. It is mostly a political game which is played either by elites and politicians or by opportunistic and interested groups. There are certain bigot groups and organizations in India that play on doubts and fears of the citizens for their political and other nefarious ends. Recurring Muzaffarnagar riots in Uttar Pradesh provide a brilliant example of how

certain groups play with the lives of people for their selfish ends.

A well-known stage director and media person Alyque Padamsee makes the crux of *Final Solutions* clear in the opening lines of 'Note on the Play (*Final Solutions*)'— "The demons of communal hatred are not out on the street… they are lurking inside ourselves."[10] Dattani has successfully dramatized this hatred, misunderstanding and prejudice through this play. The setting of the play is Partitioned India, still under the hangover of Partition pain. Javed and Bobby (Babban) are seen roaming in an area of high alert curfew. Suddenly an angry Hindu mob chases them and they run towards the house of a Hindu citizen. The owner of the house Ramnik Gandhi gives them shelter despite the opposition of his wife Aruna and mother Hardika. Amid the hot discussion and uncongenial interaction between them and the members of Ramnik's family, a number of revelations are made. Ramnik's daughter Smita turns out to be a college friend of Bobby and his former beloved. A little later Smita reveals that Javed is a professional riot rouser, who is hired by crafty politicians to throw the first stone and fuel the riot. Javed proudly accepts that he has been instrumental in causing the recent riot. Like every year the rath yatra started from the Vishnu Mandir. Passing through the Shanti road and Nehru garden when it reached Muslim populated area Karim Bagh, Javed threw stones at the idol and consequently the trouble started. The last revelation is that Ramnik was kindly favoring Javed and offering him a job in his cloth shop because he wanted to alleviate the pangs of his guilty conscience. Many years ago, amidst a Hindu-Muslim riot Ramnik's father had burnt down the shop of Javed's father in order to buy it at half price. As P.C. Chatterji points out, "In the riots of the seventies and later, we find other factors responsible rather than ideology. These include economic rivalry, demoralisation and deterioration in the efficiency of the administration, particularly the police; and also, a progressively greater part played by hoodlums in the pay of vested interests, politicians and others."[11]

Dattani's theatrical skill brings out an appropriate dramatic situation to reveal the prejudices, hidden malice and unacknowledged biases of the characters. Two Muslim characters Javed and Bobby suddenly appear in the household of a typical Hindu during the communal riot. The mistress of this house is a bundle of religious prejudices and her mother-in-law Hardika is burdened with her memories of Partition turmoil and communal tension. The religious bigotry of both the Hindus and the Muslims is exposed in this unusual but meaningful interaction. Aruna lives by the strict code of Hindu Sanskar and thinks that mixing with Muslims is a sacrilege to her holy religion. When Ramnik asks her to bring a glass of water for Javed and Bobby, she is alarmed and bewildered. She hides her uneasiness and brings two glasses of water for them. After they have gulped down the water, she holds the glasses with her thumbs and index fingers, on the sides which have not been touched by their lips and keeps them separate from other glasses. When Javed offers to fill up her drinking water from the outside tap, she is frightened that with their touch the water would be contaminated. Her progressive daughter Smita tries to protest against her unreasonable fear but she remains stuck to her static argument. She hits back at her daughter:

…For so many generations we have preserved our sanskar because we believe it is the truth! It is the way shown to us by our saints. We must know no other path. And I will not have it all perish to accommodate someone else's faith. I have enough faith and pride to see that it doesn't happen. I shall uphold what I believe is the truth.[12] On the other hand Javed is equally dogmatic with equal antipathy for the Hindus. He is not thankful to Ramnik for protection and refuge, rather he accuses him and says that he was being chased by the violent people of Ramnik's community. His further accusation is that Hindus like Ramnik feel superior because of being the majority. He argues that since the Hindus are majority they can dominate and play all the roles— both of the tormentors and the saviors and the barbaric and the civilized. Bobby also accuses Ramnik of playing all the roles alone, "It's funny how you can be emotional and irrational and yet appear smart, intelligent and be taken seriously. Because you are convinced that you have all the answers..."[13] He strives to explain how Javed, who was so simple, became so fanatic about his belief and religion. As a young boy he was treated as pariah by an orthodox Hindu and bitterly rebuked for touching his letter. Javed was so shocked and infuriated that he retaliated by throwing some pieces of meat and bones into the backyard of that Hindu. The argument of Javed and Bobby is that Muslims like them have become vicious and rioters only because of their inhuman treatment by the dogmatic and haughty Hindus. He openly accepts that he is a rioter and sincerely committed to the great cause of jehad— the

holy war of Islam. He also adds that this holy war is a defensive act of the Muslims to protect their religion and faith. He bursts out at demanding Ramnik Gandhi:

… Ha! You want to throw me to the mob? I am a part of it. You have been protecting me from people like me. I'm no different from them! No different, do you hear? I do what they are doing─ only on a different street![14]

He further says to Ramnik:

… Anyone sitting at home, sipping tea and reading newspapers, will say that it is obvious that a minority will never start a riot, we are too afraid that it had to be politically motivated. ... 'The time has come,' somebody would say. 'This is jehad─ the holy war! It is written!' 'Yes' I would say, 'I am ready. I am prepared.'[15] When the play opens Ramnik appears before the audience as a secular, civilized and brave man who fortifies himself against the enraged Hindu mob in order to save two Muslim rioters. He also does the benevolent act of offering Javed a job in his cloth shop to amend his ways. But he does this to soothe his guilty conscience. Years ago the real owner of that shop was Javed's father. Amidst the commotion of a riot Ramnik's father burnt this shop because he wanted to own it. And he was successful in buying it at half its value. By offering a job to Javed in the same shop, Ramnik wants to practise a type of penance. He wants to correct the wrongs of his ancestors and rectify some mistakes of history. He tries to be secular, non-violent and civilized. But he too is not completely purged of the germs of communal hatred. The evils of communalism are present in him in a dormant form. He thinks that the faith of Muslims is mainly based on violence. In a hot discussion with Javed he suddenly blurts out his inner thoughts :

Ramnik: I don't go about throwing stones!

Javed: But you do something more violent. You provoke! You make me throw stones! Every time I look at you, my bile rises!

Ramnik: (angrily). Now you are provoking me! How dare you blame your violence on other people? It is in you! You have violence in your mind. Your life is based on violence. Your faith is based… (Stops, but it is too late.)[16]

Introduction of old woman Hardika (young Daksha) in the play is a technique to shift easily into the past and examine the changing equations of Hindu-Muslims relationships. She is a living example of both the present and the past interaction between the Hindus and the Muslims. Her habit of reading her forty years old diary allows the dramatist to compare and contrast between the present and past religious bias and cultural prejudice. She is haunted with the memory of her father's murder during the Partition turmoil. As a young bride Daksha she is more friendly towards Muslims but with the passage of time she has been transformed into a grudging and revengeful old woman. When she opens her diary after forty years, she makes a remarkable comment, "Things have not changed much."[17] Surely the angry crowd outside her house is as furious and mindless as before. Through diary she recalls the days when she used to go to the house of her friend Zarine. She was very much impressed by Zarine's beauty. She did not like the location of her residence where "they sell unmentionable things"[18] Sometimes she felt embarrassed when she happened to see many bearded Muslims with tiny *topis* there. She would become suspicious that they had changed the topic of their conversation with her arrival there. At Zarine's house she liked very much to listen the songs of Noor Jehan but she could not digest the smell of Zarine's strange food:

I sat and watched them eat those things! My head started spinning from the smell and I could feel my stomach churning… And I brought out the contents of my stomach, then and there. Zarine stood up and I reached out for her, thinking she would help me. She screamed at me instead. Kanta rushed to me and helped me up and as we staggered out, I could hear Zarine's voice, 'Are you happy? Are you happy? I didn't know what she meant and I didn't care.'[19] Hardika's (Daksha's) experience is both negative and positive─ her feeling of nausea is the repulsion caused by cultural skepticism and her love for the melodious songs of Noor Jehan is longing for communal harmony.

Thus we find that *Final Solutions* reveals the private drama which every character has within himself or herself. Through this dramatization of the inner thoughts and motives of the characters the play succeeds in unraveling the complex knot of communal prejudice. Javed, Aruna, Hardika, Bobby and Ramnik, each person has some grudge, suspicion and hatred for the people of the opposing community. Consciously or unconsciously, everybody looks for some pretext to pour out these negative emotions. Political parties or some other groups create such situations for their

vested interest. They mislead the young men like Javed and Bobby into manipulating some sensitive issue and creating a destructive environment. During the Hindu religious procession Javed threw only a few stones at the idol and trouble started. Nobody wanted to know who had thrown the stones and why. Both Hindus and Muslims started hitting each other as if they had been waiting for such a moment for a long time. Violent but honest rioter Javed drew the authentic picture of a riot ridden brawl and commotion; he had a knife in his hand but didn't need to use it because everyone in the crowd was as angry as he:

I got nauseous and I cried, "Why am I here? What am I doing here? Get me off! I want to get off!... I let go of the knife. (The Mob/Chorus stop humming.) The knife fell to the ground. The joyride was over.

(Pause.) I couldn't hear the noises anymore. I watched men, fighting, distorted faces not making a sound. And I watched someone pick up the knife and pierce the *poojari*. I watched while people removed a part of the chariot as planned. The *poojari* fell to the ground. The carnival continued.[20]

The title of the play is both ironical and appropriate; it is ironical because the playwright has not pointed out any ultimate solution to the age-old problem of communalism and it is appropriate because through the dialogues between his characters the playwright has endeavored to suggest some probable final solutions. Ramnik genuinely accepts that his father had committed a mistake and he tries his best to rectify that wrong act. He tries to tolerate the present offenders and forget the past. This can be one final solution. Bobby's prudent act of entering the *pooja* room is a sacrilege in the eyes of Aruna but it has a great significance. He takes the image of Krishna on his palm and says, "Look how He rests in my hands! He knows I can not harm Him. He knows His strength. I don't believe in Him but he believes in me. He smiles! He smiles at our trivial pride and our trivial shame."[21] Bobby further says to Aruna, "And if you are willing to forget, I am willing to tolerate."[22] The ray of hope is also seen in the movement of Smita, Javed and Bobby from the claustrophobic inner space of the house to the outer one of open sky and open options. Smita's liking and love for Bobby is revealed in this fruitful interaction. Her playful act of splashing water at Javed and Bobby is also beyond the confines of creed and community. Like Bobby she also refutes the religious bigotry and gives the God's vessel to Javed on purpose. As she says to Javed, "… I suppose you are right. That is why I wanted you to fill it. To prove that it is not going to fly off into heavens with your touch, putting an eternal curse on our family."[23] Javed's anguished observation is also important, "Don't we all have anger and frustration? Am I so unique?"[24] Even he does not like his image of a rioter. He thinks that like him everybody is filled with anger and hatred and the problem won't be solved until everyone looks into his or her real self.

References:

1. Asha Kuthari Chaudhuri. Mahesh Dattani. An Introduction. Foundation Books, New Delhi, 2005, p.13.
2. Saryug Yadav. "Indian English Drama: Tradition and Achievement". Indian English Drama: Critical Perspectives. eds. Jaydipsingh K. Dodiya and K. V. Surendran New Delhi: Sarup and Sons, 2000, p.11.
3. Mahesh Dattani, "Tara." Collected Plays (Note on the Play), New Delhi; Penguin Books, 2000, p.319.
4. Charu Mathur. "Dramatic Structuctures in Mahesh Dattani's Tara and Final Solutions". Contemporary Indian Drama: Astride Two Traditions. eds. Urmil Talwar and Bandana Chakrabarty. Rawat Publications, New Delhi, 2005, p.165.
5. Shanta Gokhle. "The Dramatists". An Illustrated History of Indian Literature in English. ed. Arvind Krishna Mehrotra. Permanent Black, Delhi, 2003, p.349.
6. Bipan Chandra. Communalism and the State: Some Issues in India. Social Scientist, 1990,

   JSTOR www.jstor.com/stable/351734,p.38.
7. Romila Thapar. Communalism and the Historical Legacy: Some Facts. Social Scientist 1990,

   JSTOR www.jstor.com/stable/3517476, p.4.
8. R. S. Sharma, Communalism and India's Past. Social Scientist, 1990,

   JSTOR www.jstor.com/stable/3517323, p.7.
9. Bipan Chandra. Gandhiji, Secularism and Communalism. Social Scientist, 2004,

   JSTOR www.jstor.org/stable/3518325, p.17.
10. Mahesh Dattani, "Final Solutions." Collected Plays (Note on the Play), New Delhi; Penguin Books, 2000, p.161.
11. P.C. Chatterji. The Growth of Communalism in Secular India. India International Centre Quarterly, March 1985,

    JSTOR www.jstor.com/stable/23001352, p.6.
12. Mahesh Dattani, Collected Plays, New Delhi; Penguin Books, 2000, p.210.

13. Mahesh Dattani, Collected Plays, New Delhi; Penguin Books, 2000, p.200.
14. Mahesh Dattani, Collected Plays, New Delhi; Penguin Books, 2000, p.204.
15. Mahesh Dattani, Collected Plays, New Delhi; Penguin Books, 2000, p.205.
16. Mahesh Dattani, Collected Plays, New Delhi; Penguin Books, 2000, p.198.
17. Mahesh Dattani, Collected Plays, New Delhi; Penguin Books, 2000, p.167.
18. Mahesh Dattani, Collected Plays, New Delhi; Penguin Books, 2000, p.175.
19. Mahesh Dattani, Collected Plays, New Delhi; Penguin Books, 2000, p.221.
20. Mahesh Dattani, Collected Plays, New Delhi; Penguin Books, 2000, p.208.
21. Mahesh Dattani, Collected Plays, New Delhi; Penguin Books, 2000, p.224.
22. Mahesh Dattani, Collected Plays, New Delhi; Penguin Books, 2000, p.225.
23. Mahesh Dattani, Collected Plays, New Delhi; Penguin Books, 2000, p.218.
24. Mahesh Dattani, Collected Plays, New Delhi; Penguin Books, 2000, p.205.

●

ICT INITIATIVE TO ENHANCE ACCESSIBILITY AND REACHABILITY OF HIGHER EDUCATION SYSTEM IN INDIA

DR. AWADESH KUMAR*

Nowadays the world is moving rapidly towards increasing digital technology. The national wide lockdown due to COVID-19 has affected many activities such as the economy, tourism and hospitality, transport, education, defence, construction, healthcare, railways, retail, and e-commerce, not only in India but also in many countries of the world. For providing safety to students from COVID-19, most of the educational institutions in India are not running at their full capacity up to date. Hence, for continuing education, they use information and communication technologies to create, collect, store, and deploy information, which includes virtual classes, video conferences, radios, televisions, satellites, network and hardware, the Internet, CD-DVD, etc. to provide education from class one to higher classes like UG, PG, and Ph.D. and scheduling most of the academic meetings. Most of the students in India from different rural and urban regions suffered from education during COVID-19 because of the digital divide and lack of sufficient ICT training for teachers in the said areas. When we compare the various fields such as architecture, engineering & technology, medical, science and technology, education, commerce, and business, etc., the impact of ICT has been enormous in the past few decades. For this purpose, the higher education system has grown rapidly over the past few decades to meet the demand for quality education for all. Since the demand for ICT-skilled and competent labour in contemporary globalized society is continuously increasing, and last year, the Skill India Mission has trained more than one crore youth to meet the demand for skilled workers, in which around 52 lakh candidates have been trained under Pradhan Mantri Kaushal Vikas Yojana (PMKVY) and 136 Pradhan Mantri Kaushal Kendras (PMKKs) have also been opened in the 133 districts of the country. To increase access to higher education and improve its reach to the remotest parts of the country, the contribution of distance and open learning has increased because there are no barriers to intake or places, and it has been achieved at an affordable cost. The development of ICT has been incorporated into higher education systems around the world for the past two decades. The rate at which information technology is growing today is evident from the fact that it is embedded in almost every part of our lives. The technological progress in education can be harnessed to augment both these expansions as well as quality education. The government's scheme to use technological resources is helping the mission to make higher education accessible to all deserving students. In this regard, the Govt. of India launched the National Mission Education through Information and Communication Technology (NMEICT) in 2009 to provide the opportunity for all the teachers and experts in the country to post their collective wisdom for the benefit of every Indian learner and to reduce the digital divide. NMEICT is a landmark initiative of MHRD to address all education and learning-related needs of students, teachers, and lifelong learners and establish a proper balance between content generation research in critical areas related to imparting education and collecting to increase our knowledge with the advancement in other countries was attempted. In Indian scenarios where there is a waste disparity in educational facilities available for various reasons across the country, the mission NMEICT bridges the gap by providing just-in-time quality educational resources and the availability of teachers for 24x7 to learners irrespective of their social, economic, and educational status. The major components of the mission are to achieve three cardinal principles of education policy viz. access, equity, and quality. ICT includes creation, storage, use, and deployment of information and facilitates different forms of communication, such as radio, television, computers, hardware & software, networks & the internet, satellites, and various applications and services for broadcasting information. To improve the education system and make it reachable, available, and used by every citizen of the country for effective learning, the Govt. of India has several ICT initiatives under the National Mission on Education through Information

* Assistant Professor, Computer Science, MMV, Banaras Hindu University

and Communication Technology (NMEICT). These initiatives are very helpful in enhancing learning skills for teachers and students and other business professionals to periodically improve teaching strategies, assessment, and evaluation criteria. In this paper, we focus on different ICT initiatives taken by the Govt. of India under the umbrella of NMEICT to enhance and improve their professional skills and make learning effective and job-oriented.

1. Higher education Scenario in India:

According to the All India Survey Report on Higher Education 2018-19, India has 993 universities, 39931 colleges, and 10725 stand-alone institutions. There are 46 central universities, 1 central open university, 127 Institutions of National Importance, 371 state public universities, 5 institutions under the State Legislature Act, 14 state open universities, 304 state private universities, 1 state private open university, 34 Deemed Universities-Government, 10 Deemed Universities-Government Aided, and 80 Deemed Universities-Private among the 993 universities. The majority of the colleges, 77.8%, are privately managed, of which 64.3% are private unaided, 13.5% are private aided, and the remaining 22.2% are government colleges in the country. There are 34.8% of colleges that run only a single programme, out of which 83.1% are privately managed. Among these, 38.1% of colleges run B.Ed. courses only. There are 10725 stand-alone institutions which are categorized into various categories as follows: 3440 Diploma Level Technical Institutes (Polytechnic Institutions), 3759 Diploma Level Teacher Training Institutes (DIET), 3039 Diploma Level Nursing Institutes, 475 Post Graduate Diploma in Management Institutes, 100 institutes directly under the control of various Central Ministries, 70 Paramedical Institutes, and 26 Hotel Management & Catering Institutes (Education et al., 2015). The number of students enrolled in higher education has steadily increased. In 2018-19, a total of 37.4 million students were enrolled, with 46.8% of them being female and 53.2% of them being male, for a total of approximately 26.3% calculated in the age group of 18-23 years, which is significantly lower than the average gross enrolment ratio of developed countries, which is nearly 40% [1]. This shows that nearly 73% of students in the age group of 18–23 years have either not gotten the opportunity to enroll in higher education or are not interested in studying. These students are not enrolled in higher education because of limited seats in the institutions, and it cannot be true that this huge population is not interested in taking an interest in higher education. Out of total enrolled students, 79.76% are enrolled in undergraduate level programmes, 10.81% in post-graduate level programmes, 0.64% in integrated programmes, 0.44% in certificate programmes, 7.22% in diploma programmes, 0.60% in PG-Diploma, 0.45% in PhD programmes, and 0.08% in M.Phil. Programmes. At the undergraduate level, the highest number (35.9%) of students are enrolled in Arts/Humanities/Social Sciences courses, followed by Science (16.5%), Engineering and Technology (13.5%), and Commerce (14.1%). Distance enrolment constitutes about 10.62% of the total enrolment in higher education, of which 44.15% are female students. As per the AIHES survey2018-19, a total of 14,16,299 teachers are taught in higher education, including about 57.85% of male teachers and 42.15% of female teachers [1]. The pupil-teacher ratio (PTR) at the All India level comes out to be 29 and 24 if only regular enrolment is considered. The lower enrolment in the distance and regular education, high PTR, growing population, less and costly space, and the rising cost of students' living in hostels and delegation during studies need to change the mode of education through ICT. This is due to the high-quality education demand of students through best-quality teachers and reputed educational institutions. Hence, the government of India is taking steps to set up various ICT initiatives which provide education and learning to anyone, anytime, and anywhere through several platforms. The learners, students, and teachers are benefited through the various ICT initiative taken by the ministry of education, Govt. of India to provide audio-video e-content, digital content, hands-on learning, e-governance, and tracking progress through NROER, SWAYAM, SWAYAM Prabha, ePGPathshala, Sodhganga, e-Shodh Sindhu, Diksha, Nishtha, e-Yantra, FOSSEE, Spoken Tutorials, Virtual Lab, University Enterprise Resource Planning (SAMARTH), VIDWAN, IRINS, Shodh Sudhi (PDS), etc.

2. The challenges of ICT in higher education:

The Indian economy is largely focused on agriculture, which is the backbone of rural India and employs roughly 70% of the workforce [2]. Since India is a developing country with low agricultural productivity, poor infrastructure and public service coverage, a small amount of export, low commodities, and low enrolment in higher education, the government of India is working to improve education facilities and make them accessible to all Indians. Information and communication technology improves the education system by providing greater equity, better access, and improved quality, but there is a question of whether technology alone improves the quality of education. According to a poll of accredited colleges conducted by the UGC in 2008, the penetration of ICT systems in higher education institutions is exceptionally low, revealing flaws in IT infrastructure. It also has some challenges. In this section, we discuss the various challenges in the use of ICT in India [3] – [6].

- Lack of awareness of the use of ICT skills in the growth of a nation necessitates raising awareness about the government of India's digital effort to ensure the appropriate use of ICT in the development of students, learners, and teachers to improve our teaching-learning process.
- Many people from different regions across the country do not have access to technology, resulting in a new form of exclusion known as the 'digital divide'.
- Limitation of networked ICT in schools, colleges, universities, and other educational institutions.
- Lack of working computers, software technical support, administrative support, sufficient teacher training, internet connectivity, and a reliable supply of electricity.
- Differences in the social, cultural, economic, and political context of people residing in different places.
- Lack of technological, pedagogical, content knowledge, and availability of resources.
- Lack of adequate infrastructure at various schools, colleges, universities, and other relevant regions for networked communities, promoting fast-paced communication and information sharing.
- The limitation of Internet diffusion is that the Internet has passed through various stages to arrive at the present situation.
- Linguistic differences are also barriers to adopting ICT in education because India is a diverse country in terms of languages, with 121 different mother tongues spoken by Indians according to the 2011 census. However, the Indian government is working to eliminate this diversity by making content available in multiple languages.
- Difficulties in disseminating information and communication technology (ICT) across geographically distinct regions.
- Difficulties in empowering pedagogy with ICT are due to the continuous emergence of novel ICT-empowered pedagogies such as new methods of content distribution and the incorporation of material from other disciplines.
- To notice significant advances in technology integration, it should take a long time and several reiterations.
- Effective preparation of pre-service teachers for technology integration requires attention to all the stakeholders at different levels in the education system.

3. Opportunities to use ICT in the higher education system:

There are four pillars of education, named learning to know, learning to live together, learning to do, and learning to be [7]. High-quality education is the backbone of every developed country, and India is one of the fastest developing countries. The use of technology in education is essential to compete with the global market because through this, education reaches every region of the country and anyone can take education according to their choice from anywhere at any time. We are witnessing unprecedented advancements in information and communication systems, with significant reductions in the size, cost, and accessibility of computers, as well as gains in the speed, storage capacity, and reliability of hardware components [1]. The 21st Century is the

era of digital education and ICT is changing the way we live. In this part, we'll look at how ICT might help India's higher education system. [8][9].

- ICT makes education learner-centric with specialized and comprehensive knowledge.
- Since ICT has no geographical limitations, a large number of students can participate in many programmes at the same time, as per the schedule of the programme.
- ICT provides easier and faster communication with lifelong learning for learners of any age group.
- With the help of ICT, experts, scientists, researchers, and academicians exchange and share their ideas through webinars, videoconferencing, and teleconferencing.
- Use online resources such as YouTube, Facebook, Twitter, Gmail, WhatsApp, Chat, Wikis, Blogs, Discussion Forums, Google Tools, and some other web 2.0 tools for collaborative learning and sharing information between each other across the world.
- Exchange and share ideas between the group of teachers and professionals across the country as well as the globe.
- ICT helps develop, create, delivering, and sharing course materials, content, etc. between learners, scholars, teachers, professionals, and the outside world.
- ICT also improves the learning process as well as the organization and management of educational institutions.
- ICT helps teachers and professionals to improve their teaching and to access their learners' learning and performance in the classroom. Learner assessment involves the use of digital tools to aid in the creation, distribution, storage, or reporting of student assessment tasks, responses, grades, or feedback.
- With the assistance of ICT, synchronous, asynchronous, blended, and flipped classroom learning are possible.
- ICT helps to understand the teaching-learning system by using a Learning Management System (Moodle cloud, Google Classroom, Canvas, Docebo, Blackboard Learn, etc.), which is a software application for the administration, documentation, tracking, reporting, automation, and delivery of educational courses, training programs, or learning and development programs.
- ICT is also helpful in conducting various online surveys and analyzing their results.
- ICT increases the speed of transferring knowledge in the form of synchronous and asynchronous learning.
- With the help of ICT, learners no longer need specified places for acquiring knowledge. Anyone can acquire knowledge at anytime and anywhere with the help of a computer, laptop, smartphone, PDA, etc., and a proper internet connection as per their capacity and choice.
- ICT helps to improve group collaboration among students, teachers, and other professionals. They connect through chatting, virtual classes, virtual TV, audio-video meetings, etc.
- ICT also helps in accessing free magazines, journals, and standard books through several digital libraries and archives.
- With the help of ICT, educational information and materials are widely available to increase knowledge and its application at minimum cost.

4. ICT Initiative for Higher Education in India: To capture the spirit of digital India, the Indian government is adopting several initiatives to expand the influence of digital resources in higher education. Different government regulatory agencies have launched various digital efforts in this respect to improve education and enrich learners' relationships in higher education. The following are some of these initiatives:

4.1 SAKSHAT: (https://sakshat.ac.in):

A one-stop education portal for 50 crore users. This is an education portal that provides lifelong learning opportunities for students. It integrates all of the mission's content, as well as mission-related information, and it facilitates public scrutiny, feedback, and transparency for the mission's various projects. A proper balance between content production, study in key areas related to education

delivery, and networking to combine our expertise with developments in other countries will be attempted under this mission. For this, what is needed is a critical mass of experts in every field working in a networked manner with dedication [4]. It is a momentous opportunity for all the teachers and experts in the country to pool their collective wisdom for the benefit of every Indian learner, and thereby, reduce the digital divide. This portal is developed through the national mission on education through ICT with efforts such as [a] There will be no wasting of the country's educational talent and resources., [b] All services offered by the content distribution gateway SAKSHAT should be free. [c] To stop reinventing the wheel, publicly downloadable web content can be used. Several other portals such as SWAYAM, SWAYAM PRABHA, NDLI, Spoken tutorial, Nishtha, eYantra, Baadal, Vidwan, Smarth, Shodhsindhu, Fossee, etc., provide school, undergraduate, postgraduate, and research-level ICT programmes, which are connected through this portal.

4.2 Study Webs of Active-Learning for Young Aspiring Minds (SWAYAM): (https://swayam.gov.in):

SWAYAM's path can be traced back to 2003, when the NPTEL (National Programme on Technology Enhanced Learning), a joint initiative of IITs and IISc, was launched. This is an Indian Massive open online course (MOOC) platform. This programme was initiated and designed by the Govt. of India to achieve three cardinal objectives of education, viz. access, equity, and quality [10]. This platform allows for the posting of all classroom class courses from 9th grade to post-graduation and can be used by anybody, anywhere, at any time. The courses on the SWAYAM portal are divided into four quadrants: video lectures, specially prepared reading materials, self-assignment by tests and quizzes, and an online discussion forum for clearing doubts, and are provided free of charge to all learners. However, learners who want a SWAYAM certificate must register for a final proctored exam, which costs some money, and appeared as a person at a specified centre on a specified date [10]. The University Grants Commission, in the exercise of the powers conferred by clauses (f) and (g) of sub-section (1) of Section 26 of the UGC Act 1956 (No. 3 of 1956), makes the UGC regulation 2016 for credit framework for online learning courses through SWAYAM [11]. There are nine National Coordinators appointed to manage SWAYAM courses in different disciplines. These are National Programme on Technology Enhanced Learning (NPTEL) for UG and PG engineering courses; Consortium for Educational Communication (CEC) for Non-engineering UG courses; University Grant Commission (UGC) for Non-engineering PG courses; Indian Institute of Management (IIMB), Bangalore for management; All India Council of Technical Education (AICTE) for Annual Refresher Programme In Teaching (ARPIT) & Foreign Universities; National Institute of Technical Teachers' Training and Research (NITTTR) for Teacher Training, Indira Gandhi National Open University (IGNOU) for certificate and diploma courses, National Council of Educational Research and Training (NCERT) for 9th to 12th School courses. The universities' students identify courses, earn credit through those online courses, and credits can be transferred to the academic record of the students for courses done on SWAYAM. The faculty members can develop online courses for SWAYAM following SWAYAM guidelines, improve their profile, and gain popularity across the country as well as the world.

4.3 SWAYAMPRABHA: (https://www.swayamprabha.gov.in):

Since the Internet is not functioning effectively in some parts of the nation, and some people in urban and rural areas are unable to afford internet and smartphone/laptop/PDA fees, the Indian government created a channel called SWAYAM PRABHA to deliver educational information via television. The SWAYAM PRABHA is a network of 34 DTH channels dedicated to providing high-quality educational programmes 24 hours a day, seven days a week through the GSAT-15 satellite [12]. Every day, there will be fresh material for at least four hours, which will be repeated five times more during the day, enabling students to learn at their own pace. The channels are uplinked from BISAG, Gandhinagar. The contents are provided by NPTEL, IITs, UGC, CEC, IGNOU, NCERT, and NIOS. The INFLIBNET Centre maintains the web portal. PM eVidya is a unique and creative initiative of the Ministry of Education, Government of India, to provide students and teachers with multi-mode access to digital/online teaching-learning materials of different forms [13]. SWAYAMPRABHA's DTH platforms for higher education include curriculum-based course material at the post-graduate and undergraduate levels in a variety of disciplines, including arts, astronomy, business,

creative arts, social sciences and humanities, architecture, technology, law, medicine, agriculture, and more. All courses would be certification-ready in their detailed offering through SWAYAM, the platform being developed for offering MOOCs courses. Channels one to twenty-two are dedicated to providing higher educational content. The DTH channels for school education under SWAYAMPRABH are covered in the PMeVidya programme. The uniqueness of PM e-Vidya lies in its comprehensive accessibility for all, as it caters to the educational content to all with its multi-mode set-up of remote learning platforms including the internet, radio, community radio, podcast, and TV. One of the major initiatives of PMeVidya is the launch of 12 eVidya TV Channels (channel no. 23 to 34) based on the line of One Class-One Channel for classes 1 to 12 to air educational content related to the respective classes. Through this channel, students cover curriculum-based courses that can meet the needs of life-long learners as well as watch high-quality educational programmes 24 hours a day, 7 days a week to assist students in preparing for competitive exams and provide faculty with access to SWAYAMPRABHA content.

4.4 NPTEL: (National Programme on Technology Enhanced Learning) (https://nptel.ac.in):

This project is funded by the MHRD and was initiated by seven IITs (Bombay, Delhi, Kanpur, Kharagpur, Madras, Guwahati, and Roorkee) along with the Indian Institute of Science Bangalore in 2003 to provide quality education to anyone learning from IITs [14]. The main goal is to provide Web-based material and video courses in all disciplines of engineering and technology, as well as fundamental sciences and management, at the undergraduate and postgraduate levels. It is the most popular library in the world, providing peer-reviewed teaching content in engineering sciences, fundamental sciences, and a few chosen Humanities and Social Sciences areas. More than 2,000 courses, 55000 hours of video with subtitles, 1.6 million YouTube subscribers, 471 million website users, and more than 3000 institutions across India are partners on this platform as SWAYAM-NPTEL local Chapters. Through NPTEL courses, students may improve their academic achievements, test their performance, acquire new technical skills, obtain a deeper grasp of the subject, and receive credit transfer and job opportunities. Faculty and professionals may also benefit from NPTEL by learning and obtaining certification through proctor examinations, which will help them further their careers. NPTEL began offering certification to students for participating in open online courses (which consist of pre-recorded video lectures, lecture notes, and assignments all of which are online) in March 2014 through its portal https:// onlinecourses.nptel.ac.in/. The portal is operated by Google India. NPTEL is now offering 4-, 8-, and 12-week courses in different engineering disciplines, sciences, humanities, and management through its online platform, all of which involve appropriate exposure to tools and technology. Enrolling in and learning from any of the courses is entirely free. It is optional to take the certification test, which costs Rs. 1000 for each course exam. The NPTEL star programme, which includes NPTEL domain scholars, NPTEL Superstars, NPTEL EVANGELISTS, NPTEL MOTIVATED LEARNERS, and NPTEL ENTHUSIASTS, encourages additional students to join the ranks and be recognized here.

Year	# Courses	Enrolments	Exam Registration	Present in the exam	Certified	Registered %	Pass %
2014	3	112754	3033	2731	2072	2.68	75.86
2015	54	249864	9855	8119	5096	3.94	62.76
2016	168	642867	48736	41836	29847	7.58	71.34
2017	289	1584488	114415	101803	85209	7.22	83.70
2018	495	2264998	248254	220204	190458	10.96	86.49
2019	650	3446629	457709	406108	326667	13.27	80.43
2020	808	4106610	278739	200651	150095	6.78	74.80

Table:1 Year wise enrolment and registration for proctored examination (Source: https://nptel.ac.in/resources/statistics/, dated: 25/03/2021)

Institute Name	#of Live Courses	NPTEL Online Certificate Courses
IISER PUNE	1	32
IIT Roorkee	50	377
IISc Bangalore	83	110
IIT Delhi	84	115
IIT Bombay	95	199
IIT Guwahati	99	214
IIT Kanpur	152	458
IIT Kharagpur	159	705
IIT Madras	212	565

Table:2 Year wise enrolment and registration for proctored examination (Source: https://nptel.ac.in/resources/statistics/, dated: 25/03/2021)

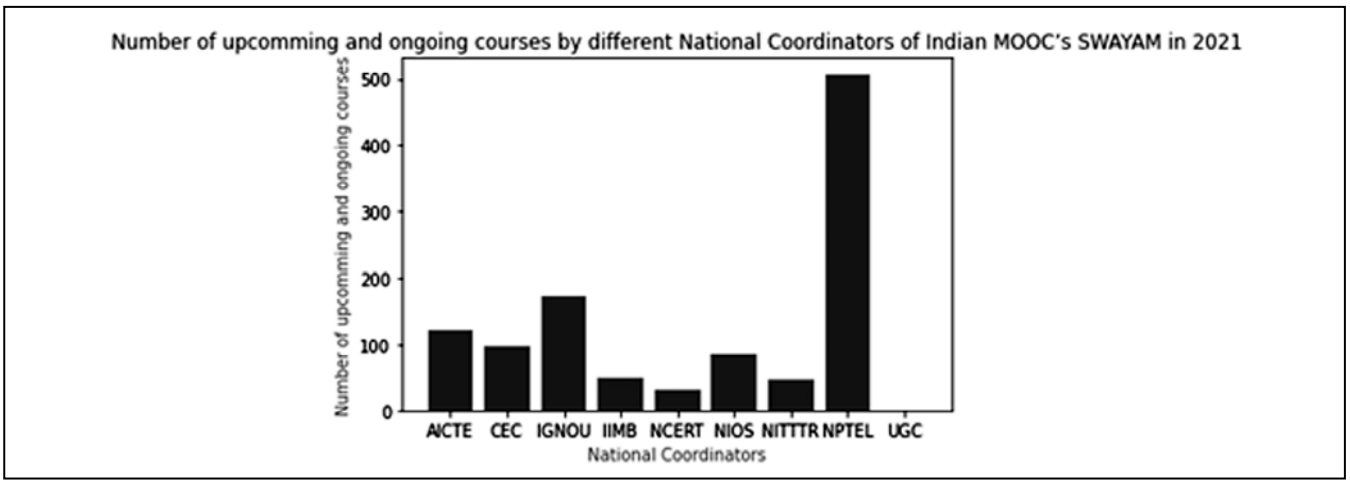

Fig.1: Number of upcoming and ongoing courses by different National Coordinators of Indian MOOC's SWAYAM in 2021 (source: https://nptel.c.in/resources/statisties/, dated:25/03/2021)

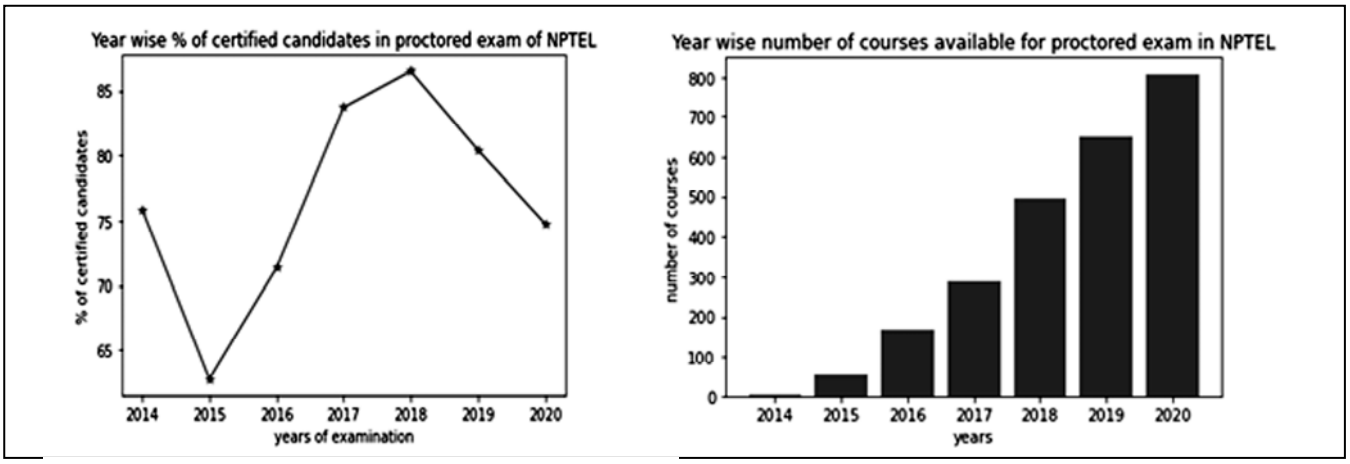

Fig.2: Percentage of certified candidates in proctored exam (year Wise)

Fig.3: Year wise % percentage of NPTEL certified candidates

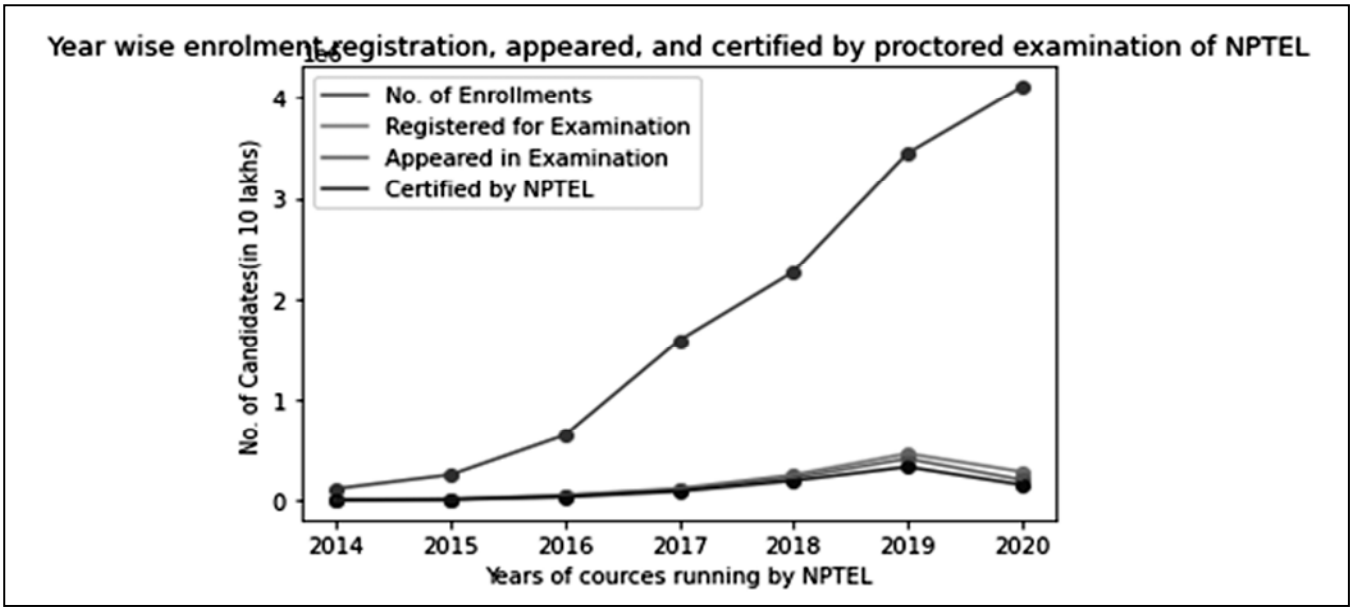

Fig4: Year wise enrolment, registration, appeared, and certified by proctored examination of NPTEL (source: https://nptel.ac.in/resources/statistics/, dated: 25/03/2021)

4.5 National Digital Library (https://ndl.iitkgp.ac.in/):

The National Mission on Education through Information and Communication Technology (NMEICT) has funded the National Digital Library of India (NDLI) project and arranged funding through the Ministry of Education to bring learning opportunities together in a single location [15]. This library contains 64,651,364 educational resource materials in several Indian languages covering various subjects such as engineering, sciences, law & management, humanities, literature, school subjects, CBSE examination preparation content, etc. and research repositories such as data sets, scholarly publications, journals & conferences, ideas & funding, start-ups & challenges, documents & videos, and many more. It provides a facility for students to access e-content in multiple disciplines, and faculty members get our e-content listed by NDL Club.

4.6 e-PG Pathshala:(https://epgp.inflibnet.ac.in)

The MHRD's e-PG Pathshala project is being carried out by the UGC as part of its National Mission on Education through ICT (NME-ICT). It is a gateway to all post-graduate courses. Subject matter experts from Indian universities and research institutes across the country created high-quality, curriculum-based, immersive e-content in more than 70 disciplines including social sciences, culture, fine arts, humanities, natural and mathematical sciences, linguistics, and others. Every subject had a team of the principal investigator, paper coordinators, content writers, content reviewers, language editors, and multimedia team to support various multimedia content to be used in the paper. It has eAdhyayan, UGC MOOCs, and ePathya as the verticals of e-PG Pathshala. Over 3200 subject experts from prestigious universities and institutions across the country produced and created over 20000 e-lessons, more than 19000 videos, more than 30,000 quizzes, and 723 papers covering 70 subjects [16]. Students can get free books and course-based e-materials and faculties host e-books.

4.7 Shodhganga (https://shodhganga.inflibnet.ac.in/):

This website serves as a repository for Indian theses. This portal provides an opportunity for research students to deposit their Ph.D. theses and make them available to the entire scholarly community in open access. The repository can capture, index, store, disseminate, and preserve ETDs submitted by the researchers. 570 universities have signed an MoU and approximately 299398 theses have been submitted by 476 contributing Indian universities [17]. Students can access the research theses of scholars of Indian

Institutes and faculty members can get research theses of your scholars to get listed on Shodhganga.

Since September 1, 2019, the Ministry of Education, Government of India, has offered access to Plagiarism Identification Software (PDS) to all colleges and institutes in India under a scheme named "Shodh Shuddhi". This is based on the recommendation of the Sub-Committee of the National Steering Committee (NSC) of e-Shodh Sindhu. Around 1040 institutions across the country have been identified to meet the Shodh Shuddhi program's objectives, including one central Open University, 51 central universities, 34 deemed university-government, 10 deemed university-added, 81 deemed University private, 368 state public universities, and 327 state private universities. The Shodh Shuddhi portal has a total of 105697 users and roughly 1104365 documents [18].

Shodh Gangotri: Repository of Indian Research in Progress details (Synopses/Research Proposals for the Ph.D. Programme with MRPs/PDFs/Emeritus Fellowship). Under the initiative called "Shodh Gangotri", research scholars/research supervisors in universities are requested to deposit electronic versions of the approved synopsis submitted by research scholars to the universities for registering themselves for the Ph.D. programme, and now it is expanded to include MRPs / PDFs / Emeritus Fellowship, etc. The repository, on one hand, would reveal the trends and directions of research being conducted in Indian universities. On the other hand, it would avoid duplication of research. The Synopsis in "Shodh Gangotri" would later be mapped to full-text theses in "Shodh Ganga". As such, once the full-text thesis is submitted for a synopsis, a link to the full-text theses would be provided from Shodh Gangotri to "Shodh Ganga" [19].

4.8 CEC: Consortium for Educational Communication (http://www.cec.nic.in/cec/):

This is one of the University Grant Commission's inter-university centres. It was founded to meet the need for higher education by combining the powerful medium of television with the proper use of developing information and communication technology. It is working on the creation of harsh e-content for UG subjects as part of the MHRD's NMEICT initiative. Students and learners use an innovative learning experience to educate themselves.

4.9 Talk to Teacher (co-learn.in):

It is an initiative of NMEICT funded by MHRD. It is developed by IIT Bombay. It provides free access to selected graduate and postgraduate courses taught by distinguished faculty members of IIT Bombay and scholars at large. It uses the A-View collaboration tool developed by Amrita University for providing virtual classrooms to faculty members across the country. The courses can be viewed free of charge at lower bandwidth on a personal computer laptop with headphones and an active internet connection.

4.10 ARPIT (Annual Refresher Programme in Teaching):https://arpit.nta.nic.in/ :

The MHRD has launched online ARPIT on November 13th, 2018, a major and unique initiative of online professional development for 15 lakh higher education faculty members using the MOOC platform SWAYAM. In the first instance, NTA conducted the ARPIT test on March 30th, 2019 in 66 disciplines. Currently, 48 discipline-specific National Resource Centres (NRCs) have been identified by MHRD, wherein Course Coordinators have prepared online training material, with a focus on the latest developments in the discipline. UGC has notified the equivalence of ARPIT as a refresher course for career advancement of faculty (DO Letter No. F.2-16/2002 (PS) Pt. fI.II dated December 3, 2018). From September 2019 to January 2020, the second batch of 146214 ARPIT candidates has taken up the online SWAYAM MOOCs courses.

4.11 FOSSEE (Free/Libre and Open Source Software for Education):

This project promotes the use of FLOSS tools in academia and research. The FOSSEE project is part of the National Mission on Education through Information and Communication Technology (ICT), Ministry of Education (MoE), Government of India. The programs promoted through this project are Scilab, Python, eSim, Osdg, DWSIM, Open FOAM, Open Modelica, Open PLC, Scilab-Arduino, HBHS, R, QGIS, and FOCAL, etc. The FOSSEE project promotes the use of FLOSS tools such as Textbook Companion, Lab Migration, Niche Software Activities, Forums, and Workshops and Conferences to improve the quality of education and research.

4.12 Spoken Tutorial (https://spoken-tutorial.org/):

It's a multi-award-winning educational material

platform where anybody can study Linux, Scilab, LaTeX, PHP & MySQL, Java, C/C++, Libre Office, and other FOSS using simple video tools. Spoken tutorials and learning may take place anywhere, at any time, and in the language of your choice. All the content published on this website is shared under the CC BY SA license. The digital content accessible for learning in this portal is for all levels, including Basics, Intermediates, and Advanced, and the content requires side-by-side practice to ensure that learners are actively learning. Students, faculties, and staff from schools, colleges, universities, polytechnics, ITIs, skill centres, and NGOs can all benefit from the programme and receive a certificate at a very affordable fee. Any staff / officer / faculty member/teacher at IIT Bombay can be an organizer for the spoken tutorial. The Organiser will arrange the computer lab and coordinate with students to fix a date and time for the first training. Any College / University which wishes to contribute towards IT literacy and awareness can become a RESOURCE (Robust Extensions for Spoken Tutorial project on Open Source Software Usage for Recruitment, Community, and Education) centre. A resource centre can conduct remote workshops in its college, for other colleges, and can also train other colleges and schools to conduct Spoken Tutorial training.

4.13 e-ShodhSindhu: (https://ess.inflibnet.ac.in):

It is a consortium for higher educational electronic resources that provides access to e-resources to universities, colleges, and centrally funded technical institutions in India. It is formed by the Ministry of Education, Govt. of India by merging three consortia, imitating the UGC INFONET Digital Library, the National Library, and Information Services for scholarly content (NLIST), and the INDEST-AICTE consortium. The e-ShodhSindhu will continue to provide current as well as archival access to more than 10,000 core and peer-reviewed journals and several bibliographic, citation, and factual databases in different disciplines from a large number of publishers and aggregators to its member institutions, including centrally-funded technical institutions, universities, and colleges that are covered under Sections 12 (B) and 2 (f) of the UGC Act. The major objectives of e-ShodhSindhu are as follows [20]:

- Create a fantastic library of e-journals, e-journal archives, and casual e-books.
- Through awareness and training programs, monitor and encourage the use of e-resources in member universities, colleges, and technical institutions in India.
- All educational institutions should have access to subscription-based academic material (e-books and e-journals).
- Provide open access to scholarly content through subject portals and subject gateways;
- bridge the digital divide and move towards an information-rich society;
- Access to selected e-resources should be extended to additional institutions, including open universities and MHRD-funded institutions that are not currently covered by existing consortia.
- Take up additional activities and services that require a collaborative platform and are not being performed by existing consortia; and
- Moving towards developing a National Electronic Library with electronic journals and electronic books as its major building blocks.

4.14 e-Yantra (https://e-yantra.org/):

This project was funded by the Ministry of Education under the National Mission on Education through the ICT Program (NMEICT). This is an initiative of the Department of Computer Science and Engineering at the Indian Institute of Technology, Bombay (IIT Bombay) for students, colleges, and teachers with the slogan "better engineers for tomorrow". This portal aims to use technology to solve local domain problems in various disciplines such as agriculture, disaster relief, manufacturing, defence, home, smart cities, and service industries, and to promote Indian higher education around the world. Several competitive initiatives are being taken inside this portal to promote students, teachers, and colleges from different states across the country, such as e-Yantra for Robotics Competition (eYRC), e-Ynatra Innovation Challenges (eYIC), e-Yantra Lab Setup Initiative (eLSI), e-Yantra Symposium (eYS), e-Yantra Resource Development Center (eYRDC), and e-Yantra Form setup Initiative (eFSI) [21].

4.15 VIDWAN (https://vidwan.inflibnet.ac.in/):

It is the most comprehensive database of profiles

of Indian scientists, professors, and other faculty members who teach and do research at India's main academic institutions and other research and development organizations. It contains information such as the expert's biography, contact information, expertise, academic papers, qualifications, and achievements, as well as the name of the researcher. The Information and Library Network Centre (INFLIBNET) established and manages the database with support from the National Mission on Education through Information and Communication Technology (NME-ICT) [22]. The database would be instrumental in the selection of panels of experts for various committees and task forces established by the Ministries/Govt. establishments for monitoring and evaluation purposes. Experts with a Post-Graduate/Doctorate in their respective subjects and 10 years of professional experience, National / International Awardees and Citation Laureates, or Postdoctoral Fellow / Research Scholar / Assistant Professor/Associate Professor/Professor or equivalent positions in teaching and research have joined this portal to strengthen and collaborate across organizations in India. Anyone in the country, including colleagues, future partners, support authorities, politicians, and academic scholars, can obtain information about experts in a timely and comfortable manner, identify peer reviewers for articles and research proposals, and establish direct communication with the experts who possess the expertise required by users. The portal has a database of more than 85779 researchers/professionals from more than 9139 organizations and more than 1212746 citations of publications by registered experts and professionals [22]. This portal also facilitates knowledge sharing and networks among scientists and researchers of various disciplines.

4.16 Baadal (https://baadal.nmeict.in/):

Baadal is a cloud orchestration and virtualization management platform developed and managed by IIT Delhi under MHRD's NMEICT scheme. It ensures optimal infrastructure usage and accelerates the implementation and deployment of eGov applications for academic purposes. This portal is hosted by the NIC data center and provides services such as (Baadal, n.d.) as i) Dynamic resource scheduling, utilization monitoring, and power management ii) Support for suspending, resuming, shutting down, powering off, and powering on virtual machines, as well as specifying resource requirements. It enables government and semi-government institutions to meet their infrastructure requirements while avoiding management problems and setting up their private cloud., iv) It also provides virtual machines, public IP, container services, load balancers, VPN gateways, DNS, and storage services for businesses and organizations. The e-clients of Baadal platforms are A-View, CEC, DayalBag Educational Institute, Tamil Nadu Agriculture University, Central University of Haryana, Central University of Gujrat, University of Hyderabad, Jammu University, Brihaspati, etc.

4.17 Virtual Lab: (https: www.vlab.co.in/):

Since COVID-19 instances are increasing by the day and educational institutions have been closed for more than a year, this portal is better suited for learners to learn about experimental studies because most laboratories are no longer operating in their physical form. We are unable to conduct studies due to physical distances and a lack of resources, particularly when advanced apparatus are involved. Furthermore, good teachers are always a scarce resource. With today's internet and computer technology, web-based and video-based courses solve the issue of teaching to some level. The constraints mentioned above can no longer prevent students and researchers from improving their skills and knowledge. In a nation like ours, expensive instruments and equipment must also be shared as much as possible with other researchers. It is feasible to construct effective experiments based on some of these equipment that would benefit a student's learning. It is feasible to construct effective experiments based on some of these equipment that would benefit a student's learning. Apart from promoting competent experiments to be done at places separated in space, internet-based experimentation allows for the utilization of resources, expertise, software, and data available on the web (and possibly, time). This platform provides remote access to the labs of undergraduate, postgraduate, and research scholars to conduct experiments by arousing their curiosity and sharing costly equipment and resources, which are otherwise available to a limited number of users due to constraints on time and geographical distance in various disciplines of engineering, such as Computer Science, Electronics & Communications, Electrical, Mechanical, Chemical, Civil, Biotechnology & Biomedical Sciences, as well as physical and chemical sciences. Virtual Labs will be made more effective and realistic by providing additional inputs to the students, like accompanying audio and video streaming of an

actual lab experiment and equipment. As an experiment, the virtual labs provide results for students by any method, like modelling the physical phenomenon by a set of equations and carrying out simulations to yield the result of the particular experiment, providing measured data for virtual lab experiments corresponding to the data previously obtained by measurements on an actual system, or remotely triggering an experiment in an actual lab and providing the student with the result of the experiment through the computer interface. There are 1221 nodal centres, 1938 workshops organized and 308712 participants are trained through this portal [23].

Conclusion:

Health and education are both important for the development of the nation. So, to provide health protection to the students from COVID-19, most of the educational institutions in India are not operating at their full potential to date. Hence, for continuing education, they use information and communication technologies to create, collect, store, and deploy information, which includes virtual classes, video conferences, radio, television, satellite, network, and hardware, the Internet, CD-DVD, etc. to provide education from class one to higher classes like UG, PG, and Ph.D. in the world. Several ICT initiatives such as SAKSHAT, SWAYAM, SWAYAM-PRABHA, BAADAL, VIRTUAL LABS, Spoken Tutorials, SAMARTH, Baadal, Vidwan, e-Yantra, Talk to the teacher, shodhganga, shodhshuddhi, etc. are taken under the umbrella of National Mission on Education through ICT (NME-ICT) to enhance learners' and teaching skills and improve the status of the higher education system in India. SWAYAM is one of the Indian MOOC platforms which achieves three cardinal objectives of education, viz. access, equity, and quality, and provides an opportunity for students to learn and achieve certification from various courses run by various SWAYAM coordinators, which will help them achieve great success in their careers as professionals, students, and teachers. Tables 1-2 and figures 1-4 shows that NPTEL is one of the national coordinators of SWAYAM in which the maximum number of candidates is enrolled, registered, and participated in the proctored exam, and they get a certificate when students successfully pass the course, rather than other national coordinators of SWAYAM. These ICT initiatives help students, teachers, professionals, and administrators to complete their work from anywhere, anytime within a minimum time duration. By adopting these ICT initiatives, educational institutions also achieve national and international frameworks.

References:

[1] "THE JOURNEY OF SWAYAM: INDIA MOOCS INITIATIVE," *Present. 8th Pan-Commonwealth Forum Open Learn. 27 - 30 November. 2016 Available http//oasis.*, no. November, pp. 27–30, 2016.

[2] R. Bhattacharya, "Foreign Direct Investment in Agriculture," *J. Commer. Econ. Manag.*, vol. 1, no. 1, pp. 16–22, 2017.

[3] E. Author, J. Tondeur, A. Forkosh-Baruch, S. Prestridge, P. Albion, and S. Edirisinghe, "Responding to Challenges in Teacher Professional Development for ICT Integration in Education," *J. Educ. Technol. Soc.*, vol. 19, no. 3, pp. 110–120, 2016, [Online]. Available: http://www.jstor.org/stable/jeductechsoci.19.3.110%5Cnhttp://www.jstor.org/stable/jeductechsoci.19.3.%5Cnhttp://about.jstor.org/terms.

[4] India. Ministry of Human Resource Development, "National Mission on Education through Information and Communication Technology: mission document," p. 111, 2009, [Online]. Available: http://mhrd.gov.in/technology-enabled-learning-1%5Cnhttp://www.sakshat.ac.in/.

[5] S. Tobgay and K. Wangmo, "Can ICT (Internet) overcome the natural geographical barriers of Bhutan in developing the nation ?," *Int. J. Educ. Dev. using ICT*, vol. 4, no. 4, pp. 148–158, 2008.

[6] U. K. Pegu, "Information and communication technology in higher education in India: Challenges and opportunities," *Int. J. Inf. Comput. Technol.*, vol. 4, no. 5, pp. 513–518, 2014, [Online]. Available: http://www.irphouse.com/ijict.htm.

[7] Z. Nan-Zhao, "Four 'Pillars of Learning' for the Reorientation and Reorganization of Curriculum: Reflections and Discussions," p. 9, 2004, [Online]. Available: www.ibe.unesco.org/cops/Competencies/PillarsLearningZhou.pdf.

[8] R. Mohalik, "ENHANCING QUALITY OF TEACHING LEARNING BY USING INFORMATION AND COMMUNICATION TECHNOLOGY (ICT)," *Sch. Res. Journal's Interdiscip. Stud.*, vol. 3, no. 18, pp. 100–112.

[9] S. Talebian, H. M. Mohammadi, and A. Rezvanfar, "Information and Communication Technology (ICT) in Higher Education: Advantages, Disadvantages, Conveniences and Limitations of Applying E-learning to Agricultural Students in Iran," *Procedia - Soc. Behav. Sci.*, vol. 152, pp. 300–305, 2014, doi: 10.1016/j.sbspro.2014.09.199.

[10] "Swayam Central." https://swayam.gov.in/ (accessed Mar. 25, 2021).

[11] "THE GAZETTE OF INDIA : EXTRAORDINARY [PART III-SEC. 4."

[12] "NationalMissiononEducationthroughICT AnMHRDProject SWAYAMPRABHA."

[13] "The SWAYAM PRABHA." https://swayamprabha.gov.in/swayamprabha_old/asset/sample/swayamprabha_brochure_new.pdf (accessed Mar. 25, 2021).

[14] "NPTEL Document.pdf - Google Drive." https://drive.google.com/file/d/1IIO27NkAwEeo2yhnvvnMo7ChKTkPkRyP/view (accessed Mar. 25, 2021).

[15] "National Digital Library of India." https://ndl.iitkgp.ac.in/ (accessed Mar. 25, 2021).

[16] "e-PGPathshala." https://epgp.inflibnet.ac.in/# (accessed Mar. 26, 2021).

[17] "Shodhganga : a reservoir of Indian theses @ INFLIBNET." https://shodhganga.inflibnet.ac.in/ (accessed Mar. 26, 2021).

[18] "ShodhShuddhi | Enhancing Research Quality." https://shodhshuddhi.inflibnet.ac.in/about.php (accessed Mar. 26, 2021).

[19] "ShodhGangotri: Repository of Indian Research in Progress: Home." https://shodhgangotri.inflibnet.ac.in/ (accessed Mar. 26, 2021).

[20] "E-ShodhSindhu: Consortium for Higher Education Electronics." https://ess.inflibnet.ac.in/about.php (accessed Apr. 08, 2021).

[21] "HOME, e-Yantra." https://e-yantra.org/ (accessed Apr. 08, 2021).

[22] "Vidwan | Profile Page." https://vidwan.inflibnet.ac.in/ (accessed Apr. 08, 2021).

[23] "Virtual Labs." https://www.vlab.co.in/#salient (accessed Apr. 12, 2021).

●

ROLE OF YAGYA IN REDUCING AIR POLLUTION

PRAGYA SAHU * AND DR. NARENDRA SHANKER TRIPATHI**

Pollution is the cause of all environmental problems and ecological imbalance, but atmospheric pollution has a direct influence on overall living and non-living things, it's controlled by adsorption, combustion, and afterward cleaning becomes past man's work except if the poisons are controlled at the source itself. Here, different types of sources contribute to air pollution-man-made activity. Today we are surrounded by the different kinds of gases pollutants like *NO2, SO2, SPM & RSPM* which are all beyond the limits prescribed by the various environmental agencies and are extremely harmful to human health. Billions of dollars are being spent by our government on gigantic pollution-controlling projects worldwide but with no satisfactory effects. The scientifically effective and long-lasting technique given by our Vedic scriptures is- YAGYA (The organization for global prosperity.) Yagya constitutes the foundation of the Vedic Indian culture. It was a typical conviction and a noticed certainty in the Vedic Indian culture, that Yagya was basic for the refinement of human existence from a Sudra to a Brahmin, and ultimately to a divine, great personality. Yagyas assumed a fundamental part of the overall advancement, flourishing and bliss in the Vedic age. This was surely normal, as the way of thinking and study of Yagya and the various methods of performing agni-Yagya were found and created by the rishis dependent on their profound understanding and inside and out examination of the human self, the complexities of the social framework, and the Mysteries of nature.[1] The scientists of furgusson college, Pune conducts Yagya and use havan samagri made by Yug Nirman Yojna, they collected data by liquid gas chromatography and found that the air pollutants were removed from the surroundings. Logical trials in such a manner have given empowering results and indicated Yagya as a promising method for killing worldwide contamination with feasible solid impacts. The potency of the herbs and other healthy substances amplifies a million times after sublimation in Yagya and these also reach miles ahead in the space with the spreading vapors and fumes of Yagya. In particular, these wreck the germs as well as dispose of the poisonous particles, toxins, and pollutants. Agnihotra balances the pattern of nature and supports human existence. It creates a pure, clean, and pleasant atmosphere for human beings. It removes the negative effects of pollution. The pertinence and need for fabulous scale Yagyas enlarge more in the current conditions when each part of nature is contaminated. Meaning the word Yagya is derived from the Sanskrit verb that has three meanings Devpujan (Worshiping Divinity): refined personality, divine virtues, Sangatikarana (Harmonious Association, Organization): unity, cooperation, team spirit, Dana (Charity): generous sharing, devotion to social and considering the whole universe as one's family.

Objective

To assess the effect of Yagya on ambient air pollution by ambient air sampler.

Yagya

"Since the Vedic era, the Yagya was performed by everyone, with faith and duty towards nature. It was believed (and yet in fact is believed) that Yagya prevents the evil planetary impacts over earth and nature."[2]

Recent researches on the assessment of Yagya as well as fumigation of medicinal herbs effect in reducing airborne bacteria and pollutants show the good potential of both in controlling air and water pollution Agnihotra is a scientific process through which the balance of CO2 and O2 is maintained in the atmosphere.[3]

"With Vedic mantra's chanting the process of Yagya i.e. putting the hawan samagri in Yagyagni is a spiritual experiment of sacrificing and sublimating."[4]

"The fundamental ingredient of sacrifice (Yagya) is vijnana (Foresight – deep knowledge) and performance of karma (duties). It is in the knowledge that the Devas meditate on Brahman; by knowing it without misunderstandings all the negative reactions are destroyed and one fully enjoys all good things."[5]

∗ Research Scholar in Department of Kriya Sharir, Faculty of Ayurveda, Institute of Medical Science, Banaras Hindu University
∗∗ Associate Professor, Department of Kriya Sharir, Faculty of Ayurveda, Institute of Medical Science, Banaras Hindu University

Science of Yagya

Any matter founds in three states i.e., Solid, Liquid or Gas. Out of these three, gas (a subtle and invisible form of matter) is most powerful and omnipresent. Solid and Liquid are visible, but a little powerful; whereas gas is invisible; but the most powerful. In the field of Medical Science, first, a patient is given the tablets (solid), then injection (liquid) and at last oxygen gas to save his life instantly. In daily life, even a common man knows that without food(solid) one can survive for years; without liquid for a few days; but without oxygen, gas one can't survive for few minutes.Yagya is the science of changing the solid (havansamagree and wood) and liquid into Gas. The power of steam is well known to everyone, which moves and carries heavy vehicles and trains. Take the instance of 'Body' and 'Soul'. The presence and power of the soul make all the activities and physical movement possible. Whenever the soul/spirit is found missing or absent, no activity or movement is possible by the body. If the spirit is full of energy, the body automatically becomes energetic. Our ancient Yogis and Rishis knew this science of spirit and used it to energize the body through the subtle process of 'Pranayam' and most often used this science to give new life to the dead bodies also. Subtle (sukshma) has always been more powerful than coarse (sthool). Lions and elephants are said to be powerful, but the subtle power of the mind of human beings has been ruling over them. If we come to observe the process of the running of this Universe, we would find that the subtle energy of the cosmos has been energizing the Earth and has been making it revolve around the Sun without any break or disturbance. In the ancient period, the miracle of curse or boon by rishis was nothing but the result of the science of changing the Coarse into the Subtle. The Coarse gets stronger in ratio, it loses its coarseness. Yagya is the same process and science of changing the Coarse into Subtle. When the coarseness of medicines is lessened or destroyed, they become thousands and thousands of times stronger and effective. This fact is widely used in Homoeopathy and Ayurveda. The ghee and havansamagree offered in the fire (Havankunda) with the chanting of Gayatri Mantra become stronger and more effective when they lose their coarseness. The holy fire doesn't destroy the offered articles; rather it expanses it up to the Gods of Vayu (air) etc."[6] Modern Science also endorses the same fact that in this world nothing destroys; it simply changes its forms. Param Poojya Gurudev, Vedmoorti, Taponishtha Pt. Shri Ram Sharma Acharya writes: "Yagya is the most powerful machine and system of changing the Coarse Articles into the Subtle Energy. It increases the energy of one seer (kilogram) ghee into one thousand seers of ghee. This is a miraculous and scientifically approved art by which an article worth one rupee is made valuable worth a thousand rupees. Dynamo produces electricity and Yagya is the most powerful dynamo which increases the energy thousands of times."[7]

Scientific Proof of Yagya Gurudev Pt. Shri Ram Sharma Aacharya cites an example: "To get rid of a gathering of a thousand people from my place, if I give each of them a bitter chili, they may be reluctant to leave the place; but If I make a powder of only one chili and put it into the fire, all of them will get ready to leave the place immediately as soon as the gaseous chilly reaches into their noses making them sneeze. We have seen that one thousand chilies couldn't force them to go away, but only one chili did it instantly and effectively as soon as it was changed into the gas by putting it into the fire. Why and how did it happen? The answer is so simple: Fire changes the Coarse Material into Subtle Material and at the same time it increases its energy thousands of times. A hundred gram gold doesn't give us as much energy and strength as the powder of one gram gold burnt to ashes in the fire."[8] In the same way, the energy of the Coarse Articles like medicinal herbs & ghee offered and put into the fire become thousands of times powerful and make thousands of people and creatures living miles away healthy by killing the harmful bacteria and germs:

"***twamagnehpradivahahurtadahtaihsumnayavahsushumidhasamidhiresavavridhanahoshadhimirukshatobhiprayanshipathirvavitishthave***."[9] And again: "***Idamhaviryatudhanannadifenivaava hat***"[10] which highlights the importance of Yagyagni (fire of Ablation/Yagya) that can increase the potential of things thousands of times and at the same time protects the creatures of the whole universe from diseases and makes them physically and mentally healthy.

Materials –

- Air Sampler (ECOTECH AAS 127, PM 10/ PM 2.5 Sampler), show in fig - 1
- Samidha - (Small pieces of selected wood), like- Sandalwood (Santalum Album), Mango (Mangifera Indica), Peepal (Ficus Religiosa), Deodar (Cendrys Libani), Palash (Butea Frondosa), Gular (Ficus Glomerata), Bargad (Ficus Benghalensis), Shami (Proposis Spicigera), Agar & Tagar (Aquilana Malaccensis & Valeriana Wallichi). The maximum size of each pieces not more than 20 cms in length and not more than 5 cms in thickness.
- Hawan Samagri- In Hawan Samagri uses Ashwagandha (Dunal), Red Chandan (Pterocarpus santalinus Linn), White Chandan - sandalwood powder (Santalum album Linn), Devdar (Cedrus Deodara), Giloya (Cordifolia), Gugala (Commiphora Mukul), Agar (Aquilaria Agallocha), Shatavari, Brahmi, Shankhapushpi, Jayphala (Myristica Fragrans Houtt), Lawang (Withania Somnifera Syzygiupzm Aromaticum), cow ghee.
- Hawan Kunda– During the Aswamedha Mahapurnahuti Yagya, we used the inverted pyramid shape havan kunda. The word 'pyramid' means the fire in the middle. This antiquated word significance for pyramid is firmly associated with the strange energies exuding from its focal shape. The pyramid shape is generally capable to produce and store an uncommon energy field, which has bacteriostatic properties. The shape of Agni Kund (hawan Kund) is designed in such a way that it generates the all directional energy which spreads all around. It goes about as a generator of uncommon energy fields and spreads them in its surrounding atmosphere. Show in fig – 2.

Fig.1. Air sampler

Fig. 2. Inverted Pyramid Shaped Agni Kunda

Methodology

- Collection/arrangement of material and equipment.
- After getting collection/arrangement of all materials, it has been systematically put all around the Yagya Kund (Hawan Kund)
- Our sampling location is Indra Gandhi Stadium, Korba, Chhattisgarh.
- Wind Direction: West to East.
- Sampling Duration: 08 hrs
- The sampling of air has been made before the Yagya started (Date - 10:11:2019) and noted.
- The Yagya started with Mantra chanting in the guidance of the Vedic Mantra Experts (Pandit)
- During the Yagya (13:11:2019) also the air sampling was done and noted.
- At the end of Yagya (14:11:2020) also Air Sampling has done and noted.
- The air samples have been taken all three days and noted as show in the table.
- The Analysis of readings has been done and obtained has been informed to the C.G. pollution control board officials as well to the public and Administration.

Observation

AMBIENT AIR QUALITY REPORT

* Sampling location: Indra Gandhi Stadium, Korba, Chhattisgarh
* Wind Direction: West to East
* Sampling Duration: 08 hrs.
* Flow rate: 1224m3/min
* 10.11.2019 Before Yagya
* 13.11.2019 During Yagya
* 14.11.2019 After Yagya

SL.NO.	Date	PM 10 (limit 100 µg/m3)	PM 25 (limit 60 µg/m3)	SOx (limit 80µg/m3)	NOx (limit 80 µg/m3)
DAY 1	10.11.2019	88	14	13.45	18.6
DAY 2	13.11.2019	55	11	8.25	17.4
DAY 3	14.11.2019	40	10	6.55	15.8

Result

The above observation table shows continuous reductions in pollution that mean improvement in the purification level of air in the environment. The table shows that PM-10 was 88µg/m3 which reduces to 55µg/m3 and at the end of Yagya it was found10µg/m3. Similarly, Sox was at initial stage 13.45 µg/m3 which reduces to 8.25µg/m3 on 13/11/2019, and finally, at the end of Yagya, it was found only 6.55µg/m3. Similarly, Nox was at initial stage 18.6 µg/m3 which reduces to 17.4µg/m3 on 13/11/2019, and finally, at the end of Yagya, it was found only 15.8µg/m3.

Thus the result shows positive and hopes fully well.

Conclusion

The Vedic Yagya is the most cost-effective and eco-friendly solution for the removalof ambient air

pollution in that selected area and it should be motivated and promoted in the public for awareness as well to adopt the Vedic techniques with the use of herbs and specific wooden pieces.

Recommendations

- There's further scope of study with the use of a controlled environment.
- The study can be done with the use of particular different wood pieces (samidha) at a time.
- The study can be done with the use of specific Vedic mantras chanting for a specific purpose.
- There shall not be any vehicle zone at a distance of at least 500 mt's to Yagya shala.
- For better study and more effective results monitoring could be done for more time (days)
- More Air samplers may be used in different directions to know the effects in wind direction and the opposite of it.

Reference

1. http://literature.awgp.org/akhandjyoti/2003/Jan_Feb/v1.YajnaVedicCulture.
2. https://www.kayakalpyoga.com/yagya-therapy/
3. Pandya, P. (2009) Applied Science of Yagya for Health and Environment, first ed., Shri Vedmata Gayatri Trust, Shantikunj, Haridwar.
4. http://ijyr.dsvv.ac.in/index.php/ijyr/article/download/6/19?inline=1
5. Taittirya Upanishad (Brahmananda valli 2.5.1)
6. Yajurveda Chapter 17/21.
7. Sharma, S. (1995), Yajna: Ek SamagraUpchar Prakriya-11.8, Mathura: Akand Jyoti Sansthan
8. Sharma, S. (1995),Yajna ka Gyan –Vigyan Page-2.105, Mathura: Akand Jyoti Sansthan
9. Rigveda Chapter 5/8/71.
10. Rigveda Chapter 295/5/1.
11. 'Does Yagna Add to the Prevalent Pollution?' —Article published in the proceedings of Ashwamedha Yagna held in Montreal, Canada (26 to 28 July 1996).
12. Journal of Science and Technology (2013), 2 (3),170-180.
13. Fumigating Substances used in Yagna' — article published in the proceedings of Ashwamedha Yagna held in Montreal, Canada (26 to 28 July 1996).
14. 'Yagna's Scientific Interpretation' — article published in the proceedings of Ashwamedha Yagna held in Montreal, Canada (26 to 28 July 1996).
15. Acharya SS" The Integrated science of yajna", Shantikunj 1, 16-17-2001, copliled by Dr Rajani Joshi Indian Institute of Technology, Mumbai, Publisher- Shantikunj, Haridwar (U.A.), India, 249411.
16. Pranav Dr. Pandya, "Reviving the Vedic culture of Yagya" (Hamara Yagya Abhiyan), Publisher: Vedmata Gayatri Trust Shantikunj, Haridwar Uttarakhand India-249411.
17. Singh Ruchi, "Yagya – Vedic way to Prevent Air pollution, Dev Sanskriti Interdisciplinary International Journal 1, 29-35, 2012.
18. Mishra, R & Gupta, B.R. (1996) Man, Environment and Agnihotra, Kanpur: C. S. A. University of agriculture and technology.
19. Patil, C.S. (2003) Role of Agnihotra in Prevention of Air Pollution. Asian Journal of Chemistry, 15 (1), 567-569.
20. Shivhare Niharika and Gour Anita "Management of Atmosphere and Health Using Hawan Technique – Review", Journal of Current Science, UGC Approved Journal No- 64664, vol 20, Special issue 02, February 2019 "13th –conference", (ICOSD), ISSN No – 9726-001X.

●

A COMPARATIVE STUDY OF CASE IN HINDĪ AND GERMAN

DR. PREM NIWĀS SINHĀ *

This paper presents a comparative study of case in Hindī and German languages. Both the languages belong to different sub-families of Indo- European language family. Hindī belongs to modern Indo-Aryan while German belongs to West Germanic group within the Germanic branch of Indo- European. Both the languages are rich in case construction. The main approach of this study is descriptive. This paper attempts to focus on similar and dissimilar declension and comparison of cases in both the languages. This study may be useful in the field of language teaching and translation as well.

Traditional grammarian have been discussing about case for centuries. The prototypical case system is the type illustrated by Indo-European languages such as Latin, Greak, Sanskrit and most of the contemporary Slavic languages. For case grammarians it is the case relations the underlying semantic structure of the sentence and it is case relations in terms of which the syntactic organization of a sentence can be explained most satisfactorily

The term 'case' is used for 'kārak' in Hīndī and 'die Fälle'/ ' der kasus' in German. Generally' cases are secondary grammatical category inflected forms of nouns/ pronouns which fit them for participation in key-constructions relative to verbs. " The grammatical relations expressed by cases are varied and numerous, such as, subject, object, means, purpose, advantage, separation, origin, possession, material, composition, place and time etc.[1]

According to David crystal:" A GRAMMATICAL CATEGORY used in the analysis of word classes (or their associated PHRASES to identify the SYNTACTIC relationship between words in a SENTENCE, through such contrasts as NOMINATIVE, ACCUSATIVE, etc."[2]

According to Barry J. Blake: "Case is a system of marking dependent nouns for the type of relationship they bear to their heads. Traditionally the term refers to inflectional marking, and typically, case marks the relationship of a noun to a verb at the clause level or of a noun to a preposition, postposition or another noun at the phrase level."[3]

1. Case in Hindī :

Case is an obligatory morphosyntactic category in Hindī. Definition: (1) According to pandit kāmatā prasād guru; Sangyā (yā sarvnām) ke jis rup se uskā sambandh vākya ke kisī dusare Shabd ke sāth prakāshit hotā hai, us rup ko kārak kahate haĩ "[4]

(ii) According to Dr. Āryendra sharmā, "case is that form of a noun (or pronoun) which expresses its relation with some other words in the sentence (sometimes the relation itself) is called case."[5]

In Hindī the oblique form of noun expresses the grammatical relations with the help of case-sings/ markers or postpositions- ne,ko, se, kā, ke and par etc. These are called 'Vibhakti (parsarg) in Hindī and always placed after the noun or pronoun whose relations with the other words in a sentence they indicate. They may, therefore, be called post positions, i.e. having the nature and function of prepositions but always be written as separate words with nouns (as rām ne, arun ko etc.) but should be tagged on the pronouns (as maĩne, usko, tumse etc.)"[6] In this regard, S.H. Kellogg has also argued that " XX X by the addition to the oblique form of the noun of certain particles, commonly called postpositions. These are similar to character to preposition in English, but as they always follow their noun, they are more accuratively termed ' postpositions"[7]

"The main postpositions that indicate case relations such as accusative, dative, instrumental etc, are the following. ' -ne' agentive, marker of a transitive subject in the perfective, ko- accusative, dative; 'se'- instrumental ablative/ commutative; 'mẽ', 'par-' locative; 'kā' possessive, genitive, and keliye- dative/benefactive. There are several other postpostions that indicate location direction and time etc. Such as ' ke pās- near, ke sāmane- in front of, ke pīchhe'- behind, 'ke andar' inside, ander' in, ke binā'-

∗ Guest Professor: Deptt. of Modern Languages and Linguistics, Sampurnānand Sanskrit University, Varanasi

∗∗ This articles is a revised version of the paper presented at the 'Tenth comparative Literature Association of India (CLAI) Biennial International Conferences. Central University of Gujarat, Gandhinagar, 30, Gujarat.

without, ' ke sāth' - with, ke dvārā- by , 'nīche'- below, under, khātir/ liye, vāste-for, 'badale mẽ-instead of , ke bāvjud'- in spite of, kyõki'-because of, viparīt-opposite, on the other side. bīch mẽ -between, mẽ - during, bagal mẽ - next to, par- on, at, lagbhag- about, kitaraf,- towards, is or, idhar - this way. tak' -upto etc."[8]

According to R.S. McGregor: The postposition ke/ kī as in ke sāth'- with, 'ke pās- near, beside, kī taraf'- towards, etc. were also called compound postposition."[9]

According to Blake Berry J.: In Hindī- Urdu, as in a number of other Indo- Aryan languages, there are three layers of case-marking elements: inflectional case, primary postpositions and secondary postpositions. Leaving aside the Vocative, the inflectional case system distinguishes two cases, nominative and oblique. The nominative covers both subject and object and is generally referred to in Indo-Aryan linguistics as the direct case.

The oblique case is used with the (1) primary postpositions such as se instrumental/ablative, mẽ locative, ke genitive and ko dative/accusative (it is used with indirect objects and specific, animate direct objects. x x x In Hindī the secondary postpositions which mostly express local notions such as 'between-bīch mẽ', 'infront of - ke sāmane', and 'behind- 'ke pīchhe', make more distinctions than the primary postpositions'.[10]

2. Type of case in Hindī :

Pandit kāmatā prasād guru and S.H. Kellogg argued thāt Hindī has eight cases.

(i) According to pandit kāmatā prasād guru :[11]

	Kārak	Vibha-ktiyaă		Kārak	Vibha-ktiyaă
1.	kartā	ne	5.	apādān	se
2.	karm	ko	6.	sambandh	kā, ke, kī
3.	karaŋ	se	7.	adhikaraŋ	mê, par
4.	sampr adān	ko	8.	sambodhan	he, ajī, aho, are

(ii) According to S.H. Kellogg:[12]

1.	Nomin ative	(karta)	5.	Ablative	(apādān)
2.	Accus ative	(karm)	6.	Genitive	(sambandh)
3.	Dative	(sampra dān)	7.	Locative	(adhikaraŋ)
4.	Agent	(karaŋ)	8.	Vocative	(sambodhan)

No postpositions are used with the nominative and vocative. Those which are assigned to the remaining cases, in High Hindī, are as follows: Accusative and dative -'ko', Agent,-'se', Ablative-'se', genitive- 'kā' (ke/kī), Locative,- mê, par, tak or talak. All of these are appended to the oblique form of the noun, where such form exists. He dropped the terminology of Sanskrit Grammar, the instrumental case (karaŋ) never denotes the instrument, but the agent only."

(ii) According to Tara Mohanan :[13]

1.	nominative	(zero)	5.	instrumental	(se)
2.	ergative	(ne)	6.	genitive	(kaa)
3.	accusative	(ko)	7.	locative 1	(mê)
4.	dative	(ko)	8.	locative 2	(par)

Each of these postpositions is invariable except for kaa, which agrees with the possessed noun.

(iv) According to Charles Fillmore:[14] In his seminal paper 'The case for case' published in 1968: (24-5) he proposed a set of six cases (agentive, instrumental, dative, factitative, locative, objective), which he later revised and extended to eight (agent, experiencer, instrument, object, source, goal, place and time). (1971). These cases were deep-structure cases, described as being 'underlying syntactic-semantic, relationships'. They were to be distinguished from case forms, which comprise the means of expressing cases: suffixes, suppletion, adposition, etc. (Fillmore 1968: 21ff).

(v) According to Dr. Āryendra sharmā:[15] Hindī has only two grammatical relations.

1. The direct 2. The oblique. He has also mentioned the vocative case.

He states that 1. The Direct is the simple unmodified form of noun, and mainly for indicating the subject and frequently also the

object. Example: laṛkā āyā' The boy come'.ghoṛā lāo- Bring the horse, rām phal khātā hai- 'Ram eats fruit'.

2. The oblique case is slightly modified form of noun used for indicating the other relation, and to same extent also the subject and object. The modified form expresses the different relations with the help of the postpositions ने (ne), को (ko), से (se), में (mê), पर (par). Example: laṛke ko (to the boy), gharõ mê (in the houses), shaharõ se (from the cities). rām ne phal khāyā. (Ram ate the fruit.)

3. The vocative case, i.e. the form of a noun used for addressing or calling a person, such as rām yahaă āo! Ram, come here!' has no relation with the other words in the sentence. × × × The vocative form is identical with the oblique, except that in the plural, ओं (õ) loses its nasalization. There are no case signs but ceratin interjections – ओ (o), अरे (are), हे (he), ऐ (ai) etc, may be prefixed to the noun. Example: are laṛke! idhaṛ ā. O boy! come here!, he bhagvān! o, god!; (o) laṛko! 'o, boys! the nasalized (- ओं(õ) is never used for vocative plural.

The description of eight cases are as follows:

1. Kartā (Nominative/ subject): According to pandit kāmatā prāsād guru,[16] Kriyā se jis vastu ke vishay mê vidhān kiyā jātā hai, use suchit karane vāle sangyā ke rup ko kartā kārak kahte haĩ" It is used as the grammatical subject of the verb.

A noun which is the subject of a verb is said to be in the nominative case." This case has 'ne' case-sign/postposition, i.e. also called ergative. 'ne' is attached to the subject of a transitive verb when it is used in the past (participle) form. Example: usne kahā. 'He said.'

1.	vah	kitāb	likhtā	hai.
	Nom. 3 rd P.sg.	book Nom. fem.sg.	write Prest. Tindf/masc. sg. aux	
	He writes the book.			
2.	usne		kitāb	likhī
	he.3rd p.sg. masc.- ne oblique/ergative	book	Direct object fem. sg.	write.fem.sg.perft.T.
	'He wrote the book'.			
	Another example: rām	kalkate	gayā	
	Ram. Nom.	calcutta-oblique-e	go.perft.	
	'Ram went to Calcutta'.			

(Noum- Nominative, P- person, sg- singular, fem-feminine, prest-present, T-Tence, Indf- indefinite, masc- masculine, aux- auxiliary, perft-perfect.)

Almost all verbs which are transitive, i.e. can take direct object, are, used in construction with 'ne' ergative in perfective forms. A few Transitive verbs like lānā ' to bring', bhulanā, 'to forget' donot take the subject-with 'ne', while with bolanā 'to speak', samajhanā- 'to understand' and bakanā to chatter- 'ne is optional. They are both transitive. Example:

laṛka kitāb lāyā. 'The boy broght the book'. Intransitive usne jhuṭh bolā. 'He spoke lie,'-Transitive. maĩ samajhā.'I understand.'- Intransitive. mainê āpkī bāt nahĩ samjhī. I did not understand what you said.- Transitive.

(ii) When the both parts of the compound verbs are Transitive, then case sign-ne is used after the subject in all the past tense. i.e simple past (sāmanya bhut), past perfect (purŋ bhut), present perfect (āsannbhut), presumptive imperfect (sandigadh bhut, past contingent imperfect (hetuhttumad bhut). Example: usne khā liyā.'He has eaten'

(iii) 'ne is used with causative verbs (preraŋārthak kriyāyê) in all the past tense except past continuous (apurŋbhut).

Example: maĩne usse das rupayā dilvāyā. 'I made him pay ten rupees'.

(2) Karm (Accusative/ Object) : According to pandit kāmatā prāsād guru:[17] jis vastu par kriyā ke vyāpār kā

phal paṛtā hai use suchit karane vāle sangyā ke rup ko karm kārak kahate haĩ" case- sing/postpostion 'ko'. The English equivalent of ko are: at, in, for, on, to etc, The accusative appears in Hindī under two forms. The one identical with the nominative, the other consisting of the noun in its oblique form with the appended postposition 'ko'. In this last case, when the accusative is the object of a transitive verb, 'ko' is incapable of translation, and merely gives a certain definiteness to the noun. But with an accusative preceding a verb of motion, it is to be rendered 'to', and when the accusative denotes the time at which, it will be translated 'at', as 'ghar ko chalo'- go to the house'. rat ko - at night."[18] Hence, the accusative is usd to denote 1. the direct 'object of a transitive verb or 2. local or temporal relations ko' is used for denoting:

(a) A person who does something involuntarily (such as like, dislike, remember, receive, enjoy, to know, to meet, to see, to hear or to be something under compulsion, requirement, necessity, obligation etc. Example:

rām ko bhukh lagī. "Ram felt hunger (hungry)'.(0,zero)

Mohan ko patā hai. 'Mohan happens to know'. (to)

(b) An animate object provided it denotes a particular being. Example: rām sītā ko khojate the. 'Ram was searching for Sita'.

(c) Noun denoting time when used adverbially. Example. vah shām ko āyegā. He will come in the evening.

Ajay mãgalvār ko jāyegā. Ajay will go on Tuesday.When the noun denoting time is qualified by some other words.'ko', may be omitted, except with the words denoting days and dates.

kal rāt (ko) koī āyā thā.'some body had come last night.' But shreyā ne somvār ko patr likhā.'Shreya wrote a letter on' monday.'

(d) ko (-e, -hê) is regularly attached to an object receiving greetings, homage, salute, thanks, congratulations, consure, etc. (with or without a verb requiring two objects). Example: guru ko praṇām, āpko badhaī, dhikkār hai tumhê.etc.

Cognate accusative-Many verbs, transitive and intransitive, may beused with an accusative derived from the same root. This cognate accusative is invariably used in the nominative form, and rarely, if ever, without an attributive adjunct. E.g: tum kaisī chāl chalte ho. 'What kind of walk you walking'.

Many verbs may be preceded by two accusatives. maĩ sab ko mithāī khilāũgā. 'I will feed all with sweets.'

3. Karaṇ (Instrumental/Agent): According to pandit kāmatā prasād guru[19]: Karaṇ kārak sangyā ke us rup ko kahate haĩ jisase kriyā ke sādhan kā bodh ho. Case-sign/postposition- 'se'. The English equivalent of 'se are: against, at, by, for, from, of, since, than, through, to, with, before and -ly: It is used only with the tenses of the perfect participle of transitive verbs to denote the agent.

'se' is used for denoting means, instrument/agent, manner, cause, reason, duration, difference and comparison, association, separation etc.

(a) The subject of a verb in the passive and in personal voices. Example: rām se patr nahĩ likhā Jātā. 'Ram is unable to write a letter ;'

(b) Means, instrument or agent: Example-Vah train se safar nahĩ kartā. ' He does not travel by train.'

shreyā pencil se likhatī hai. 'Shreyā writes with a pencil'

(c) Manner: Example- dhyān se suno.; 'Listen with attention/(attentively).'

(d) cause, reason, origin: Example- Vah haije se marā . 'He died of cholera.' dahī dudh se bantā hai. 'Curd is made from milk.'

(e) Duration: Example- gāṛī samay se pahle aaī. 'The train arrived before time.'

(f) Difference and comparison between two persons or things: Example: Sunil anil se baṛā hai. 'Sunil is older than Anil.'

yah syāhī usse alag hai. 'This ink is different from that.'

(g). Surprise, envy, astonish. glad, amuse, grieve, etc: Example: uskī nīchatā se mujhe ghriṇā thī. I was disgusted at his meanness.' maī āpke utsāh se chakīt thā.'I was surprised at your zeal.'

(h) Attachment: Example- ise dīwālse lagāo. 'Put it against the wall.'

(i) se = -ly. Adjective is used, often with the ending -ly for ‘se’. e.g.:garībī se -'poorly.' jhat se -'quickely. etc.

(j) Separation: e.g.: vah shahar se chalā gayā. 'He went away from the city.'

(k) Medium: e.g.:vah khirkī se dekhtā hai.'He sees through the window.'

4. Sampradān (Dative): According to pandit kāmatā prasād guru:[20]

"Jis vastu ke liye kriyā kī jātī hai uskī vāchak sangyā ke rup ko sampradān kahate haī." Case-sign 'ko' (to), ke liye (for). The English equivalent for 'ko' is 'to' and 'for' ke liye is to or for. It is used to show the indirect object of sentence. It refers to whom or for whom which is usually a person or a living thing. Example: Krishna garīb ko vastra detā hai.' Krishna gives clothes to poor.' maīne āpke liye ek kitāb kharīdī hai. 'I have purchased a book for you. vah paṛhne ke liye āyā hai. 'He has come to read.' Hence, the dative used to denote the indired object of a transitive verb. It is very commonly used to possession or acquisition.

5. Apādān (Ablative): According to pandit kāmatā prasād guru:[21] "Sangyā ke us rup ko kahate haĩ. jisase kriyā ke vibhāgõ kī avadhi suchit hotī hai. Case-sign-'se'. The English equivalent for 'se' is from, but sometimes also 'by' or 'with. It denotes separation or keeping away from something. Example:

peṛ se patte girate haĩ. The leaves fall from the tree. gangā himālaya *se* nikaltī hai.'The Ganges originates from Himalaya'.

karaŋ and apādān both have same case-sign 'se' but in karaŋ - it denotes the means, instruments/agent while in apādān - it denotes separation. Example:

Karaŋ: āryā kalam se likhatī hai. Arya writes with a pen. 'apādan: peṛ se phal girā. 'The fruit fell from the tree'. Hence, the ablative is used commonly with verbs of motion to denote the place from which the motion proceeds.

6. Sambandh (Genitive): According to pandit kāmatā prasād guru"[22]Sangyā ke jis rup se uskī vāchya vastu kā Sambandh kisī dusarī vastu ke sāth suchit hotā hai use sambandh kārak kahate haĩ. Case-Sign-kā,ke,kī. The English equivalents, of kā, ke and kī are- 's (apostrophes) of, into, for and to. 'kā' denotes relationships between a Noun or a Pronoun and another Noun which follows the former. It is used before all masculine nouns in the nominative singular or in that form of the accusative which is the same as the nominative singular. If the Noun that follows is feminine (singular or plural), 'kā' changes to 'kī'; if it is masculine and plural, or has an oblique form 'kā' changes to 'ke' It denotes possession and relationship, source, origin, cause, characteristic, material or composition, worth and measure (shape or time), part of whole and purpose etc. The Genitive in Hindī expresses a very great variety of relations, which may be classified as follows:

(a). Possession and relationship: Example- aruŋ kā bhāī.'Aruŋ's brother'. anup ke bhāī ne kahā. 'Anup's brother said.'

(b). Material or Composition: Example- patthaṛ ke makān - 'houses of stone'. sone kā kaṛā - 'a bangle of gold'. kāgaz kī nāv - 'a boat of paper.'

(c). Worth and measure: Example- ek mīl kī duṛī - 'a distance of one mile.'

(d). Source, origin, cause: Example-kālidās ke nāṭak.'the plays of kālidās.'khet kī upaz.'the production of the field.'

(e). Purpose: Example- pīne kā pāni- 'water for drinking.'

(f). Characteristic: Exanple: maă kī mamtā- 'The love of a mother.' other examples are as follows.'

usne māmle kī jaăch kī. 'He enquired into the matter.'mere patr kā javāb bhejiye. 'Send reply to my letter.'In this case, in place of case- sign, the suffix-vāle is used. Example: shyām kā ghār- shyām vālā ghar- 'Shyām's house.premchand ke upnyās- premchand vāle upnyās- Premchand's novel, rām kīkitāb- rām vālī kitāb-'Rām's book.

7. Adhikaraŋ (Locative): According to pandit kāmatā prasād guru:[23]"sangyā kā vah rup jisase kriyā ke ādhār kā bodh hotā hai. adhikaraŋ kārak kahalātā haĩ."Case-sign-'mẽ' and par; The English equivalents of mẽ are among, between, at, in, into, of and with; for 'par' are after, with at, but, in, on, upon and to.

(i) mẽ is used for denoting: (a) location or presence (of something) in or with in something.example: merā ghar shahar mẽ hai.'My house is in the city.'ise do ādmiyõ mẽ baăto. 'Divide it between two men.'

vah chorõ ke bīch mẽ paṛ gayā. 'He fell among the thieves. kitāb mẽ dekhiye.'Look into the book.'

mujhe safaltā mẽ vishvās hai.'I am confident of success.

uske kāmõ mẽ merā koī hastchhep nahiĩ hai. 'I have no interference with his affairs."Hence, the locative with mẽ denotes, primarily existence in a place.

(ii) par- is used for denoting location or position on or upon or at something. Example- kītāb mej par hai. 'The book is on the table.'vah ghar par nahiĩ hai. 'He is not at home.'ve mujh par nārāj haĩ.'They are angry with me.'

(b). Sequence of actions or happenings: Example- yahaă āne par maĩne dekhā. 'After reaching here, I saw.'

(c). Objects of (compound) verbs signifying mercy, faith, confidence, anger etc. Example- jivõ par dayā karo.'Be kind to animals.'īshwar par vishvās karo. 'Have faith in God.'vah naukrõ par krodh kartā hai. 'He gets angry with the servants.'

(d) Point of time which an action takes place: Example- maĩ thīk samay par pahŭchā. 'I reached at the right time.'Hence, the locative with 'par' denotes external contact.

8. Sambodhan (Vocative Case): According to pandit kāmatā prasād guru:[24] sangyā ke jis rupse kisī ko chitānā yā pukārnā suchit hotā hai use sambodhan kārak kahate haĩ. (have disscused on point 3- 'The vocative case)

(a). Use of article (uppad) in Hindī:[25]As Hindī has no article, the distinction indicated in English and German by the definite and indefinite article, cannot always be expressed in Hindī. Example: 'ghoṛā' may be either 'a horse' or 'the horse.'striyaă may be sometimes rendered by the numeral 'ek' - a, an, one or the indefinite pronoun 'koī-'someone, somebody or any refers to a person and kuchh'- something' refers to a thing. Example: ek ghoṛā-'*a* horse; mere pās ek kitāb hai. 'I have a book.'koī ā rahā hai. 'Somebody is coming.'

āj koī nahiĩ āyā. 'Nobody came to day.' (negative indefinite) mere pās koī kitāb nahiĩ hai. 'I have not any book. (negative indefinite)

(b). Samānādhikaraŋ (Apposition):[26] According to pandit kāmatā prasād guru: " jo shabd yā vāk*y*ānsh kisī samānārthī shabd kā arth spashţ karne ke liye vākya mẽ ātā hai, use us shabd kā samānādhikaraŋ kahate haĩ……. samānādhikaraŋ shabd jis kārak mẽ ātā hai, us mẽ uskā mukhya shabd bhī rahata haī.'

'Noun in apposition take the same case as the noun or pronoun they refer to. Example: (i) dashrath ke putr rām van ko gaye. 'Ram, the son of Dashrath went to the forest.' (ii) dillī, bhārat kī rājdhānī.'Delhi, the capital of India.'

(c) Portmanteau form:[27] The Hindī,pronouns for case or emphasis can therefore be regarded as portmanteau forms of the uninterrupted linear sequence of pronoun + postposition or pronoun + emphatic particle. The portmanteau accusative/dative forms are doublets in the sense that full forms are also possible with the expected postposition, mujhko, hamko and so on. some pronominals also have a distinctive 'emphatic form' derived from fusion with emphatic particle 'hī'. Example: mujh+hī= mujhī, tum+hī= tumhī etc.'

(d) Wordorder in Hindī : Hindī is a verb final language, i.e. The order of the words in a sentence is subject, object and verb. (S+O+V). Of course, the position of the verb is relatively more fixed than the position of any other constituent. Generally, In Hindī normal (sādhāraŋ)/grammatical (vyākaraŋiya) word order is found. The normal order of words in a sentence is as follows:

Laṛkā	phal	khātā hai.	(Transitive verbs).
Subject	Object	Verb	'Boy eats fruit.'

Transitive verbs with two objects:

maĩne	unko	rupaye (ko)	diye	'I gave him the money.'
subject	indirect object	direct object	verb	
Nominative	Dative	Accusative		

(d) Declension of Noun: According to pandit kāmatā prasād gur ru:[28] and Dr. vāsudev nandan prasād[29] declension of nouns are as follows:

Case	Singular	Plural
Kartā (Nominative)	bālak (o)	bālak (o)
	bālak ne	bālakõ ne
Karm (Accusative)	bālak ko	bālakõ ko
Karaṇ (Instrumental)	bālak se	bālakõ se
Sampradān (Dative)	bālak ko, ke liye	bālakõ ko, ke liye
Apādān	bālak se	bālakõ se
(Ablative)		
Sambandh (Genitive)	bālak kā, ke, kī	bālakõ kā, ke, kī
adhikaraṇ (Locative)	bālak mẽ, Par	bālakõ mẽ, Par
Sambodhan (Interjection)	he, ho, are, bālak	he, ho, are bālako.

2. Case in German

Most of the featunes of the German Case system derive from Latin.

Definition: (i) According to A.E. Hammer : 'The grammatical category of CASE relates to the inflection of a NOUN, PRONOUN, or NOUN PHRASE which indicates its role in the sentence or clause' [30]

(i) According to Herinz Griesbach - Dora Schulz: " Die Fälle, die im einzelnen mit Nominativ, Akkusativ, Dativ und Genitiv bezeichnet werden, sind FUNKTIONSKENN ZEICHEN, Sie sind an dem Deklination formen der Nomen und der sie begleiten Attribute sowie an den Deklinations formen der pronomen zu erkennen.[31],

The Articles (der Artikel)-definite (bestimmt) and indefinite (unbestimmt) play an important role in the case declension/formation.

2 (i) **Type of case in German:** According to German Linguist and Grammarian German has four cases: Der Nominativ (The Nominative), Der Akkusativ (The Accusative), Der Genitiv (The Genitive), Der Dativ (The Dative)

1. Der Nomiativ/der werfall, (who-case), Subject (The Nominative):

(i) According to Heinz Griesbach-Dora Schulz: "Der Nominativ ist die Grundform eines Nomens oder Pronomens, in der ein Subjekt (Subjektsnominativ) oder ein Nomen oder Pronomen als Prädikatsergänzung (Prädikatsnominativ) steht."[32]

(ii) According to A.E. Hammer : The nominative case is the neutral case and is used with nouns or pronouns in isolation."[33]

(a) It is used for the subject of the sentence, that is the person, animal or thing doing the action. The main function of the nominative case is to mark the SUBJECT of the finite verb. Example: as Mädchen singt.' The girl is singing'.

Der Fußballspieler schuss ein Tor. 'The Football player shot a goal'. Hence, a Subject always stamds in the nominative case. Example: Der Zug war nicht Pünktlich. The train was not punctual.

(b) It is also used in the predicate complement of copualr verbs i-e. after the verbs 'sein'- 'to be' and 'werden'-'to be,' become. George, o.curme[34] has used the term copula (i.e A verb of incomplete predication is called copula) for sein and werden. Example: Brecht ist ein Groβer Dichter. 'Brecht is a great writer. Das wird ein Pullover. It is going to be a jumper.'

2. Der Akkusar tiv/ der wennfall, (Whom-case) direct object (The accusative): (i) According to Heinz Griesbach-Dora schulz: "Der AKKUSATIV steht als OBJETS FALL bei transitiven verben. Frage : Wen? bei Pronomen; was bei sachen und Begriffen ;[35]

(ii) Accourding to Rob Scriven : "Accusative case the form of nouns, adjectives, pronouns and articles used in German to show the direct object of a sentence and after certain preposition ;[36]

The accusative case is used to show the direct-object of a verb. This is the person, animal or thing affected by the action of the verb. Example: Richard versteht den Satz.'Richard understands the Sentece.' Er wiederholt einen Satz. (ein+den=einen) 'He repeats a sentence.' Here singular masculine noun has (einen satz) the distinctive articles 'den' and 'ein'.

The accusative case is used to show the direct object of a sentence, and after cartain perpositions. (in-into, in; auf-on; an-on, hinter-behind, etc. Example. Ich gehe auf die Straβe. 'I am going on he road.'Ich komme an Montag. 'I am coming on Monday.'

The accusative is used in many adverbials (e.g. to mark length of time) e.g: Ich sah ihn letzten Freitag. 'I saw him last friday'. Some intransitive verbs can be used with a cognate accsative noun. In connection with accusative case George, o curme[37] has used this kind of A Cognate accuative, that is, an object of a meaning cognate or similar to that of the verb, may repeat and also explain more fully the idea expressed by the verb. Example: Er strab den Tod fürs Vaterland. 'He strived to death for the native country.' Sie singt ein Lied. 'she sings a song.'

This construction has become very productive, so that now an accusative can be quite freely added to an intransitive to complete its meaning."

"Most conventional greetings and wishes are in the accusative case. Example: Guten Morgen! 'Good morning!' Herzlichen Glückwunch! Heartly congratulations! 'Angenehme Reise! 'Pleasent journey!'

The accusative case is used with certain preposition: bis (upto), durch (through), für (for), an (on,to), gegen (against), zwischen (between), and ohne (without) etc.

3. Der Genitiv/der wessenfall, (whose-case), (The Genitive/possessive): (i) According to Heinz Griesbach-Dora Schulz: "Der Genitiv ist eine Deklinations form für ein objekt (objektsgenitiv), für eine freie Angabe (freier Genitiv), für ein Attribut (Attributsgenitiv) und für ein Nomen, oder Pronomen, dasvon einer Präposition abhängt (Präpositional-genitiv)."[38]

(ii) According to Rob scriven: "The form of nouns, adjectives, pronouns, and articles used in German to show that something belongs to someone/somebody and after certain perpositions and verbs."[39]

It is also called possessive because it is mainly used to show possession or to link Nouns together. In the genitive case 'der' for masculine nouns and 'das' for neuter nouns change to 'des'. Ein changes to 'eines' The endings of masculine and neuter singular nouns also change in the genitive case.

(i) -s is added to masculine and neuter nouns ending in-en,-el, -er. Example: der Wagen (car)- des Wagen (of the car), der Esel (donkey)- des Esels (of the donkey), der Computer- (computer)- des Computers (of the computer). Example: Ich magdie Farbe des Wagens. 'I like the colour of the car.'

(ii) -es is added to most masculine and neuter nouns of one syllable ending in a consonant. Example: der Freund (friend)- des Freundes (of the Friend). das Schloss (castle)- des Schlosses (of the castle). Example: Das Buch meines Freundes. 'My friend's book/ The book of my friend.'

(iii) '-die' changes to 'der' and 'eine' to 'einer' in the genitive, The endings of feminine singular nouns in this case are the same as in the nominative. Example: die Ärztin (female doctor)- 'der Ärztin,' etc.

According to Heinz Griesbach-Dora Schulz The detailed declension is as follows:[40]

	Masculine	Neutral	Feminine
Singular:	des Schulers (of the student)	Des Zimmers (of the room)	Des Schwester(of the sister)
	Des Freundes (of the friend)	des Kindes (of the child)	
	meines Schulers (of my students)	meines Zimmers (of my room)	Meiner Schwestewer (of my sister)

Plural: der { Schuler, Zimmer, Schwestern } meiner { Schuler, Zimmer, Schwestern }

The skeleton declension is as follows:

Singular:	des-(e) s	des-(e) s	der
Plural:		der	

Hence, Genitive singular-masculine has often the ending -s or -es ; neuter has always the ending-s or -es; feminine has not any ending. Plural- masculine, neutral and feminine have not any ending."

(i) The main function of the genitive case is to link nouns or nouns phrase. For this, English typically uses the preposition 'of"

The genitive case is used with certain preposition. e.g. statt/anstatt- 'in stead of,' 'in stead of,' trotz-despite, in spite of,'während-'during,'wegen-'because of, for the sake of,' innerhab- 'inside, within. Example:Ich besuchte meinen Onkel statt meinen Bruder.'I visited my brother instead of my uncle.'

(ii) 'von' is also used: (a) in most partitive constructions ,e.g. viele von meinen Freunden/viele meiner Freunde - 'Many of my friends.'.

(b) with geographical names which have no article. e.g. die Hauptstadt von Deutschland/Die Hauptstadt Deutschlands. 'The capital of Germany.'[41]

George, o curme has used attributive Genitive and classified in to various kind with discussed in detail."[42]

The various forms of Attributive Genitive are as follows:

a. Genitive of origin.	f. Descriptive Genitive :It has two groups
b. Possessive Genitive.	(i) Genitive of Quality or characteristic.
c. Subjective Genitive.	(ii) Quite similar is the Genitive of measure.
d. Objective Genitive	(g) Apositive Genitive.
	(h) Partitive Genitive.
e. Genitive of material and Composition	(i)Attributive Genitive corresponding to the Genitive with Reflexive verbs

4. Der Dativ/der wemfall, (to-whom case), in direct object (The Dative: (i) According to Heinz Griesbach-Dora Schulz: "Der Dativ steht als OBJEKTSFALL, wenn das verb eine Handlung beschreibt, die sich einer Person oder Sache zuwendet."[43]

(ii) According to Rob Scriven: "Dative case the form of nouns, adjectives, pronouns, and articles used in German to show the indirect object of a verb and after certain verbs and prepositions."[44]

The Dative case has the widest range of all the German cases, with many idiomatic uses. It is used (i) as the indirect or (ii) sole object of a verb. The Dative case marks the indirect object of transitive verbs. It is used typically with verbs of giving and receiving etc., and it often corresponds to an English indirect object indicated by the word order or a phrase introduced by to or for. Example: Ich habe meinem Freund ein Buch gebracht."I brought my friend a book/I brought a book to/for my friend."

(ii) Many verbs take a sole object in the Dative case. e.g. danken (to thank), dienen (to serve), folgen (to follow), helfen (to help), etc. e.g helfen (to help): Er half seinemVater in der Küche. 'He helped his father in the kitichen.

The Dative case can indicate a person on whose behalf the action done.

(i) This is sometimes referred to as the dative of advantage or benefactive dative and often corresponds to an English phrase with 'for'. Example: Er füllte meinem Vater das Glas. 'He filled the glass for my father/my father's glass.'

(ii) The Dative case often indicates possession. This is especially frequent with parts of the body or articles of clothing, etc. The definite article is used to refer to parts of the body and articles of clothing. Example: Hast du die Zähne geputzt. 'Have you cleaned your teeth'.

(iii) The Dative case is used in impersonal constructions with sein and werden with certain adjectives expressing sensations. The person in the dative is expressing the sensation; it corresponds to a simple subject in English. e.g: Es ist mir kalt/Mir ist kalt. 'I am cold'.[45]

(iv) Ethical Dative: George, o Curme states[46] that,It is employed to denote the person who has or is expected to have an emotional interest in the statement, especially a dative of a personal pronoun in the first or second person which is frequently in conversation inserted here and there, in some particular porportion, to indicate that particular point seems important to the speaker or should be noted by the person addressed. Example: Das war euch eine Freude.'That was a joy, I can tell you!' Seid mir doch nett! 'Be nice for my sake!'

(v) The Dative case is used after certain prepositions to show position:[47]an-on, to, at; auf- on, in, to, at; hinter-behind; in-in, into, to; neben - next to, beside; zwischen-between;über-over, across, above; unter-under, among; vor - infront of, before.' Example: Ich sitze neben dem Fenster. 'I am sitting next to the window.'

5. Vocative case: In German, Vocative case (direct object) is also found. The name of a person who is often spoken alone without other words, as in Fritz! is spoken in loud tone and prolonged vowed to call him into the house, or Fritz! is spoken quickly with a short vowel and angry tone when we scold him frequently a pronoun is spoken in angry tone is sufficient to express a threat: Du! ('thou')!.Vater, sieh mal! 'Father, just look'!

6. **Abstract Case:**[48] Although not all languages habe overtally marked morphobgical case, generative grammar assumes that all languages have abstract case. Even in languages with inflectional case system, case is quite often abstract in the sense that it is not always realised by a distinctive inflectional form or marker. x x x Abstract case is found in a number of other recent theories. In chomsky's Government and Binding model case theory, which is largely about abstract rather than morphological case, is an important module or component of the Grammar. In this theory a distinction is made between structural case and inherent case. Structural case is assigned to noun phrases according to their position in a stuctural configuration, where there are case assignments peculiar to particular verbs or set of verbs, these assignment are held to be inherent. In German, for instance, most two- place verbs take an accusative complement, but a few take a dative complement. The default assignment is accusative and this can be handled stucturally, but the assignment of dative needs to be specified in the lexicon for particular verbs and therefore is taken to be inherent.

The contrast between structural and inherent case shows up in pssivisation. In Government and Binding theory all noun phrases must be assigned case. A passive verb is considered incapable of assigning case and this motivates the movement of the object to the subject position where it receives nominative case from inflectional (if finite). Naturally the abstract accusative case associated with the direct-object relation and the accusative morphological case that marks the abstract case/grammatical relation donot follow the NP in its movement to subject position. However, where a verb assigns inherent case this is retained. The contrast is illustrated in (1) and (2). In (1) the accusative-marked object (1a) shows as a nominative subject in (1b). In (2) the dative-marked complement of 'helfen' in (2a) shows up as a dative subject in (2b).

1 a.

Sie	sieht	ihm.
she. Nominiative	sees	him. Accusative

'She sees him'.

b.

Er	wird	gesehen.
he. Nomini ative	is	seen

'He is seen'.

2. a

Sie	hilft	ihm.
she. Nomini ative	helps	him. Dative

'She helps him'.

b.

Ihm	wird	geholfen.
him. Dative	is	helped.

'He is helped'.

Clearly there is a contrast, but in many analyses (2b) would be taken to be an impersonal passive with no overt subject and ihm in (2b) would be taken to hold the same grammatical relation as in the active (2a)."

7. Apposition (case use in apposition) : (i) According to George, o. curme[49] : A noun which explains or characterizes another noun is placed alongside of it, and from its position is accordingly called an appositive (placed along side of).

(ii) According to Heinz Griesbach - Dora Schulz: "Die Apposition ist ein attribute und steht zur näheren Erklärung bei einern Nomen. Sie stent in dem gleichen Fall wie das ihr übergeordnete Nomen."[50]

Example: "Mein Bruder, der Kaufmann.' My brother, the businessman."

Berlin, die Hauptstadt der Bundesrepublik Deutschland. 'Berlin' The capital of Federal Republic of Germany.'

(i) A noun phrase in apposition usually has the same case as the noun which it follows:[51]

Example: 'Es spricht Herbert Werner, der Vorsitzende des Vereins. 'The speaker is Herbert werner, the chairman of the Society.'

(ii) In dates a weekday introduced by 'am' may be followed by the date in the dative or the accusative.' Example:

'am Montag, dem 2 juli 2011. or am Montag, den 2 juli 2011

'on Monday, of 2 july 2011.' or 'on Monday, of 2 july 2011.'

(with Genitive)- eine Beschreibung seines Geburtsortes, eines Dorfes in der Normondie.' a description of his birth place, a village in Normondy.'

7. Use of article (Der Artikel): German, Like English has two types of article. (i) The definite article (ii) The indefinite article. The definite article in German (der, die and das) is used in more or less the same way as we use 'the' in English.

(ii) The indelinite article 'ein' is used for 'a' and 'an' in English, and 'kein' indefinite negative is used for no, not any in English.

The articles play an important role in the case construction. The articles belong to a close set of small words known as Determiners. They are used with Nouns to link them to a particular context or situation.

According to cases, the declension of the definite article (bestimmt artikel) and noun inflections are ar follows:[52]

	Singular			Plural
	Masculine	Feminine	Neuter	All genders
Nominative	der Mann, 'the man'	die Frau 'the women'	das Haus 'the house'	die Männer 'the men'
Accusative	den Mann, 'to the man,'	die Frau 'to the woman'	das Haus 'to the house'	die Manner 'to the men
Genitive	des Mannes, 'of the man',	der Frau 'of the woman'	des Hauses 'of the house'	der Männer' to the men'
Dative	dem Mann (e)'to the man'	der Frau 'to the woman'	dem Haus (e) 'to the house'	den Mannern 'to the men.'

The definite article assumes just six forms: der, den, des, dem, das and die (morphologically analysable as two bound morphemes d+er, d+en etc.). Since gender distinctions are inherent in the noun, and since plurality is richly marked on the noun itsetf, the most important fauction of the determiner is to mark case. Individual definite article forms can be used in more than one case function without risk of intolerable ambiguity: der followed by a masculine singular noun is a nominatve; followed by a feminine singular noun a genitive or dative; and followed by noun with plural marking a genitive; etc.

(iii) The declension of the indefinite article (unbestimmt artikel) 'ein'- 'a' 'an' and indefinite negative (unbestimmt negativ) 'kein'-'no, not any,' are as follows.[53]

	Masculine	Feminine	Neuter	Masculine	Feminine	Neuter	Plural
Nominative	ein Lehrer	eine (ein+die) Regel	ein Heft	kein Lehrer	keine kein+die) Regel	kein Heft	keine Lehrer
Accusative	einen (ein+den)	eine (ein+die)	ein	keinen (kin+den)	keine	kein	keine
Genitive	eines (ein+des)	einer (ein+der)	eines	kines (kein+des)	keiner (kein+der)	keines	keiner
Dative	einem (ein+dem)	einer	einem	keinem (kein+dem)	keiner	keinem	keinen (kein+den)

The indefinite article 'ein' has no plural. The indefinite article 'ein' has a negative form 'kein'. Example. Haben sie ein Buch?',,Nein, Ich habe kein Buch''. Do you have a book?' 'No, 'I donot have any book.'

,,kennst du einen Arzt?"(Accusative).,,Kennst du keinen Arzt. (Accusative) 'Do you know a doctor? 'Donot you know any doctor?

Use of the defnite articles :

'Der Lehrer kommt auch. (Nominative). 'The teacher also comes'. Richard versteht den Satz. (Accusative). 'Richard understands the sentence.'.Er ging in die Wohnung des Freundes (Genitive). 'He went to the Friend's flat? Wir gehen zu einem Freund. (Dative). 'We are going to a friend.'Der Garten ist hinter dem Haus. (Dative). 'The garden is behind the house'

8. Cases governed by verbs: 1. Verbs Governing two accusatives:[54] In General, only one accusative (direct) object is possible in a sentence, However, a small number of verbs allow two accusative object.

(1) Verbs with two accusative objects: (i) kosten (to cost) and lehren (to teach) are normally used with two accusatives . e.g:

Der Flug hat meinen Vater 5000 Euro gekostet.'The flight cost my father 5000 euros.'

Sie hat mich Deutsch gelehrt. 'She has taught me German.'

(ii) abfragen and abhören 'test somebody orally' can be used either with two accusative objects or a dative of the person and an accusative. e.g:,,Der Lehrer hat ihn/ihm die englischen Vokabeln abgefragt/,abgehört." 'The teacher tested him on his English vocabulary.'

If only the person is mentioned in the sentence, only the accusative is used. e.g.: ,,Der Lehrer hat ihn abgefragt/abgehört." 'The teacher asked him.'

others verbs i.e. heiβen - to call, to name; nennen-to call, schleten - to scold etc. are used with two accusatives.

2. Verbs Governing the dative:[55] A fair number of German Verbs have a dative object, but no accusative object. x x x Dative objects often relate to person who are advantaged or disadvantaged in some way though the action expressed by the verb.

(a) common verbs which govern a dative object. Example: abraten - advise against; begegnen-'meet (by chance), trauen- 'trust', danken -'to thank etc. Example: Sie hat ihm dar on abgeraten. 'She advised him against it.'Ich traute meinem Augen nicht 'I could not believe my eyes.'

(b) Most verbs with the meaning 'happen, 'occur,' govern a dative. Example: Passieren-'to happen', zustoβen -'to happen,' vorkommen-occur etc, Example: Was ist ihm gestern passiert. 'What happend to him yesterday.'

(c) Verbs with certain perfixes usually take a dative. i.e. those with bei-, ent-,entgegen-, nach-, wieder-, zu- etc. Example - Sie kam mir entgegen. 'She came towards me.'Er hat dem Gespräch zugehört. 'He listened to the conversation.'

(d) A few reflexive verbs have a dative object: With these the reflexive pronoun is the accusative object:'Sie mussten sich dem Feind ergeben.'They had to surrender to the enemy.'Sie näherten sichden Stadt. 'They approached the city.'

3. Verbs governing a dative and an accusative object.'[56] There are transitive verbs with two complements, i.e an accusative (direct) object, which is usually a thing, and a dative object, called the indirect object, which is usually a person.

(i) Vervbs of giving and taking (in the widest sense) govern a dative and an accusative object. Example: Er hat dem Lehrer einen Bleistift gegeben.' 'He gave a pencil to the teacher.'

(ii) Most verbs involving an act of speaking are used with a dative and an accusative object. Example: erzahlen-to tell, raten-advise, versichern-assure, etc. e.g: Das habe ich ihm schon gestern erzählt. 'I already told him that yesterday.'Er hat mir geraten, mein Haus zu verkaufen."He advised me to sell my house.'

4. Verbs governing the Genitive.[57]A small number of verbs have an object in the genitive case, with a very few this is the only object, i.e they are intransitive verbs with no accusative object. Others are transitive verbs with an accusative object and a genitive object. Many of the Latter are reflexive verbs.

(i) Reflexive verbs with a genitive object: Most of these are true reflexive verbs, with an accusative reflexive pronoun. Example:sich annehmen- 'look after, take care of; sich schämen -be ashamed of, sich erfreuen-to enjoy , sich entsinnen - to remember, etc.

Example: Er schämte sich seines Betragens.'He was ashamed of his behaviour.'

(ii) Verbs used with a genitive and an accusative object.Example: berauben-to rob, deprive; versichern-'to assure, anklagen- to accuse, etc. Example: Er beraubte der Freiheit. 'He robbed him of his freedom.'

9. Perposition (Die Präpositionen): Each language use prepositions in an individual unique manner. Only seldom can they be literally translated from one language to another.

Definition: (i) According to George, o. Curme:[58] A perposition does not only serve to link thus its object to a verb, but also to an adjective, a noun or a sentence. As this connective particle usually stands before the dependent word, it is called a perposition (Latin-'prae'-before and- positio-position)"

(ii) According to Heinz Griesbach - Dora Schulz:[59],,'Die Präposition ist eine Partikel, die Funktionen kennzeichnet. Sie steht vor oder hinter einem Nomen oder Pronomen und bestimmt deren Deklinations form."

(iii) According to jürgen kars, Ulrich Häussermann, Judith Hime - Everschor:[60] "Perpositions as Function words and joining words xxx Function words never change, they always remain the same. .....The Prepositions join words and word group together. ..... The Function words join the words, the sentence elements, the sentences into a whole." Hence, we can say that Prepositions are words which, when used in conjunction with nouns, pronouns or verbs, indicate certain relationships, action, and functions. They usually precede the object - they modify.

According to A.E. Hammer:[61] A.E. Hammer states that,"In German, the noun pharse following each preposition is in a particular case. Most German preposition govern the dative or accusative case; prepositions governing the genitive are mainly confined to formal language. One important group of common prepositions is followed by the accusative or the dative case, with a difference in meaning." Prepositions are used to indicate place (Lokal) and time (Temproal).

The most frequent German prepositions and their cases are as follows:[62]

Perpositions governing the

Accusative	Dative	Accusative or dative	Genitive
bis,durch,für, gegen,ohne,um entlang,	aus, auβer, mit, gegenüber, nach seit,von, zu, bei.	an, auf, hinter, in, neben, über, unter, vor, zwischen`	(an) statt, trotz, während, wegen.

1. Preposition governing the accusative case (Präposition mit dem Akkusativ): According to place and time prepositions are as follows:[63]

(i) Place: bis - up (to), until, by; durch - through, gegen- against, um- around, about; entlang-along. Example: Der zug fährt bis Mainz.' The train goes up (to) mainz'. Hans geht durch den Park. 'Hans goes through the Park.'

(ii) Time: gegen - approximately, about; um-at, für-for, ohne -without, Example: Er kommt gegen 8' Uhr. 'He is coming about 8 o'clock.'Hier ist ein Brief für Peter.'Here is a letter for peter.'

2. Prepositions governing the dative case (Präposition mit dem Dativ): According to place and time prepositions are as follows:[64]

(i) Place: aus - out of, from; von - from, nach-to, zu-to, at; bei-by, next to, near, with; gegenüber-opposite, on the other side. Example: Hans wohnt bei seiner Tante.'Hans lives with his aunt. (i.e. in her home). Richard kommt aus London. 'Richard is coming from Landon.'

(ii) Time: nach - after, seit-since, for; mit-together, with, by means of. Examlpe: Nach der Vorlessung geht er spazieren.'After the lecture he takes a walk.'

3. Perposition governing the accusative or the dative (Präpositionen mit dem Akkusativ oder dem Dativ):[65] There are a number of prepositions in German which sometimes takes the accusative case and sometimes take the dativ case. These are called vexel preposition (two way preposition). According to place and time these perpositions are. place: an -on, at, to; auf -on, hinter-behind, in-in, into;neben-beside, next to;über-above, over, across; unter-under, among; vor-infront of, before, and zwischen-between, show the position of one thing in relation to another where there is no contact.

Time: an-on, in; in-in, vor- before, to; zwischen-between, are also used with time expression. They always take the dative case. wann-when?

(i) If the sentence describes a movement from one place to another, the perposition takes the accusative case. (wohin-where in). e.g. wir gehen in den Bahnhof.' We are going into the station.'

(ii) If the sentence describes the position of one object in relation to another, the preposition takes the dative case. (wo-where). e.g.: Wir stehen in dem Bahnhof .'we are standing in the station.

'an (place): Ich gehe an den Tisch. (accusative) 'I am going to the table.'Ich stehe an dem Tisch. (dative)- 'I am standing on the table.'

Time: Ich komme am Montag. (an+dem =am) (dative).'I am coming on Monday.'

4. Prepositions governing the Genitive case (Präpositionen mit dem Genitiv):[66] (a) The four common prepositions which govern the genitive (an) statt-instead of.' trotz - despite, in spite of; während-during, wegen-because of, for the sake of, about.These are normally used with the genitive case in formal German, but are often found with a dative case in colloquial speech. Example: (i) Er hat stat (an stat) des Geldes nur einer Brief geschickt.'He has sent only a letter in stead of money.'/ 'In stead of money he has sent only a letter.' (ii) Peter arbeitet trotz Feiertags; Peter works inspite of holiday.' (iii) Während meines Urlaubs mache ich eine Reise. 'I will make a journey during my holiday.' (iv) Wir konnten wegen des Regens nicht kommen'.'We could not come because of the rain.'

(b) The eight prepositions expressing relationships, these are: auβerhalb-outside, innerhalb-inside, oberhalb-above, unterhalb-below, diesseits-on the side of, jenseits-beyond, beid (er) seits-on either side of, unweit-not far from.

5. Shortened forms of prepositions:[67] After many German preposition, a shortened or contracted form of the definite article can be merged with the perposition to make one word. Contractions which are used in both speech and writing. i.e."called portmanteaus-German-zum, a portmanteau for 'zu'-'to' and 'dem' masculine, singular, dative definite article, as an instance of what Haspelmath (2000) calls antiperiphrasis. This occurs when a normally periphrastic (multiword) construction is expressed as a single word form, generally, for a handful of common lexical items (often function words)."[68]

Contracted forms are as:

an+dem=am,an+das=ans,in+das=ins, in+dem=im,bei+dem=beim, von+dem=vom, durch+das=durchs, zu+dem= zum, zu+der=zur, für+das=fürs, auf+das=aufs. etc.We only use these contractions when the article is not important. When the article is important (demonstractive meanings, we have to separate the preposition from the article. Example: (i) Ich gehe zur post.'I am going to post office.' (It is important to which post office I am going). (ii) Ich gehe zu der Post am Markplatz.'I am going to the post office at Markplatz.'(I am going to this specific post office which is at Markplatz.)

6. Prepositional objects:[69] Many verbs are followed by an object introduced by a preposition. The preposition used in prepositional object is wholly idiomatic and determined by the individual verb. There are three main sentence patterns with preposition objects:

(i) Verbs with prepositional object as their only object.

Subject +	Verb +	Perpositioal object +
Der mann	wartet	auf seinen Bruder.
'The man		waits/is waiting for his brother.'

(ii) Transitive verbs with an accusative and a prepositional object.

Subject +	Verb +	Accusative + object	Perpositioal object
Der mann	hindert	seinen Bruder	an seiner Arbeit.
'The man	hinders	his brother	on/in his work.'

(iii) Verbs with dative object and a prepositional object.

Subject +	Verb +	Dative + object	Perpositioal object
Der mann	dankte	seinem Bruder	für seine hilfe.
'The man	thanked	his brother	for his help.'

The following prepositions are used as prepositional objects: aus (of, after), für (for, on, to), in

(in,to), mit (with ,on), nach (after, for), von (of, from), zu (in, into, to), etc.

7. Word order: According to P.G. Wilson:[70] There are two types of word order in German. The normal order in all statements is that the subject occupies the first place, and the finite verb the second. we can go farther than this and say that the finite verb in fixed in the second place and it is on this fixed pivote that all the other grammatical elements of the sentence turn.

If, for the sake of emphasis, the first place is taken by any element other than the subject, then the finite verb keeps its fixed second place and the subject follows it. This is called Inverted order. The other element which is thus brought into prominence may be an object, whether noun or pronoun, a predicative adjective, or noun, an adverb, a pastparticiple, an infinite, a subordinate clause,"Example:

Das Kind hat einen Hund. (Normal). Einen Hund hat das Kind. (Inverted)

Subject Subject

'The child has a dog.' 'The child has a dog.'

In German, various permutations are possible without changing the essential meaning. The order of the words and phrases can be changed round to give a differeut emphasis to the elemeuts without alterning the basic meaning. Example:

a. Der zug fährt um 9' Uhr von köln ab. 'Normal'

subject verb Prep. time pre. place prefix. (Pre.-preposition)

b. Um 9' Uhr fährt der zug von köln ab 'Inverted'

c. Von köln fährt der zug um 9'Utr ab. 'Inverted'

'The train departs at nine o'clock from colonge.'

In German the dative precedes the accousative except when the accusative is a pronoun, then the accusative precedes the dative. If the subject follows the verb, pronouns precede nouns in the sentence. Example:

„Jetzt kauft der Vater dem Kind das Buch./Jetzt kauft er dem Kind das Buch./Jetzt kauft es der Vater dem Kind."

'Now father purchases the book for child.'

Comparative Points: The important comparative points are as follows:

1. There are seven cases (oblique forms) in Hindī: kartā (Nominative), karm (Accusative), karaŋ (Instrumental/Agent), sampradān (Dative), apādān (Ablative), adhikaraŋ (locative), and sambandh (Genitive), while German har four cases: Nominativ (Nominative), Akkusativ (Accusative) Genitiv (Genitive), and Dativ (Dative). Vocative case is also found in both the languages.

2. Generally, in Hindī: In past or imperfect tense singular/plural noun/pronouns have oblique form i.e, ergative-'ne' while it is absent in German.Example:
Hindī: maĩne kahā. (nominative-ne) - 'I said'.

German: Ich sagte. 'I said'. etc.

3. Karaŋ (instrumental), apādān (ablative) and sampradān (Dative) in Hindī belong to Dative in German. Example:

I. Hindī: Vah kalam se likhtā hai. (Instrumental) German: Er schreibt mit einem füller. (Dative)'He writes with a pen.'

II. Hindī: mohan dillī se ā rahā hai.' (Ablative) German: Mohan Kommt von/aus Delhi.'(Dative)'Mohan is coming from Delhi.'

III. Hindī:'peṛ se patte gir rahe haĩ.'(Ablative) German: Die Blätter fallen von dem Bäumen.' (Dative) 'The leaves are falling from the trees.'

IV. Hindī:vah patnā (ko) jā rahā hai.'(Dative) German: Er fährt nach Patnā. (Dative)'He goes/is going to patnā.'

4. Dative, Locative of Hindī belong to Dative and Accusative in German. Example

I. Hindī: maĩ somvār ko ā rahā hŭ. (Dative) German: Ich komme am Montag. (Dative)'I am coming on Monday.'

II. Hindī: maĩ kamare mẽ jā rahā hŭ.(Locative) German: Ich gehe ins Zimmer.' (Accusative 'I am going into the room.'

III. Hindī: maĩ kamare mẽ hŭ. (Locative) German: Ich bin im Zimmer. (Dative) (im=in+dem). 'I am in the room.'

IV. Hindī: maĩ saṛak par jā rahā hŭ. (Locative) German: Ich gehe auf die Straβe. (Accusative). 'I am going on the road.'

V. Hindī: ab maĩ saṛak par hŭ. (Locative) German: Jetzt bin ich auf der StraBe . Dative). 'Now I am on the road.'

4. for 'ko'-'to' accusative and 'ke liye'- 'for' dative in Hindī only articles are used in German. Example:

I. Hindī: vah mitr ko pencil (ko) detā hai. German: Er gibt dem Freund den Bleistift. (dem-dative, den-accusative). He gives the pencil to the friend.

II. Hindī: vah bachche keliye ek čopy (ko) kharīdatā hai.German: Er kauft dem Kind ein Heft. (dem-dative, ein-accusative.)

'He buys a note book for the child.'

In German the dative noun precedes the accusative noun.

I. Hindī: yahă ek patr peter keliye hai. (Dative) German: Hier ist ein Brief für Peter. (Accusative) Here is a letter for Peter.'

5. We find that, a single postposition (case-sign/ Vibhakti) of Hindī is used for various prepositions is German. Example.

(i) For postposition (se)-mit (with), von/aus (from), seit (since, for),

(ii) For postposition (ko)- am (to), zu (to), nach (to). etc. For postposition (kā, ke,kī) of Genitive in Hindī. -des, -s, -es, and der are used in German Example:

Hindī: Pitā kā ghar.' German: Vaters Haus.' 'Hause of the father/father's house.'

Hindī: Laṛke kī kitāb. German : Das Buch des Knaben. 'The book of the child/child's book.'

Hindī: vah mitr ke āvās par gayā. German: Er ging in die Wohnung des Freundes.'He went to the friend's flat.'

(iii) for postposition (par)- auf (on), an (on), um(at), zu (at). etc.

Therefore, Hindī postpositions are placed after the noun/pronoun, while German-prepositions are placed before noun/pronoun. Both have same nature and function and similar meaning. Both are used according to time and place.

6. In German, the definite and indefinite articles play an important role in the case formation: They are used according to gender and number. The definite articles are absent in Hindī, while indefinite articles are found. The definite articles: Der (masculine), die (feminine) and das (neuter). They are used for definite article-' the 'in' English. The indefinite articles - 'ein'-(a, an in English), and 'kein'- (no, not any-in English). The indefinite articles in Hindī are - 'ek' - a, an, one;. and 'koī' -someone, somebody or any and kuchh- something. The indefinite negative is koī nahī-not any.

7. Cases are governed by verbs in both the languages.

8. Cases are governed by postpositions (vibhaktiyă) in Hindī and preposition in German.

9. Apposition is used in both the languages. Example.

Hindī : vaktā haĩ prof. S.N. Pandey,'prgyā' patrikā ke sampādak. German: Es spricht/der Redner ist Prof. S.N. Pandey, der Redakteur des Pragyā illustrietes. 'The speaker is Prof. S.N. Pandey, The editor of Pragyā journal.'

10. Word order in Hindī is Subject+Object+Verb, (SOV) while in German, Subject+Verb+Object. (SVO)

Generally, normal word order is found in both the languages while inverted word order is found only in German. Example:

Hindī: 'bachche ke pās ek pencil hai.' (Normal)

German : 'Das Kind hat einen Bleistift. (Normal)

'Einen Bleistift hat das Kind. (Inverted)
'The child has a pencil.' (Normal)

While inverted word order is not found in Hindī. we can not say.' ek pencil hai bachche ke pās.

Conclusion: Therefore, on the basis of aforesaid discussion we have tried to present almost all the important forms, declension and formation of cases in both the languages. During this attempt, we found similar and dissimilar declension, formation and usage of cases in the two languages, which were cited with appropriate examples. Of course, both the languages belong to different language families, nevertheless they share some common features. Hence, this study can be useful in the field of Hindī-German language teaching and translation as well.

References :

1. Sharmā, Dr. Āryendra; A Basic Grammar of modern Hindī. First edition 1958, fifth edition 1994. Central Hindī Directorate, New Delhi. Page. 34

2. Crystal, David: A Dictionary of Linguistics and Phonetics. First Published 1980, fourth edition 1997. Blackwell Publishers Ltd. oxford, U.K. page. 53

3. Blake, Barry J: CASE, First Published 1994, Reprint 1997, Second Edition-2001; Cambridge University Press, Cambridge, Uk.
4. Guru pandit kāmatā prasād; Hindī vyākaraṇ. 13th edition. samvat 2039. Nāgarī prachāriṇī sabhā, vārānasī, U.P page. 184
5. Sharmā, Dr. Āryendra; A Basic Grammar of modern Hindī. First edition 1958, fifth edition 1994. Central Hindī Directorate, New Delhi. Page. 34
6. Sharmā, Dr. Āryendra; A Basic Grammar of modern Hindī. First edition 1958, fifth edition 1994. Central Hindī Directorate, New Delhi. Page. 38
7. Kellogg, S.H. : A Grammar of Hindī language , 2nd Indian edition, 1990, Munsihrām manohar Lāl Publishers Pvt. Ltd. New Delhi. page 100
8. Sharmā, Dr. Āryendra; A Basic Grammar of modern Hindī. First edition 1958, fifth edition 1994. Central Hindī Directorate, New Delhi. Page. 158-161
9. Mc Gregor, R.S: Outline of Hindī Grammar, first published 1972, 12th impression 1987. Oxford University Press, Delhi, page. 34
10. Blake, Barry J. : CASE. First published 1994, Reprint 1997, Second edition 2001, Cambridge university Press, Cambridge UK, Page-10
11. Guru pandit kāmatā prasād; Hindī vyākaraṇ. 13th edition. samvat 2039. Nāgarī prachāriṇī sabhā, vārānasī, U.P page. 100
12. Kellogg, S.H. : A Grammar of Hindī language , 2nd Indian edition, 1990, Munsihrām manohar Lāl Publishers Pvt. Ltd. New Delhi. page 100
13. Mohanan, Tara. ; Argument Structure in Hindī. 1994 a. Stan ford, CSLI page 66. Ref. Andrew spencer: CASE IN HINDī University of Essex, Proceedings of the LFG 05 Conference, University of Bergen- Mirrian Butt and Tracy Hollway Butt and Tracy Hollway King (Editors) 2005, CSLI, Publication, stanford.
14. Fillmore, C.J. : 1968, The Case for case. In E. Bach & R.T. Harms (eds.): Universals in Linguistic theory, pp. 1-88, Holt Rinehart & winston, London. Ref. Blake, Barry J. : CASE, First published 1994. Reprint 1997, second edition 2001. Cambridge University press, Cambridge, U.K. page 62-63, 66
15. Sharmā, Dr. Āryendra; A Basic Grammar of modern Hindī. First edition 1958, fifth edition 1994. Central Hindī Directorate, New Delhi. Page. 34-35, 45
16. Guru pandit kāmatā prasād; Hindī vyākaraṇ. 13th edition. samvat 2039. Nāgarī prachāriṇī sabhā, vārānasī, U.P page. 187
17. Guru pandit kāmatā prasād; Hindī vyākaraṇ. 13th edition. samvat 2039. Nāgarī prachāriṇī sabhā, vārānasī, U.P page. 188
18. Kellogg, S.H. : A Grammar of Hindī language , 2nd Indian edition, 1990, Munsihrām manohar Lāl Publishers Pvt. Ltd. New Delhi. page 101
19. Guru pandit kāmatā prasād; Hindī vyākaraṇ. 13th edition. samvat 2039. Nāgarī prachāriṇī sabhā, vārānasī, U.P page. 188
20. Guru pandit kāmatā prasād; Hindī vyākaraṇ. 13th edition. samvat 2039. Nāgarī prachāriṇī sabhā, vārānasī, U.P page. 188
21. Guru pandit kāmatā prasād; Hindī vyākaraṇ. 13th edition. samvat 2039. Nāgarī prachāriṇī sabhā, vārānasī, U.P page. 188
22. Guru pandit kāmatā prasād; Hindī vyākaraṇ. 13th edition. samvat 2039. Nāgarī prachāriṇī sabhā, vārānasī, U.P page. 188
23. Guru pandit kāmatā prasād; Hindī vyākaraṇ. 13th edition. samvat 2039. Nāgarī prachāriṇī sabhā, vārānasī, U.P page. 188
24. Guru pandit kāmatā prasād; Hindī vyākaraṇ. 13th edition. samvat 2039. Nāgarī prachāriṇī sabhā, vārānasī, U.P page. 188
25. Kellogg, S.H. : A Grammar of Hindī language , 2nd Indian edition, 1990, Munsihrām manohar Lāl Publishers Pvt. Ltd. New Delhi. page 105
26. Guru pandit kāmatā prasād; Hindī vyākaraṇ. 13th edition. samvat 2039. Nāgarī prachāriṇī sabhā, vārānasī, U.P page. 195
27. Spencer, Andrew : CASE IN HIDNI University of essex. Proceedings of the LFG 05 conference, university of Bergen. Mirriam But and Tracy Holloway King (Editors) 2005, CSLI Publications.
28. Guru pandit kāmatā prasād; Hindī vyākaraṇ. 13th edition. samvat 2039. Nāgarī prachāriṇī sabhā, vārānasī, U.P page. 376-377
29. Prasād, Dr. vāsudev nandan : Ādhunīk Hindī vyākaraṇ aur rachanā. Edition 23th 1993. Bhāratī bhavan patnā, Bihār. page 96
30. Hammer, A.E: Hammer's German grammar and Usage. First Published 1971, 1983 Arnold, London. Revised by Martin Durrell, Fifth revised edition 2011. Routledge. Taylor & Francis Group, london 2011. Routledge, Taylor & Francis Group, London, New York. page 33
31. Griesbach, Heinz- Schulz, Dora: Grammatik der deutsche Sprache. Auflage 1962. Max Hueber Verlag, münchen, page, 178
32. Griesbach, Heinz- Schulz, Dora: Grammatik der deutsche Sprache. Auflage 1962. Max Hueber Verlag, münchen, page, 413
33. Hammer, A.E: Hammer's German grammar and Usage. First Published 1971, 1983 Arnold, London. Revised by Martin Durrell, Fifth revised edition 2011. Routledge. Taylor & Francis Group, london 2011. Routledge, Taylor & Francis Group, London, New York. page 33
34. Curme, George, O : A Grammar of the German Language. second Rivised editions1960. Frederick Ungar Publishing Co. New York. page 463

35. Griesbach, Heinz - Schulz, Dora: Grammatik der deutsche Sprache. Auflage 1962. Max Hueber Verlag, münchen, page, 180
36. Scriven, Rob (Series Editor): Collins German Grammar & practice. Edition 2012. Harper Collins Publishers. Westerhill Road, Glasgow, Great Britain, page (viii)
37. Curme, George, O: A Grammar of the German Language. second Rivised edition 1960. Frederick Ungar Publishing Co. New York. page 491
38. Griesbach, Heinz - Schulz, Dora: Grammatik der deutsche Sprache. Auflage 1962. Max Hueber Verlag, münchen, page, 410
39. Scriven , Rob (Series Editor) : Collins German Grammar & practice. Edition 2012. Harper Collins Publishers. Westerhill Road, Glasgow, Great Britain, page (ix)
40. Griesbach, Heinz - Schulz, Dora: Deutsche Sprächlehre für Ausländer, Auflage 1967. Max Hueber Verlag. München. Page. 56
41. Hammer, A.E: Hammer's German grammar and Usage. First Published 1971, 1983 Arnold, London. Revised by Martin Durrell, Fifth revised edition 2011. Routledge. Taylor & Francis Group, london 2011. Routledge, Taylor & Francis Group, London, New York. page 36-39
42. Curme, George, O: A Grammar of the German Language. second Rivised edition 1960. Frederick Ungar Publishing Co. New York. page 476-487
43. Griesbach, Heinz - Schulz, Dora: Grammatik der deutsche Sprache. Auflage 1962. Max Hueber Verlag, münchen, page, 181
44. Scriven, Rob (Series Editor) : Collins German Grammar & practice. Edition 2012. Harper Collins Publishers. Westerhill Road, Glasgow, Great Britain, page (ix)
45. Hammer, A.E: Hammer's German grammar and Usage. First Published 1971, 1983 Arnold, London. Revised by Martin Durrell, Fifth revised edition 2011. Routledge. Taylor & Francis Group, london 2011. Routledge, Taylor & Francis Group, London, New York. page 40-43
46. Curme, George, O: A Grammar of the German Language. second Rivised edition 1960. Frederick Ungar Publishing Co. New York. page 502.
47. Scriven, Rob (Series Editor) : Collins German Grammar & practice. Edition 2012. Harper Collins Publishers. Westerhill Road, Glasgow, Great Britain, page 15
48. Blake, Barry J: CASE, First Published 1994, Reprint 1997, Second Edition-2001, Cambride University Press, Cambridge, Uk Page- 57-59
49. Curme, George, O: A Grammar of the German Language. second Rivised edition 1960. Frederick Ungar Publishing Co. New York. page 485
50. Griesbach, Heinz - Schulz, Dora: Grammatik der deutsche Sprache. Auflage 1962. Max Hueber Verlag, münchen, page, 407
51. Hammer, A.E: Hammer's German grammar and Usage. First Published 1971, 1983 Arnold, London. Revised by Martin Durrell, Fifth revised edition 2011. Rutledge. Taylor & Francis Group, london 2011. Routledge, Taylor & Francis Group, London, New York. page 43-45
52. Hawkins, John. A : German . In Comrie Bernard (Edited): The world's Major languages. Ist Published 1987, 2nd edition 1990, 3rd edition 2018. Routledge, Taylor & Francis Group, London And New Your. page 123-124
53. Hammer, A.E: Hammer's German grammar and Usage. First Published 1971, 1983 Arnold, London. Revised by Martin Durrell, Fifth revised edition 2011. Routledge. Taylor & Francis Group, london 2011. Routledge, Taylor & Francis Group, London, New York. page 64-65
54. Hammer, A.E: Hammer's German grammar and Usage. First Published 1971, 1983 Arnold, London. Revised by Martin Durrell, Fifth revised edition 2011. Routledge. Taylor & Francis Group, london 2011. Routledge, Taylor & Francis Group, London, New York. page 362-363
55. Hammer, A.E: Hammer's German grammar and Usage. First Published 1971, 1983 Arnold, London. Revised by Martin Durrell, Fifth revised edition 2011. Routledge. Taylor & Francis Group, london 2011. Routledge, Taylor & Francis Group, London, New York. page 367-369
56. Hammer, A.E: Hammer's German grammar and Usage. First Published 1971, 1983 Arnold, London. Revised by Martin Durrell, Fifth revised edition 2011. Routledge. Taylor & Francis Group, london 2011. Routledge, Taylor & Francis Group, London, New York. page 369-370
57. Hammer, A.E: Hammer's German grammar and Usage. First Published 1971, 1983 Arnold, London. Revised by Martin Durrell, Fifth revised edition 2011. Routledge. Taylor & Francis Group, london 2011. Routledge, Taylor & Francis Group, London, New York. page 380-381
58. Curme, George, O: A Grammar of the German Language. second Rivised edition 1960. Frederick Ungar Publishing Co. New York. page 355.
59. 58. Griersbach, Heinz - Schulz, Dora: Grammatik der deutsche Sprache. Auflage 1962. Max Hueber Verlag, münchen, page, 415
60. Kars, Jürgen - Häussermann, Ulrich- Hime- Everschor, Judith, Von Gerhard Koller : German Elementary Grammar Auflage (Edition) 1993. Verlag Moritz Diesterweg Frankfurt am Main. Page. 121-123
61. Hammer, A.E: Hammer's German grammar and Usage. First Published 1971, 1983 Arnold, London. Revised by Martin Durrell, Fifth revised edition 2011. Routledge. Taylor & Francis Group, london 2011. Routledge, Taylor & Francis Group, London, New York. page 406
62. Hammer, A.E: Hammer's German grammar and Usage. First Published 1971, 1983 Arnold, London. Revised by Martin Durrell, Fifth revised edition 2011. Routledge. Taylor & Francis Group, london 2011. Routledge, Taylor & Francis Group, London, New York. page 406
63. Griesbach, Heinz - Schulz, Dora: Deutsche Sprächlehre für Ausländer, Auflage 1967. Max Hueber Verlag. München. Page. 35
64. Griesbach, Heinz - Schulz, Dora: Deutsche Sprächlehre für Ausländer, Auflage 1967. Max Hueber Verlag. München. Page. 33-34

65. Griesbach, Heinz - Schulz, Dora: Deutsche Sprächlehre für Ausländer, Auflage 1967. Max Hueber Verlag. München. Page. 48-49

66. Griesbach, Heinz - Schulz, Dora: Deutsche Sprächlehre für Ausländer, Auflage 1967. Max Hueber Verlag. München. Page. 79-80

67. 66. Scriven, Rob (Series Editor) : Collins German Grammar & practice. Edition 2012. Harper Collins Publishers. Westerhill Road, Glasgow, Great Britain, page 229

68. Haspelmath, M. (2000): Periphrasis (Art. 68). In G. Booij, Ch. Lehmann and J. Mugdan (eds) Morphology. An International Handbook on Inflection and work Formation. Volume 1. Berlin : walter de- Gruyter, 654-664

69. Hammer, A.E: Hammer's German grammar and Usage. First Published 1971, 1983 Arnold, London. Revised by Martin Durrell, Fifth revised edition 2011. Routledge. Taylor & Francis Group, london 2011. Routledge, Taylor & Francis Group, London, New York. page 372-378

70. Wilson, P.G. : German grammar. First Published 1950, This impression 1963. The English Universities Press Ltd. London. ECI. page 190

●

REVIEW OF NEW EDUCATION POLICY 2020 (NEP) WITH SPECIAL REFERENCE TO HEALTH EDUCATION

*VISHAL GUPTA * AND DR. VANDANA VERMA***

A national policy on education firstly formulated was in the year 1968 in response to the recommendations of the Kothari Commission and has been renewed twice since in 1986 and 1992 to lay down the principles governing the education system. The Dr K Kasturirangan Committee was constituted in 2017, has finally drafted a policy on education, which is nationally designed and updated all the previous ones so this policy is known as a New Education Policy 2020. The draft of recent New Education Policy 2020 (NEP) talks about a massive change in our educational system with high priority on children's health and their nourishment. Health and education are strongly interconnected aspects of life. While healthy individuals are more likely to have better education outcomes, right education can improve the health status, well being and personality of a person. In doing so, it underlines the need for proper nourishment and good health to assist optimal learning, and proposes certain health-related interventions. The following are the key approaches and interventions on health, proposed in the NEP 2020.

1. Holistic development & multidisciplinary approach is the key principles of the NEP. Along with subjects like the sciences and social sciences, the curriculum contains courses that make education well-rounded, useful and fulfilling, including games, sports and fitness. At the school level, the NEP proposes sports-integration, or utilizing physical activities in pedagogical practices, to enhance the students' cognitive abilities. Sports-integrated learning will help students to achieve fitness levels envisaged in the Fit India movement, and adopt fitness as a lifelong achievement. It will also develop their skills like collaboration, self-initiative, teamwork and responsibility. The NEP also proposes other ways to increase school students' exposure to sports and other activities too. It offers increased flexibility and choice of subjects, allowing students to choose physical education as part of the curriculum. The Policy also proposes 'bagless' days to allow students to engage in local vocational and other activities, such as sports and gardening. The NEP further encourages formation of clubs, including for sports, yoga, and health and well-being, at the level of schools, school complexes, districts and beyond the boundaries.

2. Higher education institutions will also have departments in subjects like sports, art and music, to provide a multidisciplinary and stimulating environment. Credits will be given for such subjects in undergraduate programs. For adult education: the policy proposes development of an education curriculum framework. Along with basic literacy, numeracy and education, the framework will include critical life skills (including healthcare and awareness, childcare and education, and family welfare); and continuing education (including sports and recreation).

3. Health education: Health is one of the key factors in achieving the different goals in life. The NEP includes health and nutrition, physical education, fitness, wellness, sports, sanitation and hygiene as some of the key subjects, skills and capacities that must be learned by everyone. Accordingly, the NEP proposes the inclusion of training in health, including preventive health, mental health, good nutrition, personal and public hygiene, disaster response and first-aid, and detrimental effects of alcohol, tobacco and other drugs, as part of the school curriculum and considering the increasing prevalence of non-communicable diseases and intake of poor diets, this is an important reform that may lead to behavioral change towards healthier habits.

4. Regular health check-ups and health cards The NEP also advocates some other measures for promoting physical and mental health in the context of Healthy learning environments. This includes regular health check-ups in schools, especially for 100% immunization, and health monitoring through health cards. Health check-ups and growth monitoring under Anganwadi system will be extended to Preparatory Class students (Grade 3, 4 & 5).

* Ph.D. Scholar (Education), Deptt. of Kriya Sharir, Faculty of Ayurveda, IMS, Banaras Hindu University
** Assistant Professor, Deptt. of Kriya Sharir, Faculty of Ayurveda, IMS, Banaras Hindu University

5. Reduces weight of school bags: The NEP also recommends reducing the weight of school bags and textbooks. For mental and emotional health of children, the NEP proposes introduction of social workers, counselors and community involvement into the schooling system.

6. Concept of school complexes: For implementation of some of above said reforms, the NEP proposes the concept of school complexes, which will involve sharing of resources like teachers, counselors and sports equipment and facilities. Further, special short teacher education programs will enable eminent persons to teach at schools for local professions, knowledge, and skills, including sports.

7. Medical facilities and counseling services: The NEP also demands ensuring medical facilities and counseling services within higher education institutions. This NEP suggests that some institution at district level will be affiliated to a college where a psychology and counseling cell will provide counseling services.

8. Critical health challenges: For taking a forward-looking approach and to address critical health challenges, the NEP highlights the need to develop an education system that enables India to address its key challenges, including in health. This will require high-quality studies in science, social sciences and humanities, interdisciplinary research, and other advancements in the education system. Now India also demands on cutting-edge areas, such as artificial intelligence, big data and genomic studies. The NEP further notes the need to improve professional education in certain fields, including agriculture and healthcare infrastructure.

9. Agriculture education: The agriculture education will be helpful to develop professionals who can address issues such as food sufficiency and declining land productivity. Agriculture education should be re-envisioned to make the programs more useful, and to focus on preventive healthcare and community medicine.

10. Extends the mid-day meal program: India's mid-day meal program exemplifies the need of education with a food and nutrition program. Currently, mid-day meals are provided to children in Classes 1 to 8, studying primarily in government and government-aided schools. The NEP proposes provision of early child childhood care and education to children below 5 years of age in Preparatory Classes in primary schools, and extends the mid-day meal program to these students. Further, NEP proposes provision of breakfast for school children in addition to mid-day meals[1].

11. Focusing on mental health condition: The New Education Policy's ideals, as encapsulated in the beginning of the document, include the "complete realization and liberation of the self. We know that mental health is a most important dimension of healthy life cycle. There is a notion of healthy mind in a healthy body. The NEP postulates to let students think by their own way and gives them freedom to get their own way of learning. By this way the NEP aims at "instilling knowledge of India and its varied social, cultural, and technological needs, its inimitable artistic, language, and knowledge traditions, to transform into national pride, self-confidence, self-knowledge, cooperation, and integration of social community".

12. Schooling structure: There are also some drastic changes that have been envisioned in the policy. For one, the change of the schooling structure from 10+2 to 5+3+3+4, consisting of 5 years of foundational schooling (ages 3 to 8), 3 years of preparatory school (ages 8 to 11), 3 years of middle school (ages 11 to 14), and finally 4 years of secondary school (ages 14 to 18). Certain issues, like teacher training and introduction of preschools that have been widely discussed by educationists also feature in the policy.

13. Emphasis on teaching in local language: Another noteworthy proposition is to teach students in the local language till at least the 5th grade, and preferably till the 8th grade to make their learning easy and better comprehension in their respective mother language.

14. Introduction of a multidisciplinary undergraduate programs: The other important facet of the proposal is the complete restructuring of the higher education system through the introduction of a multidisciplinary undergraduate programs, with an option of either a three or four year duration, and multiple exit and entry points. This will bring a far greater level of flexibility within the higher education system. There is an untapped repository of knowledge that students can hope to find by studying a combination of subjects. It will most definitely allow students to explore the world through the lens of multiple subjects, without the artificial constriction of streams. The second positive recommendation is the

flexibility that the NEP will provide for choosing a three or four year program, while also allowing some leeway to take gaps within one's bachelor degree studies. The rigidity of the current system comes from the need to "teach" grown adults, who are old enough to vote and drive, rather than to facilitate their learning. This proposal allows students to have more control over their education, and removes the rigidity that currently prevails.

Thrust area of NEP 2020

The portion of the NEP that talks about the implementation of the policy, "Part IV: Making It Happen" consists of two 'whole' pages. However, even these two pages fail to provide any particulars as to how the policy is going to be executed. For example, the policy aims to provide financial support to "various critical elements and components of education, such as ensuring universal access, learning resources, nutritional support, matters of student safety and well-being, adequate numbers of teachers and staff, teacher development, and support for all key initiatives towards equitable high-quality education for underprivileged and socioeconomically disadvantaged groups." However, nowhere does it mention how this will be done, what institutions are going to be involved, how access will be managed and ensured, what learning resources include, what all key initiatives are being taken towards providing high quality education to all that will require financial aid, and whether this is going to be financed by the 6% of our GDP that the policy claims the government will spend on education.[2]

Specifically under the subheading "Implementation", the policy writers add that the implementation will take place in consultation with concerned ministries and departments, and reiterate that it will take place with the spirit of the policy in mind. This, however, still does not clarify exactly how they plan to accomplish what they have envisaged in the policy.[3]

While this noble strategic plan has been set, there is no real declaration of what the actual mean by making our students capable of competing with the world. It is believed that any education system should enable the learners to aspire for their country something greater than being the "Back office of the world". It takes a different kind of thought process, one that involves being intrinsically curious, to create inventions, and not innovations. The fundamental difference between the two is inventions are absolutely new ideas and discoveries of form and method, whereas innovations take inventions and adjust them to the needs arising in a specific context. In present day scenario we need skill based learning which are useful in our day to day requirements. These cannot be made possible in a few days. It will be very useful that existing source of knowledge may have better contribution to achieve, acquire and apply the available resources via our education system as per our socio-economic conditions and our need of society.

Another alarming observation is the vacant mention of the state governments and their role in this new education system, especially with regard to higher education. The centralized set up of higher education system may make hurdles to the path of education system. The absolute power given to the HECI (Higher Education Commission of India), with no clear guidelines, is distressing. This theme of centralization, itself, is of concern, as there is no safety measures put in place to ensure that the independence of the higher education system will not be compromised by the single governing body. The indifference to the state governments' role in the entire plan is also not particularly reassuring. Finally, the protection of the intellectual freedom and autonomy of colleges and the students has not been addressed by the policy at all. This adds to the alarm created by the general theme of centralization.

As an item of the concurrent list, education is a shared responsibility between states and the centre. The obvious centralization is quite alarming, for two reasons. Firstly, it can be viewed as a disregard for the quasi-federal nature of our country. What is on the concurrent list is a shared responsibility, and must continue to be so, because of the second reason, which is that centralization can make the education system far more susceptible to control, especially of the political sort. The countries that have created educational institutions, which have become centers of excellence for quality education, have ensured these institutions remain separated from the state, with utmost freedom being allowed to the students and colleges to function. In order to create such institutions in our country, the congenial environment must be created, consisting of absolute decentralization and absolute autonomy of universities.[4]

Educational policies determine the social and economic development of the nation but are often treated with apathy in legislative spheres as they don't

provide immediate outcomes for political manifestos. In our constituent assembly following intense deliberation in the education ultimately found constitutional expression in the Directive principles of state policy DPSPs. 86th constitutional amendment i.e. Right to Education only gained the title of a Fundamental Right in 2002 by means of that. The State is bound to formulate a national policy on education to fulfill its constitutional responsibilities as per 21A, 41, 45 & 46 conferred by Articles.[5]

In a novel move up, the NEP elaborates the quality of education by promoting conceptual understanding and critical thinking. It promises to make education multi-disciplinary, well-rounded and discovery-oriented; and removes the compartmentalization of streams by allowing students greater flexibility in choosing their subjects. It also depicts the need for higher standards of imparting knowledge by establishing the National Professional Standards for Teachers (NPST) and a new National Curriculum Framework for Teacher Education (NCFTE) [6].

The NEP emphasizes universal access to education along with plans to increase the Gross Enrolment Ratio and put a stop to the spiraling drop-out rate. It proposes a change in the approach to education from the 10+2 model to a 5+3+3+4 model to encompass early childhood care and education. It also provides for regular assessment of nutrition and health, acknowledging mental health too, and assures a nutritious breakfast in addition to mid-day meals offered to the underprivileged[7].

Providing exit options for the undergraduate degree, this policy in part seems like a welcome relief to students currently crumbling under the pressure of the education system. The introduced peer-review system may make better the teaching-learning process. These factors will pave the way for students to experience a holistic learning process.[8]

Conclusion

The NEP 2020 has tried to deal with all the dimensions of health and holistic development, by including physical activity and sports, yoga, meditation, programs to provide nutrition and its assessment, counseling, immunization, regular health checkups. Multidisciplinary approach in adopting the specific branch of learning to reduce the stress may enhance the learning and productivity. Being a policy draft, it merely provides a framework, leaving a lot to implementation. While implementation can be challenging, it can go a long way in improving both education and health of the children of our country. However, the NEP does not provide any roadmap or framework for inclusion of health education in the curriculum, and much will be depend upon implementation efforts towards the Policy.

References

1. The Policy Document on New Education Policy 2020.
2. Jimenz, E (1987) The public subsidization of Education and Health in Developing countries , A review of Equity and Efficiency, World Bank Research Observer No 1 pp 111-129. Walia, J.S. (1998). Modern Indian Education and its Problems. Jalandhar: Paul Publications.
3. Goel, S.L. and Goel, A. (1994). Education Policy and Administration. New Delhi: Deep and Deep Publications.
4. Gupta, V.K. and Gupta, A. (2005). Development of Education System in India. Ludhiana: Vinod Publications.
5. Moe,T M (2006) Political control and the power of the Agent, Journal Of law, Economics and organization,22(1):1-29
6. Ministry of Human Resource Development. (1986). National Policy of Education. New Delhi, India: India Government printing press.
7. Naik J P (1975) Elementary Education in India: A Promise to Keep, New Delhi Allied Publisher.
8. Ministry of Education. (2009) Education and Human Resource Strategy Plan 2008 -2020

●

STANDARDIZATION AND EVALUATION OF A NOVEL POLYHERBAL FORMULATION FOR KRIMIROG

NANDINI PAL* DR. A. K. KUSHWAHA** AND DR. B. M. KUMAR***

Ayurveda is an Indian system of medicine. The main aim of *Ayurveda* is to maintain the health of healthy individuals and cure diseases. *Acharyas* have considered that imbalance in *tridosha*, *saptadhatu* and *trimala* are the root cause, of the illness. Various classical literatures explain that different types of *krimi* are also responsible for many diseases. The term "*Krimi*" is frequently used in ancient *Ayurvedic*classics. In the 19th chapter of *Charakasutrasthan* "*Ashtodariya Adhyaya*" the author has mentioned total twenty *krimi* along with classification and nomenclature of *krimi*[1]. Then in the seventh chapter of *Vimansthan* namely *"Vyadhrupiya Vimana"* once again he has detailed the description of all the aspects of *krimirog*. *Acharya Sushruta* has described the number, etiology, classification, symptoms and treatment of *krimi* in *uttaartantar*, under the title of "*krimirohapratishedha*" *Adhyaya*[2]. Helminthes is also known as "worm infection" that is one of the most common diseases in all age. It is considering as a serious public health problem, it is widely prevalent in areas of low environmental quality and people of low nutritional status. In India, this problem is likely to be more common because of poor hygiene, least awareness and illiteracy, poverty and a variety of associate factors[3]. In the present study a novel formulation was prepared (*churna*) and standardized by evaluating physicochemical, phytochemical and pharmaceutical parameters. Then it was evaluated for antihelminthic activity against hookworm. The medicinal plants, used in a novel formulation preparation are *Pippernigrum* (*marich's* fruit), *Trachyspermumammi* (*ajwain* fruit), *Bueteamonospermum* (*palash* seed), *Embeliaribes* (*vidang* fruit), *Tribulusterrestris* (*gokshur* fruit).

MATERIAL AND METHODS

Preparation of novel *churna* formulation:

The novel *churna* was prepared from the above ingredients as described in *churnakalpana* by *Sarangdhar Samhita*[4]. The crude drugs of a novel churna was purchased from the local vendor, Dinanathgola, Varanasi and authenticated in the Department of Botany, Faculty of Science, Banaras Hindu University, Varanasi. At first, all the raw ingredients were dried in sunlight. After drying all ingredientswere grindedseparately with the help of iron mortar pestle. Then the powder was again grinded in mixer grinderseparately. After preparing the powder, an equal amount of each powder drugs were mixed in a mortarpastel and triturated again. After triturating, the powder was filtered through moshline cloth[5] (Sieveno.20).

Standardization of the Formulation

Standardization is a very important step for every formulation. With the help of standardization, we can control the purity, efficacy, & quality of formulation. In API parameters suggested for standardization of drugs are – Analysis of foreign matter, Acid value, Ash value, Moisture content, Volatile content, Heavy metal analysis etc. In *churna*formulation, pharmaceutical standardization is also essential for quality assurance[6]. Further phytochemical standardization is essential to predict the biological correlation with the drug. The parameters related to above standardization was done for the novel churna on the basis of available previous literature and results were reported

Biological study:

In-vitro Antihelminthic activity (Larva motility assay)

Method: Collection of sample: Stool samples positive for human hookworm (*Ancylostomaduodenale*) throughmicroscopy collected from the patients of gastrointestinal discomfort were included in this study.

Preparation of the extracts: Extracts of formulation in different solvents (chloroform, ethanol,

∗ Research Scholar, M. Pharm. (Ay.) Faculty of Ayurveda, IMS, Banaras Hindu University
∗∗ Supervisor, Assistant Professor, Deptt. of Dravyguna, Faculty of Ayurveda, IMS, R.G.S.C. BHU
∗∗∗ Corresponding Author, Associate Professor, Deptt. of Rachana Sharir, Faculty of Ayurveda, IMS, Banaras Hindu University

and water) were obtained by maceration method using 90 gm of churna and included in this study at different concentrations (1mg/mL, 2mg/mL and 5 mg/mL). Albendazole (99.8% pure) was used as the standard drug in the same concentration as extracts.

Stool culture for recovery of larva: Culture of stool samples were done by Harada Mori culture technique and freshly cultured larva was collected[9, 10]. *Method:* Larval motility assay was performed in sterile 96 well polystyrene tissue culture microtitre plates (Tarsons Product Pvt. Ltd, India) to assess the effects of the extracts on larval motility. A stock solution of albendazole was prepared in dimethyl sulphoxide (DMSO) at a concentration of 100mg/mL. In each well 200µL of larva (100 in number) suspension was placed and 200µL dilutions of different extracts and albendazole were added to get a final concentration ranging from 1mg/mL to 5 mg/mL. The first row of the microtitre plate in each experiment did not contain any drug but only suspensions of the larva as control. The microtitre plates were incubated overnight at room temperature in a moist chamber.

Following incubation, the larva was stimulated to move by adding 40µL warm water (40-45^0 C) to the well. The number of motile larvae was counted in each well under 100x magnification. Larva moving with smooth, sinusoidal motion was considered as motile while complete inability to move or movement restricted to twitching was considered non- motile. The study was performed in triplicate.

% Inhibition of larva motility= [(Total dead larva/Total initial larva]*100,

RESULTS

Table: - 1:**Physicochemical Analysis**

S.No.	Name	Yield
1	Total ash	4%
2	Acid insoluble ash	0.245%
3	Water-soluble ash	10%
4	Loss on drying	0.97%
5	Foaming index	Above 100(166.69)

Table: - 2: Extractive values:

S.No.	Extract	Nature of Extract	Colour	Yield Value	% w/w of yield
1	Chloroform	Sticky	Brownish	1.8 gm	2%
2	Ethanol	Sticky	Brownish	10.8 gm	12%
3	Water	Sticky	Brownish	16.2 gm	18%

Table: -3: Pharmaceutical Standardization of novel churna

S. No.	Name	Value
1	Bulk density	0.41g/ml
2	Tapped density	0.50g/ml
3	Haunser's Ratio	1.21
4	Compressibility	20%
5	Angle of repose	Tan 1 (3/5.5)

Table:-4: Heavy metals estimation in novel churna

S.No.	Heavy metals	Actual concentration in novel churna
1	Lead (pb)	0.3017 ppm
2	Cadmium (Cd)	0.0159 ppm
3	Zinc (Zn)	1.9582 ppm

Table: - 5: Phytochemical Screening

S.No.	Name of Constituent	Reagent	Water extract	Chloroform extract	Alcoholic Extract
1	Alkaloid	Wager,s reagent	-	-	-
2	Carbohydrate	Benedict's reagent	+	-	+
3	Tannin	Fecl3	-	-	+
4	Steroid	Salkowaksi	-	+	_
5	Saponin	Froth formation	+	+	+

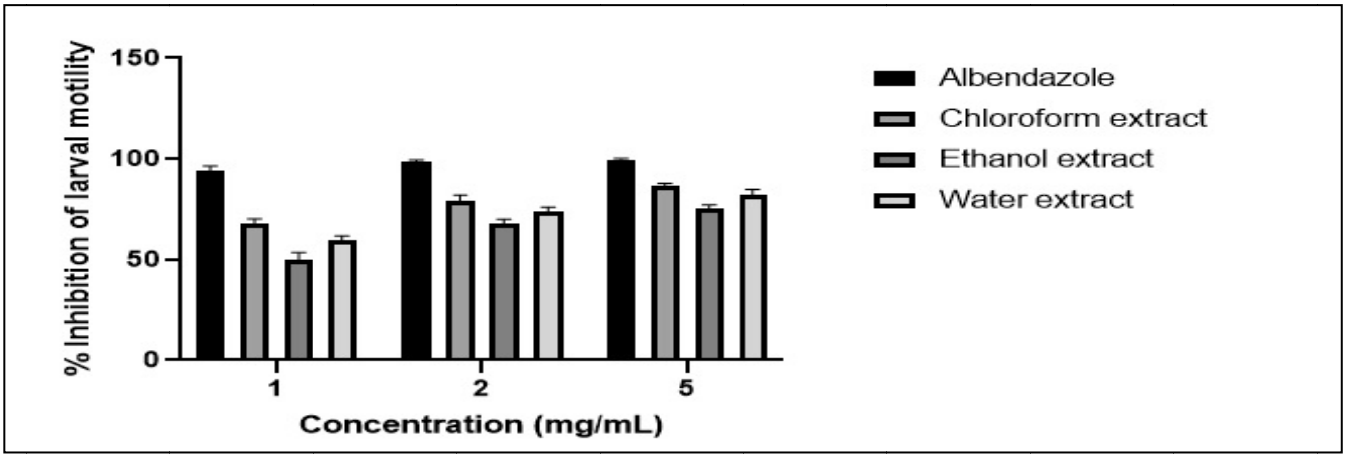

Figure 1: Anti-helminthic activity: In vitro effect of various extract of churna on of *A.duodenale*after 24 hours

DISCUSSION

In the Indian system of medicine, polyherbal formulations are better than single-drug therapy because of the synergetic effect of different drugs. It is better than organometallic formulation due to minimum orno side effects. Polyherbal formulations are used not only for the treatment of diseases but also for the maintenance of health[11]. In this study, a similar approach was made to standardize and explore the new antihelminthic activity of a novel formulation churna.This novel *churna* is an ayurvedicpreparation consists of *Ajwain* fruit (*Trachyspermumammi*), *Palash* seed (*Buteamonospermum*), *Marich* (*Pippernigrum*), *Vidang* (*Embeliaribes*), *Gokshur* (*Tribulusterrestris).* The drugs of this churna traditionally recommended for *krimihar* various *krimirog* and act as antihelminthic agents. The novel *churna* was prepared from the above ingredients as described in*churnakalpana* by *Sarangdhar Samhita*. After the preparation of novalchurna, approaches were made to standardize it. The classical parameters included were total ash, acid-soluble ash, and water-soluble ash, loss on drying, extractive value, foaming index and heavy metal analysis. The modern approaches parameters studied weretapped density, bulk density, angle of repose, Haunser's Ratio, phytochemical screening.

Total ash is designed to measure the total amount of inorganic materials produced after complete Incineration of the ground drug. The total ash usually consists of carbonates, phosphates and silica, which include both physiological (Derived from plant tissue) and non – physiological ash (residue adhering with plant tissue like sand and silica). The total ash of novel churnawas found to be 4%. Further, acid insoluble ash in HCL is obtained it is calculated with reference of100 gm of drug. The acid-insoluble ash was found to be 0.245%. Water-soluble ash was a part of the total ash. It is a good indicator of water-soluble salts in the drug. It is the difference in weight between the total

ash and the residue obtained after the treatment of total ash with water. Water-soluble ash was found to be 4%. This study indicates that the drug contains less harmful inorganic materials[12].

According to *Ayurvedic* pharmacopeia of India, loss on drying is the loss of mass expressed as% w/w and by the method, the moisture content is determined. It is done for the preservation of drug material from moisture and reduces the weight of bulk. LOD was 0.97% in the novel churna. It indicates the drug should be properly stored in an airtight container. The saponins are phyto-constituents having the property to form foam. Saponins are characterized based on their frothing property. Medicinal plant materials contain saponins that can cause persistent foam when an aqueous decoction is measured. The foaming index was above 100 in the novel *churna* indicate a high content of saponins in the formulation. Extractive value determination is a process used to determine the solubility of various phytoconstituents indifferent solvents. In this study, it was observed that water is the best solvent for the extraction of novel drugs *churna*[13]. The heavy metal like Pb, Cd and Zn were estimated and observed that mentioned metals components were under permissible limit. Bulk density is the ratio of the mass of powder and its bulk volume. The bulk density of *churna* was found tobe 0.41g/ml. Tapped density was measured by transferring an accurately weighted amount (10 gm) of powder into the graduated cylinder and tapping it for a specific number of times. Tapped density of churna was found 0.50gm/mL. Similarly, Haunser's Ratio and angle of repose were studied. These studied are made to know the flow property of powder.

The phytochemical screening was done for qualitative determination of novel *churna formulation* extract to predict constituent present in it. It was found that plant is rich with phytoconstituents like glycoside, tannin and carbohydrates etc, which are responsible for biological activity.

All the extracts were tested against hookworm (larval motility assay). The study was conducted for a period of 24 hrs to evaluate the effect of the extract on the hookworm. From the study, it was observed that ethanolic, chloroform, and water extracts at 1mg/mL, 2mg/mL and 5mg/mL concentration exhibited appreciable anthelmintic activity and effect was dose dependent manner. These studies showed significant activity against hookworm (larval motility assay) as compared with standard drug albendazole.

CONCLUSION

The objective of the study was the standardization of a novel polyherbal *churn*a through studying physico-chemical, phytochemical and pharmaceutical parameters. Further evaluation of antihelminthic activity of various extracts of formulation against *Ancylostoma duodenale*. In the physicochemical method, the *churna* was standardized by studying the extractive value and ash value etc, further phytochemical screening was made to confirm the various classes of phytochemicals like steroids, tannin, saponin and glycoside etc. This study indicates that the drugs contain potential phyto-molecules which are more soluble in a polar solvent and responsible for biological activity. To confirm the potentiality of various extracts against hookworm (*Ancylostoma duodenale*), the activity was evaluated by larva motility assay method. The study showed that all the extracts of novel churna showed effectiveness against the hookworm in dose dependent manner. From the results, it can be concluded that the novel polyherbal c*hurna* may be as potential antihelminthic agent and further study is essential to make it useful for patients.

REFERENCES

1. Sharma R.K; Dash B;*Charak Samhita*, *Sutrasthana,* English translation and critical exposition based on Chakrapani datta's *Ayurveda dipika*, Chowkhambha Sanskrit Series, Volume- II, 6th edition, Varanasi, 2007
2. Shastri Ambikadatta, *Ayurveda tattva sandeepika, hindi commentary on Sushruta Samira Uttartantra*, Chaukhambha Sanskrit sansthan Varanasi, reprint 2007.
3. Gupta S.K., Gupta N.A., Bade S., et.al. *A review on ayurvedic approach of krimi roga and its management w.s.r to worm infestation; International Ayurvedic Medicinal Journal*, 5 (2), 495-500; 2017.
4. Sarangadhara, *Sarangadhara samhita,* translated by *Himasagar Chandra Murthy,* Caukhambha Bharati Sanskrit Series Office, 2ndedition, Varanasi, 2007
5. Reddy KRC. *Bhaisajya Kalpana Vijnanam*, 2nd edition, 235- 237; 2008
6. Anonymous, The Ayurvedic Formulary of India, Part-1; IInd edition, The controller of publications, New Delhi, 2003; 121.
7. Bahuguna Y, Suhaib Zaidi, Neeraj Kumar, et.al: *Standardization of Polyherbal Marketed Formulation Triphla Churna, Research and Reviews: Journal of Pharmacognosy and Phytochemistry,* 2(3), 28- 35, 2014.
8. Khandelwal K.R., *Practical Pharmacognosy Techniques and Experiments*, 8thedition. Pune: Nirali Publication; Preliminary phytochemical screening, 2001.

9. Bethony J., Brooker S., Albonico M., et.al. *Soil – transmitted helmintic infection: ascariasis, trichuriasis and hookworm*, Lancet.2006 May 6; 367(9521):1521-32, 2006.

10. Hotez P.J. Bethony J., Bottazzi ME., Brooker S., Buss P., *Hookworm: "The great infection of mankind*." *PLOS Med*, 2(3): 67, 2005.

11. Folashade K. Omoregie H. E. and Ochogu A.P., *Standardization of herbal medicines- A review, International Journal of Biodiversity and Conservation*, 4(3): 101-112, 2012.

12. Mukherjee P.K, Wahile A., *Integrated approaches towards drug development from berry preparation and extracts*, *Journal of Ethinopharmacology*, PubMed, 103(1):25-35;2006.

13. Kunle O.F., Egharevba H.O. Ahmadu P.O., *Standardization of herbal medicines - A review International Journal of Biodiversity and Conservation*, 4 (3), 101-112, 2012

●

ON A MUGGY NIGHT IN MUMBAI: URGE TO VOICE THE UNVOICED PSYCHE OF GAYS

DR. RAJNEESH PANDEY*

On a Muggy Night in Mumbai is the true representative play of Indian theatre to raise overtly the pathetic and controversial issues of gay and the bitter conflict which they have to face at social, personal and psychic levels. The agony of their psychic Conflict and split-personality in the context of postcolonial India is the core issue of the play. In Contemporary Indian drama Mahesh Dattani is such a name who does not hesitate to centralize the complex and tabooed issues and various conflicts with paramount care to peel out every layer of postmodern dimensions of sexual codes and ethical crisis. Sexuality is such a topic in India which is rarely discussed frankly before Dattani. Sexuality still needs to be explained properly in India where a whole book of *Kamasutra* was dedicated by our ancient sage Vatsayan yet it is tabooed to be discussed openly in the same country. According to Sigmund Freud the whole personality of man is deeply influenced by Libido which is directly responsible for sexual acts and sexuality determines the individual personality. According to Foucault, Sexuality is "a great surface network in which the stimulation of bodies, the intensification of pleasure, the incitement to discourse, the formation of special knowledge, the strengthening of controls and resistances, are linked to one another, in accordance with a few major strategies of knowledge and power"(106)[1]. The credit really goes to Dattani to bring sexuality with all its forms at the centre of his literary endeavour. Three representative contemporary playwrights Vijay Tendulkar, Girish Karnad and Mahesh Dattani's have focused on three different dimensions of ethical codes. If social and cultural ethics was the prime urge in the plays of Vijay Tendulkar such as *Silence; the Court is in Session*, *Kamala* and *Sakharam Binder*, the political and religious codes are the main intent in Girish Karnad's *Tughlaq*, *Dreams of Tipu Sultan, Bali and Hayvadana*. On the other hand Mahesh Dattani's major concern is the sexual crisis as beautifully described in *On a Muggy Night in Mumbai*, *Bravely Fought the Queen*, *Dance Like a Man, Seven Steps Around the Fire etc*.

On a Muggy Night in Mumbai deals with the dilemma of gay people, who overtly oppose heterosexual social criteria. The play is like an authentic critical documentary of psycho-social mental setup of gays from the viewpoint of heterosexism. Kiran is the only non-gay female character who becomes the victim of sexism. He grounds his plays on the innermost acts of mind and leaves no stone unturned to scrutinize the psychological scars of his characters and their private lives and the impact of tyrannical establishment of power and prejudice. Dattani, within the framework of dramatic structure tries to investigate the identity crisis of the gays. The love of two homosexual men Kamlesh and Prakesh is the pivot of the whole play which touches almost all the hidden and under collar acts and expectations which generally do not come in public. Dattani's chief potential lies in his gallant enunciation of the private but mostly prohibited spheres of life in the Indian Cinema, television, theater and photography. The background of the play is very apt and suggestive of the lives of the homosexuals. Remarking on the suggestiveness of the background details Playwright McRea says: The apartment of the protagonist Kamalesh is a meeting place of homosexuals which is situated outside skyline of Mumbai to contrast the world of heterosexuals indicated by the petty presence of the wedding going on at ground level of the flat. The heat and sounds of the outside world, the people pestering a popular television star and a photograph taken by two homosexuals in a narrow entrance stimulate Dattani to give his audience a "sense of whole society", with its "openly gay themes of love partnership, trust and betrayal". The play is about "how easy it is for individuals to fall victim to the expectations society creates", thus, it develops tension in a social context" (45-46) [2]. A.K. Chaudhuri presents another facet of suggestive quality of the play : "The spaces within the home are 'muggy' too hot to be comfortable, the air-conditioning breaking down, even as the interior spaces of the psyche have to be confronted. Meanwhile the exteriors keep exerting

* Associate Professor, Department of Sahitya, SVDV, Banaras Hindu University

pressure, intruding into the 'other' spaces occupied by the characters in the play perpetually reminding them of their isolation" (43)[3]. The gay party of Kamlesh represents the speckled faces of the homosexual community. Sharad is the pretentious gay who cares about how the people view him, Bunny, his antithesis, is covert homosexual who happily lives the double life as a married father as well as a gay in real life; and Dipali, the sensible lesbian, whose portrayal subtly implies that it is the woman who is sensible, even in gay culture. Dattani tries his pen on a very intricate topic with astonishing courage and lays bare all the pretenses of social life which impose hackneyed and orthodox roles on men and any deviation from them is considered as deplorable offences.

Homosexuality with all its colours simply suggest the real extent of Dattani's bold temperament which assimilates the various hues of western culture to bring about positive changes in the spheres of cultural, social, moral taboos regarding sexual identities, moral and ethical values. Janaki Nair and Mary John in *A Question of Silence* argues that Indian apprehension of sexuality is influenced by western discourses of sexuality "we cannot but draw upon western theories, since they determine at an unconscious level, the reading practices we bring to bear on our work"(p. 7)[4]. The play sincerely addresses ethical problem of negating one's real sexual identity and choices which only snatch the all delights and opportunities of the true development from the life of man and from the structure of society leading only to a kind of anarchy in societal setup and an inhuman conflict between normative heterosexuality and alternative homosexuality. How apt is the remark of protest of Nivedita Menon against Indian social structure of gender discrimination and sexism: [O]nce we give up on the idea that only heterosexuality is normal and that all human bodies are clearly either male or female, more and more kinds of bodies and desires will come into view. Perhaps also, one body may, in one lifetime, move through many identities and desires. The use of 'queer' then, is a deliberate political move, which underscores the fluidity (potential and actual) of sexual identity and sexual desire. The term suggests that all kinds of sexual desire and identifications are possible, and all these have socio-cultural and historical co-ordinates" (98)[5].

To have a proper understanding of the play it would be apt to go briefly through the main action of the play. The play is enacted in three acts. Act I opens in the bedroom of Kamlesh where two men are in the bedroom. Kamlesh is in his dressing gown, smoking and watching the other man who is a security guard who is wearing his uniform before him. Kamlesh is watching him with great enjoyment. Kamlesh gets up, walks to where his trousers are on the floor, takes out his wallet and offers a few hundred rupees to the guard. The guard takes the money and steps out of the bedroom into the living room. Kamlesh tells him that some of his friends are about to come so bring something to eat and drink from Market. He also gives him money. Seeing the Guard's shoelaces open, Kamlesh places his foot on his thigh and ties it slowly. Kamlesh asks the guard if he does these things for the sake of money. Guard replies affirmatively. Kamlesh asks him if he enjoys whatever they do. Guard doesn't reply but moves away from there saying he has to go on duty.

Thereafter the scene shifts to two other important charesters Kiran (sister of Kamlesh) and ED (Prakesh). Kiran is extremely attractive, in her mid- or late thirties and is carrying a small travel bag. She sits down and quickly combs her hair and composes herself just as Ed enters. The way Ed behaves and talks to Kiran, he looks very caring about Kiran. Ed has managed window seat for Kiran, whereas Kiran prefers to have an aisle seat. When Kiran says she is afraid of heights, he becomes worried about her and he shouts, "Don't you understand English? I want an aisle seat for my fiance and 1 don't care if it is a full flight! Damm it, get someone to give up their seat! What bloody service is this?" Then again scene moves to the living room of Kamlesh where Sharad is dressed in a designer kurta. Kamlesh asks Sharad to shut the window because they can be seen by the guests gathered outside. Shard expresses his displeasure to the heterosexual. He peeps into another's bedroom and see a lady with a diamond merchant in sex. Kamlesh says that he has seen her with a milkman also in office hours. Sharad asks him if there is any special reason for inviting everyone at his home. Kamlesh accepts that there is a reason but he will wait till everyone arrives. Sharad asks if it is related to his sister Kiran or Prakash. When Sharad takes name of Prakash, Kamlesh becomes annoyed.

Sharad asks Kamlesh to throw the Chopin album and forget everything. Sharad asks him to sing

a gay song. Kamlesh joins him in singing the gay anthem and they finish it together. Sharad confesses that he is still in love with Kamlesh. Kamlesh says that he wanted to love him, but he feels helpless to love him because he is unable to forget his love relationship with Prakash. Sharad angrily says that he wasted a whole year of his life being a housewife of you and all he gets is a kick in the ass. He compares his situation with that woman who sleeps with another man but doesn't throw her husband out. Kamlesh forbids Sharad to take the name of Prakash again and warns if he does, he will throw him out of his house. Kamlesh accepts that he can't forget that Sharad spent a year of his life trying to make him happy but he can't repay him. Kamlesh sadly accepts that he did try his best to forget his homosexual relationship with Prakesh but he really fails to put him in oblivion.

In the meantime, Deepali happens to come in and asks about gathering of people outside. Kamlesh tells that there is marriage in Kapoors family and they are using his compound. The conversation of Shard and Deepli gives clue that she knows about Kamlesh and Prakash affair. Suddenly the doorbell rings and the guard comes back with purchased things. When guard hesitates in saying bottles of wine, Shard says we don't feel shame in doing and saying anything and we are shameless. Sharad happens to trace mark on the neck of guard. He understands what is going on between Kamlesh and guard. Kamlesh informs them that Bunny and Ranjit are on their way. Sharad complains that Kamlesh pretends as if they were never lover. Kamlesh asks Sharad to stop repeating before others that he was once his lover who controlled and stifled him till he had to scream for some space. Sharad scolds Kamlesh for having relation with guard. Kamlesh says that the guard is gay and accepts that to forget Prakash, he is doing strange things. After some time, Bunny and Ranjit arrive. When Bunny comes and joins his friends, Ranjit asks Kamlesh the reason for calling them and what he wanted to tell them. Before his friends, Kamlesh says:

Three years ago, I moved to Bombay not make it big in the fashion world-although I did, that wasn't my intention. 1 came here to get over a relationship. A relationship... I suppose it was. In Bangalore. We have all been through the pain of separation.. .as gay men and women, we have all been through that, I suppose... some of us several time. I did a cruel thing... Sharad, I hope you will find it in you to forgive me...I did a cruel thing by loving Sharad to forget Prakash. I have not succeeded. And I have hurt someone as wonderful as Sharad. I made Sharad go through the same pain and suffering that I was trying to get over (CP 68).

He further says:

After Sharad went away- I decided that I didn't really need anyone to live with me. I had my work. That should have been enough. It wasn't. I felt this void. The same feeling when three years ago, Prakash left me, I would have understood it if he had left me for another man, but he left me because he was ashamed of our relationship. It would have worked between us, but he was ashamed. I was very angry. I left my parents and my sister to come here, all because of him. I know, I know I shouldn't blame him entirely for that- Sharad has told me often enough (CP 68).

Bunny Singh, a TV actor who has gained immense popularity by acting in a hetero-normative T.V. serial 'Yeh Hai Hamara Parivaar' is apparently a family man who is gay. Bunny Singh secretly keeps his gay relationship under the mask of ideal husband and father but he is always haunted with the fear that if his reality is exposed, he will be turned down from professional, familial and social circles at a time because Indian social structure strictly approbates only hetero-normative ideal regarding sexuality and this hetero-normative ideal in the patriarchal set-up creates “rigid notions of what it means to be a man or a woman, how the two should relate and the family unit that should result from such a relationship” (3)[6]. His fear is revealed in his speech to Sharad: “Do you think I will be accepted by the millions if I screamed from the rooftops that I am gay?” (CP 70) Bunny Singh and Ed actually represent the fear and duality of millions of homosexual whose are compelled to live double life being heterosexual in the social life and homosexual in the real life. But quite ironically they are proved as failure in both. The difference between reality and appearance never comes to an end in the present Indian social set up. The agony of split identity comes before us in these words of Bunny:

I know. Just as the man whom my wife loves does not exist, I have denied a lot of things. The only people who know me- the real me- are present here in this room, And you all hate me for being such a hypocrite. The people who know me are the people who hate me. That is not such a nice feeling. I have

tried to survive. In both worlds. And it seems I do not exist in either. … Everyone believes me to be the model middle-class Indian man. I was chosen for the part in the serial because I fit into common perceptions of what a family man ought to look like. I believed in it myself. I lied - to myself first. And I continue to lie to millions of people every week on Thursday nights. There's no such person… (CP 102-103).

Obviously the nature and temperament of Kamlesh is quite unlike to Prakash because Kamlesh does not feel ashamed of his homosexuality and is very sincere to his gay relationship. His emotional attachment with Prakash was so deep that in spite of the separation, his past memories could not let him adjust with Sharad. His guilty feelings regarding his present relationship with Sharad comes in this way "We have all been through the pain of separation… As gay men and women, we have all been through that, I suppose … some of us several times" (CP68). The deep and intensive love bonding of the homosexuals has been very vividly portrayed by Dattani through the relationship of Kamlesh and Prakash. They share a deep and strong emotional bonding no way less than heterosexuals. The carnal satisfaction has never been the only motif of this relationship. But unfortunately Indian society never allows the homosexuals to maintain their relationships respectfully. Most of them are ultimately afflicted by cruel pangs of separation like Kamlesh. Kamlesh says that to overcome depression, he visited a psychiatrist but he was only a straight homophobic psychiatrist. Kamlesh tells about his treatment which worsens his situation:

I knew I needed medication. I chose the psychiatrist out of the Yellow Pages. He pretended to understand. Until he began to tell me about aversion therapy. For a while, I believed him. Because the medication helped me cope with my depression better. Until he said I would never be happy as a gay man. It is impossible to change society, he said, but it may be possible for you to reorient yourself. I tried explaining to him that I needed his help to overcome my anxiety and fears, not to be something I am not. Could he help me cope with my loneliness and fear the same way he would help a heterosexual cope with his?(CP69)

Kamlesh says that he stopped consulting the doctor and taking medicines because of this fear and he is obsessed more by the memory of Prakash and he finds that he can't live without Prakash. To get rid of his loneliness, he has been picking up strangers. Bunny advises him to get married to forget Prakash and in this way he can always have sex on the side but Sharad protests Bunny that he wants to make Kamlesh pretender like himself. Bunny says that there is nothing wrong in it because he is accepted by the millions but by accepting that he is gay, people will reject. His remark clearly indicates that an attitude of acceptance is necessary for these people to live:

What's wrong with that? Huh? Do you think I will be accepted by the millions if I screamed from the rooftops that I am gay. All I am saying is that we would all forget about categorizing people as gay or straight or bi or whatever, and let them do what they want to do!(CP 88)

But Kamlesh does not want to camouflage. Ranjit says that this is the price one pays for living in India and it is not possible to find lover in this wretched country. True to the spirit of Kamlesh and Ranjit, Sharad is antithetical to Ed and Bunny. He is vocal of his gay identity. His protest against camouflaging identity is evident in his ironic statement to Kiran: We-ell let me see how I can put it. You see, being a heterosexual man- a real man, as Ed put it- I get everything. I get to be accepted-accepted by whom? Well, that marriage lot down there for instance. I can have a wife, I can have children who will all adore me simply because I am a hetero - I beg your pardon- a real man. Now why would I want to give it all up? So what if I have to change a little? If I can be a real man, I can be king.(CP101)

Sharad takes out the photograph which Kamlesh has concealed. Nobody has ever seen Prakash before so they want to see the photograph. Everybody promises Kamlesh that none of them will acknowledge his relationship with Prakash. As Kamlesh was going to tear the photograph after repeating the words of Sharad. Kiran enters through the open main door so Kamlesh hides the photograph behind his back and throws the photograph out of the ajar window. Sharad asks why he did not tear the photograph. Kamlesh ignores him and introduces his sister to everyone. Kiran says that she is happy that her brother has so many good friends and informs that Ed and she are moving to Bombay as they have seen a flat in Andheri and they will move in just after wedding. Kiran remembers that she has left her bag with guard downstairs. Kamlesh asks her not to worry; he will go and bring it. Being asked about

marriage, Kiran tells that it is her second marriage. The first marriage was broken because her husband used to humiliate her for which he was arrested and jailed but was left the very next day. She also tells about her meeting with Ed. She says when her brother Kamlesh would meet Ed, he would be very happy. She invites everyone in the marriage. Deepali asks if she knows Ed for long. Kiran says that she knows him for more than four years and even Kamlesh himself introduced him to her in Bangalore. Deepali tells Sharad to tell the truth to Kiran about Ed. When Sharad accosts, she changes the topic and says she should know that her brother is being treated for depression. By the time, Kamlesh returns with the guard carrying the large bag of Kiran. When Sharad asks Kiran to tell more about Ed, she asks if Kamlesh hasn't mentioned anything about Ed to them. Kiran suggests that talking about Prakash will help him get out of depression. Being asked, Kiran tells the full name of Ed as Edwin Prakash Mathew.

The Second act begins in a flash back to communicate how Kamlesh and Ed (Prakesh) met first time and came close to each other. Once again we see the continuation of the first act where Deepali is asking Kamlesh to reveal truth to his sister Kiran about Prakash. Ranjit says that they should compel Ed to tell her about himself. Bunny opposes because truth will ruin their life. Kamlesh tells his friends that Prakash has changed and he himself accepted that he has turned heterosexual he goes to church every week and they put him on a psychiatrist. He believes his love for him was the work of the devil and the devil had left him. The general plight of the homosexuals in India and homophobia as their psyche feature have been beautifully portrayed in play through the character of Prakash (Ed) when he sought the assistance from religion to overcome his gayness so that he could marry Kiran. In this way, he wants to prove to the world that he is a heterosexual to get acceptance in the society. In the words of Kamlesh, "He goes to the church every week now. They put him on to a psychiatrist. He believes his love for was the work of devil. Now the devil has left him."(CP 85).

In the III act Ed introduces everybody in the room. They talk about hypocrisy of marriage. Marriage that validates the relationship of heterosexual male and female is beyond the concept of homosexual world. Ed feels uncomfortable. Kamlesh and Kiran both enter the living room. Kiran and Ed express love to each other. Kamlesh wanted to call him Prakash but he calls him Ed. Kamlesh introduces him as fiance of Kiran-Edwin Prakash Matthew. Kiran says before my fiance he is your friend. Ed pretends he is uncomfortable in the gay circle and asks to leave. Ranjit taunts again and again about marriage so Ed feels offended. Kiran suggests that even gay couple should also be allowed to public marriage. Kiran is presented as having sympathy for the gay people as her brother Kamlesh is homosexual. She is in the opinion of marriage between two homosexuals. Kiran says if her brother is allowed to marry his partner he would not suffer. She thinks that Sharad and Kamlesh want to be together. She says: "I really wish they would allow gay people to marry," (CP 98) to which Ranjit replies with full of cynicism, "Oh, they do. Only not to the same sex." (CP98)

Deepali intervenes and says Sharad wants to be straight that's why he has broken up his relation with Kamlesh. Kiran is of the opinion that Sharad can't be straight because he is gay. Ed comes in discussion and says that he can do anything if he wants to. It is good that Sharad wants to be a real man. Ed asks them to look around. The conversation between Kamlesh and Deepali also shows how homosexuals suffer from identity crisis due to non-validation of marriage in their life:

Deepali: If you were a woman, we would be in love.

Kamlesh: If you were a man, we would be in love.

Deepali: If you were heterosexual we would be married. (Dattani 65)

Deepali says that Sharad wants to be the part of the world, so he wants to become straight. Kiran disagrees. Deepali now instigates Ed by implementing everything on Sharad but actually all belongs to Ed. Kiran doesn't understand the trick of Deepali and she keeps persuading Sharad to not to do so. Ed contradicts Kiran. When Ranjit asks if Sharad has really any choice and if he can become heterosexual, Ed blurts out that it is possible and it has happened before. Sharad gives his logic why a person wants to become heterosexual man-a real man as Ed has says: I get everything. I get to be accepted. I can have wife, I can have children who will all adore me simply because I made a heterosexual. If I can be a real man, I can be king. Look at all the kings around you look at all the male power they enjoy, trusting themselves on to the world, all that penis power! Power with sex,

power with muscle, power with size. Power, man '.Power!

Kiran asks Sharad not to behave like this because Kamlesh loves him. She asks him by doing so he will ruin the life of woman he gets married. Kamlesh looking at Ed says that he has realized till now he has been chasing an illusion and perhaps the man I loved doesn't exist.

Dipali, the only lesbian in the play also challenges gender discriminations. Dipali's conversation with Ranjit puts her daring character before us:

DEEPALI: You are a real dickhead.

RANJIT: Are you jealous?

DEEPALI: Why should I be jealous of you? RANJIT: Because I have a dick. Would you want one? Of course you would.

DEEPALI (with great dignity): I thank God. Every time I menstruate, I thank God I am a woman. (CP66)

Sharad-Dipali conversation presents another scene of Dipali's protest against sexism:

SHARAD: If I had a lover, would I be such a bitch?

DIPALI: Don't- don't use that word. (Clenches her fist at him.) You can call yourself a dog, call yourself a pig, but never insult a female. (CP59)

When Ed is alone with Kamlesh he asks if he really loves Sharad. Kamlesh is positive about it and regret his relationship with Ed. Ed says once he is married with Kiran, he can meet Kamlesh without hindrance. Ed forces Kamlesh to accept that he is in love with him not with Sharad. After some argument Ed and Kamlesh come close and kiss each other. Ed promises that being brother-in-law they can meet anytime and nobody would suspect. He can take care of Kiran and Kamlesh can take care of him. In mean time, the guard comes with the photograph and says that everybody in the marriage party has seen the photograph and will complain to society tomorrow about it. He gives photograph to Sharad. He gives it to Kiran. Kiran takes the photograph and looks at it. Having seen the photograph of Kamlesh and Ed, she is almost frozen. Then comes the most crucial observation of the play regarding the victimization of the women by the power of sexism which implies the superiority of masculine over feminine which simply leads the later to be the victim of exploitation, subjugation and even negation of identity in public sphere. The oppression received by Bunny and Ed at the hands of the society is translated into victimization of their wives by them. They don't pay any heed to the emotional harm done by them to their women. Ed wants to marry Kiran, Kamlesh's sister but when Ed's real gay identity comes to light; he shows no sympathy over Kiran's present state of mind on which Kiran's reply gives rise to question over the validity of sexism on the societal surface:

ED: Sweetheart, that is such a …. Pardon me, but you are behaving like a typical woman again. KIRAN: Isn't that what you want?

ED: No! Now let's get out of here!

KIRAN: That's why you want to marry me. And that's what I tried to be all the time. Look what it gave me…. Do you know? When my husband beat me up, I truly believed and felt that he loved me. I felt he loved me enough to want to hurt me. Kamlesh helped me get out of that. But I continued being the same…woman. I wanted to feel loved by a man. In whichever way he wanted to love me. And I met you. And you did show love. And you continue being the same …. Man …. Typical, you said. You are right. If there any stereotypes around here, they are you and me. Because we don't know any better, do we? We just don't know what else to be!"(CP107)

When Kamlesh grabs Ed by throat and call him lair. The very time he hears cry of Kiran and they come in the living room. Kamlesh asks Kiran not to marry him. Kiran asks him why he didn't tell her. Kamlesh says he did not know how to tell. Kiran says she would have been better if she had known. Kiran goes to Ed and says now she has understood why he wanted to marry her. She wanted to feel loved by a man but he only pretended and behaved like typical.she asks him to get out.

Thus the brief browsing of the play makes it very clear that gay are also human beings, they also have their intense feelings and they have their own choices regarding sex. We cannot snatch the human rights to live as they wish Just because they do not follow the established sexual criteria of society. Sexual perversion should be considered sympathetically instead of viewing it as social crime. According to Arvind Narrain and Gautam Bhan the whole play is an endeavour to re-tell the experience of people practicing alternate sexuality. It also encompasses an

effort to give voice to a concept, an identity and a politics as "to speak of sexuality, and of same-sex love in particular, in India is simultaneously an act of political assertion, of celebration, of defiance and of fear" (2)[7]. John McRae also commends the bold spirit of playwright to back up the human rights of gay and says: "The play is "the first in Indian theatre to handle openly gay themes of love, partnership, trust and betrayal. It is a play about how society creates patterns of behavior and how easy it is for individuals to fall victim to the expectations society creates"(45)[8]. In compendium it may be said without any hesitation that Dattani brings very delicately into Voice the unvoiced fact that the agony of gender clash not only upset the composition of heteronormative communities but it is also denies the inborn right to let live of homosexual community. Through the chatacters of Kiran and Dipali, Dattani openly targets the festered mentality of sexism that unjustly separates male and female by establishing the superiority of male over female just on the basis of gender discrimination. Linda Hutcheon in *The Politics of Postmodernism* writes : "Despite their similar challenge to the boundaries of normative heterosexuality, their differences surface in their attitude to power and their strategies for social change – as symbolized to some extent in their very act of nomination"(179)[9]. Dattani's diversified images of homosexuals with all their problems are really praiseworthy and pave the way to discuss the human rights of homosexuals to provide them some human space in our social structure.

References

1. Foucault, Michel. History of Sexuality. 3 vols. Trans. Robert Hurley. London: Penguin, 1978- 86. Print
2. McRae, John. "A Note on the Play", Collected Plays: Mahesh Dattani. New Delhi: Penguin Books, 2000. Print
3. Choudhuri, Asha Kumari. Contemporary Writers in English: Mahesh Dattani. New Delhi: Foundation Books Pvt. Ltd., 2005. Print.
4. Mary John and Janaki nair, ed. A Question of Silence. New Delhi: Kali for Women, 2000.Print.
5. Menon, Nivedita. Seeing Like a Feminist. New Delhi: Penguin Books, 2012. Print
6. Arvind Narrain and Gautam Bhan, ed. Because I Have a Voice: Queer Politics in India. New Delhi: Yoda Press, 2005. Print
7. Arvind Narrain and Gautam Bhan, ed. Because I Have a Voice: Queer Politics in India. New Delhi: Yoda Press, 2005. Print
8. McRae, John. "A Note on the Play", Collected Plays: Mahesh Dattani. New Delhi: Penguin Books,2000. Print
9. Hutcheon, Linda. The Politics of Postmodernism. London: Routledge, 1989. Print.

Abbreviation

CP: Dattani, Mahesh. Collected Plays. 2 vols. New Delhi: Penguin Books, 2000. Print

A REVIEW ON FINANCIAL DISTRESS RISK

*POOJA SINGH * AND DR. ANINDITA CHAKRABORTY***

Financial distress is a prominent topic which is being studied since last eight decades. The understanding of distress risk has become important for understanding the nature of relationship of it with stock return and the association of it with different firm's characteristics. There have been several studies on different aspects of financial distress risk. Various researchers' have reviewed the distress risk in terms of its meaning and measures. Financial distress is commonly used in negative connotation. It refers to a financial situation wherein a company faces a temporary shortage of liquidity and has difficulties in honoring financial obligations on due date. In other words, it is a situation when a company fails to fulfil its financial obligations as and when it falls due. Distress risk measures the probability that a firm may default in the future. A number of studies showed that financial distress is imminent or is ongoing as such equity returns are affected. Financial distress has become a problem to answer because when a company is near to the signaling of financial distress, there is an adverse impact on the equity position of the shareholders and lenders claims[1]. While going through different research work it was evident that the meaning of financial distress is still evolving. One of the way of finding whether a firm is financially distressed or not is through different measures which have evolved from theoretical model to statistical model to AI based model. The suitability of these financial distress models in different countries is debatable[2].

Moreover, the distress risk has also been related to firm characteristics. In Chan and Chen[3] work distress factor hypothesis states that premium earned by the small size companies and value companies is due to presence of distress factor, which Fama and French[4] further confirmed by remarking that size and book to market ratio proxies for distress risk and defined distress risk as a state variable in Inter temporal capital asset pricing model (ICAPM). The distress risk also provides explanation to several characteristics, though many research studies have negated this explanation. The two firm's characteristics to which distress risk have been mostly related is size and book to market ratio, where relation is still questionable as no consensus have been yet arrived at. Hence, the nature of distress risk is still questionable, if it is a systematic risk then why it is not captured by asset pricing model and if it is an unsystematic risk why can't it be diversified? These questions still remain to be answered. The relationship between distress risk and stock return is inconclusive too. However, in the US most of the research study have concluded it as an anomaly, but is not conclusive for other countries. Thus an effort has been made in this work to understand financial distress from different perspective. Although there have been review paper on the topic but in this work an effort is made to provide a holistic view financial distress risk from different aspect. The study proceeds as follows section 2 describes meaning of financial distress as referred in different research work, section 3 details about measure of financial distress measures, section 4 provide a review of distress as an anomaly and section 5 studies the relation of distress risk with other firm's characteristics and section 6 concludes the study.

1. Meaning of Financial Distress

The term financial distress has been gaining prominence since last 80 years in the arena of research. Still the meaning of financial distress remains ambiguous and intriguing. The researchers' according to their research work has defined the term disparately. To begin with the event oriented definition of Beaver financial distress is an event wherein a firm is said to have failed when any of the following events occurred viz., bankruptcy, bond default, an overdrawn bank account, or non-payment of a preferred stock dividend. The definition given by Beaver was followed by many researchers like Pindado[5]who studied the effect of a firm's financial condition on its financial structure. The event oriented definition have been followed by researchers defining firm as financially distressed when any of the following events occur- violation of debt covenants and reduction or deletion of dividend payment. Brown et

* Research Scholar, Institute of Management Studies, Banaras Hindu University
** Assistant Professor, Institute of Management Studies, Banaras Hindu University

al.[6] stated that a firm is said to be in financial distress if it implements restructuring measures. Thus, recognition of single event, like bankruptcy, was the basis for analysing the financial distress, which was criticized on the ground that it does not consider the prior stages before bankruptcy as financial distress is a dynamic process and bankruptcy is the last stage of it.Gordon[7] defined financial distress as a process oriented, i.e., an entire process that combines single states of corporate decline. Similarly, Turetsky and MacEwen[8] defined it as a series of successive stages characterized by a special set of adverse financial events. Furthermore, financial distress was also defined on the basis of certain financial criteria, Denis and Denis[9], Asquith[10], Whitaker[11]defined financial distress in technical terms. According to the technical oriented definition market based and accounting based determinants (like financial ratios, etc.) are combined to identify financially distressed firms. Through the above definition it is evident these are on the basis of event oriented, process oriented and technical oriented as categorised by Outcheva[12]. Outecheva "conceptualized corporate failure as an integral continuous process and defined financial distress as a very dynamic and complicated process of the value deterioration of a single company passing through different stages and distressed events in its adverse development, with two possible outcomes: distressed restructuring or liquidation."O'Doherty[13] defined failure of firm as delisting of firms due to performance reason. In other words, the performance of firm is so poor that it is incapable of meeting listing requirements of an exchange. The firm is financially distressed is defined by national security management institution as in China.

From, the above definitions it becomes evident that there is no consensus on definition; usually legal aspect of definition is applied i.e., where firm has been declared bankrupt or restructuring process is being applied, which does not represent a true picture of financial distressed firm, as bankruptcy is the last stage of company failure process. Time factor plays a key role in determination of financial distress phase in a firm.

2.1 Meaning of Financial distress risk

Fama & French surmised distress risk as a static variable in inter-temporal capital asset pricing model (ICAPM). Distress risk has been presumed as static variable because it varies over business cycle, investors are exposed to it regardless of asset market exposure, its estimation is less error prone as it relies on audit accounting and stock market data and can be stated as firm characteristics.

Others have defined distress risk as the probability that a firm will default in future[14] and therefore determines the firm's future performance. Distress risk is defined another measure of distress, which is the fitted value determined from a logistic regression that Campbell et al estimated to predict failures[15].

2. Measures of Financial Distress

There is a wide list of financial distress measures propounded in research literatures over the last 80 years. One way of identifying firms' financial distress could be a careful look at the changes occurring in their balance sheets. The balance sheet decomposition measure was used by Lev in 1969 to foresee the firms' failure. Wilcox in 1973 focused upon the application of the Gamblers ruin model to evaluate business risk. The model made contribution conceptually, however it lacked to develop empirically robust framework of firms failure. The theoretical model of bankruptcy focuses on the qualitative aspect of failure and is centered on information that would fulfil the theoretical argument of firm's failure as proposed by the theory.

The early work on bankruptcy prediction using financial ratios was done by Foster[16]; Fitzpatrick[17]; Beaver18 etc. Fitzpatrick (ibid.) identified five phases of business failure which are incubation, financial embarrassment, financial insolvency, total insolvency and confirmed insolvency and also stated two significant ratios: net worth to debt and net profit to net worth. Beaver in 1966 too performed univariate analysis on failed firms for the period 1954-1964 in US to determine the predictive ability of financial ratios. The univariate analysis was criticized on the ground that interpretation of single ratio will be ambiguous and will provide faulty result as ratios are interrelated, thus, providing foundation for MDA approach. However, confirmed predictive ability of Beaver's one ratio that is Cash flow to total debt is equivalent to the predictive ability of Multivariate Discriminant Analysis (MDA) approach[19].Various MDA model were developed but the prominent one is Altman Z score which classified firms into three zones- safe zone, distressed zones and grey zones.

Altman for the study grouped firm into bankrupt and non-bankrupt firms each consisting of 33 firms applied MDA approach and developed the simple and frequently used Z score model[20]. The study period was 1946-1965.The MDA approach was criticized on the ground that it requires normally distributed data, dichotomous nature of dependent variable not representing true nature of financial distress and the other statistical requirement are rarely established by the data[21]. The coefficient of Z score needs to be re-estimated as they are not consistent[22, 23]. To overcome the limitation of MDA approach new models were developed using logistic regression like Ohlson's O-score. Ohlson in 1980 using logit model developed the O Score. In contrast to, Altman study, the study used the sample of 105 bankrupt firms and 2058 non bankrupt firms for the period 1970-76[24]. Still, this model too was criticized for the dichotomous nature of dependent variable and is sensitive to time period.

However, the use of accounting information has been criticized on the ground that they are past oriented, paving way to the development of market based model like Merton model, Hazard model in 2001, etc. Merton extended the work of Black and Scholes and developed contingency claim approach in 1974. The firm is said to be in default when the market value of assets is less than the liabilities of the firm. The information required, herein, for calculating default risk is attained from equities[25].The model limitation is its assumption which does not hold in reality. Consequently, various other models have been developed to overcome limitations of Merton model, among them a popular model is Shumway discrete hazard model which applies time varying variables to estimate firm's bankruptcy at each point of time[26]. However, the model requires data on historical defaults.

The advancement in information technology has provided alternative models to the classical statistical model namely Artificial Intelligence (AI) based model. The Neural Network is the most used AI based model. The neural network model imposes fewer restrictions on data requirements and is capable of explaining complex relationship. However, interpreting the network model is quite challenging. The artificial based model has better predictive ability compared to MDA & logit model still the latter models are widely used and whether it is theoretical model or Artificial intelligence model as both rest on the statistical technique[27,28].

In literature financial distress prediction models have been grouped into three main categories

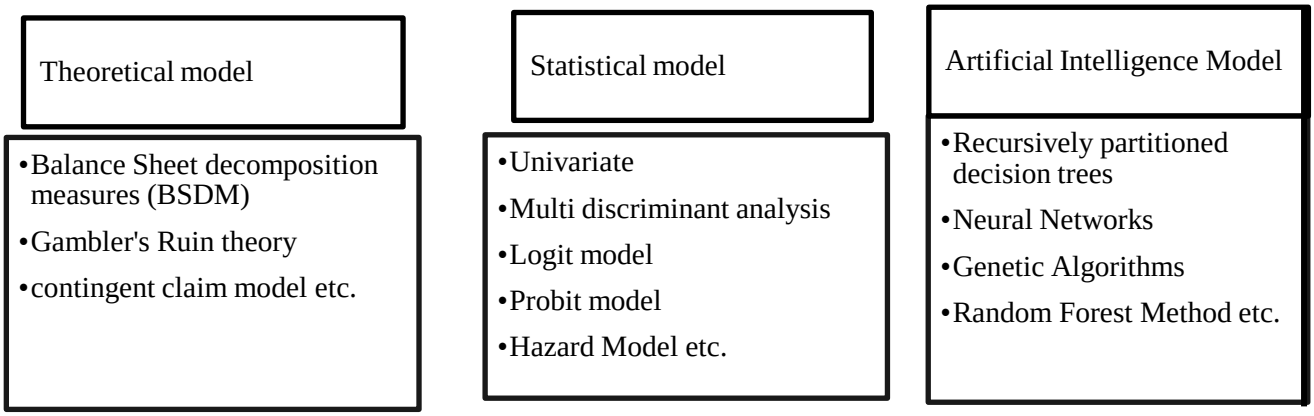

Fig.1 Financial distress prediction model

As the literature consists of number of model to predict financial distress, it becomes imperative to know the most applied model to predict financial distress.

Hence, after having surveyed 87 papers it was inferred that maximum paper (56) applied accounting measures to identify financial distress situation of a firm, followed by hazard model.

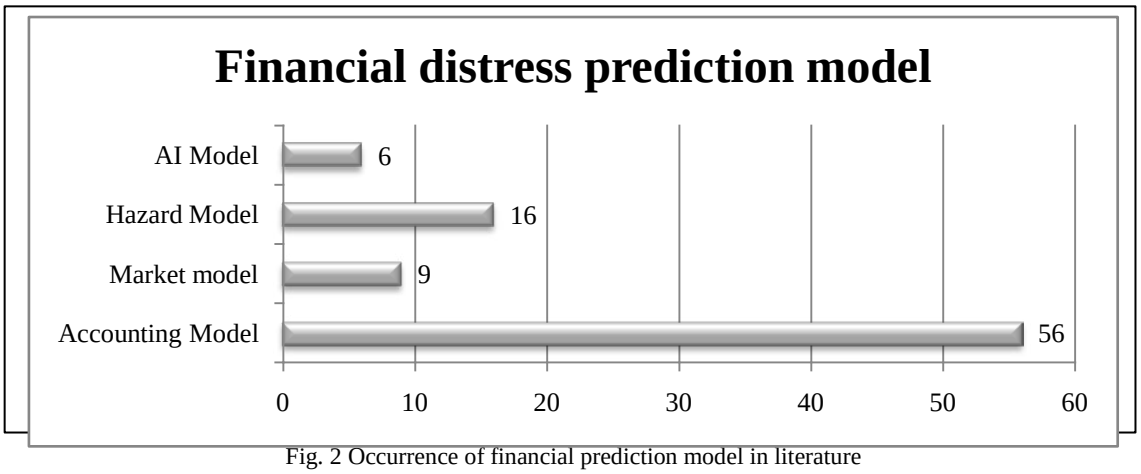

Fig. 2 Occurrence of financial prediction model in literature

However, most of the studies was carried out developed countries, so the bankruptcy model which predicts accurately in context developing countries (here focus is on India) needs further exploration. Charalambakis and Garrett (2016) studied the ability of variables using Hazard model, Z-score and Expected default frequency model, which predicts financial distressin the UK and Indian firms; concluded that a model entailing only accounting ratios reflecting profitability and financial risk best describes the probability of financial distress for Indian firms.

3. Distress as an Anomaly

Corporate failure has serious implications both to the firm and to its stakeholders. So, it becomes imperative from investors' standpoint to ascertain whether distress risk is reflected in stock return and whether they are being compensated for bearing this risk. Assets pricing theory specifies that investors will require a premium for investing in risky stocks. In other words, asset pricing model asserts that higher the risk; higher should be the return.

The relationship between the distress risk and stock return has been very questionable. There are researchers who have found positive relationship between distress risk and stock return[29, 30 and 31]. Conversely many research studies have found a negative relationship. This negative relationship between distress risk and stock return is said to be distress anomaly, in other words distress risk isn't compensated by the higher returns[32, 33]. However, one of the studies also found mixed result on distress anomaly in emerging countries[34]. Likewise, an study inferred that distress anomaly exists in developed countries but not in emerging ones[35], however, one study inferred that distress anomaly exist in China[36], these contradictory inferences needs further exploration.

There have been varied explanation provided for anomalous returns to distressed stock like low analyst coverage (Campbell et al.), mispricing[37]; shareholder advantage[38, 39], limit to arbitrage Eisdorfer (Ibid), institutional ownership Ye et al (Ibid.). Moreover, Doherty claimed that a moderate modification in the definition of firm failure have significant influence on distress risk and stock return relationship and Kim furnished that the negative relationship between distress risk and stock return is construct based.

4. Distress Risk and Other Firm Characteristics

Asset pricing model asserts that stock return is determined by the systematic risk or firm's characteristic risk, accordingly it is assumed that financial distress is a part of systematic risk or is related with firm's characteristics such as size, leverage etc. Distress risk has also been assumed to have ability to explain other anomalies like size effect, value premium, profitability anomaly etc. As distressed firm have features like small size, low sales, high leverage, less profitability, high book to market ratio etc. Thus, it become of utmost importance to study the kind of relationship that exist between distress risk and other firm characteristics.

In seminal work of Chan and Chen,1991,distress factor hypothesis avers that the premium earned by the small size company and value companies is due to presence of distress factor; working on it Fama and French found that size and book to market ratio proxies for distress risk. The relationship between distress risk, size and book to market ratio have been

put under several test in order to explore the relationship and its impact on stock return. Vassalou and Xing, 2004, were first to apply Merton model to estimate default measures for the period 1971-99, deduced that default risk is related to firm characteristic that is firm size and book to market ratio. The result also reported that distress risk is a systematic risk as described by Fama-French in 1993. Similarly, Doherty for the year 1974-2007, stated that size effect and value effect does carry significant distress related information. Guo and Jiang too confirmed this relationship and stated that firm size is a measure of distress risk. Similarly, the size and book to market ratio becomes insignificant in presence of financial distress risk, meaning that if size and book to market is related to financial distress, then will lose ability to explain return in presence of distress risk factor[40].

On the contrary, size and book to market ratio proxies for distress risk. In other words, distress risk does not account for size and book to market ratio, as such distress risk is not a systematic risk. During the study period 1981-1995, it was found that distressed firm earned less than the average returns[41]. Griffin and Lemmon studied the relationship for longer period that is 1965-1996 and concluded that distressed firm, especially with low book to market ratio, earned lower return. The variables related to distress risk like firm size, book to market ratio, profitability and leverage fails to explain large return discrepancies. Similarly, a study too found that high distress risk is more in small firm with low book to market ratio and hence unrelated to book to market ratio[42]. Franzen et al.[43] extended the work of Griffin and Lemmon by focusing on the role of Research & Development (R&D) intensity in misclassification of firms as distressed. It was evidenced that the lower return in growth firms with low book to market ratio is due to the conservative accounting policies relating to R&D. Campbell et al. too inferred that size effect and value effect do not proxies for distress risk and also stated that in longer period of time firm size, market to book ratio and volatility becomes significant in measuring firm's failure. The study period was 1963-2003. Simlai[44] for the period 1972-2008 examined the firm characteristics and distressed portfolio returns and specified that the firm characteristics and distress are unrelated. Park[45] too confirmed the above result that is for small firms or growth firms' distress anomaly is strongest.

From the above discussion it is evident that the relationship between financial distress and size and value effect remains inconclusive, and hence require more exploration in this context. The above study is mostly made in developed countries, study of developing countries need to done for generalization of the result. Apart of the above two firm's characteristics, several other characteristics that are known to be correlated with stock returns are associated with distress risk. Few studies took into account other characteristics like leverage, liquidity, profitability, and others which affect equity return and in turn their relation to financial distress. As some researcher found profitability and distress risk is related Altman (1968), Ohlson; Bauer & Agrawal in their work for the period 1985-2010 in UK deduced that distress effect is driven by profitability& to some extent related to liquidity and also emphasized on exploring the relationship in terms behavioural or short selling aspect. However, more analysis is needed in order to have more detail regarding interaction between distress risk and firm's characteristics.

5. Conclusion and Future Scope

Thus, it can be inferred that financial distress is a dynamic, complex and time varying variable and plays vital role in determining the relationship between distress risk and stock return. The different financial distress measures have their own advantages and disadvantages. The coefficients of different accounting models have been questioned as the coefficient were found to be inconsistent. Distress risk is one of the pertinent variables that are being explored in order to understand its nature and impact on stock return. It is also held to be a variable behind firm characteristics driving stock return. Distress risk is being related to size, as it is evident that small firms are more pronounced to be distressed and high book to market firm also as here liabilities is more than the assets. The other significant question is whether distress risk is a missing link integrating multifactor models with the inter-temporal capital asset pricing model still remains unanswered. Understandably, this question is imperative enough to determine the future of empirical asset pricing.

References

1. Kim, B. (2007). Bankruptcy prediction: Book value or market value? Korean Insurance Journal. Retrieved from https://ssrn.com/abstract=1579929

2. Charalambakis, E. C., & Garrett, I. (2016). On the prediction of financial distress in developed and emerging markets: Does the choice of accounting and market information matter? A comparison of UK and Indian Firms. *Review of Quantitative Finance and Accounting, 47*(1), 1-28.doi:10.1007/s11156-014-0492-y.

3. Chan, K. C., & Chen, N.-F. (1991). Structural and Return Characteristics of Small and Large Firms. *The Journal of Finance, 46*(4), 1467-1484. doi:10.2307/2328867

4. Fama, E. F., & French, K. R. (1993). Common risk factors in the returns on stocks and bonds. *Journal of Financial Economics, 33*(1), 3–56. doi:10.1016/0304-405x(93)90023-5

5. Pindado, J., Rodrigues, L., & De La Torre, c. (2006). How does financial distress affect small firms' financial structure? *Small Business Economics, 26*(4), 377–391. doi:10.1007/s11187-005-4845-8

6. Brown, D. T., James, C. M., & Mooradian, R. M. (1994). Asset sales by financially distressed firms. *Journal of Corporate Finance, 1*(2), 233–257. doi:10.1016/0929-1199(94)90004-3

7. Gordon, M. J. (1971). Towards a theory of financial distress. *The Journal of Finance, 26*(2), 347-356. doi:10.2307/2326050

8. Turetsky, H. F., & McEwen, R. A. (2001). An empirical investigation of firm longevity: A model of the ex-ante predictors of financial distress. *Review of Quantitative Finance and Accounting, 16* (4), 323-343. Doi:10.1023/A:1011291425075

9. Denis, D. J., & Denis, D. K. (1995). Causes of financial distress following leveraged recapitalizations. *Journal of financial economics, 37*(2), 129-157. doi:10.1111/j.1540-6261.1995.tb04049.x

10. Asquith, P., Gertner, R., & Scharfstein, D. (1994). Anatomy of Financial Distress: An Examination of Junk-Bond Issuers. *The Quarterly Journal of Economics, 109* (3), 625–658. doi:10.2307/2118416

11. Whitaker, R. B. (1999). The early stages of financial distress. *Journal of Economics and Finance, 23*(2), 123–132. doi:10.1007/bf02745946

12. Outecheva, N. (2007). Corporate financial distress: An empirical analysis of distress risk. Retrieved from:http://www1.unisg.ch/www/edis.nsf/syslkpbyidentifier/3430/$file/dis3430.pdf

13. O'Doherty, M. S. (2010). Information risk, conditional betas, and the financial distress anomaly. University of Iowa working paper.

14. Kim, S. (2013). What is behind the magic of O-Score? An alternative interpretation of Dichev's (1998) bankruptcy risk anomaly. *Review of Accounting Studies, 18*(2), 291-323. doi:10.1007/s11142-012-9206-7

15. Campbell, J. Y., Hilscher, J., & Szilagyi, J. (2008). In Search of Distress Risk. *The Journal of Finance, 63*(6), 2899–2939. doi:10.1111/j.1540-6261.2008.01416.x

16. Foster, George (1990). Financial Statement Analysis (Second edition), Prentice Hall, Englewood Cliffs, New Jersey, (U.S.A.).

17. Fitzpatrick, P.J (1932). A comparison of the ratios of successful industrial enterprises with those of failed companies.

18. Beaver, W. H. (1966). Financial Ratios As Predictors of Failure. *Journal of Accounting Research, 4*, 71-111. doi:10.2307/2490171.

19. Jackson, R.H., & Wood, A. (2013). The performance of insolvency prediction and credit risk models in the UK: A comparative study. The Bristish Accounting Review 45 (3), 183-202. Doi:10.1016/j.bar.2013.06.009

20. Altman, E. I. (1968). Financial ratios, discriminant analysis and the prediction of corporate bankruptcy. *The Journal of Finance,23*(4), 589–609.

21. Eisenbeis, Robert A. (1977). Pitfalls in the application of discriminant analysis in business, finance and economics. *The Journal of Finance, 32*(3), 875-900.

22. Grice,J. S & Ingram Robert W. (2001). Tests of the generalizability of Altman's bankruptcy prediction model. *Journal of Business Research 54* (1), 53–61. Doi: 10.1016/S0148-2963(00)00126-0

23. Sayari, N., & Mugan, C. S. (2017). Industry specific financial distress modeling. *BRQ Business Research Quarterly, 20*(1), 45–62. doi:10.1016/j.brq.2016.03.003

24. Ohlson, J. A. (1980). Financial Ratios and the Probabilistic Prediction of Bankruptcy. *Journal of Accounting Research, 18*(1), 109-131. doi:10.2307/2490395

25. Merton, R. C. (1974). On the pricing of corporate debt: the risk structure of interest rates. *The Journal of Finance, 29*(2), 449–470. doi:10.1111/j.1540-6261.1974.tb03058.x

26. Shumway, T. (2001). Forecasting bankruptcy mode accurately: A simple hazard model. The Journal of Business, 74(1), 101–124.

27. Aziz, Adnan. M., & Dar, H. A. (2006). Predicting corporate bankruptcy: where we stand? *Corporate Governance: The International Journal of Business in Society, 6*(1), 18–33. doi:10.1108/14720700610649436

28. Jabeur, S. B., & Fahmi, Y. (2017). Forecasting financial distress for French firms: a comparative study. *Empirical Economics, 54*(3), 1173–1186. doi:10.1007/s00181-017-1246-1

29. Vassalou, M., & Xing, Y. (2004). Default Risk in Equity Returns. *The Journal of Finance, 59*(2), 831–868. doi:10.1111/j.1540-6261.2004.00650.x

30. Chava, S., & Purnanandam, A. (2010). Is default risk negatively related to stock returns?.*The Review of Financial Studies, 23*(6), 2523-2559. Doi:10.1093/rfs/hhp107

31. Anginer, D., & Yıldızhan, Ç. (2017). Is There a Distress Risk Anomaly? Pricing of Systematic Default Risk in the Cross-section of Equity Returns. *Review of Finance, 22*(2), 633–660. doi:10.1093/rof/rfx044

32. Bauer, J., & Agarwal, V. (2014). Are hazard models superior to traditional bankruptcy prediction approaches? A comprehensive test. *Journal of Banking & Finance, 40*, 432-442. doi:10.1016/j.jbankfin.2013.12.013

33. Gao, L., He, W., & Wang, Q. (2018). In search of distress risk in China's stock market. *Global Finance Journal*. doi:10.1016/j.gfj.2018.08.003

34. Gao, P., Parsons, C. A., & Shen, J. (2018). Global relation between financial distress and equity returns. *The Review of Financial Studies, 31*(1), 239-277. doi:10.1093/rfs/hhx060

35. Eisdorfer, A., Goyal, A., & Zhdanov, A. (2018). Distress anomaly and shareholder risk: International evidence. *Financial Management, 47*(3), 553-581.doi/abs/10.1111/fima.12203

36. Ye, Q., Wu, Y., & Liu, J. (2018). Institutional preferences, demand shocks and the distress anomaly. *The British Accounting Review*. 1-20. doi:10.1016/j.bar.2018.04.003

37. Griffin, J. M., & Lemmon, M. L. (2002). Book-to-Market Equity, Distress Risk, and Stock Returns. *The Journal of Finance, 57*(5), 2317–2336. doi:10.1111/1540-6261.00497

38. Garlappi, L., & Yan, H. (2011). Financial Distress and the Cross-section of Equity Returns. *The Journal of Finance, 66*(3), 789–822. doi:10.1111/j.1540-6261.2011.01652.x

39. Hackbarth, D., Haselmann, R., & Schoenherr, D. (2015). Financial distress, stock returns, and the 1978 bankruptcy reform act. *The Review of Financial Studies, 28*(6), 1810-1847. Doi:10.1093/rfs/hhv009

40. Mselmi, N., Hamza, T., Lahiani, A., & Shahbaz, M. (2019). Pricing corporate financial distress: Empirical evidence from the French stock market. *Journal of International Money and Finance, 96*, 13-27. doi.org/10.1016/j.jimonfin.2019.04.008

41. Dichev, I. D. (1998). Is the Risk of Bankruptcy a Systematic Risk? *The Journal of Finance, 53*(3), 1131–1147. doi:10.1111/0022-1082.00046

42. Zaretzky, K., & Kenton Zumwalt, J. (2007). Relation between distress risk, book-to-market ratio and return premium. *Managerial finance, 33*(10), 788–797. doi:10.1108/03074350710779232

43. Franzen, L. A., Rodgers, K. J., & Simin, T. T. (2007). Measuring Distress Risk: The Effect of R&D Intensity. *The Journal of Finance, 62*(6), 2931–2967. doi:10.1111/j.1540-6261.2007.01297.x

44. Simlai, P. (2014). Firm characteristics, distress risk and average stock returns. *Accounting Research Journal, 27*(2), 101–123. doi:10.1108/arj-06-2012-0046.

45. Park, J. L. (2015). Equity returns of distressed equity issuers. *Finance Research Letters, 14*, 93–103. doi:10.1016/j.frl.2015.05.011

●

IS ONLINE DIGITAL PAYMENTS SECTOR IN INDIA LOSING FOCUS: DO WE NEED A NEW UNBRELLA ENTITY FOR PAYMENT SYSTEM?

*DR. VANDANA YADAV * MANOJ ** AND DR. AMITA VIJAY****

Comprehensive financial services for small businesses and low-income households' floated the idea of creating a new category of financial institutions called payment banks (PBs) in its recommendations. The thought behind this new classification was to take banking administrations & services to the country's hinterlands with the assistance of the private sector by means of a productive and profitable model". (The Nachiket Mor Committee, January 2014)

A payment bank is a new participant in the financial framework in India. A payment bank is to some degree like a typical bank however confined to perform just not many of the banking services when contrasted with customary banks. A payment bank is fundamentally a fresher idea in the financial area. A payment bank will be controlled and modulated by the Reserve Bank of India (RBI), Central bank of India.[1]

A payment bank has been sorted as a "Scheduled bank". But, it is compulsory for the organizations & companies to include the word "Payment bank" in its name in order to separate it from other regular banks. Further, payment bank is permitted to perform not everything but rather just certain specific elements of banking. Payment bank is one of the new contestants in the field of digital India. The other fundamental ones are- bank accounts and credit cards that have been following methods of online transaction, and digital exchanges since past many years. The primary target of presenting these payment banks in India was to stretch out the monetary administrations skyline to private company, migrant labour workforce & low income households. This was intended to additionally offer types of assistance to the distant spaces of the country particularly the unorganized sector in India.[2]

REVIEW OF LITERATURE:

Wamuyu PK (2014) study featured that "digital payment banks provided numerous benefits when transferring money, including convenience security and affordability."[3]

Kesavan (2015) in his examination "To The Era of Payment Banks by Reserve Bank of India with Specific Reference to Indian Banking Sector" has analyzed that advancement can give the better accomplishment to the banking & financial sector in India. In any case, it must grandstand a model presentation in acquiring consumer loyalty and satisfying the necessities of clients. Definitely, it is the solitary method of acquiring accomplishment for a bank.[4]

Chandarana (2015) in her paper "Installment Banks-A Need of Digital India" proposed that PBs vows to be a distinct advantage due to by utilizing the versatile mobile platform to give fundamental banking exchanges through cell phones and the choice to permit a portion of the country's greatest corporate and mobile telecom firms. To begin PBs vows to be comparative distinct advantage in India.[5]

Waghmare (2016) this research reveals "the structure of banking sector in India is separated into two classifications banks and financial institutions. Banks comprises of public sector, private sector, foreign, rural, urban and rural cooperatives. While financial institutions comprise of financial institutions at central- level, state-level and others. The development of Indian banking sector is at acceptable speed with rising disposable income. Admittance to banking frameworks has additionally improved with lot of government drives that promotes banking technology and expanded use of unbanked and non-metropolitan locale. Government of India is advancing cashless transaction post demonetization which has raised the utilization of internet banking, mobile banking and payment banks. Cashless payments in 2016, expanded by 22% when compared to 2015."[6]

Shalini M. and Anoop P. (2017) reveal that "the consumer commonly use payment banks charge for services like mobile recharge and bill payment, while they still in cline towards universal banks for savings. With proper promotion and awareness by payment

* Assistant Professor, Deptt. of Business Administration, Jai Narain Vyas University, Jodhpur, Rajasthan
** Research Scholar, Deptt. of Business Finance & Economics, Jai Narain Vyas University, Jodhpur, Rajasthan
*** Assistant Professor, Poddar Management And Technical Campus, Jaipur, Rajasthan

banks the mentality of the consumers can be changed."[7]

Pralhad R. and Vidyashree D. V. (2017) in their study recognized that "despite the fact that payment banks are approved by Government, individuals tend to believe it's simply private companies and a kind of dithering to keep their deposits in payment banks which conflicts with the actual thought of which payment banks were created."[8]

OBJECTIVES:

1. To analyze whether Payment Banks are still key players in online digital payments sector.
2. To review the difference between Payment Banks and Traditional banks.
3. To identify the active services provider payment banks in India.
4. To analyze selected financial ratios of Payment Banks.

METHODOLOGY:

The study mainly relies on secondary data. Data was collected from the existing data sources (RBI websites) Catalogues, Internet, Magazines and Newspapers.

DATA PRESENTATION AND INTERPRETATION:

Secondary data is presented in the following tables which seem to have direct bearings upon the points in focus. A careful examination of these tables reveal as described below-

Table-1: EXAMINING FUNCTIONS OF TRADITIONAL BANKS VS PAYMENT BANKS:

FEATURES	PAYMENT BANKS	TRADITIONAL BANKS
Accept deposits	Yes	Yes
Pay Interest on Deposits	Yes	Yes
Withdrawal facility for customers	Yes	Yes
Provide loans or involve in lending activities	No	Yes
Issue credit cards	No	Yes
Investment products	Yes	Yes
Maximum Deposit limit	Rs.1 lakh only per individual customer.	No limit

SOURCE: RBI WEBSITE[9]

From Table 1 the various functions of payment banks and traditional banks can be juxtaposed against each other. It can be inferred that Both Payment banks and traditional banks share the same functions in terms of accepting deposits, paying interests on deposits, and providing withdrawal facility to the customers. But the other services such as provided by the payment cards. Deposit limit is 1 lakh for individuals in payment banks, whereas for traditional banks it's unlimited.

Table-2: RUNDOWN OF PAYMENT BANKS IN INDIA:

1. ADITYA BIRLA NUVO LIMITED (IDEA CELLULAR)
2. RELIANCE INDUSTRIES (JOINT VENTURE : 70% RIL, 30% SBI)
3. AIRTEL M COMMERCE SERVICES LIMITED
4. VIJAY SEKHAR SHARMA (PAYTM)
5. CHOLAMANDALAM DISTRIBUTION SERVICES LIMITED
6. DEPARTMENT OF POSTS (INDIA POST)
7. FINO PAYTECH LIMITED
8. NATIONAL SECURITIES DEPOSITORY LIMITED (NSDL)
9. DILIP SHANTILAL SHANGHVI (SUN PHARMA)
10. TECH MAHINDRA LIMITED
11. VODAFONE M-PESA LIMITED

SOURCE: RBI WEBSITE[10]

[Note: Tech Mahindra, Cholamandalam Distribution Services Limited and Dilip Shanghvi IDFC Bank-Telenor JV have effectively exited idea of opening a payment bank.]

Table 2 exhibits the list of 11 applicants who got "in-principle" endorsements to open a payment bank in India.

Table-3: CURRENT ACTIVE SERVICES PROVIDER PAYMENT BANKS IN INDIA:

WITH WELL-DEVELOPED SERVICES	WITH LIMITED SERVICES
Airtel Payments Bank (2017), New Delhi, Delhi	**NSDL Payments Bank** (2018), Mumbai, Maharashtra
India Post Payments Bank (2018), New Delhi, Delhi	**Jio Payments Bank** (2018), Mumbai, Maharashtra
Fino Payments Bank (2017), Mumbai, Maharashtra	**Aditya Birla Payments Bank** (2018), Mumbai, Maharashtra
Paytm Payments Bank (2017), Noida, Uttar Pradesh	

SOURCE: RBI WEBSITE[11]

Table 3 puts forth the list of active payment banks in the country. As of now, only 6 payment banks are working, [Note: Voda fone owing to complications didn't start.][12]

INTREPRETATION:

At the point when the RBI gave out upwards of 11 payments bank licenses four years prior, it expected to enlarge financial inclusion and ride on minimal expense digital payment frameworks to work on the actual money exchanges. In any case, with just 6 out of the initially 11 expected players operational right now — few had dropped off not long after being conceded licenses — the underlying publicity around RBI's payments bank licenses has immediately flamed out. As indicated by the RBI's report on 'Trend and progress of banking in India 2017-18', payments banks kept on causing misfortunes in 2017-18 (after a feeble execution in 2016-17). From an overall deficit of 242 crore in FY17, misfortunes moved to 516 crore in FY18. High working costs and frail incomes prompted the misfortunes.

Additionally, different liabilities, (for example, unspent balances in prepaid payment instruments) of the payments banks in activity at that point represented the greater part of their accounting reports. The share of deposits, while crawling higher, remained low at 9% (of total balance sheet) in 2017-18. In 2018-19, Airtel Payments Bank has caused a deficiency of 338 crore, as against a deficiency of 272 crore in 2017-18. The payments bank had procured a pay of 254 crore in 2018-19, yet bore costs to the tune of 593 crore, which prompted misfortunes. Deposits have tumbled to 270 crore in 2018-19, from 290 crore in the earlier year.

To be reasonable, payments banks are tested by their basic plan of action. Not at all like conventional banks that loan cash raised from deposits, payment banks had little extension to procure great edges. First of all, payments banks can't take part in any loaning activities. Their pay includes generally of interest from investment in safe government securities and fee income that they can procure by disseminating straightforward monetary items like funds and insurance. Such specialty banks can give payment and settlement services through different channels and can give debit cards. However, these banks can't loan cash.[13]

CHALLENGES:

The challenges of PBs can be gauged by the observations of the following professionals:

"...The payments bank model didn't move in the manner in which it was planned in light of the fact that they were dependent upon guidelines on hazard and protections similar as different banks, however no income model existed for them. As it were, UPI had the option to take advantage of that space since it was significantly more innovation driven**", (Shilpa Mankar Ahluwalia, fintech practice at law firm Shardul Amarchand Mangaldas & Co told Inc in a recent interaction).**

"PBs wanted to arrive at a scale that would assist them with acquiring exchange charges on transaction. In any case, that scale has not been accomplished at this point despite the fact that the extension exists. They have been working forcefully on cross-subsidization arrangements like insurance products, however they were impeded right from the conceptual stage," **says a fintech veteran who does not desire to be quoted**.

Suhasini Verma, Associate Professor at the School of Business & Commerce, Manipal University, sums up the situation well. "…As of now, the payments banks have wafer-thin margins. They have to keep a large part of their funds (75%) in G-Secs and the remaining with small commercial banks. Most of their income should come from remittances, insurance and other financial services. However, the competition is intense and it is hard to acquire a critical lump of income from those portions. So, even a government-owned entity like India Post PB is struggling in spite of high transaction volumes".

"…Today, only Paytm's payments bank appears to be a success story with profits coming in, but the organization is doing as such numerous different things to accomplish this. In fact, the customer acquisition cost is huge in this sector," **says Verma of Manipal University**.

"Payment banks may have to reevaluate their customer and merchant acquisition/retention strategies and associated revenue models in the light of the changing competitive landscape. Lending can be a helpful component in this work, yet, it ought not to be viewed as a panacea; it has to go hand in hand with customer focus," **Vijay Mani, Partner at Deloitte India**.

"…We have more than 500 Million smart phone users (and at least a couple hundred million more addressable feature phone users), in any case, perhaps close to 175 Million users of mobile payments. The following five years will see the market forcefully understanding this development potential. Along these lines, it will be a critical period for payments banks," **Vijay Mani, Partner at Deloitte India**.[14]

SCOPE FOR THE FUTURE:

In any case, the Reserve Bank of India's proposition for setting up a New Umbrella Entity (NUE), which will lineup in corresponding with the National Payments Corporation of India (NPCI) to extend the digital payments ecosystem, could be a positive improvement for payments banks. As it will be a for-profit entity (or entities, contingent upon the final structure), it is a chance for PBs to search out beneficial use cases. "…Considering real-time cross-border remittances, micropayments (beyond what the UPI is tending to), and payments to a long tail of billers and so on", says Mani. The headroom for development is adequately huge to empower payments banks to grow with others in the market if they clearly define their place in it. For example, different semi-urban/non-urban and some urban customer sections are still underserved.

The privately owned businesses have shown revenue in setting up NEW UMBRELLA ENTITIES (NUEs) for payment systems a thought drifted by the Reserve Bank of India. The point is to make an elective instrument to the current National Payments Corporation of India (NPCI).[15]

New Umbrella Entities (NUEs):

NUEs will be a non- profit entity that will be established, oversee and work new payment frameworks, particularly in the retail space like ATMs, white-label PoS; Aadhaar-based payments and settlement administrations.

Capacities Envisaged:

a) NUEs will grow new payment strategies, norms and advances.
b) These will work clearing and settlement frameworks, recognize and oversee significant dangers like settlement, credit, liquidity and activity and protect the trustworthiness of the framework.
c) These will (monitor retail payment framework) advancements and related issues in the country and globally to stay away from stuns, fakes and infections that may antagonistically influence the framework of payment system and the economy general.

Urgency for NUEs:

Limitations of NCPI: Currently, the umbrella substance for giving retail payment framework is NCPI, which is a non-benefit element, claimed by banks.

- NCPI works settlement framework like UPI, AEPS, RuPay, Fastag, and so forth
- Players in the installments space have demonstrated the different traps of NPCI being the lone element dealing with all of retail payments frameworks system in India.

To Boost Competitiveness: RBI's arrangement to permit different associations to set up umbrella entities for payments frameworks intends to extend the competitive scenarios around this field. Players intending to set up these NUE plan to get a significantly greater share in the advanced digital payments area.

CONCLUSION:

The thought behind "Payment banks" was to acquire "financial inclusion" in the country. Yet, the reaction from different permit holders and their sluggish speed working is a state of concern. Will this assist India with moving towards an advanced economy? This monetary advancement was required to additional accelerate the way toward transforming India for a economy turning to be cashless. Is it really doing as such?

With the presentation of these payment banks, the fantasy about "Banking at your doorstep" could end up being a reality even in the remotest of areas in India. This was a strong advance to rethink banking framework in India subsequently stretching out administrations to the basic masses at a bigger scope. "Payment banks" are one more significant expansion to computerized development & innovations in the financial area. Be that as it may, they should be overseen appropriately to maintain and fill in this huge and dynamic financial (banking) field.

In any case, with conventional banks contributing vigorously on computerized drives and offering mobile banking services technology and innovation, for example, unified payments system framework empowering less expensive exchanges in transactions, client procurement will stay a major test for payments banks.[16] The hidden weak business model makes it more challenging for these players to compete with conventional banks.

REFERENCES:

1. https://economictimes.indiatimes.com/ definition/Payments-banks
2. https://indianmoney.com/articles/payment-banking-in-india, https://www.thehindu.com/business/all-you-need-to-know-about-payment-banks/article7561353.ece
3. Wamuyu, P. K. (2014). The role of contextual factors in the uptake and continuance of mobile money usage in Kenya. The Electronic Journal of Information Systems in Developing Countries, 64(1), 1-19.
4. Kesavan, V. (2015). the diversification of banks to the era of payment banks by Reserve Bank of India with specific reference to Indian Banking sector. International Journal of World Research, 1, 20.
5. Nidhi Chandarana (2015), “Payment Bank – A need of Digital India”, Abhinav National Monthly Refereed Journal of Research in Commerce & Management, Vol. No 4, Issue
6. Waghmare, A. (2016). The year of cashless payments trending upwards.
7. Mittal, S., Pant, A., & Bhadauria, S. S. (2017). An empirical study on customer preference towards payment banks over universal banks in Delhi NCR. Procedia computer science, 122, 463-470.
8. Vidyashree, D. V., & Joseph, S. (2017). Customer Awareness on Payment Banks, the latest IT-enabled Indian Banks connecting people–An Empirical Study. International Journal of Creative Research Thoughts, 81-90.
9. www.rbi.org.in, https://indianmoney.com/articles/payment-banking-in-india
10. www.rbi.org.in, https://rbi.org.in/scripts/banklinks.aspx
11. www.rbi.org.in
12. https://www.thehindubusinessline.com/money-and-banking/five-out-of-the-11-payments-banks-have-shut-operations-why/article29381134.ece
13. https://www.dvara.com/research/, World Bank, “Financial Inclusion Report World Bank,” Apr. 2016, https://blog.ipleaders.in/what-is-payment-bank/
14. https://inc42.com/features/india-payments-banks-broken-business-model/,

    https://www.thehindubusinessline.com/money-and-banking/five-out-of-the-11-payments-banks-have-shut-operations-why/article29381134.ece
15. https://m.rbi.org.in/scripts/bs_viewcontent.aspx?Id=3832, https://www.quora.com/What-is-the difference-between-a-payment-service-provider-and-a-payment-bank-in-India-Why-did-the-RBI-add-another-type-of-entity-instead-of-extending-the-capabilities-for-PSPs,

    https://www.financialexpress.com/industry/banking-finance/new-umbrella-entities-explained-why-india-has-delayed-their-retail-payment-systems/2329445/,

    https://indianexpress.com/article/explained/explained-why-nue-marks-next-inflection-point-for-indias-payments-ecosystem-7219168/
16. Srinivasan, R., & Subramanian, M. (2015). Payment Banks in India–Demystified. SSRG International Journal of Economics and Management Studies, 2(6).,

    Sandanshive, V. R., & Katdare, D. V. V. (2015). Analysis of In-Priniciple entities to act as Payment Banks: Financial Inclusion Perspectives. International Journal of Science, Technology and Management.,

    Goel, A. (2015). Payments banks: A new landscape for indian banking sector. International Journal of Research in Commerce, IT & Management Volume, (5).

●

EDUCATIONAL ASPIRATION IN SCIENCE SCALE FOR VISUALLY IMPAIRED STUDENTS

*KHUSHABOO VERMA * AND DR. G. C. BHATTACHARYA***

According to Cambridge University[1], the term 'Aspiration' can be understood as a 'strong hope or wish for achievement or success'. When aspiration is centered on the field of education it may refer as educational aspiration. Educational aspiration is considered as an important psychological aspect of students' tendency of attaining a high level of education which significantly affects future life of the adolescent (Karim & Mustari, 2015)[2]. In a study, it was found that student's educational aspiration is influenced by multiple interpersonal and systemic factors (Gottfredson, 2002)[3].

The present tool is related with educational aspiration in science of visually impaired (VI) students studying in inclusive setting. Traditional science teaching has mostly been depended upon instructions followed by visual practices but it is often becomes difficult to observe for visually impaired students in regular classrooms to learn the scientific concepts. This makes it difficult for visually impaired (VI) or partially sighted students included in regular classrooms to learn the related concepts. In the setting of full inclusion, the students with special needs are always educated along with students without special needs but inclusive settings have adequate supports and services for the students and it involves modifications in content, approaches and strategies which covers all children of appropriate range. (UNESCO, 2005)[4].

Review of the related studies:

There are various tests available to measure the level of educational aspiration. Shah and Bhargava (2012)[5], Khan (2009)[6] have used different instruments to measure level of aspiration but they were not fulfilling the need of visually impaired students. This tool seeks to explore visually impaired students' experience regarding their educational aspiration in science subject. In a study done by Ebifa et al., (2018)[7] the major sources of career information available to visually impaired students are from their fellow classmates and the mass media. According to the study, researcher does not believe that there is any kind of influence of school counselors and library as sources of career information available to students with visual impairment. Parents had an influence on the career aspirations of the students. The possible major affecting factors were the career aspirations of students with visual impairment inaccessible school infrastructure, lack of efficient or effective manpower and family or parental factors. Gender also has significant influence on the career aspirations of students with visual impairment. In the test developed by (Kumar, 2016)[8] there were total 20 items in the Educational Aspiration Inventory which can be used for upper primary and secondary level students. Sharma & Gupta (2015)[9] has developed a tool having 45 items taking into consideration four dimensions ie. last performance, setting of level of aspiration for next performance, new performance and psychological reaction to the new performance. Difference between the term aspiration and expectation was made by Haller (1968)[10] as the term "aspiration" can serve well to describe ego's own orientation to a goal while expectation is what one might really be able to attain. Suslu (2014)[11] found in the study done on Turkish American students that parents' expectations and school achievement were the most significant factors for educational aspirations of middle and high school students. According to Morris (2014)[12], the tutors, managers and support staff believe that aspirations and expectations of visually impaired learners were significant to the policies and practices of the colleges. Researcher has taken some ideas from the thesis of Khan (2015)[13] in research tool construction. Researcher has also taken the help of book written by Johnson & Christensen (2011)[14] in tool construction.

Objective of the Study

To develop a scale for assessment of educational aspiration in science of visually impaired students.

* Research Scholar, Faculty of Education (K), Banaras Hindu University.
** Retd. Professor, Faculty of Education (K), Banaras Hindu University.

Procedure:

Drafting of Educational Aspiration Scale:

There were three dimensions in this scale which are as follows.

- **Student's View Point**

This dimension deals with visually impaired students' view on the importance of science education.

- **Student's Effort**

This dimension deals with visually impaired students' decision and their efforts towards readiness to study science despite of their disability.

- **Parents/ Family Support**

This dimension deals with parents or family attitude towards importance of education for their children with special needs.

First Draft:

Keeping in view the level of understanding, educational maturity, growth patterns and visual difficulties of pupil, the first draft of the scale was prepared. Studies suggest that visually impaired students feel problem to concentrate for long duration of time and keeping this point in mind there were placed only 25 questions in the first draft. Out of these 25 items, 13 questions were related to student's view point, 7 were related to student's effort and 5 were related to parents or family support. It was decided to construct the scale on a 5- point likert standard and the response categories were finalized as of almost never, seldom, sometimes, often and almost always.

Table 1: Dimension wise distribution of items (Appendix I)

S.N.	Dimensions	Related Item No.
1	Student's View Point	1,2,4,5,6,7,8,9,10,11, 12,13,20
2	Student's Effort	3,14,15,16,17,18,19
3	Parents/ Family Support	21,22,23,24,25

Total Items = 25

Second Draft:

After preparing the first draft, it was given to the experts in education and tool development for providing their valuable suggestions which were taken into account for the appropriateness and clearness of the items. The items were rewritten and restructured so as to make it more comprehensible to the visually impaired students. The scale was also transcribed into Hindi to make it easy to understand for the students. Difficult words were also replaced and demographic items were added as to obtain background information of the students. In this draft all the 25 questions were placed with minor grammatical corrections. Corrected items are indicated in appendix II.

Table 2: Dimension wise distribution of items (Appendix II)

S.N.	Dimensions	Related Item No.
1	Student's View Point	1,2,4,5,6,7,8,9,10,11, 12,13,20
2	Student's Effort	3,14,15,16,17,18,19
3	Parents/ Family Support	21,22,23,24,25

Total Items = 25

Reliability:

To ensure the consistency of scores, reliability was established. To ensure internal consistency of the scale, reliability was calculated using Cronbach Alpha method. It provides an estimate of the reliability of a test or an estimate of the reliability of each dimension in a multidimensional test. It was calculated by using the formula....

$$\alpha = (n/n-1)\ (\sigma^2_t - \sum(\sigma_i)^2)/\sigma^2_t$$

Where, n = No. of items in the test

σ^2_t = Variance of scores on the test

$\sum(\sigma_i)^2)$ = Sum of variance of item scores

Dimension wise computation of Alpha Values

Table No. 3: Computation of Alpha Value for Dimension 1

Table No. 3.1: Item no. 1 to 6

Item(I) / Student Code	(Xi)	(Xi-X)	$(Xi-X)^2$	2(Xi)	(Xi-X)	$(Xi-X)^2$	4(Xi)	(Xi-X)	$(Xi-X)^2$	5(Xi)	(Xi-X)	$(Xi-X)^2$	6(Xi)	(Xi-X)	$(Xi-X)^2$
A	3	-0.6	0.36	4	1.1	1.21	4	0.1	0.01	5	1.5	2.25	3	-0.2	0.04
B	5	1.4	1.96	3	0.1	0.01	5	1.1	1.21	5	1.5	2.25	5	1.8	3.24
C	1	-2.6	6.76	1	-1.9	3.61	5	1.1	1.21	1	-2.5	6.25	1	-2.2	4.84
D	3	-0.6	0.36	2	-0.9	0.81	5	1.1	1.21	5	1.5	2.25	2	-1.2	1.44
E	4	0.4	0.16	3	0.1	0.01	4	0.1	0.01	4	0.5	0.25	4	0.8	0.64
F	4	0.4	0.16	3	0.1	0.01	5	1.1	1.21	3	-0.5	0.25	3	-0.2	0.04
G	5	1.4	1.96	3	0.1	0.01	3	-0.9	0.81	3	-0.5	0.25	4	0.8	0.64
H	4	0.4	0.16	4	1.1	1.21	3	-0.9	0.81	3	-0.5	0.25	4	0.8	0.64
I	3	-0.6	0.36	3	0.1	0.01	2	-1.9	3.61	3	-0.5	0.25	3	-0.2	0.04
J	4	0.4	0.16	3	0.1	0.01	3	-0.9	0.81	3	-0.5	0.25	3	-0.2	0.04
Mean (X)	3.6			2.9			3.9			3.5			3.2		
Sum			12.4			6.9			10.9			14.5			11.6
Sum/9			1.377 778			0.766 667			1.211 111			1.611 111			1.288 889

Table No. 3.2: Item no. 7 to 11

Item(I) / Student Code	7(Xi)	(Xi-X)	$(Xi-X)^2$	8(Xi)	(Xi-X)	$(Xi-X)^2$	9(Xi)	(Xi-X)	$(Xi-X)^2$	10(Xi)	(Xi-X)	$(Xi-X)^2$	11(Xi)	(Xi-X)	$(Xi-X)^2$
A	5	2.6	6.76	3	-0.3	0.09	5	0.5	0.25	5	0.1	0.01	5	0.6	0.36
B	3	0.6	0.36	3	-0.3	0.09	5	0.5	0.25	5	0.1	0.01	5	0.6	0.36
C	3	0.6	0.36	5	1.7	2.89	3	-1.5	2.25	4	-0.9	0.81	3	-1.4	1.96
D	0	-2.4	5.76	3	-0.3	0.09	5	0.5	0.25	5	0.1	0.01	5	0.6	0.36
E	4	1.6	2.56	3	-0.3	0.09	5	0.5	0.25	5	0.1	0.01	5	0.6	0.36
F	3	0.6	0.36	3	-0.3	0.09	5	0.5	0.25	5	0.1	0.01	5	0.6	0.36
G	3	0.6	0.36	3	-0.3	0.09	4	-0.5	0.25	5	0.1	0.01	5	0.6	0.36
H	3	0.6	0.36	4	0.7	0.49	5	0.5	0.25	5	0.1	0.01	4	-0.4	0.16
I	2	-0.4	0.16	3	-0.3	0.09	4	-0.5	0.25	5	0.1	0.01	3	-1.4	1.96
J	0	-2.4	5.76	3	-0.3	0.09	4	-0.5	0.25	5	0.1	0.01	4	-0.4	0.16
Mean (X)	2.6			3.3			4.5			4.9			4.4		
Sum			2.28			4.1			4.5			0.9			6.4
Sum/9			0.253333			0.455556			0.5			0.1			0.711111

Table No. 3.3: Item no. 12 to 20

Item(I) / Student Code	12(Xi)	(Xi-X)	$(Xi-X)^2$	13(Xi)	(Xi-X)	$(Xi-X)^2$	20(Xi)	(Xi-X)	$(Xi-X)^2$
A	5	2.6	6.76	3	-0.7	0.49	3	-0.1	0.01
B	5	2.6	6.76	5	1.3	1.69	3	-0.1	0.01
C	3	0.6	0.36	2	-1.7	2.89	0	-3.1	9.61
D	5	2.6	6.76	4	0.3	0.09	3	-0.1	0.01
E	5	2.6	6.76	4	0.3	0.09	4	0.9	0.81
F	0	-2.4	5.76	4	0.3	0.09	5	1.9	3.61
G	0	-2.4	5.76	5	1.3	1.69	3	-0.1	0.01
H	4	1.6	2.56	4	0.3	0.09	4	0.9	0.81
I	0	-2.4	5.76	3	-0.7	0.49	3	-0.1	0.01
J	0	-2.4	5.76	3	-0.7	0.49	3	-0.1	0.01
Mean (X)	2.7			3.7			3.1		
Sum			53			8.1			14.9
Sum/9			5.888889			0.9			1.655556

Cronbach Alpha (α) value: 0.81

I = Item no. taken from the second draft (Appendix II)

Xi = Score obtained on the particular item

X = Mean of the scores obtained by all the students on particular item

A, B, C, D, E, F, G, H, I, J = Code of Visually impaired students selected from inclusive settings

Interpretation of the Table 3: Item wise analysis has been done. Calculated Alpha value for dimension1 in this table is **0.81**. During the process of data analysis all the mathematical calculations were done with the help of MS-Excel.

Table No. 4: Computation of Alpha Value for Dimension 2

Table No. 4.1: Item no. 3 to 15

Item (I) / Student Code	3 (Xi)	(Xi-X)	$(Xi-X)^2$	14 (Xi)	(Xi-X)	$(Xi-X)^2$	15 (Xi)	(Xi-X)	$(Xi-X)^2$
A	4	1.4	1.96	3	0	0	5	1.7	2.89
B	4	1.4	1.96	3	0	0	5	1.7	2.89
C	3	0.4	0.16	1	-2	4	1	-2.3	5.29
D	5	2.4	5.76	5	2	4	3	-0.3	0.09
E	5	2.4	5.76	4	1	1	4	0.7	0.49
F	5	2.4	5.76	3	0	0	3	-0.3	0.09
G	3	0.4	0.16	3	0	0	3	-0.3	0.09
H	2	-0.6	0.36	3	0	0	3	-0.3	0.09
I	4	1.4	1.96	2	-1	1	3	-0.3	0.09
J	2	-0.6	0.36	3	0	0	3	-0.3	0.09
Mean (X)	3.7			3			3.3		
Sum			24.2			10			12.1
Sum/9			2.688889			1.111111			1.344444

Table No. 4.2: Item no. 16 to 19

Item(I) / Student Code	116 (Xi)	(Xi -X)	$(Xi-X)^2$	117 (Xi)	(Xi -X)	$(Xi-X)^2$	118 (Xi)	(Xi-X)	$(Xi-X)^2$	119 (Xi)	(Xi-X)	$(Xi-X)^2$
A	5	1.4	1.96	5	0.9	0.81	3	-0.3	0.09	3	0.2	0.04
B	5	1.4	1.96	5	0.9	0.81	3	-0.3	0.09	3	0.2	0.04
C	3	-0.6	0.36	2	-2.1	4.41	2	-1.3	1.69	2	-0.8	0.64
D	4	0.4	0.16	5	0.9	0.81	3	-0.3	0.09	3	0.2	0.04
E	3	-0.6	0.36	4	-0.1	0.01	5	1.7	2.89	4	1.2	1.44
F	4	0.4	0.16	4	-0.1	0.01	5	1.7	2.89	4	1.2	1.44
G	5	1.4	1.96	4	-0.1	0.01	4	0.7	0.49	3	0.2	0.04
H	4	0.4	0.16	5	0.9	0.81	3	-0.3	0.09	3	0.2	0.04
I	3	-0.6	0.36	4	-0.1	0.01	3	-0.3	0.09	2	-0.8	0.64
J	2	-1.6	2.56	5	0.9	0.81	2	-1.3	1.69	2	-0.8	0.64
Mean (X)	3.8			4.3			3.3			2.9		
Sum			10			8.5			10.1			5
Sum/9			1.111111			0.944444			1.122222			0.555556

Cronbach Alpha (α) value: 0.75

I = Item no. taken from the second draft (Appendix II)

Xi = Score obtained on the particular item

X = Mean of the scores obtained by all the students on particular item

A,B,C,D,E,F,G,H,I,J = Code of Visually impaired students selected from inclusive settings

Interpretation of the Table 4: Item wise analysis has been done. Calculated Alpha value for dimension 2 in this table is **0.75**. During the process of data analysis all the mathematical calculations were done with the help of MS-Excel.

Table No. 5: Computation of Alpha Value for Dimension 3 (Item No. 21 to 25)

Item(I) / Student Code	1(Xi)	(Xi-X)	$(Xi-X)^2$	22(Xi)	(Xi-X)	$(Xi-X)^2$	23(Xi)	(Xi-X)	$(Xi-X)^2$	24(Xi)	(Xi-X)	$(Xi-X)^2$	25(Xi)	(Xi-X)	$(Xi-X)^2$
A	5	1.9	3.61	5	1.2	1.44	5	1.3	1.69	5	0.5	0.25	3	-0.9	0.81
B	4	0.9	0.81	4	0.2	0.04	5	1.3	1.69	5	0.5	0.25	5	1.1	1.21
C	3	-0.1	0.01	1	-2.8	7.84	1	-2.7	7.29	2	-2.5	6.25	3	-0.9	0.81
D	5	1.9	3.61	5	1.2	1.44	4	0.3	0.09	5	0.5	0.25	5	1.1	1.21
E	4	0.9	0.81	5	1.2	1.44	5	1.3	1.69	5	0.5	0.25	5	1.1	1.21
F	2	-1.1	1.21	4	0.2	0.04	4	0.3	0.09	5	0.5	0.25	4	0.1	0.01
G	3	-0.1	0.01	4	0.2	0.04	4	0.3	0.09	5	0.5	0.25	5	1.1	1.21
H	3	-0.1	0.01	3	-0.8	0.64	3	-0.7	0.49	4	-0.5	0.25	3	-0.9	0.81
I	2	-1.1	1.21	4	0.2	0.04	3	-0.7	0.49	5	0.5	0.25	3	-0.9	0.81
J	0	-3.1	9.61	3	-0.8	0.64	3	-0.7	0.49	4	-0.5	0.25	3	-0.9	0.81
Mean (X)	3.1			3.8			3.7			4.5			3.9		
Sum			20.9			13.6			14.1			8.5			8.9
Sum/9			2.322 22			1.511 111			1.566 667			0.94 4444			0.988 889

Cronbach Alpha (α) value: 0.86

I = Item no. taken from the second draft (Appendix II)

Xi = Score obtained on the particular item

X = Mean of the scores obtained by all the students on particular item

A,B,C,D,E,F,G,H,I,J = Code of Visually impaired students selected from inclusive settings

Interpretation of the Table 5: Item wise analysis has been done. Calculated Alpha value for dimension 3 in this table is **0.86**. During the process of data analysis all the mathematical calculations were done with the help of MS-Excel.

Validity

Content validity concerns to specify whether the test items are adequate representative of the content area to be measured. Content validity of this tool was established by getting the opinion of experienced professors and faculty members of Education of Banaras Hindu University.

Scoring

The system of scoring was as following-

- To make use the scores of 1, 2, 3, 4 and 5 for the response categories of almost never, seldom, sometimes, often and almost always for positive questions.
- For negative questions the sequence was to be reversed as, weight age of 5, 4, 3, 2 and 1 to be given for almost never, seldom, sometimes, often and almost always.

Pilot Testing

As we know that there is few number of special students in inclusive settings therefore it was not possible to conduct the pilot study on large number of students. Pilot testing was done on 10 students of class IX & X. It was done to find out ambiguity of the test items or instructions given in the scale in order to make the scale more comprehensive and easy to make use.

Directions for the Students in scale:

The scale contains statements about practices which could take place in science classes. Students have to mark how often each practice takes place. There are no 'right' or 'wrong' answers.

1) If the practice does not takes place: **Almost Never**
2) If the practice takes place once: **Seldom**
3) If the practice takes place twice or thrice: **Sometimes**
4) If the practice takes place more than three times: **Often**
5) If the practice takes place many times: **Almost Always**

Preparation of Final Draft

Out of 25 items placed in the second draft only 20 items were retained after the pilot study. 5 items ie. item no.3, 7, 8, 12 & 21 were rejected after a careful study of each item and its obtained response.

Table 6: Dimension wise distribution of items (Appendix III)

S.N.	Dimensions	Related Item No.
1	Student's View Point	1,2,3,4,5,6,7,8,9,16
2	Student's Effort	10,11,12,13,14,15
3	Parents/ Family Support	17,18,19,20

Total Items =20

Dimension wise computation of Alpha Values

Table No. 7: Computation of Alpha Value for Dimension 1

Table No. 7.1: Item no. 1 to 5

Item(I) / Student Code	1(Xi)	(Xi-X)	$(Xi-X)^2$	2(Xi)	(Xi-X)	$(Xi-X)^2$	3(Xi)	(Xi-X)	(Xi-X)	4(Xi)	(Xi-X)	$(Xi-X)^2$	5(Xi)	(Xi-X)	$(Xi-X)^2$
A	3	-0.6	0.36	4	1.1	1.21	4	0.1	0.01	5	1.5	2.25	3	-0.2	0.04
B	5	1.4	1.96	3	0.1	0.01	5	1.1	1.21	5	1.5	2.25	5	1.8	3.24
C	1	-2.6	6.76	1	-1.9	3.61	5	1.1	1.21	1	-2.5	6.25	1	-2.2	4.84
D	3	-0.6	0.36	2	-0.9	0.81	5	1.5	1.21	5	1.5	2.25	2	-1.2	1.44
E	4	0.4	0.16	3	0.1	0.01	4	0.1	0.01	4	0.5	0.25	4	0.8	0.64
F	4	0.4	0.16	3	0.1	0.01	5	1.5	1.21	3	-0.5	0.25	3	-0.2	0.04
G	5	1.4	1.96	3	0.1	0.01	3	-0.9	0.81	3	-0.5	0.25	4	0.8	0.64
H	4	0.4	0.16	4	1.1	1.21	3	-0.9	0.81	3	-0.5	0.25	4	0.8	0.64
I	3	-0.6	0.36	3	0.1	0.01	2	-1.9	3.61	3	-0.5	0.25	3	-0.2	0.04
J	4	0.4	0.16	3	0.1	0.01	3	-0.9	0.81	3	-0.5	0.25	3	-0.2	0.04
Mean (X)	3.6			2.9			3.9			3.5			3.2		
Sum			12.4			6.9			10.9			14.5			11.6
Sum/9			1.377778			0.766667			1.211111			1.611111			1.288889

Table No. 7.2: Item No. 6 to 16

Item(I) / Student Code	6(Xi)	(Xi -X)	$(Xi-X)^2$	7(Xi)	(Xi -X)	$(Xi-X)^2$	8(Xi)	(Xi -X)	$(Xi-X)^2$	9(Xi)	(Xi-X)	$(Xi-X)^2$	16(Xi)	(Xi-X)	$(Xi-X)^2$
A	5	0.5	0.25	5	0.1	0.01	5	0.6	0.36	3	-0.7	0.49	3	-0.1	0.01
B	5	0.5	0.25	5	0.1	0.01	5	0.6	0.36	5	1.3	1.69	3	-0.1	0.01
C	3	-1.5	2.25	4	-0.9	0.81	3	-1.4	1.96	2	-1.7	2.89	0	-3.1	9.61
D	5	0.5	0.25	5	0.1	0.01	5	0.6	0.36	4	0.3	0.09	3	-0.1	0.01
E	5	0.5	0.25	5	0.1	0.01	5	0.6	0.36	4	0.3	0.09	4	0.9	0.81
F	5	0.5	0.25	5	0.1	0.01	5	0.6	0.36	4	0.3	0.09	5	1.9	3.61
G	4	-0.5	0.25	5	0.1	0.01	5	0.6	0.36	5	1.3	1.69	3	-0.1	0.01
H	5	0.5	0.25	5	0.1	0.01	4	-0.4	0.16	4	0.3	0.09	4	0.9	0.81
I	4	-0.5	0.25	5	0.1	0.01	3	-1.4	1.96	3	-0.7	0.49	3	-0.1	0.01
J	4	-0.5	0.25	5	0.1	0.01	4	-0.4	0.16	3	-0.7	0.49	3	-0.1	0.01
Mean (X)	4.5			4.9			4.4			3.7			3.1		
Sum			4.5			0.9			6.4			8.1			14.9
Sum/9			0.5			0.1			0.711111			0.9			1.655556

Cronbach Alpha (α) value: 0.87

I = Item no. taken from the final draft (Appendix III)

Xi = Score obtained on the particular item

X = Mean of the scores obtained by all the students on particular item

A,B,C,D,E,F,G,H,I,J = Code of Visually impaired students selected from inclusive settings

Interpretation of the Table No.7: Item wise analysis has been done. Calculated Alpha value for dimension 1 in this table is **0.87**. During the process of data analysis all the mathematical calculations were done with the help of MS-Excel.

Table No. 8: Computation of Alpha Value for Dimension 2

Table No. 8.1: Item No. 10 to 12

Item (I) / Student Code	10(Xi)	(Xi-X)	$(Xi-X)^2$	11(Xi)	(Xi-X)	$(Xi-X)^2$	12(Xi)	(Xi-X)	$(Xi-X)^2$
A	3	0	0	5	1.7	2.89	5	1.4	1.96
B	3	0	0	5	1.7	2.89	5	1.4	1.96
C	1	-2	4	1	-2.3	5.29	3	-0.6	0.36
D	5	2	4	3	-0.3	0.09	4	0.4	0.16
E	4	1	1	4	0.7	0.49	3	-0.6	0.36
F	3	0	0	3	-0.3	0.09	4	0.4	0.16
G	3	0	0	3	-0.3	0.09	5	1.4	1.96
H	3	0	0	3	-0.3	0.09	4	0.4	0.16
I	2	-1	1	3	-0.3	0.09	3	-0.6	0.36
J	3	0	0	3	-0.3	0.09	2	-1.6	2.56
Mean (X)	3			3.3			3.8		
Sum			10			12.1			10
Sum/9			1.111111			1.344444			1.111111

Table No. 8.2: Item No. 13 to 15

Item (I) / Student Code	13(Xi)	(Xi-X)	$(Xi-X)^2$	14(Xi)	(Xi-X)	$(Xi-X)^2$	15(Xi)	(Xi-X)	$(Xi-X)^2$
A	5	0.9	0.81	3	-0.3	0.09	3	0.2	0.04
B	5	0.9	0.81	3	-0.3	0.09	3	0.2	0.04
C	2	-2.1	4.41	2	-1.3	1.69	2	-0.8	0.64
D	5	0.9	0.81	3	-0.3	0.09	3	0.2	0.04
E	4	-0.1	0.01	5	1.7	2.89	4	1.2	1.44
F	4	-0.1	0.01	5	1.7	2.89	4	1.2	1.44
G	4	-0.1	0.01	4	0.7	0.49	3	0.2	0.04
H	5	0.9	0.81	3	-0.3	0.09	3	0.2	0.04
I	4	-0.1	0.01	3	-0.3	0.09	2	-0.8	0.64
J	5	0.9	0.81	2	-1.3	1.69	2	-0.8	0.64
Mean (X)	4.3			3.3			2.9		
Sum			8.5			10.1			5
Sum/9			0.944444			1.122222			0.555556

Cronbach Alpha (α) value: 0.80

I = Item no. taken from the final draft (Appendix III)
Xi = Score obtained on the particular item
X = Mean of the scores obtained by all the students on particular item
A,B,C,D,E,F,G,H,I,J = Code of Visually impaired students selected from inclusive settings

Interpretation of the Table No.8: Item wise analysis has been done. Calculated Alpha value for dimension 2 in this table is **0.80**. During the process of data analysis all the mathematical calculations were done with the help of MS-Excel.

Table No. 9: Computation of Alpha Value for Dimension 3 (Item No. 17 to 20)

Item (I) / Student Code	17 (Xi)	(Xi -X)	$(Xi-X)^2$	18(Xi	(Xi-X)	$(Xi-X)^2$	19(Xi)	(Xi-X)	$(Xi-X)^2$	20 (Xi)	(Xi-X)	$(Xi-X)^2$
A	5	1.2	1.44	5	1.3	1.69	5	0.5	0.25	3	-0.9	0.81
B	4	0.2	0.04	5	1.3	1.69	5	0.5	0.25	5	1.1	1.21
C	1	-2.8	7.84	1	-2.7	7.29	2	-2.5	6.25	3	-0.9	0.81
D	5	1.2	1.44	4	0.3	0.09	5	0.5	0.25	5	1.1	1.21
E	5	1.2	1.44	5	1.3	1.69	5	0.5	0.25	5	1.1	1.21
F	4	0.2	0.04	4	0.3	0.09	5	0.5	0.25	4	0.1	0.01
G	4	0.2	0.04	4	0.3	0.09	5	0.5	0.25	5	1.1	1.21
H	3	-0.8	0.64	3	-0.7	0.49	4	-0.5	0.25	3	-0.9	0.81
I	4	0.2	0.04	3	-0.7	0.49	5	0.5	0.25	3	-0.9	0.81
J	3	-0.8	0.64	3	-0.7	0.49	4	-0.5	0.25	3	-0.9	0.81
Mean (X)	3.8			3.7			4.5			3.9		
Sum			13.6			14.1			8.5			8.9
Sum/9			1.511111			1.566667			0.944444			0.988889

Cronbach Alpha (α) value: 0.91

I = Item no. taken from the final draft (Appendix III)

Xi = Score obtained on the particular item

X = Mean of the scores obtained by all the students on particular item

A,B,C,D,E,F,G,H,I,J = Code of Visually impaired students selected from inclusive settings

Interpretation of the Table No.9: Item wise analysis has been done. Calculated Alpha value for dimension 3 in this table is **0.91**. During the process of data analysis all the mathematical calculations were done with the help of MS-Excel.

Conclusion: The final draft of Educational Aspiration in Science Scale for visually impaired students consisted of 20 items which are more reliable and

dealing with various aspects that had a direct and indirect impact on the students' educational aspiration. Tables 7, 8 and 9 are showing higher value (indicating high reliability) of Alpha than before pilot study.

References

- 1.Cambridge University Definition. https://dictionary.cambridge.org/dictionary/english/aspiration
- 2.Karim, A. J. & Mustari,S. (2015). Social capital and educational aspiration of students: Does family social capital affect more compared to school social capital? *International education studies,* 8*(12).*
- 3.Gottfredson, L.S. (2002). Gottfredson's theory of circumscription, compromise and self creation. Career Choice and Development.85-148. Retrieved on 30December, 2020.http://borbelytiborbors.extra.hu/ZSKF/CareerDevelopment.pdf#page=106
- 4.UNESCO (2005). Guidelines for inclusion: ensuring access to education for all. France. Retrieved on 17 January, 2021. https://files.eric.ed.gov/fulltext/ED496105.pdf
- 5. Shah, M.A. & Bhargav, M. (2012). Level of Aspiration Measure, Agra: National Psychological Corporation.
- 6. Khan Y. G. (2009). Level of Educational Aspiration Test, Agra : H.P. Bhargava Book House.
- 7. Ebifa, S. E. et al. (2018). Career Aspirations of Secondary School Students with Visual Impairment in Enugu State, Nigeria. *International Journal of Applied Engineering Research.* 13*(21)* pp.15090-15095.
- 8. Kumar, T.P. (2016). Construction and Standardization of Educational Aspiration Inventory. *Indian Journal Of Applied Research,6(7)*
- 9. Sharma, V.P. and Gupta, A. (2015). Educational Aspiration Scale, Agra: National Psychological Corporation.
- 10. Haller .A.O. & Miller, I. W. (1968). On the concept of Aspiration, Rural Sociology 3(*4*) pp. 484-487. University of Wisconsin, Madison.
- 11. Suslu, D. A. (2014). Educational aspirations of middle and high school students: A focus on Turkish - American youth. Louisiana State University.
- 12. Morris, C. (2014). Seeing Sense: The Effectiveness of Inclusive Education for Visually Impaired Students in Further Education. School of Social Sciences, Cardiff University.
- 13. Khan, N. V. (2015). Hearing impaired students H I attribution of success failure its relation to their perception of teachers support. Retrieved on 02 January, 2021. https://shodhganga.inflibnet.ac.in/handle/10603/275704
- 14. Johnson, B. & Christensen, L. (2011). Educational Research. Sage Publication, California.

Appendix I: Educational Aspiration in Science Scale

First Draft

S.N.	Items	Almost Never	Seldom	Sometimes	Often	Almost Always
1	Do you satisfied with your marks achieved in science subject?					
2	Do you think that there are many challenges in studying science?					
3	Do you use your science concepts in your daily life?					
4	Do you think that students of science stream get more importance?					
5	Do you like to participate in science exhibition?					
6	Do you think that you will make your career in the field of science?					
7	Do you like to explore the science related phenomenon?					
8	Do you think that you are weak in science?					
9	Do you think that science subject is very useful?					
10	Do you wish to attain a higher position in science subject in your class?					

11	Do you attend science class interestingly?					
12	Do you think that your priority should be to score high in science subject in your class?					
13	Do you confident to succeed in science exam?					
14	Do you ready for the surprise test?					
15	Do you prefer to complete science assignment first among all the subjects?					
16	Do you work hard to get more marks in this subject?					
17	Do you prefer to do your homework/assignment by yourself?					
18	Do you hesitate to ask any science related problem to your peers?					
19	Do you deviate from your goal due to your disability condition?					
20	When other students get marks more than you, do you get disappointed?					
21	Your decision about your career is supported by your parents?					
22	Parents are in regular contact with school to get information about you?					
23	Parents encourage doing well in science?					
24	Parents take interest in your school related problems?					
25	Parents pay their attention on the suggestions given by the teacher about your learning?					

Appendix II: Educational Aspiration in Science Scale

Second Draft

S.N.	Items	Almost Never	Seldom	Sometimes	Often	Almost Always
1	Do you satisfied with your marks achieved in science subject?					
2	Do you think that there are many challenges in studying science?					
3	**Do you use your science concepts in your daily life?**					
4	Do you think that students of science stream get more importance?					
5	Do you like to participate in science exhibition?					
6	Do you think that you will make your career in the field of science?					
7	**Do you like to explore the science related phenomenon?**					
8	**Do you think that you are weak in science subject?**					
9	Do you think that science subject is very useful?					
10	Do you wish to attain a higher position in science subject in your class?					
11	Do you attend science classes interestingly?					
12	**Do you think that your priority should be to score high in science subject in your class?**					
13	Do you confident to succeed in science exam?					
14	Do you ready for surprise test?					
15	Do you prefer to complete science assignment first among all the subjects?					
16	Do you work hard to get more marks in this subject?					
17	Do you prefer to do your homework/assignment by yourself?					
18	Do you hesitate to ask any science related problem to your peers?					
19	Do you deviate from your goal due to your disability condition?					
20	When other students get marks more than you, do you get disappointed?					

21	**Your decision about your career is supported by your parents?**					
22	Parents are in regular contact with school to get information about you?					
23	Parents encourage doing well in science?					
24	Parents take interest in your school related problems?					
25	Parents pay their attention on the suggestions given by the teacher about your learning?					

Appendix III: Educational Aspiration in Science Scale

Final Draft

S. N.	Items	Almost Never	Seldom	Sometimes	Often	Almost Always
• 1	Do you satisfied with your marks achieved in science subject?					
• 2	Do you use your science concepts in your daily life?					
• 3	Do you think that students of science stream get more importance?					
• 4	Do you like to participate in science exhibition?					
• 5	Do you think that you will make your career in the field of science?					
• 6	Do you think that science subject is very useful?					
• 7	Do you wish to attain a higher position in science subject in your class?					
• 8	Do you attend science classes interestingly?					
• 9	Do you confident to succeed in science exam?					
• 10	Do you ready for the surprise test?					
• 11	Do you prefer to complete science assignment first among all the subjects?					
• 12	Do you work hard to get more marks in this subject?					
• 13	Do you prefer to do your homework/assignment by yourself?					
• 14	Do you hesitate to ask any science related problem to your peers?					
• 15	Do you deviate from your goal due to your disability condition?					

• 16	When other students get marks more than you, do you get disappointed?					
• 17	Parents are in regular contact with school to get information about you?					
• 18	Parents encourage doing well in science?					
• 19	Parents take interest in your school related problems?					
• 20	Parents pay their attention on the suggestions given by the teacher about your learning?					

●

REPRESENTATIONS OF AO-NAGA WOMANHOOD IN TEMSULA AO'S *ONCE UPON A LIFE: A MEMOIR*

MEHEBUB ALAM * AND PROF. MAYA SHANKER PANDEY**

At the far end, in the lush green hills of the Eastern Himalayas, is the land of the Nagas. It is a widespread belief among the Naga community that they came out of stones and attained civilization. According to the Naga Institute of Arts and Culture, its civilization dates back to 3000 BC. Ancient relics at Longtrok are often presented as historical proofs to testify this claim. As the Naga folk tales go, six persons – three males and three females – emerged from Longtrok[1] which locally means six stones and is situated at Chungliyimti in the Sangtam area of the Tuensang district of Nagaland. At Chungliyimti the Aos first attained cultural and social enlightenment. Ethnically the Nagas belong to Mongoloid stock, many theories exist concerning their roots and migration. The existence of sixteen major ethnic groups along with other sub-tribes constitutes the Naga nation. Each tribe has distinct identical features for its customs, culture, language, and peculiar dressing sense. There is no definite definition of the word Naga. Till the arrival of British and American missionaries, the Nagas had been living in complete isolation from the rest of the world.

Without a sense of knowing ethno-cultural roots, one is lost in the universal mapping of humanity. Therefore, before we consider the status of women in particular, it is necessary to speak in brief about the question of Ao-Naga identity in general. The Aos of Nagaland is one of the prominent tribes in the Naga ethnicity. They inhabit a hundred villages surrounding the Mokokchung district of Nagaland. They are subdivided into Chungli and Mongsen groups, so are their dialects. While Chungli serves as the lingua-franca between the two groups, a large number of the folk songs were written in the Mongsen. The Ao language is now written in Roman script but before the arrival of the Christian missionaries, there was no well-defined script. They remained in a very primordial form, written on animal skins.

Temsula Ao is the most acclaimed writer from the Naga community. Her learning and exposure to the culture, customs, and heritage of her community inspired her to record the oral tradition of it. Her work on the oral tradition, myths, rituals, laws, customs, belief system, folktales is included in her ethnographic work *The Ao-Naga Oral Tradition* (1999). This book is the most authentic document on the Ao-Naga community and the ethnic tribes of Nagaland in general. Her short story collections include *These Hills Called Home: Stories from A War Zone* (2005) and *Laburnum for My Head* published in 2009. The former tells the saga of Nagaland for independence and national identity while the latter is about the lives of people from the vibrant and troubled region of North-East India. Her stories spring up from the internal fault lines of the Indian nation-state and show light on issues like home, country, nation, nationality, ethnicity, and identity.

In an impressive and witty introduction to her book *Emerging Literatures from Northeast India: The Dynamics of Culture Society and Identity*, Margaret Ch. Zama writes: "…emerging literatures from the Northeast region, having undergone historical and political trauma of untold suffering and marginalization, registers various voices that need to be heard and understood in the context of India's multicultural mosaic".[2] They profoundly reflect an array of socio-cultural and political facades of the North-Eastern region which perpetually escape the critical eye of national discourse. The impulse which prompted me to pick up the mesmerizing memoir of Temsula Ao is its intimate association with the socio-cultural and ethnic milieu of North-East India – particularly the women of Ao-Nagas and thereby it provides a great occasion to study the status of women in general across North-East India. The memoir by the virtue of its autobiographical narrative setting creates an appropriate template to explore various facets of overall Naga womanhood. There is a widespread belief that in North East India women have always been projected in equal status to men. The general

∗ Assistant Professor, Deptt. of English, LBS PG College, Mughalsarai
∗∗ Professor, Deptt. of English, Banaras Hindu University

assumption is that women across the North-Eastern states enjoy more privileges than their counterparts while in other parts of the country patriarchy is entrenched deep in the social fabric. Its presentation as a casteless, classless, and gender-equal society has simultaneously created a space to discuss its pitfalls too. This paper is an attempt to dismantle this assumption through a critical reading of *Once Upon A Life: A Memoir* by Temsula Ao. Looking at the North-East through a homogenizing nation's eye does not necessarily discover all its facades and thereby remains as a 'destiny obscure.'[3] Mainstream literary traditions and feminist writings hold a huge silence about the experiences of women from the peripheries of nation-space. North-East is no exception to this. In this context, Ao's memoir appears to emerge as a significant literary work. Through a minute description of her journey – from a miserable childhood to an honoured status of life – Ao offers her readers an opportunity to capture the holistic picture of the collective hardship of North-Eastern women. The memoir transcends the personal grief and suffering of its author and resonates with the perpetual struggle of women across Naga villages. It documents how these women besides being victims of racial and sexual politics – which is a common phenomenon across South Asia – are also occasionally subject to political violence perpetrated by State and 'anti-state' alike.

Once Upon A Life can be read as a feminist memoir. The book written in three different parts chronicles the author's journey from the early childhood days to her emergence as a writer. Though Ao labels it as "…an attempt to exorcise my own personal ghosts from a fractured childhood that was ripped apart by a series of tragedies"[4], it is at the same time a serious reading on Naga womanhood in general and stands as the testimony of a struggling woman fighting the war on many different fronts. Ao writes: "This book is to a great extent, my confessional. I was dreaming of becoming someone and coming into my own".[5] The story begins with the childhood memories and school days of Temsula Ao which gradually extends towards her maturity and married life. This book is an account of a Naga woman "… who faced seemingly insurmountable odds from early childhood and who through sheer grit and self-belief overcome those vicissitudes of life".[6] Bearing appropriate nomenclature, each section has some individual chapters and thus it brings the essence of reading as a whole. While the first part accounts for her childhood days – how amidst intense poverty and unbearable suffering she was brought up as an orphan along with her brothers – the next part chronicles her happy days in a missionary boarding school and the reminiscences of a grown-up girl. The final part narrates her mature age as she enters into marriage, family, home, and then exile. It is in this part where Ao blossoms as an accomplished writer. Ao summarises her entire book in the following manner: The narratives in this book cover some of the most significant incidents in the different phases of my life, a life that went on to overcome the travails of a most difficult childhood, early marriage, and the subsequent responsibilities of a single parent raising four children and coping with the demands of a full time job. The memories of that life are presented here are the most insistent ones which depict the journey of an individual in search of the self-worth once lost to time and circumstances.[7]

The book opens with the reminiscence of her childhood days and simultaneously it speaks for the status of women in her surroundings. Women in Ao society are being considered as the 'second sex.'[8] Despite being second in command in the household, the Ao women are in charge of all household works. The woman takes on the role of mistress of the house and lives with her husband under his care and guardianship. She works hard all day and takes care of her husband and children. "The daughters after their marriage come under the care of different clans and families. They are not entitled to own the properties of her father, but when an Ao woman marries her husband, she does not lose her clan title nor can she take her husband's title unlike women in other societies".[9] The vivid description of her mother reveals the core values of Naga womanhood. Her orphanage at infancy along with her teenage siblings denotes a moment of displacement or abandonment which alludes to the protagonist of Maya Angelou's *I Know Why the Caged Bird Sings.*[10] The chapter 'Orphanage at Large: The Wild Days' is full of the account of older girls and elderly ladies in her village. 'Day of Reckoning' is the last chapter in this part which in her own words is: "the process of shifting through the memories of my past life".[11] 'A New Beginning' is the first chapter in the second part of this memoir and certainly, it's a new beginning in her life as it recounts a transitional point; from an Assamese medium school to a missionary school, from a remote hamlet to a modern environment and from childhood to a grown-

up girl. All the chapters in this section are full of accounts of her classmates, school personnel, local churchgoers, and elderly girls in a boarding school which subsequently opens the inner life of many a girl in this part of the world. This section visibly aspires to achieve the novelistic description of Jane Austen where small incidents and everyday affairs would shape the overall way of life. As Ao had to spend a greater part of her life in a boarding school she was well-off to depict the girls-world in a very compelling manner where the life and lore of grown-up girls in the North East have been revealed. The carnivalesque depiction of teenage girls in a panoramic set-up of post-independence North-East brings a new understanding, far away from the imagination of an ethnic life-world. This neo-northeast has marked a difference with the North-East of colonial ethnographers. People became ambitious with the advent of modernity and they have adopted modern lifestyles, leaving behind their age-old practices and beliefs. The introduction of English education has played a leading role to bring change into the Nagas. Though the Naga chiefs made initial resistance towards Europeanization, they become accommodative with the trend of the time. With the sole effort of some noble minds belonging to Christian missions, the Naga Hills was enlightened, and being benefitted from colonial education policies the Ao-Nagas evolved into a modern society.

The third part of *Once Upon A Life* is an account of her maturity. Here Ao enters a new phase of her life: marriage which in her own words is like a 'plunge into the unknown.' "...when the family began to talk openly about a marriage and I realized that it was my marriage they were talking about, that I began to feel apprehensive. Once again I reminded that I was without a proper location for myself".[12] Ao then recounts how her destiny got decided as she got married to a townsman without her proper consent and overnight became a housewife in an affluent family. On being a housewife her concern was limited to "be a better cook, a better 'wife' and a better manager of the household"[13] which evoked no excitement in Ao. It was always intellectual engagement that drew Ao as naturally as a moth is driven towards the fire. No sooner had she discovered 'an assortment of varied books' in her new home, she started exploring them. She read and re-read the old copies of *Time, Life,* and *Readers' Digest.* The next episode 'Evening College' was a turning point in her life when "…a group of educated young people fresh out of university had got together and decided to open an evening college for employed people and young men and women who could not go elsewhere for further studies".[14] Ao took admission there. As Ao writes, "Classes were held from 4 pm onwards in the High School premises and we were truly grateful to these young visionaries who were helping us to improve our lives".[15] However, this decision of Ao was not welcomed in the patriarchal family of Ao. The deeply entrenched patriarchal ethos of her family accused her of "…about the shame I brought to the family because their daughter in law was going out at night with all kinds of people".[16] Ao to her utter surprise found herself all alone in this battle as her husband also did not come forward to stand by her side. Ao observes that her husband was reluctant to enter into this affair and "…he was cowed down by their collective rage".[17] The story could end there with Ao withdrawing herself from public space. But she refused to accept this humiliation, She was confident that she had done no wrong. Ao confesses: "Instead, a dormant aspect of my personality seemed to have been awakened which resolved to fight for justice for myself. ...I would never give in meekly to such blatant attempt at unjust subjugation".[18] This confession of Ao reveals her aspiration for a decent life, her deep desire to rise above and beyond the limits of a housewife. Thus Ao reflects the new aspirations among Naga women in the wake of modern education in North-East India.

The next chapter is an account of her association with public life as her husband was elected to the state legislature. After decades of political turbulence and movements, in 1963 Nagaland emerged as a young state in India. The election brought a wave of change into Naga's life. Ao witnessed how a political change heralded a cultural change as well. "A new culture emerged which created deep divides and turned the traditional way of life into a form of modernity, both among the rural and urban population".[19] Ao brilliantly interlinks this political and cultural change in her state with the change in her own family. A tragedy befalls on her family as their eldest daughter dies of diarrhoea. This sudden death saddens her deeply. People try to cheer her up but she "…refused to get back to normal, thinking it would be so wrong".[20]

'A New Identity' is the next chapter in the memoir where she speaks of her voyage into the professional world. After passing of Intermediate Exam in Arts she earned the Bachelor of Arts from

Fazal Ali College - Mokokchung as a non-collegiate student and an MA in English from Gauhati University as a regular student. From there she went for a diploma to Hyderabad at CIEFL and became a lecturer at the North-Eastern Hill University - Shillong. Thus began her academic life and the emergence of the finest storyteller from Nagaland. She writes, "I had always been fascinated by our folktales and had begun to take a keen interest in my own folklore. I had started to collect folktales with the intention of translating them into English and publish a book".[21] It leads her to write *The Ao Naga Oral Tradition*. Her selection as a Fulbright Scholar and journey to the US was portrayed in 'Minnesota Memories' where multiple voices, particularly her concern towards the Native Americans, how they have lost their language, history, culture, and identity found their space. The inability of the natives to speak their mother tongue – 'Ojibway'[22] – appears to Ao as a matter of great loss and frustration to linguistic diversity. Ao observes retrospectively, "On the whole, I can say that my Minnesota experience widened my understanding of other people and other cultures and also made me aware of how fortunate those of us who can still speak their native languages and have not been totally dislodged from their roots".[23]

Preeti Gill, the famed author on North-East Indian issues once said: "The collective testimony of people who have been consistently kept voiceless is also a writing of the history of our time".[24] In this way, *Once Upon A Life* emerges as a detailed description of the journey of Temsula Ao through a miserable childhood to an honoured status of life. Here Temsula Ao has chronicled the experiences of her Naga women in an ethnographic manner that unfolds the saga of every Naga woman. On every page of this book, her personal struggle epitomizes the struggle of a woman who incessantly strives to come out from the shackles of a patriarchal society that is very much rooted in its tradition. "From time immemorial, Ao women were denied membership in the village assembly or citizen's forum. It was opened only to the male members and thus it laid the foundation of male's exclusivity in the Ao Naga society".[25] It accounts for those voices of the voiceless, who felt hurt inside and could not find a way out of the process of socialization. They are the product of socialization as well as the victim of it. No theoretical or methodological framework could document these unsung warriors of the households. Even *Aosenla's Story* (2016), her other autobiographical writing is no less exceptional of the harrowed glimpse of the limitations and barriers of Naga women, placed in a remote corner of history. Being true to her task as an ethnographer of the Ao-Naga community, Temsula Ao not only presents the brighter sides of it but also sheds considerable light on its darker surfaces – the injustices it perpetrates on its women. The hurdles she had to face are nothing but the everyday account of every Naga woman, the experiences of being on the periphery, and becoming the victim of strong patriarchy. While she speaks for the lost glory and the past anecdotes of an ethnic tribe, the pangs of the individuals, unbearable sufferings of insurgency and ethnic unrest, the detention of a whole population in the name of AFSPA[26] - a draconian law imposed across the troubled peripheries of the North-East, with equal significance, she chronicles the experiences of women in her community. Through an analytical perception of her tribe, she locates the position of women in her Ao-Naga Society. Like every write-up from the oeuvre of her literary creations, this memoir too is stained with the concern for her ethnic homeland, its people, and their problems. Like all her other writings, be it poetry or short stories, or essays, the memoir also holds a conscious vituperation against tyranny and injustices lurking within her tribe. As Ao once said: I write this section with a sense of inadequacy and apprehension because I know that in comparison to any others who can lay claim to the appellation 'writer' I am as yet, only a pretender. My literary output is meagre, to say the least; yet I dare dream on and hence this section. In truth, I cannot pinpoint any stage or period in my life when I consciously said to myself that I wanted to be a writer. Therefore I had to dig hard into the past to see what can even remotely be connected to my present precarious status as a writer…. I have written this book because I had to tell my story before time claimed it all.[27]

References

1. See at <https://www.youtube.com/watch?v=2OgPt6vp1bM&t=11s>
2. Zama, Margaret Ch. (2013) *Emerging Literatures from Northeast India: The Dynamics of Culture Society and Identity*. New Delhi: SAGE Publications,p. xi
3. Gray, Thomas. "Elegy Written in a Country Churchyard". *Thomas Gray Archive*, 11 May 2021. Web. 27 Aug 2021. <https://www.thomasgray.org/cgi-bin/display.cgi?text=elcc>

4. Ao, Temsula. (2013). *Once Upon A Life: A Memoir*. New Delhi: Zubaan, p. viii
5. Ibid, p. x.
6. Ibid, p. xiii.
7. Ibid, p. vii.
8. Beauvoir, Simone de. (2011). *The Second Sex.* New York: Vintage, p. 1
9. Toshi, Senka. (2018). "Status of the Ao Naga Women in the Traditional Past Society: A Historical Study." *IJRTI,* Vol 3, Issue 9.p. 153
10. Angelou, Maya. (2009). *I Know Why the Caged Bird Sings.* New York: Random House, p. 1
11. Ao, Temsula. (2013). *Once Upon A Life: A Memoir*. New Delhi: Zubaan, p. 27
12. Ibid, p. 167
13. Ibid, p. 172
14. Ibid, p. 173
15. Ibid, p. 173
16. Ibid, pp. 174-75
17. Ibid, p. 175
18. Ibid, p. 175
19. Ibid, p. 181
20. Ibid, p. 183
21. Ibid, p. 198
22. See at <https://www.ethnologue.com/language/ojg>
23. Ao, Temsula. (2013). *Once Upon A Life: A Memoir*. New Delhi: Zubaan, p. 204
24. Gill, P. (2005). Women in the Time of Conflict: The case of Nagaland. *India International Centre Quarterly, 32*(2/3), 213-226. Retrieved August 27, 2021, from http://www.jstor.org/stable/23006029
25. Toshi, Senka. (2018). "Status of the Ao Naga Women in the Traditional Past Society: A Historical Study." *IJRTI,* Vol 3, Issue 9. p. 152
26. ." See at <https://legislative.gov.in/sites/default/files/A1958-28.pdf>
27. Ao, Temsula. (2013). *Once Upon A Life: A Memoir*. New Delhi: Zubaan, p. 224

●

DEROGATORY REMARKS AGAINST SUBORDINATE JUDICIAL OFFICERS: JUDICIAL TREND IN INDIA

*AKHILENDRA KUMAR PANDEY**

The freedom and independence of judiciary is kernel to democracy. The judges are indispensable to society. The judicial officers have to maintain the most fundamental equilibrium in the society by performing their duties freely and fearlessly and without undue interference from anybody. It is equally necessary that in expressing opinion the judge and judicial officers are guided by consideration of justice, fair play and restraint as people want unpolluted stream of justice from lowest court to the highest court. Sometimes superior courts make observation in the order on judicial side against the members of the subordinate judiciary and the judicial officers of subordinate judiciary against whom such orders are made have to take the shelter of the superior court for expunging the remarks or observations. The derogatory remark against the members of subordinate judiciary not only causes a dent on the credibility of judicial system but it also violates the rights of such undefended judicial officers. The sweeping remarks by the judge of the superior court against subordinate judicial officers may defeat the very purpose and jeopardize the independence of judiciary. In this paper an attempt has been made to analyse the approach of the Supreme Court where the superior court, particularly the High Court, made orders and passed strictures against the member of subordinate judiciary.

I. CONSTITUTIONAL FRAMEWORK

The subordinate judiciary is an important segment of the judicial system and through these courts judiciary comes in close contact with the people. It is, therefore, essential to maintain the independence and integrity of subordinate judiciary.[1]

The Constitution of India in Articles 233 to 237 seeks to attain this objective. The High Court controls the subordinate courts within its territorial jurisdiction. The Supreme Court at times has directed the High Court not to make stringent remarks against the members of subordinate judiciary for their decisions and disciplinary action cannot be initiated against a subordinate judge for delivering wrong decision or wrong order as any mistake done of the members of the subordinate judiciary can always be corrected by the superior court on appeal. The member of subordinate judiciary is a citizen and thus entitled for various rights which are available and guaranteed to others under the Constitution of India.

II. NATURAL JUSTICE: OPPORTUNITY OF HEARING

Justice should not be done but it must appear to be done. This statement has given rise to principles of natural justice of which one principle is opportunity to the person whose right is likely to be affected by the decision of the authority. The right to fair hearing is essentially a code of procedure and it has to be observed at every stage of adjudication including notice to final order. Without having the notice of any inquiry no person against whom any action is to be taken can be regarded as just and fair. It is notice which provides the person to put forward his view point. Where any action is likely to prejudice or is likely to cause some civil consequences affecting interest invite application of hearing rule.[2] The adjudicatory authority is expected to provide reasonable opportunity to present his case and evidence. This includes the right to rebut any adverse evidence.[3]

The adverse remarks against the subordinate judicial officers are quite visible. Such remark is likely to affect the freedom and independence of lower judiciary. The judicial officers are also entitled to opportunity of fair hearing. The denial of fair hearing hits principle of natural justice. Natural justice is available to all irrespective of rank and status. The principle of fair justice is also available to the members of subordinate judiciary.

III. JUDICIAL APPROACH

In **Amar Pal Singh v. State of U.P.**[4] the appellant was the Chief Judicial Magistrate. An application under Section 156(3) Cr. PC was made to

* Professor, Faculty of Law, Banaras Hindu University, Varanasi

him and he dismissed the application giving reason for doing so. The applicant aggrieved by the dismissal preferred a revision before the High Court and the single judge taking note of the allegations made in the application found that it was a fit case where the Magistrate should have directed for the registration of FIR and investigation into the alleged offence. The Court also made remarks against the Magistrate that his conduct was deplorable and wholly mala fide and illegal, vexatiously illegal. The High Court also commented that the magistrate lacked sensitivity and utter callous attitude. The High Court after passing remarks that the Magistrate committed blatant error of law and had done unpardonable injustice to the injured and the informant, remitted the case to the Magistrate for deciding the application afresh according to law laid down in **Masuman v. State of U.P**.[5] The petitioner aggrieved by the comments and observations made by the Allahabad High Court preferred the appeal before the Supreme Court praying that the comments and observation and direction to send it to the administrative judge be deleted. It was contended on behalf of the appellant that the observation and the direction were totally unwarranted and indubitably affect the self esteem and career of a member of subordinate judiciary and therefore deserve to be expunged. On the other hand, it was stated on behalf of the State that a judicial officer enjoys a status in the eyes of public at large and his reputation stabilizes the inherent faith of a litigant in the judicial system and establishes authenticity and hence the remark made by the Single Judge should not be allowed to stand.

In **Alok Kumar Roy v. Dr. S.N. Sarma**[6] the vacation Judge of the High Court of Assam and Nagaland passed an interim order during vacation in a petition which was to be entertained by the Division Bench. After reopening of the Court, as per the High Court Rules, the matter was placed before the Division Bench presided over by the Chief Justice. The Chief Justice made certain remarks as to 'unholy, haste and hurry' exhibited by the vacation Judge in dealing with the case. When the matter reached to the Supreme Court, Wanchoo, C.J. observed:

> It is a matter of regret that the learned Chief Justice thought fit to make these remarks in his judgment against a colleague and assumed without justification or basis that his colleague had acted improperly. Such observations even about judges of subordinate courts without the clearest evidence of impropriety are uncalled for in a judgment. When made against a colleague they are even more open to objection. . . It is necessary to emphasis that judicial decorum has to be maintained at all times and even where criticism is justified it must be in the language of utmost restraint, keeping always in view that the person making the comment is also fallible.

In **State of M.P. v. Nandlal Jaiswal**,[7] where disparaging and derogatory remarks were made by the High Court against the State Government and the matter came before the Supreme Court on complaint made against such remarks, it was observed by the Court that the remarks were totally 'unjustified and unwarranted.' Bhagwati, C. J. observed:

> …judges should not use strong and carping language while criticizing the conduct of parties or their witnesses. They must act with sobriety, moderation and restraint. They must have the humility to recognize that they are not infallible and any harsh disparaging strictures passed by them against any party may be mistaken and unjustified and if so, they may do considerable harm and mischief and result in injustice.

In **Ishwar Chand Jain v. High Court of Punjab & Haryana**[8] the appellant was a practicing lawyer in High Court of Punjab and Haryana. He was selected in Higher Judicial Service and appointed as Additional District Judge at Hissar. Some incident happened in Bar and a resolution was passed against the appellant. He was transferred to another place where again some complaint was made and an inquiry was conducted. The High Court resolved to recommend that the services of the appellant were not found satisfactory and his service may be dispensed with. Before the government could terminate the service, the appellant approached the High Court under Article 32 of the Constitution of India but the Supreme Court directed to withdraw the petition and file the same before the High Court. The High Court dismissed the writ of the appellant holding that the service was rightly terminated without giving an opportunity of hearing as he was on probation and moreover, the inquiry was not disciplinary rather it was to adjudge the suitability of appellant for judicial service. The main contention of the appellant was that services were terminated without affording any

opportunity of hearing. The Supreme Court observed that while exercising control over the subordinate judiciary under Article 235 of the Constitution of India, the High Court is under a constitutional obligation to guide and protect the subordinate judicial officer. While reinstating the appellant, the Court opined that an independent judiciary cannot be expected if the judicial officers are under constant threat of complaints. The subordinate judiciary shall not be able to administer justice honestly when inquiry is conducted on trifling grounds.

Judicial restraint and discipline are necessary to the orderly administration of justice. The duty of restraint is a constant theme of judges. The quality in decision making is as much necessary for judges to command respect as to protect the independence of the judiciary. In **A.M. Mathur v. Pramod Kumar Gupta**[9] certain observations were made by the High Court against the conduct of the Advocate General of the State. The Supreme Court observed that the judges are flesh and blood mortals with individual personalities and with normal human traits but judicial restraint and discipline are necessary. The Court observed:

> The Judge's Bench is a seat of power. Not only do judges have power to make binding decision, their decisions legitimate the use of power by their officials. The Judges have the absolute and unchallengeable control of the court domain. But they cannot misuse their authority by intemperate comments, undignified banter or scathing criticism of counsel parties or witnesses… but it is the general principle of highest importance to proper administration of justice that derogatory remarks ought not to be made against person or authorities whose conduct comes into consideration unless it is absolutely necessary for the decision of the case animadvert on their conduct.

In the matter of making disparaging remarks against person or authorities whose conduct comes for scrutiny before the court, it may be relevant to consider whether the party whose conduct is in question is before the court or has an opportunity of explaining or defending himself and also whether it is necessary for the decision of the case as an integral part thereof. The judicial pronouncements ought to be judicial in nature and ordinarily not to deviate from sobriety, moderation and reserve.[10] In **Braj Kishore Thakur v. Union of India**,[11] the appellant was a District and Sessions Judge of Bihar Judicial Services and he had granted bail to accused involved in offence under Section 20(b) (i) of the Narcotic Drugs and Psychotropic Substances Act, 1985.[12] Aggrieved by the bail order, the State preferred an appeal before the High Court. The High Court while cancelling the bail order,[13] made remarks against the appellant judge to the effect that 'it appears that bail has been granted for extraneous considerations, the act of granting bail amounts to judicial indiscretion'. When the appellant approached the High Court for expunging these remarks, the High Court Judge further aggravated the remarks by observing that 'he does not deserve to remain Sessions Judge and he should be divested of original powers' and put his displeasure on the record.[14] The grievance of the appellant was regarding caustic remarks and severe censure made by the High Court while cancelling the bail order. The aggrieved petitioner moved to the High Court for expunging the disparaging remarks. The High Court instead of expunging those disparaging remarks reiterated those remarks with much severity. The appellant aggrieved by the observation of the High Court preferred a Special Leave Petition before the Supreme Court. It was contended on behalf of the appellant that he had put more than 30 years of judicial service and he was promoted to higher tier and elevated to District and Sessions Judge. The castigating remarks made by the Patna High Court stand condemned for ever in the eyes of the subordinate judicial officers and the public as well. It was also contended that it was not the petitioner only whose image has been adversely affected but hurling of such castigating remarks, the image of the judicial institution has also been tarnished. Expunging the offending remarks of the High Court Judge against the appellant, the Supreme Court observed:

> No greater damage can be caused to the administration of justice and to the confidence of people in the judicial institution when judges of higher courts publicly express lack of faith in the Subordinate Judges. It has been said time and again, that the respect for judiciary is not in hand by using intemperate language and by casting aspersions against lower judiciary. It is well to remember that a Judicial Officer against whom judicial aspersions are made in the judgment could not appear before the higher

> Court to defend the order. Judge of higher Court must, therefore, exercise greater judicial restraint and adopt greater care when they are tempted to employ strong terms against lower judiciary.[15]

In **Ishwari Prasad Mishra v. Mohammad Isa**,[16] while dealing with the stricture passed by High Court against one of the Subordinate Judicial Officer suggesting that the decision was based on extraneous considerations, stressed the need to adopt utmost judicial restraint against using strong language and imputation of corrupt motive against lower judiciary more so because the Judge against whom the imputations are made has no remedy in law to vindicate his position.[17]

The use of intemperate and castigating strictures at lower levels would cause dwindling of the respect of judiciary in the eyes of public. In **K.P. Tiwari v. State of M. P**. [18] observed:

> The higher Courts every day come across orders of lower Courts which are not justified either in law or in fact and modify or set them aside. That is one of the functions of the superior Courts. Our legal system acknowledges the fallibility of the Judges and hence provides for appeals and revisions. A Judge tries to discharge his duties to the best of his capacity. While doing so, sometimes, he is likely to err ... it has also to be remembered that the lower judicial officers mostly work under a charged atmosphere and are constantly under psychological pressure with all the contestants and their lawyers almost breathing down their necks more correctly up to their nostrils. They do not have the benefit of detached atmosphere of higher Courts to think coolly and decide patiently. Every error, however, gross it may look, should not therefore, be attributed to improper motive.

The judges are not infallible. They may also commit an error. The assumption that the lower court is necessarily wrong and the higher courts are always right is fallacious. It is quite possible that there might be two views. The lower court leans in favour of one view with reasonable justification does not mean that since other view was equally possible thus the lower court committed an error is misconceived. In **Kashi Nath Roy v. State of Bihar**,[19] the appellant was a judicial officer in higher judiciary of Bihar. He was aggrieved by the remarks of the High Court Judge and requested for expunging the remark. The Court observed:

> It cannot be forgotten that in our system, like elsewhere, appellate and revisional Courts have been set up on the pre supposition that that lower Courts would in some measure of cases go wrong in decision making , both on facts as also on law, and they have been knit-up to correct those orders. The human element in justicing being an important element, computer like functioning cannot be expected of the Courts; however, hard they may try and keep themselves precedent trodden in the scope of discretions and in the manner of judging. Whenever any such intolerable error is detected by or pointed out to a superior Court, it is functionally required to correct that error and may, here and there, in an appropriate case, and in manner befitting, maintaining the dignity of the Court and independence of judiciary, convey its message in the judgment to the officer concerned through a process of reasoning, essentially persuasive, reasonable, mellow but clear and result orienting, but rarely as a rebuke. Sharp reaction … is not in the keeping with institutional functioning. The premise that a Judge committed a mistake or an error beyond the limits of tolerance, is no ground to inflict condemnation on the Judge Subordinate, unless there existed something else and for exceptional grounds.

The Patna High Court in **State of Bihar v. Nilmani Sahu**[20] made remark against a judicial officer. Feeling aggrieved by the remarks, a Special Leave Petition was filed contending that the remarks were not necessary. The Court while holding such remarks as atrocious and wholly inappropriate passed the order for deletion of remarks. A judge entrusted with the task of administration of justice should be bold and fearless while acting judicially. The fearlessness is essential for the maintenance of judicial independence. In **re K. A Judicial Officer Case**[21] the Court observed:

> …that any action taken by a subordinate judicial officer is open to scrutiny in judicial review before a superior forum with which its opinion may not meet approval and the superior court may upset his action or opinion. The availability of such fearlessness is essential for maintenance

of judicial independence. However, sobriety, cool, calm and poise should be reflected in every action expression of judge.[22]

In **Samya Sett v. Sambhu Sarkar**[23], the appellant was additional District and Sessions Judge and in charge of Special Court under NDPS Act. The accused charged under NDPS was produced before him and his bail application was rejected. Another application for bail was moved by the accused on the assertion that no charge sheet had been filed within the stipulated period. The appellant, in absence of the Public Prosecutor and in the light of the contention of the accused, passed order enlarging the accused on bail. In fact, it was a 'default bail' under Section 167(2) of the Criminal Procedure Code. On the same day, after some time, the Public Prosecutor appeared and drew the attention of the Court that the bail was granted on factually incorrect premise as the charge sheet was submitted within the stipulated period and thus Section 167(2) could not be invoked and the Court recalled its order.[24] The appellant recalled the order of bail. The accused filed revision before the High Court. The High Court allowed the revision and directed the appellant to pass order after affording the opportunity of hearing to the accused. The Judge again heard the matter and rejected the bail order. The accused again preferred the revision against rejection of bail application. The single Judge of Calcutta High Court while allowing the revision made certain remarks and passed strictures against the appellant. The Supreme Court passed the order for deletion of disparaging remarks made by the Calcutta High Court and observed:

> …the remarks made, strictures passed and directions issued by the learned Single Judge of the high Court against the appellant were improper, uncalled for and unwarranted. Apart from the fact they were neither necessary for deciding the controversy raised before the Court nor integral part of the judgment…they were not justified.[25]

The Supreme Court has deprecated the practice of on the part of Judges in passing strictures and making disparaging or derogatory remarks against parties, witnesses and subordinate officers.

IV. CONCLUSION

The higher judiciary exercises control over the subordinate judiciary. The higher judiciary while maintaining judicial standard, has to give confidence and protection to judicial officers of subordinate judiciary. The members of lower judiciary were having some ulterior motive while passing an order may not always be true. Law is pre-eminently a means to serve what we think is right. [26] Cult of robe is to be avoided by the higher judiciary. The higher judiciary is expected to exercise restraint while making an observation against a defenceless member of subordinate judiciary.

REFERENCE

1. See, State of Maharastra v. Labour Law Practioners' Association AIR 1998 SC 1233
2. S.L. Kapoor v Jagmohan AIR 1981 Sc 136
3. Dhakeshwari Cotton Mills Ltd. v CIT AIR 1955 SC 63
4. 2012 Cri LJ 2921 (SC)
5. 2007 ALJ 221
6. AIR 1968 SC 453
7. AIR 1987 SC 251
8. AIR 1988 SC 1395
9. AIR 1990 SC 1737
10. State of U.P. v. Mohd. Naim AIR 1964 SC 703
11. AIR 1997 SC 1157 per Thomas, Justice
12. Section 20 (b) (i) reads as: Whoever, in contravention of any provision of this Act or any rule or any order made or conditions of licence granted there under –

(a) ……

(b) Produces, manufactures, possesses, sells, purchases, transports, imports inter State, exports inter State or uses cannabis, shall be punishable –

(i) Where such contravention relates to ganja or the cultivation of cannabis plant, with rigorous imprisonment for a term which may extend to five years and shall also be liable to fine which may extend to fifty thousand rupees.

13. Section 37 (1) (b) imposes restriction on the powers of the Court in granting bail to persons accused of offence under NDPS Act. It reads as: Notwithstanding anything contained anything contained in the Criminal Procedure Code, 1973 –

(c) No person accused of an offence punishable for a term of imprisonment of five years or more under this Act shall be released on bail or on his own bond unless –

(i) the Public Prosecutor has been given an opportunity to oppose the application for such release, and

(ii) where the Public Prosecutor opposes the application, the Court is satisfied that there are reasonable grounds for believing that he is not guilty of such offence and that he is not likely to commit any offence while on bail.

14. It is to mention that the High Court Judge himself was unaware of the judgments of Supreme Court in Narcotic Control Bureau v. Kishan Lal AIR 1991 SC 558 and the Patna High Court in Kamlesh Kumar v. State of Bihar

(1994)2 Pat LJR 600. In Kishan Lal case it was observed that the power of High Court under Section 439 of the Cr. P.C. is subject to the limitations contained in Section 37 of the NDPS Act. In Kamlesh Kumar case, the Division Bench of the Patna High Court observed that when an accused is charged with the offence under Section 20(b) (i) of the NDPS Act, the power under Section 37 (1) (b) is not to be attracted. The case in hand, if would have been challenged before the Supreme Court would have applied the dicta in Kishan Lal case.

15. Id. at 1159 per Thomas, J.

16. AIR 1963 SC 1728

17. Per Gajendragadkar, J.

18. AIR 1994 SC 1031

19. AIR (1996) 4 SCC 539

20. AIR 2005 SC 1441

21. AIR 2001 SC 972

22. Id. at 975 per Lahoti, J.

23. AIR 2005 SC 3309. The bench comprised R.C. Lahoti, CJI, C.K. Thakker and P.K. Balasubramanyan, JJ.

24. The recall order was challenged in revision before the High Court. The revision petition of the accused was allowed and it was observed that once the bail order was passed in favour of the accused releasing him on bail, could not have been recalled without giving an opportunity of hearing to the accused, i, e. principle of natural justice was to be observed .. The High Court set aside the recall order and directed the Special Judge, the appellant, to pass an appropriate order in accordance with law by affording the accused. The Special Judge accordingly heard the matter and rejected the bail application.

25. Id. at 3315 per Thakker, J.

26. Justice William J. Brennan of US Supreme Court as quoted by Krishna Iyer, V. R.Freedom of Sppech and Expression: Ever Changing in A Random Miscellany Legal and Other (1984) at 55.

●

श्री काशी विश्वनाथ मन्दिर, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

BANARAS HINDU UNIVERSITY

सर्वविद्या की राजधानी

विश्वविद्यालय के उद्देश्य

1. अखिल जगत् की सर्वसाधारण जनता के एवं मुख्यतः हिन्दुओं के लाभार्थ हिन्दू शास्त्र तथा संस्कृत साहित्य की शिक्षा का प्रसार करना, जिससे प्राचीन भारत की संस्कृति और उसके विचार-रत्नों की रक्षा हो सके, तथा प्राचीन भारत की सभ्यता में जो कुछ महान् तथा गौरवपूर्ण था, उसका निदर्शन हो।
2. साधारणतः कला तथा विज्ञान की समस्त शाखाओं में शिक्षा तथा अन्वेषण के कार्य की सर्वतोन्मुखी उन्नति करना।
3. भारतीय घरेलू धन्धों की उन्नति और भारत की द्रव्य-सम्पदा के विकास में सहायक आवश्यक व्यावहारिक ज्ञान से युक्त वैज्ञानिक, तकनीकी तथा व्यावसायिक शिल्प कलादि सम्बन्धी ज्ञान का प्रचार और प्रसार करना।
4. धर्म तथा नीति को शिक्षा का आवश्यक अंग मानकर नवयुवकों में सुन्दर चरित्र का गठन करना।

OBJECTIVES OF THE UNIVERSITY

1. To promote the study of the Hindu Shastras and of Sanskrit literature generally as a means of preserving and popularizing for the benefit of the Hindus in particular and of the world at large in general, the best thought and culture of the Hindus, and all that was good and great in the ancient civilization of India;
2. To promote learning and research generally in Arts and Sciences in all branches;
3. To advance and diffuse such scientific, technical and professional knowledge, combined with the necessary practical training as is best calculated to help in promoting indigenous industries and in developing the material resources of the country; and
4. To promote the building up of character in youth by religion and ethics as an integral part of education.